

भारती

भानु

भारते



18

मेरी आत्मकहानी

आचार्य चतुरसेन

चतुरसेन साहित्य समिति
ज्ञानधाम, शाहदरा-दिल्ली ३२

प्रथम सम्करण, माघ, १९५३

© चन्द्रसेन

मूल्य सोलह रुपया

चन्द्रसेन, मन्त्री चतुरसेन साहित्य समिति । ११, सिद्धार्थ बाजार, काठमाडौं ।
हरिहर प्रेस, चावगा बाजार, काठमाडौं ।

आत्मनिवेदन

मं अभावतः न ज मा । ज्योतिष मं अभावः श्रीर सम्पत्त नवत्र हं रि नही यत् मं नही जानता । ज्योतिष मीं पढा नही । परन्तु मं तना जानता ह कि मने जत्रमे त्रोज सम्भाना तत्रमे अत्र तत्र जीवन म सदा अभाव ही का अनुभव किया । म एत त्रिवन परिवार का सदस्य तो हूँ ही, परन्तु विद्यार्थी जीवन म वर्षों तक तीन सपथ माहारा पर गुजरान करनी पनी । फिर एस भी गत्रसर आण कि लाख पचास हजार रूपण एत एक दिन म हाथ मे आण पर तु अभाव तो गया ही नहीं, वह ता सदा त्रैगा ही बना रहा । उगाके त्रिण परिवर्तनो की घपणा का पात्र बना, श्रीर मानापमान त्रो तो जात ही गया है । जहा अभाव ही अभाव हूँ रहा अपमान तो पद पद पर है । सम्पत्त त्रना त्रो बहुत यत्न भी किये, पर सत्र व्यथ । गत्र भो तरता ह, पर गत्र व्यथ । अत्र जीवन त्रो गव्या म सफलता भी क्या ? जत्र जग ही उगा त्रान म टुग्रा है ता उगमे उदार बना ।

जस अभाव त्र समुद्र म शाश्वत रूप म त्रुवां रहने का कारण है । मरे जीवन त्र तभी भी मर आदश का स्पश नही किया । मै जहाँ या तहाँ मेरी दृष्टि थी ही नही । जहा दृष्टि थी, तहा पहँच नही ता सक्ती था । मर साहम का दाप नही । परिस्थिति का चतारार तर दन साचा भार ही एसा था । एत कतपता हीजिण-टाव म एत भी पया त्रि है । सापतो त्रति ता आकाशी है, नियमित तो है नही । कन राजन कता म आयगा, इसकी चिंता म परशात पत्नी साईं साईं सी घर म उतर उतर त्रूम रती है । गाय, भग भूया रती है, तत्र भो भूमा नही मगाया जा सका था । आज भां त्रि । तत्र नाच म द्रि दिया था, सत्र फासरो श्रीर तरकारा साफ कर ग । ताकरा का मत भी सा है । त्र ता ही फीस भी है । रजाया त्रि भरी म । चाय त्रि-तत्र सत्त तो गई है, तीन त्रि म पौगिया म सांगकर त्राम त्रानाया जा रहा है । आज आण ह, तीन मरमान । जयगया । उ ह जनपाता त्रि अमी साँण, साँण त्रिना रता त्रि भां समय नही । म मेत माना म गपजप श्रीर खुनार त्रसा म भस्त हूँ । पत्नी को भी उम त्राम्य त्रानो म त्रिस्मा त्रेना हो पडता है, पर उनका मुग म हूय त्रक सब स्या है । त्रया कर, समभ नही पत्र रहा । मुभमो त्रता त्रकार समभती है । जानता है, म कुद्ध सनाह महायता द ही नही सक्ता । अभाव मुभ म भी छिपा नही है । पर पत्नी के साहम, सामध्य श्रीर व्यस्था पर त्रिभर हूँ । प्रा त्रण खूब त्रिइया सा जनपान आने त्रि प्रतीत्या म हूँ । म खुश हूँ, मेहमाना त्रि बोलन मुभे भी मिल जाणगा । त्रि तु त्रहाँ मे ? इस बात म मेरा कोई सरोकार नही । अब आप इसी श्रम

मुझे दो करोड़ रुपया दे दीजिए, तो निश्चय ही मैं उस एक साल में मर जाऊँगा। और एक सप्ताह बाद वही दृश्य या उपस्थित होगा। स्वयं की जिन्दगी खत्म होने से सोचने विचारने की आवश्यकता नहीं है, उसी से प्रजापति की मर्माङ्गुली में चमक रही थी। इसी से मैं कहता हूँ, कि मर जाऊँगा मरना ही मेरा भाग है।

पचास बरस पूरे हो रहे हैं कि मैं एक ही काम करता रहा हूँ। मेरी कलम में काफी स्याही है और मेरी उँगलियाँ मजबूत हैं। मैं अपने लिए गो आँखों की ज्योति क्षीण हो चुकी। वे तमस भी अब नहीं रहती हैं। मैं एक एक दिन से सो सो फुलस्केप शीट्स रगकर ढेर कर देता था। दम मिटि जा रहा था। पारस करने की इच्छा होने लगती है। पर तु हृदय में अब भी रगड़ का पाया साफ हो रहा है। मस्तिष्क में विचारों के दनादल भर रहे हैं। परमेश्वर का नाम मन्त्र बन गया। आज यह मैं अपने जीवन का पसठवा वसंत दण्ड रहा हूँ। मैं जिन्दगी और पारस बरस जिन्दगी देने दिया तो बड़े बड़े डरादे रखता हूँ। प्रकृत प्रेरणा है।

कारोबार मेरा सब चौपट है, आमदनी का अभाव है। मैं अपने सारे समय पर जुटा सकूँगा—इसका भरोसा नहीं है। मैंने अपना पचास साल का जमा खच इन्हीं हाथों से किया था। पर तब तब मैं ही जमा करता था। पर मैं ही पाया था। साहित्य ने आज मुझे भूखा मार जाता है। मैंने अपना जमा का मेरा प्रत्येक क्षण साहित्य में डूबा हुआ है। मैंने अपना जमा का मेरा जमा सो पाता हूँ। मेरी टेबुल और चारपाई पाग पाग पड़ी हैं। मैंने अपना जमा का मेरा जमा गया तो जा लेता। वहाँ से थका तो फिर टेबुल पर गिरा जाता हूँ। मैंने अपना जमा का भूल गया हूँ। पर तु जहाँ तक मुझ का प्रश्न है, मैंने अपना जमा का मेरा जमा सकता हूँ, कि मैं राजा न महाराजा न मन्त्री न हूँ, मैंने अपना जमा का मेरा जमा न आज के युग के राष्ट्रपति उस आनन्द का एक रंग प्राप्त कर सकता है। जो मैं अपनी लेखनी से स्याही बलेरने में करता हूँ। मैंने अपना जमा का मेरा जमा नेहरू को महाराज्या के सत्कार में यह प्रतिष्ठा मर्णाप्त मिलनी पाया। मैंने अपना पदयोजना में ही मिल जाती है।

पेट की भूख मुझे चलविचल जबरन करती है। मैंने अपना जमा का मेरा जमा की घोषणा करती हुई अनुकूल उत्तर से आता हूँ। मैंने अपना जमा का मेरा जमा मुझे बगले झाकनी पडती है। पत्नी को आरक्षण देना ही है, पर मैंने अपना जमा का भुक जाती है। जो मद होकर घरगिरी नहीं चला सकता, मैंने अपना जमा का मेरा जमा न सही मद, साहित्यकार तो हूँ। कारोबार छोड़, मैंने अपना जमा का मेरा जमा से क्या? ये सब बातें व्यर्थ ही करती हैं। मैंने अपना जमा का मेरा जमा इच्छा नाप तोल कीजिए, गिनिए मेरी साहित्यसम्पत्ति है।

‘प्राज्ञरुच म मरा एक नय उगा था —‘म उन यास रुमे निगता = ।’
 उस पर कुछ साहित्य प्रयोगों ने कहा कि म यहाती है । म उनसे उम क्लाम पर
 मरी करता है । सो फार करण है कि गीत याता गहवादी है, साय ही यह भो निते
 तन कर गा कि गत वादी ही मरी साहित्यकार कहा सतता है । मरे उम तख म मरा
 ग्रह नगर्गिन रूप म ता, जिमका रपष्ट यह अभिप्राय था कि मरी रचना पक्षालो म
 मर य फार हा ती मुझे आनन्दन मिता है, जिम रूपाे का नही । यद् बहुत मराय
 यात हा जाती है । फरतिव् उसोलिण याय नर टमार साहित्य समालोचक वुन मुझे
 कहानाकार मानते है न उन यामकार । यत्रपि मरो चार सी स उपर कहानिया प्रकगित
 है, जिनम ग्रन्थ पीषो तरसा म विश्वविद्यालया म पढाई जाती है । कहना चाह तो
 कह सकता हूँ कि आज कतरण तो उह विरदि यातण म पढ ही रह है, उाके पिता
 या म भी प्रपनी यात्रावस्था मे पढी थी । ग्रानं पाली पीषो तो पढे ती सी । उन यामो
 ती मन्था भी २५ ३० है जिनमे पञ्जानी ती नगराधू, सोमनाथ प्रोर ययराग मग
 उपयाम भी है । पर तु टमारे मित्र समालोचका न उह देखा ही नही है । जब भी
 टहा ती हारा और उन यासो ती चना हातो है, म भूवकर भी मरा ग्रार मरा रचनात्रा
 ता उतरण त्ती करने । आरा को यात रूर, श्री गुतावराय आर श्री हजारपमाद जैय
 सायया समान्य भी उम सम्ब म म सबथा मौन है । कहना चाह ता कह सकता हूँ,
 अजाती है । खुदा जानें किम जात क काच का चरसा आँवा पर चडाकर मेर य बडे
 नाम याव मित्र फ्या साहित्य का प्रचयन करन और आलाचना करत है । मर, तो मै
 नाति पकारो ती प्रादरा म जानिच्युत साहित्यकार हैं, कदाचित् अपन उभी ग्रह के कारण
 और म नात्रिण उमी गट हे प्रानुते पर म म आज ता उन याता ता कातो को ती तं परा
 पर भी परया, नही ता । उनका ज्ञान और अज्ञान उनर साय और मेरा गट मर गा ।

मय प्राज्ञ म अपनी अर का एक दूसरा प्रमाण उस निरन्तर म देरता है, हिन्दो
 साय पर अतता गुता मय गक करन । आप लाग मतो भाति जावन है—कि म कभा
 विता ती निगता, म मरी कविता ती अयो है । पर उगता यह अभिप्राय कर
 गिन ती है कि म कविता निगता ती सतता । मर साति म य ता आरम्भ हो । विता
 म कथा ता । सन ६५७ म जब नाता राजपतराय माण ती मज रिण गाण थ, तय उता
 विता म पर मरो मन्म पढना कविता सायारार’ मे उपी थी । बचपन म म
 अयो ती म विनाण आर आर म गाया करता था । मेरे बचपन म बनाण हा नाकशीत
 मर कम्प ती स्त्रियो को जसाय पर रूत गौर ताक ही टकार क साय ता जाति या
 ती मय धाम म विरात थ । उहुता मे पत्र मो कविताया म निगता ता । अन्वत्त, म
 मरो मर्या या साहित्यक थी या न थी, यह दूसरी वान है । पर १९१६ बरस क
 देता ती छाकर म गाण आर गहता भी तया है । मरा कहता तो यही है —मेर साहित्य

का आरम्भ हुआ कविता की श्रावण पर ही पनप कर। उसके बाद भी सोचने की बातें मोके आ जाते हैं। पर तु नमि सम्भेना और पर परिवर्तन का भी सोचने की बातें तुकुर्वा दिया कर डालता हूँ। खड़ी बोली और प्रज भाषा में प्रयोग का प्रयोग नहीं, संस्कृत में भी। यद्यपि संस्कृत का अभ्यास मरा जाया गया है। परंतु पर जब आवश्यकता पड़ती है, वह संस्कार फणि नाग का भाषा प्रयोग होता है। यह वास्तव में मेरे ग्रह का ही चमत्कार है। जिससे पराशर का मत में गत नवम्बर मास में अस्मात् ही हो गई। जब मराठों राजपूतों का लालक श्री विश्वनाथ न एगण्ड मेरी गदन पर आया। तब तब ही तब ही केवल छे दिन के भीतर। आज ही पढ़नी। अर्थात् मराठी भाषा का विकास को एक सप्ताह मिल जाय। १५ तारीख मराठी भाषा की भाषा का विकास इतिहास में—जहां सौ पचास पुस्तकें, तथा रु र्भिम, रफ का भाषा प्रयोग अम्बार मेज पर लगा था और सत्रह अठारह घण्टे का प्रयोग किया गया। जिससे दातो को पसीना आ जाण। तब पर अस्मत् और मराठी भाषा का विकास जी की बात भी कही टाली जा सकती थी। जरा जाकर विष्णु का विकास पर योग्य चेहरा, स्निग्ध हँसी, और नपी तुली कम से कम भाषा का विकास पर सा हठ। स्वीकार करना पवा। मू एतिहासिक भाषा नवम्बर मास में भारत में बोद्ध संस्कार ठा रहे थे। वम, मजा हागजात पर मराठी भाषा का विकास की, और नाटक लिखना आरम्भ हुआ—'मराठी' भाषा का विकास पर। तब दिन में नाटक लिखा गया। एक दिन में मराठी और परिवर्तन का विकास पर गीत। गीत प्रज भाषा के भी, खड़ी बोली के भी, तब और पराशर का विकास पर सब मिलाकर दस गीत और सुबह में युष्मिन् एति भाषा का विकास पर का आधा चमत्कार। आशा यह कि पत्नी न ही तब खरी ए मराठी भाषा का विकास पर। रुपये तलब किएगए तो मैंने कहा कि भाषा का विकास पर पराशर का विकास पर बस समझ लीजिए। नाटक भंग। नाटक खप गया है। पर भाषा का विकास पर में मेरे ग्रह ने क्या काम किया। नाटक भी यत् भाषा का विकास पर ही है। पर जिस भाषा में कहानीकार नहीं हैं, उपवासकार नहीं हैं, उभा प्रकार नाटक पर भाषा का विकास पर डाक्टर हजारीप्रसादजी से पद्य नीजिए, चार श्री गु भाषा का विकास पर।

२६ अगस्त, १८५६ }
पसठवी वर्ष अर्थ }

विषय-सूची

क्रम	विषय	पृष्ठ	३१ सामान्य	२६१
१	हिस्मग	१	२२ मत्स्य और अष्टिगा का तत्त्व	२६६
२	पिताजी	२	३३ अररन्नाम गनीत रस	२८५
३	माताजी	७	३४ पूरयि भूखण पर मत्रश्रष्ट पुष्प	२६७
४	परिजन	८	३५ उात्रा की दूषित प्रति	३१५
५	अन्तराभ्याम	१२	३६ प्रम का म्थ, जन	३२२
६	ग्राम्य जीवन	१६	३७ अपराजिता एक नारी	३२५
७	मिहन्तरात्राट म	१८	३८ टा अप्रतिम मित्र	३२६
८	जत्र चारी करना सीखा	२६	३९ दद की तस्वीर, रामपुर	३३०
९	तरिश्च द्र	३२	४० दिव्य ज्योति ज्योगना	३२६
१०	पण्डित उाटतान	४२	४१ उपहत दृशा	३४३
११	मर गािा वरप	४७	४२ सास्त्रित मूर्ति पुरपोत्तमाम	
१२	मुफुता मित्र दगावाट म	५१	टण्डन	३४५
१३	कागी म	५४	४३ गाइश व्याह	३४७
१४	त्रिगाह	६४	४४ दत्रताशा क देश म	३५०
१५	अजमर म	७७	४५ महा प्रयाग	३६७
१६	उम्पई म	८७	परिशिष्ट अश —	
१७	भू ता गया	१०६	४६ बाननाल की प्रारम्भिक	
१८	भाग्य ही रस	१११	रचनाए	३८०
१९	विता म तथा जीवन	११७	४७ अपराधी (उप याग)	३८१
२०	'गा. के विभागा	१२२	४८ अनेगभिभ्राट (उप याग)	३८७
२१	'गा. अा गया और फिर' महाअ थ		४९ एक विशिष्ट कानी	४१८
	गा वरगा।	१६४	५० त्रिताग	४२०
	परिनाम का रम गा. और विनाम	१६८	५१ १६१६-१६२५ की मध्यका व	
	गा का नाम पर, पाप या पुण्य	१६२	की रचनाए	४२८
२२	मरा मप्रथम गा गा	२०६	५२ गा-य जीवन (त्रिता म)	४३५
२३	पुन प गा गा गा	२१४	५३ भारतीय श्रीपध निर्माण नियन्त्रण	
	गा गा गा गा	२१४	बोर अर्गाियम (बिन)	४७३
२४	परिनाम मधु	२२४	५४ राजनैतिक और साहित्यिक	
	गा गा गा गा गा गा गा गा गा गा	२४३	विचार	५०३
२५	गा गा गा	२४६	५५ पत्र व्यवहार	५३७
२६	अभुा और अर्पित	२५२	५६ आचायश्री का जीवन क्रम, साहित्य	

उस सामग्री को भी इगम द दिया है, जिम्मा उतर जाता है। तब पर भी
घनिष्ट सम्प्र व है।

बहुत पुरानी पत्रिण स्मृति है, जत्र मरा पत्रमा ... सिक् दरावाद म माता पिता की उत्राया म ... एकाएक हमार घर म स्फूर्ति का वातावरण था। और पिता बाजार से अन्न वस्तुएं ला म 'यस्य' ... गृहिणी का हाथ घटाने लगी। घर की सफा और ... से पूछा—'अम्मा आज क्या बात है ?

माता ने उत्साह से कहा— 'भय्या या र' ... न समाती थी। 'भय्या' मे उनकी मतलब और ... की शिक्षा समाप्त करके कुछ समय पूर ... के पद पर नियुक्त हुए थे। उ ही ... हू। उन दिनों दिल्ली म सेनगाडी म ... सिक् दरावाद चार मील का माग उरका था ... द्वार पर जब उनका इक्का आकर रना, तत्र गनी ... आ गए, कहकर लपकते हुए उनके समीप ... उठ उठकर उ ह नमस्ते कहने लग। वह मरना ... दूर था। गली का शोर सुनकर वृत्पति ... हाथ जोड़कर प्रणाम किया और शना हृदय ... इससे प्रथम उनके प्रति कभी ... मुझे गुदगुदा रहा था। म माता के ... रहा था। मुझसे ठडे और दा भांडे, उ ... माता के पीछे ही छिपकर उन 'पत्रजी' ... था। सफेद पाजामा, सफेद ... द त पक्तियों म उ मुक्त हृदय, प्रगल्भ ... चेहरा। माता न मर दुःख का भा ... गद। मिर पर हाथ फेरा और प्ररना ...

'भय्या, यह वा क्या रही जाण है'
'एक दिन के त्रिण नाकर क्या करना सम्मा।'
'बया, क्या म बह को देखने के लिए ...'
'अम्मा अत्र तुम भी रही रह ई पाग ...'
'वाह भय्या, वाह !

पहले दिन उहे देखकर माताके पीछे छिप गया था, वसा । तब पा । वि ।
भाव मे उनकी मृत्यु प्रती ग्राने तब प्रबुध्य रसा र । । मर । वि । मर ।
से कोई बात कहते थ ता म पीछे उठ । ता । वि । ता । वि । ता ।
पर प्रच्छे निद्र द थ, उ हे मरा पूज्यज्जा जात । ता । पू । वि । ता ।
मन मे आरम्भ से ही स्थापित हा गा थी । मर । पर उ । ता । वि । ता ।
बहुत कम बीमार हाते थे । जीया म । मर । ता । वि । ता ।
बीमार हुण, मुझे ही अपनी रोग शय्या पर प्रहरा वि । ता । वि । ता ।
किमी भी भाति उ हे न बचा गया, न उनर प्र । अपा पाण । ता ।

आचायत्री के महाप्रयाग वी त्यद घटना मर । ता । वि । ता ।
करती रही । उनके लिखन क रमर म प्र । ता । मर । ता । वि । ता ।
द्वार की किमाड खालकर मे अ र पर रयत ही अ । ता । वि । ता ।
भय्य प्रतिच्छाया मेज पर भुनी प्रठी रिपता मुभ शय्या योर । ता । वि ।
अपना कदम पीछे हटा लेता—जसा वि म मर । उनर वि । ता । वि । ता ।
न करने की सावधानी बतने का अभ्यस्त था । ता । मर । ता । वि । ता ।
की चेष्टा की पर तु द्वार खात ही मुझे नी याभाग । ता । वि । ता ।
कर आहिस्ता से किवाड डेल लेता । तभी तभी मरा मर । ता । वि । ता ।
चटाई पर रोनी कलपती भाभी को जट्टीय गुता र पू । ता । वि । ता ।
द और कहूँ कि देखो ता य क्या मर है, अपती रसा पर । ता । वि । ता ।
बुलाने के लिए जाता भी,पर भाभीक रमर । ता । पर प । ता । वि । ता ।
मेरी रागी जड हा जाती और हा ता करत म फिर मपर ता । ता । वि । ता ।

प्रकाशको ने मुझमे आकर कहा वि । ता । वि । ता ।
करने के लिए रखी हो तो तम दीजिए । अत म उत । ता । वि । ता ।
घटफते हृदय स मेने उनने रिया र रमर म पर । ता । वि । ता ।
मधुर सहक मरे श्वाग प्रश्राम म घुम ग । ता । मर । ता । वि । ता ।
से सहक रहा है । मैं वारा और दया कता मा ण । ता । वि । ता ।
मेरे श्वामा मे जा रही थी । मैं मर । पूजा र । ता । वि । ता ।
उनकी कुर्मी पर जाकर अपना मस्तक र । ता । वि । ता ।
कर मस्तक टेके बठा रहा । मर । मर । दुर्गा पर जभा र । ता । वि । ता ।
करणो मे घुम रह थे ।

अ त मे मै उठा और मैंने रमर । ता । वि । ता ।
और द्वार विल्कुल खोल दिण और म उम पविन गुमि पर वि । ता । वि । ता ।
महान लेखक को अलमारियां को खोला और र । ता । वि । ता ।

विज्ञान और अज्ञान का सम्बन्ध किया। उसकी विज्ञान साहित्य सम्पदा को दंगकर मेरा
रक्त बह गया। मेरा रक्त यंत्रणा भर गया। गोट, मेरे पूज्यपुत्रों के चित्तना लिखा था।
विज्ञान अज्ञान का अन्त विद्यमान का साहस है? कौन कौन परिश्रमसे क्लम पान सखता

एक एक तार पृष्ठ के ६ अक्षर, २६६ अक्षर कृतिया तथा १० हजार पृष्ठों के पत्र
परिभाषा में एक फुल्लर मटर को उनके जीवन ज्ञान में ही प्रकाशित हो चुके थे। अब
जो अज्ञानकारियों को मनुस्क्रिप्टों की चिन्त बाटाई तो ५२ अक्षर अक्षयकशित निकले, जिनमें
८ अक्षर ही पृष्ठ संख्या हजार हजार के भी ऊपर चढ़ेगी। दो उपयोग 'मोती' और
'सा' सम्पूर्ण हैं, उक्त मैन पूर्ण विद्या। 'माना गोर 'सून' के शेष भाग में अक्षर डाक्टर
मुसकार एप्ल एम०ए०, पी०एच० डी० विद्यारत है।

मनु १६८६ में एक तार ८-५ दिव तक के अक्षर केयनतय म निर तर उठकर
'मोती और सूत' की अक्षर रूपरेखा तयार कर रहे थे। लगभग उसी समय उसी समय जीवन
अभि उभी पाप में जन्म ले ही गोर अपने पाप में विद्यी का अज्ञान पत्र नती करी
थे। परंतु ५ दिव तक जब वे अक्षरी उग रूपरेखा को सम्पूर्ण कर चुके और
उत्तान यथा आगम दुर्गा पर विश्राम किया, तब दो चीज देखकर मंत्रित हो गया।
एक उत्तान सूत और मुभाया युगा पीना चहरा, और दूसरा उनकी मज पर 'जिन्दगी
की वरात' की नवीन पत्र तयार पाणुनिधि। अ मानवता को उत्तान प्रेम करत के वि
यत् की पशुत्व भावना का प्रति उत्तान मा म तना राप व्याप्त हया कि उ ताने 'मोती
पार सूत' की रूपरेखा तयार। तना एक एम्पी पुस्तक भी विद्वो समार को के जिसके
एक एक पत्र में तना राप यगार की भावि पूरा पत्रा है। 'जिन्दगी को वरात'
माना पार सूत का एक राजनिधि पत्रा है।

मेरे अक्षर के पत्र तयार था। तब ही गोट प्रेम, अक्षर श्रद्धा और दर्ता के
पत्र में मेरे राग राग भर गया था। तब ही तब के पत्र तयार तब ही विद्या का एक
भागी विद्ये के मेरे पत्र यथा यार में उसी स्मृति में एक स्मृति। विज्ञान का
विज्ञान तयार था। मेरे विज्ञान का तयार ही, जो साहित्य सम्बन्ध का विज्ञान विज्ञान
का 'साहित्य सम्बन्ध' पत्रा का तयार राजनिधि का अज्ञान गोर अक्षर विज्ञान
की तयार का तयार जीवनीपत्र तयार तयार यथा तयार तथा यथा जायतसम्भ्र को
नवा सम्भ्र जो मेरे विज्ञान और यथा का तयार, उगर्त विज्ञान का तयार परत सम्भ्रान्त
परिभाषा का तयार का तयार का तयार।

मेरे अक्षर का तयार मेरे विज्ञान अक्षर के पत्र यथा यथा सम्भ्रान्त ही, मेरे विज्ञान
सम्भ्रान्त के विज्ञान पत्र में यथा तयार का तयार अक्षर और कुछ भागि विज्ञान का तयार
पत्रा का तयार विज्ञान विज्ञान। उगर्त अक्षर का प्रकाशित करत के विज्ञान विज्ञान का तयार
का तयार का तयार, और मेरे साक्षी तथा था। मेरे अक्षर का तयार एक सम्भ्रान्त प्रकाशित

'चतुरसेन स्मृतिग्रन्थ' निकाला जाण,जिसमें यह जो जानता था वह भी जानता था मनीषियों के सम्मरण और देख रहे। परन्तु मम य... जिहे मैने अत्यंत निष्कट समझा था,ने 'स्मृतिग्रन्थ' को निकालने तक चार पाँच मीटिंग होने पर भी टालटाल ही की। प्रकाशन के मेरे पुनीत प्रयास का दर ही ना... ढग से सोचा गया। फल यह हुआ कि उन मित्रों... मनमे मेरी ओर से विपरीत भाव उत्पन्न हो गए। गर्वित... ने इसके लिए आर्थिक सहायता दान से... सद्गुरु श्री ब्रजमोहन रिटायर्ड इंजीनियर ने... श्रद्धा रखते थे, इस ग्रन्थ का निकालने की प्रारम्भिक... का चेक मुझे भेज दिया था, जिसमें मेने प्रारम्भिक... की, परन्तु भाभी ने मुझमे स्पष्ट कर दिया कि... रुपया ऐंठते हो और उनकी पतिष्ठाम घातकता। अ... पत्तर समेट कर और मेरी लिंगो गमूची पाण्डुलिपि उधार... मे बंद करदी। ताला बंद करके तानी मुझो म... करली। बहुत दुख हुआ। भीतर सजा हो निरन्तर... हाथ पर कापने लगे। अन्तक निस्पन्द उनो जा...

एक साहित्यिक कृति का प्रकाशन की... एकनिष्ठ सेवा,भाजना,श्रद्धा, भक्ति, रुदन, तप, शोकाभरण... कि मैं अपने भाई के नाम पर लगा न... हूँ। फूट गई मरी तरुदीर,समाप्त हो गया मरा... जो जो उनके साहित्यका खाजन और... श्रुणुय बनाए रखने के लिए अपना... मे एक दिन मरे हाथ पसिज न... था, जो इस प्रकार था—

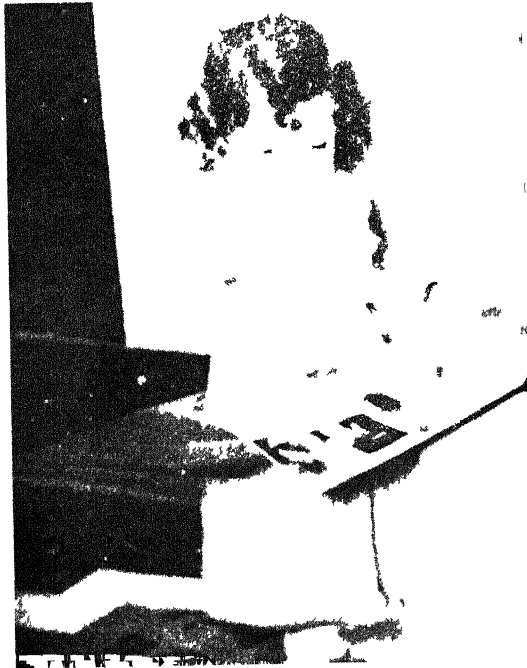
'प्रिय सहोदय,

आपका २२ १० ६० का निम्ना... आपकी जो शर्तें हैं, उसमे नम्बर ६ म... मतभेद होने पर जो मुझे नुकसान... चन्द्रसेनजी पूज्य आचार्यजी के सामने... थे और अब भी वैसे ही कर रहे है। सो... आपको ज्ञात होगा ही कि उनकी उत्तराधिकारिणी...

ने मरते समय मुझे खूब मुश्किलित, मुमर्रत व प्रसापन था परन्तु मरण के क्षण पर
से भी बचित किया गया ।

दिन बीतते चले गए और मे उम पाण्डुनिधि हो पाण्डित्य विद्वान्मित्रों की सहायता से
अत मे एक दिन मेरे मन में पाप समाया और एक यषपन शरीर का निरुपय प्रकृत
एक दिन भाभी जब गुस्लखान में थी, मैं कुछ सारिपा धारण करके नगर में
मेरे ही आधीन था, जहाँ मैं ही पुस्तक और पाणिनि की टीका की रचना के लिये
बैठकर काम किया करता था, चुपचाप गया और उम प्र भारी मत्त को पीने के लिये
लगाने लगा । ताला खुल गया । उमम मेरी पिता हनुवत की दीवारों पर चढ़ गये
मैंने उठा लिया । यद्यपि उम अत्सारी मे आचायन्ना हो और जो पाणिनि के अर्थों
द्वारा सजोर्ड, सवारी उठी हु प्राणाना हो हो र निरुपय हो हो पर भाषित
पर पर भी ध्यान नहीं दिया । अर्पणी उरुत हो शरीर उधा हो हो हाता हो उर म
नि शब्द अपने कमरे मे लौट आया । उरुत हो उरुत से पाण्डुर हो हो हो शरीर
से बचाए रहा । अत मे मैं पुनः कागजात, उा कुरात हो हो हो हो हो हो
परिवधन किए और पूग उरुत उनाकर उम कुरात प्रकृत शरीर को उरुत उम
प्रस्तुत करने की चेष्टा करने लगा । परत उत हो मर पाग हो हो हो हो हो हो
प्रकाशक राजपाल लण्डन मे के पाग गया, पर त वि उरुत हो हो हो हो हो हो
इकार कर दिया, मुझे कुछ उरुत उरुत उरुत हो हो हो हो हो हो हो हो हो हो हो
श्रीसोहनलात भागने इस्के प्रकाशन उरुत उरुत उरुत हो हो हो हो हो हो हो हो हो हो
का प्रकाशन आचायश्री की प्रतिष्ठा उरुत उरुत उरुत पूरुत उरुत हो हो हो हो हो हो हो
प्रश्न है, उसनिगे उमे अरुतय प्रकृत उरुत उरुत उरुत उरुत उरुत उरुत उरुत उरुत उरुत उरुत
पर तु उरुत उरुत कागज और उरुत उरुत उरुत उरुत उरुत उरुत उरुत उरुत उरुत उरुत उरुत
अरुतचित, अरुतपत और उरुत उरुत उरुत उरुत उरुत उरुत उरुत उरुत उरुत उरुत उरुत
चिर पतीया और उरुत उरुत उरुत उरुत उरुत उरुत उरुत उरुत उरुत उरुत उरुत उरुत उरुत
यित हूँ । जीवत ही उरुत उरुत, उरुत अरुतय उरुत उरुत उरुत उरुत उरुत उरुत उरुत उरुत उरुत
रोम रोम मे है । अरुत प्रति उरुत उरुत अरुतय उरुत उरुत उरुत उरुत उरुत उरुत उरुत उरुत
न भी करे तव भी मे अप्यायित हूँ, जिम प्रकृत उरुत उरुत उरुत उरुत उरुत उरुत उरुत उरुत
दखदखकर मे अप्यायित हूँ । अरुतय प्राणय मे पा दिया अरुत उरुत उरुत उरुत उरुत उरुत
लिया । उरुत उरुतकका पठकर यदि आप प्रकृत उरुत उरुत उरुत उरुत उरुत उरुत उरुत उरुत
को, जिनके प्रति अरुत भी मर मन मे उरुत पूरुत उरुत की भावना, उरुत उरुत उरुत उरुत
प्रवाहित है, जो आचायश्री के प्रति उरुत उरुत उरुत उरुत उरुत उरुत उरुत उरुत उरुत उरुत

ज्ञानधाम, शाहदरा दिल्ली ३२ }
१ माच १९६३





पृ. १००

इस अर्थ में पितापिता से अपने पूज्य पिता को 'पापा' कहती
या 'पापा' से अपने 'पापा' से मरणा' कहती है। तुम मरणाज की एक
नस्सरा चर्चा के बाद, पापा से तुम्हारा नाम रखा ज्योत्सना।
तुम्हारे नाम से मरणाज की और तुम्हारे 'पापा' तुम्हें अक्षर
जा रहा है। तुम से मरणाज की प्रती ही जो तुम्हें
अपने पिता से मरणाज की प्रती ही जो तुम्हें
अपने पापा पापा को पापा को चाचापितार तुम कहा करती
या पापा से मु 'पापा' और तब तुम पढना से खती
या मरणाज।

पर पापा अक्षर मरणाज जब तुम केवल मरणाज और चार
माम का अक्षर बर्णित है। समय पर तुम अपने ज्ञान और
विज्ञान ही मरणाज से मरणाज जब तुम्हें अपने यशस्वी 'पापा' की
रूप में विज्ञान मरणाज और तुम उनके विषय में बहुत कुछ ज्ञान
पापा मरणाज की मरणाज मरणाज। उस समय हम मरणाज की
पर मरणाज पापा मरणाज जायगी। वे तुम्हारे सम्बन्ध मरणाज
मरणाज पर मरणाज मरणाज मरणाज की मरणाज मरणाज मरणाज
मरणाज मरणाज मरणाज मरणाज मरणाज मरणाज मरणाज मरणाज
मरणाज मरणाज मरणाज मरणाज मरणाज मरणाज मरणाज मरणाज

तुम्हारे पितापिता से तुम्हारे

चाचाजी'

निष्पन्न

म एक आत्मा, किन्तु प्रपञ्चानि गोद्वारा ह । अपन चिरजीवन म भगवान् कुत्र
गया है पाया कुछ भी नहीं । मन एक भा मित्र जीवन म उठी उपन गया । आज
जीवन म ग या म म अपन हा गत्रया एतात्, गमहाय श्राव निष्पन्न यत्नभय करना
ह । मरी श्या उम मुर्गाफिर क गमान ह, जा नि भर फिर गर मजिन टाटता रहा
ह, और यत्र निजन राह ही म सूय अरु टा गया ग, वट गरागासान थकर राह
क एक वृत्त क पहार राह गान्ध पर गया ह । गार मजि हा प्र अपा पर म रि ग्री
गुर, पुत्र पर मम ग्या हा, स या नि भाति गिरगा पत्ना ही, गोर पुत्र क गमान
मु क अपन पुत्र ही कवन एतात् भा गोर गया ।

ता पर भी मे कुछ और सुरा जाति निष्पन्न म सम्पन्न ह । म मर
हय म ह, और सुरा मर जीवन के वाहर नारा श्राव । मरा स वटव मयया ह ।
मणि मता म भी अत्रिक मयमान । उम पुत्र ही नित्रि का, वदताया, नि ताया
गागाता और ती रनि श्यामा सन्धि टरण हा मजूपा म म । वृत्त प्रतिग ही भाति
शिवाकर रया । ह ह, उम मजूपा म यर मर नित्रि मर हर, अत्रो कर उम हाक
शिवाकर म गरीर म पर वटकर गता । अपन नारा पार गिरा टण मित्र क
सुरा म गता ह, उम सुरा हा वाटा । नित्रि गिरिता प्रोर गयत ताग वा
भाति । म सुरा पर मरी वति भी गामता हा, माह भी ही । पर उम ही
त्रिग सम्पत्ता हा गत । गत म शिवाकर रया । ह, उम मिया हा गामा नही
है । निगा हा गिता हा हा उम म म हा हा हा भी मपन गत । हा हा ।
मय भा गानार उम म श्यता हा । म मय म, नि वता म म म म गयार
धाती म गिरा हा जाय । यता उम सुरा सम्पत्ता पर मरी ही गिरा हा वत मारग
है, उम ही म ग । जीवन म गता हा म गत ही म गम म पर मर कुत्र
बी ही है ।

साग हा हा है जा गार गत है । म वटा हा, यि म ग म पर उम मय है
हा वट जीवन हा है । अन्त म मरा परि मय ही । नित्रि मता हा क ता ग म अ ।
गिरा प्राणिया हा मृत्यु ता व दया है । शरी हा हा, अत्रिग ही है । म म उम
परिमाम पर पदो हा ह, नि मृत्यु और म म ता हा ही नित्रि, वटव मारग ह, वला
दाता म वाई ताराम्य हा है, सन्धि मरा यह वट शिवाकर है, कि जन्म भाति

तत्त्वों के संयोग से—जिसमें किसी विधाता या कृता का नाम ही नहीं है। तत्त्वों में उसी प्रकार भौतिक तत्त्वों के विघटन से होती है। एतद्गुणसंयोग से अविनाश्वर सत्त्व, आत्मा, जीव या और कुछ शेष नहीं रह जाता। गुणों से ही तत्त्वों का अस्तित्व कतई खत्म हो जाता है। इसलिए, जीवन साम्य के लिए तत्त्वों की रक्षा करना, अद्विक से अद्विक इसे सुखी और सम्पन्न प्रकृतियों में लाना ही बुद्धिमत्तापूर्ण कतव्य है।

जन्मस्थान

उत्तरप्रदेश के बुलन्दशहर प्रांत में, गंगा नदी पर स्थित अजमेर नाम के एक छोटे से गाँव में एक क्षत्रिय परिवार के माता-पिता के घर में मेरा जन्म हुआ। यह घर और यह गाँव हमारा पुराना निवास था, यहाँ मेरा जन्म का स्थान था। स्थायी पत्रिक स्थान—उसी छोटे से गाँव में ही मेरा जन्म हुआ। ३४ कोस पर 'बिबियाना' गाँव है। चादौख में अजमेर नाम के गाँव में है। उस घर को पहचान सकता हूँ जिसमें मेरा जन्म हुआ है। विधवा माता मेरी देखभाल करती हैं, वहाँ के दूध पीने का भी मुझे ध्यान है। यहाँ हमारा परिवार ही है। और तालाब भी है। वह भी मैंने देखा है। अब भी मेरे परिवार और मित्रों के घरों में रहते हैं ऐसा सुनता हूँ, पर वे मुझे जानते नहीं हैं, और मैं भी उनसे बातचीत नहीं सुना था कि चादौख में मेरे पिता श्री गुरुनन्दन जी परलोक गये और मेरे पिता के निवास का सांस्कृतिक प्रभाव बहुत रहा।

पिताजी

पिताजी बहुत कम पढ़े लिखे थे। आजीविन शांतता में मेरा जन्म हुआ। मास प्रथम ही चादौख आ गये थे। यहाँ उनका नाम 'श्री' पुराना ही था। लाभ प्राप्त हुआ। एक वे प्राणाचार्य अथवा धार्मिक विद्वान्, उत्तरप्रदेश के सरस्वती पण्डित, और आसपास के प्रसिद्ध विद्वान्। दूसरे वे 'ठाकुर' नाम के गाँव के जमींदार। तीनों मित्र समाज आयु थे, निरन्तर योगी थे। तीनों परस्पर परस्पर थे। मेरा जन्म होने पर मेरी जन्मकुण्डली नामविशेषों से देखी गई थी। नाम रखा था चतुर्भुज, पर कहते थे कुन्दीपक। उनका कहना था 'खडक' ही अर्थ है। पर नाम योग्य नहीं है। जिन्हा तो कुन्दीपक होगा। इसी से पिता का प्यार मुझे परलोक था। कुछ दिन पूर्व स्वामी दयानन्द सरस्वती जब कल्याण आये, तो पिताजी और ठाकुर साहब ने कल्याण जाकर स्वामी जी से पूछा कि पिताजी का नाम क्या था। तभी से उनके विचार आसमाज की ओर झुक गये थे। फिर जब वे योगी नाम में तीनों मित्रों का एकसाथ रहना हुआ, तो परस्पर विचार विनिमय करने से ही

वे कट्टर आयोगमाजी हो गए। तब तक प्रमूख और तातार में आयोगमाज ही स्थापना ता हो चुकी थी, पर तु अभी उसका व्यापक परिपक्व स्वरूप प्रकट नहीं हुआ था। मूर्ति-पूजा आदि के गणन ही जगत्प्रताप चक्रा स्वामी ध्यान में नाम के साथ देहता में चल गई थी। जगह जगह नाम कटते थे। एक समय भी उभर रस रह है। गरुडन वास्तु है। मूर्तिपूजा का गणन करत है। तब को उभर रागी प्रताप है।

ठाकुर महाश्रीगणेश और पिताजी, दाता का नया जोश था। उस नए जोश में तब तक अपनी नवार्थिप्राप्त जनी में न जान कितना आयोगमाज का प्रचार किया। वह नवार्थिप्राप्त शक्ती स्या था, मुनिगण। मैरुग मरिदरा, मठा और देव स्थाना में महादेव चामण्डा भय आदि ही मूर्तियां राता रात चुराकर गंगा में या निकट के तानात्र में फेंक देना। जहां किसी प्रताप स्थान पर प्रदुगा स्थिया आती जाती थी, वहां उन्मत्त भी उभर कर देना, कि फिर उभर जात का नाम न ल। कहीं विवाह यादि कृत्य पारामिगु रीति पर होता— तो भट एक धार। माजी पणन ता किर जा मन्त, अभी अभी फाजारी। रके भी उगी न प्रत्य करत। नाठी क प्रनी प्र। नाठी हाथ में होने पर २०।२० को भारी। दात तीन म विज्ञान, सुय गिदुगिया रग प्रती कानी दादी (पी) कातो नहीं रखत थे। मजबूत साटा हाथ में, नानदार चमरोधे का जूता। उस ठाकुर और आप गाव गाव घूमता और उपराक्त अद्भुत रीति में गायमाज का प्रचार करना। अभी अभी कवन 'नमस्ते' कहने के लिये लाठी चन जाती थी। श्री कामिनि जमा में उराने। या हाथी सीसी। जीवन के अत तक उनका ग या प्रताप का समय चलता रहा। शीर-धीर प्रोत्सा और प्रविता का भी उन्मा अभाग्य कर दिया। र्जिता करत थे— कवन स्थिया में प्रचलित आभ्यगीता थी। विद्वत् प्रथम माता जी का उण्ड करार गमाया जाता। पीठ गाव ही अन्य स्थिया गया जाती और व्याहारा पर प्रती गी। गाती थी। य गीत पातिप्रत प्रमसूत्र, दुर्गा विद्वत् तथा गाता ममाती पूजा के गण नात्मक होते थे। जत्र विवाह आदि में स्थिया य गीत गाती थी, ता उन्मत्त गीत परपगण बरत प्रमाता तात थे।

य कित्य घात चार प्रज उठते, कोई भजन गुणगुनात हुए गाय भैंसा ही गाती थी। फिर एक विराम भरकर प्रताप पीत हुए प्रपाम ओटा बैठ जाता। तब तक प्रताप गन्त था, विराम तब उस पर। गर विरामे और ता प्रत भैंसा के आग। तब ग विद्वत् हुए ता धार विज्ञान। तब कता दिन विज्ञानता। ता गाव या तर किलक प्रप तथा एक ताता ताजा मरुडा, पात्रभर ताजा मरुता। तात पटा कर अत्र विज्ञान। गी का प्रकट लगात। कभरा ही काम ही विज्ञान दी, और चन रिए ठाकुर प्रताप के पास। एक श गाव में गपी रीति पर प्रचार किया, दोपटर का घर आण। गी का सादा भाजन। दात और मोटी मोटी रोटिया, साथ में पात्रभर धो। तातर गाण,

तीसरे पहर उठे, तो ठाकुर की चौपाल या तोर्मिनिव शर्मा की प्रशंसा की। ठाकुर ने जवान और आ जुटे, हुक्का गुग्गुडान और गण न लिखे। मन साँस पाया। ठाकुर, कट्टर, न रियायत न सशोधन। आस पास के दस पात्र गाया जा रहा था। पसल आदमियों की आलोचना हुई। जोरशोर से स्त्रीमन्त्रा, जिज्ञासु शर्मिष्ठा, माता चामुण्डा, मूर्तिपूजा पुराण और आद्वैत उद्गाण जाणतया साँस साँस और कहा पढाया जाय।

ठाकुर महावीरसिंह बड़े मस्त जीव थे। पूरे गाँव के भक्तों से साँस साँस चिन्ता से प्रतिक्रम। लेकिन पूरे फक्कड़, हाथ चमेगा खाती रहता। रात साँस साँस पूरी करने को कभी-कभी अद्भुत काम कर लातत थे। भरवा री। साँस साँस सूअर गंगा के पठार से मार लाए। उन्हे घाडे पर लाया और उन्हे मार दिया। मास पठ म बेच दिया। अथवा—भीग और मउना साँस साँस साँस साँस खट से हाथ चला बैठत थे। उनक पुत्र साँस—उन्हे मार दिया। पितापुत्र साँस साँस से स्नेह था। इसकी सगर्भ हुई लाहौर के राजा रणजीतसिंह जी साँस साँस साँस चढी तो ठाकुर ने गाँव भर के चमारो से बगार ला। एक भमारो साँस साँस साँस मार से उसका गभ गिर गया। तब ठाकुर आर पिताजी ने भमारो साँस साँस साँस तथा कुछ दशिया देकर मह बाद किया। पाम पाम के भमारो साँस साँस साँस मभोलियो को मागकर ढेर कर लिया। पर उदय गिरगिट साँस साँस साँस साँस न हो पाया। सगर्भ मे पाए रूपयो की गठरी तथा ठाकुर साँस साँस साँस साँस कर वे विलायत भाग गए बरिस्टरी पढने। आगे साँस साँस साँस साँस बरिस्टर उदयवीरसिंह हुए।

पण्डित होमनिवि शर्मा के परामश से पिताजी साँस साँस साँस साँस का विचार स्थिर किया। उस समय मरी आयु ८१ वर्ष की थी, जब साँस साँस बाद, जिला बुलदशहर में आये। कर्म में आ बगार साँस साँस साँस साँस होमनिवि शर्मा ने कहा था, कि कुतरीपक साँस साँस साँस साँस साँस रहना चाहिए। यही आकर मने असाभ्यास आरम्भ किया।

सिक दरावाद में पिताजी का प्रसिद्ध आयसमाजी उप साँस साँस साँस साँस शर्मा का साँसिन्व्य प्राप्त हुआ। उन्हे सब नाम शर्मा जो रानी थे। साँस साँस साँस आउत की दूकान करते थे। मोटा लण्ण हाथ से रखने। बीबी के साँस साँस देहात के लोग उनके व्यंग भाषण सुन कर साँस साँस साँस साँस साँस साँस मे पढता था। परन्तु पिताजी ने सरकार विधि यज्ञ साँस साँस साँस साँस साँस लगाया था। बहुत बुरा लगता था तब यह पढना। बरिस्टरी साँस साँस साँस साँस था। दात मुह में एक भी न था, पान तमाखू खाता, मह फाल कर मने साँस साँस

तो तमाखू गरिब था की गौशर ऊपर आती। आज तक उस पण्डित का भाव ने समान फटा हुआ मुँह मुझे था है। एक और आयसमाज के उपशक जी से पिताजी की भिन्नता था था, — जान पट पट उपाया था पिताजी न जत्रदस्ती वह मुझे समूचा रटा दिया था। और जत्र जहा कुछ आदमिया की भीड़ हानी, जल्सा हाता — ता पिताजी मुझे यज कर देा, यह रटा हुआ भाषण सुनाने को। प्रहृषा मुझे वह प्रिय था नगता, फिर अनुत्तमानता म गह न सकता था। बहुधा पिताजी ने सकंत पर भाषण पाठ न करन पर चपन भी पड जाती थी। फिर तो रात रात, हिचक्रिया लेते लेते पूरा भाषण सुनाया जाता था। मजा यह था कि सुनने वाले तत्र भी खुश होते थे।

पिताजी ग्रामपाग के गात्रों में 'नमस्त' के नाम से प्रसिद्ध थे। दूतान के आगे नमस्ते का साजनाट टगा रहता था। साथ ही १।७ हुक, ढेर सा तमाखू, और तयार आग। गात्र दहात के तागा को जहर कस्त्रे में जो भी काम होता — याह शादी के लिए बीज थे जु गरोदना हानी, जत्र तयार करान होते, या कोई दूसरा काम होता, माभाता मुझ गा करता हाता—तो मैं सीधे 'नम त' का दूतान पर पहुँचते। अपनी विराटरी का हुक्का सुनगाने, और अपनी जहरत रफा करके पर चोट जाते थे। मत्र तरह का दिवात और ठगी म तत्र कर।

पिताजी मुगलमान हरिजन ब्रह्मूत जो भी उनकी दूतान के आगे होकर गुजरता— 'नमस्त' रहता। आयसमाज का प्रचार ने उण्ड से भी करत था, और जुवान से भी। मभा में भाषण ता था थे, पर गात्र दहात में दम प्रीम जनो के बीच कडकती भाषा में जत्र मैं कुरीअिया और खूबिया के विपरीत चालते थे, दूर से उताओ आवाज को पहचानने गात्र गात्र आ जुतन थे। मुरारीनात शमा भी माटा-मोटा रगतन थे। परन्तु जब तत्र साट ही की जहरत पानी थी, तो पिताजी का साथ लतन थे। काम करने का एक उशरगर्ग मूर्तिग सत्रर मिती, कि एक चमारो मुमनमान बनाई जा रतो है। मुगलमान उम मर्जिर म न गण है। गुता तो गानी थाथ उठ ग— ता ता मरिजद म जा घुम, तमारो का भाग पर हाता म उठा मत्र पर खेन दिया और जम हवा म उता टुण साध दूतान पर ता प्रथाया। पत्रर मपत यह काम हो गया। मुगलमान मर्जिर म प्रहा थे, म समक ही नी, कि यह क्या हो गया, पोश ता ता करके दोड। तत्र तत्र ये अपन आसन पर पहुँच चुके थे। चमारो रा रतो था। भी जुड गई थी। पिताजा कट रहे थे नीता साल म पकग है। दो गौ कपया बना है। जो मानिब त्रन रपया दे जाय। एक दा दरतायज म दूक स निना नर सामन रग दी। मुगलमान गरमा रहथ पर मूटन म वे साटम न कर सकतन थे। दरतायज ता महज्र पत्रराजी थी, घण्ठे आध घण्ट म भीड फट गई। मुसलमान भी निराश लौट गण, ता वर लाकर चमारी का खाना दिया। पता पूछकर गाँव से चमार का वृत्त-

था। प्रसिद्ध भजनीय वागुणेश शर्मा और तजस्वी गायक तेजसिंह की तृतीया रात्रि थी। राज ही धूम धाम में पंचार उपवास और गान्ध्याय हात। गुरागीरान्त जमा विशेष पठित ता १५ पर ३३३ शम्भी। हम जानते राज मुगलमानों के जानका को पकड़कर रहते 'मान, पर गान्ध्याय। उमर 'ना' रहने पर गेट में मारपोट करके चम्पत हाते। उस समय मुझ प्रसिद्ध शम्भी प० तुलसीराम का मार्गित प्राप्त हुआ और प० कृपाराम का परिवर्तित दशनान रूप दखा। पीछे उही से मैं दशन पहे। उटागा के प० भीमसेन जी के भी सनातनो होने के बाद तभी दशन हुए, और उनके तथा श्री दशनानन्द जी के शास्त्रार्थों की हम विद्यार्थी खूब नमल उतारा करते थे।

माताजी

उनका नाम था नन्ही देवी। उह 'प्यार में मे अन्त तक अम्मा' ही कहता रहा और 'तू' कह कर बोलता रहा। न 'तुम' रहा न 'आप'। और वे मुझे जब स मैंने दोश सम्भाना —'भैया' कहती। सदा 'तुम' कह कर बोलती। कभी उहाने मुझे 'तू' रहा—यह याद नहीं आता। माना जी ममता की प्रतिमूर्ति थी। त्याग स्नेह और सहिष्णुता को मिलाकर जो एक श्रद्धा और आदर की देवी की स्तूपना की जा सकती है रही थी। वे पढी लिखी नहीं थी। पर वे अमल हीर की कनी थी। प्रकृति ने उन्हें जो लाओनेर आभा दी थी, उस पर कृत्रिम चमक करने का किसी कारीगर को अवसर ही नहीं मिला। कभी उसकी आश्चर्यकता भी प्रतीत नहीं हुई।

जब मेरा जन्म हुआ, तब पिताजी की आयु इस्तीम वष की और माताजी की सोलह वष की होगी। पिताजी का शरीर लोहे का था, माताजी का भी वैसा ही था। अपने जीवन के अन्तिम समय में वे निरंतर सोलह वष रोग शय्या पर रही, फिर भी नित्य के प्रयत्न काम निपटानी रही और ६८ वष को अन्तराश्रम जब उन्होंने इहलीला समाप्त की, तो उनका एक भी बान सफेद न था। मैं भी आज पसठ को पार कर रहा हूँ बाल मेरे भी सफेद हैं। दाँत भी मेरे ही हैं, जसे तीस वष पूरा थ।

माताजी अपनी गृहस्त्री का मंत्र काम स्वयं करती थी। पिताजी को भाँति में भी प्रातःकाल में उपा के उदय होने से पूर्व उठकर एकदम घर के कामों में लग जाती थी। उन दिनों गाँव में तो मीठे से घर का काम कराने की परिपाटी न थी। वे उठकर सप्रथम लमाम गाय भगा और उनके बच्चों को एक बार प्यार पुत्रकार आनी। उन पर हाथ फरनी और प्रत्येक का नाम ले के एक दो बाने कहती। इसके बाद मैं शौच में निवृत्त होकर दूध बिनाने बैठती, पाँच सात गाय भगों के दूध को वे अनायास ही अपने बनिष्ठ भुज्जरणों से पिनो पाने ली। इसके बाद घर आँगन पुटार कर ताज गोत्र में नीपकर निवृत्त होती। तब कही दिन निकलता। फिर वह स्नान कर सूय का अर्घ्य दे—भोजन बनाती, और तब कातने बैठती। सिर के बाल के समान

वारीक सूत में निकारती थी। उनके सूत को गाँव भरम भूम में बाँट दिया जाता था।
अभ्यास था, और कमठता उनका दिल में जात थी।

मेरे माता पिता दोनों आज से आठों सालों पहले समाप्त हो चुके हैं। मेरे
सहन की शैली से मजरा दूर, अपना जीवन के मरनाम में ही समाप्त हो चुके हैं।
की सम्पूर्ण सत्ता पिताजी में थी, और स्त्रीचक्र का सम्पूर्ण शासन माताजी में।

परिजन

पिताजी का नाम था श्री तेजराज ठाकुर, जिनका पिता का नाम था श्री
ठाकुर, उनके पिता—मर प्रपिता थे। मनसुख बाबा। मनसुख बाबा का जोरदार
व्यक्ति थे। उ होने गांव में बाग मन्दिर का तातावत जायास था। मनसुख बाबा
की कोई बह बटी दिन के प्रकाश में घर की इतना गंदा पर ही रखा था। मनसुख
कोई देख गइ तो बाबा भी लाठी लेकर उठा पर पहुँचकर जाता जाता था। मनसुख
गांव की बहुएँ उनके भय से सूर्यास्त में प्रथम ही भागाई में जाता था। मनसुख
द्वार पर काठ पड़ा रहता था, गांव में बिगाई का भय था। मनसुख बाबा मनसुख
पाव दे दिया। मृत्यु उनकी सत्तावन के दिनांक ७ - अगस्त १९०० में हुआ।
भग एक सौ सत्रह वर्ष की आयु में हुआ। मरने से ठीक सात सालों पहले
परिवार के सब लोग को अपनी मृत्यु निश्चिन्ता से था। मनसुख बाबा का नाम
लिखवाकर जुलाया था। बाग से एक आम का पत्र हटाकर गांव में मनसुख
बनवाया था। अपने एक भतीजे का सिरापर गाँव गया था। मनसुख बाबा
माथ लाना न भूते। मनसुख बाबा के कुन्वर का दिवंगत मनसुख बाबा का
दिया थी, तथा सगे सम्बन्धी कोटुम्बिक, अपना पुराण पाया दूर से से माताजी
स्त्री पुरुष मृत्यु समय बाबा के प्रस्थान का तमसा इशारा था।

निश्चित समय पर बाबा ने मरण स्वीकार किया। गाँव का नाम, गाँव नाम
पहना। जामा एक प्रकार का सूतीदार अंगरखा जाता था। मरण पर गाँव का नाम
पगडी बाबी, और अपन ज्येष्ठ पुत्र मनसुख बाबा नाम का नाम मनसुख नाम।
उच्चारण करने को रहा। वे दर तक अपने पता में सौरी पर ही मनसुख बाबा
हिमी सम्बन्धी को बुलाकर एकत्र बातें करता रहा। मनसुख बाबा का समय मनसुख
उहाने गाँव के गाबर से जमीन लिपटाई। मनसुख बाबा का नाम मनसुख नाम।
राम राम कहा और धीरे से धरती पर लटकाया। मनसुख बाबा का नाम मनसुख नाम।
लोग जोर से शख घड़ियात बजाते गये। कुन्वर नाम का नाम मनसुख नाम।

मनसुख बाबा का कारण भी बरा धूम धाम से हुआ। उनका मृत्युपत्र का
महत्व विवाह आदि के उत्सवों से भी अधिक होता था। मनसुख बाबा का नाम मनसुख नाम।
उत्तराधिकार का प्रदर्शन हो, कि सब सम्बन्धी जान जाय कि मृत पुरुष का पद उनका

पितारी वीर है। उसी से मृत्यु की क्रिया करती पत्नी थी—उसी से भोज के दिन पग भी जाती था, गांव में उस दिन मंत्रांतर रूप में मृत पुरुष की सम्पत्ति का स्वाामी-पत्नीगणित प्रवृत्त जाता था। बाबा का राज मंत्रांतर गात्र की ज्योत्स्ना हुई। ज्योत्स्ना ही मानपुत्रो की। मानपुत्र प्रना प्रनाकर वीरिया ग्राम तरता पर कोठो में उतार कर दण्ड दिए गए थे। आज तो बड़े बड़े श्रीमंत भी दालदा का प्रयोग भोजो में करते हैं—तब अमली प्री ही का प्रयोग होता था। बाहर गात्र की सातो जात का भोज हुआ था। उसके अनिर्दिष्ट बारह लोग तक के मंत्र चोराहा नाम पर आते जाते अतिथि मुसालिफर रोककर भोज में सम्मिलित किए गए थे। बाबा के वारज में रूपण का ढाई मन गेहूँ, और उदर की दान रूपण की डेढ़ मन का हिमाव में खरीदी गई थी। कच्चा तेज रूपये का पच्चीस सर, गुठ एक मन दस सर, और खान रूपय की द्वातीस सर खरीदी थी। ८७ हजार मनुष्यो का भोज हुआ था। भोज में पचास रूपया बाहर का कर्जा हो गया था—उसका चुकता मेर पितामह ने एक सत्ती चना चक्र कर लिया था। चना रूपये का साठे तीन मन बिका था। यह बहीखाता चिटठा पिताजी प्रहारा मुनाया करते थे। पितामह श्री भूपालसिंह ठाकुर चार भाई थे। एक भाई मालिफ थे, गांव भर की भूमि चराते थे। उनकी अपत्नी भूमि अन्नग थी। उसका पूरा दूध वे स्वयं पीते थे। दूसरे भाई गात्रखानी में मंत्रांतर थे—तत्पराह मित्रती थी डेढ़ रूपया माहवार। पर सरकारी आदमी होने से मंत्रांतर प्रहृत था। पितामह भूपालसिंह सीरे सादे ईश्वर भक्त आदमी थे। योग गात्र देन करते थे। किसी को जितन बीबी रूपय देते थे, उतनी गाठे उगरी मिरजई को तनी में लगा दते थे, तत्परा कर्म ठू देता था—उस देन देन पढ़ा हा जाता था। रूपया को भी पैसा मूल हा जाता था।

पिताजी का जन्म मंदर क गात्र मन् १८५७ में हुआ। उस समय जब चारा और दूधमा और भगदड मन्ती तो पितामह ग्रीच सात्र पर साठ मित्रांतर लाठी दिए घर का सात्र पर प्रहृत था। गात्र में तत्परा और तात्र प्रदूक तथा बत्तम भोरत था पर प्रजमासार की गली में रहता था। गात्र का हाथियार लाठी थी। गन्गा चना हा त्वारा काम समझा जाता था, लाठी चनाना मदानगी का। इस दही गात्र में प्रित ताती था, प्रहृत कर्म प्रस्तुतकद पैसा में खरीदी जाती थी—अन्न और खान रूपय तथा प्रहृत मन्त्र पर मन्ती त्वारा हा जाते थे। गात्र में प्रहृत, प्रहृत, मोची, धावो, भाई, र्जा गात्र भर की अपत्नी यत्रमाय प्री मन्त्रा पूर्ति करत था। पर उन्हा नकद पसे नता मित्रा था। पत्नी पर अन्न मित्रा था। प्राज्ञम और पैत्र प्र चिण भी यही प्रियम था। र्जा हाथ मन्ती रूप मीन था। बढ लाग जाम और मन्त्रमाधारण मिर-जई पहा था। प्रजामा हिन्दू नता पत्नीन था बढ मियौ लागी की पोशाक समझी जाती थी। भुगन्माता में श्रुमा हूत बहुत था। घर में यदि उम गिलास में पानी दिया

जाता था, तो उसे प्राण मारकर शूद्र किया जाता था। मायाजी ने भी एक एक हृद से प्राण भीतर नहीं आसने दे।

पिताजी चार भाग्यी मराम आगे पर जायेंगे। मायाजी ने भी ताया सुखराम ठाकुर अमातरण पुरण थे। उतनीना मराम मराम मराम हुआ था। वे सदन मरमे - 'मराम पाजी' मराम मराम मराम मराम बहुत शौक था, मरी ताई पेडा सान का शौक रगता था। मायाजी ने भी और पेडा—थोडा म थोडा यत्न स रगत थे। मायाजी ने भी मायाजी ने ताई मरी ८६ साल की आयु पाकर। ताना म मराम पागी। मायाजी ने भी बडा म डील था। चेहरा गुनाव क समात गतरा रगता था। मायाजी ने भी चारो ओर से फूती हुई थी। बडे बडे गम्भ ड। मराम मराम मराम मराम अनुहार थे। गले की खाल बहुत नीचे तक नही रगता थी। मायाजी ने भी समान थी। लडाकू चारा भाई थे। पर ताया जी मराम मराम मराम मराम थे—तो एकाध खून खच्चर अवश्य हा जाता था। ताना मराम मराम मराम मराम और समूची भस का दूध उनके लिए यत्न स ताई रगता था। मायाजी ने भी को देती, न बहुओ को हाथ लगान देती। आम सो पान म मायाजी मराम जाते पर निशान लगा आते थे, फिर उस पेड का आम ताई मराम मराम मराम मराम चौथे जाते, मन डेढ मन आम उतरजाण, टोसरा मरा, तायाजी ने भी चुस्की ली और फेका। क्या मजाल जा रग एक बद रग जाय। मायाजी ने भी आए तो ढाई सेर दूध अघौटा पिया और लग्गी ताया। मराम मराम मराम मराम डरते थे। नहाने से बचते थे। बचपन म हम उर मराम मराम मराम मराम कर तालाब मे कमर कमर जल मे ने गण, मराम मराम मराम मराम मराम झूकर कहा—पार हो गया पानी, दख। मराम मराम मराम मराम मराम है। वहाँ के रईस ठाकुर थे मराम मराम मराम मराम मराम मराम बहुत दिन धनौरा रहे। पिताजी बावना म उर मराम मराम मराम मराम बहुत मशहूर थी शेर के शिकार के लिए। उम रगिता सो मराम मराम मराम मराम बडे बडे अग्रज हाकिमो म हो गई थी। पिताजी हा मराम मराम मराम मराम और गगाजी ले गण। दोपहर तक हथिता के माय मराम मराम मराम मराम उनसे बहुत हिल गई थी। ठाकुर दिवाण थे। मायाजी ने भी मराम मराम मराम मराम अनूपशहर के पास एक रियासत दी 'गमा'। वहाँ को राना पून मराम, मराम मराम मराम औरत थी। बुढापे तक पद म रही, मराम मराम मराम मराम मराम मराम न सुना, मगर रमाव साये अमने पर। मराम मराम मराम मराम मराम का काम देखती थी। जमीदारी के उन दिना मराम मराम मराम मराम मराम

गारा ता माँसहार ।। ताया ताता था । अदानत रचहरी व अकृत म ये लाग
ता । प । ता । मा । ता । राता ह रनार थ, राती व प्ररीना कुरु कर रगा था,
पर प्राय इरग तर ठाहर । प्ररीता ता दो । एक तार राती का एक आदमी
व त ह माता म फग गया । राती व ताया का पुनाकर तटा अर, मुखराम, तुझे
प्रपत ठाकुर ता भी गयान ह ।

‘सरकार रगा चाहती है ?’

‘प्रतीरा कुरी पर चटा ह, अत्र तक तरह देती रही, अब नीनाम कराऊगी ।
पर व तह तो प्रतीरा द्रा द ।’

‘ग्रेट दीजिण सरकार, आप जो वट मै वही कळ ।’

‘ता देय, मरा आदमी कतल के मुकदमे म फँसा है, ठाकुर का हाकिम से मेल
ह, ठाकुर मरा आदमी छुटा दे ता मै धनीरा प्रोत् ।’

‘पक्की जमान ह सरकार ?’

‘मे तरे सामने रह तो चुकी ।’

‘तो मै ठाकुर से कहता हूँ ।’

‘पर फँसला वन ही सुनाया जायगा ।’

‘तब तो मुश्किल ह ।’

‘छूट भी तो साठ हजार की है, आज का दिन और सारी रात है, घोची कस
जाती है, अभी दौटा जा ।’

और ठाकुर ने आरी रात को अग्रज गेसन जज की सोठी पर हुललउ मचाया ।
साहर ने रगा म फगला लिरा चुका, मुनजिम को फासी होगी ।

‘ता उल्लू मरा धनीरा गया ।’

‘म्या राती प्रतीरा प्रोत् दगी ?’

‘उगी जमान ती ह ।’

‘पत्नी जान ह, मिया पकी हुई ?’

‘तल्लू, तम गाकुर ह, इरमन ह तो गया, जमान नहीं पलटते ।’

और फगला उर गया । मुनजिम रिटा हा गया । राती म धनीरा छोटा दिया ।
साठ हजार का सरपाई कर दो ।

फिलाजो तो जा । ता । घु चरी होकर बारात गाँव ह सिमान पर जा पहुँचा
थी । गाँव म ताजिण गिरन रह थ । तालखानिया का गाँव था । तालखानी अघरर
ठाकुर हता थ । या ता म आरी ररम हिन्दू और आधी ररम मुगनमानी होती
थी । फिर मा मुगनमान ता थ ही । ररमिण ताजियादारी गाँव म ठाठ से होती थी ।
घु चरी म निरुत्कर बारात को गाँव म बाहर निकान तायाजी एक नार्द के चबूतरे पर

खड़े होकर ताजियादारी दखन तरफ। मिथो व ताजिया पापुल पुरा वीर वीर वीर
सुखाराम ने फटा है। आजाज आगे नगी—मारा मारा।

ताजिग जमीन पर रख दिए गए। मुगलमारा वीर वीर वीर वीर वीर
खीची। लोगो न ताया स कटा— ग मार पर मारा वीर वीर वीर वीर
निकल जाओ। पर ताया वीर वीर वीर वीर वीर वीर वीर वीर
नहीं। फिर, मेरी मा क्या टुमारा मुभ पडा वीर वीर वीर वीर वीर
क थे पर लाठी पडी। ताया वीर वीर वीर वीर वीर वीर वीर वीर
पर पडता, उस आर का गान आर ता वीर वीर वीर वीर वीर वीर
आर सत्रह लाठिया डीन डीन कर नाड वीर वीर वीर वीर वीर वीर
पहुँच गई। ढाईसौ आदमी थे, जिनका गान वीर वीर वीर वीर वीर
लाठी चली कि मिर खिल गए। ताजिया वीर वीर वीर वीर वीर
छोड भाग खडे हुए। ताया न उम मारा मारा।

जमीन्दार को खबर मिली। वीर वीर वीर वीर वीर वीर वीर वीर
फूक डालना भारी फीजदारी घटना था। नवाब सा पता चिपटा वीर वीर वीर
मे आया। गाव के च्रो हुए गो पचाग आ मिया वीर वीर वीर वीर वीर
बैठा लिया। दिन भर बठाल रागा, फिर गाव पर वीर वीर वीर वीर
को गाव ने निश्चय किया आर दुभर वीर वीर वीर वीर वीर वीर
कर गाव के सिमाने पर रख ता जुआ पर वीर वीर वीर वीर वीर
नवाब साहज, कन को उम मर जाय या उम। वीर वीर वीर वीर वीर
रही है। वही कलमदान मगाकर नवाब वीर वीर वीर वीर वीर वीर

ऐसी जिन्दगी थी उाठी। ताई वीर वीर वीर वीर वीर वीर वीर
अनगिनत भुरियाँ पडी थी। रग गफ, रफ वीर वीर वीर वीर वीर
उतनी ही तेज तरार थी, पर इस्पति म पम पट्ट वीर वीर वीर वीर
बहुना उनके पुत्र उट गम म मरा वीर वीर वीर वीर वीर वीर
उनके अत समय म मी पास पहा वीर वीर वीर वीर वीर वीर
घिरी ऊव स्वास तो रती था, और मार वीर वीर वीर वीर वीर
उठी, और 'गई' कहकर ताया ने भी वीर वीर वीर वीर वीर

अक्षराभ्यास

चाँदोख से सिक दरानाद आ नगा स प व पि ता वीर वीर वीर
निकट रसूलपुर नामक एक छाते व गाँव म वीर वीर वीर वीर
४ या ५ वष की रही होगी। पर तु वहा ता इमार गुन आगा वीर
कच्ची दीवारो पर छप्पर का उसारा, पूव दिशा म घर का डार, वीर वीर वीर

यों ही गति का मपातन का ही कारण उत्पत्ति का मपातन भी गनी, पास पत्नीस
 क पर, तापात पाताता विद्यायां ही ममं प्रती स्मृति है। ममं विद्याम है
 सि मे यत्र यति रम भास मे पत्रे व पा, ता अत्रय तो अपत घर गोर सब गती कूचा
 हा पट तात न। जिम गा ता म तावा र न थ, ता भी मर मातस नया म ताजा है।
 पर गदम अतिर रमृति परपर ता विर अतिर है एक प्रपणित जी जि टोन मुझे
 अ तराभ्याग तरावा। सुम मर प भी तो आरति, जिमका नाम भूरा था, पर जो
 नामा तार था। श्रीर तासरा रजिया म्भजन, जिमक घर हम भाउ पर चना ज्वार
 या मर भुजा। तरा जा। जिमक पुण्य प्रताप से मन अतराभ्याम किया, जिन्हीने
 ममं अ तरारम्भ कराया, ता पुण्यशेखर पणित जी का नाम याद नहीं रहा, सम्भवत
 मगागम था। सूत्र याद है नउ उच्च व गौराग ब्राह्मण थे। द्रवना पतना शरीर था,
 पा ता मा मूच्छ था। उह चापान भी मुझे याद है, जहा पाठशाला लगती थी। गात्र के
 एकदम धार पर पश्चिम दिशा म, खूब ऊची कुर्मी। रूच्ची शीतार और त्रिना किवाडो
 ती निदरा। पाठशाला मा हमारी वही लगती थी। गात्र क बूढ़ ताग वही चारपाइयो
 पर प्रकर हक्का पानी भी पीत थ, एक गन्ध म उपना की आग सदा दगी रहती।
 पडौम म उर्य पिलती, रम पकता, गुठ बनता। उस गुड की गर मातुरी ता अब तक
 मेर तागा। म मे प्रती है। गम गम गुठ सान का स्वाद भी अभी जिह्वा पर है। पाठ
 शाला म हम खुती प्रती पर बठन। पणित जी नारियल टाय म नेकर चारपाई पर
 बैठो, परतक तमाचे पास तनी थी, और न तागज, काम, दावात। लकरी की तरितथों
 मा। जिम पर तम टिरमजी रगत तर ताी म या ताच क पाठ म रोतने थ। तर ती
 ता पातना मा पर ताता थी। उगम म चमत्तन तगता था। उस पर त्रिगा जाता था
 मरतण्ड ता तातम म। एक मिटा। कुत् म र्वा या मिट्टी घाल ती जाती थी।
 मिम म गिर। त्रान जिगा रिण जाने थ। मिर त त्रान यन्त म त्मारी माता जी
 त्मार रिण मरगा। तर ररता। ता उस प्रकार एक धेव ता भी र्वक हमार पढा
 त्रिगा ता ता। पिताजा पणि। जा तो त्वा पीस दल थ, यह याद तनी है। शायद
 ता या ता या ता र या ता मागि। तन व। ता, प्रति माग ती ता हमार घर सजाना था।
 त्म रि। मा ता ता मार। र ता त र र ग ती म री ता सजा ती। या नी मर तर आटा,
 साथ म ता त्मा और घा। पणि त जो सूत्र तीरी हृष्टि स मोर को तोलने जोखत
 थ। तम ता पर ता र तीरी। ता पणि त ता पर खुत ता थ। पणि त जी जो
 गुठ तरा ता मे पास पुत्र माता जी मे म्भ मर सूत्र त्मा अ था नी मर तर ती ता
 थ जाता था।

जिम रि। मर ता। त्मा मर गुठ, आर म पटि ती त्रार पाठशाला म गया — उह
 दि। भी मुझे अ ता तर, याद है। गुता था हि पणित जो मारत है, कान खीचत है,

रुम रटा था। रुम रुमर पाठशाळा की बात सुना रटा था। गंने 'श्री' पटा है, यह भी मेने रना रिया। उम रिन की यह 'श्री' जमे मर रवत की प्रत्यय उर मरम गई। र भी न भूनी जा गयी।

पर न आग गाणी ठप हा गई। पिताजी मुझे साथ ले जाकर पाठशाळा छोड़ आते और मे तमाग दिन तरनी गांद म निण, तथा सररुण्ड की कलम टाप म निण पठा रहता। निगता कुठ भी नही। पणितजी मेरी काफी रियायत करते थे। पिताजी ने यह दिया था कि मेरे साथ मारपीट न कर। हसीरत यह थी - कि मर साथ मार पीट करना खतरनाक बात भी थी। यथाकि जय म राना शुरू करता था, तो आसानी म मरा राना उद नगी होता था। राते रोते मरी साम उन्नट जाती थी। दो एर बार ता दम घुटने घुटा रट गया। आव पन्न गई। पिताजी ने य मय रात पणित जी को समझा दी थी। पणित जी तरट दत गए। पर मे तो निग ही नहा मरता था। पणित जी प्यार म, गत कर कटने - 'अर निगता गया नही।' ता मे मुत्रकिया लकर रहता- पिता जी निगग। पिता जी घर पर तरनी निगते, मुझे समझात, तो म इत्मीनान मे रैठा देखता। मरी यह मरगा थी कि पिताजी तरती लिखत है, तो अर मुझे लिखने की स्या आरय्यरता है। काफी दिन रीत जाने पर भी मे केवल ६ अरर सीग पाया। अ, आ, उ, ई, उ, उ। पर तु भून जाता इ, ई। तय म इ, ई रन्ते रहते द्विक्रिया लेकर रोते रोते गगा अमना के सागर बहा देता। पणित जी हेरान हारर रिगी बालक के साथ मुझे घर भिजवा देत। मगर आप दाद दाजिये कि रिना पणित जी के निशान किण अ आ, उ ऊ भी मेने तरनी पर बहुन दिन तर निगना नही सीगा। और जब सीगा तो एक ही दिन म पूर सोनट स्वर निग गया। सुनिण यह घटना भी। पणित जी सुबह ही तरुती पर सोलटो स्वर के निशान कर देते थे। रई बार सामने घुटवा दत थ। फिर तरुती पर निगने रा आदेण देकर इमरे उच्चा की आर प्यात दत थ। गीच गीच म मरी भी हात लगाते रहते थ। पर तु मरी गा की ता रही री री रहनी थी। हर मर जय म रता - निग, तय तर मर मेरा एक ही जयाय था, पिताजी निगग। अत म पणित जी एक बार गरीर तो उडे। और अपन मरितरण का सतुलन री रडे। उरता मर स लाल नाग आग तरके न री का लतरा-होई है, लाओ ता रररर की कम्मच, आज म उम चतुभज क बन री रात उधेउ गा। और पांच सात आनर दौर चने रररर की कम्मच लेने। रररर की कम्मच की करामात। चार बार म देग रुका था। उम, मरी गा की दौर नली, और जय तक कम्मच आई, मरी तरती भर रुगी थी। टडे मडे अरर, वापते राय, आसू मरी हृष्टि और द्विक्रिया स भरपूर रदन सहित अरर अरर कर उन अक्षरों रा अरररर उररररण। पणित जी ने शाबाशी दी, पीठ टोकी, पुचकारा, गोद मे उठाया, मगर इस लाड प्यार स भी मरा रोना तो

रुका नहीं। पण्डित जी उस दिन स्वयं मर्भे जाकर आए। मैं भी उनके साथ ही गई।
दिखाई, बधाइया दी। उस प्रकार मरा यशस्वली आरम्भ था। मैं भी
पण्डित जी का हमारे सामने ही दहाड़गाव हो गया। मर्भे जाया था। मैं
समान देह और डाली में बठकर वहाँ ग जाता मनामार्ति था।

ग्राम्य जीवन

मैं उस समय यद्यपि ८५ वर्ष की आयु का थी थी मर्भे जाया था। मैं
ग्राम्य की बहुत सी बातें मरी स्मृति में हैं। मैं जिया में मर्भे जाया था। मैं
का हसना, उसका भांड भाकना और जातू न मर्भे जाया था। मैं
है। मुझे वह बहुत प्यार करती थी। वह माँ मर्भे जाया था। मैं
से घण्टे बात करती थी। जब भी वह आती माँ जाया था। मैं
थी। उसका वह चौड़ी गाँठ लगा गरारदार पाँस और माँ जाया था। मैं
भी मैं नहीं भूला हूँ।

भूरा भरारा का घर हमारे घर के सामने था। मैं मर्भे जाया था। मैं
थी। हम दोनों खूब घुमतिन कर गत थे। मैं मर्भे जाया था। मैं
उम्र उसकी मुँह से अग्रिक थी। उमरी भी उम्र मर्भे जाया था। मैं
गहरा चिह्न जो मेरे स्मृति पत्र पर है, वह यही है—मैं मर्भे जाया था। मैं
आकृति उस की अब भी मरी दृष्टि में मर्भे जाया था। मैं
लाल चेहरा। बहुधा हमारे द्वार पर उठा मर्भे जाया था। मैं
बडी भारी भीड़ भाँट और कुछ नग टग के आदमा मर्भे जाया था। मैं
में घुस गए। गाँव भर उहाँ उन्हाँ हो गया। माँ जी मर्भे जाया था। मैं
कर दिया। उस दिन तीन सब्जी नगीत न मर्भे जाया था। मैं
कहा—भूरा चोर है। मिपाटी और मर्भे जाया था। मैं
छिपा। वही स मिपाटियाँ ही जान पाएगी। मैं मर्भे जाया था। मैं
भूरा को बाँध कर लेता, तो मैं मर्भे जाया था। मैं
क्या करोगे? और माता उहाँ मर्भे जाया था। मैं
सुनी। दूसरे दिन उमरी तभी जब मर्भे जाया था, तो माँ मर्भे जाया था। मैं
तो उमने मुझे मर्भे जाया था। मैं
माता जी ने फिर अभी न उम घर में घुसा दिया। मैं मर्भे जाया था। मैं
तक मैं उसके साथ बात करा की बात मर्भे जाया था। मैं
कर लेती थी, पर धीरे धीरे यह भी अग्रपण्डित मर्भे जाया था। मैं
की धाक मेरे मानस पटल पर गहरी मर्भे जाया था। मैं
मेरे मन में वही दृशत पदा हो जाती है, जो उस समय हो गई था। और मर्भे जाया था। मैं

तो सुपन में भी देग कर मैं उर जाता हूँ ।

पीपल का बहुत बड़ा पेड़ हमारे घर के सामने ही था । उसकी स्मृति का एक कारण यह भी है कि वह हमारा अभिसार स्थल था । वहाँ भूरा चोर की लडकी उसी तरह मरी ताऊ भाऊ में रहती, जैसे मैं । परन्तु माता मिलन नहीं देती थी, उसे घर में आने भी नहीं देती थी । शायद पिता जी ने भूरा के खिलाफ गवाही दी थी । उससे उस परिवार के साथ हमारा परिवार का सौख्य भाग नहीं रहा था । परन्तु मैं उत पर चढ़ कर, और वह नडकी उस पीपल के पड़ के नीचे आकर दो चार बात करत थे । कभी कभी दिन में अचक बर यह अभिसार सम्पन्न होता था । तायाजी गाँव में मेरे सबसे बड़े आनन्दन थे । शाम को तो वे नित्य मेरे पास आते—बहुधा एक पग गाँव । गाँव का बनिया कभी-कभी पेड़ा बनाता था । मैं भी बहुधा उनके पास जाता । उनकी पग में नेट कर रहानी सुनता । पर टिलचस्पी मेरी उनकी मग्रा में थी । बनी बनी गलगुच्छर उनसे मग्रा थी । जब वह रहानी कहते, तो मग्रे हिनती थी । उन मग्रे का हिनते उठते देग मुझे बग मजा आता था । कभी कभी मैं हाथों में पकड़ कर भी उनकी मग्रा का आनन्द लेता था । इस कर वह रहते—सुअर पाजो, यह क्या करता है । मेरा ख्याल है, मैं पिताजी से भी अधिक उनके ही पास रहने में खुश रहता था । जय कभी मैं उनके पास जाता, वे कुछ न कुछ मिठाई मुझे खिलाते थे । गाँव देहानो में मिठाई मदेव नहीं मिलती, पर तायाजी मेरे लिए उसका बंदोबस्त रखते थे ।

हमारे घर जो भगिन आती थी, वह बहुत बूढ़ी थी । हमारे घर में पायखाना मगरी पुरुष जगत में जाते थे । पर मेरे निग पाखाने का स्थान घर में बना था । दुर्गिया भगिन आकर वही स्थान साफ करती, फिर घर के गहर सटन को पुहारती । भूरा भाऊ ताऊ एक और रख, माता में बात करन देहलीज में बठ जाती । माताजी उमारी करती, दूर से ही पैरा पटना करती, वह आसीस देती । मरी बहुत बहुत प्रिया होती । उसकी गाँव मुझे बहुत पसन्द थी । माता जी के साथ वह जन जाते करती थी, तब मैं बड़े तबल उस की बात सुनता । फिर माताजी उम मेरे हाथों में तो राग या प्रनामि जानी । उन गीजों का पाकर वह मुझे बहुत आशीर्वाद देती । पीपल जीवत तो ताम ता करती । उम में वह खुश होता था और आज अभी तक पगठ का हाव पर भी त दुरस्त और सुअर शायद में उसी दुर्गिया भगिन के आशीर्वाद में हूँ ।

गाँव के किनारे एक शरीर तो रहती थी । उसके किनारे एक बाग था । ये दोनों मगु भों मरी स्मृति में हैं । तब में लोग नहाते थे— तब मैं बड़े चाव में उन्हा देखता था । परन्तु एक दिन, तब एक बाला था, हम दोनों ही खेलते उ उम तब के किनारे पहुँच गए । उस समय तब वार्ड भी आदमी न था । बालक ने मुझे बातों ही बातों में

ढकेल दिया, और भाग गया। उम्र भंगी लड़कियाँ तो माँ के साथ
पर है, जैसे अभी अभी मैं दूध खाती हूँ। मैं जानती हूँ कि मैंने
आ गई और मैं किसी तरह बचकर रहूँगी। मैंने सोचा कि मैं
वही यदि जल समाप्त हो जाता, तो यहाँ से भागकर चला जाऊँगी।
कौन देखता? नगरपालिका, सामान्य और अन्य काम ही था। मैंने सोचा कि मैं
फिर बहती नहर में पाच घण्टे का नगर जाया जाता है। मैंने सोचा कि मैं
चाहिए। सुनकर माता बहुत राह थी।

गाव में खाने पीने की चीजें तो तैयार ही थीं। मैंने सोचा कि मैं
पेड़ा और बताशा, वह भी मदद नहीं मिलता था। मैंने सोचा कि मैं
बाजार तो था ही नहीं। मेरी प्रिय यादें हैं। मैंने सोचा कि मैं
रोटी का टुकड़ा। जब भी भूख लगती, माता जाकर रोटी के टुकड़े
का लोदा रख कर खिलाती थी। पिताजी जो हमें खिलाते थे। माता पिता
गोद में बैठ कर नमकीन रोटी और घी खाते। मैंने सोचा कि मैं
जरा सयाना होकर स्वयं खाना खाता था। मैंने सोचा कि मैं
शुरू के एक दो ग्राम ही खा जाता था, बाकी तो खाना खाता था। मैंने
जीवन में आज तक कायम है। समय पर पर खूब खाता था। मैंने सोचा कि मैं
फाके मस्त रहना। आगे की सोचना तो सीमा ही थी। मैंने सोचा कि मैं
रोटी और ताजा की आज भी मेरा एक ही खाद्य है। मैंने सोचा कि मैं
ईश्वर की परवाह, न सत्जी तरफ़ागिया ही।

मिर्जापुर में

जिला तुल दशहर के अंतर्गत मिर्जापुर में मेरा जन्म हुआ। मैंने
और थाना है। कायस्थ और वनिया की प्रजा प्रजा है। मैंने सोचा कि मैं
वर्षों में बहुत कम उस कस्बे में जाकर गया है। मैंने सोचा कि मैं
ये, अब बनिए है। कायस्थ गरीबों में था। मैंने सोचा कि मैं
था। उस मुहल्ले ही में वी.पी.जी. आती थी। मैंने सोचा कि मैं
वसी हवेलिया कस्बे के दूर भाग में गयी थी। कायस्थ नारायण नगर की ओर
सम्पन्न जाति है। लोग कहते हैं कि मिर्जापुर में कायस्थों की जाति
तो समझता हूँ कि वामपि जाति तो कायस्थों की जाति है। मैंने सोचा कि मैं
और आर्थिक एवं सामाजिक स्तर में उनके समावेश, और कायस्थों की जाति
उनका उत्थान मुसलमानों के राज्य के उत्थान के साथ हुआ था। अर्थशास्त्र
भी उन्हीं विकास का पूरा अग्रसर मिला। कायस्थों में सबसे बड़ा गुण यह है कि
युग के साथ चलते रहे। सदैव उन्होंने आधुनिकता का प्रतिनिधि किया। मिर्जापुर

त्रिजय के बाद मुगलमाना व त्तर को पराजित कर जब भारत में प्रथम राज्य स्थापना की, तब नए और अपरिचित राज्य की व्यवस्था का भार उन पर पड़ा। आक्रमण करके राज्या का जीतना और प्राप्त हे किमी दश व भूभाग पर शासन करना दूसरी बात हे। त्तर का त्रिजय करने का अवसर या द्वाय, पर तु त्रिदशी य, न उम दश की भावा जानत य, न सम्झारा में परिचित य। उन दिनों हिन्दू राजाओं के राज्य में सर्वापरि राज्य त्तरभारा जा प्राद्वग्य ही होते य। राजा के बाद हिन्दू राज्य में प्राद्वग्या ही का मान होता था। उसमें मुगलमान त्रिजनाओं ने प्राद्वग्यो से राज्य के कारणों में मध्ययोग की माग की। यद्यपि त्तर का पता एक प्राद्वग्य कुतुबानी ही के कारण हुआ था। पर त्तर काय प्राद्वग्य या अत मुगलमाना को प्राद्वग्यो का मत्याग नहीं मित। सहयोग मित कायस्था का। प्राचीन तान के कायस्था भी राज्य त्तरभारी रहे हे। मस्त्रत ताता में कायस्था का उत्पन्न गत या ताता के रूप में किया गया हे। सो उस प्राविचारी अन्तर पर कायस्था का प्राद्वग्यो का पी के त्तर गये त्ते का मत्तर मित। त्तर में अताउद्दीन न प्राद्वग्यो के सामन पस्ताय रगा- त्रि त फारसी पर और राज्य का कारणों फारसी भावा में कर, परन्तु प्राद्वग्यो ने मन्त्र भावा पहना कीकार न किया, कीकार किया कायस्था ने। तब से मुगल राज्य के अत त्तर हिन्दु-गा में कायस्था ही मुगलमाना के बाद सर्वापरि राज्य त्तरभारी रहे और उनका बड़ा भारी सामृत्ति उत्थात हुआ। य फारसी के पूरे पणित जन, यद्वा तब, कि जिशान-समृत्तिर । गत में य मुगलमाना और हिन्दुओं के बीच ही करी बन गए। सम्य-सम्प न मुगलमाना राजगर्भा जात के समात उतात रहन रहन, स्वात पान हो गया। तब तब और जाति अतय्य ति दु र्ही।

अथवा अताउद्दीन के सामने पत नमान के कायस्था को उत्थान का अन्तर मित। गता में भी त्तर का प्रहत प्रपन्न था। एक प्रकार से यद्वा ही ता हिन्दु-वन य, प्राद्वग्य और अत्ताराग। यद्वा भी त्तर प्राद्वग्यो ने मता की याजता का ठारा किया, और अथवा पाठा धम विरुद्ध समझा। कायस्थो ने खूब उत्साह में मध्यजी पत्नी, गौर शगत व य त्तर मिया त्तरपनी के बड़े २ अत्तरददार जन गए। अथवा न उत राजा और गता का र कृपिताय द्तर उतक सामाजिक स्तर को भी उच्च कर दिया। त्तर में प्राद्वग्यो का भी द्वा समाज की शरण करत त्तरता त्याग दी, और कायस्था में ताता को, पर तब तब कायस्था जाति गमाल में सामाजिक और सामृत्तिर त्तर म प्राद्वग्यो के वरावर बनी जाति त्तरचुकी थी। केवल सामृत्तिर दृष्टि में ही वह प्राद्वग्यो में ताति थी। पर उसका कोई मृत्य ही नहा रहे गया था। उस प्रकार मुगलमाना और अथवा के राज्य में कायस्था का पूरा उत्थान विभाग हुआ।

सिद्ध त्तरा में उत दिना, अब में पताग त्तर पूत कायस्था खूब सम्पन्न य।

वहाँ मेरे स्कूल के सहपाठी अनेक राप्ता पाया था। भारता के अनेक राजा थे। मैं तो एक मजूर पिता का बालक था। मेरे पिता धन सम्पन्न नहीं थे। मैं बड़ा होकर चूट गई थी। एक छोटी सी दुकान में बैठकर सर्जफ हा सामानों का काम करता था। मैं धन सम्पन्नता का शायद कोई मापदण्ड था। परन्तु मैं भी अमीर बनना नहीं चाहता। मैंने अपने को एक गरीब बालक समझने लगा था, एक पतनशील मनुष्य। छोटा सा मकान, शायद आठ आना महीना भाड़े पर पिया जाता था। मैंने अंधेरी कोठरी अच्छी तरह याद है, जहाँ मेरे दादा जी आठ बजे तक सोते थे। रात को अंधेरी कोठरी में ऊपर एक सुला था। सुला में एक गरीब का कुछ किराया दोपहर को आती थी। उस किराया में धुन करके खा लिया था। मैं उनको देखने का बड़ा चाव था। इससे उस कोठरी में मरा गीर ना गया था। कोठरी सटर पटर सामानों से भरी रहती थी। पर माता का प्रसन्नता का नाम ही था। नवजात शिशु को देखने में वही जाता था। एक समय माता का शरीर भी मरा मे हम सब इकट्ठे सोते थे। वहाँ हमारे परिवार में एक भाई और दो बहनें हुई थी। सब एक साथ उसी कोठरी में सोते थे। बड़ा ही तन में पिया जाता था सोता रहा। बाद में किसी एक भाई के साथ। अनेक माता का तारसर्पिणी का मुझे बहुत दिन बाद मिला। उस समय की कीमत ५००) दिनांश पर पिया जाता था। परन्तु वर्षों तक घर में चर्चा होती रही—कि य. म. माता का नाम था। पच्चीस वर्ष बाद उसी गली में मैं एक मरणा गरीब।

मैं स्कूल में जाता कुरता पायजामा पहनकर। माता का प्रेम गरीबों के दार गबरून का होता था। परा का जूता भी आगे से आगे जाता था। मैंने आते थे कोट पहनकर, जिलायती जूता पहनकर, माता का माया पिता का नौकर उनका बस्ता लेकर आते और न जाता था। मैंने माता से बहुत प्रेम किया था। मेरा तो उनसे बात करने का भी साहस नहीं आता था। मैंने माता से बात करते—अब तबे करके। जब वे स्कूल में छोटी पाठशाला में बचकर पढ़ना से खडा खडा उठे देखता रहता। फिर धीरे धीरे आप ही राट जाता। बचपन में माता से खडा होकर खिडकियो से उनकी हथेलियाँ में भाँसता। मैंने माता से बहुत प्रेम करते, अतः पर पक्षे लटके रहते। मैंने ठाट ही था। मुझे भी भाँसता था। मैंने किसी कायस्थ सहपाठी के घर की झोड़ी लीपा में गया ती ली। किमा से मरा माता हुई ही नहीं। ताल मेल खाया ही नहीं। भला कहीं राजा भोज और बड़ी गौशु ली। बनियो के लडके भी मेरे सहपाठी थे। लेकिन सब भादू। आज उनमें मैं दिनांश का भी नाम नहीं जानता हूँ। कायस्थ लडको के बहुत नाम अब भी जानता हूँ। उनमें

एक थ शांतिस्वरूप, एक दरिद्र अनाथ बालक, जो आगे अपने जीवाम प्रसिद्ध वज्ञानिक सर एस० एम० भटनागर के नाम से प्रख्यात हुए । मेरे एक अथ कायस्थ सहपाठी, जिनके पिता राजाजी कहाने थे—तथा जिम महान मे वे रहते थ—वह राजा जी का उता रहता था, उनका लक जो वग्री म शुरू आते, सदा अवे तवे करके मुझसे ढोलने थ, कोई चानीम साल बाद जाने रहा से मुझे तलाश करते आ।—शराय के तरे मे युव । दांत सत्र दूरे हुए थ । चेहरा पिचका, बाल सफेद, मली कमीज, और गदा पायजामा । पुराना जूता । पुराना परिचय दिया—और कहा कि उनका पुत्र किसी चोरी या ऐसे ही अपराध म पकडा गया है । उसकी जमानत की आवश्यकता है । एक और कायस्थ सहपाठी है, जो बहुधा दिनी के गली-कूचा मे आचारागदीं करते दीख जाते ह । कभी वे भी सिक् द्रावाद मे बडे जमीदार के लक थ ।

अब मित्र-दरावाद बहुत कम जाता हूँ । यद्यपि यहाँ शाहदरे से वह तीस मील ही है, और दो घण्टे स भी कम म वहाँ पहुँचा जा सकता है, भाई सेमसन वहाँ रहते ह, पर मरा जाना तो वहा बरसो म होता है । अब तो वहाँ बनिया का बोलबाला है । सट्ट म, व्यापार म, उहाने खूब रुपया कमाया है । बडी-बडी हवेलियाँ खडी की है । कायस्थबाज उजग गया है । हवेलियाँ सूनी पची है । कुछ बह गइ ह । गनियोमे मजाटा है । मगर बनियो की मण्डियाँ आवाद है । फिर भी उनमे वह शान नही है । सूद और सट्ट का व्यापार विचित्र है, सूदखोरो की रईसी मे मनहूसियत है, कभी राजा कभी रक ।

हम लोग भी जिस मुहले मे रह रहे थे, वह बनियो का था । मुहल्ले मे जो सत्रमे धनीका घर था, वह एक कोठी बियाँ था । एक आँख से कानाँ, नाम था प्रसी-राम । स्वभ भर म “हाना बसी” के नाम से प्रसिद्ध । बग मनहूस आदमी था । उस की सूरत मुझे याद है । कभी मैंने उसे कपडे पहिने नही देया । एक मैली धोती कमर मे लपेटे एक लाठी हाथ मे लिए एक दो बार द्वार पर खडा देखा था । वह बहुत कम गृह द्वार स बाहर निकलता था । अपनी अधरी बैठक मे, जिसमे रास्ते क रख एक छोटी सी पिन्की थी, अकेला पडा रहता था । न सतान थी, न स्त्री । उमे उस बात का भय था, कि नही कोठिया का दन उसे पकडकर न ले जाय । एक दो बार मैंने देखा भी था, कोठिया का दल उसके द्वार पर धरना देकर बैठा हुआ । वे कह रहे थ—निकल, हमारे साथ चल, भीय माँग और खा, भगवान ने तुझे कोठी बनाया है । धन पर साप बनकर क्या बैठा है । अब तो कोठियो के दल वही भी देखने को नहीं मिलते, परन्तु उन दिनों तो पचास पत्राग कोठियो की टालियाँ निकलती थी । मैंने सुना था बसी हर बार कोठियो को कुछ दे दिना कर बनी कठिनाई से टालता था । मुना था—उसके पास नकर एक लाख रुपया था, सूद पर लेन देन करता था । न मुनीम, न गुमास्ता । प्रसिद्ध था जो कि उसके कडेमे फँगगया, उसका तीन पीढी तक निस्तार नही

होता था। कितने प्रनाथ प्रिनाया, म. तौ मरगो ही मया त र म. तौ तौ
 बना था। इसकी उहुत बहुत कानिया कसा म. तौ तौ तौ तौ म. तौ तौ
 पडोम ही मे था। जब उह मरा, तो तीरि त. तौ त. तौ त. तौ त. तौ त. तौ
 बना। विमान की तयारी का सामान वि. तौ मरगो त. तौ त. तौ त. तौ त. तौ
 दराबाद से दिल्ली तक जाने ता साया रा. त. तौ त. तौ त. तौ त. तौ त. तौ
 वे प्रतिदिन शाम को चतती थी। दापहर त. तौ त. तौ त. तौ त. तौ त. तौ
 मील चलकर। बनिए देहाती उहुवा उही मया त. तौ त. तौ त. तौ त. तौ त. तौ
 थी। नीचे माल भरा रहता था, ऊपर मुसाफिर। म. तौ त. तौ त. तौ त. तौ त. तौ
 हे। रजाई ओढकर जो सोए तो सुतह टि. तौ त. तौ त. तौ त. तौ त. तौ
 वम फस्ट क्लास सलून। हा रेल रात भर म. तौ त. तौ त. तौ त. तौ त. तौ
 ऊंटगाडी ३०, ३२ मील काटती थी। प्रगा क. तौ त. तौ त. तौ त. तौ त. तौ
 आया था। इसी से तीन दिन तगे। व. तौ त. तौ त. तौ त. तौ त. तौ
 उत्तराधिकारी बना था उमका बूटा भाई, और सा. तौ त. तौ त. तौ त. तौ त. तौ
 बगले बजा रहे थे। जत्र वह मरा, तो म. तौ त. तौ त. तौ त. तौ त. तौ
 उस पर तब कविता लिखी थी। उमरी तु. तौ त. तौ त. तौ त. तौ त. तौ
 'रे काने बसी, कसा विमान प्रनाया।

जब तक जीता रहा, नरम मे रहा, न भागा गया।

मरने पर यारा ने तेरा पसा खून लुटाया। त. तौ त. तौ त. तौ त. तौ त. तौ

खूब प्रसिद्ध हुआ यह मरा गीत रम. तौ त. तौ त. तौ त. तौ त. तौ त. तौ त. तौ
 स्त्रिया थी, जो फिराण पर घराम गाना त. तौ त. तौ त. तौ त. तौ त. तौ त. तौ त. तौ
 मुउन नामारण आदि अबसरा पर य. तौ त. तौ त. तौ त. तौ त. तौ त. तौ त. तौ
 शरीक होती थी। रात भर गाना च. तौ त. तौ त. तौ त. तौ त. तौ त. तौ त. तौ
 बहुया रतजगा हाता था। म. तौ त. तौ त. तौ त. तौ त. तौ त. तौ त. तौ त. तौ
 मडन आदि सस्तर, पिताजो आयममानो र. तौ त. तौ त. तौ त. तौ त. तौ त. तौ त. तौ
 खाना पीना यज्ञ ह. तौ त. तौ त. तौ त. तौ त. तौ त. तौ त. तौ त. तौ त. तौ
 होता था। सबसे प्रथम यह गीत र. तौ त. तौ त. तौ त. तौ त. तौ त. तौ त. तौ
 उ. तौ त. तौ त. तौ त. तौ त. तौ त. तौ त. तौ त. तौ त. तौ त. तौ त. तौ त. तौ
 उ. होने यह गीत गाया—ता स्त्रिया म. तौ त. तौ त. तौ त. तौ त. तौ त. तौ त. तौ
 फिर तो कस्त्र म. तौ त. तौ त. तौ त. तौ त. तौ त. तौ त. तौ त. तौ त. तौ
 तक काने बशो का यह गीत न. तौ त. तौ त. तौ त. तौ त. तौ त. तौ त. तौ त. तौ
 घर ही म. तौ त. तौ त. तौ त. तौ त. तौ त. तौ त. तौ त. तौ त. तौ त. तौ त. तौ
 यह गीत प्रचलित रहा। उस समय त. तौ त. तौ त. तौ त. तौ त. तौ त. तौ त. तौ

गहन में जो अन्तर था वह अज्ञानारण्य था। तत्र मे उस की नापतान नहीं जानता था।

कायस्थानां स्वस्वरी उत्तरी सामा पर था। दक्षिणी सामा पर खत्रीगण था, जो सब उजागर गीरान परा हुआ था। गत्तावन व विद्रोह व बाद मुगल सत्तन की समाप्ति पर भारा भारा दौलत जा खत्रिया और अग्रजाला न सचित की थी, उस लेकर व दिवनी मे पूत्र म मुर्शिदाबाद तर भाग कर उस गए थे। लखनऊ, बानपुर, बनारस म उनसे व बडे घराने स्थापित हुए, तभी उस स्वस्व मे खत्रीगण भी आबाद हुआ था। पर तु जित्ना, उन और आमदनी के अभाव से खत्रिया का अर्थ होता गया और अब उनका यह मुहला गीरान पडा था।

हमारे घर के सामने मुकदा पकौडिया का घर था। सुबह ही से उसकी भट्टी सुलगती। पकौडिया बनाता, दही आनता और तीसरे पहर त्रेचने बाजार ले जाता। उसकी सारी विद्या मैं बडे चात्र से देखता। उहुला मैं उसका पहिना ग्राहक होता। स्वभर म मशहर थी उसकी पकौडियाँ। पसे की आठ देता था। मुझे एक अथेला प्रतिदिन चाट खाने से मिनता था। जब भारी खेमसन त्रे हुए, ता दोना से एक पैसा। हम दोना बडी देर तक प्रतिदिन उस पसे का आग आवा उपयोग करने का सलाह मशरार करत, मैं ता प्राय सदैव ही पकौडी खाने से पत्न मे हाता। पकौडिया कस्ब मे तो क्या, आम पाम बैनी बढिया कही नहीं बनती थी। उसकी पकौडिया ऐसी बढिया बनती थी कि बाजार मे जाते ही घण्टे दो-घण्टे मे सत्र सत्तम हो जाती थी। तालिम सरगो का तेल और बढिया भेम का दही। उन दिनों सपरत का चलन भला रहा था। तित्य उगकी तारीगरी देखने रहने से मैं भी पकौडी बनाने म उस्ताद हो गया। अपने जीवन म मने सारे हि दुस्तान के शररा की पकी या ग्राउ हे, उचवन का शोक और रक्त म उमरा मिश्रण। जहा रही की पकौडिया दोग पनी, कि जी मचल गया। बिना राण रहा नहीं जाता। मगर यह चीज कहां ? वह स्वाद कटा ? मुझे जब तभी पकी यां खानी हाती हे, घर म जाता हूँ। तही मुकन्दा का नगखा, तहां स्यात। बहुला मित्रा को बताकर गिना चुता हूँ। मुकदा व लन्का म मर दगने ही दगत ३। मकान उगी कमाई म खरीद निण। म भी अपने को आज दती की पकी रिया जाता मे त्रि-गुण का एक उस्ताद या सा समझता हूँ। मुकदा पकी या क इस्त्र क दूगर आदमी भो यती अज्ञा करत थ। जात क थ नाग सारस्वत ब्राह्मण थ। दगर आदमी था परमाणो। मुकदा का भतीजा। यह ठाठ का खामचा लगाता था। दही त्रगा, पकी ता, पापण, कचरी साठ की पकी ती, पप ता, पानी क बनाश, परतु सत्र कुत्र अद्वितीय। आज तही तमोर नती ही सफा। त्रसे पापण न रहा अत्र दखन को मिनत है न खान को। पैस क दो। थात व बराबर बडे-बडे। त्रगा क समान इन्क, हाठ पर खत ता गायब। जिनका नाम पापण। आज भी म उन पापण का

स्वप्न देखता हूँ। न जाने क्या लगता था। परगना तो मेरी तरफ था। मैं तो न
 मगर था जनखा। जनखा तो जमात में जाता था। मैं तो न जाँसों के लोहरे
 बिरादरी होती थी। उधिया दूरी का हिस्सा परगना। मेरा भाग तो न था। न तो
 डडे मार मार कर रात रात गिताता था। तिल्य पपीता तो मेरा भाग तो न था।
 था। गुमल पूरा था। मा, बीती आरम्भय तो जमात में। मेरा भाग तो न था।
 ही खोमचा तयार करने में जुटत था। दाऊत तो पापा परगना मगर परगना तो
 रबड़ी शायद पाच पैसे की एक पात। परन्तु रबड़ी परगना तो न थी।
 स्वाद तो जुवान के सूक्ष्म तन्त्र में है। रंग तो भी जवानता में। परगना
 स्वयं अपने हाथों बनाता है। उसी ही स्वाद आता है। अपना लोहरे में न
 में न सीखपाया। खासकर उसका पापन ही नगना। रात तो रात ही तो न।
 चाची यत्न से मेरे लिए ले आती थी। माऊ का पार्थी यों जोर तो पाती प्यार तो
 कभी पापड भी। दही बडे पमें क चार मिताय। पाती न लता था। परगना
 का माल चाची मुफ्त दे जाती थी। परगना तो भी तो न। माऊ का माल
 वह बहुत प्यार करती था। उसका प्यार मैं सब ची। माऊ मेरी तो न।
 हूँ। सोते से जगाकर खिलाती थी।

इन दही की पकौड़ियाँ और पापन के आरिफ और एक ही तरह में
 अद्वितीय बनती थी, रेवडी। जाँसों में बनती थी। मेरी अपना जोर में लगे रहीं यों
 भी हिंदुस्तान के किसी शहर में नहीं पाए। आज के पाप और पार्थी यों तो न
 नहीं है, परन्तु रेवडी अब भी वसी ही बनती है। मुझे था तो नगना नगना
 था, सोठ छुहारा और जीरे हर का पात। हर का हर पाती पाती तो भी अब तो
 कुछ काल पूर्व तक सिक दरावाद जाता रहा, जब तक कि कल्याण पार्थीयों का
 होकर मर नहीं गया। खेद है कि उसका हर क पाती का इगत्या तो मेरी जान गयी।
 लेकिन पिछले दिनों तो आठ-आठ आने का पो जाता था, फिर नो भाग तो नगना
 था। सर शांतिस्वरूप भटनागर से उनका मुद्रा में उड़ती तो नगना पार्थीयों को
 पूछा—क्या कभी सिक दरावाद जात हो? तो बोले—जाता है जब तो पार्थी
 डिया खाने की हुमक उठती है। मेरा तो नगना मर गया। अब ब पार्थीयों
 कहाँ? तो बोले—हृदिग तो है—वही मिटा आता है। मेरा तो नगना मर
 घर आओ तो वैसी ही बनाकर खिलाऊँ? तो उधरे पडे। बोले—जब तक, तब
 आऊँ। परन्तु अफसोस, उस विश्वप्रियात बाल मित्र का वह शयन में तो नगना।
 अकस्मात् ही स्वग से उनका बुलावा आ गया। तब मैं मटर नो नगना नो बिरादरी
 बनती थी। अब तक भी, जब जब सिकन्दरावाद जाता है—मगर नो नगना नगना
 हूँ। परन्तु स्वाद उसमें भी वह नहीं। शायद जुवान धिम गई है।

चूँकि प्रिया भी मर लिए अतिमरणीय है। पौस में ही उसकी दुकान थी। प्राण ही थी। प्रह्लाद में उसकी दुकान में गोला खरीता। धी एक रूप का एक मेरु का उदाहरण था। दो सर आता था। सन् १९०० में पहिले की या लगभग १९०० की बात है। अत्र में पचपन वर्ष पूर्व की। आधी गतादी में भी अधिक पूर्व की। एक रूप का धी पर में आता था। उमका एक बड़ा सा डगा तो में बन्दर की भाँति उच्चर जाता था। उस रूपा ही खा जाता था। वाह, क्या मजदार था उस का स्वाद। आज मृत्युञ्जय अणु युग में मुझे खाता पच रहा है—वनस्पति डालडा। राम राम। चूँकि प्रिया ठूठ था। न जोरू न बच्च। दुबला पतला, काला, काना, मनसम और विविदिता। पत्थर की तरह आधी रात तक थडे पर जमा पठा रहता। एक मैत्री धोती कमर में तपट। चिडचिड कर बोलता था। में अघेने का भी सौदा खरीता, तो लभाव नेना कभी चूकता न था। लभाव हाता था—चन के बराबर गुड का एक टली। उस म ह में डान कर खुशी सौदा माता का ला देता था। चूँकि वनिया बहुत गिन बाद तक जिंदा रहा। विद्यार्थी जीवन के बाद भी, जब मैं विदेश से गिर दरगा आता—चूँकि से जरूर मिलता था। अपने जीवन में उसने रेन नहीं चढ़ी, और नितनी नहीं देखी। नित्य की दाल रोटी के अतिरिक्त अघेले की कोई चीज नहीं खाई थी। मिठाई उन दिना रूप का की ढाई सेर या पीने तीन सेर आती थी। बढिया धी की बनी। एसी ताजी और स्वादिष्ट मिथ्या कृ। जलबी तीन पैसे की आधा पाव। बहुधा ग्रीमारी से उठने पर माता एक सप्ताह तक मुझे आर पात्र जलेबिया खिलाती थी। कचौरी मिलती थी एक पैसे की एक। बहुत दिन बाद तक माता,—जब मैं अचानक घर पहुँचा—मर लिए चार पैसे की कचौरियाँ मगाता थी। सन १९१२ में जब मैं दिल्ली में रह रहा था, तब दिल्ली में भी पस की एक बढवी मिलती थी।

भूरिया ब्राह्मण भी निराला सौचा बनाता था। भूरिया शानदार बूढा ब्राह्मण था। ऊँची उठान, गौरव, बड़े बड सफ़द गलमुच्छे। रामलीला में रात्रग बनता था। सौदा धी का बताता था। सोठ हर की टिठिया और हर ता पाती तथा ऐसा ही राम गीजे। प्रमत्र गोज अत्र मने नहीं रेगी भी नहीं, राई भी नहीं, नमगा गी नहीं जाता। उनर रसा की याद करता हूँ और तरम कर रह जाता हूँ।

प्रोप्रमाद हम्पाउणर भो कर के दिनचरप फिगर थे। फायरखये तूळ इबनेपना आदमी, तेज ओगते और तेज चनत थे। अग्रजी दगाइयो की दुकान थी। पर राम गानर बं था। सूत्र चनतो थी प्रविष्टस। विविदिता बनता था और मुझे उन्ही को दगात्र हम्मा। रोगों में घर पर आधी फीस नहीं लत था। मुनाम आया कि ताशी हाथ में नकर चनत हुए, पदन। रोगों देगा—और दवा भजी। अब सुबह शाम दोना तक जय उधर से गुजरगे, रागी वा हात चान लगे। उम मम्हालगे। खूब

हृष्या कमाते थे। तब थ एक यात्रा शुरू हुई, पर सातभयक की... तरकारिया खाने का जोर था। पर तु जब बाइ नई तरफरो आया... के लिए रखती थी। अद्रीपगाद ताम हीरा... मागा दाम देने थे। एगा हो था... गबरून का कुरता पहिना, नग पात्र... के साथ आख मिचोनी या नरन्नी... किया। शाम हाते ही या ता म... के पास लेट कर कहानी सुनता था। और आवा दमडी का भी। दमला ही... मेन बहुवा खरीती है। पिता जो... जब जरूरत हानी-मं जत्नी... जाता। उनसे सौटा खरादता था।

पिता जी प्यार मुभे प्रहत करत थे।... के उत्पन्न होने पर भी मरे प्रति उनका... थी। मुझे याद नहीं-कि मै कभी माता पिता... एक बार मास्टर ने मुझे मारा था-या मुगा... मेरा पायजामा खराब हा गया था और... उमके बाद मै कभो स्कूल म गतो पिता। यत्रापि... मे कानो मे जडाऊ लौग पटनवा था। पिताजी न एक सल्मगितारे... पिताजी शादी सरफार म जय जान,...

चटशा की पहली

अरम्भ म म एर... हुआ। कस्य केण उजा... दोनो मे दो पणित... थी। पट के निण खोनी गई था। शुरू म एर... गई थी। उा दिना... आबाद था। वे सत्र पणियाँ ही... और १०।२० गज या इस म भी... कलाबत् लगाता था। गलियारा म...

या । पण १ जी पग ी गिर पर त्रा प्रत त मा अगस्य पटात थ । हाथ मे उनक एक
 १० मर रता मा, मरा मा १ पट ग तो १८ भी गाय तो जन्मा हा । प्रत्येक वात
 प्र प्रत स हो करने । जार जार स प । पहा प पी और पुस्तक के पास प्रोयो
 यती । प्रारम्भार आदा १ वत थ । पटिती प्रार पुस्तक मन यही मरीदी थी ।
 निरगा था उगो भाति तर्ती पर सधिया मिट्टी के पुटके से । तर्ती पर हिरमजी
 पोत कर रात स पापता था । तर्ती पाटा भा एक व ता थो । हिरमजी को दूर से
 गात कर तर्ती पर पाता जाता था, फिर सुग्रा कर प्रोटा जाता था । सरकडे की
 कनम प्रता ११ द्गरी कता थो । बडी मात्रा ती स कनम तराशी जाती थी । सत्र स
 पटिगा नया मभ्य पिष्ठ तार जो अत्र तत्र कही मरे व्यवहार म नही आया—कनम
 तराग' था । पणित जी चाहू वा कनम तराग' रहत थ । हम लोग भी आपस म चाहू
 को 'कनम तराग' रहते थ । चाहू हमारे पटन सामग्री वा एक आरश्यक अग था ।
 हमारी पाठआना वा अत्रिग समय तर्ती पाटन और कलम प्रनाम म तगता था ।
 कनम भी प्रनाता गत्र बधिया । यहा सरकडे जगत से गही लान पत्ते थ । एक पत्तार
 को तनी प्रजार म मरीगे जाती थी । कनम वा गत पाटा प्रार चीरगा प्री वारी
 ही प्रत थी । जत्र हम तर्ती निरगत थे— तो प्रडे यत्न से । लडका म तर्ती भरने
 हो होउ सी गग जाती थी । हिरमजी के बजाय हम राजन भी तख्नी पर पोतते
 थ, राजन सरगा क दिण वा प्रनाते थ । उन दिना प्ररा म हमारे सरसा के तेल के दिण
 ती जनते थ । दिण मिट्टी के हात थे । मिट्टी के तत्र वा प्रयोग उन दिना प्ररा से नही
 होग था । तत्र उसन हमारे घर म प्राथ मिया—मुभं याद नही । माता मरी नित्य
 रात हो गात समय फूत प्राम १ कतारा पर राजन पाग कर मरी आस म लगाती
 थी—य मुभं मगी भाति याद है । राजन आग म तगा कर स्याहो भरी उगवा वा
 गागा माथ पर तगाती थी । तत्र तगा म प्रनाम १ निण । मीगी दिन मिसो भी मारग
 याद मरी मियत कु अ सरात्र हाती ता तत्र उतारी जाती थी । १८ उम तर्त मि
 १७० तान मिरन मीर थाी साम्हर । मक वा उत्रिया—मुट्टी म भर कर मर मारा
 प्रार गीत प्रार म्हर १ मान मार म उ । मिर गा तो आग जनन तर्त म गाफ इनी
 थी । प्रम नजर उार गाा थी । १८ मुभं मगीभाति या है । ससम मर ताा पर मी
 श्वा था—कि उन मिर गा १ जनन ही मगा १ती आ ती थो । मिरगा वी मगा । आगा
 ी तत्र तगा था प्रार १८ उतर मई गगा प्रमाण था । तर्ती १८ म एक स्य
 राजन म और दूसरा स्य १ मजी म पातत थ—फिर उग घाट घाट कर मगात थ ।
 मगा घाटने १ राग उर गाा प्रजार म मितन थ । गाा १ गात श्वा मगा तत थ ।

गा पणित म लाग १८ और स्पष्टा सूब चलती थी । गाा ए म दूसर की
 सुराई रहते—एक दूसर १ ल वा वी ता पाउ करने, और कभी कभी गा नी गुफता भी

कर लेते थे। पर चटशाल ज्यादा आवाज भी दस पाणि न होती। चटशाली की पीठ के भी खर करते थे। बहुधा दादा भट्टाना के पिताजी और मेरी माँ के बीच सीखने में ज्यादा से ज्यादा शार मन्नाम सत्र प्रकार की बातें होती थीं। उनमें पण्डितों को प्रमत्तता हाना भी थी। जिसके तर्क जगान और मेरी माँ के बीच भी होते थे। अपने को विजयी समझना था। चटशाल में ज्यादातर मानव विद्या के विषयों की भाषा की अपेक्षा उन्हे पढ़ी पढ़ाड़े पढ़ाने पर अधिक ध्यान देना पड़ता था। मैं भी सोच सकता हूँ कि इन चटशाली मन्नाम्या का तात्पर्य क्या है। चटशाली का मतलब चटशाल के बनिया के मुहत्ते में बसे थे, तदाचिन्सी मन्नाम्या के विषय में चटशाल में भरती किया था। एक यह भी क्रम होगा कि मन्नाम्या के एक पाठ में यह लिखा है— व मुहासी बोलते। एक नन्ना पढ़ाड़े साण्ड अर्धु मन्नाम्या के एक स्वर से दुहराते। इस ही मुहासी कहते थे। मुम्माया है भाग्य के एक पाठ में पौना मवाया ब्याढा—आदि हम यत्नपूर्वक याद करण मन्नाम्या के विषय में सोचेंगे तो याद करने में कच्चा ही रहता, वोम से आगे याद कर ही न सके। मन्नाम्या के चटशाली पढ़ाड़े साङ्गोपाङ्ग तरुती पर लिखे जाते थे। निरवती बार भी और मेरी माँ का पन्नाम्या जो बोल कर नहीं लिखता था, उस समय जाता था निरवती रहता है या रहता है। उस पर ब्रेत पडती थी। पढ़ाड़े तरुती के एक और मन्नाम्या के अर्थ और शब्द, मन्नाम्या वाक्य लिखे जाते थे। अक्षर निखने को कनम मन्नाम्या के अर्थ और मन्नाम्या होता था। मोटी कनम हाने के कारण अक्षरों का मन्नाम्या, बत्तार अक्षर मन्नाम्या जाता था। शीघ्र आगे चलकर मुन्नाम्या निरवती में मुम्माया मन्नाम्या अक्षरों के अर्थ से सफलता से सुन्दर मन्नाम्या के अक्षर निख सके हैं। यो मन्नाम्या मन्नाम्या मन्नाम्या मन्नाम्या खराब है।

चटशाल में चिल्लीना था, न मेज कुर्सी। इन पण्डितों को एक अर्धु के टुकड़े पर बैठते थे, और हम सब सार्वलिक घूमने भगती पर। चटशाली में अक्षर भाङ्ग भी हम ही लगाना पड़ता था। पण्डित जो भी विद्या में मन्नाम्या पढ़ता था। आगे चलकर चित्रम पिताजी के लिए भी मन्नाम्या पढ़ा। पर मन्नाम्या में मुम्माया मन्नाम्या सवधा नफरत ही। इसे मैं अण्मात्रपूर्ण समझता था।

गणेशचतुर्थी की धूमधाम मन्नाम्या चटशाली में ही मन्नाम्या मन्नाम्या मन्नाम्या मन्नाम्या है। उन दिनों—भाद्रपद की गणेशचतुर्थी के दिन गुरु पूजा होती थी। तब एक मन्नाम्या तक बारी बारी से प्रत्येक लम्बे के घर पण्डित जो अक्षरों मन्नाम्या मन्नाम्या को लेकर जाते थे। बालकों के पास रगीत नुडे होता था। उसमें बच्चे धीरे से खरदते थे। बहुधा हमारा जलूम - टोल ताश बजा कर निरवती था। मन्नाम्या मन्नाम्या बच्चे बजाते थे। बहुधा तीन तीन चार चार की गुट्ट मन्नाम्या मन्नाम्या मन्नाम्या मन्नाम्या था।

बालक ने घर पहुँच कर उसके चौपट गाने और उड़ बजाते थे। तब पण्डित जी को टनिगा मिलती थी—फिर दूसरे घर जाता था। उस घर घर घूमने को चौपट लाना रहते थे। बालक आग्रह पूरा अपने घर चौपट ल जाते थे। पण्डित जी इस काम के लिए हमें उबसाते भी खर थे। उस मामले में भी दोनों पण्डितों में होना लगी रहती थी। कभी कभी रात में दानो दल मिन जाने तो आमने सामने टट कर उड़े बजाते, और चौपट गाने थे। ये चौपटियाँ पण्डित जी हम सिखाते थे। नेद है—इस समय याद नहीं है।

एक घटना चटशाला की याद है—उस दिन जायद कोई लौहार था, कदाचित् सकट। पण्डित जी छुट्टी नहीं टत थे। कुछ लकड़ों में एक षडयन्त्र किया। चटशाला में एक बोटरी थी, बोटरी में हमारी तरितिया आदि शाम को रग दी जाती थी। दो लकड़ों बोटरी में गण, वहाँ किमी बहाने पण्डित जी को जुनाया और फिर बाहर में मारन चढ़ा कर उड़ बंद कर दिया और मंत्र न म म रहा चो छुट्टी है। और हम लोग अपना अपना घर भाग गए। पता नहीं पण्डित जी का नाम में उस दिन किस तरह उदार हुआ। पर अगले दिन पिटाई हुई बहुतो की। मैंने अपराधियों का नाम बता दिया। कई दिन उसने कारण इन दुष्ट बानका में मुझे बताया। अंत में एक घटना ऐसी हुई कि यह चटशाला मुझे छोड़नी पड़ी।

जब चोरी करनी सीखी

मैंने म पाँचों में एक लडका था। आगु में मुझ में दया था। सभा में तब मैं आठ वर्ष का था, और बट पट्ट सोलह वर्ष का। रग उमरा गारा था पर आकृति पनी धिनौनी थी। हमता था ता गन्दे दाँत मुझे बड़े बुरे लगते थे। पाठशाला का कोई काम नहीं करता था, न पता निष्ठा था। पिटना खूब था, पर तु पिटना जाता था, और हमता जाता था। गरी कहानियाँ कहन का शौक था। पान पट्ट गाना था। रात बात में 'इनम् कसम' गाना था। वह मेरा गहरा दोस्त हो गया। दोस्ती का कारण यह हुआ कि उसका घर भी मेरे ही मुहुरते में था। दूसरे, बट मुझे पान मुफ्त गिनाना था और कभी-कभी अपने पैसा में चाट पसीया गिनाना था। रात में चटशाला में पानी पीने या लमुझका करने का प्रतीति कर कर फूटकर हो जाता, फिर साँक पर गालियाँ खेतता। प्रथम बट पाठशाला में जाकर जाकर ज्ञान में मुझे बुझाना, पर तु पाठशाला से भूटा जाता करक जा। का साहस मुझ में न था। छुट्टी के दिन बटघा बाजारों का खर जात कर पर पहुँचता। तब प्रथम में उगा का गायकीना। गाना य हातो, कि यह कृत्र मुझे गिनाना गिनाना। का दूना में पर का अर्थ में र गीता गरी दया था। एक पगारों में छोटी सी तुबान थी। दूगरी हलवाई की था। पगारी में बट अथले या पने का खरन खरीदता, और हलवाई से एक पैसा का बताता। खरीदा मान हम दोनों आता गाना खाते पीते थे। कुछ दिन बाद उमरा पैसा मुझे यमाकर दूकान-

दार से सौदा करीदो को गया। मैं शाम ७ बजे पास ही पाया। मैंने तब
 वह मुझे मे सत्कार लग भर टूट करिसे भाग्यो को ही। मैंने तब
 फर कर रना म स योग विनाकार मुझे समाप्त कर के चला गया। मैंने
 देते। पर एक दिन मैं उमका गीता य विना। मैंने तब ही। मैंने तब
 निकालने को मुह फरा मि उमा रना त ही। मैंने तब ही। मैंने तब
 पैसे रेजगारी उठाकर जम र टमा र ता। मैंने तब ही। मैंने तब
 कुछ मुझे नही मालूम था—फोनूडन था। मैंने तब ही। मैंने तब
 कर कहा—तू भी सीख न यह तपता। फिर मां र मां य। मैंने तब
 पमे गिये। तब से वह मुझे उगी कीजत स पता र ता। मैंने तब
 साहस न होता था। उनत यह भा रना मार ता। फिर तब ही। मैंने तब
 ले आया कर। पिताजी जटा रेजगारी रना। मैंने तब ही। मैंने तब
 कुछ तन का मेरा साहस तप ता था। तब से मां मां मारा म रना। मैंने तब
 रही। अत जवम मुझे उमका गीता म मां मां मां मां मां मां मां मां
 था। तब ही सफाई स निता र त मरुत मरुत मरुत मरुत मरुत मरुत मरुत
 लेता था। मुझे ता वह एक या दो दोपया ता रना र र र र र र र र
 न थी। पिता जी तो शाम को एक या दो र ता। फिर मां मां मां मां मां
 गारी के सामने यह रकम सतापजन र ता। मैंने तब ही। मैंने तब
 लगा और दूसरा दौर फ्र टाया, तब से मां मां रना। मैंने तब ही। मैंने तब
 ज्यादा तना चाहता टे ता तू भी यो र। अत एक दिन मरुत मरुत मरुत
 दोनो घूमते हुए हनमां ही हनमां पर पता। मैंने तब ही। मैंने तब
 ही हनमांदार सौग लो मुग म म म म म म म म म म म म म म
 हाथ मेरा तहा तक पहुँचा री—मैंने तब ही। मैंने तब ही। मैंने तब
 उलट गई, आहत मुतावर रनाकार म म फरा, मा मरा म म म म म म
 जा फाट कर राना प्रारम्भ किया। मैंने तब ही। मैंने तब ही। मैंने तब
 मेरी कला पण्ड पिता जी स पाग न ता। मैंने तब ही। मैंने तब ही। मैंने तब
 को ता रूत अत श्री कमा रना मिया। मैंने तब ही। मैंने तब ही। मैंने तब
 ये दोनो कई दिन स आत थ—त जात विनापाता रना। मैंने तब ही। मैंने तब
 क्षण मौन रहे। फिर तां ना म, लमारा विना म म म म म म म म म म
 अजी, मैं नुरुमान की कत र र र र र र र र र र र र र र र र र र र
 हटाओ। वह पढ़ा अतान है। मैं उम रूत जाता। मैंने तब ही। मैंने तब

तलवाड तो मुझे बही रना जो र र ता मया। मैंने तब ही। मैंने तब ही। मैंने तब
 भिस्किए लेता रहा। पिता जी त त मुझे परम दिया। मैंने तब ही। मैंने तब ही। मैंने तब

रु गया, तो कहा—तुम्हारी न, और उतरने दिया। उस में फिर उतर गया। उस दिन स राधा भी छुड़ी और उग आने की मांगत भी। पर उ उगवा घर ता पडोम ही म था। कहा बार उर सतन स तुनाता—पर फिर म उमर पाग न फटना। पीछे उग न के ता तुग हाव हुआ। पहला निगता हूट गया। घर म उ उ उ दिन तक गरहाजिर रता। उसका पूरा पाप बहत खीकता। अत म उस मृगी क दोर होने तग। उर पीता और अग्रिम चिनौता हा गया था। राह पाट म घर म वह दिन म कई बार जमीन पर गिर कर उटपटाने तगता। उसका वह भयानक रूप ता अब भी म याद करन पाप उठता हूँ और उग तग ता भी याद करते—जउ रजगारी म भरी मरी मुट्ठी ता हनपाई न अतन हाथ म कमकर पकटा था, और कहा था—या उ वत्माश ॥ ऊउ तिन पाद उर तका पनाफक घर से गायत हा गया और उसका उउ पता किताना न गया।

कसर म एक ही सरकारी स्कूल था। उसका टेम्मास्टर श्री ताननराम यत्रपि मटिन पाम ही थ, पर तु आज कन क डबन एमएण० पास म भी अग्रिम याग्य और तपुग। ते स्कूल म घर नौटने समय हमारी दुकान के आगे होकर और पिता जी का नमस्ते करने जाया करते थ। एक दिन उ हाने मुझे दुकान पर बैठ तगती निगत देखा ता मेरे पास नन आण और मेरी निमी तगती देखने तग। दयाकर बोत—तु मु दर निगत हो ? कहा पन्ने हो ?

पिता जी ता कहा—तनिया की तगशाना म पहता था। पर तु उता की गातत खरात है, उमी स उठा गया।

टेम्मास्टर साहब ने मेरी पीठ अपथपा कर कहा—उगे मर मर न म दारिगल स्या तकी करा दा ? ता न आण।

अगने दिन म सरकारी स्कूल म दारिगत हा गया। कुउ तिन तन पिता जी मुझे श्रेण आत और स्कूल सतन तां पर ला भी चा जात थ। फिर ता म यपा सारिथ्या क साथ ख न ता आा जात गया था। मरू १९०१ से १९०३ तक म उता पता रहा।

यहा यहा बात भी उततग पीय है कि मरू सारी क तुक य स पिताजी को बहुत सावसिक तय हुआ था। स्कूल म भरती करा क तात अगता मामूतो उ हाने आग समाज के परि तो का तुनाकर मरा यज्ञोपवीत करा दिया और मुझे शुड पवित्र एत गता आचरण करे ता प्रतिज्ञाण भो कर राड। यज्ञ तो अग्नि तन प्रतिज्ञाया की साधी है—यहा मुझे म ता गति तिरास दिता दिया गया।

उमी स्कूल म मुझे तीन अभिन्न गायी गित—श ॥ १ हरिश्चन्द्र, ॥ १ ॥ ५३ प। आगे चनकर छाटलाल तदीन बन, हरिश्चन्द्र मित्रिल इजीनियर, और शार्ति तम्यरूप भटनागर प्रसिद्ध जगद्विद्यान् वैज्ञानिक।

हरिदत्त

सिक द्रावाद के स्कूली जीवन तक मणि का पिता रोजीदार के रूप में ही
 के अतिरिक्त एक तीसरे बानस व भी मर जाया म पालक विता। मणि के पिता
 मोहल्ले में हमारा घर था। हमारे घर में तीसरा दरवाजा पक्का था। पर उस
 एक अच्छे ढंग में दुमजिजा बना हुआ था। मणि भरतवादी मणाली के मणि
 और आलीशान था। पर तु यह मरान दूसरे तार मणि का पिता का प्यारी बहन
 रहता था और दरवाजे पर ताता लगा रटा था। मणि का पिता मणि के पिता के
 द्वार में पड़े ताते को देखने का अभ्यस्त हो गया था। मणि के पिता का पिता
 दिल्ली में सरकारी नौकर थे, सपरिवार दिल्ली में ही रहते थे। मणि के पिता का
 तीन मकान तथा बाजार में भी पांच छोटे मकान थे। मणि के पिता का पिता
 हुई थी। उनकी मृत्यु के बाद उनके पत्र पर मणि के पिता का मणि के पिता का
 गए और वे सपरिवार वहीं रहने लगे। मणि का पिता का बाजार में ही मणि का
 थे, वह भी उही की थी और उसका मासिक किराया का मणि का पिता का
 मकान दुकानों के किराया का यही नियम था। मणि का पिता का बाजार में ही मणि का
 उनका किराया भी तीन चार रुपये मासिक था। तबसे ही मणि का पिता का
 स्वयं अथवा उनकी पत्नी के द्वारा मणि का पिता का पिता का पिता का पिता का
 रती और सबसे किराया उसी दर निया करती थी। मणि का पिता का पिता का
 की रसीद नहीं दी जाती थी। किराया मणि का पिता का पिता का पिता का पिता का
 किरायेदार लिख कर मकान मालिक को देता था, मणि का पिता का पिता का पिता का
 दार को देता और वह उसकी पुस्तक पर अपराध का किराया मणि का पिता का पिता का
 किराया एवत्र करत तब मणि का पिता का पिता का पिता का पिता का पिता का
 कनस्तर, खाते, दान आदि सामान मणि का पिता का पिता का पिता का पिता का
 प्रवास माहल भर में चढ़ान पतल और मणि का पिता का पिता का पिता का पिता का
 उन्हें उनके नाम से नहीं लिखनी था। मणि का पिता का पिता का पिता का पिता का

पर तु एक बार उनका एक दो प्रसंग का आसरे पर एक विचित्र कहानी में
 स्कूल से लौट रहा था। देखा— एक मकान सुना गया है और परमेश्वर का मणि का
 प्राणी नहीं बल्कि पाँच सात व्यक्ति शागुन है। दर पर का १२ १२ रूप का मणि का
 स्व सु दर स्वस्व बानस मणि का पिता का पिता का पिता का पिता का पिता का
 बालक की वंश भूषा मुचरित रूप में मणि का पिता का पिता का पिता का पिता का
 कोट उसे खूब फव रहा था और मणि पर फल बप थी। उसका मणि का पिता का
 जम गई। मैंने भी उसे गली में घुमते ही दण निया था और मणि का पिता का पिता का
 यह नव परिचित सु दर सुसंस्कृत बालक कौन है। ज्या ज्या में उसका समाप पट्टे का मणि

उमरी दृष्टि मेरी शोर से टटार नीचे को मुकती गयी और मेरी आँखें उसके समीप पँचो २ उस पर न जभी रह गयी । मैं पर की चहन पहन की एक भलक मात्र देखता हुआ अपना प्रसन्नता उगने में उठाए आग बग गया और चलकर अपने मकान के द्वार पर पहुँच गया । द्वार में उगने में पहिन में एक बार फिर छिपी नजर से उम बालक को देखना चाहा । क्या कि वह मेरी शोर ही देख रहा है । उसकी दृष्टि मुझे बुलाने का जम आमतोग द रती है ।

मकान में पहुँचते ही मैंने माता से पूछा—अम्मा आज 'दिल्ली वालों' के घर में हीन आया है ?

तुम्हारी चाची माई है । उनके सब बच्चे भी आए हैं । बाबू जी भी हैं ।

वह जानत उठी हा लटका है ?

हाँ उनका हा लटके और हा लटकिया है । सभी आए हैं ।

मैं उठता गया दिया । माता ने एक ताँड़ और एक गिलाम दूध भेरे आगे रख दिया । मैं ताँड़ छारता जाता था और दूध का घट भरता जाता था । परंतु गिलास में दूध का उगा ही उम था—वह मलाई और घी के तिलारो से भरा हुआ था । भस जो रहता थी ।

बाहर में माता में कटा—अम्मा, जाऊँ येन आऊँ ?

माता ने मनेत में मर मिर पर हाथ फेरकर कटा—'जा चाची के घर जा कर ल हें उमने कर था । आते ही तुम्ह पठने आई थी ।

मैं अपना पर के द्वार में पर बाहर उगने ही देगा—ये दो स्वच्छ आँगन मेरे द्वार ही आर उठा गी । मर पर रह गए । परन्तु मैंने साहस किया और मैं धीरे धीरे चलकर उस बावत में समीप आ गया । एक क्षण उसे देखा और फिर उम नमस्ते करके मुगुरगाता हुआ उमर घर में घुस गया । मन्दर आँगन में चाची और सब लोग बैठे उम में । रह था । ता ही तरकारी पानती जा रही थी और मोहलन की किसी स्त्री की आन सुन रही थी । मैंने उहाँ पहुँच कर सबको सम्भार किया ।

माता ने मुझे देखा ही उमर कटा—आओ मने, तुम्हारी तो बनी देर में मैं बाट देर रही हूँ । अरु प्रीति हई गया, बुनाया जरा ।

वह बावत मर पाछर ही पीछर आ रहा था । अपना नाम सुनकर वह माता के सम्मुख आगे प हाहा । माता ने उम देखकर वहा—हरीश, यही चतुरमन है, जिमकी मैं बनी तारीफ करती थी । अब उमके साथ तू मने ।

मैंने बालक का हाथ पकट लिया और बाहर चला आया ।

बाहर आकर मैंने हा तुम्हारा नाम हरीश है ।

उमने मन्वज्ज भाव से मिर हिनाकर कटा हरिश्चन्द्र ।

और मेरा नाम चतुरमेव है। ता ही मारा जा रहा है। फिर कौन से दिन
इतने दिनों से चाची के साथ गया चलो गाएँ ?

पढाई का नुस्खान जो होता।

किस बत्तास में पढने लो ?

आठवीं में।

अच्छा, आग्रो खेल।

चलो।

हम दोनों एक दूसरे का हाथ राम मराने के लिए रखे थे। राम मराने के
के हिस्से में खेलने का खुला मदान था और मदान की मराने के लिए
की ठेक थी, जहा सायफाल को मजबूत बनाया जाता और राम मराने के लिए
मदान के पास एक कब्र था। एक मरिचा था जिसके अंदर राम मराने के लिए
प्रायः सूना ही रहता था। तम जन हर ता पर गाएँ और राम मराने के लिए
बैठ कर बातें करने लगे।

यही हमारी प्रथम भट थी। फिर ता मराने का नाम पड़ा कि राम मराने
जादू के जोर से बीत गई। दिन जात मातुम जाता था।

उन दिनों भिक्करावाद में प्रियता को ता मराने का नाम पड़ा कि राम मराने
जाता था। बहुत दूर दूर में लोग भिक्करावाद की राम मराने के लिए
देखने आते थे। वहाँ रामलीला की मरिचा थी और राम मराने के लिए
सवारी सारे कस्बे में घूमकर वाडे पहुँचती थी। ता मराने में जो भिक्करावाद
रहती थी—वह थी 'घायल'। दो बार मराने की मरिचा थी और राम मराने के लिए
जाता और गलग रखा जाता था। एक तरफ पर ता मराने के लिए ता मराने के लिए
के आर पार, पेट के आर पार, आर ता मराने पार, जा ता मराने पार ता मराने के लिए
तलवारे 'लाग' लगाकर आर पार रखा जाता था पर ता मराने के लिए ता मराने के लिए
समय मुख्य मुख्य स्वानों पर ता मराने का नाम पड़ा कि राम मराने के लिए
व्यक्ति के हाथ में दम बीग पार उनील ना ता मराने के लिए ता मराने के लिए
की बाहू की नसा को उचाकर खान ता मराने का नाम पड़ा कि राम मराने के लिए
देता। सूआ आर पार हो जाता, पर तु ता मराने में ता मराने के लिए ता मराने के लिए
पडे। ता मराने का नाम पड़ा कि राम मराने के लिए ता मराने के लिए
और दशको की भी—घायल ता मराने का नाम पड़ा कि राम मराने के लिए
लगा कर आकाश का गुजा डालती थी। दाहर ता मराने का नाम पड़ा कि राम मराने के लिए
युद्ध होता था कि आकाश तीरा गला जाता था। दशको का नाम पड़ा कि राम मराने के लिए
रामचंद्र जी की जय के नारा से तान के पर्दे पर जाता था और पूरा ता मराने का नाम

रावण-गुद्ध होकर रावण मारा जाता था। मरने के बाद जब रावण की अर्धी निकलती थी, तब रावण उठकर ग्रामीण लोगों को हाथ में मनेत करके अपने पास बुलाने की यह चेष्टा करता था कि ग्रामीण हमने हँसते नोट पोट हो जाते थे।

मेरा ठाठगर दशहरा देवने चलन का निमात्रण मने हरीश को दिया। हरीश ने अपने घर में श्रीर मने अपने घर में बहा जाने की आज्ञा प्राप्त कर ली। मुझे उहा खच करने में त्रिण एक उरती और हरीश को एक चवची मिली। इन बीस दिना मे ही हम जाना घुन भिन गण ये कि वाडे म पहुँच कर हरीश ने कहा—चलो सेतां म ध्मे श्रीर बात कर। यहा भीड भाट म क्या करेगे ?

त्रिचित्र प्रप्रति का म हरीश। उमे गेल तमाशो मे कोई मिलचरपी न थी। वह प्राय अपने स्वन की बात सुनाया करता था। गणित क सूत्रो और उनके हल करने की गरन त्रिप्रिया की चर्चा उसका प्रिय त्रिपथ था। मैं गणित चर्चा को त्रिल्कुल भी पसंद नहीं करता था। मैं उसकी बाने मुनता तो सही पर शीत्र ही वातालाप की शारा से अपनी कप्रिता या रहानी सुना म बदल देना था। वह थोडी दर मुता और अत्रमर पातर फिर अपनी त्रात शुरू कर देता और मेरी धारा रफ जाती।

हरीश ने अपनी चवची की बहुत सी चीजें खरीदी। मिठाई, दही बडे, पकौडिया और मूगफनी। और मारको रुमाल मे बाध कर हम दोनो वाडे से कुछ दूर एक तालाब के किनारे पैर नटका कर बैठ गए।

उमने रुमान खोल कर कहा—लो खाओ।

मैने कहा—मेरे पास भी एक इकत्री है। मै भी इसका कुन्त्र गरीद लाऊ ?

उमने कहा—कहा है—देखू ?

इकत्री मैने जेब से निकानकर उसे देदी।

उमने इसकी अपनी जेब मे रखनी और कहा—इसे बाद मे राच करगे, पहले चवची ।। गत्या करो ।’

मैं उगती तोज गाने मे गगोच कर रहा था। पर तु ज्योही उमने मेरी और अपनी मर त्रि हृष्टि उठाई, मर, न गता। मान लगा। त्रि ग कर बात होती जाती थी और गा मी जाते थे।

उमने कहा—तुम, मैं न चना जाऊगा। छुट्टियां खत्म हो गईं।

मैने कहा—मरा और तथ म हो रह गया। मर मुत्र पर उदागी ला गई।

उमने दसक शरस्य त्रिगंर कर मरा हाथ पकड कर कहा—उ म क्या हाते हो ?

त तो तुम की पसंद करण कि मैं पडाई मे नागा वरूँ, न मै त पसंद करूँगा कि तुम पडाई न नागा रग। लक्ष्मी छुट्टियां म मै यही आता रहूगा और तुम ट टमगा याद करता रहूँगा।

हरीश चना गया और जीवन चला गया मजदूरी से। मैं भी चला गया।
होना चला गया। हरीश अपनी स्तूनी को पाया मजदूरी से। मैं भी चला गया।
और कलज में पढ़कर स्टडी उर्जातियोग राज म...। मैं भी चला गया।
यदिग पास की और पास होत ही उगामा म...। मैं भी चला गया।
गया। हरीश का और मेरा पर एक परि...। मैं भी चला गया।
मे ही मेरा भी विवाह हुआ और टरो...। मैं भी चला गया।
हरीश की पत्नी का शाति। हम दो...। मैं भी चला गया।

मे दिल्ली म वस गया था और...। मैं भी चला गया।
भोजन कर रहा था कि नौकर ने एक तार...। मैं भी चला गया।
हूँ २ कर बात कर रहा था। तार भन...। मैं भी चला गया।
पट थाली ठाड उठ खडा हुआ और फ...। मैं भी चला गया।
थी और होठ काप रह था। पनी...। मैं भी चला गया।
आखे भी भीग गड। हरीश का रगून...। मैं भी चला गया।
थी, यही उस तार म निरवा था। टाय...। मैं भी चला गया।
था कि मे प द्रह दिन बाद दिल्ली पहुँच रहा...। मैं भी चला गया।

शाति अत्र भी जीवित है। उभावर्जा...। मैं भी चला गया।
भी गीली हो जाती है। उमक मुग पर...। मैं भी चला गया।
और लाती है। उमे अपन यात्रा...। मैं भी चला गया।
करना पडा। बवव्य पत्रिता और मयम...। मैं भी चला गया।
की सस्वृति की गछना को गभार...। मैं भी चला गया।

हरीश क कुछ पत्र मर पास मुर्गी...। मैं भी चला गया।
चाहता हूँ, जिससे अत्र स पत्राग...। मैं भी चला गया।
भलक आप दरा मरु

प्रिय चतुर,

आज हालो है और...। मैं भी चला गया।
मुके यहाँ बहुत ही कम पा...। मैं भी चला गया।
नही हाती है। पर तु हालो आ...। मैं भी चला गया।
इस मौक पर सिंगे। पर तु कम सिराय...। मैं भी चला गया।
कुछ नही होगा। जब स ति म...। मैं भी चला गया।
परन्तु गिछली होली पर यत्रपि मरा...। मैं भी चला गया।
मिन्नते और प्राथना जिसको हि 'पयस्ट राज' म...। मैं भी चला गया।

तो ही मैं आनन्द पा रही, परन्तु प्राणों मित्रों उनकी याद के और कुछ बाकी नहीं है। मैं उन तब से आता हूँ जो ल्याहार मुगलपदक को कर सकता है।

तुम्हारे माता भी आया, तो मैं तो ताराग त्रय तारा और य प्रपि अत्र तुम मेरी याद उग पसार गे। मैं तो गन्तुं अस हि पठित करत थ पर तु तो भी मुझे आशा है, मुझमें ज्या। तुम्हारे भी याद न आया।

मुझे समझ आया था कि मैं गन्तुं तो है कि मेरे पास एक समय गुनाल तब भी नहीं थे जाकि हाथी। उपहार म भन्न सक। तुम्हारे मे मुझे अभी भी ऐसा माका नहीं मिन सता कि माभी सात्ति श्रीमति तारावती म स अभी भी हाथी राल सक्ता और न मुझ आया है कि अभी भी मुझे एमा मौजा मितेगा, क्याकि होनी प्रगरा रतना अलग रहा, अभी यह तक म प्राणी भी नहीं। गिवाय उसके कि उनकी शक्ति मन्त रही है और उसकी मा त्रा मुद्रत हूँ। जा कुछ भी म उनका त्रा म जानता हूँ—सत्र तुम, गरी कपा ता फन है। मैं तो त्रमे भी उनम उरता हूँ, क्याकि वह मरी वजी है और उनका सामो कुछ कहा जाय, प्रपता समभा जाय। पर तु शोर मुझ री त्रा न है कि उ तान आज तब अभी याद भी नहीं किया और न कभी किसी पत्र मे आशीवाद ही निखराया। बस मरी आपसे यही प्रार्थना हूँ कि यह पत्र पत्न के बाद जत्र आप उनसे पठिनी रफा मिन तो उनका म, मेरी तरफ से अच्छी तरह स लाल करद और फिर शो ग दिखला द। और बस फिर उसके बाद म मेरी नमस्त कह द।

रत्की २ माच १६

प्रिय चतुर,

जत्र कि मेरा गीना हुआ जसा कि मुझे ख्यात है मैं तुमसे पठित की तरह म नहीं मिन सता हूँ। मिलने के त्राते ता आप मुझे सिकू करावाद भी मिन थे और आगरे म भी पर तु उन मुनाकाला म और पठितिया म जमान आसमान हा फक है। पठित तुम मर त्रा म तरणक त्रात जानत थ। पर तु उग जरा भी त्रा न हमम त्रात मंद ता शिया है कि तुम यह नहीं जता सत्रत कि मैं पत्ने के गिण उनादावाद गया नता गया। जसा कि मैं आपसे कहा था, और श्री० ए० को बगर पूरा किण मै ग श्री स्या चना आया। यह दोना मत्रात आपने मुझसे पूछे थे, पर तु मैंने ३१६ ठीक उत्तर नहीं दिया था। उमक किण मैं आपका अपना मन्निस्त सा उतिहास लिखता हूँ।

अपनी नई जान्ति के पास तीन मत्रोत एतदम साथ रहत मे जा मुझ म कम जारी आई, उगन मरा दिल दिमाग शरार इत्यादि, तुरी तरह म हिला किण। मैं तन्दु ररती की हालत म अपा आपकी गरुणा मरोजा स बुरा समझता हूँ। जिस समय कि मैं मरठ म एफ० ए० का इम्तिहान दकर आया था—मैं हमशा मे ज्यादा बलवान था। मरठ म मैं बागायदा दो वष तक जिम तरह म पढता रहता था, वसे ही अपन शरीर

हरीश चला गया और जीवन डोरी को मजदूरी से बाय गया। समय यकीन होना चला गया। हरीश अपनी स्कूल की पढाई समाप्त करके फाजल म भरग, और कलज मे पढकर रुडकी इंजीनियरिंग कालेज मे। उसने सम्मान र गा र उजीनि यरिंग पास की और पास होत ही उसे बमा मे सरकारी - जीनियर बना र भज रिया गया। हरीश का और मेरा घर एक ही परिवार का घर बन गया था। पिता का तान मे ही मेरा भी विवाह हुआ और हरीश का भी। मेरी पत्नी का नाम मातारा और हरीश की पत्नी का शाति। हम दोनों एक दूसरे के त्रिवाह मे सम्मिलित रगे।

मै दिल्ली मे बस गया था और हरीश रगून मे। एक दिन दापहर ना तना भोजन कर रहा था कि नौकर ने एक तार लाकर मेरे हाथ मे रमा दिया। मे पत्नी मे हूस र कर बात कर रहा था। तार मेन खोला। पढत ही मेरी दृष्टि भूम गड। मे भट पट थाली छोड उठ खडा हुआ और फश पर गिरकर फफर उठा। आग मरी गीनी थी और होठ काप रहे थे। पत्नी ने मरी मुट्टी में से तार तार पढ रिया। उतरी आखे भी भीग गइ। हरीश की रगून मे एक पुल बनाते समय अकस्मात मृत्यु ता गई थी, यही उस तार मे लिखा था। हाय, एक सप्ताह पूव ही हरीश ना पत्र भुमं मिला था कि मे प द्रह दिन बाद दिल्ली पहुँच रहा हँ—शाति को तेन।

शाति अब भी जीवित है। उस तेजग्विनी वृद्धा को देखकर मरी आग अत्र भी गीली हो जाती है। उसके मुख पर कुछ भुरिया पत्ने लगी है, पर चेहर पर तज और लाली है। उसे अपने यौवन के प्रभात मे ही त्रह्यचयत्रत रग कर रै रव्य जा गहन करना पडा। वधव्य पवित्रता और सयम की एक ज्याति रखा है, जिमने भारतय तारी की सस्कृति की श्रष्टता को ससार मे अमुण्य रखा है।

हरीश के कुछ पत्र मेरे पास सुरक्षित हं जि ह मै आपनी उमतिण पना रना चाहता हूँ, जिससे अब से पचास वष पूव के विद्यार्थी जीवन आर प्रगाढ मनावा पत्र भलक आप देख सके—

रानी, टाली, १८१६

प्रिय चतुर,

आज होली है और कल दुलहड़ी। कव और बौन मा ल्यौगर ताता है मना मुझे यहा बहुत ही कम पता चलता है। तारग कि यहा पर मामूना त्वातारा ना छुी नही होती है। पर तु होती आई है, यह मुझे परगो स मालूम ट। सब पत्र रगर स इस मौके पर मिलगे। पर तु मुझे सिवाय उसक कि कुछ बी याद शा जायगी और कुछ नही होगा। जब स कि मने रगूल छोडा है, दिवाली रुभी भा घर ताती ना। परतु पिछली होली पर यद्यपि मेरा विचार घर जाने का नही था परतु तया उमती मिन्नते और प्राथना जिसको कि 'फेयरस्ट रोज' समझता हूँ, व्यथ जाती? घर पर मरी

होली पड़े आनन्द की कटी, परन्तु अबके सिवाय उनकी याद के और कुछ बाकी नहीं है। तीन मग तक मैं यहाँ नहीं भी त्योहार सुखपूर्वक रही कर सकता हूँ।

तुम्हारे साथ भी शायद होगी खेन तीसरा वष हागा और यद्यपि अब तुम मेरी याद उम प्रभार से नहीं कर सकते जम कि पहिले करते थे, पर तु तो भी मुझे आशा है, मुझसे ज्यादा तुम्हें वार्द भी याद न आयेगा।

मुझे मगप ज्यादा शोक इस बात का है कि मेरे पास इस समय गुलाल तक भी नहीं है जोकि होलो के उपहार में भेज सकूँ। दुर्भाग्य से मुझे कभी भी ऐसा माका नहीं मिल सका कि भाभी माहिजा श्रीमति तारावती से मैं कभी भी होली खेल सकता और न मुझे आशा है कि कभी भी मुझे ऐसा मौका मिलेगा, क्योंकि होली बगरा खेलना अलग रहा, कभी मग तक स बोनी भी नहीं। सिवाय इसके कि उनकी शकल मेने देगी हो और उसको भी बड़ी मुद्रत हुद। जो कुछ भी मैं उनके बारे में जानता हूँ—सब तुम्हारे कृपा का फल है। मैं तो बस भी उनसे डरता हूँ, क्योंकि वह मरी बडी है और उनके सामने कुछ कहना शायद बपृता समझा जाय। पर तु शोक मुझे इस बात का है कि उन्होंने आज तक कभी याद भी नहीं किया और न कभी किसी पत्र में आशीवाद ही लिखाया। बस मेरी आपसे यही प्रार्थना है कि यह पत्र पढने के बाद जब आप उनमें पहिली दफा मिल तो उनका मुह मेरी तरफ से अच्छी तरह से लाल करद और फिर शीशा दिखला द। और बस फिर उसके बाद मैं मेरी नमस्ते कह द।

रडकी २ मार्च १६

प्रिय चतुर,

जमसे कि मेरा गीना हुआ जसा कि मुझे रयात है मैं तुमसे पहिले की तरह से नहीं मिल सका हूँ। मिनत के वास्ते तो आप मुझे सिक दराबाद भी मिले थे और आगरे में भी पर तु उन मुनाझाता में और पहिलियां मैं जमीन आसमान का फक है। पहिले तुम मेरे बारे में हरणक बात जानते थे। पर तु उस जरा सी बात ने हमसे इतना भेद डाल दिया है कि तुम यह नहीं बता सकते कि मैं पढने के लिए डलाहावाद क्यों नहीं गया। जैसा कि मैंने आपसे कहा था, और बी० ए० को बगर पूरा किए मैं रडकी क्या चला आया। यह दौना सवाल आपने मुझसे पूछे थे, पर तु मेने कोई ठीक उत्तर नहीं दिया था। इसके लिए मैं आपको अपना सभित्त सा इतिहास लिखता हूँ।

अपनी नई शान्ति के पास तीन महीने एकदम साथ रहने से जो मुझ में कम-जोरी आई, उसने मेरा दिल दिमाग शरीर इत्यादि बुरी तरह से हिला दिए। मैं तन्दु-रुस्ती की हालत में अपने आपको सकडो मरीजो से बुरा समझता हूँ। जिस समय कि मैं मेरठ से एफ० ए० का इम्तिहान देकर आया था—मैं हमेशा से ज्यादा बलवान था। मेरठ में मैं बाकायदा दो वष तक जिस तरह से पढता रहता था, वैसे ही अपने शरीर

का भी उतना ही ध्यान रखता था। परन्तु तीन महीने की छुट्टी का न्योत्रन आया हुआ है, उसने मुझे सवदा के लिए होशियार कर दिया है। मेरा सारा धन भी यहाँ एफ० ए० में फस्ट आया था। इसलिए जबकि मैं दूसरा महीना की मुश्किल में मिला। कारण कि मेरा इरादा इलाहाबाद आने का था और मैं वही बी० एस० सी० में रखना चाहते थे। प्रिन्सिपल ने मुझे यह सलाह दी कि वजीफा देवेगे, तुम यहाँ पढ़ो। परन्तु मैंने एक न सुनी और मैं यहाँ आया।

इलाहाबाद में मेरी फीस वगैरा सब रखना पड़ा। मैंने सोचा कि मैं यहाँ आया था कि मैं वहाँ वाकिल हो जाऊँगा, परन्तु वहाँ जाकर मुझे पता चला कि मुझे पहले वहाँ काफी अजिया आ गई थी और इसलिए मैं वहाँ नहीं आया। मेरी फीस वहाँ गलती से रख ली गई थी। इलाहाबाद में मैंने एक धक्के खाने पड़े। इलाहाबाद में एम० सी० कानिज में भी मैंने इम्तिहान हुआ करता था। वही सब कालिजों के नाम से जाना जाता है। जो लोग वहाँ आने वाले को इसमें बड़ा फायदा रहता था। इसलिए मैं भी वहाँ आया।

इलाहाबाद से टक्कर खाकर मैं आगरा आया। जहाँ मैंने अपना कालिज बना लिया। वहाँ पर मेरी जान पहिचान के बहुतरे निबन्धन आया। जो लोग मेरे नाम से भरती हो गया। मुझे कुछ भी तकलाफ नहीं उठाना पड़ा।

रुडकी आने का इरादा मेरा पहिल ही से था। मैंने सोचा कि मैं यहाँ जाकर जबरदस्त होता है। जितने इम्तिहान देने आते हैं, उनमें मैं भी शामिल हो जाता हूँ। यहाँ पर आने के लिए पहिले से कोई न कोई परीक्षा उन्मत्त महीना में ही आनी चाहिए कि यहाँ के सरक्यूलर में है। बी० एस० सी० में पास होने का नाम है। जो लोग कल में अच्छे अच्छे गिर जाते हैं। उस सारा जो बी० एस० सी० में पास होना चाहते हैं, पिछले साल फेल हो गया था। सन् १९१३ में जितना भी परीक्षा में आया, उसमें मैं भी पास हुए थे, उन बारहों के बारहों ने बी० एस० सी० में पास होने का नाम नहीं ले सके। एफ० ए० में जो दूसरे नम्बर पर था, यहाँ पर मैं भी आया। मैंने सोचा कि ज्यादा का कोई रुडकी कालिज में नहीं आ सकता और १६ महीने में मैं भी पास नहीं कर सकता। यानी २० से अक्टूबर आयु ज्यादा होना चाहिए। मैंने सोचा कि मैंने इम्तिहान दे। इन सब बातों को सोचते हुए मैंने जिला पब्लिक इन्सपेक्शन में परीक्षा दिसम्बर में पास की और फिर यहाँ आया, क्योंकि मैंने सोचा कि मैंने पास हो गया था। सौभाग्य से यहाँ पर मेरा दूसरा नम्बर आया। मैंने सोचा कि मैंने एक बढकर लडका मौजूद है। यहाँ २० एम० सी० में जो परीक्षा थी, मैंने दूसरा नम्बर आया है, दोनो है। पंजाब यूनिवर्सिटी में जो दूसरा नम्बर बी० एस० सी० में आया वह मौजूद है। जो पिछले साल फस्ट आया है—वह दूसरा नम्बर मैंने

मित्रने वालो मे है । यहा हर मात ही ऐमे ऐमे नडके आते है, और यदि मैं इस साल गयिन म आ गया तो जरूरी नही कि अगरे मात भी आ जाता । यह सत्र बात सोचते हुण मं यग आ गया ह ।

य । पर कार्तिक म नाम पत्रन रहता है और उमा कारण मं किमी तो भी फुलन नही मिनती हे । मुझ म भी उतना अतर आ गया है कि पहिन म पत्रो का उत्तर दे लिया करना था और पर तो प्रति सप्ताह मे कम से कम एक पत्र अनश्य भेजना था । पर तु अत्र जिगता पत्र आता हे रखा रहता हे, उत्तर लिखने के लिए समय मितना कठिन होता हे और पर ११ दिन म पत्र भेजन लगा ह ।

उम पत्र तो लिये आज ७ दिन जीत गण हागे । परमा विचार किया था कि यह पत्र अनश्य गान तथा ताकि हानी व फिन मिल जाता । परन्तु शोन कि तब भी नही गान सका । तब द्र व त्रिमाह मे म नही आ सकता ह । मुझे लिखना बहुत था पर तु न समय है न पत्र म जग । मेरा श्तिहान यहा पर जून म हागा और कही १५ जुलाई मे हमारी छुट्टी होगी । उन तीन महीना की छुट्टिया म तुमसे पत्र व्यवहार नकर रखा ।

प्रियतर चतुर,

रुट्टी, ६ जून १९१६ ।

स्वप्न तो मैं बटुने देवे है पर उनम मे दो का मुझ पर बडा भारी अमर हुआ है । पहिना स्वप्न उम दिन था जत्रि मेरी आजादी छीनी गई थी और मुझ को आयु भर व विण शांति का साथी बनाया गया था । फरो से लौटकर मैं सबर ४ बजे आया था । आत ही म गो गया । सबर उठकर रात की सब बात याद याने लगी । उम समय सब कुछ स्थान का मानूस होता था । मैं अपने दिन ही दिल पत्रतान लगा क्याकि (१) मेरी स्वप्न का छिन्न गई । (२) मैं उतनी जल्दी त्रिमाह करना नही चाहता था । () मैं त्रिमाह त्रिमाह करना नही चाहता था और यही बात मने माता जी मे कही मो थी । सबर उठकर मेरी बी अजब तागत थी गौर मे खयाल कर रहा था कि मैं रात का केपन स्वप्न ही श्या है और अभी मे स्वप्न म ही जनयाने म प्रश हुआ है । उम स्वप्न का अमर थोडा ही समय रहा, क्याकि फौरन ही उठकर मैं तुम पर पास उपर गया और त्रि जाकर सब कुछ भूल गया ।

तुमरे स्वप्न का विण यहा ही अपनी थोडी सी तवारीग दे देना जरूरी है । इस त्रिमाह म हमारी किमत का फैसला हमारी त्तास ही पोजीशन पर है । पहने क बाद उमी क गुतामिक तासरी गिनती है । यही कारण है कि यहा पर आत ही तन्तुस्ती तगीरा सत्र चांशा का खयाल छोरकर काम करत है । यहा पर साल भर म दा श्तिहान होने है । एक फरवरी म का फरवरी म, दूसरा फरवरी म का जून म । फरवरी म जत्र परीक्षा हुई थी, मेरा नम्बर क्लाम मे १० स १३ हो गया । इसका कारण यह था कि

मिलने वालो मे है । यहा हर साल ही ऐसे ऐसे लडके आते है, और यदि मैं इस साल दाखिले मे आ गया तो जरूरी नहीं कि अगले साल भी आ जाता । यह सब बातें सोचते हुए मैं यहा आ गया हूँ ।

यहां पर कालिज मे काम बहुत रहता है और इसी कारण से किमी को भी फुमत नहीं मिलनी है । मुझ मे भी इतना अंतर आ गया है कि पहिले मैं पत्रो का उत्तर दे दिया करता था और घर को प्रति सप्ताह मे कम से कम एक पत्र अवश्य भेजता था । पर तु अब जिसका पत्र आता है, रखा रहता है, उत्तर लिखने के लिए समय मिलना कठिन होता है और घर १५ दिन मे पत्र भेजने लगा हूँ ।

इस पत्र को लिखे आज ७ दिन बीत गए होंगे । परसो विचार किया था कि यह पत्र अवश्य डाल दूंगा ताकि होली के दिन मिल जाता । परन्तु शोक कि तब भी नहीं डाल सका । देवे द्र व विवाह मे मैं नहीं आ सकता हू । मुझे लिखना बहुत या परतु न समय है, न पत्र मे जगह । मेरा इम्तिहान यहा पर जून मे होगा और कही १५ जुलाई से हमारी छुट्टी होगी । उन तीन महीनो की छुट्टियो मे तुमसे पत्र व्यवहार बन्द रहेगा ।

प्रियवर चतुर,

रडकी, ९ जून १९१६ ।

स्वप्न तो मैंने बहुतेरे देखे हैं पर उनमे से दो का मुझ पर बडा भारी असर हुआ है । पहिला स्वप्न उस दिन था जबकि मेरी आज्ञादी छीनी गई थी और मुझ को आयु भर के लिए शाति का साथी बनाया गया था । फेरो से लौटकर मैं सवेरे ४ बजे आया था । आते ही मे सो गया । सवेरे उठकर रात की सब बातें याद आने लगी । उस समय सब कुछ स्वप्न सा मालूम होता था । मैं अपने दिल ही दिल पछताने लगा क्योकि (१) मेरी स्वतन्त्रता छिन गई । (२) मैं इतनी जल्दी विवाह करना नहीं चाहता था । (३) मैं डिबाई विवाह कराना नहीं चाहता था और यही बात मैंने माता जी से कही भी थी । सवेरे उठकर मेरी बडी अजब हालत थी और मैं खयाल कर रहा था कि मैंने रात को केवल स्वप्न ही देखा है और अभी मैं स्वप्न मे ही जनवासे मे बैठा हुआ हूँ । इस स्वप्न का असर थोडे ही समय रहा, क्योकि फौरन ही उठकर मैं तुम्हारे पास ऊपर गया और वहा जाकर सब कुछ भूल गया ।

दूसरे स्वप्न के लिए यहाँ की अपनी थोडी सी तवारीख दे देना जरूरी है । इस कालिज मे हमारी किस्मत का फैसला हमारी क्लास की पोजीशन पर है । पढने के बाद उसी के मुताबिक नौकरी मिलती है । यही कारण है कि यहाँ पर आते ही त दुस्ती वगैरा सब चीजो का रयाल छोडकर काम करते है । यहा पर साल भर मे दो इम्तिहान होते है । एक फस्ट टम का फरवरी मे, दूसरा सेकेन्ड टम का जून मे । फरवरी मे जब परीक्षा हुई थी, मेरा नम्बर क्लास मे १० से १३ हो गया । इसका कारण यह था कि

का भी उतना ही ध्यान रखता था। परन्तु तीन महीने की छुट्टी का जो मुझे तजुर्बा हुआ है, उसने मुझे सवदा के लिए होशियार कर दिया है। मेरठ कालिज से मैं अपने यहाँ एफ० ए० में फस्ट आया था। इसलिए जबकि मैं मेरठ गया, मुझे सॉर्टिफिकेट बडी मुक्किल में मिला। कारण कि मेरा इरादा इलाहाबाद जाने का था और वे लोग मुझे वही बी० एस० सी० में रखना चाहते थे। प्रिन्सिपल ने मुझसे कहा कि तुम्हें हम वजीफा देवेगे, तुम यहीं पढो। परन्तु मैंने एक न सुनी और मैं वहाँ से चला आया।

इलाहाबाद में मेरी फीस वगैरा सब रखली थी। इसलिए मुझे पूरा भरोसा था कि मैं वहाँ दाखिल हो जाऊँगा, परन्तु वहाँ जाकर मुझे मालूम हुआ कि मुझसे पहिले वहाँ काफी अर्जिया आ गई थी और इसलिए मैं वहाँ दाखिल नहीं हो सकता था। मेरी फीस वहाँ गलती से रख ली गई थी। इलाहाबाद जाकर मुझे बुरी तरह धक्के खाने पड़े। इलाहाबाद में एम० सी० कालिज में बी० एस० सी० का प्रेक्टिकल इम्तिहान हुआ करता था। वही सब कालिजों के लडके जाया करते थे। इससे वहाँ वालों को इसमें बड़ा फायदा रहता था। इसलिए मैं भी वहाँ जाना चाहता था।

इलाहाबाद से टक्कर खाकर मैं आगरे आया। जाकर आगरा कालिज तलाश किया। वहाँ पर मेरी जान पहिचान के बहुतेरे निकल आए। और इसलिए मैं आसानी से भरती हो गया। मुझे कुछ भी तकलीफ नहीं उठानी पड़ी।

रुडकी आने का इरादा मेरा पहिले ही से था। यहाँ दाखिले का इम्तिहान जबरदस्त होता है। जितने इम्तिहान देने आते हैं, उनमें पहिले बीस ले लिए जाते हैं। यहाँ पर आने के लिए पहिले से कोई न कोई परीक्षा उनमें से पास करनी चाहिए, जो कि यहाँ के सरक्यूलर में है। बी० एस० सी० में पास होना माँके की बात है। प्रेक्टिकल में अच्छे अच्छे गिर जाते हैं। इस साल जो बी० एस० सी० में फस्ट आया है, पिछले साल फेल हो गया था। सन् १९१३ में जितने भी फर्स्ट डिवीजन में एफ० ए० में पास हुए थे, उन बारहों के बारहों ने बी० एस० सी० पढा, परन्तु केवल दो पास हो सके। एफ० ए० में जो दूसरे नम्बर पर था, यहाँ फेल हो गया। इधर २१ वर्ष से ज्यादा का कोई रुडकी कालिज में नहीं आ सकता और १६ से कम का इन्ट्रेंस पास नहीं कर सकता। यानी २० से अवश्य आयु ज्यादा होनी चाहिए जबकि बी० ए० का इम्तिहान दे। इन सब बातों को सोचते हुए मैंने विलायत की सीनियर लोकल कम्ब्रिज परीक्षा दिसम्बर में पास की और फिर यहाँ आया, क्योंकि मैं उस परीक्षा में उत्तीर्ण हो गया था। सौभाग्य से यहाँ पर मेरा दसवा नम्बर रहा। हमारी क्लास में एक से एक बढकर लडका मौजूद है। यहाँ बी० एस० सी० में जो दूसरे और चौथे नम्बर पर आए हैं, दोनों हैं। पंजाब यूनीवर्सिटी में जो इस साल बी० ए० में चौथे नम्बर आया वह मौजूद है। जो पिछले साल फस्ट आया है—वह हमारे यहाँ अब्बल है और मेरे खास

मिलने वालो मे है । यहाँ हर साल ही ऐसे ऐसे लडके आते है, और यदि मैं इम साल दाखिले मे आ गया तो जरूरी नही कि अगले माल भी आ जाना । यह सब बाते सोचते हुए मै यहा आ गया हूँ ।

यरा पर कालिज मे काम बहून रहना है और इमी कारण से किमी को भी फुमत नही मिलनी है । मुझ मे भी इतना अतर आ गया है कि पहिले म पत्रो का उत्तर दे दिया करता था और घर को प्रति सप्ताह मे कम से कम एक पत्र अवश्य भेजता था । परंतु अब जिसका पत्र आता है रखा रहता है, उत्तर लिखने के लिए समय मिलना कठिन होता है और घर १५ दिन मे पत्र भेजन लगा हूँ ।

इस पत्र को लिखे आज ७ दिन बीत गए होंगे । परसो विचार किया था कि यह पत्र अवश्य डाल दूंगा ताकि होली के दिन मिल जाता । परन्तु शोक कि तब भी नही डाल सका । देवे द्र व विवाह मे मै नही आ सकता हूँ । मुझे लिखना बहुत या परंतु न समय है, न पत्र मे जगह । मेरा इम्तिहान यहा पर जून मे होगा और कही १५ जुलाई से हमारी छुट्टी होगी । उन तीन महीनो की छुट्टियो म तुमसे पत्र व्यवहार बन्द रहेगा ।

प्रियवर चतुर,

रडकी, ६ जून १९१६ ।

स्वप्न तो मैंने बहुतेरे देखे हैं पर उनमे से दो का मुझ पर बडा भारी असर हुआ है । पहिला स्वप्न उस दिन था जबकि मेरी आजादी छीनी गई थी और मुझ को आयु भर के लिए शांति का साथी बनाया गया था । फेरो से लौटकर मैं सवेरे ४ बजे आया था । आते ही मे सो गया । सवेरे उठकर रात की सब बाते याद आने लगी । उस समय सब कुछ स्वप्न सा मालूम होता था । मैं अपने दिल ही दिल पछताने लगा क्योकि (१) मेरी स्वतंत्रता छिन गई । (२) मैं इतनी जल्दी विवाह करना नही चाहता था । (३) मैं डिबाई विवाह कराना नही चाहता था और यही बात मेने माता जी से कही भी थी । सवेरे उठकर मेरी बडी अजब हालत थी और मै खयाल कर रहा था कि मैने रात को केवल स्वप्न ही देखा है और अभी मैं स्वप्न मे ही जनवासे मे बैठा हुआ हूँ । इस स्वप्न का असर थोडे ही समय रहा, क्योकि फौरन ही उठकर मैं तुम्हारे पास ऊपर गया और वहा जाकर सब कुछ भूल गया ।

दूसरे स्वप्न के लिए यहा की अपनी थोडी सी तवारीख दे देना जरूरी है । इस कालिज मे हमारी किस्मत का फसला हमारी क्लास की पोजीशन पर है । पढने के बाद उसी के मुताबिक नौकरी मिलती है । यही कारण है कि यहा पर आते ही तन्दुरुस्ती वगैरा सब चीजो का रयाल छोडकर काम करते हे । यहाँ पर साल भर मे दो इम्तिहान होते हे । एक फस्ट टम का फरवरी मे, दूसरा सेकेन्ड टम का जून मे । फरवरी मे जब परीक्षा हुई थी, मेरा नम्बर क्लास मे १० से १३ हो गया । इसका कारण यह था कि

सब लोग घर से बहुत कुछ तैयार करके लाए थे। इसके अलावा मैंने कुछ मेहनत भी कम की थी। इम्तिहान का नतीजा निकलने पर मुझे यह खुशी थी कि घर जाने से पहिले दूसरा इम्तिहान भी हो जायगा—और तब क्लास में कोई अच्छे नम्बर लेकर जाऊँगा। इसके लिए फरवरी से अब तक बड़ी मेहनत करता रहा हूँ। परीक्षा में पहिले कुछ परचे मेरे बहुत अच्छे हुए। जबकि सब रोते आते थे, मैं प्रसन्न होता आता था। शुक्रवार को आखरी परचा मेरा बुरी तरह बिगड़ा, परतु इसकी मेने कुछ भी परवा न की। शनिवार को प्रेक्टिकल फिजिक्स में दो प्रेक्टिकल थे, जिनके १५० नम्बर हुए। प्रेक्टिकल दोना आसान थे। परतु मैं सवदा कठिन प्रश्न किया करता हूँ। मुझ से सहल सवाल नहीं होते हे। मेरा दिमाग मुश्किल चीजों में चलता है। यदि परचा मुश्किल है, मैं सबसे बढ जाता हूँ। और यदि सहल होता है तो मैं पीछे हो जाता हूँ। नतीजा यह हुआ कि मेरी समझ में कुछ भी नहीं आया। और किसी से पूछकर भी मैं कुछ कर सकता था, परन्तु मैं कभी भी बेईमानी और भ्रूठ को अपने पास आने देना नहीं चाहता हूँ। उस समय मेरी तमाम इच्छाएँ कुचली जा रही थी। उन ५ घटों में मुझे एक बन्द कमरे में बठे रहना पडा, तब यह देख रहा था कि मैं ऊपर से एकदम नीचे गिर रहा हूँ। यहाँ पर एक एक नम्बर पर लोग खून देते है, वहाँ मेने १५० नम्बर गवा दिए। इसका मुझे बडा भारी रज अब तक रहा और इसी कारण आज एक दो सप्ताह बाद तुम्हे पत्र लिख रहा हूँ। यह मेरा उन पाच घटों का स्वप्न है।

यहाँ पर आकर मैंने पत्र बहुत ही कम लिखे है, तो भी मेरे पास बहुत पत्र आ गए हे। क्योंकि अब मेरे घर जाने के दिन करीब आ गए हे। मैंने उन पत्रों को भी ठिकाने लगाना पसंद किया। इसलिए अभी उन सबको इकट्ठा करके जलाया है। मैं चाहता था कि तुम्हारा एक या दो पत्र जो उनमें से सबसे अच्छा हो उसे बचाकर रख लूँ। परतु पत्र सब एक से एक ज्यादा प्रेम से भरे और मनोहर थे। और मेरी समझ में नहीं आया कि उनमें से सबसे अच्छा कौनसा है। आखिरकार आखरी उठाकर रख लिया, बाकी सब जला दिए।

मेरी छुट्टि यहाँ पर १५ तक शुरू हो जावेगी। और शुरू होते ही मैं दिल्ली चला जाऊँगा। वहाँ पर जाकर मैं तुम्हे किसी पत्र का भी उत्तर न दूँगा।

‘हृदय की परख’ आप मेरे पास तुरंत भेज दें तो अच्छा हो और यहाँ पर मैं उसे खत्म करके घर जाऊँगा। यदि आपको मिलना हो तो आप यहीं पर १० या १२ दिन तक आ जावे, क्योंकि दिल्ली में मुझे तुमसे मिलने में डर लगेगा।

तुमस मिले हुए अब बहुत दिन हो गए हे। इम्तिहान से निबट कर तुम्हारी और की बहुत याद आती है। परन्तु उसस तो मैं जल्दी ही जा मिलूँगा। रहे तुम। तुम से अब वैसा मिलना नहीं हो सकता जसा कि पहिले था। रस्मी में गाठे पड गई

है। पहिले मैं जब कभी भी तुम्हारे साथ होता था बिल्कुल बेफिकर रहता था। तुम्हारे होते हुए मुझे किसी की भी परवा नहीं थी क्योंकि चतुर को सबदा मैं जान से भी ज्यादा प्यारा रहा हूँ। पर तु अब वह जमाना नहीं है। यद्यपि मुझे डम बात का पूरा भरोसा है कि यदि चतुर मुझे मारने के इरादे से भी आवे तो भी मेरी शकल देखते ही पिघल जायगा। परतु जमाना नाजुक है। नामुमकिन बात सच हो रही है। नहीं तो क्या मैं इस बात का यकीन कर सकता था कि चतुर के दिल में कभी मेरे मारने का रयाल आवेगा। परन्तु वह सच है। इसके लिए चेष्टा भी की गई है परतु मुझ पर इतना विश्वास है कि मुझे उनमे से एक भी बात नहीं बताई गई है। बेहतर हो कि यहाँ पर एक दफा हो जाओ।

आपके द्विवेदी जी कैसे मनुष्य है ? आप उन्हें कैसे जानते है और कुछ भी उनकी तारीफ लिखिए। गरमी के दिनों में अँग्रेजी लिबास बहुत ही बुरा मालूम होता है। यहा पर कालिज मे नकटाई कालर बगर लगाए हम नहीं जा सकत हैं। वरना नम्बर कटते है। इन सबसे पाँसी सी लग जाती है। उधर पतलून और कोट का कपडा भी बहुत भारी होता है। यह लिबास जाडो मे अच्छा लगता था परन्तु गरमी मे धोती और हल्की कमीज से बढकर और पोशाक भली नहीं मालूम होती।

रडकी, ८ जुलाई १९,

प्रिय चतुर,

इस समय कालिज का समय निकट आ गया है और इसलिए मैं आपको इस समय लिखता तो नहीं परतु घर जान से पहले एक प्रेम पत्र की बडी लालसा है, अत एव इस कुसमय पर लिख रहा हूँ।

आपकी 'हृदय की परख' मैं कल से अब तक केवल आधी पढ सका हूँ। क्योंकि कल क्लास का नतीजा निकलने के कारण मेरा बहुत समय उमी में नष्ट हो गया। मैं आशा करता हूँ कि सोमवार को उसे आपको अपनी समालोचना के साथ (जिस काम के काबिल मैं किसी प्रकार से भी नहीं हूँ) भेज दूंगा। परचो मे मेरे सबसे करीब २ अच्छे नम्बर आए है क्योंकि तीन चौथाई परचो मे मेरे १०० मे से ८२ से अधिक नम्बर है। परचो मे म मामूली तौर पर क्लास से ८० नम्बर वढ गया हूँ। परतु प्रेक्टि कल फिजिक्स मे मैने १०० नम्बर खोए है। इसलिए मेने २० नम्बर मामूली विद्यार्थी से इसमे कम लिए है।

कन्वोकेशन वृहत्पतिवार १३ जुलाई का है और उसी दिन मे २ बजे की गाडी से दिल्ली चला जाऊँगा और वहाँ रात के नौ बजे घर जा पहुँचूँगा और आशा करता हूँ कि उसी दिन शांति के दशन करके नयनों को तृप्त करूँगा।

लापरवाही जाहिर करना कुछ मेरे साथ कुदरती सा बन गया है। लापरवाही

मैं उनके साथ भी करता हूँ जिनको कि प्राणों से ज्यादा प्यार करता हूँ। यहाँ पर पढ़ने के लिए अपना चित्त, घर बार, स्त्री, बहिन भाई बगैरा सबसे ही मैंने विरक्त किया था। वरञ्च जसा कि तुम मेरा ख्याल शान्ति के बारे में समझते हो बिल्कुल गलत है। घर पर मैं जितने भी दिन रहा हूँ—सब प्रकार से मैंने उसको प्रसन्न ही करने की कोशिश की है और अपनी प्रसन्नता को उसकी प्रसन्नता पर न्यौट्यावर करके फेंक दिया है।

क्लास में मेरा नम्बर इस समय १४ हो गया है। इसका मुझे अत्यन्त शोक है, क्योंकि सबसे ज्यादा मैंने उस मजमून को खोया है जोकि मुझ पर सबसे अच्छा आता है। फिजिक्स पहला ही मजमून था जिसने क्लास में सबसे पहिले मेरी मौजूदगी बताई थी, क्योंकि इसमें ही सबसे पहिले क्लास वक परीक्षा में फस्ट था। यदि साइम के नम्बर न होते तो क्लास में मेरा चौथा नम्बर होता। परन्तु साइंस मुझ पर किसी से कम नहीं आती। सिर्फ किस्मत की बात है। परन्तु ऐसी नाकाबिणे मुझे बताती है कि छुट्टियाँ आराम से नहीं काटनी चाहिएँ। चतुर, मेरा उद्देश्य पूरा होकर रहेगा। मैं आखिर तक बराबर काम करता रहूँगा और पहिले साल में अवश्य निकलूँगा।

भाभी साहिबा को देखने के लिए मेरा जी बहुत चाहता है। पर तु लज्जा और भय के कारण मैंने कभी भी ऐसा नहीं लिखा क्योंकि ऐसी बात से लोगों को बहुत ही जल्दी शक जाता है। उनसे मेरी बहुत बहुत नमस्ते कहना। ईश्वर करे उ हे परीक्षा में सफलता प्राप्त हो। यहाँ से जाती बार आपको एक और पत्र लिखूँगा।

पण्डित छोटेलाल

मेरे स्कूल जीवन को पचास साल बीत गए। पर तु उसकी स्मृति दिन पर दिन नई होती जा रही है। ज्यो ज्यो जीवन भीड़ भाड़ और चहल पहल से निकलकर शून्य में पहुँचता जा रहा है—वे दिन बहुत याद आते हैं। जी चाहता है कि एक बार वे दिन फिर आ जाएँ। सपने में कभी कभी ऐसा हा भी जाता है। पर सपने की क्षणभंगुरता को तो आप जानते ही हैं। इमी से सपने के सुख और भी दुखदाई हो जाते हैं। परन्तु इस सूनने ग्रस्त होते हुए जीवन में कुछ चीजे शेष हैं, जो वास्तव में प्राणों में स्पश कर जाती हैं।

पचास वर्ष का समय थोडा नहीं होता। सौ में से पचास ही आदमी पचास वर्षकी आयु तक पहुँच पाते हैं। पचास वर्षों में इतिहास की कई पुनरावृत्तियाँ होती हैं, मस्कृति, विचार रहन सहन और जीवन के सभी पहलू बदल जाते हैं—नई दुनिया पुरानी हो जाती है, चमकते हुए जीवन मटमैले हो जाते हैं—गुलाब के फूल के समान सौरभ और सुपमा बखेरने वाले चेहरे मुझा जाते हैं। आनन्द की अनुभूति घिस जाती है और बहुधा ऐसा होता है कि कभी जिस जीवन में प्रगति फुदकती थी और जिसका भरना भर भर भरता था, उसका बोझ कंधे पर लादकर बड़े ही कष्ट और असुविधा

एव विराग से मृत्यु की ऊब जाने वाली प्रतीक्षा करनी पडनी है ।

मैं कस्बे के उस एक मात्र छोटे से स्कूल में भरती हुआ । सील भरे कमरे की पतली तरती वाली लम्बी बन्चो पर हम सब बालक अपनी दुबली पतली टाग हिलात हुए प्राय दो व्यक्तियों की बडी उत्पुकतापूर्वक प्रतीक्षा किया करते थे । एक मास्टर नौरगी-लाल की—जो क्लास में आते ही अपने हाथ की लपलपाती बत दो तीन बार मेज पर जोर जोर से मारकर हमारे कलेजो को धडका देते थे । फिर उमके बाद वही बत किमी की पीठ पर और किसी के कर कमलो पर शपाशप पडती थी । तब हम सब बालक अपनी ही वेदना और विरक्ति में अपने सामने डेस्क पर पडी किनाबो और कापियों को घृणा और क्रोध से आमूभरी आखो से घूरते हुए साथी मगिया के बीच मान भग की अनुभूति के कारण उस जालिम मास्टर नौरगीलाल का न जान कितना कोसन थे और भगवान पर न जाने कितने अनापशानाप हुक्म चटाते थे ।

उमके बाद तो बहुत से दिन देखे । बहुत से खेल खेले । जेल के सीक्चो की यात नाए भी भोगी, क्रूर बाडर की साँसलें भी भुगनी, और भेडियो से भी भयानक जेलरो की गुराहट देखी । पर स्कूल का वह गंदा बेहूदा कमरा और मास्टर नौरगीलाल हमारे पर जिस घृणा—विरक्ति और गुस्से की छाप छोड गए—वह तो सबसे निराली ही रही और अब पचास वष बीत जाने पर जब बहुत-सी बात धिस धिसा कर पुरानी पड गई हैं—वह वसी ही तरोताजा और दमदार है ।

परन्तु जिस दूसरे व्यक्ति की प्रतीक्षा सारी कक्षा के बालक करते रहते थे, वे थे पण्डित छोटलाल । क्लास में उनके प्रवेश करते ही आनन्द की लहर उस मनहूस कमरे में व्याप्त हो जाती थी । वह आनन्द तो वस—वही था । एक ही शब्द म कह दु—श्री नेहरू के साथ पालमेंट भवन में बैठने पर भी आज वह आनन्द नहीं आता । आज भी जब पण्डित छोटलाल के उस नित्य के अनायास प्रवेश की स्मृति जब भी हृदयपटल पर उदय होती है—हास्य की रेखाएँ—युग युग से सूखे हुए इन भाग्यहीन होठो पर फल ही जाती है । दुख और वेदनाओ की काली रातो में भी हास्य की वह रेखा हिली नहीं ।

उम्र में क्लास भर के लडको में सबसे बडे, मास्टर नौरगीलाल से कुछ ही कम, जिसे वे अपने सिर पर कसकर लपेटे हुए भकाभक सफेद साफे की भारी भरकम ऊँचाई से पूरा कर लेते थे ।

स्कूल के काम या पढाई लिखाई की उन्होने कभी चिन्ता नहीं की । घर पर उन्हें फुसत ही कहा मिलती थी, तीन-तीन बच्चो की, और फिर उन बच्चो की मा की वे सार सम्हार करते या स्कूल की कापिया रंगते ? भला कहिए तो ।

हर साल लडके अगली श्रणियों से खसकते जाते और पण्डित छोटलाल जहाँ के तहा मुकीम रहते । न जाने कितनी पीडियो से वे उसी छठी क्लास में मुकीम थे ।

स्कूल में आते ही वे अपनी कापिया, लडको को बाट देते, और लडके खुशी से उनका सब काम खत्म कर देते। इस बीच में वे पेसिल बनाते, कविता करते, दगात ठीक करते, या किसी लडके को कोई सत्परामश देते थे। मास्टर नौरंगीलाल ने भी उन्हें छूट दे रखी थी। वे कहा करते थे—आप तो पीरोमुशद हे स्कूल की रौनक बढ़ाने के लिए तशरीफ ले आते हैं। कभी कभी वे उनके बाल बच्चों की खैराफियत पूछ भी लिया करते थे। इन तमाम बातों के सिवा स्कूल का कोई लडका या मास्टर उ हे केवल नाम से नहीं पुकारता था—सभी उन्हें पण्डित छोटेलाल कहते थे।

स्कूल छूटने पर भाग्य न जाने कहा कहा निदयता से घसीटता फिरा और कहाँ गए पण्डित छोटेलाल। बीच बीच में सुनता था—वे राजस्थान में कहीं अध्यापक हो गए हे, फिर सुना मुरतारी पास कर वकालत करते हे, पतलून पहनते हे, परन्तु मिलना नहीं हुआ—पत्र व्यवहार भी नहीं हुआ। केवल जब तब याद कर लेता था—इसी प्रकार पचास साल बीत गए। इस बार बहुत वर्षों बाद घर आया। लगातार लम्बे परदेश में फँसा रहा, अकल्पित युद्ध विभीषिकाएँ आखी में होकर व्यतीत हुई। महाराज्यो के भाग्य निराय हुए। खून और सोने से लतपत मानव राष्ट्रो ने देखते ही देखते करवट बदली। सारे ससार की जन व्यवस्था बदल गई। कस्त्रे में आकर देरा, जसे वह बहुत छोटा हो गया था। सगी साथी प्राय सभी काल कलवित हो चुके थे। कईयो की आकृतिया बदल गई थी। वे बूढे हा गए थे। उनकी कमर भुंक गई थी। कुछ की आखे जाती रही थी। बहुतो को बहुत देर में पहचाना, बहुतो को पहचाना ही नहीं।

भैस अब पाच सौ में आती थी, मुझे याद आया चालीस रुपयो में पिताजी एक भैस लाए थे, तो सारा कस्बा उसे देखने आया था। दूध अब एक रुपए सेर मिलता था। हम तो एक आने का सेर पीते थे—वह घी के ढेले जिन्हे मैं खेल ही खेल में माता से झडप कर चट कर जाता था, अब नहीं थे—उनकी जगह वनस्पति जमाया हुआ तेल था—वे कौडिगो के गण्डे जिनसे हम पकौडियाँ खरीद कर खाते थे। और वह पैसा—जिसे सहेज कर गुल्लक में रखते थे—कहीं न दीख पडते थे। पैसा तो अब कोई जिन्स नहीं खरीद सकता था। सब कुछ बदल गया था। सब कुछ नया—अपरिचित सा पराया सा लग रहा था। उस कस्बे में, जहाँ बचपन के मीठे मीठे दिन व्यतीत किए थे, अब मेरा दमघुट रहा था। वहाँ मेरा कोई अपना न था परिचित न था, सब कुछ पराया ही पराया था।

अकस्मात् देखा—एक बूढा कमजोर सा ग्रादमी तेजी से धुन बाँधकर चलाजा रहा है। एक मित्र ने हँसकर कहा—‘पहचाना, पण्डित छोटेलाल है।

‘अरे, और मेने लपककर उन्हें पकड लिया। अक में भर लिया। परन्तु छोटे-बाल ने निरुद्धग भाव से उसी पचास वर्ष पुरानी भाव भगिमा और शालीनता से कहा—

कब आए ? मैंने जैसे सुनाही नहीं । हर्ष उल्लाम मे फूला मैं बौखला रहा था । स्कूल के बीते हुए दिन आखी मे खेन रहे थे । मैंने कहा—कहो, कैसे रह ?

उसी ठन्डे और निरुद्वेग भाव से—माथे पर बल डाल कर वे बोले—परेशान हूँ । उनके हाथ मे एक टूटा हुआ कलमदान था । उसी को हाथ उँचा करके दिखाते हुए वे कहने लगे—लडके ने शतानी की, तोड दिया । अब रशीद के पास गया था—कि दो कीले ठोक दे । उम दिन तीन दिन काम किया, गतान तीनों दिन काम के बन्त ही खाने मे बैठ जाता । खच होता एक घटा, फिर बीडी । पक्का बदमाश । पसे लेकर काम करना ही नहीं चाहते वे लोग, दो मिनट का काम था । लेकिन वेमुरब्वती देखिए—साफ कह गया—कीले ले आइए । जाता हूँ, दो कीले ले आऊँ ।

और, पण्डित छोटेलाल उसी तरह चले गए, जिस तरह चल जा रह थे । यह क्षण भर का बीच का अटकवाव जसे उनकी एक बाधा थी—जिमने पचास वर्षकी आधी शताब्दी की—सतत उत्सुकता भरी थी । न जाने कब मेग अङ्कशाश ढीना हुआ और मैं बडी देर तक उन्हे तेजी से जाते हुए खडा देखता रहा । उसी कलमदान के साथ—जिसमे इस समय उनका मपूर्ण मन उलभ रह था । एक ठण्टी और निष्प्राराण श्वास हृदय को छूकर बाहर आई । मैंने ममभा—ससार बदला हे, पर कुछ ऐसे सत्व भी हैं जो पचास साल भी वसे ही रहते है ।

अबसे पचास वर्ष पूव मेरे द्वारा जयपुर से लिखा गया छोटेलाल को एक पत्र । छोटेलाल उन दिनो सिकन्दराबाद रहते थे और मे जयपुर मे पढने आया था—

प्रिय,

जयपुर, १८-८ १०

चिट्ठीरसे की इन्तजार मे आखे पथरा गई तब कही आज आपका दया पत्र मिला । शायद मैं नहीं बता सकता कि मुझे कितनी प्रसन्नता इसको देखकर हुई । इस का एक यह भी कारण था कि प्रियवर हरिश्चन्द्र की सुगव से यह सुगन्धित हो रहा था । आज आतुर होकर आपको पत्र लिख ही रहा था और सम्भव था कि दो मिनट मे पूरा हो जाता परन्तु उसी वक्त यह पत्र मिले । ईश्वर का धन्यवाद दो कि इस (लिखे गए पत्र के) तानो से आप बाल-बाल बच गए । मुझे आश्चय था कि सिकद्राबाद ही एक साथ नाराज हो गया । बाबा मैं तो यो ही विचार सागर मे गोते लगा रहा था । पर तु इस पत्र के देखने से मालूम हुआ कि मेरा पिछला पत्र आपको नहीं मिला । चलो ठीक हुआ । मैं आपकी शिकायत करूँ और आप मेरी शिकायत करले । यह भी मर्दों की भ्रष्ट सही । पर तु प० टीकाराम के विषय मे दिल से क्या कहकर उसे शान्त करूँ । यह कि उनकी टेडी नजर है । यदि यही कहने के लिए लाचारी है तो लो मौन ही साधे बैठते है । साधु पुरुषो के लिए ऐसे रूखे विचार मेरे दिल मे जगह नहीं पा सकते । दूसरे उहे स्कूल के काम के सिवाय बोर्डिंग के प्रबन्ध से ही छुट्टी नहीं मिलती

होगी, फिर मुझ जैसे निठल्ले आदमी के लिए उनके पाम उक्त ही रखा गया। और एक बात और है कि उनके कान तक कौन पहुँचाये कि तुम्हारे दुःखों के लिए उमर भर का हो रहा है। खर ईश्वर न करे कि मेरी तरफ एक दुकान फरों में उभरे गमय गमय का खून करना पड़े। अच्छा अब उनसे कुछ न बट्टे, पर तुम्हारा नमस्ते तो नट देना। यदि खबर नहीं लेते तो यह अभाग के भाग्य है पर तुम्हारा हृदि तो रग। यत्र रहे हरिश्चन्द्र। सो वह तो हमारे सचालक ही ठहर। शायद शंकर का हाथ भी छि-कता ठिठकता उनके पास आवे फिर हम तो हे हिम जगती प्रिया। उतने कहना कि तुम्हारी जसी आकृति हे वसे ही रहो, नहीं तो जनते दया की तपट भुनगा डालेगी। बा० रघुनीसरन तो बस बाल की खान निदान की उपायन में मस्त होंगे। उनसे क्या कहे। अगर श्यामसुन्दर से उनकी सत्ता देने का फिर पातु तयार की तरह अगल बगल में भाँकते फिरते। अत्र वे ऊपर उभरे गग। खर ११३ बात नहीं। मेरा दिल मजबूत हृदिया में रमित है सो मेरी मामूली तन पीका में फट्टा मरना नहीं। हमारा दुख इतना नहीं बढ गया है जा आप लोग तत्र पहुँच सों। सो आप बेफिकर रह कर अपना काम करिए। किसी तरह हमारा दिन भाँक ही जाता है। उसे इस बात का विचार नहीं है कि किमकी परमाह है। खर ये बात का अन्द करों पर तु प० जी यह जयपुरी तो बडी अंतरह पिलारि ? सचमुच तन पात्र म भी नशा न उतरेगा ? सच, कहीं कहा बठ के सोचा था। प० ऊमाराम को अभी एक पत्र भी नहीं लिख सका हूँ। अब लिख दूंगा और आपका मतव्य गमभागे की श्रेष्ठा करेगा। सलूनो के विषय में मैं आपसे अधिक जान सकता हूँ पर तु फिर भी आपसे उम मान दान का धयवाद देता हुआ यथाशक्ति यह कहने को तयार हूँ कि प्राचीन गमय में जब वर्षा आरम्भ होती थी तो बनवामी ऋषिगण बट्टी अपनी रथा त देव तगर में आकर रहा करते थे और उ ही दिनों में गृहस्थी लोग उनके चरणों में पातु पातु किया करते थे। श्रावणी का विगत कर सलूनो बन गया है। उमका मानत्र य है यश शिवा गृहस्थी लोग उनके पाग उपदेश श्रवण करने उभटठ होते थे। वे उपदेश दिया करते थे कि विचार कर अमसम्मत काय करना उचित है। हर एक काम के लिए गुना पात न रखो कि जो मन में आया सो किया। परन्तु मयादा से (न बाध कर) काम करना चाहिए। दान देना अच्छा काम है। परन्तु मयादा से बाहर बनि तो किया, तीना यह हुआ कि बाँवकर पातात में भेजा गया। तत्र वास्ते धम मन्त्र की तायों में बँये गय, तो रहना अच्छा है। अपना वित्त विचारकर काम करना चाहिए। पृथ्वी २६ घंटे में पट्टी अपना चक्कर लगा लेती है, तब कही ३६५ दिन में सूर्य का चक्कर लगानो है। सो पहिले अपनी ओर देखना और फिर ऊपर नजर उठाना ही मसार सम्मत है। किसी काम पाम १ सेर अन्न है वह चाहे तो अपना और अपनी स्त्री का पट भर सकता है। पर तु यदि

वह कहे कि तमाम दुनिया का भला करू तो काम कमे चले ? तमाम दुनिया के हिस्से मे तो एक जर्ग भी नहीं आवेगा और आप दोनो भूखे रहेंगे । मतलब यह कि वे परिमाण काम करने से नाश ही होगा । हरेक काम हाथ बांधकर करना चाहिए । इस उपदेश की स्मृति के लिए वे महापुरुष रक्षाबन्धन बाँधते हुए यह भी उपदेश दिया करते थे कि आपस मे सबसे बाँधे रहने ही से कल्याण है । फूट न करनी चाहिए । फिर देवो त्यान पर वे महापुरुष अपने अपने निवास को सिंघार जाया करते थे । देव ऋषियो का नाम है । यह किसी जाति विशेष का नहीं है । जो अपने को दे और कुछ न ले वही देव कहलाता है । अथवा जो कुछ ले तो हमारी ही भूति के लिए ले । जैसे सूय जल देता है और १०० गुना करके वर्षा देता है वम यही इन त्यौहारो का अभिप्राय है । हो सकता है मेरे लिखने मे ठीक ठीक भाव न प्रकट न हुआ हो, पर तु मै इस समय जल्दी मे हूँ क्षमा कीजिए । अधिक क्या लिखू, पर तु कृपा करके उत्तर तो जल्दी जल्दी लिखते रहिए यहा तो सब खुशी का आवाज तुम्हारे पत्रो पर ही है । शायद यह बात छिपी नहीं है । अधिक क्या ।

सर शान्तिस्वरूप

स्कूल की बचो पर पास बठे हुए दो बालक आपस मे भगड रहे थे । उनमे एक बालक ठिगना, दुबला पतला, एक साधारण पायजामा और धारीदार डोरिए का कुरता पहिने था । दूसरा उसकी अपेक्षा, तनिक हृष्ट पुष्ट था । दोनो बालक पाँचवी कक्षा मे पढते थे । हृष्ट पुष्ट बालक दूसरे को डाट रहा था, दूसरा शांतिपूर्वक उसका प्रतिकार कर रहा था । भगडे का कारण यह था कि पहले बालक ने दूसरे बालक का चाकू माग कर लिया था और उसे खो दिया था । दूसरा बालक अपने चाकू को जबरदस्त माग कर रहा था । दुबला पतला बालक कह रहा था— भाई तुम्हारा चाकू मुझे खो गया है । उसके बदले मे मै तुम्हे दूसरा नया चाकू ला दूंगा । पर अभी पैसे मेरे पास नहीं है । जब मुझे पैसे मिलेंगे तभी मै तुम्हारे लिए नया चाकू खरीद दूंगा । लेकिन दूसरा बालक अपना रौब जता रहा था । वह डाटकर कह रहा था— मै यह सब कुछ नहीं जानता । मेरा चाकू अभी लाओ । भगडा मास्टर साहब तक पहुँचा । मास्टर साहब के सामने भी उस बालक ने अपना वायदा दुहराया । मास्टर ने पूछा— तुम कब तक चाकू इसे खरीद दोगे ? दूसरे बालक ने कहा— यह मै वायदा नहीं कर सकता, मेरे हाथ मे पैसे आते ही मै चाकू खरीद कर इसे दे दूंगा ।

बालको का भगडा थोडी धूम-गाम के बाद खत्म हो गया । पर जो चाकू का स्वामी था, वह दूसरे पर अब तक धौंस जमाता था और चाकू तलब करता था । दूसरा बिना भेपे जवाब देता था—‘तुम्हारा मागना फजूल है । ऐसे हाथ मे आने पर मै खुद दे दूंगा ।’ और एक दिन उसने बहुत उम्दा विलायती नया चाकू अपने साथी के

हाथ पर रखकर कहा— लीजिए यह आपका चाकू । जो चाकू गुम हो गया था वह देशी और साधारण दो पैसे वाला था । अब यह नया, उच्चिया, लम्बे तना चाकू पाकर दूसरे बालक की आखे लाभ और खुशी से चमकने लगी और उसने चाकू जेब के हवाले किया । जिस तालक ने वह चाकू गुम किया था उसका नाम 'शान्ति' था । तान्त्रिकों में वही बालक भारत का विश्वविश्रुत वैज्ञानिक मर शान्तिस्वरूप के नाम से प्रख्यात हुआ, दूसरा बालक मैं था ।

बाल जीवन की देहरी से बाहर पर रखते ही स्कूल के वे सीनभरे कमरे, तरनो की लम्बी बच्चे, जिन पर बठकर हम लोग अपनी टुवली पतली टागो को हिलाते जाते और नजर किताब पर और ध्यान जालिम मास्टर नौरगीलाल की त्त पर रगते थे— हमसे छुट गए । कौन कहा गया, कौन क्या हुआ यह जानने का काइ उपाय ही न रहा । लेकिन मैं जिन एक दो साथियो को न भूल सका—उनमे एक शान्ति था । रही चाकू के बदले बाढिया चाकू देकर उसने मुझे लज्जित और पराम्त कर दिया था । वह एक दरिद्र, निधन, अनाथ बालक था । मामा के घर रहता था— सम्भवत स्कूल की फीस भी नहीं दे सकता था । क्लास मे सबसे छोटा और पढने मे सत्रमे तेज, नाम का मानी-टर, एकनिष्ठ और कमसखुन । वह हममे डोटा है, गरीब है, फिर भी क्लाम मे सबसे तेज है, क्यों न चाकू के बहाने उसे नीचा दिखाया जाय । चाकू वापस लने का ऐसा कुछ सवाल नहीं था, मूल प्रश्न था नीचा दिखाना । क्लास मे एक और साथी थे । नाम था भूपसिंह, गूजर थे और पास ही दहात मे रहते थे । कपण लत्ते, डील डील, बोल चाल एकदम देहाती गूजरो जैसी, उमर मे सबसे बडे, कद मे सत्रसे उचे । वह बडे और सब लडके खडे बराबर लगते थे । पढने मे फिसड्डी थे । 'शान्ति' स वे भी खार खाते थे । उसी ने मुझे एक दिन उभारा यह सौरा शान्ति हमारा चाचा बनता है । इसे भतीजा बनाकर छोडूंगा । जा माग अपना चाकू ।

यह भूपसिंह कालांतर मे मैनपुरी षायत्र नेस मे तपकर, चिरगान तरु जमी-दोज रहकर राजपूताने के प्रसिद्ध क्रातिकारी नेता, 'विजयमिठ पथिव' के नाम से उदित हुए । आज वह भी इम नश्वर सृष्टि मे नहीं है ।

जसे सब साथी भुना गए, वसे 'शान्ति' भी स्मृतिपटल से दूर हो गया । बहुत दिन बाद मैंने सुना—काशी विश्वविद्यालय के यशरणी विज्ञान के प्राध्यापक एस० एस० भटनागर काशी विश्वविद्यालय छोड लाहौर विश्वविद्यालय मे चले आए है । चलनी बार अपने बक मे बची पूजी की कौडी पाई विश्वविद्यालय के विज्ञान विभाग के लिए दे आए है । तभी किसी ने कहा— अरे यह एस० एस० भटनागर वही 'शान्ति' है । सुनकर कलेजा धडकने लगा । पहले विश्वास नहीं हुआ । पीछे निश्चय हुआ तो चाकू की बात याद आ गई । और विश्वविद्यालय को अपना सवस्व दान ? शायद अस्सी हजार

रुपया था—इस दान में आत्मा की उच्च सत्ता, मन की पवित्र त्याग भावना, चरित्र की विशद विशालता का खुला प्रदर्शन था—जिसका बीज बालक 'शांति' के उस चाकू में निहित था ।

बहुत दिन बाद एक बार मेरा लाहौर जाना हुआ । एक अपील थी जिसकी पैरवी श्री अछरुराम कर रहे थे, जो बाद को हाईकोर्ट के चीफ जस्टिस और फिर कस्टोडियन जनरल बने । इच्छा हुई अपने 'शान्ति' से मिललू । सकोच भी था । अछरुराम जी के बगले के निकट ही रहते थे । दूसरे दिन सुबह ही पहुँच गया । पर ज्ञात हुआ—घर पर नहीं है । मे एक परचा लिखकर रख आया— एक भूला भटका पछी मिलने आया था, मिले नहीं, दोपहर बाद आएगा । पुरजे पर मैने नाम नहीं लिखा । परंतु जब दुबारा गया, तब वह प्रशस्त लान में सिर पर एक तौलिया डाले शीत की धूप खा रहे थे । दूर ही से दौडकर लिपट गए । यह घटना सम्भवतः सन् १९४३ की होगी । यद्यपि यह चालीस वर्ष बाद प्रथम मिलन था ।

मैने हँसकर कहा— पहिचान लिया ? मै तो तुम्हारी कोठी में कदम रखते डर रहा था । हसकर जवाब दिया—'वसा पुरजा तुम्हारे सिवा कौन लिख सकता था भला, मैने समझ लिया था तुम्ही हो ।' बहुत देर बातें करते रहे । भव्य ड्राइंग रूम में बठे अपने जीवन के विवरण सुनाते रहे और दूसरे दिन लेबोरेटरी देखने का निमन्त्रण दिया ।

कालेज की लेबोरेटरी के अविष्टाता वही थे । जाकर घूम-घूमकर सारी लेबोरेटरी देखी । वही इस ठिगने से वैज्ञानिक का विश्वव्यापी महात्म्य मने देखा । लेबोरेटरी में जापान, जमनी, फ्रांस आर भारत के भिन्न भिन्न प्रान्तों के ज्ञानपिपासु छात्र—जिनमें बहुतेको की सफेद दाढिया थी—इस छोटे से भारतीय जादूगर के चरणों में बठकर भांति भांति की गवेषणाएँ कर रहे थे, और यह महाप्रज्ञ पुरुष सबकी गुत्थिया सुलभ्ना रहा था ।

वही मैने प्रथम बार इस वैज्ञानिक की शोध की हुई वे अदृश्य किरणों देखी, जिनमें अद्भुत करामान थी, तथा जिनके कारण इ हे 'सर' की पदवी प्रदान हुई थी । और भी बहुत सी विचित्र वस्तुएँ थी । पर तु जब मैं मम्पूरा लेबोरेटरी को देखकर वापिस उनके पास आया, तब वह बोले—खुश भी हुए ? मैने विनोद में कहा—कहा, ऐसी कोई खास बात तो देखी नहीं । क्षण भर इस वैज्ञानिक ने घूर कर मुझे देखा । वही पचास साल पुराना आत्मविश्वास और गवपूण दृष्टि । फिर मेरा विनोद समझ, जरा नरम पडकर मेरी कलाई पकडते हुए बोले—'अच्छा, मेरे साथ आओ ।' मेरे साथ मेरे एक मित्र एडवोकेट भी थे । क्षण भर उनकी ओर उहोने अटकाव से देखा, फिर वह हमें अपने चेम्बर में ले गए । भीतर से चाबी लगाकर द्वार बंद कर लिया । चपरासी को इत्तला तक करने को निषेध कर दिया । तब इत्मीनान से बैठकर बोले— एक चीज दिखाता हूँ, तब शायद तुम खुश होगे ।

वह उठकर सेफ तक गए। ताला खोला और भफ मे छोनी सी पीपी न गए। शीशी मे एक तरल पदार्थ था। जल की भांति स्पन्द। उस जगह ता म ऊना उठाकर बोले—यह एक चीज मेने बनाई है, जिसमे यह ताकत है कि इसकी एक गूदा पानी में डालदौ तो तमाम तरने वाली चीजें तत्काल डूब जाणगी।

वैज्ञानिक की वारणी अत्यंत गम्भीर थी और उनके नत्रा में विविध चमत्कार निहित रही थी। हम सास रोककर उसकी बात सुन रहे थे। उस समय द्वितीय महायुद्ध चला रहा था। एक बार तो जैसे यह बात सुनकर कपटपी सी चट गइ। परन्तु वैज्ञानिक का ध्यान हमारी ओर न था, वह अपनी गम्भीरतम गवेषणा का प्रदर्शन कर रहा था। उसने एक बड़े बरतन में नल से पानी भरा और बहुत सी रई और कुछ काफ पानी में डाल दिए। वे सब पानी पर तरने लगे। उसने प्राद एक गण्टा उस द्रव में डुबाकर उसने पानी में छुआ दी। सलाई का पानी से डूना था कि यह रई और वे प्राक उस तरह पानी में डून गए, मातो वे पत्थर या ताह व द्रव डे। उस तागो व तहरा पर हवाइया उडने लगी और मे एक प्रकार से घबराहट भरी। जस में उस विद्वान्निष्ठ वैज्ञानिक बाल सखा का देखने लगा। अपने स्था पर प्रथम उताहा ताह की जस में एक पुरजा निकाला और उसे अगुनिया में मराउत हुए कहा 'मुझे पायद नाहीर छोडना पडे, सम्भवत युनिवर्सिटी भी। यह चीज गत्र मट ता पी जा चुकी है और ग्राज ही लाड वेबल का यह खत मित्ता है।' उन्होंने खत में प्राग कहाया। कत्रन दा पत्निया, स्वयं वाइसराय की हस्तलिखित थी जिसमें उन मित्र गम्बोहन करने तमार बाल सरा को तुरत दिल्ली आने का निमन्त्रण दिया था।

मेरा सारा शरीर भय से भर गया था और कल्पित यती दशा में भिन्न उन एडवोकेट की भी थी। मने कहा— यदि यह आपकी ताज गधजा है। गिता व ता है दुश्मनो के सब जहाजो को, जा समुद्र में डे, दुगा दश। य ता व ता मया। ता ता है। वैज्ञानिक ने त्मका कोई जवाब नहीं दिया। उसकी अगुनिया का ता व ता हस्ताकित उस पुरजे को माडमाच रही थी। उसके ताह तग लोग प्रात मोत व म गी न रहे। समय भी बहुत हो गया था। हम लोग विदा माग कर ता गए।

शांतिस्वरूप दिवंगी आ गए। वेदिक में वह नाम उगा मितता था। व ग फोत्र पर उनसे दुशल प्रश्न हो जाता था। जस भारत में स्वतंत्रता। पर विवाग वार निर्माण में उस जादुगर ने भारत में जीवन फूला तो म गाकन्द और उन्ताम म उग को स्मृति में मन हो जाता था। हा, कभी काई नई पुस्तक विरचिता ता उगा म परा अग्रश्य जाता था।

वे उर्दू के मार्मिक कवि थे—यह सब जानते है। पर कविता यह कि श म भी करत थे। मुझे चिढाते हुए वह हिन्दी को सदा स्पेच्छ भाषा कहत थे।

एक दिन जब मैं उहे अपनी 'नगर वधू' की एक प्रति देने गया तब शिकजवीन का गिलास देते हुए बोले—'म्लेच्छ भाषा तो तुम अच्छी लिखते ही हो, यह किताब भी जरूर बढ़िया लिखी होगी।' किन्तु इतने ही में एक सम्भ्रात राजपुरुष आ गए—उनके समक्ष जो उहोने मेरा लम्बा चौटा परिचय दिया तो मेरी आखे गीली हो गई। मेने कहा—अब इनके सामने भी तो 'म्लेच्छ भाषा' की बात कहो। तब हसकर बोले—एक गिलास शिकजवीन इनकी खातिर और पिओ।

लखनऊ में जो ड्रग रिसच सस्था स्थापित हुई, उसमें उहोने चाहा था कि मैं उन्हे सहयोग दू। कुछ नात चली भी, पर पत्र व्यवहार होकर ही रह गया। अब मैं जिस साहित्यिक नशे में डूब चुका हूँ, उससे उबरना मुश्किल था। कभी चिकित्सक था, यह भी प्राय भूल चुका हूँ। बात मैंने उनसे कहदी थी।

उस दिन मैं लखनऊ स्टेशन पर बनारस की गाडी की प्रतीक्षा कर रहा था। प्लेटफाम पर दिल्ली जाने वाली गाडी खडी थी। मैं वेटिंग रूम के सामने बराण्डे में टहल रहा था। एकाएक नजर पडी सर भटनागर फस्ट क्लास कम्पाटमेंट से निकल कर एक ककडीवाले से मोल तोल कर रहे थे। लखनऊ की ककडिया लैला की ऊगलिया। मेने कदम बढ़ा कर दुकानदार से कहा—'यह माबा डिब्बे में रखदो। उन्होने मुह उठाकर देखा—'अरे तुम, लेकिन इतना क्या होगा। नही नही।' मैंने कहा—'रास्ते भर खाते जाइये और लौला मजनु पर शेर बनाते जाइये। प्लेटफाम पर बहुत लोग बिदा करने आए थे, उन सबसे उन्होने मेरा परिचय कराया।

फुरती और चुस्ती इस दरजे तक थी कि मैं कई बार सोचता था कि यह वज्ञा निक कही पागल न हो जाय। नीद बहुत कम आती थी। भरपूर नीद नही सो सकते थे। मुझसे उपाय पूछा तो मैंने कहा—'रात को बाल्टी में गरम पानी भरो। उसमें पैर डुबोकर दस मिनट बठो। फिर तौलिया से पर पोछकर सो जाओ।

इस प्रयोग से कुछ लाभ हुआ था। नीद आने लगी थी। आखिरी बार मिला तब कहते थे—'मैं अब पशन लेना चाहता हूँ। बहुत थक गया हूँ।' पत्नी के देहान्त के बाद जीवन में एक सूनापन वह अनुभव करने लगे थे। वह एक महान आत्मा थे, जो अपना जीवन सफल कर गए। उहोने अपने जीवन का प्रत्येक क्षण देश को उन्नत करने में लगाया और अपना सारा जीवन तपस्वी की भांति व्यतीत किया।

गुरुकुल सिकन्दराबाद में

सन् १९०६ के अत में मेरी आयु पंद्रह बष की थी। इस समय में अग्रेजीस्कूल में पढ रहा था। मेरे पिताजी, प० मुरारीलाल शर्मा और प० कृपाराम (पीछे स्वामी दशानानंद) के सद्प्रयत्नो से सिकन्दराबाद से चार मील दूर दनकौर स्टेशन के समीप एक विस्तृत भूभाग में गुरुकुल सिकन्दराबाद की स्थापना हुई। कुल तीन रुपए च दे मे

आए। गुरुकुल कागडी की स्थापना इस गुरुकुल के बाद म हुई थी।

गुरुकुल में प्रमुख प्रविष्ट होनेवाला मैं मेरा और प० मुरारीलाल शर्मा व ज्येष्ठ पुत्र देवेन्द्र का नाम था। पिताजी ने मेरा नाम स्न मे रखा दिया, उस प्रकार मेरा अग्रजी पढ़ना छूट गया। फिर तो अग्रजी ज्ञान बढ़ाने का कोई गुयोग ही मुझे नहीं मिला। उद् भाषा तो मैंने छुई भी नहीं। गुरुकुल में आते ही परका और साहित्य पढ़ने की मेरी प्राकृत साथ तीव्र गति से दोड़ने लगी। संस्कृत साहित्य और इतिहास का कोई ग्रंथ मुझे कठिन नहीं लगता था। हम दोनों की समान आयु था और दोनों ही आय परिवार की ज्येष्ठ सतान थे। देवेन्द्र ब्राह्मण थे और मैं क्षत्रिय। प्रायः तो गुरुकुल में विद्यार्थियों की सरया बढ़ती गई और इसी र्याति दूर दूर तक फैल गई। प० मुरारीलाल शर्मा गावों में जा जाकर गुरुकुल के लिए अग्र मंत्र, तरत और सिगाहा में अनाज की गाडिया भरवा कर लाते थे। हमारे गुरु बन प० प्रणाराम, प० श्यामलाल शास्त्री, प० जीवाराम आचाप और प० भूमिच शर्मा बगामी। संस्कृत, यात्रण, और वेद म जो की पढाई में मेरा खूब मन लगता था।

यह तो मैं पहले ही बता चुका हूँ कि जब म उर सात वर्ष की आयु का था तभी पिताजी ने मुझे कुछ भाषण, मंत्र, कविताएँ, चौपायों रखा दी थी। बुद्ध म अपनी बुद्धि से भी जोड़ लेता था और दस बीस गादमिया के सामने भाषण दिया करता था। अब यहा गुरुकुल में संस्कृत व्याकरण के साथ आयगमाजी मप्रणय के ग्रंथों के पठन पाठन में मेरी बकृता शक्ति को और भी चमका दिया। मध्या समय में गुरुकुल में सह पाठियों को उद्यान में एकत्र करके भाषण दिया करता था। एक दिन प० मुरारीलाल शर्मा ने मेरा पूरा भाषण टिप कर सुन लिया। फिर र्या था, मैंने पढी म छुड़ी पिता दी और कुछ विद्यार्थियों के साथ ग्राम पास गुरुकुल के लिए व रातया यात्रण करने के लिए भेजना शुरू कर दिया। हम पीत मंत्र पढ़ते, ब्रह्मसारी ग्रंथ म ग्राम वासियों के लिए देवदूत की भक्ति लगते थे। गाव में हमारे पाठन का ग्रामवासी अपना काम छोड़ कर हमें चौपाल पर ला बैठा और हमें पढ़ने मड जाता। पढ़ते म सब विद्यार्थी हाथ मूह धाकर दो चार वेद म पढकर रेश पाठना करते। और फिर मे खडा होकर अपना रटा हुआ भाषण सुनाता। १५ वर्ष के बालक में शारासारी भाषण सुनना उनके लिए कौतूहल और चमत्कार की बात थी। भाषण के उपरांत मिथा मागने पर हमें गुरुकुल के लिए बहुत सा मनाज देने के मन्त्र प्राप्त होते थे। रण भी और वस्त्र भी।

सायकाल जब हमारी मडली लौटनी, तो हमारी दिन भर की मनाई का रखा जोखा देखकर गुरुकुल अधिकारी प्रमत्त होते और मुझे शावासी दकर बढ़ाना दत। परन्तु मेरा मन विद्रोह में भर रहा था, मेरी शिक्षा में बाधा पड रही थी और मुझे गाव

गाव घूम कर भिक्षा करना मेरे स्वभाव के विपरीत था ।

पिताजी प्रति रविवार को मुझ से मिलने कस्बे से गुरुकुल आते रहते थे । जब आते माता द्वारा भेजी गई चीजे लट्टू घी, मिठाई कपड़े, कुछ न कुछ अवश्य लाते । एक दिन मेने पिताजी स गुरुकुल की अपनी पढाई में हानि होने की बात कह दी और यह भी कह दिया कि मैं गुरुकुल के लिए भीख माग कर अब नहीं लाऊँगा, आप इन लोगो से कह दीजिए । उन्होंने मुरारीलाल जी से कहा भी, पर उ होने पिताजी से मेरी ओर भी प्रशंसा करके कहा कि आपका यह पुत्र इस गुरुकुल का यशस्वी वक्ता बनेगा ।

पिताजी के उद्योग का कुछ परिणाम नहीं निकला । मेरा मन विद्रोह से भरता गया । मुझे संस्कृत के बड़े ग्रन्थो के पढने की उत्कट अभिलाषा थी । मैंने गुरुकुल के अपने दो सहपाठियो से काशी चल कर पढने की सलाह की । वे सहमत तो हो गए पर तु काशी तक पहुँचने का माग व्यय किसी के पास न था । न कोई अपने घर से काशी जाने की आज्ञा प्राप्त करने की आशा ही करता था ।

अ तत एक दिन मैंने उन दोनो को बता दिया कि मे आज रात को गुरुकुल में चुपचाप चला जाऊँगा । उन दोनो ने भी मेरा अनुगमन करने का वचन दिया । गुरुकुल के सामने ही दनकौर स्टेशन है । और हमे पता चल गया था कि दिन छिपने के बाद दिल्ली की ओर से जो ट्रेन आती है, वही बनारस की दिशा को जाती है । हम तीनों बिना कौडी पैसा और कपडा लत्ता साथ लिए उस रेल में जा बठे । टिकट हमने नहीं लिए । रेलगाडी अलीगढ स्टेशन पर पहुँची । हमारे साथियो में से एक अलीगढ का निवासी था । अलीगढ आते ही उसने कहा—यहाँ मेरा घर है । आओ उतर पडे । मे अपने पिताजी से अनुमति भी ले लूँगा और कुछ धन भी । उसकी बात का विश्वास कर के हम लोग उतर पडे और किसी प्रकार स्टेशन से बाहर आए । मे और दूसरा सहपाठी मुसाफिरखाने में बैठ गए और तीसरा सहपाठी अपने घर चला गया । किन्तु वह फिर न लौटा । हम उसके लौटने की प्रतीक्षा कर ही रहे थे कि हमारी ओर दो तीन व्यक्ति आते देख पडे । उ होने मुझसे पूछा—तुम्हारा नाम चतुरसेन है ? मेने उन्हे हाथ जोडकर नमस्कार किया और कहा—‘हाँ ।’

हमारा जो साथी—अपने पिता से आज्ञा और वन लेने गया था—इनमें से एक उसके पिता थे, जो अलीगढ आर्यसमाज के मन्त्री थे और मेरे पिताजी के मित्र भी । लडके से सब वृत्तांत सुन कर उहोंने उसे तो उसकी माता की देख रेख में छोडा और दो साथियो को लेकर हमे देखने स्टेशन आ पहुँचे । वे हमे अपने घर ले गए, खाना खिलाया और डाट डपट भी की । कहा—तुम अब यहा से बाहर भी नहीं निकल सकते, हम तुम्हे तुम्हारे पिता के पास भेज देगे ।

परन्तु रात्रि को हम दोनो युक्तिपूर्वक वहाँ से निकलकर स्टेशन पहुँचे । वहाँ

एक अपरिचित मारवाड़ी सठ से हम दानो की भरतु। उमा तमार गा स पर रोम कर हमे दो टिकट कानपुर तक के गिना टिण। तापुर र ता प र ता र म र नर पडे। गाडी से उतरते ही एक वृद्ध चरर न हमारा टिकट जा ता गोर जा कर र ता हमे लोटा दिया।

उसने पूछा—कानपुर म वहा जाआग ?

मेने कहा—हम काशी पढन क गिण जाना चाहत ह पर टिकट जापर ता ह।

मेरी बात सुनकर टिकट चरर वो बुद्ध जिताभा और उमा सगतागी पूवक हमारा वृत्ता त पूछ लिया। सुन कर वह हसा और उमा तमा ता ता पाठ ठोकी। उसने भोजन खरीद कर हम खान वा दिया और दा टिकट जा ता ता तफ लाकर हमे गाडी मे बठा दिया। इलाहाबाद हम एक धमा ताता म जाकर र और दो दिन मे हमने कुछ चढा दकटा किया। तीसर दिन ता टिकट रगे ता ता ता ता टन मे जा बठे। जब हमारी टन काशी स्टशन पर पहुँचा ता तमार पम ता ता ठिकाना न रहा।

काशी म

काशी मे एक बगीचा था, वहा कुछ विद्यार्थी निवास करत थे। धूम पिरो हम भी वही पहुँच गए और उ ही के साथ हम भी रहन लग। विद्यार्थी एन एन म भोजन करने जाते थे। हम भी भोजन करने गए। पर तु पति ता ता एन र उमा इए से खटक गई। उसने अपमानजनक रीति मे गिच्छी पत्तन पर ता ता, तम पर मेने कहा—(तुम्हारे स्वाभी पुण्याथ क्षेत्र सोने हुए * और तुम अतिथिया ता अपमा ता ता हो ? इस पर उसने कुछ अपशब्द कहे। अन तर और गिना। मागा पर पति ता ता उसने देने की इच्छा ही नही की। फिर बहुत मागा पर दर म अपमा ता ता ता साथ डाली। मुझे क्रोत्र आ गया। मेने पत्तन उगकर गिच्छी सगा तम पर पक मारी, जिससे वह हाय हाय करने लगा ता चाका मरा ता गया। मे अपमा ता ता हाथ पकड और जूते हाथ मे ले वहा से भाग गया। ता पत्ता ता समय ता ता।

इसके बाद हम लोग दशाश्रम घाट पर प्रा ता तना ता ता ता ता ता कर बैठते रहे। वहा कोई न कोई यात्री भोजन करा दा। जिम उमा तम तम ता ता ठहरे ये उसके मालिक ने मरा सस्त्रर गगालहरी क मुद्रा ता गा ता सुन और उममे प्रभावित हो कर अपने घर पर कथा करन क गिण मुताया। तम प्रा ता ता ता ता वहा भोजन मिला। इसके बाद उन्हाने मुझे अपन बगीच मे ठहरा टिण ता ता ता ता निरीक्षक नियत कर दिया तथा ठहरने और भोजन ता ता ता ता ता ता ता ता ता प्रकार पहिनने को मिल जाते थ।

में भिन्न भिन्न गुरुआ के पाम धूम धूम कर भिन्न भिन्न त्रिपया ता अथिया

करने लगा। एक दिन बगीचे के स्वामी सेठ ने मुझसे दुर्गा पाठ करने को कहा। मैंने स्वीकार कर लिया। परंतु दुर्गापाठ की जगह मैं लघुकौमुदी बोखा करता था। पाठ अर्थात् समाप्त हो जाने पर भोजन कर दक्षिणा फटकार अगोछे में पेटे का दोना ले चला आता था। सठजी को पता भी न चलता कि मैंने किस का पाठ किया। इसके सिवा हम दोनों ने यात्रियों की सेवा का भी धन्धा किया। प्रत्येक प्रतिपदा और पूर्णमासी को (उम दिन अनाध्याय रहता था) हम बाजारो में निकल पड़ते और अच्छी तरह किसी मोटे आसामी को भापकर उसे देवदशन कराने के लिए ले चलते। गली कचो में जहाँ आला दिवाला दीखता, एक कथा गढ़ कर यात्री को बता देते और पसा चढ़ाते। मेरा साथी पीछे पीछे आता और चढ़ावे का वन उठाता जाता। इस प्रकार कुछ पैसे एकत्र हो जाते। कुछ दानियाँ मिलती। पुस्तक खरीदने का तथा भोजन का खर्च निकल आता। ऐसा करने में गुण्डो और पण्डो से भी भगड़े हो जाते थे। अब हमने क्षेत्रो का भोजन त्याग दिया था। हम आठ दिन के लिए मोटी मोटी रोटी बनाकर अगोछे में बाँधकर ढाया में टाग देते। नित्य प्रातः गंगा स्नान कर एक रोटी खा दिन भर घूम घूम कर पढ़ते। इस प्रकार छः सात महीने व्यतीत हो गए।

इस बीच में पिताजी को हमारे काशीवास का पता लग गया और वे एक दिन भोर में ही अपना डडा लेकर हमारे बगीचे में आ धमके। बहुत डाटा डपटा। परन्तु मेरी पढ़ने की लगन देख कर तथा बगीचे के स्वामी से मेरी प्रशंसा सुनकर मेरे निवास, भोजन तथा पढ़ने की समुचित व्यवस्था करके लौट गए।

उन दिनों काशी नगरी में भारतीय संस्कृति की झलक मिलती थी। काशी की पतली लम्बी गलियों में परस्पर भीतो से सटी हुई बड़ी बड़ी अट्टालिकाओं से नगर भरा पड़ा है। वहाँ गलियों, चौराहों, बाजारों और स्थानों के नाम भी संस्कृतमय हैं। वहाँ के लोग का गंगा स्नान करके धोती बांधे नगरे शरीर, मस्तक पर चंदनलेप, सिर पर धनी लम्बी चोटी और गने में पड़े मोटे जनेऊओं ने मेरा व्याघ्र अनायास ही काशी की संस्कृति की ओर आकर्षित किया। दूसरा आकर्षण जिसे मैं अभी तक भी नहीं भूला हूँ विद्यार्थियों का उच्चस्तर से संस्कृत पाठ करना था। किसी भी गली में निकल जाता, वहाँ प्रत्येक अट्टालिका के किसी न किसी कक्ष अथवा कमरे से विद्यार्थियों के पाठ करने की संस्कृत ध्वनि मुझे सुनाई पड़ती। दस बीस विद्यार्थी नगरे बदन धोती पहिने जनेऊ धारण किए मस्तक पर तिलक छाप लगाए अपने गुरु के सम्मुख चटाइयों पर पलोथी मारे गठे रघुवश, हितोपदेश, पंचतंत्र, अष्टायायी, लघुकौमुदी, अमरकोष, ज्योतिष-शाम्न आदि संस्कृत पुस्तकों का पाठ पढ़ते दीखते थे। गुरु के प्रांत उनकी आदरनिष्ठा देखने की ही वस्तु होती थी। इस समय काशी की वह भांगी देखने को नहीं मिलती।

काशी प्रवास में ही मुझे चैत्र शुक्लपक्ष में आरम्भ होने वाले नवरात्र व्रत रखने

की प्रेरणा मिली। वहाँ बगीचे में गन विद्यालय में समग्रता की भाँति ही एक चढ़कर सुना। मुझे यह भी बताया गया कि उस व्रत की पूर्ति के लिये सभी विद्यालयों में पाठ्यक्रम होकर परम यज्ञस्तोत्र होता है। उसे यज्ञोपवीत की ओर से प्राप्त होती है। उसके लिए कार्य काय कर्त्तव्य नहीं रहता। उसे ही विद्या, सत्य, प्राप्त हो जाती है इस महत्त्व से प्रभावित होकर मैंने अपना व्रत प्रारम्भ कर दिया। यद्यपि बगीचे के स्वामी सठने बगीचे में हमारा प्रवेश प्रारम्भ में मुझे अपने घर पर दुर्गा पाठ करने के विषय में बताया था, परन्तु उस समय मुझे दुर्गा पाठ पर विश्वास नहीं जमा था। मैंने मुझे किसी विद्यालयी से प्रेरणा प्राप्त कराने का इसका महत्त्व समझाया था। अतः अगले दिन पर मैंने व्रत करने का संकल्प किया। मेरा पहला व्रत वाशा में ही प्रारम्भ हुआ और लगभग दो वर्ष तक नवरात्र व्रत का पाठ नियमित रूप से प्रवृत्ति जीवित में ही प्रवृत्त था। इस व्रत के प्रारम्भ होने से दो चार दिन प्रथम में अपना व्रत का पाठ प्रारम्भ हो जाता था। मुझे प्रथम व्रत करने और नाराज होकर उगता समाप्ति पर अपना सा की अनुभूति अच्छी तरह स्मरण है। व्रत के प्रथम दिन मैंने सायं ४ बजे पर सायं किया, चन्दन का तिलक लगाया, नया जनेऊ उदला और स्वच्छ साफ कपड़े पहने बनारसी अगोठ्या डालकर बगीचे की ही एक शूय और अंधेरी जगह पर बैठ गया था। पाँच ठ घण्टे तक मैंने दुर्गा पाठ का अत्यन्त उत्साह और उत्साह के साथ पाठ किया। दुर्गा की शक्ति मूर्ति की एक तस्वीर में वाजारा में ही परम यज्ञस्तोत्र लिखा था। उसे मैंने सामने रख ली थी। जब मैं पाठ कर रहा था तब ही मुझे प्रादुर्भाव अनुभव किया। मैं नित्य पवित्र मन से दुर्गा पाठ करता था और प्रार्थना अपनी शारीरिक शक्ति और बुद्धि वृद्धि का अनुभव करता था। व्रत के तीसरे दिन मेरा आहार केवल एक बार सन्ध्या समय फलाहार होता था। व्रत के समाप्ति पर मैंने अपने आने के बत्ताश लाकर विद्यार्थियों को प्रसाद सहित बाँटा दिया करता था। सायं ४ बजे जयपुर चले जाने पर भी उस व्रत का मेरा यकीन नियम रहा। पूर्ण रूप से व्रत के कारण मेरे ज्ञान तेज और महान ज्ञान की उपलब्धि ही स्पष्टतः प्रतीत होता था। मेरे व्रत से मेरा स्वास्थ्य और ज्ञान दोनों ही अत्यन्त में उत्तम हो गया। उस व्रत में मैं विशुद्ध ज्ञान और तेज वृद्धि की कामना कर रहा था। फिर भी मैंने उस मूर्ति उपासना करना नहीं समझा। मैं उसे शक्ति की उपासना करता था। उसे मैंने अपनी आय समाप्ति भावना को अपने हृदय में अधुण्य ही मानता था।

इस प्रकार काशी में लगभग १६ मास मैंने ३० हजारों शार्ङ्गी तथा अथर्व विद्वानों और पण्डितों से वेद, शास्त्र, एतन्मसकृत ग्रन्थों को पढ़ा। वहीं ही तत्कालीन संस्कृत शिक्षा प्रणाली में समय का दुरुपयोग होत दृश्य और एक मुयोग उपस्थित होकर

सन १९०९ के अंत में १९ वर्ष की आयु में मेरे जयपुर में वहाँ के प्रसिद्ध संस्कृत कालेज में पढ़ने चला गया। मेरा साथी वही काशी में रह गया। कालेज में प्रविष्ट होकर संस्कृत के प्रकाण्ड पण्डित महामहोपाध्याय पं० गंगाधर चतुर्वेदी का अतिवासी बना, जहाँ में संस्कृत और वक्ता पढ़ता था। कालेज में फीस कुछ नहीं देनी होती थी। रहता था आय समाज मन्दिर में। मेरे साथ एक और दक्षिणात्य विद्यार्थी वही रहते थे। वह हैदराबाद के निवासी थे, और महाराजा कालेज में एफ० ए० श्रेणी में पढ़ते थे। बिना फीस की पढ़ाई उन्हें जयपुर खींच लाई थी। शीघ्र ही उनसे मेरा मंत्री सम्बन्ध हो गया। मंत्री सम्बन्ध के जड़ में स्वाथ भी था। वह और मैं दोनों ही श्यूलन करके अपनी शिक्षा और रहन सहन तथा खाने पीने का खर्च चलाते थे। मुझे श्यूलन के मिलते थे तीन रुपये मासिक। जागिडा ब्राह्मणा की विश्वकर्मा पाठशाला में रात को बालको को पढ़ाना पड़ता था। पढ़ाना क्या था, भेद बकरियों के बच्चों को दो तीन घण्टे घेरना था। बहुत बच्चे सो जाते थे, बहुत पाखाना पेशाब कर देते थे, लड़ते झगड़ते शोर करते थे। उन सबकी सार सम्हार करना और दो ढाई घण्टे वहाँ बिता आने के मुझे मिलते तीन रुपये चेहरेसाही। मेरे मित्र अग्नेजी के छात्र थे, इसलिए उन्हें श्यूलन के ग्यारह रुपये मिलते थे। कोई एक ठाकुर बच्चा छठी सातवी कक्षा में पढ़ता था। उसे ही हिलाते थे बँह। इस प्रकार हम दोनों की आमदनी थी ग्यारह जमा तीन कुल चौदह रुपये। इन्हीं चौदह रुपयों में हमारी दोनों की छात्र गृहस्थी चलती थी। खर्च का स्वामी मैं था। दूसरे शब्दों में बीबीगिरी मुझे ही करनी पड़ती थी। लेकिन रहते थे ठाठ से। खाना बनाती थी समाज के चपरासी की स्त्री। वेतन पाती थी दो रुपये माहवार। पर ब्राह्मण की बेटा महीने में केवल पन्द्रह दिन खाना पकाती थी। शेष पन्द्रह दिन पक्वान्न और मिष्ठान खिलती थी उन्हीं दो रुपयों में। हम लोग गेहूँ नहीं खाते थे, जौ खाते थे। उन दिनों जयपुर में जौ ही प्रमुख खाद्य था। एक रुपये के जौ लेकर एक मास चलाते थे। हर महीने की पूरा मासी को जौ लाने का नियम था। यदि हम देखते कि महीना पूरा नहीं पड़ेगा तो एकादशी, रविवार आदि के दो चार उपवास कर डालते थे। सत्जी तरकारी दो चार पसों की हफ्तों चलती थी, बहुत सस्ती थी। एक पैसे की १०, १२ मूली और २ पैसे के एक सेर बगन। घी शायद पौने दो सेर। पर हम खुदा के बन्दे घी दूध के फेर में न थे। खाते थे जौ के रूखे टिक्कड़। कभी मिरच खटाई की चटनी से, कभी साग तरकारी तथा दाल के साथ। जयपुर में व्याह-शादी और गमी की ज्योनारें बहुत होती रहती थी। उनकी परची विद्यार्थियों के लिए हमारे संस्कृत छात्रों में आती थी। बारी आने पर मुझे भी मिलती थी। भोजन भी मिलता था खूब तर माल और दक्षिणा घाते में। कभी स्वयं जाकर डटकर खाता था, कभी परची किसी दोस्त को इस शत पर दे देता था कि वह दक्षिणा के पैसे मुझे

की कारवाई की जान थी। रुपए का ढाई सेर मिलता था वह कलाक द। चक्राचक। लेकिन रुपए का खरीदता कौन था। खरीद होती थी, दो आना चार आना मात्र की। दो आने का आता था सवा पाव।

मेरे उन दाक्षिणात्य मित्र का नाम था सूयप्रताप। अब मे उहे कप्टन कहकर सम्बोधित करता हूँ। कुछ काल पूव तक वह हैदराबाद राज्य के एक ग्रामिकारी थे, अब अवकाश प्राप्त है। पर खत मे जो तब लिखता था—'प्यारे सूरज' सो आज भी लिखता हूँ, और वह लिखते थे 'प्यारे चतुर' सो आज भी लिखते है। यह पचास साल के अभ्यस्त सम्बोधन अब जीवन की अस्तगत घडियो मे भला क्यो छूटने लगे। पर वह 'छोटे' उ हे तब 'मास्टर साहब' कहता था, अब भी 'मास्टर साहब' कहता हे। हा, हा, ठहरिए 'छोटे' का भा असल नाम बताता हूँ।

मेरे मित्र को कलाकन्द खाने का बहुत शौक था। आमदनी तो हमारी काफी थी १४) माहवार। पर खच अनियमित था। मुद्दा यह कि कभी कभी रूमाल की कारवाई का खच कुल आमदनी का दो तिहाई बैठ जाता था और बहुधा उपवास की नौबत आ जाती थी। यो हम वास्तव मे किफायत के लिए—और कहने को सयम और स्वास्थ्य के लिए हर रविवार को उपवास करते थे। उस दिन रविवार था—उपवास का दिन। परन्तु शनिवार को भी उपवास करना पडा था, क्योकि रूपराम पास नही थे। सिघाडा पार्टी रुपए को रूपराम कहती थी। दो दिन के उपवास ने मेरे मस्तिष्क का सतुलन बिगाड दिया था। रविवार का तीसरा पहर हो रहा था। उपवास खुलने के कोई लम्हरा नजर नही आते थे। मै भेडिए की भाति गुर्गता हुआ चक्कर लगा रहा था। उन दिनों कम्बरत भूख भी ऐसी लगती थी कि तोबा तोबा। जैसे पेटमे भट्टी जल रही हो। बार-बार पानी पीता था, पर पानी तेल का काम दे रहा था। पानी पीने से भूख और भी तेज हो रही थी। क्षण भर बठ जाता था, फिर चक्कर लगाने लगता था। बीच बीच मे बकता था। कलाक द को कोसता था। कलाकन्द खाता मै भी सब के बराबर था। पर उस समय पूरा दोष मित्र को दे रहा था। उनकी फजूलखर्ची की फजीहत कर रहा था। मित्र हमारे चुपचाप शीतलप्रसाद बने चारपाई पर पडे सीटी बजा रहे थे।

एक था महादेव। मन्दिर के नीचे एक कोठरी मे मा के साथ रहता था। गाय के समान सीधा बालक। कही तीन चार रुपए की चपरासगिरी करता था। अग्रजी की प्राग्मरी पढने हमारे पास आ बैठता था। उसके आने पर मिघाडा पार्टी 'चतुरग चमू' बन जाती थी। बातचीत के व्यग अलकार का केन्द्र होता था यही महादेव। आज महादेव भी पेन्शन पा रहा हे। हम लोगो की छोटी मोटी सेवाएँ महादेव कर देता था, उस दिन उसका पढना नही हुआ। सुबह से शाम हो गई उसे दौडते, किसी मित्र ने पैसे उधार नही दिए। ट्यूशनवालो ने भी अगूठा दिखा दिया। परन्तु महादेव जानता था कि

कृष्ण बलदेव दो दिन के भूखे बठे हैं। वह किसी तरह अपना पेट भराने में कामयाब हुआ, दुःसूत्री उसकी मां ने किसी से उधार लाकर ली थी। मत्स्यपुरी में मित्रता मित्रता दुःसूत्री सामने रखकर कहा—यही मित्रता है।

सूरज की तिरछी किरणों में दुःसूत्री चमक रही थी और रत्नरत्न बलदेव उस पर नजर डालते मन ही मन सोच रहे थे, एसा तीन मां काज मया जाण जिससे यह दुःसूत्री दोनों मूर्तियों का उदर पूर्ण कर सके और ताजिण माण जाण । दुःसूत्री को देखकर बोले—यह दुःसूत्री कभी है मास्टर मास्टर ।

बहुत अच्छी है, नया सिक्का है।

तो क्यों न इसका कलाकद मंगाया जाए ?

प्रस्ताव बुरा नहीं है।

‘छोटे’ ने हँसकर दुःसूत्री उठा ली। मत्स्यपुरी की आर फाफर जाण जाण, रूमाल की कारवाई।

महादेव जट बना बठा रहा, वह कभी मरी और श्रुता त सा मर मित्रता गार ।

‘छोटे’ ने डपटकर कहा—जाता क्या रती ?

तहसीलदार का बटा जो ठहरा । उपहार क्या न बो गया मत्रा । त्रिपुत्र दुःसूत्री तो उसकी नहीं। उस पर उसका अधिकार न था। पर आरिफार ता हमारा भी न था। महादेव मास्टर का सकेत पाकर उठा—रूमाल की कारवाई करे।

कलाकद आया। उसके तीन भाग हुए। मरी जो जलनर शयता ररता ता । मेने कहा—‘मिरा व्रत है, मं नहीं खा सकता।’ मर मित्रता मो यती रण, मत्स्यपुरी मां टाल गया, और यह ‘छोटा’ शतान निहायत बतन-तुफी म । री मारा ता ता सफाचट कर यह जा, वह जा।

भूठ नहीं कह रहा हूँ ‘छोटा’ की गवाही दिना सकता हूँ। आज ‘श्री’ है मान पक गए हैं। शायद एकाध दात भी उधर उधर हो चुका हो। त्रिपुत्र मर रहे हैं। नटखटपन अब भी उनमें है। आँखा पर चश्मा पहना है। पर त म रं भौर मरता हुई मेरी पचास साल की पुरानी परिचित उनको रं आँखा मर निण अब भी रती गार परण रखती है। आप उहे डास्टर युद्धरीरगिट के नाम से जाना है। इन्डियन यूव एट महानगरी दिल्ली के नगरपिता थे और फिर दिल्ली राज्य के स्वास्थ्य मंत्री। दो साल रोगशय्या पर रहकर अभी उनका जजर शरीर पनपा भी नहीं था कि उस उनमें और भ्रष्टो से भरे वातावरण से दिल्ली राज्य का भार कंधे पर डकर रती अभ्यस्त रमा हस रहे हैं। अब मैं उस जुगत में हूँ कि एक बार सिध्दा ता पार्ता तो राम रीट रं और उससे ठाठ से रूमाल की कारवाई की जाए।

सत्य बात तो यह है कि जयपुर के ये दो मित्र सूरप्रताप और युद्धरीरगिट मरे

ज्येष्ठ और लघु भ्राता थे। अन्य मित्रों से मेरे सम्बन्ध अवश्य बने थे परन्तु बीच में दूरी की रेखा वर्षों तक हम लोगों को एक दूसरे से दूर बनाए रखी। लेकिन सूर्यप्रताप और युद्धवीरसिंह मेरे अत्यन्त निकट रहे। यद्यपि सूर्यप्रताप हैदराबाद दक्षिण चले गए थे, फिर भी प्रतिवर्ष हमसे मिलने वे दिल्ली आते रहते, कभी मैं ही उधर चला जाता था। युद्धवीरसिंह तो दिल्ली में आकर बस ही गए थे। सूर्यप्रताप आयु में मुझसे दो वर्ष बड़े थे और युद्धवीरसिंह चार वर्ष छोटे। सूर्यप्रताप हैदराबाद दक्षिण में पहिले कैंप्टन और बाद में अकाउन्ट जनरल जैसे उच्चपदों पर रहे, परन्तु उनके हृदय में मेरे प्रति भ्रातृप्रेम तो अचल अडिग ही रहा। सूर्यप्रताप और युद्धवीरसिंह दोनों ही आय समाज के बुनियादी स्तम्भ और सचालक रहे। अपनी राजनीति और राजकीय सेवाओं में व्यस्त रहते हुए भी आयसमाज को जब आवश्यकता रही, उ होने उसका पथ प्रदर्शन किया।

युद्धवीरसिंह के बालक जीवन के नटखटपने की एक घटना का उल्लेख मैं ऊपर कर चुका हूँ, अब सूर्यप्रताप की बुढ़ौती की एक द्वाधोयी बात भी सुनिए।

एक बार मेरी हैदराबाद यात्रा बड़ी दिलचस्प रही। इस बार मैं सपत्नीक हैदराबाद गया था। नवाबों और बेगमों के अच्छे खासे तजुर्बे हुए। हैदराबाद रईसों का शहर ठहरा—जहाँ हर मुसलमान नवाब और हर हिन्दू राजा है, जहाँ की महल हवेलिया ऐसी विशाल हैं कि आप उनमें मोटरों में बैठकर मजे में घूम फिर सकते हैं, जहाँ सबको पर चलते फिरते आदमी एक एक लाख रुपये की अगूठिया पहनते हैं।

१९४८ की पुलिस कारवाही के बाद वहाँ बहुत उलट पुलट हो गई थी। नवाब, रईस, बेगमों बहुत सा जर जवाहर छोड़कर भाग छिप गए थे। जब दुबारा गर निजामी इतजाम हैदराबाद में स्थापित हुआ, तब वे राजा, रईस नवाब फिर लौट आए। उनको ठोड़ी हुई सब सम्पत्ति एक सरकारी विभाग के सुपुद हो गई थी। अब वे वापिस आकर अपने दावे इस विभाग के सामने करने लगे।

हैदराबाद के खास रईसों का एक खास तबका 'पायगा' है। इस तबके में बड़ी बड़ी रियासतें हैं। इस विभाग के अफसर मेरे मित्र कप्टन सूर्यप्रताप थे। कैंप्टन साहब कोरे अफसर ही न थे, एक सहृदय और ईमानदार भद्र पुरुष थे। रईसों, नवाबों के जर-जवाहरातों के दावे सुनते जाचते और चुनाते थे। साथ ही इन रईसों के घरेलू मामले भी उनके सामने आ जाते थे, जो कभी कभी बड़े मजेदार होते थे। ऐसे ही एक मामले की चर्चा मैं यहाँ कर रहा हूँ।

यह सन् १९४३ की बात है—अब से दो साल पूर्व। जिन दिनों मैं अपने मित्र कैंप्टन के पास ठहरा था, एक नवाब साहब और उनकी बेगम में झड़प हो गई। एक दावे में कैंप्टन साहब को सरकारी हुक्म मिल गया कि एक लाख रुपया नवाब के हिसाब से निकालकर बेगम को दे दे। नवाब ने सुना तो बाल नोचते, सिर पीटते कैंप्टन के पास

आए और रुपया बेगम को न दिया जाय, अगर त्रिण मित्रा विरोधी हरी। य। रुपया ने उ ह सलाह दी कि सरकारी हुम तो मे टाल नती गफता। य, याप प्रगम ग मुता कर ले, खुशामद कर कराकर उहे पिघना न तो मुमकिन है प्रगम भा। ताण रुपया छोड दे। बात नवाब के मन मे घर कर गई और जत्र इष्टाण्ट नाग। ती प्रगम को देने के लिए चले, तब नवाब उनके साथ हा त्रिण। विचारण ता और तथा। ती मुझे भी साथ लिया।

बेगम काफी मालदार थी और ठाठ मे रहती थी। दरवाजापती मत, या जाती थी। दस बीस सिपाही फाटक पर पहरा देत। तस नोग। ग ता - पीर- पीरानिया महरिया—रात दिन दौडती थी। हम नोग पथ ना न। ताण ता ग्यातिर तवाजा हुई। चाय नाश्ता पान इत्र की खातिर जत्र खतम हा गई। तत्र माम। ता ता शुरु हुई। बेगम परदे मे आ बैठी परदे के सामने त्र गण तसत्र ग्यात्र। यत्र मत मनौवल हुआ, गिले शिकवे हुए, व्यग्यो के तीर तमचे तत्र, अ तम तस गजा तस मर मिलाप का वातावरण पदा हो गया। त्रत चीत शुरू त्र प्रगम गौर त्रिण। ताण नवाब ने पूरक का पाट अदा किया, मे रहा श्रोता मुत मोत।

बेगम परदे मे जरूर थी, मगर परदा था महज दर्शन हा ता। ताण सा। कहे खुले से हो रहे थे। नवाब एक दिलचस्प मादमी थे, उनक नवाफा गौर ता। ता वातावरण को बहुत जल्द मौसम के अनुकूल बना दिया। प्रगम मुता त्रिण। ताण नफीस उदू बोलती थी। उदू मे हैदराबादी स्वर था। व्यग्य उत्र ताण, और गुरुमा गजब का था। मगर औरत की जात त्र सत्र त्र तत्रात्र प्रगम, पर और मया। ता ब धन मे जकडी हुई। जब कप्टन ने यह सफत किया त्र सत्र स त्रमर मे यापहा नवाब जसा फमात्रदार, खुशमिजाज, जातिमार ग्यातिर त्र त्र मि नगा। त्र त्र, प्रगम ता पडा, और जब नवात्र ने कप्टन की उस दलील पर त्रिण। ताण प्रगम ता गाना गाकर, तलुए सहलात्र, सिमेमा त्रिण। त्र, नजरा। त्र ता उ। ताण त्रिण। ताण और कब कब कसी हसी नाज दरदारी उठाई, गहा त्रारा। त्र योरा मुता। ताण किया—और यह बतलाया कि त्रिण त्र त्र भी त्रिण। ताण त्रिण। ताण पर त्रिण। ताण बेगम ही उनके दिल मे घर त्रिण बैठी है तत्र त्र गई भगद त्र सत्र या। ताण त्र वादल फट गए और हसी मजाक का वातावरण त्र गया।

बेगम ने कप्टन से कहा—गया कीजिए त्र य रूपय त्र मुझे त्रिण। ताण ता ताण को। इनसे एक पिटम बनाई जाए, पिटम की मातिर प्रगम त्र, त्र ताण प्रगम पा। त्र। और ये दिल्ही वाले राजा(से) कहानी लिख, कप्टन सारा त्र। त्र त्र सत्र। ताण ग त्र। कप्टन रिटायर होने वाले थे, उन्हा। त्र त्रिण। ताण कर लिया। त्रिण। ताण त्र ग। त्र बीस हजार की पुठिया मिलन की आशा हा गई और नवाब जा ता। त्र त्र। ताण।

वेगम से मेल हो गया। फिल्म बनाने और उसमें पाठ करने का पुराना इरादा सफल हुआ। एक लाख रुपये के वे नोट बैंक की जेब से निकलकर वेगम के दस्तखत होने के बाद फिर उनकी जेब में जा पहुँचे। वेगम ने कहा—ये रुपये अभी अपने ही पास रखिए।

आशा प्रसन्नता के वातावरण में हम घर लौटे। मेरे दिमाग में कहानी के प्लॉट चक्कर घटने लगे। यह नहीं वह, वह नहीं यह। पर हकीकत यह थी कि मैंने तो कभी फिल्म की कहानी लिखी नहीं, सुनता था फिल्म वाले कहानी का दस बीस हजार देते हैं। पर मेरा सौदा आज तक किसी फिल्म वाले से नहीं पटा, पत्र पत्रिकाओं में जो कहानी लिखाता हूँ, उसकी कीमत अधिक से अधिक पचास रुपये होती है। अब तो सब कुछ हमारे ही हाथ में था। रुपये एक तरह से हमारी जेब में थे, उसमें से जितना चाहें हम अपने लिए ले सकते थे। हम ही कहानी लिखनेवाले, हम ही पसंद करने वाले थे। कहने को तेज तर्रार मगर वास्तव में एक सीधी सादी भावुक, बेवस परदा-नशीन, दुनिया के जाल-फरेब से अपरिचित वेगम और बेकूफ नवाब हमारे फंदे में पूरी तौर पर फस गए थे। हम हर तरह नवाब दम्पति के विश्वास-भाजन थे। रुपये की मुझे ख़ास तौर पर सख्त जरूरत थी और चाहता था कि ज्यादा नहीं तो दस हजार रुपये तो अब में डालकर घर लौट। फिल्म बनेगी बाद में, मैं कहानी तो आज ही लिख डालूँ। इस प्रकार आवश्यक कहानी लिखने का मैं अभ्यस्त हूँ। यो कोई कोई कहानी बरसों अधूरी पडी रहती है, पर जब कभी किसी पत्रिका का तार आता है तब कहानी उसी दिन की टाक में खाना कर देता हूँ। फिर यह तो दस हजार की कहानी थी। घर लौटते ही हमने हिसाब लगाया कैसे कैसे खर्च होगा फिल्म बनने में? उसमें पहला आइटम—मैंने लिखा—कहानी के लिए दस हजार। लेकिन रात भर नींद खराब करने पर भी कहानी कुछ बनी नहीं। सक्डो प्लॉट आए और गए। पर आने जाते ही रहे, जमकर तो एक भी नहीं बठा। कहा से कैसे शुरू करे यही समझ में न आ रहा था! कप्टन इस सम्भव में चुप रहे। सुनूँ चाय पर बात हुई। कप्टन ने पूछा—लिखोगे कहानी तुम? मुझे कहना पडा—समझ ही नहीं पड रहा है कि लिख भी सकूँगा या नहीं।

कप्टन ने भी कहा—और मुझे भी समझ नहीं पड रहा है कि मैं इस फिल्म का इंतजाम कर सकूँगा या नहीं।

बहुत बातचीत, तक वितक हुए। कप्टन ने कहा—सुनो भाई, तुम तो दस हजार रुपये जेब में डालकर दिल्ली भाग जाओगे, लेकिन फिल्म न बनी तो मेरी मौत ही समझो। जि दगी भर बडी में बडी कुरबानी करके जो नाम और साख पैदा की है, उसकी बदौलत वेगम ने एक लाख रुपये हमारे निराय पर भोक दिया है। मेरी वह सारी इज्जत धूल में मिल जाएगी। मैं हैदराबाद में मुह दिखाने योग्य न रह जाऊँगा। हमें रुपये

मिले यह तो ठीक है, पर तु परगनशील औरत का रूपया के बरबाद तो यह हमें देखना होगा।

बात ठीक थी, मेरी आशाएँ हवा में उड़ रही थी। तब परगनशील औरत का रूपया तो बरबाद हमारे हाथ से होना ही न चाहिए। मगर मैं प्रसन्न नहीं। परिश्रम मन था—कहानी लिखकर इनके मिर मारी जाएँ, और तब तो बार रूपया मिले। तबिया जाएँ, आगे कपटन जाने और बेगम। और अब यह विचार पड़ा—आशा तब परगनशील औरत के रूपए की रक्षा की जिम्मेदारी हम पर है। उगाती र ता तर ता तमारा मसम प्रथम कत्तव्य है। अतः मैं एक निराश टुआ पृथ्वीराज कपूर मर मित्र हूँ, मैं सज्जन है, कलाकार के सब गुण उनमें है दोष एक भी नहीं है। उभय तर तर साता ता जाएँ, उनसे सहयोग मांगा जाए। वह यदि सहयोग करने का राजी तो जाएँ तो फिर सब ठीक है। काम बन जाएगा। निराश ही सुनना अगम ही गे। अगम भी सहमत हो गई। कहा—आज ही हमें जताज म प्रमर्द जाऊँ, राज का रूपए भिजवा रही हूँ। पर तु खच हमने नहीं लिया और तब म उतर पर पौर प्रमर्द। पौर कर फिल्म के उस कूचे में गए, जहाँ नामो हवा म उठे।

कपूर साहब से बातचीत हुई। उनका माराश यह निरता सि कपूर साहब कला पर फिदा है। कला के सामने रूपए तो तुच्छ समझते। यदि मद्र मद्र उर सौप दिया जाए, हिसाब किताब की हानि लाभ को परमात्मा के बाण और उतरी रुचि में देखल न डाला जाए तो वह सहयोग करने को प्रसन्न है। उता अगम उता हरण भी पेश किया कि वह कला के नाम पर मर मित्र है। फिर परगनशील औरत उठा रहे हैं, ऋणाग्रस्त है। उ होने यह भी बताया कि परगनशील मगर मारा मारा रकम उनके सुपुत्र कर रहे थे, पर हिसाब किताब के अभाव में कपूर साहब परगनशील चाहते, इसलिए उ होने मजूर नहीं किया। अतः मैं उता यह भी मारा करी। एक लाख में फिल्म नहीं बा सकती। ५७ लाख अथवा १० लाख रूपए चाहिए।

सब बातें सुनकर हम लोग ठड़े पड़े गए। गरम हाथों परगनशील परगनशील चढाने पर भी दिल में गरमी न आई। कपूर साहब की बातें सात ता मारा रूपए था कि यह रूपया दो, और भी बटोर नाओ और अगम सात ता मारा। ना हम मर म स्वीकार करो। जैसे खुदाई कामों में अहल को रखा नहीं, हम तमारा क तापुण तमारा म आपको या किसी भी परगनशील को लगन नहीं कर ता चाहिए।

हम सुश्री नरगिस से भी मिले, राजकपूर से भी मिले। मीरा से भी मिले। किंतु अब तो हममें ही मिलने वालों का ताता लग गया। उस ही म आग की तरफ यह खबर फल गई कि दो बेबकूफ एक लाख रूपए जत्र म लिए उता म आ घुम है। कहानी लेखक आएँ, फिल्म निमाताओं के एजेण्ट दलाल आएँ। निर्माता मारा,

इलायची, सोठ, अदरक, लाल हरी मिच, कहा तक गिनाए । सबने अपनी हारगुजारी ईमानदारी, अरुल्लूमी की बड़ी बड़ी दुहाइया दी । यह भी कहा—आते यहा बहुत हे, पर बात बनाकर चले जाने हे । तुम्हे कुछ करना हो तो निकालो रुपए हम पृथ्वी-राजकपूर को भी राजी कर लगे, नरगिस को भी, इनको भी, उनको भी । फिल्म हम एक लाख मे ही बना दगे, रुपए निकालो । कोरी बाते मत बनाओ । कहानी लेखनो मे कुछ पुराने मुलाकाती मिले, कहने लगे—फस्ट बलास स्टोरी देग । आधा तुम्हे देगे—पटाओ हमारा सौदा ।

नया तजुरबा था, नई दुनिया थी । ऐसा प्रतीत होता था, हम लोग भेडियो या पागल कुत्तो के झुण्ड मे आ घुमे है, और वे हमारे चौंके उडा डालने पर आमादा हे । वहा हमने नए शहजादो और शहजादियो की नई पौध देखी, जो लाख रुपए माहवार कमाते हे । वहा हमने ऐसे बेमुल्क नवाब भी देखे—जिनके एक वक्त के खाने का बिल ६०-७० रुपया आ रहा हे । शराब की, झूठ की, दुराचार की, बेईमानी की, लूटखसोट की वह एक नई दुनिया थी, जिसमे हमने मनुष्यता का नामोनिशान भी नहीं पाया । बेहूदी कलाहीन और अनैतिक चेष्टाएँ करने के लिए ये कथित कलाकार और तारिकाए क ट्रैक्ट करते है साठ हजार रुपयो का—पर रसीद देते है पंद्रह हजार की । इकमटैक्स से बचने का यह पेटे ट फरेब हमने उस कूचे मे आम देखा । एक मगहूर फिल्म अभि नेता के पास जाकर हमने कहा कि एक फिल्म मे काम कराने के लिए हम क ट्रैक्ट करने आए हे । उसने नही पूछा कि फिल्म कैसी हे, कोन बनाएगा, क्या अभिनय करना होगा । दो दूक बात कही—मं साठ हजार लेता हूँ । आप राजी हो तो लाइए क ट्रैक्ट । पर रसीद १५ हजार की दूगा । यही हमारा दस्तूर हे ।

कुछ जीव दूसरी जाति के मिले । ये थे फाइनेंसरो के दलाल । एक दूसरे की ज़ाया से बच प्रचाकर यह साबित करते हुए कि वे युविष्ठिर और हरिश्चन्द्र के सगे भतीजे हे, हम ले गए किसी शानदार बँगने मे, बढिया कार मे बठाकर, और फिर रस पोला हमारे कानो म हमकर रोकर आहिस्ता से, जोर से । इनका मतलब यह था—ये एक लाख रुपये तुम यहाँ जमा कर जाओ, बाकी रुपये हम कमायेगे । फिल्म हम बनना देग । स्टोरी फिस्टोरी सब लिखा लेगे । तुम्हे कुछ नही करना होगा । सिफ टुकर-टुकर देखते रहना होगा ।

चार दिन हमने इस कूचे मे कम धक्के खाए । चार दिन तक भी जब किसी के दात हमारे गलेजे मे नही गढे, तब फिर लानत फटकार और तिरस्कार । जाओ, जाओ, हमारा मत खराब मत करो । तुम्हारे जसे बहुत आते हे । पहले अटी डीनी करो, पीछे और बात ।

चौथे दिन हम ठण्डे ठण्डे वहा से खाना हुए । हमारे सब होसले पस्त हो चुके

थे। फिल्म बनाने का नशा उतर चुका था। गाठ हा हाथों में धरकर चलता था। मैं तो यह स्पष्ट था कि इस बेहदी यात्रा का खर्चा हमें भुगताना पड़ेगा। मैं तो भुगतान के लिए उन एक लाख रुपये को छू सकते थे, जो उन्होंने हमें देकर नशा हाथों में धरकर जिनकी रक्षा करना हमारा कर्तव्य था।

हैदराबाद लौटने पर और सभी बातें मुझ पर भुगतान की बातें सुनाई नहीं, रुपया जिस कदर लगेगा, मैं दूँगी, आप फिल्म बनाएँ। यह सुनकर आप तो आप पास रखिए। वे रुपए हमारे पास ही पड़े रहें। फिल्म बनाएँ। मैं तो भुगतान ही चुके थे। एक सयोग ऐसा आया कि उन रकम में अगस्त का भुगतान और भुगतान कर हमने नमक का कारोबार करना चाहा, जिममिनी में भी गया, अजमेरा गया म खोरो और मोटे पेटवाले मगरमच्छों के कारोबार में लगे। मैं तो भुगतान ईश्वर का वचन है कि इन मामलों में एक सात हा समय और तो कर देना होगा गाठ ही के खोए, बेगम के एक लाख रकम में भुगतान कर दिया गया।

मेरा जयपुर का विद्यार्थी जीवन समाप्त हो चुका था। मैं तो भुगतान यह इन दो अभिनय मित्रों के साथ हमें पत्र लिखना पड़ा। मैं तो भुगतान भी भुगतान हुआ। युद्धवीर जब आठवीं कक्षा में आए तो उन्हें एक ऐसा सयोग मिला कि विचार हुआ, जहाँ विद्यार्थी बैठकर पाठ्यपुस्तक पढ़ना, पालना निरन्तर आया गया। मैं तो इस सस्था का नामकरण किया 'विद्यार्थी प्रीति मन्दिर'। मैं तो भुगतान का आरम्भ मैंने अपनी उस कविता में किया -

आदए मिल बैठकर, एक सभा आयम कीजिए।

नाम उसका 'प्रीति मन्दिर', उसमें भी रस कीजिए।

यह उन्नति सोचाने, जो रूप है भारी यहाँ।

हम सबों को जोश में, तरताम तब तो लगेगा।

जयपुर से चले जाने के बाद भी मैं प्रीति मन्दिर में आगे बढ़ा। मैं तो भुगतान लिए निम्न लेख भेजता रहता था। इसके प्रतिफल में मुझे आयसमाजी की प्रसिद्ध विद्वान श्री गणपति शर्मा के दशना तथा श्री मधुसूदनाय शर्मा के दशना, धर्म शास्त्रों के विधिवत अध्ययन करने का सुयोग, सम्मान पत्रिकाएँ मिलीं, प्राप्त हुआ, और मुझे धर्म, दशना, साहित्य विषयों में गूढ़ ज्ञान प्राप्त हुआ। मैं तो भुगतान पुष्ट हो गई। मैं नेट्टर आयसमाजी बन गया। नित्य प्रातः स्नान करके मैंने सस्था करने का मेरा नियम था। प्रति रविवार को बद्धि रीति में स्नान भी किया जाता था। इन दोनों ही बातों को आगे चलकर मैंने बाद में कर दिया था। यद्यपि, श्रद्धा और विधवा विवाह के समयन में मेरे विचार मुझसे शिकन्दर आदि विद्यार्थी जी का काल में ही दृढ हो चुके थे। काशी अध्ययनकाल में मैंने ब्राह्मणों के अनन्य धर्म नियम

देखे, जिन्हें वे ब्राह्मणों (धन्विय, वैश्य, शूद्रों) को तो करने की आज्ञा देते और स्वतः उनसे मुक्त रहते। उनकी यह भेदपूर्ण धर्म व्यवस्था मुझे बिल्कुल भी पसंद नहीं थी। केवल इसलिए कि ब्राह्मण चारों वर्गों में सबसे प्रथम है और शेष तीनों वर्ग उसमें नीचे हैं, ससार के श्रेष्ठ सब मनुष्यों पर वे मनमाना अत्याचार करे। अपराध और पापों का दोष उन्हें ही लगता है, ब्राह्मणों को नहीं लगता। ब्राह्मण शेष तीनों वर्गों को तो प्रायश्चित्त की दण्ड व्यवस्था बताकर अपनी जेब गरम करे, माल उड़ावे परंतु अपठ और गन्दा ब्राह्मण भी पठित और शुद्ध आचरण वाले अन्य वर्गों से श्रेष्ठ समझा जाता रहे, और इन सब अनाचारों को वेद शास्त्रों की आज्ञा का नाम दिया जाय। इन सब बातों से मेरे हृत्पथ में ब्राह्मणों के प्रति विद्रोह और घृणा के भाव भर गए। मैं ब्राह्मणों के साथ झड़प हो जाने पर उनमें पूरी टक्कर लेता था और उन्हें अपने से बड़ा स्वीकार नहीं करता था। १९०७ से १९११ तक का काल मेरी पढाई का उत्कृष्टकाल था। आयसमाज के दिग्गज वेदांत निष्णात पंडित गणपतिशर्मा और वेद के महान् पंडित मधुसूदनाचार्य के अतिरिक्त मेरे भावी स्वसुर महामहोपाध्याय वैद्यराज कल्याणसिंहजी, जो उन दिनों अजमेर में धर्माथ पाठशाला एवं हिन्दु औषधालय के प्राध्यापक और प्रधान चिकित्सक थे, चौथे पाँचवें महीने जयपुर आकर मेरी शिक्षा और पढाई की पूछताछ करते रहते थे। उन्होंने मुझे आयुर्वेद पढकर चिकित्सक बनने की ही राय दी। चिकित्सक बनने की मेरे मन में लालसा सिकन्दराबाद में बंदीप्रसाद कम्पाउन्डर को देखकर उदय हो ही चुकी थी।

काशी में भी और जयपुर में भी मैंने पिताजी से अपनी पढाई के लिए कभी कुछ नहीं मागा। पढाई की फीस थी नहीं, पुस्तकों का काम में आयसमाज का कुछ काय करके अर्जन करके चलाता था। खाने पीने की व्यवस्था पहले बता ही चुका हूँ, दो आदमियों का खाना कुल जमा चौदह रूपयों में चलता था। पिताजी वष में एक बार आते तो ग्राम में मेरे लिए भैंस का घी, बढिया लड्डू, मिठाई और वस्त्र उनके साथ बाँध देती थी, जिनपर हमारी मिघाडा पार्टी पिताजी के लौट जाने पर बड़ी बेतकुल्लफी से टूट पडती थी। रात को दो बजे उठकर पढने लिखने की आदत मेरी शुरू से ही रही है। यद्यपि लिखने का ज्वार मैं उतारता था दिन में ही। रात को दो बजे आखिरी खुल जाने पर तो मैं पढने बैठ जाता था। अभी कभी रात को भी देर तक पढता रहता था। जब तक एक विषय पूरा पढ नहीं लेता था, तब तक मैं सोने की इच्छा करता ही नहीं था। यदि नींद के झोंके आ भी जाते तो मैं कमरे में जलते सरसों के तेल के दिए में से उगली की पोर डुबो कर थोड़ा सा सरसों का तेल लेता और आखों पर मल लेता था। चिरमिर लगकर मेरी नींद भाग जाती थी और मैं विषय की समाप्ति पर ही आखों को धोकर सोता था। काशी में भी इसी प्रकार सरसों का तेल आखों में लगा कर

बातचीत से निवटकर उन्होंने कहा—‘शाबास, बड़े अच्छे।’ उ होने पिताजी से कहा—बालक अत्यंत कुशाग्र बुद्धि है इसे संस्कृत और आयुर्वेद पूरा पढाओ। एक सप्ताह वे हमारे घर रहे। चलते समय चांदी के दो रूपए वे मुझे दे गए। मे लेता न था, परन्तु पिताजी ने कहा—जब दे रहे है तो ले लो बेटे।

बाद मे पिताजी की बातों से ज्ञात हुआ कि उन सद्पुरुष का नाम महामहोपाध्याय श्री कल्याणसिंह वैद्यराज है, अजमेर मे हिन्दू औपबालय नामक धर्मार्थ औपबालय मे वतनिक प्रधान वैद्य हे। घर इनका जिला बिजनौर मे एक गाव मे हे। अजमेर से प्रति मास अपने औषधालय के लिए कच्ची औषधिया खरीदने के लिए दिल्ली आते रहते हे। यहा यह बात बता देना आवश्यक हे कि दिल्ली का खारीबावली बाजार बहुत दिनों से सब प्रकार की कच्ची बनौषधियों की बड़ी भारी मण्डी रही है और अभी है। समस्त राजस्थान, उत्तर प्रदेश, मध्य तथा त्रिभुज प्रदेश को मनो ऐसी बनौषधिया जगली जड़ी बूटियाँ तथा खनिज औषध दिल्ली से सपनाई होती रही हे।

उनकी उक्त भेट के एक वर्ष उपरांत १९०७ मे पिताजी मुझे अपने साथ गुरुकुल कागडी का वार्षिक उत्सव दिखाने ले गए। उन दिनों गुरुकुल कागडी ग्राम मे था। गंगा के उस पार कनखल को गंगा का नौका पुल पार करके कागडी के क्षेत्र मे पहुँचते थे। बडा सुन्दर स्थान था और गुरुकुल के ब्रह्मचारी और अध्यापको की चहल पहल और वार्षिकोत्सव मेले मे मेरा मन खूब लगा। उत्सव पर अजमेर से वैद्यराज भी आए थे। तीन दिन वहा ठहर कर वे मुझे और पिता जी को अपने गाव मुहम्मदपुर देवमल, (बिजनौर) ले गए। यह स्थान हरिद्वार से दक्षिण दिशा मे पच्चीस मील पर है।

उनके घर मे परिवार के अनेक परिजन थे। इस समय उन सब सम्बन्धो का मुझे स्मरण नही हे। हा, इनना स्मरण हे कि हम तीन दिन उस ग्राम मे रहे और मुझे दोपहर को भोजन के उपरान्त चौपाल पर जाकर भाषण सुनाना पडता था। जहाँ तक मुझे स्मरण हे, मुझे वह लडकी भी दिखाई गई थी जिसके साथ मेरा विवाह होने वाला था। यह तो स्पष्ट ही था कि वैद्यराज अपने समस्त कौटम्बिक जनो को मुझे दिखाने के लिए ही हम अपने गाव मे ले गए थे। लडकी की आयु बारह वर्ष के लगभग थी और वह वही ग्राम स्कूल मे चौथे दर्जे मे पढ रही थी। लडकी से कुछ पूछने के लिए मुझसे कहा गया था। परन्तु मने उसकी सलज्ज मुद्रा देख कर कुछ नही पूछा। केवल उसकी पाठय पुस्तके उससे मगा कर मने देखी थी और फिर उसे लौटा दी थी। इसके बाद मे उसके पाम से उठकर बाहर पिताजी के पास चला गया था।

घर टौटने पर पिता जी ने माता जी को बताया कि इन लोगो ने सब सम्मति से लडका पसन्द कर लिया है और सगाई भेजने की तैयारिया वे कर रहे हे। एक सप्ताह बाद ही गाँव से एक नाई सगाई का दस्तूर लेकर आ गया और मेरे तिलक

लगा दिया गया।

मेरा विवाह विशुद्ध वैदिक आडम्बरहीन रीतियाँ से ८ अप्रैल १९१२ ई। मुहम्मदपुर देवमल (जिला बिजनोर) में सम्पन्न हुआ। उस समय मेरी माँ २१ वर्ष और मेरी पत्नी तारादेवी की १७ वर्ष की थी। ग्राम स्कूल की चौथी कक्षा पास करने के उपरांत वह अपने पिता जी के पास अजमेर चली आई थी और विवाह के समय तक उसने हिन्दी के साथ-साथ संस्कृत में भी उच्च शिक्षा प्राप्त कर ली थी—जिसका श्रेय पण्डित भवानीप्रसाद गुप्त को था। एक दिन वे ध्वनि-दर्शन की उपाय पाठ पुस्तक का एक सेट बाजार से खरीद कर वैद्यराज के पास गए और कहा कि अपनी पुत्री का मुझे पढ़ाने दो। उस दिन से वह उनकी शिष्या बन गई। इन पाँच पुस्तकों के द्वारा संस्कृत के अक्षराभ्यास अकारादि वर्णमाला से लेकर हितोपदेश पञ्चतन्त्र के ज्ञान के संस्कृत ज्ञान की प्राप्ति हो जाती थी। बहुत शीघ्र वह चल निकली और व्याकरण संस्कृत भाषा पर उसे अधिकार प्राप्त हो गया। वह टीका के सहित स्वयं भी पाठ्य के श्लोकों का अर्थ समझने और लगाने लगी। यहाँ तक कि विवाह ताल तक उसी रघुवश और अभिज्ञान शाकुन्तल भी पढ़ डाला। विवाह के समय मैं जयपुर में अध्ययन समाप्त करके घर लौट आया था। बाद में आचार्य परीक्षा पास करके जब मैं दिल्ली में रहने लगा, तब मैंने उसे आयुर्वेद विद्यापीठ की आयुर्वेद परीक्षा की तयारी कराई, जिसमें उसने प्रथम श्रेणी में पास की।

मेरा विवाह एक सांस्कृतिक समारोह के समान था और उन दिनों एक विवाह उत्सव का सांस्कृतिक समारोह रूप ग्रहण कर लेना बड़े भारे कौतुहल की बात थी।

विवाह के समय सारे गाँव में उल्लास भर गया था। प्रत्येक ग्रामवासि बारात और विवाह में सम्मिलित महान् व्यक्तियों का आतिथ्य करना, उनकी आज्ञा प्रज्ञा लाला और उनकी प्रत्येक सुख सुविधा का ध्यान रखना अपना कर्तव्य समझे हुए था। मेरे विवाह में श्री पण्डित पद्मसिंह शर्मा तथा आचार्य नरदेव शास्त्री वेदनाथ भी सम्मिलित हुए थे। ग्राम समाज के अनेक भजनीक एवं उपदेशक भी आए थे, जिसमें तीस दिन तक गाँव भर के भिन्न भिन्न के द्रो में भजन उपदेश तथा वादविवाद की धूम धाम मची रही। तीसरे दिन जब बारात विदा होकर चलन लगी, तब सारा गाँव विदाई का करुण भाव आँखों में भर कर हमारी बल गाड़ियों की ओर गाँव की सीमा पार कर लेने पर भी, खडा देखता रहा था। बिछुड़ने का आवेग बरातियोंके हृदयों में भी उमड़ रहा था। जब तक गाँव की रूपरेखा हमें दीखती रही, तब तक किसी भी बारातों में अपना प्यार भरी दृष्टि गाँव की ओर से नहीं फरी। गाँव के बल अपनी दुःख दुःख ताल में ध्वनि बजाते हुए हमें रेलवे स्टेशन की ओर लिए जा रहे थे।

दिल्ली में

विवाह के समय में सिकन्द्राबाद में ही था। अब मेरे सामने कहीं जन्मने का प्रश्न था। पिताजी की और मेरी राय दिल्ली में जन्मने की थी। दिल्ली ही सिकन्द्राबाद के समीप सबसे बड़ा शहर था। इस समय तक हमारे परिवार में हम चार भाई हैं, खेमसेन भद्रसेन, चन्द्रसेन और दो बहिनें कलावती, सौभाग्यवती थीं। मैं सबसे ज्येष्ठ था और चन्द्रसेन सबसे कनिष्ठ। चन्द्रसेन के प्रसव काल में माता बहुत रोगिणी हो गई थी और उस समय के रोगपुज्जो ने मृत्यु पयन्त तक उनका साथ नहीं छोड़ा। माता की मृत्यु सन् १९२७ में हुई थी। अब दिल्ली आते समय में अपनी पत्नी को माता की सेवा में छोड़ रहा था, परन्तु उन्होंने हठ करके उसे मेरे साथ भेज दिया। उन्होंने कहा— नहीं बेटे, बहू को अपने साथ ही रखो।

मैंने कहा—तब अम्मा, तुम भी मेरे साथ दिल्ली चल कर रहो।

‘तब यहाँ भैस और घर को कोन देखेगा ? नहीं, तुम जाओ बेटे। मेरी चिन्ता न करो। मेरा रोग तो अब मेरा चिर अभ्यस्त हो गया है।’ माता का हठ मुझे मानना पड़ा। यही नहीं, दिल्ली के बाद अजमेर, अजमेर के बाद बम्बई, बम्बई से दिल्ली जब मैं रहने लगा, तब भी उन्होंने मेरे प्रति अटूट स्नेह और मेरी सुख सुविधा का विचार करके उन्होंने कभी भी अपनी बहू को अपनी सेवा में नहीं रखा। उनका हठ अत्यन्त सशक्त और प्रेम से ओतप्रोत होता था। परन्तु वे इस हठ के कारण कितना दुःख पाती थीं, इसका एक सकेत मुझे उनके एक पत्र से प्राप्त हुआ जो उन्होंने कुछ काल बाद एक बार एक त्यौहार पर अपनी छोटी पुत्री सौभाग्यवती को, जब वह सुसराल में थी, लिखवाकर भेजा था। यह पत्र पुराने कागजों में प्राप्त हुआ है। पत्र इस प्रकार है— ‘मेरी प्यारी पुत्री सौभाग्यवती खुश रहो।

हमारी चिट्ठी आई बेटा तुमसे, पर तुमने कोई जवाब नहीं दिया। तीजों पर सब बेटियाँ मा के घर आती खाती ‘भूलती’ सब नए कपड़े पहनती। मैं अभागन ऐसी जो त्यौहार पर बहू न बेटा दीखती है। बीबी जिस विध परमेश्वर रखता है उसी विध रहना पड़ता है। मेरी तकलीफ की तो किसी बहू बेटा कू खबर ही नहीं है। तीजों से आठ दिन पहले तो मुझे तकलीफ हो गई थी एक दिन तीजों को आराम हुआ था फिर मैंने खाने को अच्छी तरह करा। गर्मी जो लगी मुझे जी प्रबराने लगा और सिर फूटने लगा फिर बुखार आ गया। अब कहो इस तरह कैसे गुजर होय। मेरा तो शरीर भी अच्छा नहीं रहता। हाथों से रोटी पो पो कर खा रहे हैं। हम इत्ता भी सुख न हुआ कोई यह हमारे यहाँ रहे। वह यहाँ घर न होय तो बेटियों को ही बुला ले। तुम तो मेसे पक्के दीदे की हो गई हो जो छै महीने में भी नहीं आती। बड़ी बहू की खबर लेने मैंने चिट्ठी डाली थी। मैंने उसको बुलाया था। वह नहीं आई। तुम ही आ जाओ।

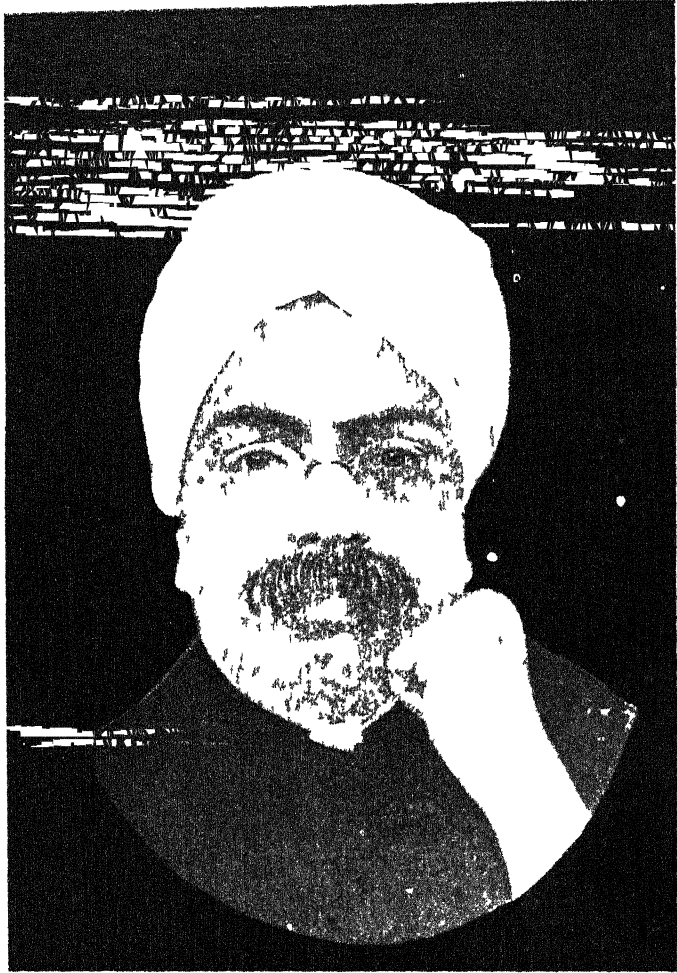
मेरी तबियत तो ठीक नहीं रहती। दिन रात गिर पड़ता रहता था। मैं गिरा हुआ राज से मेरा सब जरीर दुखता रहता है। मेरी तरफ प्रयत्न तबियत को ठीक करने का है। मैं किसी बात का फिकर मत करना।'

माता की बात मान कर मैंने पत्नी को अपने साथ रूढ़िवादी विचारों को तैयार किया और भद्रसेन को भी अपने साथ रूढ़िवादी विचारों को तैयार किया और भद्रसेन को भी अपने साथ रूढ़िवादी विचारों को तैयार किया। कुछ वर्ष बाद तो मैं चंद्रसेन को भी ले आया था। मैंने माता के साथ मैं अपने पुत्र की भाँति पोषित, शिक्षित और प्रभावित कर अपने साथ रखा।

मैं दिल्ली चला आया और कुछ दिन तक मालवीय मठ में रहता था। मैंने खोला। पर चला नहीं। बाद में खारीवाली में कटरा मठगंगा में गंगा तीर्थ में चली और वहीं रहने लगा। कटरा मठगंगा में एक सठ सावलगायक वस रहे थे। उगायत मुहल्ले में उन्होंने एक बहुत बड़ी धमशाला भी बनाई थी। मैंने उनका सुझाव कि इस धमशाला में विद्यार्थियों को पढ़ाने की एक पाठशाला और एक गंगाधर शोधाला खोला जाय, जिसे उन्होंने स्वीकार किया और दानों ही समस्याओं का समाधान की व्यवस्था का भार मुझे सौंप दिया। विवाह से प्रथम मैं आग्रहद विचारों पर अपना ही तैयारिया कर रहा था, दिल्ली में भी करता रहा। आग्रहद विचारों का आग्रहद विशारद परीक्षा मैंने नवम्बर सन् १९१२ में दी और उसमें प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण हुआ, तथा स्वर्णपदक प्राप्त किया। परीक्षा से निवृत्त कर मैंने मद्रास विशारद संचालित वैदिक विद्यालय एवं औपचारिक को मुच्चारूप में चलाया गया। विद्यार्थियों को मैं भी पढ़ाता था और मेरी सहायता के लिए दो और पण्डित रख लिए गए थे। इन्हीं दिनों दिल्ली में एक ऐतिहासिक भयानक घटी जिगद्दा में भी एक प्रयत्न हुआ है। यह घटना थी लाड हार्डिंग पर चादनी चाँक में बम का फटना था।

बग भङ्ग के कारण उन दिनों भारत का राजातिक वातावरण अस्थिर था। इसके कारण होने वाले आंदोलनों से भारत सरकार और विदेशी सरकारों का ही घबरा रही थी। इसी समय एम्बर सत्तम का दस्तावेज रखा और जाज पाम गद्दी पर बैठे। दिसम्बर १९११ में जाज पचम ने भारत में आग्रहद विचारों का प्रचार किया कि देश विदेशों में इसकी धूम मच गई। उसी अवसर पर यह भी घोषणा की गई कि दोनों बंगाल पुनः मिलाकर एक प्रान्त बनाया जाय है। कटरा मठगंगा पर दिल्ली को भारत की राजधानी बनाया गया। जाज पचम ने लाड हार्डिंग को अपना वायसराय नियुक्त किया। दरबार के बाद देहली में कई राजधानी बनाने के लिए दिल्ली की आधारशिला रखी गई और पुरानी दिल्ली की सफ़ीला व उस पार कुतुब की ओर फले हुए ग्यारह मील लम्बे भूभाग पर नई दिल्ली का नक्शा फैला गया। लाड हार्डिंग ने यह निश्चय किया कि वे धूमधाम में दिनों में प्रवेश करे। अतः उनका





2027

जलूम निकालने की बड़ी भारी तयारी की गई। सारा दिल्ली शहर सजाया गया। दूर दूर से लाखों आदमी दस सगरी को देखने के लिए दिल्ली में आकर एकत्रित हुए और दिल्ली १९११ की भांति फिर चहल पहल का केन्द्र बन गई। २३ दिसम्बर १९१२ को वायसराय लाड हार्डिंग हाथी के होदे पर शान से बैठकर चादनी चौक में होकर निकल रहे थे। उनकी सवारी का जलूम बहुत शानदार था। उनके आगे और पीछे सरकारी अमलो के झुंड चल रहे थे। चाँदनीचौक ठसाठस आदमिया से भरा हुआ था। मकानों के छज्जे बरामदे भरोख छते वही भी स्थान खाली न था। वायसराय का हाथी धीरे धीरे चादनीचौक के उस स्थान पर आया जहाँ मोती बाजार का चादनी चोक से प्रवेश द्वार है। मोती बाजार के सामने की पक्ति में जरा पश्चिम कोण पर एक दो मजिला मकान है। वही से एक बम प्रबल बेग से वायसराय को लक्ष्य करता हुआ आया। परतु क्षण भर में ही हाथी एक कदम आगे बढ़ चुका था। बम वायसराय के नहीं, उनके पीछे बैठे अग्ररक्षक से टकरा कर फट गया। भयानक चीखों की लहर वायुमण्डल में व्याप्त हो गई। क्षण भर तो किसी को ज्ञात ही नहीं हुआ कि यह धुआँ, यह धमाका, यह विद्युत् रेखा कहाँ से प्रकट हुए। परतु धुआँ कम होने पर देखा गया कि वायसराय होदे पर मूर्छित हुए पड़े हैं और उनके अग्ररक्षक के प्राण पखेरू उड़ चुके हैं। उसका शरीर क्षत विक्षत होकर खून से भर गया है। तत्काल ही पुलिस और फौज ने चादनीचौक को घेर लिया। उस समय वहाँ एकत्रित लाखों व्यक्ति एक प्रकार से कँद कर लिए गए थे। किसी का भी बच कर भागना कठिन था। मैं भी वही एक कमरे में बैठा यह दृश्य देख रहा था। लोगों में भगदड़ मच गई थी परतु भाग कर जाने की राह नहीं मिलती थी। मैं बड़ी कठिनाई से एक गली में दुबकता छिपता पीछे की राह होकर कम्पनी बाग में जा निकला, वहाँ से स्टेशन की ओर। प्रत्येक नाके पर पुलिस और फौज तनात थी और छोटे बड़े सबकी तलाशी ले रही थी, उनसे सब हालात पूत्र्ती थी, और सदिग्ध व्यक्तियों को रोक कर पुलिस के घेरे में करती थी। मुझे भी पुलिस के प्रश्नों के उत्तर देना पड़े। कभी किसी वृक्ष की आड़ में छिपना पड़ा। उम गनी मैं होकर स्टेशन जाने का माग पाच मिनट का है, परतु मुझे पूरं चार घट बहा तक पहुचन में लगे। स्टेशन से होकर मैं फतहपुरी पहुँचा, वहाँ से ग्यारीवाबली में मदगरो के स्टरे में अपने घर। मैं जोश और उत्तजना में उबल रहा था। परतु पहुचते ही मैंने प्रटना का राई रत्ती हाल में १० पृष्ठा में लिखकर अपने मित्र मुद्दरीरमिह को उँक रा भेज दिया। यह मेरा भाग्य है कि दश दि दो भयानक घटनाएँ, एक यही २२ दिसम्बर मन् १९१२ की, गोर दूसरी मरदार भगर्तामिह द्वारा असेम्बली में बम फरन की ८ अप्रल १९२८ को, मेने अपनी इन आँखा से देखी और दोना बार ही पुनिम न रोक पर अपने प्रश्ना को पूत्र्कर मुझे परेशान किया।

सेठ सावलदास के धर्मार्थ श्रीपधालय से मुझे बेटन के पात्रोंस रपण मागिण मिलते थे। और दिन भर काम करना पडता था। सुत्रह शाम श्रीपधाय म रागा देखता, दोपहर को पाठशाला मे पढाता तथा रात को गतापाना गिगना पता था। इही २५ रुपयो मे से मुझे अपने मकान का किराया आठ रुपया भी कटाना पता था। कभी कभी गृहव्यय के लिए मुझे पत्नी के जेवर भी बचने पडे। पिताजी की मिति मो सावारण थी। और सत्य तो यह हे कि अपने जीवन यापन के लिए किसी म सत्याना लेने की मेरी प्रवृत्ति थी ही नहीं। इसलिए जसी भी व्ययस्था सम्भता हाता म अपनी गृहस्थी बकेल रहा था।

मै अब शास्त्री परीक्षा देने की भी तयारी कर रहा था। ऐसे ही करने कराने अप्रन १९१५ मे मैने जयपुर सस्कृत कालेज की आयुर्वेद और सस्कृत शास्त्री की बीना परीक्षाए उत्तीण की। इसके बाद दिसम्बर १९१५ मे मैने आयुर्वेद विद्यापीठ की आयुर्वेद मे आचाय परीक्षा उत्तीण की। विद्यापीठ का मै सवप्रथम आयुर्वेदाचाय था।

इसी काल मे मैने अपनी सवप्रथम रचना 'हिन्दुओ की आती पर जहरी छुरा' विधवा विवाह के समथन मे तथा दूसरी रचना 'शरीर तालिना' शरीर गिगाना म सम्बध मे लिखी और स्वय प्रकाशित की।

२८ माच १९१५ को पिता जी के हाथ का लिखा एक पोस्टकार्ड मेरे पुराने कागजो मे अभी तक सुरक्षित है। यह पत्र उन्होंने गुरुकुल काँगडी से मुझे लिखा था। पत्र इस प्रकार है—'पिरिये चतुरसेन, आज २८।३।१५ कुसलता से आ गये हैं हम भी भाड के मारी चद्रसेन को नही लाये वो भी देख जाता मेला बहुत अच्छा होगा और हरदुआर मे भी अच्छी रोनक है हो सके तो किसी के साथ चद्रसेन को भज दो और अजमेर जाओ तो तारावती को ना ले जाना जो तुम से कहै तो ये के देना कि पिताजी ने मना कर दीना कि इसे मत ले जाना दिन से ही कहो और भद्रसेन ना जरूर आना मेरे जाने का मौका नहीं है। केवलराम। पत्र भेजत रना।

यद्यपि मेरा विद्यार्थी जीव। अनायास हो समाप्त हो गया था और मेरा गिगाना, हो चुका था, नौकरी भी करता था, परन्तु २५) मे महीन भर का ख। गताप म म जैसे व्यक्ति के लिए अत्यन्त मघषमय स्थिति थी। मेरी पत्नी परम गिगानो ता थी तो कमठ भी थी। घर का प्रत्येक काय उह अपने हाथ से करता पता था, न गौर। विश्राम। और मेरे प्रात काल से लेकर रात्रि तक काय मे जुटे रहने के कारण पति प्रम भी उनको पूरणरूप से नहीं मिल पाता था। हा, पति द्वारा आदर और अपने दास बा। देवरो की श्रद्धा उहे उस गरीबी और परिश्रम मे भी गौरव प्रदान करती थी। उमा गौरव से सम्पन्न होकर वे मेरी प्रत्येक सेवा मे सदैव तत्पर रहती और अपने हास्य म अपने दुख को भुलाए रहती। परन्तु मुझे मन ही मन अत्यन्त खीज और दुःख हाता।

ऐसी ही मन स्थिति मे नवम्बर १९१४ के एक दिन मैं आगरे जा पहुँचा ।

उन दिनों युद्धवीरसिंह आगरा कॉलेज मे पढते थे । मैं उनको ढूढता हुआ उनके बोर्डिंग हाऊस मे पहुँच गया । इतवार का दिन था और मैं भी कही दूर चलकर अपने मन का दुःख निकाल देना चाहता था । मैंने युद्धवीर से कहा—‘चलो किसी उद्यान मे, वही बाते करेगे ।’ भोजन आदि से निबट कर वे मुझे एतमातउद्दौला ले गए । आगरे का यह स्थान मुझे बहुत पसन्द आया और वही पर वृक्षो की छाया मे मैं अपने मित्र का हाथ पकडकर बैठ गया ।

मैंने मित्र को बताया कि मैं अपने कतव्य और धम का ठीक-ठीक पालन नहीं कर रहा हूँ । मेने जिस स्त्री का हाथ पकडा है उसे न अच्छा भोजन, न नए वस्त्र, न जेवर और न अन्य सुख दे सका हूँ । मैं दरिद्र का दरिद्र ही अपने सघषमय जीवन मे दिन काट रहा हूँ । मेरी आखे भर आयी और उस समय ‘दरिद्र क्रन्दन’ नाम से कविता की कुछ पक्तिया मेरे मुह से निकल पडी—

सहस्रहू विधना के लाडिले, सुखद महलन मे सुख सो पडे ॥
विगत ज्ञान भये सुख नीद मे, फल भोग रहे स्व सुकम को ॥
सर्बहि भोग रहे सुख अमित हो, सुख साज सजे ससार मे ॥
इकलो मे ही हत भाग्य हूँ, तरसतो फिर रह्यो एक हूक को ॥
सुख सो पूरित ससार मे, दुख ही दुख देख पडे मुझे ॥
भय दायिनी मूर्ति निरास की, तममयी दिशि व्याप्त लसे अहो ॥

इही दिनों मेरा परिचय साधुहृदय सेठ केदारनाथ गोयनका से भी हुआ । चाँदनी चोक के एक कटरे मे उनकी कपडो की बडी दुकान थी । विलायत से कपडो की गाठे सीधी उनकी आढत मे आती रहती थी । सेठ जी हिन्दी के अत्यन्त प्रेमी और उदार हृदय पुरुष थे । वे निवन विद्यार्थियो को अपने पास से फीस ‘पुस्तके’ अन्य वस्तुएँ आदि दिलाकर उहे उच्चशिक्षा पाने के लिए उत्साहित करते रहते थे । उनके अनेक पढाए हुए विद्यार्थी आगे चलकर हाईकोट के जज एव यशस्वी सजन डाक्टर बने ।

केदारनाथजी ने मेरे परामश से १९१५ मे मारवाडी लायब्रेरी की स्थापना की । स्थापना समारोह का क्षण अत्यन्त भावुक था । डा युद्धवीरसिंह भी इसमे उपस्थित थे । लायब्रेरी को उन्हाने अत्यन्त दृढता के साथ खडा कर दिया । वे मारवाडी परिवार मे जन्म लेकर भी धन से मोह नहीं करते थे । एक बार अपने सत्य व्यवहार के कारण उहे लाखो रुपयो की हानि उठानी पडी । महात्मा गांधी का विदेशी वस्त्र वहिष्कार-आन्दोलन जोरो पर था । विदेशी वस्त्र विक्रेताओ से काग्रेस यह प्रतिज्ञा करा रही थी कि वे विदेश से वस्त्र नहीं मगायेगे । सेठ जी ने कहा कि मैं इगलड की एक मिल को एक बहुत बडा आडर पहिले ही दे चुका हूँ । वह माल तो आरहा होगा । इसके बाद मैं

और नही मँगाऊंगा। परन्तु काफ़ेस न आग्रह किया कि आपका य मात जो रहा है नही करना चाहिए। सेठजी ने मिल का मान नही लिया। मात्र यात्रा पर रफ्तार गाह पर पडा रहा। परन्तु उठोने मित्र का वाया रफ्तार ता जात पाया। त्र दिया। यह बडी भारी आर्थिक चोट थी। मगे सेठजी का यापार ताता ता गया, अतत इस साधु सेठ को अपन अतिम लिन आर्थिक कर्त ताता म यता रता पता।

सन १९१७ व अत म मुझे एक मुयाग मित्रा। पत्रा प्रकाशीनी। ए० वी० कालिज के प्रिन्सिपल क अनुरात्र पर म आग्रह ता गातिर तापार ता लाहोर चला गया। पहिले मे अत ना ही रहा गया। ममान मित्र पर मा री ता एक सम्ब धी को लिखा कि व मेरी पत्नी का रहा तात्र ताथ। मत्र यो मय पोत्र अपठित थे। वे बडे ठाठ से मेरी पत्नी का लत्र लाहोर जान गाती ता म य ता ए टिकट उठोने नही लिए। चकर के मान पर व बडे रात्र रा रहा, इस् मात योरा को लाहोर पहुचाने जा रहा ह, चिटठी गा है। मेरी मजा ग र ता ता ताता कर वे सरकारी ह्वमनामे की भाति प्रदर्शन करत। रात्र भर उता ता गा, मेरी पत्नी ने रात भर राकर और उम मूढ ने साथ चल पता ता म्ना ता ताता ता विधान समझ कर वह ट्रेन यात्रा समाप्त की। प्रात ट्रेन तातो र रात्र पर पाता ता म स्टेशन पर हाजिर था। मने उ हे डिब्बे से उनारा परन्तु रा रात्र उ ता ता ता सब हाल सुनकर मैने उ हे फिराया द दिया और उनकी मुक्ति कराई। ता म पाता ता कि उनके पास रफ ये नही, और मेरी पत्नी म रफ मांगना उ ता ता ता ता ता ता के खिलाफ समझा। मे बहुत दिना ता अपनी उम म्ना ता ताता यतिर ता।

उन दिनो डी० ए० वी० कालिज का आयुर्वेद विभाग अलग ताया या ता ता के नियम आयुर्वेद विभाग पर भी शारान करने थ। यद्यपि म ता आयुर्वेद ता गाति यर प्रोफेसर था, मेरा बहुत मान सम्मान था परन्तु त्रिरी ता ताता ता मय ताता न थी। अभी एक वष भी नही व्यतीत हुआ था कि कात्र म र्था ताताया म ताता नियमो के एक विषय को लेकर खटा गई। प्रिन्सिपल क तमर म जात्र ताजिरा र रजिस्टर पर दस्तखत करने पडते थे, और दो चार मिनिट ता ता ता ता ता ता ता ता होता था कि प्रिन्सिपल सारे अगो म मुझे दंग रह ह। म अपना पद त्याग कर यता स्वसुर के पास अजमेर चला गया और वही मित्रिमा ताय करा ता। मद्रभा योत्र च द्रसेन को भी अपने साथ यहाँ ले आया था। ला तर म भर ताता म प्रयाता ता वाचस्पति दुर्गादत्त तथा गुरुकुल चित्तौड के मस्थापक रामा ताता ता (ता, ती यी, छिर विद्यालकार) भी रहे। प० शायमुनि, श्री राजाराम शाता, श्री मय, र्था ता विद्वानो से यही मेरा परिचय और स्नेह सम्बन्ध हुआ।

अजमेर में

अजमेर में मेरे स्वसुर ने अपना स्वतंत्र औषधालय 'कल्याण औषधालय' खोल रखा था। यद्यपि मैं अपना पृथक् औषधालय खोलना चाहता था, परन्तु उनके आग्रह पर मैं भी उसी औषधालय में बैठने लगा। एक चिकित्सालय में दो चिकित्सकों की दो दुर्घटनाएँ हो गईं। एक प्रौढ़, एक युवा। कुछ ही महीनों में मेरी चिकित्सा का यश फल गया। अजमेर के आसपास में राजपूताने की रियासतों के श्रीमानों एवं सरदारों में भी मेरी पैठ हो गई। चिकित्सा करने का मेरा अलग ढंग था। मैं वैज्ञानिक और मनोवैज्ञानिक दोनों ही पद्धतियों को रोगनिदान में प्रयोग करता था। मेरे मरीज मुझे अपना मित्र समझते थे। मैं वहाँ खूब चमक उठा।

यह प्रथम जन्म महायुद्ध के बाद का समय था। इस समय अजमेर में भारी प्लेग फैला। नगर में त्राहि-त्राहि मच गई। नगर के प्रमुख कार्यकर्ताओं कुवर चांद करण शारदा, आर्य समाज के मंत्री पंडित जीयालाल आदि ने एक स्वयंसेवक दल संगठित किया और भारी लोकसेवा में जुट गए। परन्तु प्लेग की महामारी की छूट से स्वयंसेवक रोगियों की परिचर्या से भयभीत रहते थे। मैंने आयुर्वेद योग से एक नुस्खा तैयार किया। उसकी गोलियाँ बनाई और स्वयंसेवकों तथा कार्यकर्ताओं की जेबों में उनकी एक-एक शीशी बाँट दी। मैं स्वयं भी रोगियों की सभाल में जुट गया। हम उन गोलियों को पानी के साथ दिन में चार बार खाते थे। एक गोली खाकर दो चार घूट पानी पी जाते थे। इस औषध का प्रभाव यह था कि इसे खाकर प्लेग क्षेत्र में प्लेग रोगियों के मलमूत्र में जितनी ही सूँघो फिरो, परन्तु उसके आक्रमण का शरीर पर कोई भय नहीं हो सकता था। ये गोलियाँ प्लेग में क्वच का कार्य कर रही थीं। दो मास के अथवा त्रैमासिक से जब हम निवृत्त हुए और प्लेग महामारी का निनाश हो गया, तब भी हम तथा नगर के अग्रिमांस व्यक्ति उन गोलियों का सेवन करते रहे। मेरे औषधालय में दो मास तक दो व्यक्ति उन गोलियों को कूटते, पनाते और मुफ्त वितरण करते रहे। इस प्लेग महामारी की कुछ अनुभूति कर। इससे निवृत्त होते ही मैं अपना उपवास प्लेग निभाट किया। २ ही दिनों एक यात्री ने मुझे तलवार चलाता दिखाया था।

अजमेर का १९१८ का सर्वांगीण मेरे लिए अत्यंत दुःखद रहा। सिकंदराबाद से पिता जी का तार मुझे पिता की मृत्यु का वृत्तपत्र मार रहा। मैंने मेरी छोटी बहिन श्री आर्य मुझे अत्यंत प्रिय थी। अत्यंत ग्लोमन तन्त्रियों से भगवान ने उसे रचा था। वह परम मित्रुणी और सौंदर्य की प्रतिमा पति परायणा स्त्री थी। उसका विवाह चार वर्ष प्रथम में ही शिखी निवासी एक होन्हार युवक से किया था। परन्तु मैंने उसका पति चुनने में भयानक भूल की। पति का परिवार भरापुरा था, सास रासुर देवर नन्द सभी

थे। यद्यपि परिवार सम्पन्न नहीं था, पर तुमने उम युवक का पाठ और रस रस कर सम्पन्नता पर विचार नहीं किया। समुराल मरना पर मांग गयी तो तब मांग पडा। सभी की सेवा और आज्ञापालन में वह भार सही व्यवस्था ही और मांग बारह बजे ही सो पाती। कुमुमकनी मुरझा गई और अंत में साधारण रूप में रह्य होकर पड गई। फिर भी उसने हम लोगों में कभी भी अपी न। तब का अिद्र का किया। बीमारी की मुनकर पिताजी उसे देखन दिल्ली गए और शरीर में भीतर बाद इलाज कराने ले आए। तार पाकर मेरा मन दुःखमा गया और मे तुमने मित प्रा बाद पहुँचा। कला का ढाँचा मात्र खाटपर पडा था। मेरी उत तब मांग का मर हास्यमूर्ति कला तो कभी की पुप्त हा चुकी थी। मुझे देखते ही उसमें मुग पर और मांग में हास्य आ गया। उसने आन्तरपूजा शब्दों में प्रतीतिनाम मरना-प्रतीति। उत गमं इसी सम्बोधन से कहा करती थी। उमके पति, मांग समुर गभी मरना पतिनाम। क्रोध और घृणा से मैंने उमके पति से कुछ कहना चाहा, पर कला त शपता मांग। व्याकुल दृष्टि से मुझे कुछ नहीं कहने दिया। उसने सोत्पाद कहा 'भरा जाया तो जाता था।' मैंने बहुत प्रयत्न किया पर उस नहीं बचा सका। मेरी मांग मिर रसा और मेरा हाथ अपने हाथों में थामे वह भगवान के घर चली गई। पिताजी त त त र्पात को कस कर पकड लिया और छाती पीटकर रो उठे छिन गया धीग ताता। मांग वह करण विलाप असह्य था।

कला को विदा करके जब मैं अजमेर लौटा तो मे उतत दया था। गमसुम था। कुछ दिन बाद मेरी पत्नी रुग्ण हुई और डाक्टरों उपचार दिया गया। एत तना मांग से कम्पाउन्डर ने पीने की दवा में मरफिया कम्पाउन्ड कर दिया सुगम पाता। पति की दशा बिगड गई और अब तब की स्थिति हो गई। और धूप मरग। उत तना मांग। अनेक उपचार किए गए। सार दिन सारी रात बीमारी पत्नी में मांग। मांग गया, ठण्डे पानी के ड्रिटे और बीच बीच में टटनाग जारी रता। २८ तना मांग। उन्हे काला दस्त और वमन हुई। तब कही जाकर उतकी प्राण रना हुई। त तना घटनाओं ने मेरे मस्तिष्क का खून जमा दिया और अत एक र्ति में मांग प्रामार प गया। मेरा सारा टेम्पचर मेरे मस्तिष्क में था, न मैं किसी का पठचानता था, त मांग सकता था। अखि मेरी फटी रहती था। लान मुग उतका रग हा गया था। पूरणा मास मैं भयानक रूप से बीमार रहा। लाल चन्दन की ठण्डी पानी पातर मिर्च में मेरे मस्तक पर रखी और बदली जाती थी। पाँच मिनिट में ता ठण्डी पनी र्द गम हो कर सूख जाती थी। सिकद्रावाद से मेरे माता पिता भी आ गण था। अत मरना परिश्रम और प्राथनाओं के परिणाम स्वरूप मैं स्वस्थ हुआ।

चिकित्सालय में हम दोनों साथ ही बैठते थे, पर तुम मेरी पूर रया। त तारग

मरीज मुझे ही अधिक बेरा करते थे। साहित्य की ओर रुचि होने के कारण लोगो का मे मित्र और प्रशंसक बनता जा रहा था। श्रीमंत राव साहब खरवा और श्रीमंत गोगालन्दि जी ने मुझ से खूब काम लिया और मुझे अपने मित्र राज्य परिवारो मे भी प्रवेश कराया। उन दिनों अजमेर धनवान सेठो की नगरी थी। लोढा ढुडा परिवार तो बहुत प्रिख्यात थे। ऐसे ही एक परिवार की एक सत्य घटना पर मैने 'बड नक्की' नामक कहानी भी लिखी है। अजमेर के सभी सेठ परिवारो मे मै चिकित्सा के लिए बुलाया जाता था। किसी भी अतपुर मे मेरे लिए परदान था।

प्रसिद्ध पुरातत्व विद्वान रायबहादुर गौरीशंकर हीराचंद जी ओझा से मेरा यही परिचय हुआ। उनके पुत्र श्री रामेश्वर ओझा बीमार थे। कुछ दिनों वद्वाराज जी ने उन्हें औषध दी, पर कुछ लाभ नहीं हुआ। अतत वे मेरी चिकित्सा मे आए और उहे शीघ्र ही अरोग्य लाभ हुआ। इस चिकित्सा से गौरीशंकर ओझा मेरे अन्य तम मित्र और प्रशंसक बन गए। अब वे प्राय प्रति रविवार को मेरे साथ बठ कर साहित्य और इतिहास चर्चा किया करते थे। बम्बई की प्रसिद्ध पुरतक प्रकाशन सस्था 'हरीप्रसाद भागीरथ जी' के स्वामी, सलेमाबाद किशनगढ निवासी, श्री पण्डित ब्रज बल्लभ की पत्नी कठिन रोग मे वर्षो से ग्रसित थी। अपनी पत्नी को दिखाने वे मुझे अपने गाव सलेमाबादपुर ऊट पर बठाकर ले गए। उनकी यह चतुर्थ पत्नी थी। भाग्य की बात कि मेरे द्वारा दी गई औषधि की दो मात्राओ ने ही उन्हें आश्चयजनक रीति से रोग के चगुल से छुडा दिया और वे एक मासमे पूग स्वस्थ हो गईं। पण्डित ब्रज बल्लभ अपनी पत्नी के आरोग्य लाभ से बहुत प्रभावित हुए। उ होने कहा—'आप जस गुग्गी यहाँ क्यो पाडे है, चलो मेरे साथ बम्बई जिस महालक्ष्मी की नगरी मे चादी सोने का समुद्र बहता हे।'

पण्डित राजबल्लभ शर्मा अनोखे जीव थे। ऐसे पुरुष अब पैदा नहीं होते। सौ रुपये रोज की कोफिन खाते थे, भाग का गोला और अफीम की गोली इससे पृथक। मुनाफे का नशा पानी था। सुबह ग्यारह बजे उनके जागने का समय नियत था। उनके जागने से प्रथम नौकर भाग का गोला और एक गिलास पानी उनके पलग के नीचे रख देता था। जगते ही उनका अभ्यस्त हाथ पलग के नीचे रखे गोले पर पडता, और उठते ही नारायण नारायण का पारायण करते हुए—वह गोला और एक गिलास जल उनके उदर मे पहुँच जाता। नौकर चाकर ताक मे चाक्चौकन्द रहते, एक पाखाने मे ढाई सेर पानी का लोटा भरकर रखता, दो खिदमतगार गंगासागर, गमझे पीली मिट्टी के डले, मजन, मिस्सी दातुन सम्हालने जुटाने मे व्यस्त हो जाते। पण्डित जी आवाज लगाते—'हम आए ?' और खिदमतगार कहता—'पधारो अन्नदाता।' और वह कान पर जनेऊ चढा, एक हाथ मे बीडियो का बण्डल, दूसरे मे दीयारालाई लिए झूमते हुए

ह । दो ढोली पान भी खत्म हो सकते है, तीन ढोली भी, अर्थात् पाच सो पान ।

कभी बारह बजे और कभी एक बजे मजलिस बरखास्त होती । इस समय पण्डित जी फिर भोजन करते । दो पूरी, दो तीन तरकारी, मलाई, एकाध टुकड़ा बरफी और फिर दो गिरमन्तार हाथ का सहारा दे पलग पर ले जाते । वातचीत, बोलचाल, जो ताश का खेल शुरू होने पर बन्द हुई सो बंद । ऐसा सच्चाटा कि सुई गिरे तो खटका हो । पण्डितजी जिन्दा है यह इसीसे प्रतीत होता था कि उनका शरीर गतिमान है । वह बीरे प्रीने पेचजान का कश खीचते खीचते सो जाते । कभी सोते सोते तीन भी बज जाते थे । यह थी पण्डित राजबल्लभ की दिनचर्या ।

जिन दिनों की यह बात है तबसे कोई आधी शताब्दी पहले कुछ मारवाड़के पुरुष कधे पर लोटा चोर रराकर पाव प्यादे बम्बई पहुँचे थे । उ ही मे पण्डितजी के पिता श्री हरिप्रसाद भी थे । बम्बई पहुँचकर उन्होंने पचाग छाप कर चार पैसे मे बेचना प्रारम्भ किया । पचाग बेचते बेचते प्रार भी पुस्तके छापन लगे । तोता मना का बिस्सा छापा, सिहासन बत्तीसी छापी, बैताल पचीसी छापी । प्राचीन वदक और ज्योतिष की पोथी भी छापों । अपनी छापी हुई पुस्तके कधो पर रख छाप ही गली कूँचो मे घूम घूमकर बेचते थे । जीवन भर यह यही करते रहे । धीरे धीरे उनका कारोबार बढ़ता गया और एक दिन वह बम्बई के मस्कृत पुस्तको के प्रसिद्ध प्रकाशक बन गए । हरिप्रसाद भागीरथजी की फम देशभर मे विख्यात हो गई । बम्बई मे अगेक बिल्डिंग खडी हो गई । मून स्थान अजमेर के पास सलेमाबाद गाव था । सलेमाबाद गाव मे एक ज्योतिर्लिंग है । इम मंदिर के कारण यह गाव बहुत प्रसिद्ध है । पर पण्डित राजबल्लभ न सनमाबाद रहते थे, न बम्बई । बहुत आवश्यकता होने पर आते जाते अवश्य रहते थे । इससे उनके आराम मे, दिनचर्या मे, नशे पानी के प्रोग्राम मे बाधा पडती थी । इसमे, मुकरर तौर पर रहते थे किशनगढ स्टेशन पर बागाण हण मकान मे । यही उनका प्रिय आवास था । उम समय पण्डित राजबल्लभ हरिप्रसाद भागीरथजी की प्रसिद्ध फम के स्वामी थे । हजारो रुपये मासिक की आय थी । कामकाज मुनीम-गुमाश्ते देखते थे । मन्चर रुपये मात्रा रूप से बम्बई म चले आते थे । त्रिशप आयश्यकता होने पर तार म पान था । हिगाव किताब से उ हने सरोकार न था । यह सब काम मुनीम-गुमाश्ते करते थे, जि हने नौकरी करते जि दगी बीत चुकी थी और यह नहीं कहा जा सकता था कि तौर से या मालिक । मालिक को यह सब देखने भालने का अवकाश कहा था ।

पण्डित राजबल्लभ से मेरी मुलाकात सन् १८ मे अजमेर प्रवासकाल मे हुई, तब से जो परिचय बढ़ा तो वह मित्रता की सीमा तक पहुँच गया । जब तब पण्डितजी किसी न-किसी बहाने सौगाने भेजते रहते थे, जिनमे एक सौगात भास थी, जिसका अब केवरा स्वप्न देखा जा सकता है । वह थी गुड की दो भेली । हर साल कार्तिक मास मे

भलिया मेरे पास पहुँच जाती थीं। प्रयत्न था कि पाँच मर, पाँचों में से, एक उज्ज्वल और स्वाद सुगन्धवाह, गहरी पुष्प-मर्षिण की भाँति एक ही गंध और उसी में यह खास गुड होता था। सम्पत्ता गुण-योगिता की एक ही भाँति ही थी। गुड में मेवा होती थी—केसर, हस्तूरी अम्बर भी जना जाता था। यथासंभव गुण-पुष्प-मर्षिण थी। पूरे साल भर में उस सौगात की प्रतीक्षा करता था जिसे मेरे गुण-पुष्प-मर्षिण प्राप्त करना रहा। पण्डित जी का मधुर स्वरभास, गहरी पश्चिमी पश्चिमी थी। प्राप्त करना तो दूर, कभी उधे जोरमें बोलत भी न गया गया। ताँतरी बरी गायन का कारण आख में आसू भर आते थे। टोटा पर हमी और पाया में मग मग यथासंभव वाणी, आज भी मरे मानस पटन पर अभी भी अस्ति है। पर जगदगण-विष्णु-इस महापुरुष से भी मेरा भगडा हा गया और जाता ही था। ताँतरी बरी वि-अदालत तक पहुँची। हाइकोर्टने डिग्री की मर-पुष्प-मर्षिण पर जगदगण-विष्णु-मै डिग्री के रूपे पण्डितजी से न मन्त्र कर मगा। वि-अदालत में पार-ताँतरी बरी रकम दस हजार के लगभग थी। पर तु-उमरी एक पश्चिमीया, पश्चिमी जाति और से मेरे ऊपर दस हजार का एक दाना ठोका दिया गया प्रयत्न। ताँतरी बरी निस्स देह कतई झूठा था, जो मुनीम गुमास्ता न चनाया था। पश्चिमी जाति और शायद सहमति मान ली गई थी। ताँतरी बरी मजदूर पर पर था। प्रयत्न में वि-अदालत दज थी। उन दिनों में बम्बई में रहता था। मेरा घर और रिश्ता भाग्य-रत्नी ही फम बिलकुल पास पास ही थी काननादी रास पर। अम्बर में गया तो साँतरी बरी व्यवसाय करने, पर सग दोष म जयर और म-जाँतरी बरी जाँतरी बरी और साथी थे। उन दिनों हम लोग पश्चिमी जाति पर था। जाँतरी बरी था। पर-मु-दिन थे वे, जबकि रात रात भर तीता गार्दभिया ताँतरी बरी जाँतरी बरी रास पर था। रई की ऊपज हमारी उगनिया की पाँच पर रहता था। ताँतरी बरी रास पर था। यथा ही रूपया तन मग में भरा था। रात साँतरी बरी मर-पुष्प-मर्षिण था। ताँतरी बरी दको और प्रकाशको में पारि-वामिक और रास म-पुष्प-मर्षिण था। ताँतरी बरी करनी पडती है। सँतरी बरी म-जाँतरी बरी।

हा, तो मेरे ऊपर दाना ठोका दिया गया और मुझे पण्डित जी को जाताया पण्डितजी को। दोष सोलह गाँतरी मगा था। मूत-ताँतरी बरी म-पुष्प-मर्षिण था। म-पुष्प-मर्षिण काम कर डाना था। फिर जो प्रतिक्रिया हुई, वे-मुनीम मगा था। ताँतरी बरी जाँतरी बरी रास पर था। यह प्रतिक्रिया स्वाभाविक भाँती। म-पुष्प-मर्षिण आ-पुष्प-मर्षिण पर उस फम के मुकाबले मेरी हैमियत कुल्ल न थी। म-पुष्प-मर्षिण म-पुष्प-मर्षिण गया कि यदि पण्डितजी की डिग्री हो गई तो मरी सारी जाँतरी बरी म-पुष्प-मर्षिण जाँतरी बरी बडी बेइज्जती होगी। पण्डित जी के मुनीम गुमास्ता की प-पुष्प-मर्षिण था। ताँतरी बरी

चिन्त्री ले लेना बाण हाथ का खेल था। मेरी भी, शोभ प्रौर प्रेचैनी से मरा जा रहा था। रह रह कर पछताया हो रहा था। बैठ ठाने मित्रता पर लात मार कर यह कहा का खराब काम जल्दबाजी मे कर डाला। लेकिन मुनीमो से खुशामद करना या सुलह करना या पण्डितजी का ही शरणापन्न होना मेरी गर्वीली प्रकृतिके सवथा प्रतिकूल था। भुक्ना और आधीन हाना मेने सीखा नहीं। परेशानी, बेचनी मे भीतर ही भीतर म घुलता रहा।

इसी बीच कायवश मुझे अजमेर जाना पडा। मेने एक विचार किया और आदमी भेजकर पता लगाया कि पण्डितजी किशनगढ वाली हवेली मे हे या नहीं। जबाब आ गया—वही मुकीम थे। मेने एक योजना चुपचाप बनाई और उनसे जाकर मिलने का इरादा दिया। यह इरादा सुनकर कल्याणसिंहजी ने इसका विरोध किया। वह भी बडे मान बनी हे। उन्होंने कहा—तुम्हे प्रथम तो मित्रता मे लडना ही न था। बुरा काम हुआ। आगे पीछे रुपया मिल ही जाता। न मिलता तो मित्रता कितनी अनमोल थी। पर अब जब लड लिए और झूठा मुकदमा तुम पर चलाया हे, तब उनके पास जाना मुनासिब नहीं हे। अब लडा, चाहे हार हो या जीत। दुश्मन के पैरो पर पडने अब क्यो जाते हो? पर तु मेने उनकी इस नेक नसीहत पर कान नहीं दिया। वास्तव मे मेरी योजना का तो उह पता न था और मैं चल दिया। मे जानना था कि पण्डित जी से मिलने और बात करने का समय कौन सा हे। उनकी दिनचर्या जानता था।

मै जब पहुँचा, तब चिराग जल चुके थे और पण्डित जी का दरबार लगा हुआ था। मुझे देखते ही पण्डितजी सन्नाटे के आनम मे रह गए। वह लडखडाते हुए उठे। आगे बढ़कर मेरा हाथ पकड लिया और ले जाकर अपने साथ गद्दी पर बठाकर कुशल पूछी। औपचारिक शिष्टाचार हो चुकने के बाद मेने ही नाटकीय रीति से हाथ जोड कर कहा—एक कष्ट देने के लिए आया हूँ, साथ ही अपने एक कसूर की माफी मागने भी, यद्यपि कसूर बहुत भारी है तथापि आपका हृदय भी महान हे। फिर भी माफी न मिले ता म चाहूँगा कि इन उपस्थित मज्जनों के सम्मुख ही मुझे दण्ड भी दिया जाए।

पण्डितजी कुछ भी नहीं समझे। मेरी अफ़ड और हठ को जानते थे। अब मेरा क्या अभिप्राय है यह उनकी समझ म नहीं आया। मेने तुर त गोला दाग दिया। कहा—आप श्रीमानो का दस हजार रुपया लेकर मे खा गया, अमल तो दूर व्याज भी न दे सवा। जिसमे आपको अदालत मे दावा दायर करने का कष्ट उठाना पडा। अब रुपया टाजिर है। असल और व्याज फलाकर जो निकलता हे, रुपया ले लीजिए और उसके बाद मेरे कसूर की जो मुनासिब सजा हो वह भी इन भद्र पुरुषो के समक्ष मुना दीजिए। यह कटकर मेने शरवानी की भीतरी जेबसे भारी भरकम चमडे का पस निकालकर उनके सामने गद्दी पर शान के साथ फेक दिया।

पर तु मेरा कलेजा तेजी मे घडकने लगा। कही दूहोने पस उठा लिया, और

रुपए गिने तो क्या होगा ? क्याकि पस म कुन जमा पा र पा र रुप म र पा र म र । शेष रही कागजो, चिट्ठियो, रसीदो का बजनी पुनिन्ना था, जो बजा कर बनाया गया था । मेरी नजर पस पर थी जो गद्दी पर पण्डितजी के तमब पर था । परन्तु यह एक मनोवज्ञानिक खेल था, मुझे भरागा था फिरपण्डितजी पा ता रूप म भी नहीं । उनकी महान निष्ठा और गौरव पर मुझे विश्वास था ।

पण्डितजी की शाखे जो नीचे भुजा तो ऊपर उठी । उपर म मारा नद भी नहीं फूटा । बड़ी देर तक वह उसी अचन मद्रा म पत्थर की रीत में भाँसा कर रहे । मुसाहिब भी सन्नाटे में । इस प्रकार ३ ४ मिनट बीत गए । मेरे फिरपण्डित मद्रा में हाथ जोडकर कहा—अधिक समय मेरे पास नहीं है क्याकि मैं आज रा रा ता मन से दिल्ली जा रहा हूँ । कृपा कर मुनीमजी वा हमम दीक्षण- वर यात्र प ता न और रुपए गिन ले ।

पर तु पण्डितजी उसी प्रकार निश्चल बैठ रहे और मैं तरंगित होकर आरगो से आँसू टपक रहे हैं । मुसाहिब लोगो को बड़ा आश्चर्य हुआ । पण्डितजी ने कहा क्या बात है, यह रुपया लाए हैं तो ले देकर बचाक बीजिए ।

इतने पर भी पण्डितजी बड़ी देर तक गुञ्जुप में आगम गिरा कर । आगम अभी तो से ऊपर उठी ही नहीं । मुसाहिबो ने फिर कहा यह बात ताहभारा मममम भी आती । यह कहते हैं तो आप हिसाब क्यों नहीं करते, रुपया कल म्या ली ।

अब पण्डितजी ने बड़ी दब भरी आवाज में, जो उतरा फिर पाता था । मैंने कहा—कैसे ले लू ? मेरा तो कुञ्जु नरी तरफ फिरवता ही थी । मभाँसा ता मम म्या म्य चकित होकर एक दूसरे का मह दर्शन लग । ममम पण्डित म्य म्या ता * ता ता ।

मैंने कहा—‘बात अमन में यह है कि पण्डितजी ने कहा था कि मैंने जग हजारी से देना लेना ठहरा । भून गए हैं । फिर जाता ममम * ता ता ता मी ता म करते है, इसलिए लेना ही नहीं चाहता, पर तुर्म ता मारा ता मी ता ता ता ता हूँ कि रुपया मैंने लिया था । त व्याज म्या त मम ता ता मर ता ता ता मी ता नहीं । अब अदालत तक नीवत आई । तहत लज्जित ह म मप ता ता म्या ता पर, मैंने अब असल रुपया मय मद दो और दल भुगान पर आमाता हूँ । पण्डितजी ने मारा पर मैं नहीं भूला हूँ ।’ मने मुनीम जो ता मार कहा ‘माममजी, रुपया मम ता ता, आओ यहाँ ।’

परन्तु मुनीम जो भी माप गूँध गया । त बा ता ता ता ता मभाँसा म मय फुस होने लगी । दो तीन एक साथ बोल उठ यह तो अजोब माम ता है मार, ता वाला कहता है रुपया लो, और लेनाला कहता है मरा ता कुञ्जु मति प तो हों ।

अब पण्डितजी की बोली फूटी । उन्होंने सक्षेप म मारा मिया मना मिया । इन्ह

भी घटकात्र रखा। कहा—रुपया तो इन्हीं का चाहिए था—उसकी डिग्री हाईकोर्ट से हो गई है। बम्बई के मुनीम ने मेरा मुटू काला कर दिया, इन पर बदले में भूठा मुकदमा खड़ा कर दिया, यही रुपया देने यह मेरे द्वार पर आया है। इनके आने से ही मेरे बाप दादो का उद्धार हो गया। तुम लोगों ने भी देख लिया। पर अभी यह ब्रजवल्लभ जिन्दा है। ब्राह्मण का बेटा हूँ,—पतित हूँ, अयम हूँ, कीटपतंग हूँ, पर इतनी बुद्धि रखता हूँ। ब्रजवल्लभ जान दे देगा, धम से नहीं डिगेगा। मुझसे बिना पूछे उन लोगों ने यह काम कर लिया। अब कहो, मैं इन्हे मुह दिखाने लायक कहा रहा ?

इतना कहते कहते ही ब्रजवल्लभ पण्डित बच्चे की भाँति रोने लगे। मैंने आहिस्ता से कहा—तो क्या आप यह ठीक सोच समझ कर कह रहे हैं कि आपका रुपया नहीं चाहिए।

नहीं चाहिए, नहीं चाहिए, नहीं चाहिए। भगवान को मुझे मुह दिखाना है।

मैंने आहिस्ता से अपना पस उठाकर शेरवानी की भीतरी जेब में रख लिया। दिल की थडकन रेग्यूलर हो गई। मामला फतह हो चुका था। दस हजार का मुकदमा खुद खुद हो रहा था, जिमके मारे महीनो नीद हेरान थी।

मैं एवाएक उठ खड़ा हुआ। नमस्कार करके मैंने कहा—बड़ा कष्ट दिया आप को, अब आज्ञा दीजिए, गाड़ी का समय हो गया है।

ब्रजवल्लभ पण्डित तडपकर उठ खड़े हुए। कस कर मेरा हाथ पकड़ लिया। कहने लगे—जा कैसे सकते हैं आप। इस घर से इस तरह जाना होगा ? अब अपनी डिग्री का रुपया लेते जाइए।

मुझे नाट्य का अन्तिम अभिनय पूरा करना था। मैंने जरा शान और रुखाई से कहा—श्रीमान, निस्सदेह आप बहुत बड़े आदमी हैं, फिर भी अपना रुपया माँगने को किसी के द्वार पर जाने का मैं आदी नहीं हूँ। यह मेरी मर्यादा का प्रश्न है। मुसाहिबों की आँखें मेरी प्रशासा से फूल रही थीं। वे आपस में कह रहे थे—ऐसे सज्जन पुरुष के साथ ऐसा व्यवहार न होना चाहिए। और मैं अपनी सज्जनता पर चमत्कृत हो रहा था।

ब्रजवल्लभ पण्डित ने हाथ जोड़कर कहा—मुझसे चूक हो गई है। अज्ञानी जीव हूँ। परन्तु अभी आप त्रिना भोजन करिए नहीं जा सकते।

मैंने कहा—रुह नहीं सकता हूँ। मेल से दिल्ली जाना है, इसी रात को।

नहीं नहीं, आज रात को नहीं। कल सुबह मैं अजमेर आकर आपके दशन करूँगा, कल तक आप ठहरेगे, मुझे इतनी भिक्षा दीजिए।

चैर, मैं कल चला जाऊँगा, परन्तु मुझे आज्ञा दीजिए।

क्षण भर पण्डित ब्रजवल्लभ चुपचाप मेरा हाथ पकड़े खड़े रहे। फिर उन्होंने

अपने सेवक को सकेत किया और उसने दूरी गुप्त हो जाने की तैयारी कर ली। मैं लपेट कर मेरे सामने रखी। प्रज्वलनभ तब- तब आगे, तब- तब पीछे, तब- तब, आपकी यह किश्त रुक गई। इस सात ही ता प्रजनन पर आज़िज़। समाप्त। तब उनके होठों पर लौट आया था।

दूसरे दिन भोर ही में दो मुमाहिदा और एक मुसाफिर आये। जहाँ तक मैं ने अज़मेर में आकर मुझे दर्शन दिए। ये दर्शन माताएँ और बहनें हैं। तब- तब का समय था। इस समय भला वह किंगी में मिन गानत था। जहाँ तक मैं ने जीवन में कितना व्याघात पहुँचा होगा।

मेने अभ्यथना की और बिना जात प्रमाण पाकर ही मुझे तब- तब कागज टेबुल पर से खीचकर अपनी डिग्री की भरपाई करवाया। तब- तब भी लगा दिया। रात ही को मैं इसकी मुकम्मिल तयारी करवाया। तब- तब होकर बड़े तपाक से वह रसीद पण्डित प्रज्वलनभ को करवाया। तब- तब रसीद पर एक सरसरी नजर डालकर वे शीरे में जात करवाया। तब- तब रसीद पहले ही कैसे दे दी ?

मेने कहा—आपका यहाँ पत्रारतना क्या था ? तब- तब कभी हकीकत समझी नहीं। आप मेरे यहाँ आ भर गए— नाम भी रसम भी करवा हो गई। रुपया मैं पा चुका। अब मुझे कुछ न करना पड़ेगा।

ब्राह्मण की आखे फिर भर भर भरने लगी। तब- तब बैठे रहे। रसीद टेबुल पर बैसी ही पनी रती।

फिर शीरे से पण्डित प्रज्वलनभ ने उम जान म पाया। तब- तब पर लिपटा था, और नोटों के तीन गटठर धीरे से मज पर रखे गए। तब- तब रकम है, व्याज और खच नहीं है। गिनती ज़िज़।

मेने कहा— इस घर से तो तब- तब मुझे गिनत मित ता तब- तब यात्रा में तब- तब देते तो भी न लेता। परन्तु धनता तब- तब मभी जाण ता था आप। रुपया जो तब- तब लते जाइए, मुझे खुशी होगी।

प्रज्वलनभ एकामर उठ राडे हुए। बोला— शरित समय पत्रा तब- तब आप को जाने की तयारी करनी है। तम्बई को मन तार र्दिया तब- तब लिए। अगले मास आ रहा है तम्बई। तत्र दर्जन तब- तब प्रमा तम्बई।

और पण्डित प्रज्वलनभ धीरे में शरित गानत लिए।

ऐसे वे प्रज्वलनभ जर्मा। तम्बई चत्रा की उतरी माता, मरु मरु मरु गई। रुपयो का ढेर लगाने को मेरी तालमा बर रती थी। मरु मरु मरु मरु मरु मरु रही थी, तभी मेरे अ यतम मिन स्यप्रताप सपत्नाएँ प्रजमेर आण और तम्बई जाई।

सम्बन्ध में मेने उनमें सलाह ली । उ होने भी मुझसे वहा जाने के लिए कहा । दो सप्ताह वह मेरे साथ रहे । चादनी रात में हम दोनों मित्र छन पर रात भर बैठे बातें करते रहते थे । कभी तारागढ पहाड पर मीलो घूमते रहते थे । बातों का छोर न था । इन दिनों 'अपत्यावतरण' नामक चिकित्सा और परिचया सम्बन्धी पुस्तक भी लिखी ।

बम्बई की बात मन में चल ही रही थी कि मुझ पर इस साभे के चिकित्सा व्यवसाय के अप्रिय दु परिणाम भी प्रकट होने लगे । और मैं वैद्यराज जी से 'अपत्यावतरण' को बम्बई जाकर छपा लाने और कुछ ग्रौषधिया लाने की कह कर प्रकेला बम्बई चल दिया । असल में मैं बम्बई अपना ठीया ढूढने के लिए चल खडा हुआ था । केवल मेरी पत्नी इस दुरभिसन्धि को जानती थी ।

बम्बई में एक मास जिता कर और वहा का रग ढग देखकर मैं अजमेर लोट आया । 'अपत्यावतरण' भी छपा कर ले आया था । दस पाच दिन रह कर और सबसे प्रेमपुवक बिदा लेकर पत्नी सहित मैं बम्बई चल दिया—अपने भाग्य के खेल खेलने । भद्रसेन को मैंने साथ लिया, वह मेट्रिक पास कर चुका था, पर तु च द्रसेन अभी छोटा था, इसलिए उसे मैंने सिकन्द्राबाद ७-ी क्लास में पढने के लिए भेज दिया ।

बम्बई में

१९१९ के मध्यकाल के एक दिन प्रभात में ही पत्नी और भद्रसेन को लेकर मैं बम्बई के विक्टोरिया टर्मिनस स्टेशन पर उतरा । उस समय मेरी जेब में कुल जमा पसठ रुपए की राशि थी । मेरी पत्नी के शरीर पर एक भी ग्राभूषण नहीं था । मैं केवल ईश्वर और आत्मशक्ति पर भरोसा रखकर इस महान नगरी में चला आया था । पाच वष इस नगरी में मैंने व्यतीत किए । बम्बई का यह प्रवासकाल मेरे चरम उत्कष और रयाति का काल था । यहां पहुँचते ही मैं ब्रजवल्लभ शर्मा के मकान में ठहरा और अपने योग्य मन्त्रान तनाश करता रहा । ब्रजवल्लभ शर्मा के कारिन्दो को मैंने मकान तलाश करने के लिए कह दिया था । मेरी दृष्टि में कालवादेवी रोड और बम्बई—बाजार का क्षेत्र ही उपयुक्त स्थान था जहा मैं अपना चिकित्सालय चलाना चाहता था । यही बस्ती मारवाडी सेठों का व्यापार के द्र थी । कालवा देवी रोड पर वादाम भाड के पाम एक नई बिल्डिंग बन कर तयारी पर थी । मैंने उसी में दो कमरे लेने की चण्टा की । अत मैं बन्धी दौड धूप के बाद उसी बिल्डिंग में दो कमरे पहिली मजिल पर तीन सौ रुपए मासिक पर मिल गए थे । अब तक मैंने अपनी जमा पूजी पगठ रुपए बडे यत्न में बचा कर रग थे—यहाँ तक कि कहीं जाना होता था तो पदल ही जाता था, ट्राम में भी नहीं बढता था । मकान मिलने पर मैं केवल फश बिछा कर ईश्वर का नाम लेकर बैठ गया । दस बीस रुपयों की कुछ ग्रौषधिया भी बनाकर तैयार कर ली । मैंने अपना साइनबोर्ड लगाया—'अजमेरवाला वैद्यराज' ।

श्रीर समाज को अतिक्रान्त कर रही थी। परन्तु एक मुस्लिम युवक हाजी मुहम्मद अल्लारखिया शिवजी की मैत्री से टकरा कर मेरी साहित्य दिशा ने नया मोड़ लिया। मे अपने चारो ओर फैले हुए श्रीर जीवन को छूते हुए वातावरण और परिस्थितियों से प्रथक हो अपने युग के रेखाचित्र बनाना छोटा मानव मन के चित्रण में मग्न हो गया। हिन्दी साहित्य के इतिहास में गद्यकाव्य का प्रथम जम 'अतस्तल' की रचना कमें हुई यह महत्त्वपूर्ण साहित्य रहस्य ही में अब प्रकट कर रहा हूँ।

सम्भवतः ग्रीष्म काल था। एक दिन भोर ही मैं म हाजी के आफिस में जा बसका। इरादा खूब अच्छी तरह लडने भगने का था। हकीकत यह थी—कि उ होने बिना मेरी अनुमति लिए मेरे तत्काल छपे उपयास 'हृदय की परख' का समूचा गुजराती अनुवाद पत्रिका 'बीसवी सदी' में छाप डाला था। इस साहित्यिक अपहरण की खबर दी थी मुझे मेरे तरुण मित्र श्री महावीर प्रसाद दाधीच ने। श्री दाधीच आज बम्बई के नामांकित सॉलीसीटर हैं। उन दिनों वे कानून पढ रहे थे। वे हिन्दी और गुजराती के साहित्य प्रेमी थे। गुजराती कविता करते थे। वे शिष्य की भाँति मेरे निकट आते और अपनी स्फुट रचनाएँ मुझे सुनाते तथा वाहवाही लेते थे। उ होने मुझे यह सूचना दी थी, सूचना दी थी खुशखबरी के रूप में। उस समय उनकी नजर में किसी रचना का पत्रिका में छप जाना लेखक का सबसे बड़ा मान माना जाता था। फिर 'बीसवी सदी' गुजराती की नामांकित पत्रिका थी। जिसके नाम का बम्बई में डका प्रजता था। श्री दाधीच अपनी कोई रचना उस पत्रिका में छपाने को छटपटा रहे थे। फिर समूचा उपयास धारावाही रूप से छपना तो बड़ी भारी बात थी, उसी की उन्होंने मुझे सूचना दी। अब तक मैंने गुजराती बरामाला पहचानली थी और निरन्तर गुजराती भद्र परिवारों में चिकित्सा के नाते सम्पर्क होने से भली भाँति गुजराती समझने पढने का अभ्यास हो गया था। बोल नहीं सकता था। अब भी बोल नहीं सकता हूँ। उपयास आधे से अधिक छप चुका था। ताजा एक श्री दाधीच न दिया था। मैं पढता था और खुश होता था। फिर भी खुशी को छिपाकर पत्रिका के सम्पादक से लाई करने गया, अभिप्राय था—उसे धमकाकर कुछ पसे भाँसने का।

बड़ी चिन्तित गली लूचो मैं उनका आफिस था। खयाल होता है, श्री दाधीच मेरे साथ थे। गायद पाचवी मजिल पर आफिस था। तब अमेरी तकडी की सीढिया। पुराने ढंग की बेतुली सी बिल्डिंग। जाकर देखा, पूरा कमरा पुस्तकों, अलमारियों, पत्रिकाओं से ठसाठस। बहुत सी पत्रिकाएँ, पुस्तकें ब तरतीबी से इधर उधर पडी हुईं। नीकर चाहर बोई नहीं। वह अकेले ही अपनी घूमने वाली कुर्सी पर डैस्क के ऊपर झुके शायद प्रफ पढ रहे थे। देखा तो खडे हो गए। लम्बा छरहरा बदन, गौर बरग, बड़ी बड़ी प्रसन्न आँख, जिन पर छोटे अध चन्द्र तालों का चश्मा। श्रीदाधी नजर चश्मे

मे, और आधी चश्मे के बाहर। गफ सांग पाजामा, पाँच रंगी की शोभा, नीला घुघराले बाल और मजेदार ट्रोटी भी था। तभी उसने लीला को देखा। लीला परिचय सुना तो हर्षोल्लास से चीग उड़। गीतसर मगल हुआ। पर लीला ने तब मनना किया, मगर सुना नहीं। खुद पठे नहीं, दुर्गा के पाँच पाँच रंग, मगल समूह ही साहित्य ग्रन्थना का लेखा जोया समझाने के। प्रोच प्रोच मी साहित्यना का आलोचना भी, प्रत्यालोचना भी, आर उर उर त। लीला भी। प त त। कु उ साहित्य के गहरे रस में डूबी हुई। घटो पर घट प्रोच त। लीला मगल पत्रकार बैठा नहीं। खडा ही रग, दुर्गा के पौछ भुवा तुपा। लीला मगल मालिक को उसके कारोबार का लेखा जाया देना तो। लीला त। लीला त। तीन घटो की मुलाकात जसे बीस वष की प्रौ मरी म परिचिता त। लीला त। मे बडा कट्टर हिन्दू था। मुसलमान के प्रमन चाय पास त। लीला त। लीला त। हिंदू मित्रो की उस मनोवृत्ति से हाजी परिचिता थ, उमर उ। लीला त। खातिरदारी का प्रश्न ही नहीं उठाया, मगर हमारा ग सा त। लीला त। कात सूखी ही खत्म हुई।

पर तु ये मुलाकाते नम्मी होती गर। आर आर ग त। लीला त। मेरे यहा आते, कभी मैं उनके यहा जाता। नकि। लीला त। कर पाता था। एक मुसलमान ने खिदान खिलान के लिए प्रमन त। लीला त। भ्रष्ट करना होता। उह फिर छुप नीच, साफ त। लीला त। की मुलाकाते, या तो मसादो के सहारे उठे टुप, या गाराभ हीमसा पर पड़े प, साहित्य वार्तालाप में बीत जाती थी। समय तापना त। लीला त। और गुजराती के हाजी अच्य पणित थ। लीला त। सुनाते और मे उसी की जोच ताउ निदानता मरकतया त। लीला त। हींसी के ठहाको से दीवार टिनने लगती।

मेरा सबप्रथम गद्य काव्य जा प्रताप म द्रुपा था, त। लीला त। मे।' अजमेर से बम्बई आ रहा था, ता पट। लीला त। गया। वहा राजा तुम्भा के विजयस्तम्भ पर त। लीला त। कि सामन बकरियाँ का एक भुण्ड आता नजर प गया। तम, उमा त। लीला त। लिख डाली, और प्रताप को भजदी। उन दिना तम में परिचिता त। लीला त। करता था। इसम दो लाभ होते थ, लोक के पम त। लीला त। का भय न था। सम्पादक पारश्रमिक नहीं दते थ, उमा त। लीला त।

हाजी वो भी वे चित्तोर गली पकिया मुताउ, ता मुतर उमा त। लीला त। की, लेकिन जसी मैं चाहता था वसी नहीं। फिर उमा त। लीला त।

ढग पर कलम चलाइए, रग रहेगा । वडी तीखी, कलम पाई हे गापने । दूसरा ग्रीर गद्य काव्य जो मेने प्रताप के लिए लिखा था—वह था 'स्वदेश' । प्रताप में वह गद्य छपा, ग्रक के साथ विद्यार्थी जी का पत्र मिला । भूरि भूरि प्रशंसा का । निरन्तर ऐसे लेख भेजने का आग्रह था । फिर तो गद्य काव्यो का ताना तग गया । 'मा गगी' 'अनू-पशहर के घाट पर' के गद्य तभी लिखे गए । वह काल हिन्दी मे 'उठो जागो' का काल था । देशभक्ति खून मे लहरा रही थी । और जब भी भीतर से विचार प्रवाह निकलता था—ज्वालामुखी के लावे की भाति धक्कता हुआ और सवग्रासी ।

गाधी जी की अहिंसा और क्रान्तिकारियो की हिंसा मे द्व द्व चल रहा था । यह द्व द्व केवल राजनीति मे ही न था, हिन्दी साहित्य को भी छू गया था । खास बात यह थी कि गाधीजी की अहिंसा और क्रान्तिकारियो की हिंसा, दोनो ही मे उत्कृष्ट देश भक्ति थी, कम से-कम मे यही समझ पाया था ।

सत्याग्रह की शुद्ध व्याख्या अभी गाँधीजी ने नहीं की थी । पर उनके दक्षिण अफ्रीका के सत्याग्रह के कारनामे देश मे चाव से पढे जा रहे थे । गाधी जी का अभी राजनीति के गगन मे उदय ही हुआ था । तिलक खुल्लमखुल्ला उन पर सदेह कर रहे थे । परन्तु गाधीजी की अहिंसा मीमासा जहा एक ओर मेरी विचार सत्ता को आहूत कर रही थी, दूसरी ओर खून की प्रत्येक बूद मे उग्र हिंसा लबालब भरी हुई थी ।

यद्यपि मैने इसी समय अपनी प्रसिद्ध पुस्तक 'सत्याग्रह और असहयोग' लिखी थी । जिसकी उस काल मे धूम मची थी । पर मे न राजनतिक पुरुष था, न राजनैतिक लेखक था । देशभक्ति की प्रेरणा ने मेरी लेखनी को इस उगती हुई नई धारा की व्याख्या करने को प्रेरित किया था । पर भीतर ही भीतर उसका शुभ्र साहित्यिक रूप भी पनप रहा था, और एक दिन वह फूट निकला—जब मैने 'खूनी' कहानी प्रताप मे भेजी । उन दिनो विद्यार्थी जी जेल मे थे, प्रताप का सम्पादन श्री माखनलाल चतुर्वदी करते थे । 'खूनी' उठाने टापी और एक काड मुझे लिखा—'खूनी' को पाकर प्रताप निहाल हो गया । रहना नहीं होगा कि ये पक्तिया पढकर निहाल मे भी हो गया था ।

लेकिन 'चितौड के किने म 'स्वदेश' 'खूनी' और दूसरे गद्य जो इस कदर पसन्द किए गए थे, जब हाजी को मेने सुनाए, तो उसने तारीफ तो बहुत बहुत की, पर वह रटी कोरी तारीफ । न तो उस तारीफ मे उसका आनन्द मिश्रित था, न आत्मीयता । तारीफ सुनकर मुझे आनन्द नहीं आया, और हठात् एक बात मेरे मन मे उदय हुई— कि हाजी मुसलमान हे और मे हिंदू हूँ । हिन्दू और मुसलमानो का जैसे धम भिन्न है, राजनैतिक—राष्ट्रीय विचार धारा भी भिन्न भिन्न है । इन पक्तिया मे शुद्ध हिंदू राष्ट्रीयता भरी थी । इसी से वह हाजी के हृदय को नहीं छू पाई है । इसी से हाजी को ये उतरी नहीं रची । चितौड का ध्वस हिन्दुओ का ध्वस और मुसलमानो की विजय है ।

नाथूराम प्रभू ने भूरि भूरि प्रशंसा की थी। इसी में मैं बड़े चाप से वे पत्तियाँ हाजी को सुनाने गया था, पर ज़रा लौटा तो दिल बुझा हुआ था। हाजी ने प्रशंसा की थी ज़रूर। पर उन पत्तियों ने हाजी के दिल की कली न खिलाई थी। एक मित्र को आनन्द में झकझोरा नहीं, रस में गोते तगनाए नहीं, तो साहित्य क्या बना।

ओह, बोसे चमत्कार की बात है, कि हाजी को प्रशंसन करने की भावना ने मेरी विचार-धारा का प्रवाह पलट दिया। साहित्यकार को देश-भक्ति और राष्ट्रीयता से पथक उस सप्ताह में रहना चाहिए, जहाँ मानव आत्मा स्वच्छन्द विचरणा करती है। जहाँ देश-धर्म जाति-ममाज-काल का कोई भी व्यवधान नहीं है। जहाँ मानव मन बुद्धि और भावना का सहारा लेकर मानव मन से मिलता है। जहाँ एक मन से दूसरे मन में, एक काल से दूसरे काल में देश-काल-धर्म का कुछ भी विचार न कर मनुष्य का हृदय मनुष्य के हृदय में अग्रण्ड ऐक्य की प्रतिष्ठा करता है।

अब देश-भक्ति और राष्ट्रीयता की रचनाएँ हाजी के सामने रखते हुए मैं बगल भाकता था। जैसे मैं कोई चोरी कर रहा हूँ। मेरा मन अब ऐसी रचना प्रस्तुत करने को आकुल व्याकुल हो उठा, कि जिसे सुनकर मेरा यह मुसलमान दोस्त आनन्द से पागल हो उठे, और इसी भावना ने 'अन्तस्तल' की ऐतिहासिक रचना करने की प्रेरणा मुझे दी। मैंने सबसे पहिले लिखा 'अनुताप', पर बहुत दिन उसे योही डाल रखा, फिर 'रूप' और इसके बाद 'दुःख'।

मेरा उद्देश्य पूरा हो गया। उमने जब इन्हे सुना, तो हास्य उसके होठों पर फन गया, और आँखों में मोती सज गए। उसने टेबुल के कागज एक ओर फेंक दिए, और लम्बी लम्बी श्वास लने लगा। आप सोच सकते हैं कि मुझे मेरा प्राप्त-व्य मिल रहा था। अपने एक मुसलमान दोस्त का दिल मैंने जीत लिया था, और फिर तो एक के बाद दूसरी रचनाएँ आती ही गईं। 'अन्तस्तल' किसी अज्ञान-शक्ति ने मेरे हाथ लिखा दिया, जो हिन्दी साहित्य के इतिहास में पहला गद्य-काव्य था। उसके भिन्न-भिन्न स्थानों से अनेक संस्करण निकले। श्रीपद्मसिंह शर्मा ने उस पर भूमिका लिखी, और वह काफी अर्थों तक विश्व-विद्यालयों में एम० ए० में पाठ्य-पुस्तक रही।

बहुत धीरे इस साहित्य-मित्र का सहवास मुझे मिला। साहित्य-दसे खा गया, और मेरी आँखा के सामने ही वह मर गया। बड़ी बड़ी तीन हवेलियाँ, पाम का ५०-६० हजार रुपये का हारा म उड़ाकर, और ४० हजार का कर्जा अपने जनाजे पर लादकर यह मस्ताना साहित्यकार मसार से चल खड़ा हुआ। भरी जयानी में। केवल एक मासिक पत्रिका पर लागो फूक दिए। जब तक जिया, कला, सौंदर्य, साहित्य के मसार में आसू और हास्य बखेरता रहा।

साहित्य के उस दीवाने की बहुत बातें आज भी याद कर लेता हूँ। कुछ सुन

फिर इधर उधर देखकर कहा—आइए। सबको लेकर वह सामने रेस्टोरेण्ट में घुम गया। पीछे परिचय दिया—कभी कभी पत्रिका में लेख लिखते हैं देहाती साहित्यकार हैं। और जप रेस्ट्रा से बाहर आए, तो वे पन्द्रह रुपये उड़ चुके थे। मेहमानों के बिदा होने पर मैंने कहा—लेकिन जूता ?

‘जूता अब फिर कभी देखा जायेगा। चलिए अभी सिनेमा देखा जाय।’

‘नहीं भाई, घर जाऊँगा।’ और मैंने घर की राह ली।

एक दिन जाकर देखा—‘रूप’ का गुजराती अनुवाद कर रहे हैं। देखते ही बोले—‘खूब आएँ, चलिए जरा रावल के महाँ चले। इस पर दो एक चित्र बनाए जायें, नीचे आकर हम ड्राम की प्रतीक्षा में खड़े थे, कि ‘आओ, आओ’ कहकर वह लपकते हुए एक चलती हुई ट्रेन में चढ़ गए। मैं भारी गादमी भाग न सका, रह गया। पीछे दूसरी टाम आ रही थी। हाथमें इशारा किया—इस पर आओ। मैं पीछे वाली पर चढ़ गया। अब मजा देखिए, हर स्टाप पर वे खिडकी से मिर निकालकर चिल्लाते हैं कि आओ। और ज्यों ही मैं उतरता हूँ, कि ड्राम चल देती है और मैं फिर दौड़ कर उसी गाडी में चढ़ जाता हूँ। दो चार दस बार यह तमाशा हुआ। ड्राम के सहयात्रियों ने समझा, कोई खपनी है। कुछ ने तो डाट दिया—आप बैठते क्यों नहीं, नाच क्यों रहे हैं। पर तु क्या किया जाय, दोस्त तो दिल की बागडोर पकड़े अगली गाडी में खींच रहा था। हर बार वह आओ आओ पुकारता था। और अंत में एक मोड़ पर अगली ड्राम उन्हें लेकर गई दूसरी दिशा में, और मैं मुड़ गया दूसरी दिशा को। जय सीताराम। तीन प्रण्टा भ्रम मारकर थक गयाकर गाम को घर लौटा। दुबारा जब मिले, तो पूछा—यह क्या हिमाकत थी ? तो हमकर बोले—दो आखे थी, आखे। ठीक वसी ही, जैसी आपन लिगी है, अफसोस आप न देख सके।

लाता लाजपतराय त्रुट दिन बाद अमरीका से लोट थे। उनके आगमन के समाचार से प्रबर्द हिल गई थी। प्रथम युद्ध समाप्त हो चुका था। समुद्र तट पर आकर देगा—प्रशस्त बालू पर नरमुन्ने का समुद्र तट्टरा रहा है। लालाजी जिस जहाज में थे तट्ट तट में दर ही समुद्र में रोक दिया गया था। प्रतीक्षा करने वाले अधीर हो रहे थे। पुनिम सवार उन्ने से व्यवस्था कर रहे थे। उम दिन न भूलने वाले कुछ दृश्य मैंने देखे। एक स्थान पर तिलक और एनीबीसेट पास पास कुर्सी पर बठे थे। नर-नारियों का समूह उह घेरे खडा था। श्री तिलक को तो म निफ्ट से देख चुका था। एनीबीसेण्ट को उसी दिन देखा। सगमरमर की निश्चल मूर्ति की भांति घण्टो से वे अचल बैठी थी। कभी कभी उनके होठ हिल उठते थे। तिलक की मूछ नीचे झुककर ओठो को ढाप गई थी। वही सफेद मिरजई और दुपट्टा, लाल पगडी। तिलक कभी कभी विनोद का शब्द कह उठते थे। पर एनीबीसेण्ट की अचल मूर्ति वसी ही बैठी थी। देर तक मैं वह

लीजिए। एक दिन जाकर देगा—किमी मित्र या मित्रा जा रहा है। तब मैं तैयार। देखा तो जोर से अट्टहाम करके कहा—रुआ ब्राण... एक खोजा महिला है, उनसे मिलने। साहित्य में रस... भी मैं महिला मित्रों से मिलना बहुत मनोच... न साथ छोड़ सकता था, न अनुरोध।... बेतकल्लुफी की मुलाक़ात। परिचय दकर मरा मित्र... कोई दस ग्यारह बरस की, कि तु स्वप्न... नेड लेकर वीर गति से आई। प्रथम सम्मान मुझ... वह मेरी ओर बढ़ी। मे मन ही मन घबरा उठा।... पानी पीऊँ ? मैं 'ना' करने ही का था, कि उसने... वे नहीं पिएँगे तबे हाथ का छुआ। 'ओर सा... है, वहा से आपके लिए मगाती हूँ। उसने नीतर...

और लडकी का हमला हुआ मर गया।... ओर देखा। उसका स्पष्ट अभिप्राय था कि वह मुझसे पूछ... छुआ न पीकर उस गदं नौकर के हाथ का ख्यात... ने मुझसे बिना पूछे ही कह दिया—... तब वह अप्सरा आनंद बग़रती हुई मर... लियो मंगि पास उठा मरे हाथ में दिया। हाजी... उसने खड़े होकर अनुताप के स्वर में कहा—... है, छुआलूत का ख्यात रखते हागे... ही नहीं। आप ऐसे दरियादिव... पहली बार कुरु तोडा है। एसी सु... और फिर सब विषय बातचीत के स्थिति... हुई, हम तीनों मित्रा की। तब महिला बाद में मेरी भो परम... रही। जब तक मैं प्रम्बई में रहा मित्रता रहा।

एक दिन गया तो लूटते ही वात... अभी मिले हे मनीआडर से। कुठ दर भो यहाँ... सा जूता पहिा जाय। जूते एक दम दात दिया गए है।

और हम दोनो दोस्त जूता खरीदन बारी ब... ही तीन चार देहाती गुजराती जना का एक ग्रुप मिन गया।... हाजी लम्बे लम्बे डग भरता हुआ उन तक जा पहुँचा।

फिर इ पर उ पर देखकर कहा—आटाए। सबको लेकर वह सामने रेस्टोरेण्ट मे घुस गया। पीत्रे परिचय दिया—कभी कभी पत्रिका मे लेख लिखते हे देहाती साहित्यकार ह। और जत्र रेस्ट्रा से बाहर आए, तो वे पन्द्रह रुपये उड चुके थे। मेहमानो के बिदा होने पर मैने कहा—लेकिन जूता ?

‘जूता अब फिर कभी देखा जायेगा। चलिए अभी सिनेमा देखा जाय।’

‘नही भाई, घर जाऊगा।’ और मैने घर की राह ली।

एक दिन जाकर देखा—‘रूप’ का गुजराती अनुवाद कर रहे हे। देखते ही बोले—‘खूब आण, चलिए जरा रावल के महाँ चले। इस पर दो एक चित्र बनाए जाये, नीचे आकर हम ट्राम की प्रतीक्षा मे खडे थे, कि ‘आओ, आओ’ कहकर वह लपकते हुए एक चलती हुई ट्रेन मे चढ गए। मै भारी गादमी भाग न सका, रह गया। पीछे दूसरी ट्राम आ रही थी। हाथमे इशारा किया—इस पर आओ। मे पीछे वाली पर चढ गया। गत्र मजा देखिए, हर स्टॉप पर वे खिडकी से सिर निकालकर चिल्लाते है कि आओ। और ज्यो ही मै उतरता हूँ, कि ट्राम चल देती है और मं फिर दौड कर उसी गाडी मे चढ जाता हूँ। दो चार दस बार यह तमाशा हुआ। ट्राम के सहयात्रियो ने समझा, कोई खपनी है। कुछ ने तो डाट दिया—आप बैठते क्यो नही, नाच क्यो रहे है। पर तु क्या किया जाय, दोस्त तो दिल की बागडोर पकडे अगली गाडी मे खीच रहा था। हर बार वह आओ आओ पुकारता था। और अत मे एक मोड पर अगली ट्राम उन्हे लेकर गई दूसरी दिशा मे, और मै मुड गया दूसरी दिशा को। जय सीताराम। तीन पण्टा भ्रम मारकर थक थकाकर शाम को घर लौटा। दुबारा जब मिले, तो पूछा—यह क्या हिमाकत थी ? तो हमकर बोले—दो आखे थी, आखे। ठीक वसी ही, जैसी आपन लिखी हे, अफमोस आप न देख सके।

लाला लाजपतगाय बहुत दिन बाद अमरीका से लोटे थे। उनके आगमन के समाचार से अमर्र हिल गई थी। प्रथम युद्ध समाप्त हो चुका था। समुद्र तट पर आकर देगा—प्रशस्त बालू पर नरमुन्ने का समुद्र तहारा रहा है। लालाजी जिस जहाज मे थे वह तट से दूर ही समुद्र मे रोफ दिया गया था। प्रतीक्षा करने वाले अधीर हो रहे थे। पुलिस सवार उडा से व्यवस्था कर रहे थे। उम दिन न भूलने वाले कुछ दृश्य मैने देखे। एक स्थान पर तिलक और एनीबीसेट पास पास कुर्सी पर बठे थे। नर-नारियो का समूह उन्हे घेरे रउठा था। श्री तिलक का तो मे निफ्ट मे देख चुका था। एनीबीसेण्ट को उसी दिन देखा। सगमरमर की निश्चल मूर्ति की भाति घण्टो से वे अचल बैठी थी। कभी कभी उनके होठ हिल उठते थे। तिलक की मूछ नीचे भुक्कर ओठो को ढाप गई थी। वही सफेद मिरजई और दुपट्टा, लाल पगडी। तिलक कभी कभी विनोद का शब्द कह उठते थे। पर एनीबीसेण्ट की अचल मूर्ति वैसी ही बैठी थी। देर तक मै वह

युगल मूर्ति देखता रहा। न कभी भूना त आगा। आज त मता तया पर्य
देखा, न वसी स्त्री।

वहा मे हटकर देखा बीच गह म भागी मी मान मात्र कर रणा । रया
यह बाजीगर का तमाशा हो रहा है ? जाकर भागा, ता र यल र सा । म तपता
सी सुन्दरी । छरहरा वदन, माती की आभा सा रग मरु मा । मय सा रियण भाय
मे फरफराती हुई । और चादी के समान जत मात्र पर रया सा । फोता । तप्य
से बधे बाल, कुछ बिखरे मे । मातिया की र सा मा । र सा म रत तपति
हसकर साथ खडे कुछ तरुणो म प्रात कर रती थी । ता र र' त र' रसा ता
पखुडिया हिल रही हो । तया ता जन् तो गया । आज ता र सा ता र य मान
रहे होंगे, पर वह सु दरी जो आया म वसी मा रयो । एसा रि 'र सा ता र मरवा
मे श्रम्बपाली की श्रवतारणा उमी क माता पर मा की । नागा तप्य रिय
कौन है, तो जवाब मिला—मिमेस जि ना । दो सा र रि प त श्र तारा मे प । ता
कि एक अग्रज पुलिम काना मच प्रा र तार त्रव उता री सा । पर मय र सा त
सुदरी चाबुक लेकर उनके सामने आयी थी, और जस क । सा ता र र म या
जाता है, उस तरह चाबुक दियाकर उमन त्रम अग्रज पतिम रसा ता । मया रिया
था । तब यही है वह तेज दप और मौ त्य री प्रीमा और आ । सा र्मा । श्रा
जिन्ना उन दिना हाईकोर्ट म प्रविष्ट करत थ । ताम उता र म सा । मा रिय र
खोजा थे, और उनकी यह पत्नी पारसी । ता ता प्रम रिता आ या । रि र सा
कि मिया गीवी मे मेल नहीं है । बीत्री क पाम र्ता रपया ना । ताम र, र
मिया का उन पर बस नहीं है, इसी म र्ता र्ती रहती है । जो ती । थ । रसा पर
भी आँखो की प्यास न मिटी । वहाँ मे नीटा ना शीघा ता जो क र । मा र ता
एक ईच्छा है—एक बार जी भर कर मिमेज जिन्ना हो रया ता । ता र म रार
बहुत देर ठठाकर हभते रहे हाजी । बोस ती गरी ता पि ट्रा अ भू सा ता र र रया
जिन्ना पर लेख था, लय के साथ जिन्ना क र १० रित्र थ । एर सा र मया मया
हाईकोर्ट मे चल रहा था । उस पर उ ता र हय री था । त्रम र रि ना रि त पा
चित्र भी दिण गए थे । रुहने लग - एल मास मियाँ म म ना रात सा ती म रसा
सिलसिले मे । और उस मास बीती म होगी । र्सी जिन्ना र हो रया । ताय र प
आजाता । खट से एक लटर पेपर लिया, दो पंक्तियाँ रिगी और उता ममय । म
छुडवा दी । रुहने की मापश्यक नही । जिन्ना की मभ्या हभ तागा । श्रम ता
जिन्ना के साथ धूमधाम मे व्यतीत की । बहन त्रमय जिन्ना र हण । म तय र मया । रती
की विद्या मे हाजी बेजोड थे ।

एक दिन फोन आया—'दुगी शरण तारापोर जाने क स्टॉपियो म आया।'

कालबादेवी के उम और तारापोरवालो का प्रसिद्ध स्टुडियो था। बम्बई के नामी गरामी फोटोग्राफर थे। जाकर देखता हूँ—तो हाजी महामना मालवीय को नाच नचा रहे हैं। ८१० पोज ले चुके थे—पर मन न भरता था। मालवीय जी जैसे निग्रि निपेध सब भूले हुए थे। करामात ही थी। जब मालवीयजी बिदा हो गए, तो मेने पूछा—कैसे मालवीय जी आपके हत्ये चढे, तो हँस कर कहा—किसी की तलाश मे फोट मे भटक रहे थे। इत्तफाक से जा निकला। इनके मित्र से मुलाकात कराई, और यहा खीच लाया। बम, इम अक मे मालवीय ही चमकेगे, लेकिन आज कागज के लिए रक्खे हुए सब रूपग खच होगग। कुञ्ज परवाह नही। और खीचकर जा वठे एक शानदार रेस्टोरा मे।

रूप की एक एक पक्ति पर चित्र बनाने की उसने तैयारिया की। एक चित्रकार 'रूप' पर कुञ्ज चित्र बनाकर लाया भी था—पर वे उसे पसन्द न आए। उसने कहा—रोखक जो कुञ्ज कह नही सकता है—चित्रकार उसी कमी को पूरा करता है। उत्तम चित्रकार वही है। इन चित्रो ने तो इस अग्रगुणनरती रचना सुन्दरी को पशु की तरह नगी कर दिया है। उसने वे चित्र रद्दी की टोकरी मे डाल दिए थे।

पेमा फक्कड वह साहित्य का देवता था। बहुत कम ऐसे पुरुष पैदा होते है। फिर साहित्यक और पत्रकार। आज के युग मे, जब साहित्यकार परमुखपेक्षी और पत्रकार मालिक का नौकर है, सब काम मशीन की भाति एक नपी तुली गति से होता है। ये आत्मयज्ञ करने वाले महापुरुष सदैव प्यार और आदर के साथ याद किए जाएंगे।

वह एकाएक मर गया। अ तस्तल के भाग्य फूट गए। अब इस रचना को क्या अलकार मुयरसर होगा? हिन्दी के प्रकाशको की दृष्टि निराली है। बहुत कम उनमे साहित्य के सोदय को परख सकते है। उनकी दृष्टि बुदाफरोशो की सी है। गुलामी के जमाने म जब कोई खूबसूरत जवान लडकी बाजार मे विकने आती थी, तो बुदाफरोश उमके सौ दय को टम दृष्टि स निरखता था कि बाजार मे इसके कितने दाम उठेगे। हिन्दी के प्रकाशको की यही दृष्टि है। लेखक अभागे इतने पतित और आत्माभिमान-शून्य हो गए है कि अपनी अपनी रचना सुन्दरियो का हाथ थामे इन्ही बुदा फरोशो के द्वार पर भक मारते फिरते है और कहते ग्लानि होती है—उसके एक एक सौन्दय स्थल को उधाडकर दिखाते है। यह मोत भाव का महरव है। यह कमीने पैसे की अमलदारी है। म भी वसा ही अभागा लेखक हूँ। अतएव मुझे गह आशा करने की इच्छा नही है, कि मेरी यह रचना, जिसमे मेरे हृदय का समस्त रस जसा भी कुछ हो, भरा है—प्रकाशको के घर यह न कुलवधू का आदर पाएगी, न उसके अलकार।

इस रचना मे कुछ अभाज रह गए। कुञ्ज नए निबध बटाने थे, और कुछ सशोधन करना था, पर हाजी मुहम्मद के मरने पर जी बैठ गया—कितनी बार चेष्टा की, पर न नया लिख सका—न पिछलो को सुधार सका। अब तक भी तबियत हाजिर ही नही

तक श्वेत वस्त्र से ढके भारी भारी पलको ने नेत्रों को ढाप रखा था, मोटी मोटी भौहें नीचे को झुकी हुई थी। बड़ी बड़ी श्वेत मूछें नीचे झुककर होठों पर छा गई थी। एक दो निकट सम्पन्वी सिरहाने और डवर उधर खड़े उनके आदेशों का पालन और क्षण क्षण पर विगडती दशा को देख रहे थे। कभी कभी लोकमाय बिना पलक उठाए मद स्वर से कुछ कहते और पासवाले झुककर सुनते। चिकित्सक अब इलाज नहीं कर रहे थे। केवल उन्हें कष्ट न हो, यही चेष्टा कर रहे थे। मैं बहुत देर से कभी भीतर आता कभी बाहर जाता, कभी उनके एकाव्य वाक्य को सुनने की चेष्टा करता, कभी एक तरफ जाकर रो लेता था। मेरा खयाल है, और भी कुछ लोग यही कर रहे थे। बात कोई किसी से न करता था। कमरे में गहरा सन्नाटा था। लोकमाय को बीच बीच में झपकी लग जाती थी तब उनके कण्ठ से खरखराहट की आवाज आती थी, जो कमरे के बाहर से भी सुनाई देती थी। बहुत बार श्वास बंद होने का सदेह हुआ, लोग दौड़े। पर लोकमाय ने नेत्र खोल दिए। आने वाले प्रभात में ही—पहली अगस्त का ही गांधीजी असहयोग आंदोलन आरम्भ करने की घोषणा कर चुके थे। जालियावाला हत्याकाण्ड और रोनेट ऐन्ट का वार हो चुका था। गांधीजी और उनके सत्याग्रह और असहयोग को लोग समझ न पाए थे। खादी का जन्म भी अभी हुआ ही था। विदेशी वस्तु बहिष्कार पर लोगों का मन ठहरा न था। गांधीजी ने असहयोग का विवरण अमृतसर कांग्रेस में पहले पहल दिया था। गांधीजी भी तब तक उसके पूरे भाव से अनभिज्ञ थे। फौजी कानून ने पंजाब की ओर देश का ध्यान खींचा। इस अयाय के विरुद्ध चारों ओर से ऊँची आवाज उठ रही थी। मोतीलाल नेहरू और स्वामी श्रद्धानंद लोकमाय, मद्रासाहन मालवीय, चितरंजनदास, लाजपतराय पर सब की तजर थी। गांधीजी का विरोध सबत्र था। विरोधिया में लोकमाय अग्रगण्य थे। केवल जिता और मालवीय नरम थे। लोकमाय और देशवतु उग समय दो चोटी के नेता थे। देशवतु का दिल अग्रहयोग की तरफ था। लाला लाजपतराय पशोपेश में थे। पर मातीलाल नेहरू आगे पदम पदानों को तयार थे।

लोकमाय का मस्तिष्क उस मुगूष अग्रस्था में भी इस राजनीतिज्ञ गुत्थी के मुनभान में अटक रहा था। मुझे याद आता है कि ठीक बारह का घंटा बजते ही कोई एक असाधारण व्यक्ति कमरे में आया। सम्भवत वह केतकर थे, परन्तु ठीक ठीक नहीं कह सकता। उनके आने की सूचना पाकर लोकमाय ने नेत्र खोल दिए। उन्होंने कहा—गांधी देश को कहीं ले जाएगा। ऐसा ही कुछ वाक्य मने सुना। वाक्य मराठी भाषा में था। बहुत ग्रीम स्वर में आगन्तुक महाशय ने बहस न करके बात टालने की ही चष्टा की। परन्तु सम्भवत वह कुछ सदश लाए थे। सत्याग्रह और असहयोग पर मैं उन दिना एक पुस्तक लिख रहा था। लोकमाय के विरोध से मैं परिचित था इससे

मुझे वह वाक्य याद रहा ।

इसके बाद ही मैं तहाँ से ग्रीक में चला आया । समय मारता जाता था करते थे और पद शब्द न हो उस प्रकार आगे जाता । तभी समझ में आया या तो पद व दना क्री थी । सोचता जा रहा था—अपना देश ।

घर पहुँचते ही मुना कि लोकरमाय तनी र... समय प्रयाग... रिंगा ने टेलीफोन पर सूचना दी थी । कालवादे की संरक्षण... था... मा... म... एक विक्टोरिया ले उससे निदाल हाथर प... गया । ज... म... प... इतनी भीड़ हो गई थी कि भीतर जाना सम्भव न रहा । त... निरुपाय, मे सामने क्राफड मार्केट के गए माण म जा... और भा... वहा आ गए थे । आजकन ता वहा और मा... गई है, बाजार बन गए है, पर तत्र त्रह स्थान... मदान था । इस सारे मदान म नरमुण... मे नगे सिर लोग कम रहते हैं । मैं तपा... चक्कर लगा आता था । पर भीड़ उतनी... धीरे धीरे भीड़ में जहा तहाँ मृदग बी... लगा । यह गूँज और स्वर बढ़ता ही गया । कु... हो गाने नाचने लगे । पर यह सब गात कीनत मराठी म... था ।

धीरे धीरे दिन निकला और लागे ने... मार्य को बँठाया गया है, पुण्पो से आरुण्ड सजा... होठो पर छाई हुई मू... लिया सम्मुख आ-आकर मृदग उफ... ही रही थी । अब तो नरमुण्पो का समुद्र था । उत्तरी भा... नही देखी थी । नोग ऋषि के दशन में तृण... धकेल देता था । बहुत लोग कु... था ।

कोई दस बजे अर्थी की यात्रा चली चौपाटी की ओर । चौपाटी पर... का खास प्रबन्ध किया गया था । बम्बई के इतिहास... का शवदाह चौपाटी पर हो । जहाँ इस समय लोकमाय... स्थान पर दाह हुआ था । शत्रयात्रा जो गीपाटी... चौपाटी कुछ ही दूर रह गई थी कि पजाब से ताला लाजपतराय और... ने एक स्पेशल ट्रेन से आ अर्थी में कथा दिया । तब तत्र... पजाब केसरी एक स्पेशल ट्रेन से तावन्तोड आ... मेला सा रहा । दूसरे दिन मुबह मैंने जाकर देखा तो दूसरा ही गमा... था ।

बलिया बाधकर उस स्थान पर एक वेग सा बना दिया गया था। सकडो स्त्री पुरुष आवाल वृद्ध आते, फूल फल पसा टका दूध मिष्टान चढाते, माथा टेकते और वहा की एक चुटकी राख यत्न से पत्ले मे बाँधकर ले जाते। बहुत लोग भजन गाते, कीतन करते उस स्थान की परिक्रमा कर रहे थे। बहुत लोग रो रहे थे। बहुत लोग देर तक स्तब्ध भूमि पर सिर टेके निश्चल पडे थे। उन दिनों इसी स्थान पर कुछ मछिहारो की भोप डिया भी थी। वर्षा से बचने के लिए इन भोपडियो मे ठसाठस स्त्री पुरुष भरे खडे थे। इन लोगो की चादी थीं। जहा आज लोकमाय का भव्य स्मारक है—उसके सम्मुख अब तो ऊँचे ऊँचे महलो की एक लम्बी कतार मेरीन-ड्राइव तक बन गई है। उन दिनों ये महल नही बने थे। समुद्र तट भी खुला था। उसी दिन सायकाल एक असाधारण सभा जुडी थी। लाला लाजपतराय की दहाह पहली बार मैंने वही सुनी थी। छोटी छोटी आखो और बडी बडी मूछोवाला वह ठिगना सा आदमी उस दिन उस सभा मे लाखो मनुष्या का केन्द्र बना हुआ था। वह अविरल वाग्धारा वषा रहा था और लोग हिल-किया ले रहे थे। कई दिन तक मे लगातार उस स्थान पर जाता रहा। बहुधा उन बलियो को मै स्पश करता, उनके इर्द गिद घूमता—मूक मौन—अपने मानव नेत्रो मे ताजा-ताजा लोप हुई मूर्ति को जसे वहाँ उसी प्रकार समाधिस्थ देखता—वे ही भारी, भारी भुकी हुई पलके सफेद मू डो से ढके हुए होठ, और पीला ऋषियो के समान मुख, आहिस्ता से कह रह थे—गाँवी देश को कहा लिए जा रहा है।

सम्भवत रात को बारह बजकर ४० मिनट पर लोकमान्य ने नश्वर शरीर त्यागा और उसी अणु भारत मे असहयोग यज्ञ का अग्न्याधान हुआ, भारत की महान राजनीति मे नए युग का आरम्भ हुआ। तिलक का उग्र विद्रोह असहयोग की तरलाग्नि मे बदल गया। मुझे याद आता हे तभी मैंने कुछ पक्तिया लिखी थी—

पुण्य पूना मे ध्रुव दशन हुआ, तिलक सुशोभित हुआ देश के भाल पर।
पृथ्वी ने गाम्भीय दिया गरिमाभरा, जल ने हृदय बनाया अपने हाथ से।
विविध त्रिपय व्यापकता दी आकाश ने, चण्डातप ने तेज दिया दुघष अति।
वालारण ने लाल किया निज रश्मि से, और शारदा हार बनी उस कण्ठ का।
रमा दुपट्टे की आ बठी कोरपर, यम ने पट्टा दिया उसे अमरत्व का।

‘सत्याग्रह और असहयोग’ की पसिद्ध के कारण मेरा परिचय देश के नेताओ से होने आगा। कहा गया था कि आजके हमारे राष्ट्रपति डा० राजेन्द्रप्रसाद भी उसे गीता की भाति पढते थ। उस पुस्तक के लिखने के कारण मुझे लोग गाँधीवादी समझने लगे थे। गाधी वाद और गाधी दशन का तब नया ही निर्माण हुआ था और मेरी पुस्तक का गाँधीवाद स मोई सम्पक ही न था। मैंने तो उसमे सत्याग्रह और असहयोग की स्वेच्छा से अपने निश्चयो के अनुसार व्याख्या की थी। अलबत्ता ये दो शब्द अवश्य गाँवी जी से ही मैंने

ग्रहण किए थे। खबर गारी जी तक पहुँची। उन दिनों ही मैं मराठी से मराठी में
 पूर्व कथिक पुस्तक जिस संस्था से प्रकाशित की गयी, उन दिनों ही मैं मराठी से मराठी में
 से था। इस परिचय से एक दिन जगनात्त का प्रकाशन मराठी में पाठकों को दिए जाने
 मारवाडी अग्रवाल सम्मेलन हो रहा है। आप मराठी से मराठी में मराठी से मराठी में
 उद्देश्य देने चाहते हैं। मैंने कहा—आप मराठी से मराठी में मराठी से मराठी में मराठी से मराठी में
 रूप देने की जो बात आपने कही है, उसका लिए मैंने मराठी से मराठी में मराठी से मराठी में
 दिए और हँसकर कहा—लियकर या जुमाना? मैंने कहा—जगनात्त का प्रकाशन मराठी में
 तय हुआ कि मराठी में मराठी में मराठी में मराठी में मराठी में मराठी में मराठी में
 इस प्रकार उस वरिष्ठ पुत्र से मित्रता की स्थापना होगी। मैंने कहा—मराठी से मराठी में
 मेरे मने उद्देश्य बहुत मताया, बहुत तग फिरी। मैंने मराठी से मराठी में मराठी से मराठी में
 उन दिनों नवजीवन का हिंदी सम्मेलन निकालना चाहता था। मैंने मराठी से मराठी में
 शायद बहुत बड़ा परिश्रम दिया था। मैंने मराठी से मराठी में मराठी से मराठी में मराठी में
 के सम्पादक का प्रस्ताव किया। अतः ही बात मराठी से मराठी में मराठी से मराठी में
 गई। गांधीजी कहते थे सम्पादक का जगनात्त का प्रकाशन मराठी में मराठी में मराठी में
 जब से सम्पादन करूँगा तो मराठी में मराठी में मराठी में मराठी में मराठी में मराठी में
 फिर से गारीजी से कभी मिला भी नहीं। परन्तु मैंने मराठी से मराठी में मराठी से मराठी में
 सभा कायस दोनो ही गारी जी के प्रभाव में आया। मैंने मराठी से मराठी में मराठी से मराठी में
 उसके अगले ही दिन गारी जी का आशुभोग का आयोजन करा।

देखते ही देखते गारीजी का भारत पर आशुभोग का आयोजन मराठी में मराठी में मराठी में
 साहित्य पर पड़ा। अपने कायदा के पारम्परिक मराठी से मराठी में मराठी से मराठी में मराठी में
 का श्री गणेश कर दिया। उस समय वह भारत में मराठी से मराठी में मराठी से मराठी में
 में था। उठो जागो की आवाज़ मराठी में मराठी में मराठी में मराठी में मराठी में मराठी में
 और रात बीत चुकी थी। उगो उद्भासक मराठी में मराठी में मराठी में मराठी में मराठी में मराठी में
 राष्ट्र का सूत्र ग्रहण किया। यह भारतीय राष्ट्रवादी मराठी में मराठी में मराठी से मराठी में
 द्वारा प्रचारित मातृभूमि का नाम मराठी में मराठी में मराठी से मराठी में मराठी में मराठी में
 भारत राष्ट्रीय सूत्र में बसता गया, हिंदी साहित्य में मराठी से मराठी में मराठी से मराठी में
 गया। इसकी जो तत्कालीन वीरणी प्रतिक्रिया मराठी में मराठी में मराठी से मराठी में मराठी में
 पत्रों का प्रकाशन भी था।

जमनालाल बजाज यद्यपि नहीं मराठी में मराठी में मराठी से मराठी में मराठी में मराठी में
 परन्तु बम्बई में भी उनकी गद्दी थी और वे कभी नहीं मराठी से मराठी में मराठी से मराठी में
 जब उनका दशन लाभ मुझे हुआ तो उनसे मैंने पूछा कि आपने मराठी से मराठी में मराठी से मराठी में
 का निमित्त क्यों मुझे दिया। चिकित्सा मैने भी। उसका नाम मैंने मराठी से मराठी में मराठी से मराठी में

कुछ केम तो ऐसे थे जो न उनके परिवार के थे, न मित्र थे। कोई भी जम्बरनम द गरीब गम्भीर रोगी उनसे आरर कहे कि मेरे पास चिकित्सा के लिए पसा नहीं है—मेरी चिकित्सा आप करा दीजिए तो वे उसकी चिकित्साकी व्यवस्था कर दिया करते थे। ऐसे ही दो चार व्यक्तिया की चिकित्सा का भार मुझे भी सौंपा गया था। उनके चिकित्सा व्यय म हजारो रूपयो के हमारे बिना का पेमेंट उनकी गद्दी से होता रहता था। चिकित्सा के लिए मुझे वर्धा भी जाना पडता था। जमनालाल बजाज का घर उन दिनों भारत की पालियामेंट हाऊस कहा जाता था। देश भर के राजनतिन नेता वहा एकत्र होकर देश के भविष्य का निर्णय करते थे। उनका चौका सबके लिए खुला हुआ था। भोजन के समय सब एक साथ बठ कर एक ममान भोजन किया करते थे। एक बार जब एक रोगी की चिकित्सा के लिए मैं उनके यहा ठहरा हुआ था ता मुझे भी उ होने भोजन के लिए वही पुला भेजा। मैं चला गया। आसन बिछे हुए थे और सामने छोटी छोटी चोकिया वाली रखने के लिए रखी हुई थी। सब लोग भोजन के लिए बठ गए। मैं भी बठ गया। बजाज जी मेरे बराबर ही बठे थे। भोजन परसा जाने लगा। यद्यपि चोकी और भोजन रथन अत्यन्त स्वच्छ था परन्तु परोसने वाला व्यक्ति स्वच्छ नहीं था। वह व्यक्ति जब मेरे सामने भी परोसने लगा तब मेने हाथ रोक कर कहा—मे नहीं खाऊंगा।

परोसने वाला आगे बढ गया। बजाज जी ने आश्चर्य से मरी और देख कर प्रश्न किया—क्या ?

म इस व्यक्ति के हाथ का छुआ भोजन नहीं खाऊंगा ?

पर, यह तो गौड ब्राह्मण है ?

तब ता और भी नहीं खाऊंगा।

उ त कोतुहल हुआ। और लोगो की भी जिज्ञासा बढ चली। उन्होंने फिर प्रश्न किया—पर कारण क्या है ?

मने कहा—यह व्यक्ति अस्वच्छ है। इसके वस्त्र गन्दे हैं, इसकी हजामत के बाव तद्वार खिचती हो गए हैं उसकी दातो पर वर्धा का मन जमा हुआ है। यह ब्राह्मण होते हुए भी अस्वच्छ है। मैं नहीं खाऊंगा।

मन भोजन नहीं किया। सब भोजन कर रहे थे, पर मे बठा सत्र को अपनी गार्हित्य चचा म लगाए हुए था। म एक सप्ताह यहा चिकित्साथ रहा, मेरे भोजन का अलग प्रयत्न कर दिया गया था। एक दिन जमनालाल जी कुछ प्रसन्न थे। मैं भी उनका पाग पठा था। उ हाने मुझसे फिर भोजन के सम्बन्ध में प्रश्न किया—

आपका हमारे भोजन का नियम क्या लगा ?

मने उत्तर दिया—बिल्कुल नापस द।

क्या ?

मे हँस दिया। मेने कहा—सेठजी, तू न तू पापाममा का पाप पाप पाप पाप प्र भोजन किया हे कि ये आपक नोकर क्या प्रतायग। पर तारा का मित्र रत्न से भागत बनाती ओर खिलाती हे, वट स्नह ही शरार का प्रसन्नता पापत। तारा का गम गम एक एक फुलका गाय भस का घर का निराना दुआ ही सपर उप। मा, पोर लो, एक ओर, अभी खाया ही क्या हे, का सगुर आश्रित तारा पापत पापत रिता ? माता से प्रथक होकर अब मे अपनी पत्नी क हात का रत्न भागत उमा गम पाप स्नह से प्राप्त करता हूँ। माता और पत्नी दानो ही आत्मा का रत्न भागत ममिता का ही अन्न प्राण हे और प्राणो से प्राणो का साथ हे। अन्न मरा शरार गीर शरार कितना अच्छा है। मेरी बात सुनकर वे गम्भीर हो गए। तारा का आपात कहते हे। पर अब मेरा जीवन सावजनिक हो गया हे, मरा बीता गया मरा पापत दायरे से बाहर की बात हे।

उनकी गम्भीरता मे सचमुच ही भोजन ही मरा शरारता समा रत्न का।

इतना कमा कर भी मैं कुछ बचा न पाता था। मरा यत तारा रत्न पापा का कि मे अपनी कमाई से एक एक मकान मित प्रताय म राग। पर अपना तो ही शर भाड्यो को दे दू। जिस मकान मे पिता जी मिराया शरार रत्न का ही भागत की आय से प्रथम वप म ही खरीदकर उत द दिया था। बमरा ही मरा गाय का खच भी वसे ही थे।

कालवादेवी और बम्बई बाजार म जयर मार्केट का। तारा शरार जयर का खरीद फरोक्त होती रहती थी। सेठ और दत्तान मरे पाप अप तो रिता। मात रिता मात रहते और शयरो के कारवार का मम भी प्रताय रि रिता शरार एत एत रि त म पापा आते और जाते हे। गीता प्रसके श्री तृप्ताताया पादार, और जा तात म मरा परिचय शयर मार्केट के द्वारा ही हुआ। मेरा मम एक रि त म पापा रत्न अप पात का मे भर लेने को मचल रहा था। मरी दुर्दिष्ट म म म पर रि ताय पा रि म म म जालान क साथ शयरो की खरीद फरोक्त कर लया। तारा मम तात तारा रिता। ऐसे ही सघप और उत्कप के दिन बम्बई म आता हा रत्न का।

परन्तु भद्रसेन को बम्बई का पानो अरुतन वता हुआ, मम शरार पर तारा का भी तयार नही हुआ। परिणाम यह हुआ कि उम साधारण रूप म मम रत्न का गई। उसे दिन भर मे सौ डेढ सौ दम्न होने, माया पिया इद्र भी तारा जाता था मम कर हड्डियो का ढाँचा रह गया। मेने पिता जी को गिरा तारा म प्रताया और तारा कठिनाई से वे उसे सिकद्रावाद चनो का राजी कर गके। भद्रसेन का तारा पिताजी सिक द्रावाद चले गए। पण्डित होमनित्रि शमा वद्य उन दिना तारा म रिता रत्न का करते थे। सिकद्रावादसे बुलन्दशहर ११ मीक अतर पर है। मरा उर पत्र निरयार

भद्र की चिकित्सा करने का अनुरोध किया। भद्रसेन बुलन्दशहर रह कर उनकी चिकित्सा करने लगा। मे बराबर पत्र द्वारा उसके हाल चाल मगाता रहता था, परन्तु दो मास तक इलाज करने पर भी कोई विशेष लाभ नहीं हुआ। मेरे शत्रुसुर वैद्यराज जी अजमेर से मुझे लिख रहे थे कि भद्रसेन को उनके पास अजमेर भेज दिया जाए। अजमेर का जलवायु बहुत अच्छा था। पंडित होमनिधि से निराशा होकर दो मास बाद मेने पिताजी को लिखा कि वे भद्रसेन को अजमेर छोड़ आए। सो वह अजमेर आ पहुँचा। वहा उसकी चिकित्सा की गई। पर कोई लाभ नहीं हुआ। इसी समय मुझे बम्बई में यह ज्ञात हुआ कि पूना के एक वयोवृद्ध वैद्य प्रति पूर्णिमा को बम्बई में एक दिन के लिए आकर केवल सग्रहणी के रोगियों को देखते और पुडिया देते हे। आज तक कोई रोगी उनसे निराशा नहीं हुआ है। उनकी अमोघ औपधि की प्रशंसा सुनकर मैने पिता जी को लिखा कि भद्र को अजमेर से लेकर बम्बई चले जाए।

बम्बई आने पर पूर्णिमा के दिन मैं भद्र को लेकर पूना के वैद्यराज के डेरे पर गया। देखा, एक भूले पर बठे एक वृद्ध महाराष्ट्र वैद्य धीरे धीरे भूल रहे हे। उनके चारो ओर कुर्सियों पर सग्रहणी के मरीज बठे हे। बारी बारी से एक २ मरीज उनके सामने रखी कुर्सी पर आता हे हाल कहता है और वे क्षण भर नाडी और पैर देखकर अपनी मुलाकात खत्म कर देते हे। उनके समीप ही एक और सज्जन बैठे थे। उनके सामने लकडी के दो छोटे बक्स रखे थे। जिनमे पुडियाँ भरी हुई थी। एक पेटी पर न०१ लिखा था दूसरी पर न०२। मुलाकात समाप्त करके वे अपने सहयोगी को आज्ञा देने—न० १ अथवा न० २। जिस नम्बर का आदेश होता उसी बक्स में से ६० पुडिया गिनकर वह मरीज को दे देता और (६०) औषध शुल्क उससे प्राप्त करता। एक ठप्पा हुआ पथ्य औषध सेवन विधि, रहन सहन आदि के सम्बन्ध में विवरण पत्र भी पुडियों के साथ भिजता था। रहने सुनने की कोई बात नहीं थी। सब इस नियम को जानत और पालन करते थे। एक दिन मे तीन पुडिया चार चार घंटेके अंतर से दूध के साथ लेनी होती थी। १ मास की ६० पुडिया प्रत्येक मरीज को लेनी होती थी क्योंकि फिर अगली पूर्णिमा को ही औषध मिल सकती थी।

भद्र की बारी आने पर भी उन्होंने उसे उसी प्रकार देखा। मेरा परिचय जान कर उन्होंने मुझे सान्त्वना की और मुझसे औषध मूल्य नहीं लिया। मेरे बहुत कहने पर भी नहीं लिया। भद्र को न०१ को ६० पुडिया मिली और पथ्य पत्र भी। घर पहुँच कर पथ्य पत्र के अनुसार मेने पहली पुडिया भद्र को २॥ तोले उबले हुए फीके दूध के साथ दी। चार घंटे के अन्तर स तीना पुडिया इसी प्रकार दी गई। पुडियाँ फकाकर २॥ तोला दूध पिला देता था। बीचमे उमे प्यास भूख लगे तो कुछ भी न देने की हिदायत उस पथ्य-पत्र में थी। केवल अगली पुडिया देने के मध्यकाल में दो घंटे बाद २॥

तोला और दूध मरीज की चूड़ा का पर दे लाया । उभरती ही तार पिया चलती रही और पनि तीम रिता रावा माता । तारा पाव पया । तार बढा दी गई अथान् पटन तीन रिता रावा माता । तारा पाव पया । तीसरे तीन दिन ७। ताता मात्रा चौध पाव रिता रावा माता । तारा पाव बढता गया । चमत्कार ही रतिगति पहिा रिता रावा माता । तारा पाव दस्तो म कमी होती गइ, पेट का पूनना, तरा ना प्रिया । तारा पाव सफेद रग, सब कुछ दूर होता गया । अग ती पागमला ताता जा न ताता अज जी से औपव लेने गए तो उ हाने पिताजाक तरग तार ताता रिता रावा पर भी नही माने । कहन तग—ऐसा मिडान् और यगता पतिता । ताता आयु म मुभ मे कम हाने पर भी त रावा है । मरा ताता माता ताता तारा बहुत खुज हुए और न० १ की ६० पुत्रिया उभ और । ग ।

परतु बिना मृत्य की औपय ताता मभ रतितर ताता पाव रिता मरा मभ म एक बात सूझी । मने उस औपय री एक पुिया रातातर पर ताता पर पाता । औपय मे तीन पाउडर और दा बहुत डाटी गी गार्गिया ताता ताता म तारा से पीमनर पाउडरम मिनाकर रोगों को फनात त । मरा ताता पाव रिता ताता । पूवक पृथक पृथक किया और उनकी जान की । तारा पाव रिता ताता म तारा रहा और उनका मिश्रण अनुमान करता रहा । ताता पाव रिता ताता मिश्रण ताता मुझे दो तीन दिन म ही हो गया था, तारा गार्गिया ताता ताता ताता । छठे दिन मेने गानिया ता अनुमानित मिश्रण ता तारा ताता ताता ताता दवाइया मगाकर गानिया तयार कर ताता । तीना पाव रिता ताता मगाकर ताता तयार कर लिया । चारो औपयिया ती उभो माता म मो तारा ताता ताता तर रख ली । अब मे अपनी पुत्रिया मद्र का देने गया । पूा माता तारा ताता ताता लेता था । मेरी प्रन नता का टिपता त रतय तारा मभ थ, ताता ताता मरा ताता भी उसी प्रकार उभर राग का र तार रता ताता ताता ताता ताता ताता ताता नहीं हुआ । मद्र म पूडा ता तताया ताता ताता ताता ताता ताता ताता ताता मेने अभी किसी वा बताया त्ती था । मरा तारा ताता ताता ताता ताता ताता ताराज की भी दी ।

तीसरे माम त आरम्भ म ताराज त ताता ताता ताता ताता ताता ताता रोलकर दखा तो गोत्रिया की मृत्या उभर ताता ताता ताता ताता ताता ताता बढाया गया था । गोत्रिया ताता म बगा ती पुता ता, ताता ताता ताता ताता ताता ताता लगा । शीत्र ही वह भी मुक पर प्ररत ता गया । अतन० १ तारा ताता ताता ताता अमोव नुस्खे मने हाथ मे गा चुके थे, और मद्र ता मरा पुिया ताता ताराज ताता ताता

की भाति आरोग्य लाभ कर रही थी। तीसरे महीने के अन्त में भद्र दिन भर में ८ सेर दूध, चार पपीते और दो दजन मुसम्मी का रस पीकर हूजम कर जाता था और फिर भी भूख भूख चिल्लाता रहता था। नित्य प द्रव वीस रुपण का भोजन उसका होता था।

अब मेने अपने साउनबोड के नीचे एक पक्ति और लिखवा दी थी—“सग्रहणी के विशेषज्ञ।” फिर क्या था। सग्रहणी के मरीज भी मेरे पास आने लगे और मे वही वैद्यराज की भाति एक महीने की पुडिया उन्ट १०) में देने लगा। सभी मरीज आराम होने लगे। सग्रहणी की चिकित्सा में जो व्यवधान बीच बीच में रोगी को आक्रान्त करते हैं, उनकी पूरी सावधानी में रखता था और नवीन वैज्ञानिक चिकित्सा दृष्टिकोण से कभी पानी का एनीमा, कभी मिट्टी की पुल्टिस का प्रयोग भी करा देता था। औषध सेवनकाल से प्रथम दो मास में दूध ही एक मात्र भोजन और पेय था। पपीता और मुसम्मी तो तीसरे चौथे मास रोग कीटाणु नष्ट होने पर धीरे-धीरे दिए जाते थे। जब तक औषध चलती रहती, पानी का सेवन वर्जित था। चाह जिननी भी प्यास लगने पर पानी नहीं दिया जाता था। दूध ही पानी का काम देता था। और रोगी धीरे धीरे प्यास और पानी की बात को भूल जाता था। भद्र की चिकित्सा पाच मास तक चली। वह ग्रन्थिपजर का मुदाशरीर सम्पूर्ण स्वस्थ मासपेशियों से पुष्ट होकर और भी गोरा और सुन्दर हो गया था। उसके लाल चेहरे पर तेज बरसने लगा था। वह प्रातः चार पाच मील समुद्र तट पर घूमकर आने के बाद दिन भर खाने के लिए अपनी भाभी से भगडता रहता था। पिताजी मिक् द्रावाद लौट गए थे। अब मेने उसे एकमोट इम्पोट की एक फर्म में मनेजरी का पद दिलवा दिया। उसे नया काम मिल गया। उसका यान उस आर टेंट गया। प्रतिमास तीन सौ रुपए लाकर खुशी खुशी भाभी के चरणों में डाल देता था। भद्र को बचाने का श्रेय औषध को तो था, परन्तु यदि उसकी भाभी उसका मुश्रुपा में दिनरात एक न करती तो वह आरोग्य नहीं होता। उसके मलमूत्र के रस्त्रों को दिन भर पीते-पीते वह थकती न थी। उसी की सेवा और तपस्या ने उसे जीवन दिया। कष्टिण उसने अपने प्राण भद्र को दिए। भद्र इस लोक में लौट आया और उगने उम लोका की ओर मुह किया। ग्रन्थ सवा काय और बम्बई के पानी ने उम भी आक्रान्त किया और वह भी सग्रहणी की भाति के एक रोग से ग्रसित हुई।

पत्नी को भी मेने पूने वाले ग्याराज को दिखलाया। उ हाने उमे देखकर कहा—
‘चिन्ता की रात नहीं है। बड़ी गोपनीय है भी दीजिए।’

मेने कहा—‘ठीक है, तब दीजिए औषध।’

उ हाने हमर मेरी ओर देगा और कहा—‘क्या अब आपने मेरी पुडिया बनानी प्रद करदी है?’

मेने आख नीची करली। परन्तु उन्होंने बात को और भी मधुर बनाकर अपने

दूर बहुत दूर जाने ही जल्दी जल्दी तयारी कर रही थी। राम के पर्दे को तर रखने का भी कोई परिणाम नहीं हुआ। उमका अत समय देख म उसे वनत्र से पर ले आया। ते प्रता दो माग वीमार रहकर उजेष्ठ अमात्रम १४ जून १९२३ को दिन म १२ बजे भुनगानी दोपहरी मे उम देवी ने मेरी गोद मे प्राण त्यागे। दग तोउने से पहिले उसकी वाणी अटक गई थी, पर उसने दृष्टि घुमाकर मुझे देखना चाहा। म एक तरफ खडा उमके लिए गगाजल मे शहद घोन रहा था। अपना सिर मेरी गोद मे रखने का उसने मकेत किया। मे चम्मच से गगाजन उमे विलाने लगा, पर वह बाहर निकल आया। मे चम्मच फेर उमक मिरहाने जा बैठा और उसका सिर गोद मे रखा गया। सिर उठाते ही उमे अतिम श्वा। आया। वह तन्विया जिमपर उसका मिर रखा था, मेने उर्पा मुर्गित रग छोडा, और उसी पर मिर रखकर प्राण देने ही मेरी हृद उच्छ्रा थी।

भद्र ही लग्न दमी माम तय हुई थी। जब लडकी वाले भद्र को स्पया देने लगे तत्र हमन उनमे कुत्र और दिन रूने को कहा। ये दिन नया लग्न विवाह मूभने के थे। परतु स्वगवामिनी नहीं मानी। स्पया ले लिया गया और लग्न भी एक सप्ताह मे भिजवाने का उन्होने का या के पिता से आग्रह किया। मृत्यु के दिन प्रात ही भद्र की लग्न लेकर नाई आया था। विचार था कि लग्न वापिस करदे। परतु उसने नहीं माना। अपने सामने वस्त्र मजवाए, भद्र की गोद भरी, टीका दिया। मानो अपने इस पुत्र का विवाह करने का उ हे ही अधिकार है और जल्दी भी हे। लग्न की कायनाही बहुत सन्धेप मे मैने निवटाई थी, क्योंकि स्वगवासिनी की तयारिया बहुत तीव्र थी। लग्न के एक डेढ घण्टे बाद ही तो वह भद्र को और ०म सत्रको त्याग कर चल दी ॥

भद्र का व्याह

अपनी सह प्रमिगी का दाह करके नौटने के बाद से मे अपनी पुरानी कोठरी मे शीतलपाटी पर चुपचाप अोगा पना रहता था। शरीर नगा रहता, और मिर पर गहर का एक मोटा अगोत्रा गीना करक टाते रहता था। मे सोता रहता था था जागता, रोता रहता था या कुत्र सचता, उमका ज्ञान मुझे नहीं था। पानी की बालटिया रीच गीत्र पर जो गम के पद मे। तर रये थे, उसकी यकान मेरे हाथो को अब अनुभा ता रही थी। हाथो मे टाते पठकर गाडे पन गइ थी— मुटठी बावते समय उगलिया दद करती थी, मारा शरीर टूटा पउता था, मानसिक और शारीरिक कष्ट और दना उम अधरी कोठरी मे सात्रर बन कर मुझे आक्रान्त करती रहती थी। मै किसी का अपन समीप आना गहन नहीं कर सकता था। परतु मेरी माता ने तीसरे दिन गीरे से कोठरी का द्वार खान कर बिना आहट किए भीतर प्रवेश किया और चुपचाप मरे पास बठकर मरे शरीर पर हाथ फेरने लगी। हम दोनो ही गिदीण होते हुए हृदयो की सभाल रहे थे। दोना ही उमडते आसुओ और अवरुद्ध कण्ठ के कारण बोलने मे

‘प्रातः मरने वाले के साथ मरा बोडे ही जाता है। उसका तुम्हारा दानना ही मयोग था।’

उ होन लाकर मुझे समझाना म ठहरा दिया। साट लाकर मुझे दे दी। बहुत प्रयत्न करने पर भी उसकी लाई पूरिया म नहीं ग्या मना। सत्र कुत्तो को ग्राट दी। पात माल उठ कर मं फिर गगा के उगी तट पर आकर बठ गया जहा से मेने पत्नी को चिरमिया दी थी। दिन चढते चढते इक्के वाला भी आपहुचा। उसने मुझे बहुत सा त्वना दी। पटो को कुठ रुपए दे मे इक्के मे बैठकर घर लोट आया। पत्नी की अब केवल याद ही मरे पास थी।

मेने अपने हृदय पर पत्थर रखा, बागी पर मयम किया, आखो के आसू सुखा जाने और माता की दृष्टि मे अपने को ठीक रख पाचवे दिन पत्नी के सब कम निबटा दिए। उटे दिन स भद्र के व्याह की तैयारी शुरू कर दी। पत्नी का आदेश था कि मेरे बाद भी भद्र का व्याह टूने नहीं, ठीक तिथि पर सम्प न हो। मे और माता अपने आवेगो को अ दर मोठरी म जानर शा त कर गाने ये और शीत्र ही बाहर आकर फिर व्यस्त हो जाते थे। मने व्याह टालने की दृच्छा की तत्र माता ने नहीं माना, माता ने जत्र व्याह टालने की दृच्छा की तब मने नहीं माना। एक आख मं ग्रामू और दूसरी म व्याह रखकर पत्नी की मृत्यु के १० दिन बाद ही २३ जून १९२३ को भद्र का व्याह हो गया। एक सप्ताह बाद म भद्र को लेकर बम्बई चला आया और भद्र की बहू अपने पीहर चगी गऽ।

भाग्य की रेख

उम्पई पहुचकर मने अपना तारतार समेटना आरम्भ किया। अत्र बम्बई से मुझे अरुचि टा गऽ थी। मन भद्र को आदेश दिया कि सब फातू फर्नीचर तथा सामान तत्र गाना ताय और ममान गानी त्र दिया जाय। यह सब तयारिया हो ही रही थी कि त्रमा म गेट त्र माता प्रजाज का एक पत्र मुझे त्रहा कुठ दिन चिरमिया आकर रता। त्रिण मित्ता। उभी दिन मेने उम्पई को नमस्कार किया और वत्रा के त्रिण रवाना हो गया। मने भद्र पर ही त्रहा का भार छोड दिया।

मं त्रमा तीन मास टहरा। दो त्रस त्रे। उ त्र देयकर औपत्र की व्यवस्था मेने त्ररी और त्रग्रह त्राम उ त्र देय लेने के बाद दिन भर मे खानी ही रहता था। यह अत्रा ही त्रया कि मुझे तीन मास तत्र वत्रा का एतत वाम प्राप्त हुआ। त्रसे मै अपने मन ता त्रहा कुठ त्रस्थ कर सका।

एक त्रिण म था मयम अपने आवास ने उद्यान म वैठा मं मृत्यु ने विषय मे गतन त्रिचारा म त्रया हुआ था, कि मन्दसौर (मेराड) से एक परिचित मित्र त्र तार एत आश्रयकर मरीज को आकर देखने का मुझे मिला। सेठ जी से आज्ञा लेकर रात की त्रने मे मै मन्दसौर के लिए चल दिया। स्टेशन पर मित्र उपस्थित थे। उनके साथ

उम्हें माफ़ि फिर म नहीं गया। भद्र ने कुछ सामान वही बेच दिया, कुछ दिल्ली ल आया। त्रिनाथ के तार पत्नी सहित कुछ दिन म सिकन्दराबाद रहा और फिर वर्धा चला आया। पत्निभक्त मागननाल चतुर्वेदी ने मेरी इस पत्नी को मेरे योग्य बनने में बहुत प्रेरणा दी। चतुर्वेदी जी ही पहिल बाहरी व्यक्ति थे जि होने उसके मनमें संस्कृति का भावना का प्रादुर्भाव किया। व रा में चने आनेके तारभी कुछ काल तक चतुर्वेदीजी अपना पत्रा में उम सूत्र पत्र और त्रिदूषी करने की प्रेरणा देते रहे। वर्धा में एक मास रहा। मर दाता मरीज अ ठा गए थे। म चलने की तयारिया ही कर रहा था कि भागनपुर म एक तार मुझे बुलाने का आ गया और मे पत्नी को म दमौर भेज स्वयं भागनपुर चला गया।

भागनपुर म एक सम्मनन का मुझे सभापतित्व करना था। चार पाच दिन तक सम्मनन का बड़ा कायभार मुझे उठाना पना। दूसरे मरी मानसिक तारा दो त्रिभिन्न त्रिशास्त्रा म गतपरा रहती थी। उ ही कारणों में सम्मनन की समाप्ति पर म साधा त्रि रूप म मागित उतर म आशान्त तारर त्रि भागनपुर में ही बीमार हो गया। पत्नी त्रि म ही मरी गता जाती रही। म वहा एक बहुत बड़े परिवार में प्रतिथि था। उ तान तथा सम्मनन क सयाजमान मेरी चिकित्सा में रात दिन एक कर दिया। भागनपुर क अतारा पत्नी तारा कनकता में चिकित्सको को बुलाकर कनसल्ट किया गया। तारा ताराद और म दमौर मरी बीमारी के तार दे दिण गए और पचीस ब्राह्मण मरी पाण रना के त्रिमित्त पाठ करने लगे।

अगल म मर मानसिक तान प्रतिघाता ने मरे मस्तिष्क के रक्त पवाह में उष्णता उत्पन्न कर दी था और मर मस्तिष्क का समस्त रक्त एक ही स्थान पर एकत्र तारर गम ला गया था। मुझे मस्तिष्क उतर का प्रवल वेग हुआ था। म नहीं कह सकता कि उम तान म मरी त्रिग त्रिग तथा तथा चिकित्सा की होगी। क्योंकि पूरे २२ दिन तार मरी तारा हुए थी।

जारीमर त्रि त्रि प्रात तान जय मरी आय खुनी, तो मुझे ठीक ठीक सजा थी। मर त्रि त्रि म मरी जेया पर कोई ताल दुजाला आढे त्रि त्रि त्रि ही सो गया है। उमका पत्र तार मर भाव पर है। तब तक भी मेरा दिमाग चकरा रहा था, त्रिन्तु म कुछ त्रि तार गता था। म त्रि देर तक उस दुशाले पर कडा सुनहरा काम ध्यान से दगा तार। फिर मुझे त्रि आ गई। उसके बाद जय में पूण रूप से जाग गया तो मेरी प्रकृति ठीक थी और म राच त्रिचार गता था। घड़ी ने आठ बजाए। घड़ी का अन्द सुनकर तान दुजाला त्रिना और उठ बैठा। मैंने देखा मेरी पत्नी है—पीना और उदाम मुय। उसन मुझे अपनी ओर दखा तो उसे विश्वास ही नहीं हुआ कि मैं सचमुच जाग गया हूँ और उसे दख रहा हूँ। दूसरे ही क्षण उसे पहचान कर जब मैंने शीघ्र वार

मे कहा—तुम कब माँ ? तो वह हप सरा पाता। तब मैंने भी उसे समझाकर दिया। इसी समय डाक्टर तथा ग्राम यात्री गौरी साहब उभरे। उनका उनका तरफ देखकर उन्हें पहचान सका। मैंने भी उनसे बातचीत की। वे भी गवाँथ पर उठ न सका, बडबडाकर रह गया।

डाक्टर मुझे देखने लगे। देखकर जम उठे। मैंने भी उनसे बातचीत की। बिल्कुल नहीं है। हालत सब तरह अच्छी है। ग्राम यात्री गौरी साहब भी एक हफ्ते में बिल्कुल ठीक हो जाएंगे।

डाक्टर के यह कहने पर सबकी आत्म प्रशान्ति में उत्सुकता समा गई। वे रात भर हास्य खेलने लगा। मैंने उन सब का हाथ जोड़कर नमस्कार किया। रात भर की थकान के कारण मेरे हलचल मच गई। स्त्रियां मेरी पीठ पीछे जाकर और मेरा हाथ थपकाकर करारकर मेरे कमरे में आ गए।

भद्र और पत्नी ने तो जो अथक सेवा कराई थी। मैंने भी कुछ किया था। मैं ही हूँ, पर तु भागलपुर के ग्राम पंचायत में यत्नियत न करने का उत्तर दे दिया। मैंने भागीरथ प्रयत्न किया उसे सुनकर मेरे दन्त रूढ़ गया। मैंने सोचा था कि मैंने भागीरथ का इतना प्रिय व्यक्ति हूँ। उन्हीं दिन तबजाय स्थिति पाता तो मैंने रात भर डाला था। पूरे डेढ़ मास मुझे भागलपुर स्थिति पाता। एकांश में भी मैंने स्वस्थ होते ही मैंने उन सब से मित्रता लेनी चाटी, पर मुझे अना भोजन था। मैंने मत नहीं थे। पर मैंने उन्हें बताया कि आपकी गलत अर्थ प्रयत्न में मैंने भी भागलपुर हो गई है, अब कोई शका नहीं है। चिकित्सा में मैंने भी भागलपुर में मैंने सबने अश्रुपूर्ण नेत्र से मुझे बिदा किया। मैंने भी भागलपुर में मैंने निभाकर अहसान करने आया था, पर मैंने अपना हाथ उठाकर मैंने भागलपुर पर लादकर जा रहा था। भाग्य भी कम से कम था।

कुछ सप्ताह सिद्धाचार व्यतीत हुए। मैंने भी भागलपुर में मैंने भागलपुर में मैंने भक्त का अनुगोचपूजा बुलाया था गया। उन्हीं पत्नी गौरी साहब भी गौरी साहब चिकित्सा पर विश्वास था। उनके गताँ गौरी साहब भी भक्त पूरे भागलपुर में मैंने पडा। मेरा स्वास्थ्य ठीक होता जा रहा था गौरी साहब भी भागलपुर में मैंने था। कुछ दिन बाद मेरी पत्नी भी गौरी साहब चिकित्सा में मैंने गये।

अतः मेरे मध्य प्रदेश का जेस पूजा पर से टोक ला गया गौरी साहब भी भागलपुर में लेकर फिर दित्ती मे आकर बस गया।

मेरी द्वितीय पत्नी स्त्रीत्व का कामल अवतरण था। मुझे भी भागलपुर में मैंने अपने स्वयं शरीरमें छिपाए पूजन पूजन निष्ठा सरागमो संघर्ष था। मैंने भागलपुर की रुग्णागस्था कात में अपने स्वामी से उसका परिचय और अर्थात्तथा था।

प्यार के सदैव ही दो रूप हैं। हृदय भी, जो प्यार का यत्र है, दो प्रकार का है। एक हृदय वह है जो शरीर है। वह लगभग चार पांच छटाक का मांस पिण्ड है। वह प्रति क्षण शरीर को जीवन दान करता है, प्रगति का अविष्टाता है। परंतु दूसरा रूप जो हृदय का है, वह आध्यात्मिक है। उसकी कोई रूपरेखा नहीं। वह भावनाओं की लहरों का एक अदृश्य समुद्र है। प्यार हृदय का मुख्य व्यापार है। परंतु चूकि हृदय के दो अस्तित्व हैं एक शरीर, दूसरा अयात्म, इसलिए उनके प्यार के भी दो रूप हैं। शरीर प्यार तो शरीर का केन्द्र चाहता ही है, परन्तु अयात्म प्यार आत्मा से सीधा सम्बन्ध रखता है। यह सच है कि अयात्म प्रेम ही यथाय प्यार है। पर प्रकृति का स्वरूप ही यह है कि अयात्म प्यारके लिए शरीर प्यार का अलम्ब चाहिए ही। चिरकाल से लोग ईश्वर को अयात्म वस्तु समझते हैं परंतु लोगो ने सत्तुष्ट न होकर उसकी सबडो शरीर और पार्थिव भूतिया जनाली है। उनमें उच्चरकी कल्पना करत है।

पति और पत्नि में दो सम्बन्ध, जगत में, खासकर मानव समाज में अप्रतिभ है। यह कहा जा सकता है कि स्त्रीत्व और पुरुषत्व वन्ही तों के दो परवह अपनी पूर्ण कलाओं का विस्तार करता है। स्त्री यद्यपि प्रसन्न करवे स्त्रीत्वा ही एक प्रथम प्रतिष्ठा रखती है, परन्तु पुरुषत्व की कमौटी तो एक मात्र पत्नीत्व ही है। तस्मिन्नि यं सम्प्रव और मय सम्प्रयो की गणेशा वैज्ञानिक है। कहना चाहिए कि स्त्री पुरुष का अस्तित्व ही इती के लिए है। इस सम्बन्ध का प्राण प्यार है जो हृदय का व्यापार है और वह पार्थिव और अयात्म दो स्वरूप वाला है। इस साधारण तथा और सम्प्रयो में स्वामतौर पर पति पत्नित्व सम्बन्ध में वह अपने दोना प्रसार का पूरा विस्तार और विज्ञान चाहता है। प्यार के पूर्वाद्य के लिए शरीरमें शरीर और आत्मा में आत्मा का सम्मिलन होना ही चाहिए।

पति पत्नी में माद माता और मन्तान के प्यार का सम्प्रय है। परन्तु माता में मन्तान एक बार प्रसन्न होकर प्रथक होती है और वह प्रति क्षण प्रथक होती ही जाती है, परन्तु पति पत्नी परस्पर प्रथक में सम्मिलित होकर रहते हैं और प्रति क्षण एकत्र धात जात है। उनका शरीर और आत्मा परस्पर में प्रविष्ट होता है और उग सन्निकटत्व की चरम सीमा यह है कि दाना में एक नया शरीर प्रसन्न होता है जिसका शरीर और आत्मा, दोना के शरीर और आत्मा के अग में मयुक्त होकर बना है।

मेरी प्रथम पत्नी और मैं दाना ऐसे दम्पति थे जो पुण्याय में परस्पर प्रसन्न थे। जिस प्रकार अनुसुत ऋतु और जलवायु पाकर पौधा पनपता है, उगी भाति अनुसुत पकृति स्वभाव और भावना से दोनो के शरीर और आत्मा धुनमिल कर एक हो गए थे। प्यार उहाँ सफल था। परन्तु अब तो वात भिन्न थी। पहली पत्नी का शरीर तो नष्ट हो गया था। मेरे साथ उसका केवल आध्यात्मिक सम्प्रय ही रह गया था। मेरे

आध्यात्मिक हृदय मे पूव पत्नी ही पत्नी थी । वह रूप रेखा और ज्ञायाहीन पत्नी जब तब मोत जागते मेरे भीतर बाहर घूमती रहती थी । कभी न मग्ने बानी त्रिमृतियों ने उस अध्यात्मकार को शरीर प्यार के निकटनम ला रखा था । इसलिए मृतियों के उदय होते ही उनका पार्थिव हृदय पत्नी के पार्थिव प्यार के लिए हाहाकार कर उठता था, परन्तु शरीर के अवयव से मैं केवल पूव पत्नी को आध्यात्मिक प्यार ही कर सकता था । इसलिए प्यार के प्राणस्वरूप उत्साह, आनन्द, किल्लोल, उल्लास जो होना चाहिए, वह गम्भीर शोक और विकलता मे परिणत हो गया था । पूव पत्नी का प्यार अब मुझे उल्लसित नहीं करता था, मुझे अति अचित्य गम्भीर शोक मे डुबा देता था ।

फिर भी इस मे एक स्थिति तो थी । मैं निर्विघ्न भाव से पार्थिव प्यार को मयम से विसर्जन करके अध्यात्म प्यार को अलक्ष्य पत्नी को देकर गहन आनन्द के आनन्द बहाया करता था । मुझ मे एक उत्साह भर गया था, जिसने मानो मुझे विदेह बना दिया था । मेरी जीवन शक्ति पार्थिव शरीर से दूर हट कर मेरी प्रात्मा मे प्रविष्ट हो गई थी और मे पूव पत्नी के लिए धीरे धीरे आध्यात्मिक बन रहा था ।

परन्तु पत्नी की जगह, कहना चाहिए पूव पत्नी के पार्थिव प्यार के सिद्धान्त पर द्वितीय पत्नी आ बैठी । मेरी आत्मा ने उसका विरोध किया । मे सोचने लगा कि कोई भी स्त्री क्या पूव पत्नी के अधिकार को लेगी । मे इसी विद्रोह के प्रभाव मे, मानसिक रोग से आक्रांत हुआ था । पर धीरे धीरे मैं सोचने लगा कि द्वितीय पत्नी केवल कोई स्त्री ही नहीं, मेरी पत्नी है । यह पत्नीत्व क्या चीज है ? कुछ प्रक्रियाओं के बाद क्या कोई भी स्त्री किसी पुरुष की पत्नी बन सकती है—पत्नी ? इस पत्नी शब्द ने मस्तिष्क मे खूब उपद्रव मचाया । अत मे मुझे स्वीकार करना पडा कि द्वितीय स्त्री पत्नी तो है, पर पूव पत्नी का अध्यात्म आकर्षण मुझे विदेह बना रहा था । मे द्वितीय पत्नी से भय खाता था । परन्तु शरीर, सूक्ष्म अध्यात्म और स्थूल पार्थिव का माध्यम है । मेरा हृदय मुझे जगत से दूर पूव पत्नी के निकट ले जाना चाहता था, पर शरीर रहत मे पूरातया पूव पत्नी के पीछे न दौड़ सका । मुझे द्वितीय पत्नी को अपना पार्थिव हृदय समर्पित करना पडा । इससे मुझे बहुत सुख मिला । मानो नवीन जीवन पाया, शरीर पल्लवित हो गया । मैं विभोर होकर नवपत्नी के पार्थिव प्यार को प्यामे ही भाति पीने लगा ।

परन्तु बड़ी कठिन समस्या आई । यह कैसे हो सकता है कि पार्थिव प्यार नव-पत्नी को और आध्यात्मिक प्यार मृतपत्नी को अबाध रूप मे मिलता रहे । एक ही तो हृदय है और पत्नीत्व मे जो दो प्रकार का प्यार है उसके केवल दो प्रकार मात्र है, यह वस्तु तो अतत एक ही है । नव पत्नी और मृतपत्नी के प्यार मे, कहना चाहिए मेरे पार्थिव और आध्यात्मिक हृदय मे अब घनघोर द्वन्द छिड गया । मे कभी आध्यात्म प्रम

ने मात्र होकर पार्थिव प्रेम से भागने की चेष्टा करता और कभी पार्थिव प्रेम से सरा बोर हो, दीन दुनिया को भूल जाता ।

जिस किसी के साथ जीवन की यह दुस्मह कठिनाई चली हो, वही मेरे इस अतर्द्धद को समझ सकता है । भाग्य ने इस अतर्द्धद का आभास मुझे इसी बार नहीं, इससे आगे दो बार और भी दिखाया जब मेरी द्वितीय और तृतीय पत्नी भी पहिली पत्नी की भांति मुझे इस लोक में छोड़कर परतोरु गत होती गई । मेरे चंचल व्यग्र, आतुर अवार और असहनशील भावों और मेरे स्वभाव परिवर्तन को देख परिजन और मित्रगण परेशान थे ।

दिल्ली में नया जीवन

१८२४ के मध्य में मैंने फिर दिल्ली चादनी चोक में अपना बिकित्सालय खोला । कहिए मेरा नया जीवन आरंभ हुआ । मुझे ठीक स्मरण है कि अपना काम जमाने के बाद मैंने पहिले दिन अपनी कुर्सी पर बैठा ही था कि मेरे हाथ में जो सबसे प्रथम रोगी आया, वह एक महीने से बिकूल प्रयोग था और उसके अंतिम श्वास चल रहा था । रोगी के अभिभावक जब मुझे अपने घर उसे न्याने ले गए तो मुझे रोगी को देखकर बड़ी निराशा हुई । पर मैंने उन्हें आशा दिलाई और सोलह रुपए फीस के जेब में डाल कर अपने ओषधालय में लौट आया । बहुत दर तक मैं औषध देने के विषय में विचार करता रहा । अंत में मैंने भद्र को कुछ औषध दे और सब व्यवस्था समझाकर रोगी को घर भेज दिया और यह भी कह दिया कि पूरा दिन और पूरी रात रोगी के सिरहाने से हटना नहीं । इधर रूपा से पहिली ही मात्रा ने रोगी को जीवन श्वास प्रदान किया । उसके अव्ययाम सुन गए । भद्र चौबीसा घंटे उसके पास ठा मेरे आदेशानुसार दवा देता और उपचार करता रहा । अगले दिन प्रातः जब मैं रोगी को देखने गया तो गृह स्त्रिया मेरे चरणों से लिपट गई । मुझे ज्ञात हुआ कि सात परिवारों में अकेला यही नवयुवक 'रोशन निगाह' है, और मरा औषध ने उस मृत्यु मुखसे बचा लिया है । एक मास तक वह युवक मरा बिकित्सा में रहा और पूरा स्वस्थ हो गया । वह एक सम्प्रात परिवार का प्राणी था जगान उससे आराध्य लाभ ने दिल्ली में मेरा यश फला दिया ।

उम्बई के प्रवास का मैंने 'अतस्तन', 'सत्याग्रह और असहयोग' नामक दो कृतियां निगार प्रकाशित करायी थी । 'हृदय की परख और 'सत्याग्रह और असहयोग' में गुजराती सम्करण भी प्रकाशित हो चुके थे, अतस्तन का मराठी अनुवाद प्रकाशित हो चला था । पत्र पत्रिकाओं में भी मेरी रचनाओं ने ख्याति प्राप्त की थी । इसी से मैंने भद्र को अपना साहित्य का प्रकाशन व्ययमाय दे देना चाहता था । उम्बई प्रवास में मैंने समाज और स्वास्थ्यविषय पर एक क्रांतिकारी पुस्तक 'अभिव्यक्ति' लिखी थी, जिसे मैंने भद्र के निग सत्र ही छपाई थी । जब भद्र उम्बई का बार समेट कर

सिक-द्रावाद आ गया तो 'सजीवन ग्रंथमाला' के नाम से उसने ग्रंथना प्रकाशन का साथ वहा स्थापित किया। जिसकी प्रथम पुस्तक यही 'व्यभिचार' थी। 'व्यभिचार' का प्रथम प्रकाशन १९२३ में हुआ था, जिसकी चर्चा कुछ ही दिनों में ही सरसफत में और उसके धडाधड आडर आनेलगे थे। इस पुस्तक की मरम अर्थात् रफत टुई १९२३ में। पर तु मेरे भागलपुर जाकर बीमार हो जाने तथा मेरे टिल्ली आकर अमता ३ कारण मैं भद्र को अपने से दूर नहीं रख सका। उस मन सजीवन ग्रंथमाला टिल्ली में उठालाने का आदेश देकर उसे वही बुला लिया। अपनी स्वग्रामिणी पत्नी की स्मृति में मेने एक नया नाम 'तारा साहित्य ग्रंथमाला' भी प्रचलित किया, जिसका प्रथम पुस्तक 'वनाम स्वदेश' १९२५ में प्रकाशित हुई।

मेरा चिकित्सालय आधुनिक ढंग से व्यवस्थित था, जिसमें एक दिन का प्रथम कमरा था। मैं अपने कमरे में मरीजों की भीड़ एकत्र नहीं करता था। इसका आर रूप फीस लेता था और एक एक मरीज का अदर बुलाकर तमन्नी में रखा था। मर पास प्राय विगडे हुए केस आते थे। नए सरदी बुखार का हार्ड मरीज मर पास आता ही न था। इसलिए फुरसत मिलते ही मैं अपने साहित्य सृजन में लग जाता था। नीचे मेरा चिकित्सालय था और उमी बिल्डिंग में उपर की मजिद में मर रखा था। भोजन से निबट कर मैं फिर अपने काम में जुट जाता था। जून १९२७ में मन रखा स्थय सम्बन्धी एक मासिक पत्र 'सजीवन' भी निरानना आरम्भ किया था। आरम्भ में यह अजुन प्रस दिल्ली में छपता था, परन्तु शीघ्र ही मन अपना एक रखा न प्रस 'सजीवन प्रेस' नाम से खोल लिया था और ६ अर अजन प्रस में आता था। मासिक अर से सजीवन' अपने निजु प्रस सजीवन प्रस में ही छपा गया था। मर १९२७ में कि दिल्ली में भी मेरी चिकित्सा आय खूब बढ गई थी और उम मर न गया था। प्रेस और प्रकाशन में लगा दिया करता था। भद्र ३ लिए मैं मर याराय ता रखा चाहता था। चिकित्सा व्यवसाय के साथ साथ मैं फामगी विभाग में आता था जहा समभत आयुर्वेदीय ओषधिया का त्रिप्रित निमाण हाता था और १९२७ में मासिक पत्र में विज्ञापित हाकर खूब त्रिकती थी। पसा आया कि मर रखा रखा बात में सोचने लगता था। पसा मचय करन की आर मन रखा विचार मा त्र किया। यद्यपि इतनी भारी आय मेरी ही अर्जित थी परन्तु मैं तमा पग रखा था। मैं भद्र ही सब देखता भालता और सभालता था। हा रखा रखा र मर मा रखा रखा पालन होना आवश्यक था। एक दिन सब्जीमरी त्रिनामि न मर रामरार रखा जी विडला का सदेश आया कि माटर आती है—आप जरा आरण। जातर मा रखा रखा मनस्वी मदनमोहन सालवीय जी की त्रियत ठीक त्री है। उनकी मर मर रखा पर दद है। दो चार मिनट बठन पर ही सालवीय जी न मुफ बुता मरा।

रात्रि के नौ बज का समय था। दगा एक प्राराम कुम्भी पर अनिश्चित भाव से बठे वे कुछ जागजो का ध्यान से देख रहे थे। मुझे देखते ही उ होने जागज रख दिए और अपने रोग का सन्निप्त वर्णन कर दिया। मने हटा—आप जरा पलंग पर लेट जाय तो पीटा स्थान का परीक्षा कर लू। व कुर्सी से उतर कर धरती पर औघे लेट गए और अपना हाथमे मेरा हाथ लेकर दद के स्थान को टटोल टटोल कर बताने लगे। पीटा बहुत ज्यादा थी, परन्तु उनसे बरा नशती और व्यग्रहार ऐसा था कि माना किसी दूसरे मनुष्य के दद के स्थान को दिखा रह है। मने धीरे धीरे कुल पीटा का वस्त्र हटा कर शरीर को देखा। देखते देखते मेरा हृदय भर आया। शरीर में हड्डियां पर सिर्फ चमड़ी मती हुई थी। मांस का तो नाम भी नहीं था। मने मन में क्षुभित होकर कहा—कसा निमम ब्राह्मण है शरीर पर दया जरा नहीं करता। मन कहा—महाराज, इस समय विश्राम कीजिएगा।

उन्होंने तत्काल जवाब दिया—‘विश्राम ही तो कर रहा हूँ। ऐसा काम ही क्या है। पर आप उतनी व्यग्रस्था कर दीजिए कि वन में बाहर आ जा सकूँ। असेम्ली में भी मुझे प्रश्न्य शरीर होना है और दा तीन मिनटिंग में भी जाना है। उतने में एक व्यक्ति ने आकर कहा—‘हिंदू सभा में फोन आया है कि क्या आप कृपाकर पांच मिनट को कल किसी समय एक मीटिंग को पहुँच कर सकेंगे?’

माननीय जी ने कुछ रुक कर कहा—‘हाँ, मैं जाऊँगा’

सर्दी ज्यादा थी। मन कहा—म कल बाहर जाने की सम्मति नहीं दे सकता। दद व बढ़ जाने का पूरा ग्रन्देशा है।

उन्होंने उठ ही ताचार भाव से उत्तर दिया—वह तो है, परन्तु बिना जाए काम भी तो नहीं चल सकता। रात्रि भर का विश्राम में अवश्य करूँगा।

मन मां में हमफार कहा—‘अभी कृपा, रात्रि भर का विश्राम यदि आप करें।’

उन्होंने मुझमें प्रश्न किया—‘आप क्या औपचार्य भजेंगे?’

मैंने यत्र पथ जरा घुरा लगा, परन्तु जत्र मन नुस्खा बताया ता उतने उगके गुण दापा का पंगी सूती में प्रगन किया कि म तो दग रह गया। म चला आया और औपचार्य भज दी।

प्रातः काल जागर देखता ह कि यत्र पथ पर घुटनों के तल पडे कागजो में डूबे हुए है, उतना गायद सम्भव न था। तत्रियत का हाल पूछने पर बोले—दद बहुत कम है। रात में नींद भी बहुत अचरी गार। रात तल की मानिश की थी, अभी फिर कराता हूँ। तेन में क्या क्या औपचार्य है?’

मन तल का नुस्खा भी प्रता दिया। कहने लगे—‘तुन सु दर वस्तु है। यत्रवाद। भोजन क्या कर?’

मने पूछा—नित्य क्या खाते हैं ?

कहने लगे—सिफ चावल और धुली हुई मूग की दाल ।

मने कहा—परन्तु आप चावल अभी चार पाच दिन न खा सकेगे ? वे बोले—म चावलो के सिवा कुछ खा ही नहीं सकता । मेरी पाचनशक्ति और कुछ हृष्म ही नहीं कर सकती । वसे चावल मुझे पसन्द नहीं है पर क्या करूँ ।

मने कई खाद्य बताए परन्तु एक भी ठीक नहीं बैठता ।

मैने कहा—तब लाचारी हैं । पर तु इससे आपको स्वस्थ होने में देर लगेगी ।

इसी समय एक व्यक्ति उसी गाडी से काशी विश्वविद्यालय के कागज ले आया था । उ होने सब कुछ भूलकर कागजों को देखना शुरू किया । मे बड़ी देर तक चुपचाप बैठा इस कठोर तपस्वी को देखता रहा । बिल्कुल आवश्यक हड्डियों का यह शरीर जिसके जीवन निर्वाह की स्वाभाविक आकांक्षाएं अतिशय सन्निप्त हैं, जो पतिक्षमण एत चिन्ता समुद्र में डूबा रहता है, जिसकी भ्रुकुटी मुद्रा सदैव सकुचित और व्यग्र रहती है ? यह सब किसलिए ? एक आत्मत्याग की भावना को लिए हुए कितनी तेजी से इस दीपक का स्नेह जल रहा है, और हम जो इसके प्रकाश में कुछ देख रहे हैं वसे निश्चित बूठे हैं । जो व्यक्ति केवल पाच घंटे सोता है, आहार में घी दूध मलाई आदि पुष्टिकर भोजन को न पचा सकने पर सिफ चावल और मूग की दाल पर निर्भर रहता है और चोदह घंटे मानसिक परिश्रम जिसका नित्य व्यवसाय है, वह व्यक्ति ५५ म ऊपर अवस्था को प्राप्त करने के कारण प्राकृत गति से शरीर पोषण करता है । शरीर की स्वाभाविक क्रियाएं क्षीण हो रही हैं । उनका वजन उस समय १२० पाउण्ड से भी कम था ।

एक बार सेठ घनश्यामदास बिडला का बुलावा पाकर मैं उठ देगने गया । जाकर देखा—कोठी के बरामदे में सर्दी की प्रात कालीन सुनहरी धूप में एक कुर्मा पर बैठा एक सुन्दर युवक हजामत बना रहा है । सामने लगभग एक दर्जन उरतरे राज राम हैं और दो तीन आदमी खड़े उनकी धार ठीक कर रहे हैं पर हजामत फिर भी धीरे नहीं बन रही है । मैने देखकर मन में कहा—यह दधने योग्य श्रीमरी हजामत है ।

बिडला व धुआं ने पतितोद्धार और सिन्धा में अनवरत दात रेफर नागा लागी के हृदय में बड़ा मान पाया है । पर इस दान पर मेरा मन मानित न था । श्रीमरी व दान दरिद्रों के प्रति प्रेम प्रकट नहीं करते, दया प्रकट करत है । म पाछिया का रिद्ध व्यक्ति इतता मगरूँ हूँ कि श्रीमरी की दया मुझसे सही नहीं जाती, वह चाहे ईगी ती सात्त्विक हो, मेरा मन उसकी प्रशंसा नहीं करता । म प्यार का राजी हूँ, पर प्राय वनवानो के हृदय में अपने स्त्री पुत्रों के लिए भी वह प्यार नहीं होता जा श्रीमरी व हृदय में होता है । इसका कारण शायद यही है कि श्रीमरी परिवार परस्पर त्याग और





बलिदान से जीवन व्यतीत करते हैं, और अभीर सुग और आराम से। मे विश्वास नहीं कर सकता कि धनिक समाज रूढियों का तिरस्कार करने वाले पुरुषों को पैदा कर सकता है। मेरे सम्मुख सेठ जमनालाल बजाज का एक आदर्श था पर महीनो निकट रहने से उनकी कमजोरियाँ मुझ पर प्रकट हो गई थी।

इस सुदूर युवक सेठ के नेत्र और होंठों पर एक अनथम उल्लास और रईसी की मस्ती थी। तदुरस्ती की लाली और यौवन का तरंगित रक्त प्रत्येक चेष्टा में प्रकट था। देखकर तबियत खुश हो गई। शिष्टाचार के बाद हजामत बनाते बनाते ही बातचीत शुरू की। बोले—‘सुना है, आप योग्य वद्य है। लिखते भी हैं। आपके लेख मैं पढता हूँ। पंडित नेकीराम शर्मा ने आपकी बहुत प्रशंसा की है।’ शब्द सरल और मधुर थे। इधर उधर की बातचीतके बाद अपनी धमपत्नी के विषय में कुछ परामश किया। वे क्षय राग से पीडित थी। सुनकर हृदय पर चोट लगी।

इसके बाद उन्होंने अपनी शरीर व्यवस्था कह सुनाई। कहा—‘और सब ठीक है, पर गतमास में ज्वर और सखिवायु हो गया था। क्या कुछ भस्म सेवन करना ठीक होगा।’ भस्म सेवन की सम्मति मैंने नहीं दी। क्योंकि अकारण नवीन अवस्था में भस्मों के सेवन से शरीर के स्नायु मण्डल की सूक्ष्म ग्रहण शक्ति जाती रहती है। उनकी अल्प मात्रा और उग्र प्रभाव भी शरीर की सौम्यता पर आघात करता है। इसलिए मैंने सम्मति दी कि वे कोई मृदु प्रभायुक्त पात्र आदि का सेवन करें, जिससे शरीर मन्त्र अपनी स्वाभाविक अग्नि द्वारा पापगतत्त्व साधारण खाद्य की अपेक्षा अधिक मात्रा में ले सके। मैंने बादाम पात्र के सेवन की भी सलाह दी। उमी का सवन उ होने किया।

सेठ रामेश्वरदाम जी न एक दिन बड़ी रात को मुझे बुला भेजा। मस्तिष्क चौड़ा, आग का भाग उभरा हुआ, ठुठुकी की ठुठुकी चींटी और सिरका पिछला भाग कुछ ऊँचाई लिए हुए। मस्तिष्क शास्त्रज्ञता की दृष्टि से मैं जान गया कि वे एक धुन और राज में मस्त व्यक्तित्व हैं। बात करने की शैली धीमी, अभिप्राय और सारयुक्त। केवल आवश्यक जान धार गीरे हाँठा में निरुलती थी। दखा—कमरा परिजन, दास दासियाँ से भरा है। सब चिन्तित है और प्रपन्न पर चेचनी में इधर उधर करवट बदल रहे हैं। अपनी तबियत का हाल जानते हुए उन्होंने कहा कि मैं इधर तीन महीने से दही पर निर्भर हूँ। मस्रहणा हो गई थी। कईया की चिकित्सा की, लाभ नहीं हुआ। आखिर एक अतार् हाँलाज किया। वह वैद्य नहीं है - पर पूरा लाभ हुआ है। अब पाचन शक्ति ठीक है। वजन भी बढ़ा है। सब तम का उनका वायदा था। कल वे चल गए हैं। रात में गोभी गाली थी सो बड़े जोर का पेट में थूल है। उनकी पत्नी भी अत्यंत व्याकुल थी। उन्होंने घघट में से कहा— ‘गाभी को इत्तीक सो टुकडो हो, वा नई गजब कर दियो।’

मन पूछा—दस्त हुआ ?

नहीं, द तीन उल्टिया हुई हैं।

मने गम पानी का एनीमा लगाया। दो घंटे के उपचार से वे स्वस्थ हुए।

दो दिन बाद मुझे रामश्वरजी की माता को भी देखने जाने पडा। उह तीन शिर झूल था। म सब भून कर मजे मे गप्प लडाने बठ गया। भरा हुआ शरीर, शरारथा ६० के लगभग। सोम्य मूर्ति, अत्यन्त गम्भीर और रिनगव वाणी, स्त्री सुताभ त्रिशवासी हृदय प्रार मातृमुलभ मधुर व्यवहार।

एक दिन प्रात ढाल एक लम्पे तगटे श्वेतवर्दीधारी सनिक ने चिचिर्त्साय म आकर मेरा अभिवादन किया। अभिवादन करके उसने अटपटी हिंदी भाषा म प्रिनय पूर्व शब्दा मे कहा—नपाल के राजदूत धाविक्रम बहादुर राणा सी० आई० ई० कमाण्डर गंगासाहेब का म निजू झाइवर हूँ। राणा साहेब डाक्टरी चिचिर्त्सा ही पराद करते हे परतु अब दिल्ली म काई डाक्टर नहीं बचा जिसे उन्होने ट्राई न किया हा। निराश होकर मने आपकी ख्याति की चर्चा उनसे की। आप हिंदी के रपाति प्राण लखक भी हे, यह भी उह मने बताया। बधो पर उनका विश्वास जमता नहीं था। मेरे बहुत कहने पर उ हाने आपका लेने मोटर भेजी हे। आप तकलीफ करके चलिए।

म चल दिया। अलीपुर राड पर कमिश्नर लेन मे उस समय नपाल राज्य न दूतावास था। सडक के एक कोने पर छोटा सा मनोरम बगला था। बगला भीतर म बहुत ही सादा ढंग से सजा था। उपर जाकर देखा कोई इन्वप की प्रवस्था के उज्जवल वरण तेजस्वी पुरुष साधारण चादर ओढे आराम कुर्सी पर बठे कोई अग्रजी अखवार पढ रहे हे। मेरे भीतर कदम रखते ही वे खडे हा गए। मधुर हास्य और अतिशय प्रिनय युक्त शिष्टाचार देखकर हृदय पर प्रभाव पडा। चेहरा सेव के समान रगिन था। आग छोटी पर तु अत्यन्त रसपूण, नाक कुछ चपटी, होट उत्फुल और ठोनी की हनी जरा फली हुई थी। उहोने बठते ही मिजाज पूछा।

म हँसकर कहा—मने हमेशा दूसरो के मिजाज की मरम्मत करन न म करता हूँ, फिर अपना मिजाज कसे बिगडने द सकता हूँ। आपही तबियत बगी हे, यह फमाइए ?

यहाँ की सर्दी तो ऐसी है कि चाहे जितने कपड़े पहिने पाए भी शरीर गम ही नहीं हाता ।

मन पूछा—तब क्या रहा यूमानिया और टाइफाइड ज्वर नहीं होते, और गठियात्राय की वामारिया कम हाती है ?

उन्होंने कहा—बहुत कम । य राग वहा ज्यादा नहीं हाते । हमारे यहा रोग बहुत कम है ।

मन हमवर कर कहा—तब डाक्टर वैद्य नपाए म पट किम तरह भरते है ? उस पर खूब हसी हुई । उसने ताद मन कहा— प्राइण, थोडा कष्ट दू । म जरा आपके फेफला की परीक्षा क्रिया चाहता हूँ, याप जरा तट जाइए ।

वस्त्र खोलकर गोट गए । मुझे यह देखकर बडा आश्चय हुआ कि हृदय और फफडे जितनी सुन्दर और हट अस्थि मे थे, वस यहा खून मजबूत मनुष्य के भी नहीं होत । आती और पेट पर एक भी वात न था । कुन शरीर मगमरमर के समान चिकना और माफ था ।

मने परीक्षा खत्म करके कहा— याप नित्य स्या गाहार करते है ?

उहा जल्दी मे उत्तर दिया—चावल, यही हम लोगो का मुख्य भोजन है ।

मन कहा आश्चय की बात है । हम लोग खूब उद गेहूँ और तर माल खाने वाले एक हीने गुनाम और निस्तज है और याप नि सत्र चावल खाकर ऐसी वीर जाति की यात को याता यास्य है, जिस पर भारत अभिमान कर सकता है ।

उस पर उन्होंने सिद्ध नीति व सम्बन्ध म नपाल की परिस्थिति वगण करते हुए कहा यह प्री भूत है कि माँगाहार या अन्य पुष्टिकर भाजन करने से शरीर पुष्ट हाता है । शीरता, साहम और शक्ति ये चीजे आदश और अभ्यास से पैदा होती है । हम अपन देश म यायात्री है । हमारे कानून भी ऐसे है । यही कारण है कि नपायी शीर है ।

मन हा पर न यह देखकर दुस होता है कि नपाली बच्चे अग्रेज सरकार के सत्रायात र गिपाती है । तावद पैवान उनके बदल म अग्रेज सरकार से कुछ रपया लेता है ?

उस पर उहा जरा तीसे स्वर म कहा—नपाए राज्य प्रतिपप पहली जनारी से वाग लाग्य रपा नाद अग्रेज सरकार से लेता है । व रुपये मै ही दस दस हजार के नाटा र रूप म रहर मजता है । पर यह सममना बडी भूत है कि नपाल उसके बदले रचर याता है । जा गरम अग्रेजा र गिपाती है - वे नपाल की तराई मे भारत के निस्त ही रता याा शरी जाति व आत्मी है, जिनमे बहुत से अस्पश्य है । ये पट के नौर है । नपाए राज्य उग शीव म नहीं है । पैवान राज्य अग्रेजो का मित्र बना रहने मात्र की प्रतिज्ञा पूरा करने और सीमा निश्चित रखने के बदले यह रकम पाता है ।

इसके बाद और एकाध बात कर मे बिदा माग चला आया। वीर जाति के वीर पुरुष की इस मुलाकात पर मन मे बहुत श्रद्धा हुई। इसने तीन दिन रात्र रागगा माह्न स्वय मेरे अस्पताल मे पधारे।

बातचीत मे उन्होने कहा—हम कुछ विद्यार्थी आयुर्वेद सीखन को भारतवप भेजना चाहते है। आप कहे कि कहा भेजे ? हमने जयपुर सरकृत कालज ग्रीर विल्ली के तिब्बिया कालेज मे कुछ विद्यार्थी भेजे थे, पर वे योग्य न बने।

यह बात सुनकर मन मे दुख हुआ। जहा नालदा और काशी के विद्यालया म पृथ्वी भर के छात्र आकर ज्ञान सुधा पीते थे, वहा आज भारत के युवक यागोय की विद्यापीठो पर दृष्टि जमाए बठे है। पर तु स्वतत्र हिंदू राज्य अब भी भारत पर बगी श्रद्धा रखता है। मैने कहा—इतने बडे राज्य के लिए क्या आप यहा से कुछ विद्वानो को ले जाकर अपने यहाँ विद्यालय स्थापित नहीं कर सकते ? यदि आप ऐसा करे ता चार पाच सौ रुपये मासिक मे दो उत्कृष्ट विद्वान और डेढ दो सौ म सटायन ग्रन्थापन मिल सकते हैं, जो पाच वर्ष मे कम से कम पचास ऐसे मुयोग्य छात्र तयार कर सकते है, जो समस्त नेपाल राज्य की बहुत कुछ सेवा कर सकते है।

मेरी यह योजना उ हे बहुत पसंद आई और उन्होने नपात शासन की सेवा म यह प्रस्ताव भेजने की हा भरी।

रागा साहेब को गजो लम्बी उच्च कोटि की फौजी उपाधियाँ प्राप्त थी। उ इ अठारह वर्ष से अम्लपित्त का रोग था। जो कुछ खाते, तत्कान खट्टा हाफर जाती म जलने लगता। अ तत वह उहे वमन द्वारा निकालना पडता। वमन क ताद कुछ गति होती। इस प्रकार दस पद्रह मिनटमे जितना खाद्य शरीर ग्रहण कर नेता, उमी म उनहा वह फौजी शरीर चल रहा था। इनका नकद चार करोड रुपया बत आफ इगने म जमा था और एक लाख रुपया वार्षिक आय की भूसम्पति थी। वतन आग था। अपने रोग का वरण बहुत विस्तार से सुनाते थे—पाखाना कितना आया, म म रग था, मि ।।। जम्बा टुकडा था। पेशाब हुआ चार। पहिली बार सुग्रह ६ बजे चार आउ ग, फिर २२ बजे तीन आउ स, दो बजे साढे तीन आउ स, ६ बजे चार आउ ग। रा म ण आउ ग चावल, आवा आऊस दाल, उसमे इतन इतना घेन मसाला। गरज गान पी। तो म म हीर मोती की भाति तोल तोल कर पेट मे ले जाते थ। पर्य और यमया पी। ती पावदी कि दूब मेजर ग्लासमे नापकर लेते। क्या मजान एक बर भी म तो या ज्मा ।। समय का इतना रयाल कि वायसराम से मुलाकात हो रही है और इ म म म ग तो गया, अट नौकर थरमस और मेजर ग्लास लिए हाजिर। ती चार मीन घूम तत ।।

मेने तीन वप लगातार उनकी चिकित्सा की। चिकित्सा शुरू करने म प्रथम चके केस का अध्ययन करने के बाद मैने उनमे कहा कि आपको केवल दू म ही म पिनाऊगा।

मुनकर ने आश्चय मे आ गाए । बोने—दूध तो मे चार आउस भी हज्म नही कर सकता ।

मेरे कहे-चि ता न कीजिए । फिर उनमे अच्छी नस्ल की हरियाणा स चालीस गाय खरीदने के लिए क्या ।

मेरे कहेन पर उ हान आदमी भेजकर श्याम वर्ण की चालीस गायें ताजी व्याही खरीदकर मगाई । चालीस गायों की मानी मे अपनी औप्य मिना कर गायों को खिला देता था । उस गायों का दूध दुहकर उसमे अन्य औप्य मिलाकर दूसरी दस गायों को पिलाता था । फिर उनका दूध दुहकर उसमे औप्य मिलाकर तीसरी दस गायों को पिलाता था । फिर उनका दूध दुहकर उसमे औप्य मिलाकर चौथी नौ गायों को पिलाता था । उन नौ गायों का दूध दुहकर उसमे औप्य मिना चालीसवी गाय को, जो प्रित्कृत जाना चमडी की थी, पिलाता था । उस चालीसवी गाय का दूध कपल एक उबाव दूध मे रागा साह्य को पीने के लिए देता था । औप्य प्रारम्भ करने पर मेने भद्र की साठे दिन का त्यती उनका पास लगा दी थी । वह गायों ने दूध और औप्य देने की पूरी व्यवस्था रखता था और उमने गरिमाय समय उनकी व्यवस्था मे व्यतीत किया । उसमे मे भद्र का बहुत प्यार करने लगे थे । पहले दिन उ होने का आउस दूध ही साठे दिन मे पिया । मन नही हई, हज्म हो गया । दूसरे दिन एक-एक आस बढ़ता गया, हज्म होता गया । मन मे ते दिन भर मे अस्मी आस दूध हज्म करने लगे । अस्मी आस दूध हज्म करने पर उठने पडे थे, रहने लगे—२॥ सेर दूध, आपरे ॥॥ आपकी क्या गजब ही है ।

मेरे गीरे मे भाजन भी हज्म करने लग । वे पग निराग हो गए । मैं उनका एक आरोग्यीय का चुनाव था । पर तु उनका वजन पच्चीस पाँच से अधिक नही बढ़ सका । उन गीरे को पेटनी भी कुछ ऐसी ही थी । अस्मी आस दूध और दोना समय का भोजन पानकर उनकी प्रगतिता का पार न था । उन्होंने मेरी प्रशिक्षा नैपालके राज्य परिवार और रागा परिवार मे भी अनेक बार की । उन्ही के अनुरोध पर तत्कालीन नपात के पता मे मे रागा मे भी मुझे अपनी चिकित्साय कलकत्ता बुलाया था ।

दिसम्बर के दिन थे । मुझे नैपाल से पत्र मिना कि प्रधान मंत्री रागा अपना रोग निदान कराया है निण फलकत्ता पानर रहे है, आप रुपा कर फलकत्ता आएं । मैं तत्काल गया । पहात गरी एक जाती महलमे खूब ठाठ पाट से ठहरे हुए थे । गोरखा सन्निहा ही परिचार्य गारा गार गी हई थी । नौकर चाकरा की भीउ उपर उपर व्यस्त भाव मे गारकी राजा रही थी । ज्योती मेरी गार पाँचको मे पहुँची, दिल्ली के कनल साह्ये और माराज के पृथ ने मेरा स्वागत किया । मे ऊपर एक त्रिगाल कमरे मे पहुँचाया गया । गार प्रचार की साजसज्जा मे वह कमरा सुसज्जित था । उसमे इक्यावन

पेड़ पर स गाभि तक्ष फुगिया उनम पात्र और पीप दद और जलन ।

आप क्या भाजा करत है ?

पत्रन साना सिना दूय ।

कितना ?

चौबीस प टे म बारह औम ।

दस्त होता है ?

एनीमा से होता है तीन साल से ।

और कुठ खाने से क्या होता है ?

तद्वान पमन ।

नीद आती है ?

नहीं, अभी आई तो भयानक स्वप्न ।

मृत्र ?

एक एक मूत्र जन पर उतरता है, मूत्र । सा ।

कफ ?

यह कफ प्राण लेगा । निकलता ही नहीं बहुत जुआव है ।

हाय रे टाठ ॥ उस शान और जलान व भीतर क्या ती भाग्यहीन टुम्बी गोर मृ यु का प दी शरीर छिपा बैठे था । यह प्रतापी पुरुष कर्गेनी रूपया और प्राणा का अमीश्वर एक स्वर्ण सुय श्याम लेने, एक कौर अन्न खाने का अधिकारी नहीं ।

सत्र कुछ दय भान कर मन अपना निदान, अपनी सम्मति और अपनी चिकित्सा उ ह विग्नता से प्रतापी । मैं उनसे कहा कि चालीस काली गायो के पीठे एक गाय ता दूय आपको म पिनाऊभा और कण्ठ में हर अक्त पहिने रहने के लिए प्रारह पत्रो का हार । प ने उडे से-उडे एक समान रंग और आकार के होने चाहिए । महाराज को मेरी चिकित्सा पद्धति पसन्द आ गई । उन्होंने हुस्म दिया कि अन्य सत डाक्टरों को फीस और माग व्यय त्कर प्रदाकर दिया जाए और शास्त्रीजी की बनार् चिकित्सा का प्रय किया जाय । मरे रहने और मेरी प्रत्यक आज्ञा पानन करने का आदेश दे वे चले गए ।

कहना न तांगा, सा दो तीन तीन हजार रूपया फीस और माग व्यय का दकर मव गवटरा को निदा कर दिया गया । सत्र डाक्टर चकित और मुभमे नाराज थ । वेम मिला तो वेत्रल मुभी को । एक आयुर्वेद के चिकित्सक पद्य को । उसी दिन तल त्त के जीहरियो को एक रंग और एक ही आकार के बाहर पत्रो को जुटाने के लिए आर द दिया गया । जब जीहरियो को यह ज्ञात हुआ कि दिल्ली के एफ पैथराज ने चिकित्सा के लिए प्रारह पत्रा का हार पहनने के लिए श्री महाराज को कहा है ता उन्हाने कीमत ऊचो कर दी । कुछ मेरे पास भी पहुँचे कि आप अपनी पसंद के पन्त

खरीदिए, इसमें आपका लाभांश भी रख लिया जायगा। मेने उ ह भगा दिया। गगने दिन बारह पन्नों का हार महाराज के गले में सुशोभित हो गया। भाग्य की बात देखिए कि हार के धारण करते ही रोगी का खामी कष्ट और बतगम शून्यने की पीड़ा बहुत कुछ कम हो गई। उम रात्रि उ ह रातभर स्वस्थ नींद आ। एक सप्ताह में बहा ठहरा। औषध मेर पास बहा तयार न थी। अतः मे सौ व्यग्रम्या उ ह समझा कर औषध दिल्ली से बनाकर भेजने को कह मैं महाराज से निदा ली।

इसके बाद महाराज जब तक जीवित रहे बराबर वह धार धारण किए रहे। देवी शक्ति ही समझिए कि उनका रोग धीरे धीरे घट कर बहुत कम रह गया था।

राजपुरुषो मे, जो मेरी चिकित्सा में आए, उनमें खरजा नरेंग को मैं कभी विस्मय नहीं कर सकती। उनमें राष्ट्र भक्ति भी कूट कूट कर भरी हुई थी। एक बार नरेंद्र मण्डल के अवसर पर वे दिल्ली आए। दिल्ली पहुँचने पर जत्र मिला गया ता देखा एक भारी सा रूईदार काले खट्टर का लवादा ओटे एक धीरे पुष्प जठे अग्रज्यार पढ रहे है। पहुँचते ही वे खडे होगए। हाथ मिलाया और प्रातो का तार लग गया। कुछ मिनट मे ही यह बात भूल गई कि किसी राजा के सम्मुख बठकर बात कर रहा हूँ। यह उनकी सादगी और सरल चित्त की करामात थी। कुछ देर बात करके यह बात प्रकट हो जाती थी कि इस व्यक्ति को देशोत्साह है। देशोत्साह के कारण ही ब्रिटिश सरकार उनसे नाराज भी हुई, परंतु उनकी मस्ती में जरा भी अंतर नहीं आया। आयु ४५ वर्ष, शरीर का रंग पक्का, आख गूढ आरक्त, मत्र घनी, भौं टटी, चेहरे की तराश में एक राजपूती बाकपन। जल्दी जल्दी बात करने, हिंसी अग्रजी और मारवाडी समान सरलता से बोल सकते थे। शरीर का हाल पत्रों पर बताया- गत वर्षों से निरंतर कष्ट सहन करते करते शरीर चूर चूर हो गया है। पर अत्र उम शरीर की चिंता करने की मुझे फुसत नहीं है। मर चिंतनीय विषयो का और डारता है। मुझे बहुधा ज्वर हो जाता है। सरदी ज्यादा लगती है। दस्त कई बार जाना पडता है। पाचन शक्ति भी ठीक नहीं है। पर मे अधर ज्यादा ध्यान नती रता। आप। क्या कानपुर वाली मेरी स्पीच पढी है ?

मेने कहा— स्पीच तो मेने नहीं पढी, पर मौलाना शैक्तअली न अपनी तन वार का जो उपहास किया है, वह पढा है।

उहोंने उत्सुकता से पूछा—कसा उपहास ? मौलाना तो अपन प्यारे भाई है, उन्होंने क्या कहा है ?

मेने कहा—उहोंने कहा है कि राव साहेब रागा प्रताप की जग लगी तलवार को व्यथ चमकाते है। पर इससे कुछ हागा नहीं।

बोले—कुछ होगा या नहीं यह बात कौन जानता है। पर मर पास जब तक

वह तलवार हे उमे चमकाना मेर लिए प्रतिष्ठा का कारण हे और यह तो म सोच ही नहीं सकता कि उमम जग जग सकता हे ।

मेने बात टानों की गरज से कहा — शायद आपको बोलने मे कष्ट हा रहा हे, कुछ ज्वराश तो अभी भी आपसे हे ।

नही, कुछ कष्ट नहीं । ऐसा तो सदा रहता है । आप कुछ गोपव भेजिए । पर देखना थोड़ी मात्रा में काम न चरेगा, डजन मात्रा भेजना, और भोजन क्या म कुछ भी न करे । सिफ मास का शोरवा ल लू ?

मेने क्या— महाराज सिफ दूध और फलो पर ही निभर रह तो उत्तम हे ।

उमे उ होने रीकार किया । उन्होंने मुझे गाग एक बात और भी बताई । कहने लगे — उत्तर प्रदेश म मरा लटका गया हे । व्याह के दिन एक स्मरणीय घटना हो गई । लखे पोणे पर तदार पितार गेने जगत मे गए । माग भूल गए । पियाम के लिए जिग ग्राम म गए— गाग का गाव मरान भीतर मे तर करके बठ गया । मवने समभा कि डाहू हे । उन गाव मुमगल गाग ही ही रियासत हा गा । लखे कुत उ सात थ । जटा न लाग डाहुआ स उग पवार भयभात रहे, वहा के मनुष्या को कहा तक गीर कहे । उतर राज्य की एक उतमती हुई घटना उन्होंने उमी भट म मुझे सुनाई थी—जिमके आमार पर मेने गमिद्ध राजपूनी कहानी 'दही की हाटी' लिखी हे ।

उत्तराखण्ड न प्रसिद्ध सायु गाग रामनाथ जी कानी कमलीवालो को भी म नहीं भूत सकता । ने दिल्ली आए । कुछ शरीर पीडा हो गई तो मुझे तुलाया । पूरा रुत, चोनी हनी, नीगी हृष्टि गेनी कि याद उनी रहती थी । आयु ६५ वष । खूब खाते थे । मृत्यु से सात दिन पूर तक तीव्र पात्र अत्र खाते रहे । शत्रु म सायुगा के लिए जो भोजन उनता था ही खाते थ । ही उडे हा रना शाक था । जोई याचेमाला मित्ता तो सफाउत ही हया रया था । पिता पढे म । पिताजी क समान तेरग अपने व्यक्तित्व के प्रभाव म पिताग सगपत्ति न प्रप्रकारी हण । उडे निराभिमानी थ । सभा म जाकर जूतिया म उठत थ और यही अपनी नियामन बताते थे । उनी नरद सगपत्ति सात लाख रुपण और जायदार जमोन उन बोग नाथ थी । तापिक गाथ २½ लाख थी जो प्राय सभी थय टा जाते थी । १½ नाथ रुपण साल ता क्षेत्र ना रच था । ६२ जिगा म क्षेत्र थ । २५ हजार रुपण आयुतर मियालय और ओषधातया पर प्रति वष व्यय होते थ । ५० हजार रुपण का व्यय गाग नित सगा जैसे प्याऊ, धमशाला आदि पर था । कटारपुर केस म ६० हजार रुपया रच किया । गढवाल अकाल के समय २ हजार मनुष्य नित्य भोजन पाते थ । जन्म से यश्री अरोडे थे । बीम वष की आयु तक यौवा वेचते थ । ज मभूमि पजाव थी । अन्त समय म महामना मालवीयजी का नामोन्मार्गण करते रहे ।

एक अथ श्रीमत् की वमपत्नी की चिकित्साथ दो महीने उनके महलमरा मे

रहने का एक बार अवसर हुआ। वमपत्नी चाँची थी या पाचमी, यह अब याद नहीं रहा। पर वे यथाथ नाम वमपत्नी ही थी—वयात्रि त्र केवल घर में टिपाजत में प्री ही रहती थी—और किसी इस्तेमाल में नहीं आती थी। पत्नी जो खूब त दुस्त, मांजी ताजी, लाल मुख कोई २५ साल की युवती थी और उनका रोग क्या यही था कि उनसे दिमाग में कोई ऐसा कांडा घुस बठा था कि वे रईस साहेब से न मीठा बोलती न उ ह पाम फटकने देती थी, वे उनसे घोर घृणा करती थी। उत्तजित होन पर पांठ भी दती थी। पहिले पहल मेरे सामने यह अद्भुत घटना इस भांति हुई कि ज्यो ही मे उनसे पलङ्ग के पास रईस साहेब के साथ जा खडा हुआ, और रईस साहेब न पलङ्ग पर पत्नी के पास बठकर मेरा परिचय देकर नब्ज दिखाने का कहा तो पत्नी जी न तणा स एत तमाचा रईस साहेब के मुह पर जडा और फिर हमकर मुभसे कहा—देखा, यह प्रथम बुडडा मेरा हाथ पकडता हे। तमाचे का तडाका होत ही म तो कोठरो मे जातर आ खडा हुआ और इरादा खिसक जाने का था, पर रईस साहेब पर पत्नी के उगार का कुछ भी बुरा प्रभाव न था। वे हसते हुए बोले—देखा, त्सका सिर फिर गया हे, हमथा बुडडा कहती है, इसे इलाज के साथ कुछ बमगित्या भी होनी चाहिए—पतिव्रत प्रथम की। मेने रईस साहेब के वीरज, खुश अखलाकी और भाग्य का सराहा, और मन में मन कहा—निस्स देह—पत्नी के लिए 'धरम' शिक्षा बहुत ही प्राशयिक है।

इन रईस साहेब की प्रायु ५५ वर्ष के लगभग थी, पर एकदम वृद्ध हो गए थे। दातो की बत्तीसी बिल्कुल बनावटी थी। बाल सफेद, कमर कुछ झुकी हुई, चामा पत्नी बार लगाते थे। आठ वर्ष तक सो रपण रोजकी कोरीन खाकर पुस्तकहीन प्रन गए।

इन रईस में एक गुण यह देगा कि कभी क्रोध न करते थे। ता माता भन पत्नी महोदया को नीरोग करने की व्यथ चष्टा की। पत्नी जी का क्रन प्रा कि रईस साहेब का तुरत बम्बई भेज दिया जाय—यहा रहने का। नाम नती, लगभग ५० ही जाऊँगी, मुझे कोई बीमारी नहीं, सिफ मनमें चिन्त है। रंग सादर ता त ता ता— त्सका सिर फिर गया है, सिफ मुझे सामने बठा रहने दे और कुछ गती जाता।

एक और राजा साहेब का हाल मुनिण— ग्रेट से राजा थे, पर गणप त्रा म शहशाह से दो अगुल ज्यादा। रानी साहिबा को तय का मिलगिता अरु श्रा, पहिली मुलाकात दिल्ली के एक हाटल में हुई। दिल्ली में राजा सादर खूब अपमान लेडी बनी बपद सबसे मिलनी, बाजार में घूमती और सरगपाते करती, पर तु जा रियासत में जाकर देखा तो एक और ही नजारा नजर आया। प्रात कान उठकर शयता क्या हूँ कि एक शामियाने को १०-१५ ग्रादमी हाथो हाथ उठाए लिए जा रहे हैं। मन पूछा—भाई यह क्या बला है? शामियाना जमीन तक लटक रहा था। नादरा ने कहा—रानी साहिबा हवाबोरी को निकली है, पद में जा रही है। एसा बेडव पदा वही दगा

गया। दोपहर को जब मैं उनमें मिलने गया, तो पर्दे की चचा चली। कुछ हँसी, कुछ भुभुल्लाई। प्रोली—ये नहीं मानते। यहाँ पद के मारे नाक में दम है, पराए शहर में तो इतना कुछ जुरा नहीं लगता, पर यहाँ पद में निकालते झपटते हैं। मने कहा—यह हवा-खोरी न हुई पदागोरी ठहरी। राजा साहब फस्टक्लास ऑनरेरी मजिस्ट्रेट भी थे। बाहर के बैठखाने में कचहरी मजी थी, दिन भर अपराधी और फरियाली टक्कर खाते थे, पर सरकार कचहरी करने की फुमल पाते थे कहीं शाम हो ६ बजे। उसमें भी यह कफियत—त्रिं दो मिनट बैठे, पेशकार ने आवाज दी और वे गप से भीतर। दो बातें रानीजी से की और गप में बाहर। पेशकार को हकम दिया—मुनामिब टूम लिख दो या तारीफ़ बटा दो। वस कचहरी खत्म। राजा साहेब की उम्र २८ वर्ष की थी, खूब चुस्त तगड़े, मूठ मुई की भाँति खड़ी रहती। हर साल २-३ गाँव ब्रेच देते थे और ताँ मोज़ मजे ताँ गच चलता था। मोटर हाकने का शौक था, पर चलानी आती नहीं थी, कई बार पेटने में ग़ाज़ा ली। हमेशा हमकर प्रोलत थे। मगर आसामियो में रफ़ण वमूल करने का ढग भयानक था। महामे भगीमे मुतगाना, मठ उखाडना, कुछ काम उसमें भी भयानक और तीभतम थे, जिन्हें न कहना ही ग़च्छा है। गाने की कफियत सुनिए। पहली बार रात्रि को जब गाना मेरे ग़ग्ने प्राया तो मैं प्रवरा गया। इतना बड़ा थाल कि बिना तुर्फी में गड़े हुए गाने दूसरे ओर पर रखी स्टोरिया छुई नहीं जा सकती थी। स्टोरिया तो गिनकर देगा ८८ थी। उनमें क्या था यह तो आज तक जान न पाया, यद्यपि यान्त यान्त सभी को चय देया। मेरे नियम से बड़ी मुश्किल तो यह आकर पड़ी कि पता तो था नहीं कि किसमें क्या है गोर किस भाँति स्या गाना चाहिए। पीछे एक ग़ाकर पया लिण ग़ा था, दूसरा बगल में पानी का पात्र लिए गया था, जो यमदत यह दगल का गय प्र कि कुछ कमी हो ताँ और लावे। अतः मैं ग़ाहग करने मने अतः ग़ा गाना शुरू किया, एक पूरी का टुकड़ा लिया और आय मीच किसी भी स्टोरी में ग़ा वर मुयदत के हयते किया। अजय दिलगी थी, कभी तो बोड़ ग़ा वर ताँ ग़ा मय म आ जाता, कभी अकार का, कभी किसी मिठाई या पकवान का और कभी तरकारी का। स्वाद ग़ा भी नहीं आया—अतः मार कर उठ पड़े।

दोपहर का गाना मैं और भी टिकती हुई। मरीजा को देखते महन मैं गया तो राजा ग़ाहय वोन खाना यही ग़ाउयगा या ग़ही भिजवाया जाय। मने मोचा—ग़हा भिजवान में शायद त्रुट हो, त्रुट दिया—यही ग़ा लिया जाएगा। उस मेरा यह कहना था कि तूफान वर्षा हो गया—यह दाँउ धूप मची जैसे भूचान आ गया हो। सबसे प्रथम ५६ नौकरों ने मिलकर सामने का विशाल तालान धो डाला। फिर १०१२ आदमी दौड़कर खम के बड़े बड़े पर्दे उठा लाए और विशाल महारावों में लगा दिए। इसके बाद भिक्षितियों की एक बारात आई और उहे तर कर गई। फिर ५६ आदमी कमर

कस, लगे पट्टा खींचने । तब कहीं राजा साहेब ने उबर चलन के लिए कहा । बाल मे उतनी ही कठोरी थी । दिन था मब कुछ दीखता था— पर किस मे क्या था गात्र भी समझ न पडा । राजा साहेब सामने बैठे बात करते चले । बाले—रायद खाना पम द नही आया । मेने हसकर कहा—पसद क्या, समझ ही नही पडता कि किस म क्या हे ? हम लोग तो दो तीन शाक सब्जी, एकाव दाल खाने के आदी है, आपने इतनी सटपट की, इसे देखकर तो मेरा दिल धबरा गया । राजा साहेब ने इसे तारीफ समझा तो बाँछ खिल गई । बोले—अजी, म देहाती रईस हूँ—यहा जगल मे मिलता ही क्या हे, जो मिला बना दिया गया । मने कहा—मगर राजा साहेब, यदि आप मेरे हाथ की बनी एकाध सब्जी खाले तो म शत बाँधकर कह सकता हूँ कि फिर आप दूमरी कटारी पर हाथ न द । हूँसकर बोले—सच ? आप यह पन भी जानते हे ? फिर आपने कैफियत दी—४ रसोइए है । एक सिफ सब्जी बनाता है, दस रुपए और रोटी कपटा पाता है, फी आदमी पीछे एक पाव के हिसाब से सब्जियो मे डालने को घी उसे दिया जाता हे । मगर देखिए, आप खा ही चुके, स्वाद एक भी नही । मिठाइया बनाने वाला पचास रुपए पाता हे, खर वह कुछ अच्छा है, रात आपने कुछ लौज खाए हागे ।

पीछे मालूम हुआ, राजा साहेब को उन रसोइयो से कोई मतलब नही, उनका तो बावर्चीखाना अलग ही है और वहा की जि मो की लज्जत उनके मुताबमान और अग्रज यार दोस्त ले सकते हैं, हम जसे पतली दाल खाने वाले नही ।

एक रईस साहेब से एक यात्रा मे ससग हो गया । बहुत आग्रह से उन्होंने अपने ही साथ भोजन करने का प्रबन्ध किया । सब सामान साथ था, रसम साहेब १० प्रजे सोकर उठते, १ बजे तक उहाते और २ बजे खाना खाते । रसोइया महाराज तत्र तत्र मक्खी मारते बठे रहते, रोटी क्या होती जैसे कागज पानी मे भिगोकर गता गिया हो । दो बजे तक भरा भार कर यह खाना मिलता । रईस साहेब बडे तपाक म रो फुन्ने खाते, यहा तावपच याकर भूखो ही उठ जाते । जतरी जल्दी जो दो चार फुन्वे ज्यादा लेने शुरू किए, तो रसोइए से लेकर वहात तक गोगा मच गया कि गया देहानो की भाति खाते हे, आखिर वहा से खिमक कर जान बचाई ।

अब एक और अद्भूतपूव बात सुनिग । एक रानी साहेबा को देखने गया । देग भालकर बठक मे आकर राजा साहेब को हालत समझा रहा था । नौकर ने खान मे कहा—राणा साहेब (राजा साहेब के स्वसुर) आपसे मिलना चाहते है । मेने तुरन्त उठमे का उपक्रम किया तो राजा साहेब धबरा कर नौकर से बोले—उन्हें यहीं भेज दो तब तक हम बात भी कर लेगे । राजा साहेब का यह व्यवहार मुझे कुछ अशिष्ट सा प्रतीत हुआ । राणा साहेब आए । खूब लम्बे, तगडे, गोरे, कोई पचास साला जवान । गाल मब काले । आते ही बोले—‘मेने सुना कि आप आए हे तो सोचा जरा आपमे समझ ल

कि मुझे क्या बीमारी है, यह किसी के समझ ही में नहीं आती। मैं जानता था कि डाकी इच्छा एकांत में कुछ कहने को थी, तभी उ होने बुलाया था। मने कहा—'बहुत अच्छा, दूसरे कमरे में पढ़ाए, मे देख नेता हूँ।' एकांत होने पर उ होने जोर में मेरा हाथ पकड़ लिया और मिस्रत करके बोले—मेरी जान बचाइए, मे आप से किभी भाति बाहर नहीं हूँ। पूछने पर दास्तान कह सुनाई कि लडकी और दामाद मेरी जान के गाहक है, मुझे कंद कर राखा है कहते है सारी स्टेट हमारे नाम लिख दो। एक डाक्टर से परीक्षा करा कर मुझे डा दिया है कि तुम्हें दिल की बीमारी है जतद मर जाओगे। मगर मैं फिर से मर जाऊँगा—यह समझ नहीं पडता। मैं तो शादी करूँगा, आप जरा दिल देख दीजिए क्या इसमें कोई खराबी है? मने देखा और कहा—तुम्हें स्ती की दृष्टि से आपकी कोई रोग नहीं, आप शादी कर सकते है। पर यदि आयु गार औचित्य तो देखे तो इस प्रपच में न फसे, भगवत स्मरण करे। कहने लगे—शादी करने से क्या भगवत स्मरण नहीं हो सकता?

एतनु, बातचीत करके जय बाहर गया, तो राजा साहेब को परेशान पाया। जाने लगा तो रानी साहिबा ने फिर अदर बुलाया और पूछा कि राजा साहेब से क्या क्या बात हुई। मने बताने से इन्कार किया तो बिगडने लगी। भ उठकर चला आया—तो राजा साहेब ने समझाया कि मैं उह विश्वास दिला दू कि वे जतद मर जावेंगे—भटपट स्टेट का गित उनके नाम करदे।

राजपूताने के एक प्रसिद्ध म्गोडपति मेठ, जो रेतवे के राजाञ्ची और दीवान बहादुर पदवी धारी थे, उन्हाने ६५ मय की आयुमें १२ मय की एक कथा से ५५ हजार रुपए देकर मित्राह पक्का किया। यह बात प्रसिद्ध हो गई थी कि कन्या राजपूताने भर में अद्वितीय सुन्दरी है। उस पर पचा ने विरोध किया ता पाच हजार तागत का एक महान पचायत को दे लिया। कुछ नांगो ने कानूनी कायदाही करनी चाही तो दो लारा के मार प्रौण्ड खरोद कर अग्निमारिया को अतुल कर लिया। अतत बहुत बखेडा के बाद मित्राह हुआ, सठ जी का मुर्दे का पुराना रोग था। दिल की भी बीमारी थी। मने उह स्पष्ट राय दी थी कि मित्राहित जीवन में आपके जान को जोयिम है। अतत मित्राह ने पाँच मास बाद सठजी मर गए। सठजी ३ मर जान के दो ही तीन महीने बाद एक दिन रात्रि का दा बज गुत्ताट पाकर जाकर दया कि प्रही बालिका मृत्युशया पर दम तोड रते थी, उसे म्रिय म्रिया गया था।

एकवार एक बहुत बडे रईम साहेब स उनके प्रताण हुए समय पर मिलने को गया। उन्हे राजा महादुर का खिताब था। जातर सुना—पूजा में बडे है। मैं बहुत भक्तलाया, फिर यह पत्त ही क्यों दिया था? मैं लौटने को था कि मेवक ने कहा—आप को वही भेज देने का ठुक्म है। जातर देखा एक चाँदी की चौकी पर रेशमी साडी

पहने बठ है, जरी के काम की गोमुखी हाथ स हे । मामने दजाा चादी के पात्र फल रह हे । उनमे सोने और जवाहरान की जडी मूर्तिया हे । मामने कोई खुा पना ना पुस्तक खुली बगी हे । घूप का सुगि बत बुआ उठ रहा हे । सामन की कुर्मी पर पठन ना मोत कर मुभसे बातचीत छेड दी । बातचीत कोई खास न थी, गपशप थी । मने कहा भी कि फिर आजाऊंगा, पर बोले—नहीं, बठिए । निदान गपशप और सन्या व दन साथ साथ चलने लगे । बीच बीच मे वे नाक पकड कर प्राणायाम कर लेते । कभी आच मनी से जल पी लेत । फिर इधर उधर की बात भी कर लेते और फिर स्तोन प्रडपटान लगते । गरज घण्टे भर तक यही कलियुगी सन्या देख कर मे चला आया ।

एक बार दिल्ली से अजमेर जा रहा था । भक्त और व्याघात से बचने की गरज से ऊपर की सीट पर विस्तर जमा कर रेल मे सो गया । जत्र गाडी चलने लगी ता दो आदमा डिब्ब मे घुस आए । मै मुह फेरे सोता रहा । अब जो उन दोनो म फूट बक्वाद, गाली गलोज हाथापाई चलती हे तो नाक मे दम आ गया । बोलल खुली और चढाई जाने लगी । म रजाई मे भखाबावल सुन रहा हूँ और कुड रहा हूँ कि कौन त्रदे लफगे आ गए । अबे तबे—गाली गुपतार तो साधारण बात थी । एसा फोश बक्ते थ कि क्या कहा जाय । तीसरा कोई भलामानस सा रहा है— इसका उ द जरा भी रयाल न था । सुबह हुई तो म उठकर नीचे की सीट पर आ बठा, और घूर घूर कर उन दोनो गुण्डा को देखने लगा । एक ने सिगरेट पेश किया और नाम पूछा । मन न्य वाद सहित अम्बीकार कर परिचय पूछा । देखने म खासे सम्पन्न टाट बाट उपडेनत्तो मे लस । परिचय पूछा तो मालूम हुआ कि एक अमुफ राज्य के प्राईम मिनिस्टर हे और दूसर उसी राज्य के कमांडा जनरल । मन हँसकर कहा—आप दोना ही सज्जन मरी व गुमानी को क्षमा करे । आपकी रात भर की धूम गाम से तो मने कुछ और ही अनुमान लगाया था । इस पर रूप कर बोले—अजी, हम जिगरी दोस्त हे । दूसरा भट पटन को जाध पर हाथ मार कर बोला—जनाब, यह मेरा साला हाता हे ।

एक मिन राजा साहब की एक मजेदार बात भी सुनिग— रात का राजा साहब क बराबर के कमरे मे ही सोना हुआ । सुनता क्या हे—मिमी ने कहा अत्र रात्र, एक उतार । थोडी देर म —रात्र, दो डाल । फिर थोडी देर म एक उतार । कुछ देर बाद—दो डाल ।

मे परेशान । यह 'एक उतार दो डाल' क्या माने ? रात भर यहाँ हात रटा । नींद हराम हो गई । सुबह पूछा— उस कमरे म कौन था ? बोला—राजा साहब थे । रात्र किसका नाम हे ? मेरा । यह 'एक उतार दो डाल' का क्या मामला था ? तत्र उगने भेद खोला । कहा—राजा साहब को जुकाम हो गया था—जब गर्मी लगती तब व रजाइया उतरवाते, सर्दी लगती तो डलवाते थे । इस भाति रजाइया डाल उतरवा रहे

थे । मने हमकर कहा—यह खूब रही ।

एक बार ट्रिहार के एक भारी अमीर महालय क यहा जाना हुआ । पत्नी साथ थी । माग से तार दिया जा वि सपत्नीक आ रहा हू । स्टेशन पर देखा—अमीर महादय, उनके कामदार और ८-१० आदमी हाजिर है । फीनस म पत्नी पठी, मोटर म हम लोग और गाडी म सामान यद्यपि हमनोग मय सामान क इतने थ कि एक डकूमे समा सकत थे । कोठी पर पहुच कर दंगने हे तो फाटक से कोठी तक कनान खडी ह । तरक टाज और सिपाही बर्दी प लम कनान की तरफ मुह और रास्ते की तरफ पीठ किए खडे ह । कोठी के कई कमरे अनायश्यक सामग्री स ठम रह ह । पत्नी ने कहा—मन आपने माथ आकर उनको यथ ही इतना कष्ट दिया—कहा हम दा प्राणी, सीधे सादे, जो जरूरत हाने पर बिना नाकर सेवक महीना गुजार दे और कहा यह दजना आदमिया की दोड धूप । चार दिन रहना हुआ । खाने पीन की चीजा की गिनती नहीं, वह दाड धूप कि नाक म दम आ गया—और फिर भागने ही बना । बनारस मे दा दिन रह—दागजमे प्र पर स्त्रन्ट स्नान किया तो माहका हुआ । उन रूस माहक की तीन पत्निया थी एक वम प नी, जा प्री रहती थी—वे चिररोगिणी की दूसरी अम्र ज महिला, तीसरा—एक और रमणी, सान कया मात्र । रूस महाशय अतिथय मिलनमार देवभक्त और सुजान । पर तु वैयतिक जीवन यह ।

‘मजीवन’ मामिक पत्र के पाठको की जानकारी के लिए महात्मा गावी के स्वास्थ्य १ त्रिपय म म गा गी जी को एक पत्र किया । उस पत्र का अभिप्राय यह था—

‘आप शरीर मे आश्यकता से अधिक टुन ह, तिस पर आप बार बार लम्बे उपवास करने हे । आपका भोजन भी उतना हे कि जिसम किसी तरह जीवन शरण मात्र हो मने । ऐसी दशा म पोषक तत्त्व आपने शरीर म बहुत ही कम पहुचता हे । फिर हद म ज्यादा ताय आपक मस्तिक और शरीर को करना पउता ह । खासकर रफी १ १ी और निर तर यात्राया म मत्र तरह की अशाति और अमुत्रियाआ एज जल तायु क प्रिलुल अनियमित परिातन हे हाल रहने पर भी शरीर और मन निर तर कायभार म दया रहता हे । ऐसी दशा म आयुवद विज्ञान की दृष्टि म उस बात पर आश्चय प्रकट किया जा मता ह कि आपको अच्छी नीद किस तरह आती हे और आपका स्वभाव त्रि त्रिग और का म यो नहीं हागया हे । क्या आप यह विगनेका कष्ट करण कि आपको निन्ध रुमी नीद आती हे और आपने स्वभाव मे क्रोध या चिटचिडा पन बढ रहा हे । या नी उमने गिया आप यह भी लिख कि मूगफली जैसी निक्ममी और तमागुगी मस्तु खाकर आप किस तरह मतात्रितियुक्त, शात और अत्रयत्रनी रह सके हे । मगफनी ता त्रुत ही उम्रतीय, त्रिगेत्रक चित्त को मत्कान वाली और दिमाग मे खुशी करन जानी ह ।

सेठ जमनालाल बजाज जी के पास वर्षा में चार पाच मास रहने के प्रवसर म विनोबा भावे को मे नजदीकसे देख चुका था । उनका उदाहरण मने महात्मा जी की यहा दिया कि वे मूगफली खूब खाते हे और उ हे मने क्रोवी गौर तत्काल उत्तजित होने वाला पाया हे ।

उक्त पत्र के उत्तर मे महात्मा जी ने लिखा था—‘अपने स्वास्थ्य का हाल लिखने के लिए कई घंटे चाहिए । यदि आप यग इण्डिया और नवजीवन पढते हो तो उममे ‘उपवास का शरीर पर असर’ नामक मेरा लेख पढिए । इसी लेख मे मने अपने आराग्य का इतिहास भी दिया है । चार साल से मे केवल दूध फल और रोटी खाता हूँ । विनोबा जसे सात्विक प्रकृति के लोग मने बहुत कम देखे हे । जठर के लिए दुष्पाच्य होने क कारण मने अब मूगफली खाना छोड दिया हे । पर जब मे उसे खाता था तब आजमे ज्यादा क्रोवी था, ऐसा नहीं हे ।

महात्मा जी का लिखा वह लेख मने नवजीवन मे दूढकर पढा था, पर मुझे अपनी बात का पूरा उत्तर उसमे भी नहीं मिला । यह सब बाते १९२५ २६ की है ।

जोधपुर के कनल प्रतापसिंह अद्भुत तेजस्वी पुरुष थे । उनकी चिकित्सा करन का भी मुझे अवसर मिला था । उनका शरीर अत्यंत दृढ था । उनकी मृत्यु ८४ वष की आयु मे हुई थी । वे जोधपुर राज्य के ४ पीडी तक मरक्षक रहे और उन्हे वतमान युग का भीष्म कहा जाता था । वे जवदस्त योद्धा, पोतो १ पृथ्वीजयी खिलाी और प्रवल राजपूत थे । इस शताब्दी मे वे समस्त जोधपुर राज्य मे अपने शरीर पुन मण थे । राज्य के राजा और प्रजा उहे ‘बाबूजी’ कह कर पुकारते थे । वे अग्नेयो क अन्ध-भक्त और चरम मित्र थे । यूरोप के महायुद्धमे साम्राज्य के तीन वीरोम एक व भी थे । जीवन मे उ हाने समस्त ससार भर की मुख्य मुरय कोई ३५ नडाया मे लोहा बजाया था । हमारा रयाल हे यह राठौर वशका अतिम योद्धा था जो परमायु पात्र मरा ।

महाराज तरतसिंहजी के पाच पुत्र थे जसवत सिंहजी जोरावरसिंहजी, विशोर सिंहजी, प्रतापसिंहजी और जातिमसिंहजी । जोरावरसिंहजी बचपन म ही मर गए थे । जसवतसिंहजी वही प्रसिद्ध जसवतसिंहजी हे, जि ह मर्णा दयान द मरमती चरगा मे बठने का सोभाग्य प्राप्त हुआ था और जिनकी पामयान न्दीजानका ऋषि न तुतिया कहा था एव जिसके षडय न से ऋषि का जहर दिया गया था । प्रतापसिंहजी का जागीर वानोतरा जमाल आदि ६० सत्तर गाव का ठिजाना दिया गया था । जयपुर म उनकी बुआ थी, कुछ दिन महाराज से अनवन होन से वहा जा कर रहे थ । ८ 18 78 रहे । पीछे महाराज के देहा त के बाद जोधपुर आए । और उहे तमाम काम सौप दिया गया, जिसे इ होने खूब सम्हाला । इसी समय रनाका मालानी जो ३ गाव की तहसाल थी और अभी तक गवनमट के कब्जे म थी, वह गवनमेट का खुश करके उ होन ल ली ।

बाद में तर्कमिह के माई शेरमीह मरे ईउरगा इलाका उन्ही के आधीन था। उन्होंने गजनमत में गाठ गाठ नगार उनके हजरदार को हटाकर इलाका अपने कब्जे में किया। सन् १८९७ में वे अली की मसजिद पर अग्रजों की ओर से सरहद्दी पठानों से तडने गए और खूब नामसरी पार्स, यहा उनकी एक उगली में गाली लग गई थी। इसके बाद चीन की प्रसिद्ध लार्ड म जिगम ७ बादशाहते मिलकर चढी थी, अपना रिसाला लेकर गए। वही स जमन लोगों ने प्रति उनके मन में द्वेषभाव हा गया था, वे इह गुलाम कह कर चिढाया करते थे। उन हान राठीरों का नीरता की अच्छी शिक्षा दी। ईडर जाने से जोधपुर का सम्प्र ध टूट गया था— पर महाराज जसवन्तमिहजी के पुत्र सरदारसिह जी के गद्दी पर बठन पर मातुस हुआ कि उनका चरित्र अच्छा नहीं था। फलत उ हे पचवटी भेज दिया गया और रायबहादुर सरसुतदेवप्रसाद जी के हाथ में राज्य की बागडार आई। इस समय राज्य-प्रब व म बडी गन्वली फैली थी। उन्होंने वासराय तक दौडधूप करके मुठमर्दी में जापुर की रीज सी प्राप्त की। टूटी हुई कौंसिल बनाई। प्रबन्ध ठीक किया। फिर नागालिग महाराज मुमेरमिह को लेकर इगलड गए और उन की शिक्षा का प्रब ध किया। फिर आपस आते ही महायुद्ध छिंट गया, अतएव वे महा राज के साथ युद्धक्षेत्र में पहच और रूत काम किया।

सन् १९०७ के लगभग एक बार सूअर के शिकार को एक अग्रज के साथ गए, उन्होंने सूअरके पीछे घोटा टाट दिया और अकेले रह गए। सूअर के बर्छा मारा। सूअर त्रिगड तर उा पर भपटा—और वे घोडे स गिर गए। सूअर ने उनकी जाघ को चीर डाना। अत म डाटी छुरी स उस मार ाला। इस घाव में १३ टाके आये थे।

सन् १८९७ के लगभग एक बार त्रिनायत जा रहे थे, जहाज रास्ते में डूब गया। वे एक किन्ती पर एक अग्रज को लेकर समुद्र में दो दिन दो रात भटकते रहे और तत्र सहायता पाकर त्रिनार पहुँचे। एक बार उनको रेल में हैजा होगया। डिब्बे में दो अग्रज भी थे। दो तार के दस्त हान पर अग्रजों ने कहा कि महाराज, कँ दस्त ने आप तमजोर हो जाओगे। उन्होंने कहा— अच्छा, स्टेशन आने तक क दस्त न होने दगे। और ऐसा ही किया। एक हाली पर नरसिंहगढ से भाग की माजून आई थी। नरसिंहगढ नरनार की मुगरात थी। जब सत्र याने गगे तो ततमान परधानरेश राज गोपानामिहजी से फता फि स्याओ। उन्होंने नम्रतापूर्वक इन्कार किया और कहा कि मैं नशा नहीं माना चाहता। तब उ होन कहा— नशा त्रिना इच्छा नहीं चढ सकता। उस पर त्र.ग त्र.ग गई। उ हान उसी समय माजून याना शुरू कर दिया, और देखते-देखते तीन थाल माजूत था गये। सब नोग हैरान हुए, सिविल सजन बुलाये गए। परन्तु उन्होंने पाला ही तयारी का हुसम दिया और डटकर शराब पीकर पोलो खेलन लगे। क्षण क्षण में लाग उनके घोडे से गिरने की आशका करने लगे। परन्तु

नशे का कुछ भी प्रभाव नहीं देखा गया। 'ठोटे बाघ या चीते को वही व दूरा रा नहीं मारते थे। गुफामे हाथ डाल और पूछ पकड़ खींच लाते और दरती पर पटक पटा मार डालते थे। उनके ३ विवाह हुए। स तान नहीं हुई। १४ वष की आस्था म गदी पर बठे। तब तक हिंदी भी नहीं जानते थे। पर अग्रजी बाल सकते थे क्योंकि उनसे गार्डियन अग्रज थे। अग्रजीपन उनकी घुट्टी म था। देशी खाना खा से उ ट जुताज लग जाता था। एक बार जयपुर से जोधपुर एक दिनम ही घोडेही पीठ पर पहुच। उन दिना रेल नहीं थी—माग मे ३ घोडे मारे। उस समय जावपुर रियासत जिम कदर अग्रज। के आधीन थी वह उही का प्रभाव था। अग्रजो की भक्ति के कारण बहुत देशभक्त उनके प्रति तिरस्कार बुद्धि रखते थे। पर तु इसमे शक नहीं कि उनका व्यक्तित्व बना ही अनोखा और बाका था।

स्वामी श्रद्धानंद एक महापुरुष थे। उनके जीवन से मे गत्य त प्रभात्रित था। वे मुझमे और म उनसे दूर ही दूर रहे। परतु दोनो एक दूसरे के अत्य त निकट थे। कुछ ऐसे कारण थे कि उनसे मिलते हुए मैं हिचकता था। लेकिन डा० युद्धीरसिंह उस दिन मुझे उन के पास घसीट ले गए। किसी सावजनिक सस्था को कुछ रूपयो की आग्र-शकता थी। प्रात काल का समय था और स्वामीजी स्नान करके सस्थ चित्त बठे। प्रसन्न मुद्रा म थे, हमने मक्षेप मे अपना अभिप्राय कह सुनाया। उ हाने चुपचाप सुना। एक एक गिलाम ताजा दूब आग्रहपूवक पिलाया। इधर उधर की बाते पूठी और एक हजार का चेक हस्ताक्षर करके हमारे हवाले किया। आश्चय और प्रस नता से हम लोग अभिभूत हो गए। लखपति, करोडपति साहकार भी इतनी आमानी से अटी डीली नहीं कर सकते। क्षण भर के लिए स्वामीजी का ध्यान दूसरी ओर गया, तब मेने नाक-टर साहब की बगल मे टहोका मार कर आहिस्ते से कहा—यह तो बडा मालदार मातु है। कुछ और ज्याता क्यो न वसूला जाए ? कि त्योही वह वच्च दृष्टि मेरी ओर घूमि। एक गूढ मुसकान ओठो मे भर कर वह बोले—आज आप कमे निम्न पडे ? आप ना कही आते जाते नहीं।

जिम बातसे डर रहा था वही सामने आई। समझ गया अग्र गार्डियन नहीं। ये हजार रूपए और उनका सूद अभी वसूल लिया जायगा। मन बीरे से रहा—टाटर साहब बीच लाए।

'यही मेरा खयाल है, परन्तु आप एक उदीयमान साहित्यकार है और साहित्य-कार एका तप्रिय होते है। पर तु एका त मे यह दोष है कि उसकी दृष्टि म कल्पना प्रमान हो जाती है, सत्य पीछे छूट जाता है। जहा तक भावना का प्रश्न है, तम उननी टानि नहीं होती, पर जब घटनाओ का प्रश्न आता है और उनसे किसी व्यक्ति का सम्बन्ध थापित होता है और दुभाग्य से वह व्यक्ति यदि सावजनिक होता है तम अभी अभी

बहुत भी भूत हो जाता है, जा पीछे विना मृत्यु पर परिमार्जित नहीं की जा सकती।

सतत मेरे रक्त की समझ रंग था। पर रामजी बाईं हात गधूरी छोड़ते न थे, हाँ हाँ उधार गाँव जाता नहीं था। उन्होंने विना किसी हात की परवाह किए तनिक रुठार भाषा में बात-आप गाप उस कहानी की बात लीजिए जिसमें मुझे और मेरे पुत्र का आपस एक पात्र बताया है। एक बहुत गम्भीर आरोप आपने उसमें मेरे ऊपर लगाया है। मैं नहीं जानता कि मैं क्या तथ्य आप का मिन और उनमें आपने कितना कल्पना का महारा किया। पर तुम तो अभी जीवित था, यही उसी नगर में रहता था, गाप यदि मेरे पास आते तो आपका मेरे पास तो सत्य की ही उपलब्धि होती और तब शायद आपकी यह कहानी ('गीत-मृत') कुछ दूसरा ही रूप धारण कर लेती

मुझ में शक्ति नहीं थी कि मैं महापुरुष से विवाद करता या जवाब देता। अपने हात में ही मैं उस कहानी में कुछ अत्यन्त गुप्त रहस्यों का उद्घाटन हुआ था, जिनके कुछ आशय के सम्बन्ध में मैं एक शब्द भी कह नहीं सकता। वह एक अति भयानक राजनीति कहानी थी और उसमें भारत में प्रकट एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण क्रान्तिकारी घटना का घटना था जिस का सम्बन्ध दिल्ली के कुछ फासी-प्राप्त क्रान्ति-कारियों से भी था। कहानी 'चाद' में उषा की और उनके कारण 'चाद' की तीन हजार की जमानत जत हो चुकी थी। रामजी उस कहानी को बरसों नहीं यह मे जानता था और उषा कारण उनसे प्रायः क आगे आने के सब सम्बन्धों से बचता रहता था। पर अतः तो आत्मता सामना हो चुका था। मैं नीचे मिर भुकाण निरुत्तर बठा रहा। एक शब्द भी मैं नहीं करता।

रामजी का हाँ-अभी आप नययुवक है। मैं आपका गम है। पर कभी आप मेरे उम्र का भी पक्ष, कि तुम रुदाचित आप का जीवन उस भयानक बवडर में न फग, जिसमें मुझे फगगा पग, क्योंकि आप तो सार्हित्यक है, सामाजिक कार्यकर्ता नहीं। विरा की सत्ता का रुदाचित आपसे अवसर मिल ही नहीं। एमो अस्थिति में आप अपना हाँ हाँ गम न सके। परन्तु मैं तो यह समझता हूँ कि हाँ हाँ हाँ समाज में गम का हाँ हाँ उषा प्रकार ठीक ठीक जान लेना आवश्यक है जिस प्रकार एक सार्हित्यक का शरीर की भीतरी बाहरी पचीनी बनापट के साथ जाते हैं। विरा त मृता प्रायः जो जानता था आवश्यक है। उसने लिए साहित्यकार ही रहना चाहिए।

मैं तो उस पर भी हाँ उत्तर नहीं दिया। जब हम चले, तब वह चेक और वह दूर बहन प्रामित्य का रहा था और जाने में नीचे उतरते हुए मेरे पैर लडखडा रहे थे। परन्तु मैं अत्र प्रायः तो मैं गाँव जाता था। मेरे हृदय पटन पर लिख दिए गए। आज चान्नीस वष प्रातन पर भी व ज्यो है त्या मेरे अ तस्तल पर अकित है।

इस घटना के थोड़े ही दिनों बाद मुझे फिर अप्रत्याशित रूप में जल्दी जल्दी उस जीने की सीढियों पर चढ़ना पड़ा। अच्छी तरह मुझे उस दिन की प्रत्येक बात याद आती है—खारीबावली में मैं दाल चावल खरीद रहा था। एक आदमी दौड़ता हुआ जा रहा था और जोर जोर से चित्ला रहा था—स्वामीजी कत्ल हो गए, स्वामीजी कत्ल हो गए। बाजार में हलचल मच गई और मैं तत्काल ही लपकता हुआ गए बाजार की ओर दौड़ा। कुछ आदमी सबक पर भीड़ बना कर खड़े थे, कुछ जोरों पर चट रहे थे। भीड़ चीर कर जब मैं जीने पर पहुँचा, तब देखा सबक वर्मासिंह की जाग में रक्त प्रह रहा था, पर वह दीवार का सहारा लिए खड़ा था। पलंग पर स्वामीजी लहु तोहान पड़े थे। तीन गोलियाँ उनके सीने के पार हो चुकी थी। स्नातक धर्मपाल ने कातिल को अपनी बलिष्ठ बाहों में दबोच लिया था और वह भाग निकलने को छुटपटा रहा था। रिवाल्वर अब भी उसके हाथ में था। स्वामीजी का प्राणान्त हो चुका था। उनका मुँह और उनकी आँखें आधी खुली थीं, और इद्रजी उनके ऊपर झुके हुए थे। नीचे और ऊपर अब भीड़ बढ़ गई थी। शोर भी बहुत हो रहा था। कोई एक व्यक्ति चाकू हाथ में लेकर कातिल को कत्ल कर डालने को जोर कर रहा था और लोग उसे पकड़ रहे थे। पुलिस आई और उसने कातिल को कब्जे में किया। लाला दीवानचंद्र द्राण और आरो में आसू भर कर स्वामीजी का सिर गोद में लेकर बैठ गए। डाक्टर असारी और डा० अब्दुलरहमान भी आगए थे। पर अब क्या हो सकता था। डा० असारी की आँख गीली थी। कातिल अश्वेड उम्र का मुँशी जसा आदमी था। जब पुलिस ने उसे हथकड़ी पहना कर खड़ा किया तब मुसकरा दिया और कहा—डाक्टर साहब, आदातज। इससे भी मैं उत्तेजना फैल गई और डा० असारी पुलिस के संरक्षण में वहाँ से गए।

दिल्ली के इतिहास में उनकी अभूतपूर्व शव यात्रा हुई। दिल्ली और पंजाब में तरुणों का उछलता हुआ रक्त जोश मार रहा था। अनगिनत भजन मंडलियाँ भजन गाती थीं। उनमें से एक में मैं भी सम्मिलित था। आप रुदाचित विश्राम नगर, मैं स्वयं चीख चीख कर गा रहा था, कुछ अपने ही द्वारा रची हुई पत्रितियों का। उमर बाद एक सभा कम्पनी बाग में हुई, जहाँ लोगों के सिर ही सिर नजर आते थे। उमर सभा की एक बड़ी घटना मुझे याद है—लाला लाजपतराय का भाषण। लाला जो भाषण नहीं दे रहे थे, वह तड़प रहे थे। कह रहे थे—श्रद्धानन्द, तुम्हारे जीवन पर भी मैंने सदा रक्षक किया और मौत पर भी रक्षक करता हूँ। भगवान मुझे भी ऐसी ही मौत दे तो मैं इतना समझू कि मैं तुम से आगे न बढ़ सका तो पीछे भी न रहा। और भर भर आसू उस नर शार्दूल की आँखों से बह रहे थे। उन्नीसवीं शताब्दी के अपराह्न में पंजाब में चार महापुरुष ऋषि दयानन्द के उत्तराधिकारी के रूप में पंक्ति में आ खड़े हुए, इन में एक थे महात्मा हसराम, दूसरे थे महात्मा मुन्शीराम (पीछे स्वामी श्रद्धानन्द)

तीसरे नवजात पंजाब गोर नौसे थे जिनका राजपतराय । जिन दिनों ये चार मंगल मूर्तिया एक परिवार में आती थीं पंजाब की हानत अत्यन्त गौचीय थी । सत्ता बन के विद्रोह के बाद जब अंग्रेजी अमन जम कर भारत पर बैठ गया तब ब्रिक्टोरिया रानी की घोषणा से विचार सातत्य ही भावना भारत में जागृत हुई । उस समय देश में ईसायियों ने जगह जगह प्रचार के अर्थे कायम कर रखे थे । उधर राजा राममोहन राय, जो गोर स्वामी दयानंद अपनी ऊँची आराज उठा रहे थे । दुर्भाग्य से राजा राममोहन राय संस्कृत के पंडित न थे, उन्होंने ब्रह्म समाज की स्थापना आय भावनामूलक विचारों पर जीवन प्रणाली पर कर डाली । लोग नवजीवन के अभिलाषी थे, वह उभरा भा गई । स्वामी दयानंद वदो के असाधारण ज्ञान के साथ वह भावना लेकर मन में उत्तर के सम्पूर्ण नए सुधार पाचीन वैदिक सभ्यता और आय संस्कृति में आतमान लिए जाए । उसी में उठेन समाज के ब्रह्मरूप में ऐसी भारी क्रांति करी जमी सारा राय के बाद दूसरा नई न कर सता था । उसी आधार पर उन्होंने आय समाज की स्थापना की । अपना जन्म के बाद ५० वर्षों में आय समाज ने बहुत भारी काम किया । नवीन विधुधम की आधुनिक जागृति का प्राय सारा ही श्रेय आय समाज को है । नारायण मनुष्य आय समाज के भुड के नीचे आए । पंजाब, राजपूताना, युक्तप्रान्त, मद्रास, और बम्बई में आय समाज ने अपना व्यापक प्रभाव प्रकट किया । पंजाब आय समाज का सांस्कृतिक केन्द्र बना । महात्मा हसराम ने लाहौर में डी० ए० ग्री० कॉलेज, महात्मा मुन्शाराम ने काँगड़ी गुरुकुल और लाला देवराज ने जानन्वर में नया महा विद्यालय की स्थापना की, तथा लाला राजपतराय ने दश में स्वतन्त्रता की धूम मचाई । उन तीनों महाशयों का तथा इन चार मंगल मूर्तियों का उत्तर भारत में एका सांस्कृतिक पंजाब पड़ा कि उसका मूल्य किन्हीं भी शब्दों में नहीं आका जा सकता ।

जिस समय ये चार मंगल मूर्तियाँ उठी, वह समय पंजाब के अन्तार का था । चिरकाल तक विदेशी दासता भोगने के बाद पंजाब में जो विनिर्गत समयों में अपने राज स्थापित हुआ था, वह तत्क्षण ही स्वप्न राज्यके समान भग हो चुका था और अंग्रे एक नई सत्ता अपना प्रभाव जमा रही थी । उन दिनों सारा पंजाब धार अज्ञान में, जानपात विरादरी आदि के टुकड़ों में बटा हुआ था और प्रत्येक टुकड़ा एक दूसरे की परी टा रहा था । सामाजिक कुरीतियों और रूढिवादिताने हिन्दुओं के हत्या का सामान्य कर दिया था । मौलवियों के कुत्सित प्रचार से यह मानसिक दासता और प्रकट हुई थी । उन्होंने समूचे समाज को मूढ और अपने धर्म तथा संस्कृति का विद्रोही बना दिया था । उनका उद्देश्य सारा राष्ट्र को निकम्मा बनाकर हिन्दुत्व को समाप्त कर देना था । सारा हिन्दू राष्ट्र हिल रहा था और इस सफलता को देख कर पादरी लोग खुश होकर कहने लगे थे कि पचास वर्षों में सारा भारत ईसाई हो जाएगा ।

उन दिनों तक भी अग्रजी का अधिक प्रचार न हुआ था। बहुत कम नमस्कार एम० ए०, बी० ए० होते थे। उह तुरंत सरकारी नौकरी मिलती थी। पर नु दशक परान लोग उह विद्वान नहीं समझते थे। विद्वान वही समझे जाते थे जो अंग्रेजी, फार्सी पढित होते थे। बहुत से हिंदू दुर्गुग मुस्लिम रीतिया को मानत थे। लाना राजपतराय के पिता मुशी रावाक्शिन नमाज पढा करते थे और रोजा रग्या करते थे।

महात्मा हसरज और लाता राजपतरायने जब लाहोर ए० ए० सी० कॉलेज की स्थापना की तब देखते ही देखते यह कालिज आधुनिक पद्धति पर महत्ता महत्त्व युवको को ज्ञान दान देने लगा और उनके हृदय में आया सस्कृति तथा नित्य अभ्यता का बीजारोपण करने लगा। इन दिनों स्त्रियों को पढाना पिछाना पाप समझा जाता था और लोगो से यह विश्वास था कि पत्नी लिखी लडकिया जल्दी पित्ताना जाती है। स्त्री शिक्षा के हिमायतियो को लाठी पानी पडती थी। ऐसी ही आस्था में लाता राज ने जालवर में क्या महाविद्यालय की स्थापना की, जिम्मे पञ्जाब में पित्ताना जीवन की कायापलट कर दी। पर तु उत्तर भारत में जो सबसे महत्त्वपूर्ण कार्य हुआ वह हुआ स्वामी श्रद्धानंद के द्वारा गुरुकुल कांगड़ी की स्थापना रूप में। यह एक ऐसा विद्या मंदिर था जहा यूनिवर्सिटियो और पाश्चात्य शैतियो का सबथा त्याग किया गया। वैदिक सस्कृति और वैदिक धर्म का भारत में प्रचार करना हम विद्या मंदिर का मूल मंत्र था। यहां के विद्यार्थियो को प्राचीन भारतीय गुरुकुल प्रणाली पर पद्धतारी प्रण में अनागरिक वृत्ति से रहना पडता था। वह एक नयी परिपाटी थी, जिनमें नारी शीघ्रतासे समस्त उत्तर भारतका ध्यान अपनी गौर खींच लिया। सम्पूर्ण उत्तर भारत में स्वामी श्रद्धानंद के इस सटुद्योग का मुफल अनुचित हुआ। लाता राज हृदय में स्थापन से जागे हुयो की भाति अपनी भाषा, अपनी सस्कृति और अपने धर्म के प्रति अन्तर्गत भाव उत्पन्न हुए। हम विद्या के द्वारा स्नातक प्रथम श्रेणी के योग्य सिद्ध हो जाते साहित्य को निचार, विज्ञान और प्रगति से आनंदित कर दिया। आज जो जाग्रत भारत के मूल प्रेरक स्वामी श्रद्धानंद थे।

अप्रैल १९२६ में अंग्ल भारतीय पद्य महासंमेलन का वार्षिक सम्मेलन जयपुर में हुआ। मेरे मन में आयुर्वेद चिकित्सा पद्धति को उन्नत करने के लिए तीव्र अभिलाषा थी। मेरे अतिवेशन में सम्मिलित हुआ। उच्छ्रय थी कि अपने जीवन का कुछ भाग इस लोकोपयोगी मस्था को इस प्रार देूंगा। पर तु जाकर गया तो क्या हुआ। यद्यपि इस सम्मेलन के सभापति मालवीय जी थे और बहुत अग्रगण्य उद्योग सम्मिलित हुए थे। जिस प्रकार माता पिता अपने लडके लडकिया ही योग्यता, आग्रह ही के की जरा भी पर्वा न कर धूमधाम और शान को ही विवाह की सफलता समझते हैं, उसी प्रकार इस समारोह को भी बहुत से विद्वानों तथा पत्रों ने भी सफल समझा।

परन्तु मेरी दृष्टि में यह अतिव्यथान निराशाजनक और व्यथ था। चील भपट्टे की तरह चुनाव गोर गतिगारा पर भीतर ही भीतर लोग दूट रह थे। सम्मेलन के महामन्त्री कानपुर के एफ़ डाक्टर ये, न मालूम विचार कैसे अपनी कालर टाई छोड़कर इस बोली सम्प्रदाय में फस गए थे। तीन दिन तक उनकी आवाज मीठी है कि खट्टी, यह जाननेकी लालसा मनमें ही रह गई। अत्यंत निकट बैठने पर भी नहीं सुन सफ़ा। वे कुछ बोल रहे हैं इसका अनुमान इसी बात से होता था कि वे जरूरत से बहुत ज्यादा मह आकाश की ओर उठकर कुछ होठ हिला देते थे। गतवप की रिपोर्ट बिना पढ़े पाम हो गई।

सात वष पूर्व जब बम्बई में सम्मेलन हुआ था, मैं उसमें सम्मिलित हुआ था, उन दिनों में बम्बई में ही रहता था। वहां मेने वैद्यों के प्रति सरकारी उपेक्षा का तीव्र विरोध किया था। उस पर बम्बई के प्रख्यात चिकित्सक डा० सर देमाई बोले थे कि सरकार आपका मान अवश्य करेगी। आप योग्य बनिए, कालिज खोलिए।

मने जयपुर लिया— आप श्रीमान ने जो एम० डी० की डिग्री जिम कालेज से पाई है वह क्या आपके पिताश्री ने खोला जा। क्या कारण है कि अप्राकृत हमारे इस जीवन और स्वभाव में विरुद्ध चिकित्सा पद्धति के प्रचार के लिए सरकार करोड़ों रुपया खर्च करती है, फ़ार्मेज खोलती है, शिक्षा देती है, योग्य डाक्टर तयार करती है, परन्तु हम से कहा जाता है कि हम स्वयं फ़ार्मेज खोले और योग्य बने, तब कहीं सरकार हम योग्य करेगी। मानो हम इस सरकार की प्रजा नहीं ह।

जयपुर सम्मेलन में मने अपने भाषण में कहा था—आयुर्वेद की विद्यापीठ योग्य वष नहीं बना सकती। विद्यापीठ का एक अर्थ तो यह है कि उसकी पठन शक्ती तो पुस्तक प्रज्ञा है। विषय नए ढंग में चुने गए हैं, परन्तु ग्रन्थ वही पुराने हैं। विद्यापीठ का दूसरा अर्थ यह है कि विद्यार्थियों को पढ़ाने का कुछ प्रबन्ध ही उसके पास नहीं है। मुझसे यदि पूछा जाय तो मैं एफ़ अर्थ यह भी सम्भवता है कि आयुर्वेद की शिक्षा संस्कृत भाषा द्वारा हो। संस्कृत एक भाषा है और आयुर्वेद एक विद्या है। संस्कृत सीखने में विद्यार्थियों के दम प्रबल है। अंग्रेजी मायम से शिक्षा देने में जो आपत्ति है, वही आपत्ति संस्कृत से मायम से शिक्षा देने में भी है। मातृ भाषा से भिन्न किसी भाषा में कोई भी भाषा उठना हृदयगम नहीं होता, जितना मातृभाषा में।

मुझे सजान का बड़ा सद है कि सम्माननीय कत्रिगज, गगनाथसेन जी ने शरीर शास्त्र में अमूल्य विषयों को संस्कृत में लिखकर और भी दुर्लभ कर दिया है। विषय को अकारण दुर्लभ बना कर विद्यार्थियों के सम्मुख पेश करना निन्द्यता है। यदि कोई यह कहे कि हिंदी भाषा जटिल विषयों की मान्यम नहीं हो सकती तो मैं इस बात को स्वीकार नहीं करूंगा। हिन्दी के अन्दर विज्ञान की पुस्तकें रची जा रही हैं, उनके पारिभाषिक शब्द बनाए जा रहे हैं। तब वैद्यक शास्त्र जिसके पारिवारिक शब्द बने बनाए

है, कगो न हिंदी का माध्यम ग्रहण करे ? वत्तमान चरफ मुस्तुत आरि अथ गति अथ है । विषयानुक्रमणिका बहुधा अस्तव्यस्त हो गई है । परिभाषा युगा तरंगों पाचीन है । चरक मे जुलाव के लिए चालीस तोला ऐंगडी का तेल और पाच सेर रूची जिना जीत एव भिलावे खाने का प्रसंग है । यह खुराक किस युग के लिए है ? मुस्तुत के प्रयोग ऐसे हैं जिन पर निर्भर रहकर कोई चिकित्सक बीसवीं शताब्दी में सफल नहीं हो सकता । मुस्तुत का शरीर वगन कुछ अशो मे प्राप्त है, शरत्र प्रकरण पुरा तत्व विभाग की वस्तु है । क्या हमें यही उचित है कि हम पुरानी लकीर के फकीर बने रहे, और आधुनिक उच्च कोटि के आविष्कारों की निंदा करते रहें और उट अछूत मानकर उनका तिरस्कार करते रहे । यह तो हमारा मृत्यु माता है, हम माग पर चलकर हम जी नहीं सकते ।

इसमें कोई सन्देह नहीं कि चीरफाड़ का प्रक्रिया प्रायः चिकित्सा में भिन्न वस्तु है, पर जब तक वद्य इस विषय में सूख है, वे उड़ी बड़ी मार्गों की बाजी नहीं ले सकते । हम श्लोक पढ़कर या शास्त्राथ करके रोगी को आराम नहीं कर सकते । हम चाहिए कि सामने पड़े हुए रोगी को जैसे बने आराम कर । हम इस बात को भूल जाय कि कौन वस्तु और क्रिया विदेशी है और कौनसी पवित्र ऋषि प्रणीत । हम प्राच्य और प्रतीच्य दोनों सिद्धान्तों को मथन करके खूब सरल ढंग से विस्तृत स्पष्ट सचित्र नवीन ग्रन्थ निर्माण करने चाहिए ।

मेरी दो बहिनें मुझसे छोटी थीं । दोनों दिल्ली व्याही थीं । उंची मुभम ६५प, और छोटी १६ वष छोटी थी । दोनों बहिनें और तीनों भाइयों के विवाह मेरी आयु में हुए । पिता के समान अविद्वक्त व्यक्ति मैं ही अपने घर में माना जाता था । बची प्रतिन कला परम विदुषी और कोमल भावनाओं की अत्यंत भावुक प्रतिमा थी । अपनी छोटी आयु से ही वह मुझे गुरु की भाँति मानकर मेरी बुद्धि और विद्या से प्रभावित थी । जब मैं १९१६ में प्रथम बार दिल्ली में नौकरी करता था, तब जब कभी मित्र या बाद आता वह मुझे अत्यंत आदर से 'वद्यजी आगण' कहा करती थी । उमता समस्त प्रेम, श्रद्धा और आदर इस 'वद्यजी' शब्द में निहित था । मैं मानो यही शब्द कला के मुख से सुनने के लिए सिकन्द्राबाद आता था । अपनी इस बहिन का मैं अत्यंत मत्पात्र के हाथों में देना चाहता था । कि तु विवाह के कुछ वर्षों बाद ही मुझ अपनी भल ज्ञात हो गई और मैं कला के लिए पश्चाताप करने लगा । कला का पति कुछ देग व्यक्तियों के ससग में पड़ गया जहाँ सोलहा आना अपराध वृत्ति से घन अजन करता ही प्रेष था । मेरे पुरे परिवार की अथक सेवा और फिर पति की अपराध वृत्ति से कमाया हुआ धन, इन सब बातों से कला की मृत्यु हुई । मेरी युवावस्था में कला की मृत्यु ने मुझे अत्यन्त विकल कर दिया । अपने 'हृदय की परख' उपयास को उसे समर्पित करते हुए

मैंने लिखा था

“वहिन, उस पुस्तक को पढ़ कर तुम बहुत रोई थी। एक दिन भाजन भी वही किया था। तुमने कहा था कि इसे जल्दी बहुत सुन्दर उपचार मर्म देना, नित्य पढ़ा करूंगी। पर तुम उसके अपने तक ठहरी नहीं। देवाना सरना म तुम्हें जगन्मह और सहानुभूति थी। तुम उसे भगवान की गान्त म जात देग हुलस कर उसके साथ ही चल खड़ी हुई। अच्छा, अपनी उमर म आदर और प्यार की वस्तु को लेती जाओ, जल्दी मे इसे यती भूत गज थी, यह तुम्हें समर्पित है। वहिन तुम्हारी एक मूर्ति उस पुस्तक म रगन की रानी लालसा थी, पर अपने नेत्रों को तृप्ति के लिए हमार पास तुम्हारी कोठ प्रतिमूर्ति नहीं है। हमारे हृदय को ठोड कर वह अज उस मगार म रही किगी भाव नती मिल सकती। जा वस्तु कही नहीं मिल सकती, उसकी अभिलाषा त्याग देना ही अच्छा है। अस्तु, तुम हमारे हृदयो म ती गरा गात करो हमारी रानी कला।

तुम्हारे आदर्श के शब्दों म तुम्हारा त्यक्त ज्येष्ठ भ्राता “वहजी”

कला के पति के आचरण और व्यवहार से मैं बहुत नागज था। कला का यह बात ज्ञात थी, पर तु अपनी मृत्यु के एक दिन पूर्व उसने मुझमें प्राग्रह किया था कि मे उ हे न्यमा करद और उसके बाद उ हे म यपथ पर लाने का प्यत्न करू। कला की मृत्यु के बहुत दिन ता मने उसके पति की प्रतीक्षा की, पर वह मेरे पास नहीं आया। मने भी योज गगर नती ठोड दी। एक प्रकार से मैंने उसे अपन हृदय मे त्याग ही दिया। परन्तु रना की मृत्यु के छ मात उप बाद एक दिन अकरमात वह मेरे चादनी चोक के चिह्नि मागय म आ गया। उसी नीची दृष्टि किण ही मेर चरण दूकर मुझे प्रणाम किया। उग रगत तो मरी रगगा और क्रोड क्षण भर म ही नाट हो गया। मेन कुर्मी म सडे तोकर उस हृदय म रगा लिया। वह रो रहा था और जमी कि भरी प्रवृत्ति है, म मन ही म न हृदय म शमा वा उथल प्रथल करता हया गन्दर ही गन्दर रो रहा था। जा त हाने पर उसने पच्छीम हजार रपया की गणिया अपनी अटेची मे रा निकाल कर मेर आग रगती और कहा मुझे अब गुमराह होने से बचा ता म बहुत खेल खेल चुका। मं पशु उन गया था - अब फिर मझे रमान बना लो। आपके मित्रा मुझे कोई सपथ नहीं दिया करता।’

मैंने कहा- ‘पर इस बेरी का क्या प्रयोजन है?’

उसने नोटा पर घुगा की दृष्टि डालते हुए कहा—उ हे किसी रने म लगा लो। आपने प्रस खोला है। उसम मशीन छोटी और कम है। उस रूपण को प्रेग मे लगा लो। बडी मशीने खरीद लो। मुनाफे मे से कुछ हिस्सा मुझे दे दिया करना।

बहुत बाते हुए पर वह नहीं पाना। मुझे उगरी रात हीनार करनी पनी। मैंने उस रूप को प्रस में लगाकर उसे भी आधे का हिस्सा बना दिया। प्रस की मशीने खरीद ली स्टाफ बढ़ा दिया चादनी चोप से वह स्था भी हटाकर फतहपुर की एक बड़ी विटिंग में ले गया। स्थानांतर में मेरा हजार रुपया व्यय हुआ। १९२६ २७ में जने द्रकुमार मेरे समक्ष आगे और मुझे अपना गार्ड-टियर गुरु बना कर उ होने कलम सीधी की।

परतु प्रस तो एक शतानी व्ययमाय है। शतानी तरह करतक रूप में निग मह फाडे खडा रहता है। उसके खर्चों का न गत न हिसाब। फिर मेरे जग अनानी आदमी के लिए तो उसका सही मही मचालन करना मतथा अथवा या। जब तक वह मेरी निज सम्पत्ति थी—म अपनी मामिक आय का अर्धता तो ताई हजार रुपया उसके सामान और वेतन में भोक दिया करता था प्राण निश्चित रहता था। परतु जब से कला के पति का रुपया उसमें मेने लगा दिया मेरी चि गाण यह गई और म प्रस की आय के वृद्धि का ध्यान रखन लगा। इसकी व्यवस्था मुझारूप में चलाने के लिए मेने एक मित्र व्यक्ति को इसका मनेजर रख दिया। उ हान उसका मतना मु दर माज्मे ट किया कि प्रेम पर दम हजार का घाटा हो गया। उ होने कला के पति का भाव भी मेरे प्रति बदल दिए। उसने उ हे यह सुभाया कि आप सोनहो आना पस अपने गाभी कर लीजिए तब में बहुत सुगमता से हजार पाचमो रुपया प्रस से उचकर आपका द मरता हूँ। उसके मन में मनेजर साहेब की सत्यवागी जम गई और उ हाने एक दिन मर सामने प्रस के नफे नुकसान के हिसाब के कागज फटाए। अत में उगी रात को में दस हजार की देन की अग्यगी में अपना सारा हिस्सा उ ह निम्नर द दिया। यह कहिए कि मेरा जमाया हुआ मजीवन प्रस जिसमें में अब तक लगभग पतीस हजार रुपया फूक चुका था, अब मेरे हाथ से निकल कर कला के पति के हाथ में चला गया था। एक पमा पूजी भी मुझे उससे प्राप्त नहीं हुई। कहने को वे ही अत्र गक मालिक थ, परतु वास्तविकता तो यह थी कि इसके पतन की ओर पूगरूप में अत्र उन मित्र मनेजर के हाथों में चली गई थी। और इसके पूरे ता उप पश्चात यह चारतीस हजार का सजीवन प्रस कौडियों के मोल खुद बुद हो गया। उसका अस्तित्व समाप्त हो गया।

प्रस के हाथ से निकल जाने के बाद मेने मजीवन मामिक पत्र का प्रकाशन प्रद कर दिया। कला के पति के दुष्काय ने तो मेरे हृदय को अभी आक्रान्त किया ही था कि मेरी माता प्रपना मृत्यु मदश लेकर पिताजी के साथ सिरु द्वाबाद में दिल्ली आई।

जसाकि मैं पहिले कह चुका हूँ कि चन्द्रसेन जन्म के बाद मेरी माता रोगिणी रहने लगी थी। महीने में बीस पच्चीस दिन वे बीमार रहती और पाच मात दिन अच्छी रहती। परतु उ हान खाट पर पडकर कभी आराम नहीं किया। वे घर का सारा काम

और भग ने भी दूरा का गारा काम प्रातः पाँच बजे से रात्रि के नौ दस बजे तक करती रहती थी। पन्द्रह गानह वष विरन्तर राग से सगप करते करते उनका शरीर शक्तिहीन हो गया था। अपना नेत्र और सहायता के लिए उ होन न मेरी, न भद्र की प नी का भ्रम पाग मिरा सायात् रटा दिया। म जय जब अपनी पत्नी को एकाध महीन के लिए भी माता से पाग प्राया चाहता था त्रे सदा यही कहती—ना, भय्या, अपनी बहू से माय रगा। परन्तु माता ने हृदय का भेद तो अब खुता, यह सब उनका स्नेह था जिसे उहान बडे यत्न से सदा टिपा कर रखा था। उ हाने आत्म बलिदान के इस अभ्यास से प्रवृत्त बटा गया था।

माता की अग्रस्था दरुकर से रो पता। उनकी विमारी की वृद्धि की सूचना पिताजी से पता से मुझे मिलती रहती थी परन्तु प्रम के भ्रमटा के कारण से मिरुन्द्रा प्रात नहीं जा सकता था। मने गन्तिम पत्र से पिता जी का गया था कि माता से वरर दिनी या जाय तो चिकित्सा का ठीक प्रय हो जाय। परन्तु उह माता को दिनी जाने के लिए राजी करने से बहुत श्रम करना पडा। अता वे दिनी प्राड भी तो चिकित्सक मरणागत स्थिति से। उनका उस ग्रामत मृत्यु का कारण वास्तव से उनका बहू स्त्री प्रम था जिगम से आच्छन्नी हुई थी। मने तत्काल गडी डाक्टर को बुलाकर उह लियाया। दिनी के दो तीन पद्या को भी बुलाकर लिखाया। डाक्टर युद्धवीरसिंह उन दिना दिनी से ही जम कर प्रसिद्ध करने लगे थे। उहोने भी उनके लिए बहुत प्रयत्न किए। परन्तु उनकी अवस्था गडी सुधरी।

१९२७ के उत्तरने चैत्र के दिन थे। उस दिन रामनवमी का पवित्र दिन था। माता की तथा पात मान से बहुत मुशार पर थी। उहान हम गत्रको अपने पास बुनाया और सत्रही गोर मरगारकर रगा। परन्तु मरी दृष्टि से उनकी जीवन लो की अतिम ज्याति सिद्धी नहीं रही। मन चरमन का तुरन्त औपय लाने के लिए भेजा। हम सत्र बटा उपरिथन से। पिताजी बार बार माता से कुछ पूछ रहे थे, पर माता रोन नहीं सकती था तत्रन गत्रन द्वारा उत्तर दे रही थी। दस पन्द्रह मिनट तक हम सबको अपनी शय्या से समीप पत्र कर उहान नेत्र से लिए। उस समय नौ बज रहे थे। पिताजी पत्रगत माता की सजा का देख रहे थे। मने लपक कर नाडी दखी, नाडी नहीं थी। हय रगा। तत्रय पर टाय रगने ही उनका अन्तिम श्वास आया और वे अन्त त गहरी सिद्धा से नीन हो गये। पिताजी ने आत्तनाद किया—'छिन गया गीग मनी धन तेरा' त्रे बार बार उमी पत्रिह को कह कर अपना वेग रोक रहे थे। घर के सब आदमिया का सदा उग तमरे से फन गया। मेरी पत्नी ने चौगार ग्रामुत्रो से अपनी सस के चरगा को रो उाला। किसी ने किसी को नहीं रोका, सब के आवेग फूट पड रहे थे। उाकी मृत्यु के दस मिनट बाद च द्रसेन औपय लेकर लोटा। उसके सामने दृश्य

ही दूसरा था। क्षणभर वह कुछ समझ ही नहीं सका कि क्या हो गया है। पिताजी ने उससे कहा—बेटा, माता के अंतिम दर्शन करलो। उन्होंने शन के मुह का कपड़ा हटा दिया। चंद्रसेन अपनी भाभी के समीप जा माता के चरणों को अपनी गोद में लेकर बठ गया। इस समय घर भर में यदि किसी के आसू नहीं थे तो पट चन्द्रसेन था। उनके आसू तो माता की चितादाह के पीछे ही हम लोगों ने देखे। वह बहुत दिन उसी स्थान पर बैठ कर रोता रहा, जहाँ माता की रोग शय्या बिछी रहती थी। कि तु किसी के वहाँ पहुँचते ही वह आसुओं को पी जाता था।

माता का अभी तक हमने कोई फोटो नहीं लिया था। मैंने अपनी पत्नी के साथ मिलकर उन्हें भलीभाँति स्नान कराकर स्वच्छ किया, वस्त्र पहिनाए और फूलों से सजा कर उन्हें एक आरामकुर्सी पर लिटा कर फोटोग्राफर बुलाकर फोटो खिंचवाया। माता के इसी फोटो की मे प्रति वष रामनवमी के दिन पूजा करता रहा हूँ। मेरे पास माता की यही एक प्रतिमूर्ति है।

दिल्ली में आने के बाद एक बार बकराईद का मुस्लिम त्यौहार पड़ा। मेरा चिकित्सालय और निवास स्थान चाँदनी चौक में सड़क के किनारे पर था, वहाँ से सड़क होकर मैं भेड़ बकरियाँ के उन मूक भुण्डों को देखा करता था, जो मेरी आँखों से आगे बिल्लीभारान बाजार और फतहपुरी मसजिद के सामने सुबह से शाम तक फिर मुकाए निर्जीव बने खड़े रहते थे। ग्राहक आकर उनका अंग अंग हाथ से टटोल कर उनके मांस का अंदाजा लगाकर मोलतोल किया करते थे। उन मूकों की ऐसी दुःशा देय मुझमें न रहा गया। मानो वे मेरे सामने ही नित्य कत्ल होते और छटपटाते और उनकी म मे की करण चीत्कार दो तीन मिनट में ही शांत होकर उनका शव उण्डा पड जाता था। इससे रोपित होकर मैंने एक बहुत ही कटु लेख लिखकर पत्रिने अजुन को प्रकाशनाय भेजा। परन्तु अजुन ने उसे अत्यंत तेज और कटु बताकर प्रकाशित करने से इंकार कर दिया। वह लेख फिर मैंने प्रताप को भेज दिया। प्रताप भी वह पत्रा। उस लेख का शीर्षक था 'व्यभिचारिणी दिल्ली।' उस लेख को पढ़कर मेरे अंग अंग अंगी मिश्रों ने मुझे नाराजी के पत्र लिखे थे। पर तु उस लेख की प्रशंसा से अतिप्रोत जो पत्र मुझे प्राप्त हुआ वह था चाद इलाहाबाद के मालिक रामरखसिंह सटगल का। मैंने इस लेख से अत्यंत प्रभावित हुए थे। कहिए, मुझे उनके चाँद के आगमन में खींच ले गया। फिर तो उन्होंने मुझे बहुत कम कही अथवा अपनी रचना भेजने की सूचना दी। उन्होंने मुझसे बड़ी आत्मीयता और दृढता से यह कह दिया था कि आपकी प्रत्येक रचना प्रथम चाद में आनी चाहिए। चाद सामाजिक क्रांति का पत्र था। मेरे उनके विचार समाज सुधार के दृष्टिकोण से परस्पर में मिल रहे थे। इसलिए चाँद के पृष्ठ के पृष्ठ मेरी लेखनी से लिखे जाने लगे।

उन दिनों चाद म प० न रीशोर त्रिवारी सम्पादकान्य विभाग म थे । उनकी प्रेम और श्रद्धा भी मुझे चाद की ओर झुकाए बाधे रखा । चाद के पत्राक और प्रकृतिक दो विशेषताएँ उठोने गायोजित किए थे । मरी कहानियाँ चाद ओर सुधा दोनों में छपा करती थी । सुधा ने दुनारंगता भी दिल्ली आकर मुझसे मिले और मुझे अपने सुधा परिवार में सम्मिलित किया । रूमी भेट में वे मेरा नवीन उपनाम 'हृदय की ध्याम' प्रकाशित करने के लिए नगाए थे ।

परन्तु समाज की अन्तर्दृष्टि पर चाद ने प्रहार मुझे अत्यंत प्रिय थे । मेरी लेखनशैली का उद्वेगता दुग्रा रंग दो ही पत्रों का प्राप्त हुआ, एक प्रताप फानपुर और दूसरा 'चाद' इलाहाबाद । सहज जी के साथ योजना बनी और अंत में चाद के ६ विशेष पाक निकालने का भार सहज जी ने मुझे सौंपा । उन दिनों राजनतिक वातावरण अत्यंत गंभीर था । वम पार्टी और काग्रम पार्टी दोनों ही सक्रिय हो रही थी । मैंने चाद का प्रथम विशेषांक फासी अफ निगानन की प्रोपणा की । फासी अंक की आवश्यकता बताते हुए मैंने जो मत प्रकट किया था वह इस प्रकार था —

'मनुष्य द्वारा मनुष्य की हत्या जगत का अत्यंत जघन्य काम है, पर यदि यह कार्य ध्याम और शांति रक्षाके नाम पर किया जाय तो मनुष्य समाज को मनुष्य जीवन के उत्कर्ष से गिराने वाला भीषण पाप है । इस पापक का जिनकी तीव्रता से उन्मूलन किया जाय, मनुष्य जाति का उतना ही उत्थाग है । इतिहास के निकलने और अमर एवं अश्रद्धास्पद पृष्ठ यदि किसी विषय में क्लिष्टत समझे जा सकते हैं तो वह यही भीषण पाप है । भोक्तार पात्रिक प्रवाहम आर ज्ञानित मनुष्यों को मनुष्यों ने समय समय पर हत्याएँ की हैं । आज तक उनकी सन्तान अपने पूर्व पुरुषों के उपासकों के लिए रो रही है । गार गमार का अतीत पृष्ठों पर सवाल की भाँती धूल झाड़नेके बाद भिन्न भिन्न देश में महान् पुरुषों का मूर्ती, फासी, रक्त अग्निगर्ह या दारुण मृत्यु यंत्रों में बिना चारण तउप । इस प्राण दत्त स्मरण, सहसा मन में मनुष्य समाज के प्रति तिरस्कार की तीव्र भाव उत्पन्न होते हैं । महापुरुष सुहरात, जो मिट्टी के गतन बनाकर गरीब पुरुषों की तरह अपना पत्र मरना था, परन्तु जो पना विश्वास और रुद्धियों के स्थान पर मन्त्रिमत्त मत्त ज्ञान की तिमिल ज्योति को प्रारण किए था, केवल उसी कारण विष पाप पर विरजित किया गया । उसने तन्नाजानी की तरह विष पिया प्रार मरा । आज हजारों वर्षों से मसार उमरों इतनी जयता को अनुभव करके रो रहा है, पर उस पर ग्राह नहीं । मगीत जा गत्ययन्ता और रीयों का विश्छेदक पुरुष था, इससे भी कष्टदायिा मृत्यु में मारा गया । प्राण निकलने के अतिम क्षण तक वह अत्याचारियों के लिए "क्षमा-नामा" पुकारता रहा । स्थिरता तक उस अत्याचार से नहीं बची । जोन आफ आरु क जीना जनाए जाने के लिए समस्त अग्नेज लज्जित है । उसी प्रकार दङ्ग-

लण्ड पर स्काटलण्ड की दुखिया रानी मेरी का रक्त मवार है। यूनान गार रोम के इतिहास इस रक्तपात के वातावरण से आतप्रोत हो रहे हैं। भारत में परागो, जन ग्रथो, बौद्ध कालीन ग्रथो में ऐसे अमरय प्राण दण्डो की भरमार है, जिन्हें पढ़ते पढ़ते मन में मनुष्य जाति पर क्रोध उत्पन्न होता है। भारत में अंगरेजों के द्वारा मन्त्रों प्रथम नन्दकुमार को निरपराध फासी दी गई थी। विचारक व्यक्ति के विषय में विद्वानों का मत है कि इससे प्रथम किसी भी व्यक्ति ने यायासन को इस प्रकार वृद्धित नहीं किया था। फासी के कुछ काल बाद उच्च अधिकारियों से उन्हें छान्द दन का परवाना आ गया था। सन् १८५७ के गदर के नेता नानासाहब की कुमारी निरपराध प्रालिफा को वानपुर में जीवित जलाया जाना—न भूलनेवाली रोमाञ्चकारी घटना है। आज अतीत काल के बबर जीवन शांत हो रहे हैं, राज्य शक्तियाँ एक शासन मस्तिष्क में पतित होकर जन ममूह में रम रही हैं। प्रजा जवान हो गई है और अब वह एक बार फिर जजर होने तक स्वाधीन, स्वावलम्बी एवं आत्मशासन की अभिलाषा रखती है। ऐसी दशा में हम सारे ससार के सामने यह प्रस्ताव रखना चाहते हैं कि अब याय और शांति के नाम पर मनुष्य बंध करने की पाशविक प्रथा उड़ा दी जाय। कोई गवर्नमेंट कोई सरकार, किसी भी हालत में, किसी भी पुरुष की हत्या न कर सके। जानूँ क्या कहता है, यह बात सुनने की हमें फुरसत नहीं है। अगर वह ऐसी पाप कथा न, ऐसी जघन्य बात का समर्थन करेगा, तो हम उसका नाश कर डालेंगे, हम उस बात पर तुल्य हुए हैं। हमारा यह दावा है कि जब मनुष्य एक बीड़े मन्नाड़े में भी पदा नहीं कर सकता तो किसी मनुष्य को मारने का उसे क्या अधिकार है? राजा प्रसन्न होने पर किसी को वन मान दे सकता है, तो वह अप्रसन्न होने पर उसे त्रिणत। परंतु जब वह प्राण नहीं दे सकता, तब प्राण लेने का उसको क्या अधिकार है? केवल एक ही युक्ति है, जो प्राण दण्ड के पक्ष में कही जाती है। यह यह है कि प्राण दण्ड यदि कम हो जाय तो भयङ्कर अपराध बढ़ जायेंगे। हम यह कहते हैं कि यह बात भूत और अप्रमाणागत है। प्राचीन काल में सारे ससार में प्राण दण्ड की ऐसी रीतियाँ प्रचलित थीं, जिनमें अधिक से अधिक कष्ट अपराधी को दिया जाता था। महाराष्ट्र में समानुक्त रामदास ने ऐसे दण्ड देखे थे कि गम चिमटों से जीवित खाल खींची गई, आग में गिरने में गाड़कर, शरीर पर दही डालकर, शिकारी कुत्ते छोड़ दिए गए। यह राजा प्रायः शत्रुओं को मिलती थी, नाखूनो में गम सूइया घुसड़ दी गई, शरीर का जाल जाल आग में दिए गए। यूरोप में गम तने पर जीवित मनुष्य भून जाते थे, शिकारियों में हत्या होती जाती थी। हजारों दशकों के सामने कई दिन तक मनुष्य क्षत विवृत, अथमरा, नग्न पड़ा तडपता रहता था। ऐसे सुदूर प्रम और सामाजिक आदर्श में रहने वाला मनुष्य ऐसे नीच निंद्य दृश्य देख सका होगा, इस पर सहसा विश्वास नहीं होता। परन्तु ये

घटनाएँ गिनाएँ गत्य हैं। रोम ने उनिहाम में मेरी के आग मनुष्यों का प्राय करके डाला जाना, एक ही यही हिंसा होने वाला दृश्य उपासित करता था।

यथा हमें उस प्राय पर विचार नहीं करना चाहिए कि एक मनुष्य, जो किसी भी घटना में अत्यंत उत्तमजित होकर पशु जनकर क्रोध में किसी का मार डालता है वह कहा तक स्वभाव का अप्रियारी है? परंतु जब उसके अपराय की सजा मात है, तब जो व्यक्ति गति भावसे आग्र और विचार का अप्रियता बनकर किसी को मार डालने की आज्ञा देता है, तो उसका यथा दण्ड जाना चाहिए? मनुष्य में मनुष्य का बंध, आवेश और क्रोध में तो स्वभाव ही मानता है, परंतु विचार शक्ति रहते तो किसी भी दशा में नहीं।

हम उस बात पर भी विश्वास नहीं करने कि प्राण दण्ड के भय से अपराधी में रुमी हानी है, जगत्कि नहीं जाता है। जब प्राण दण्ड अत्यन्त कष्ट में दिया जाता था, तब भी प्रमे अपराय ही थे, और अग्र भी होते ही थे। सच पूछिए, तो अपराधी की मर्यादा दिव्यतन्त्र प्रदानी जा रही है। वास्तव में वे पुरुष, जो याय विचार से प्राण दण्ड के अप्रियारी जानें हैं अपराय करत समय उस परिस्थिति को पहुंच जाते हैं, जहां किसी भी दशा में विचार और विचार का जाना सम्भव नहीं है। ऐसी दशा में कानून या दण्ड का भय उनके लिए व्यर्थ है। दण्डित व्यक्ति का तो प्राण दण्ड से कुछ सुधार होने की सम्भावना है ही नहीं, जोकि दण्ड का मुख्य उद्देश्य है।

दण्ड का अर्थ है सुधार। अपराधी व्यक्ति को भविष्य में ऐसा परिवर्तित कर दिया जाय कि वह उस प्रकार का अपराय न कर सके, राजदण्ड का यह सबसे उत्तम स्वरूप है। किंतु मृत्यु दण्ड में अपराधी का जरा भी सुधार नहीं होता, न उसे प्रायश्चित्त का अंतर हो मितता है। मृत्यु दण्ड देना उस मूर्ख और नीच बन्ध की चिन्तित्सा के समान है जो रागी का आराध्य फलन की प्रष्टा न करते, उसे मारकर उसके रोग को आराम जाना समझता है।

किंतु ही पुरुष आज प्राण दण्ड में प्राण खाने के बाद निरपराध प्रमाणित हुए हैं। किंतु प्रथम प्राण दण्ड में स्वभाव पाकर दशा के सुधारक और युगान्तरकारी सिद्ध हुए हैं। दुष्ट, अपराध का तब मनुष्य अपना वर्तमान कानून के बल पर, किसी भी कारण से किसी जीवित पुरुष की दृष्ट्या न कर सक — उस सम्प्रदाय में खूब जोर से पुकार उठाने का दिा आ गया है और भय दृष्ट आवाज उठाने का ग्राह्य करता है। मैं ऊँची में ऊँची उस आवाज को सुना, अजिया गार अमेरिका तब के प्रातावरण में गुजायमान कर देना चाहता है। मनुष्य जाति के स्वभाव उस जगली प्रथा के विरुद्ध आवाज बुलंद करने का सूत्रपात करता है।

नवम्बर १९२८ का अर्द्ध बाँद का लूफानी विशापाक 'फामी अर्द्ध' था। मेरे

कहने और विश्वास पर चाद का यह विशेषांक बहुत अग्रिम सरया में टापा गया था। दस अंक के प्रकाशित होते ही समस्त भारत में भूचाल का एक भटका सा लगा था। सजीवन प्रेस में मेरे पास कुछ युवक कम्पोजीटर बन कर काम बिया करते थे, तब मुझे यह गुमान भी नहीं हुआ था कि ये युवक विप्लववादी दश के नौहिवाल हैं। पर तु जब फासी अंककी सूचना पढकर ये लोग मुझे विप्लववाद का मटर देने आण तो मैं उनका परिचय पाकर दग रह गया। भगतसिंह के अलावा अग्र्य क्रांतिकारियों के भी प्रत्यक्ष दशन मुझे उस काल में हुए। वे उन दिनों मेरे मकान पर गुप्त रूप से रहकर मटर लिया करते थे। मेरी पत्नी अत्यंत प्रेम और उमग लेकर उनके खाने पीने और आवास का ध्यान रखती थी। पर उन युवकों का चरित्र और जीवन भी त्रिचित्र और बल्पनातीत था। न उ हे खाने की सुख थी, न सुख आराम की अभिलाषा। पलक मारते ही मरे सामने और पलक मारते ही कई कई दिन गायब। आने का कोई टागम नहीं। रातको दो दो बजे दरवाजे पर उनकी टिक टिक सुना करता था।

फासी अंक की धूमधाम देश भर में मच गई थी और वह सबत्र चर्चा का विषय था। चाद के पाठको ने उसकी कई कई प्रतिया रिजव कराली थी। अग्रज सरकार न भी फासी अंक की विज्ञप्ति और विषय सूचि पढकर अपने हथियार उडे सभान लिए थे। फलत प्रकाशित होते ही इसकी जब्ती का हुकम हो गया, और फामी अंक छिपे तौर पर हजारों की सख्या में दस दस रपयों में बिका।

दिल्ली आवास के आरम्भिक काल में रामरखसिंह सटगन में पहिनी बार मरी भेट हुई। रहने का ठाठ-बाट खूब शाही था। कपडे खदर व, ढीला पाजामा और कुर्ता पहिन्ते थे। खूब रुआव से रहते थे। देखकर तबियत खुश हो गई। उही स्प्रत थी, जो मेरे अ दर काम करती थी। वही समाज और राजनीति की क्रांतिकारी भाषणा थी, जिन्हे मैं विचार करता था। फल यह हुआ कि दोनों की पट गई। उनमें आदर सत्कार ने मुझे मोह लिया और फिर हम अधिक निकट होते चने गए।

पर तु चाद की अग्रिक दशा उन दिना अच्छी न थी। प्रतिया भी शायद तीन हजार ही छपती थी। खच शाही थे। पुस्तक अच्छी बिकती थी पर सच की तगी बनी रहती थी। एक दिन बडे बडे त्रिचार हुआ कि त्रम 'चाद' का उमन मिया जाण। मने उ विशेषांकों की स्कीम बनाई। जिनमें पहिना 'फासी अंक' था। उहुन भारी शका समाधान के बाद श्रीसहगल फामी अंक की उपयोगिता पर सहमत हुए। यह भार उहों पर मुझी पर दिया और मैंने उसके लिए कलम पकडी। मरी अभिलाषा थी कि उमग फाँसों के दण्ड के प्रति तिरस्कार तो प्रकट ही मिया जाय, साथ ही मजोरजन की दृष्टि से सगार के प्राण दण्डों को व्यक्त किया जाय। दूसरे उसी त्रहों वीमयी शलाब्दी में राजनैतिक तारगो से फासी पाए जाने का एक रिकाड भी एकत्र कर लिया जाय।

इसके विज्ञापन भी सारी याजना मैने ही बनाई, विज्ञापन के ड्राफ्ट भी मैने किए। भारत के अनेक पत्रों में फागी श्रम का विज्ञापन छपते ही तहलका मच गया। बड़ा गड़गड़ाहट मचा। उधर सरकार भी चिंतित हो गई। भला सरकार साहित्य में ऐसी उग्र राजनाति और क्रांति कहा देग सकती थी। परन्तु हमारा काम चलता गया और मेरे पास लोगों का डेर लग गया। परन्तु राजनतिक फासी पाप्त जनो का प्रामाणिक वृत्त मुझे नहीं मिलता ही न था। इसी समय अकस्मात् मेरे पास सरदार भगतसिंह ने आकर कुछ आर्थिक सहायता चाही और मैने वह कठिन काम उहे सौंपा। उन दिनों वे माउस को मार चुके थे और पुलिस उनके पीछे थी। वे छद्मवेश में रहते थे तथा नाम बदलकर परिचय देते थे। मैं भी, जब तक कि असेम्बली में बम-बडाका नहीं हुआ, उनका अमल परिचय न जान पाया। उन दिनों सहारनपुर और दिल्ली क्रांति कारियों का अड्डा ही रहा था। उतान घर पर घूम कर क्रांतिकारियों के ७० से ऊपर प्रामाणिक चरित्र और चित्र मुझे दिए, जिसके बदले सिर्फ शायद ७००) उहे चाँद की ओर से मिले थे। भगतसिंह ने आरम्भ में अपना नाम बतलाया था—बलवन्तसिंह।

चाँद का फासी अर्ध चाँद के इतिहास में एक महत्वपूर्ण घटना थी। जत्र सब मटर तैयार हो चुका और त्रपने प्रेम में गया ता सहगल न तार से पूछा कितना छपेगा। मैने तार ही से जत्राव दिया दस हजार। लेकिन इतनी भारी जोखिम उठाने को सहगल तयार न थे। उतनी प्रतिया न त्रिमी तो? उन दिनों दस हजार किसी मासिक पत्र का त्रपना आशातात बात थी। परन्तु मैने भी हठ ठान ली और तार दिया कि जो प्रति न बिके त्र सत्र में खरीद नगा, पर दस हजार छापों। निदान फासी अर्ध दस हजार छपा।

परन्तु देगन त्रा कहते हैं कि कम्पोजीटर मटर कम्पोज करते करते पागल की भांति त्रपडे फाँसे लगे थे, उमन्न होकर छाती पीटने और रोने लगे थे। बड़ी कठिनार्दी में सहगल न व्यवस्था की। उधर सरकार भी वे सबर न थी। अर्क निकलते ही उरा जान करानी पूरी तैयारी सरकार कर चुकी थी तथा सहगलक प्रस के चारा और काफी पहरा बैठा हुआ था। अन्तत जब तीन चार दिन होन पर भी पत्र को डिस्पैच करने का साइस उर न हुआ ता मुझे त्राताया तुनाया। जाकर देगा सहगल परेशान थे। कहने लगे - त्रागत्र त्रा उधार आया है। स्टाफ का दो माम का वेतन नहीं दिया गया। यदि बी० पी० अमल त्र हुण ता में त्राह हो जाऊगा और तब सबसे पहिले आपका खून करूगा, आप ही ने मुझे त्रा मुनीबत में जाना है। मैं दस हजार छापना नहीं चाह रहा था।

मैं ही समझता था कि ऐसे मामला में एक आर्थिक रख भी है और सचमुच मैने सहगल को जिस अर्थ सफुट में डाना था—यदि पत्र जब्त हो जाता ता उन त्रा निस्तार नहीं था। हमन एक त्रिऊडम सोची। रात के ८ त्रजे हम पोस्ट मास्टर के मकान पर गण और उसे खरीदकर त्रास बात पर राजी किया कि वह कोठी पर चलकर सब

पत्रों पर मुहर लगा दे, तथा रजिस्ट्री करदे और यह भारी काम करने पर हमन युक्ति म सारी प्रतिया स्टेशन भेजकर गाडियो मे लदवाती । रात के प्राठ दस वजे तक म यफात मे इलाहाबाद से उन दिनों चारो तरफ रेलगाडिया छूटती थी । उस एक ही दिनम अग्र कलकत्ता, मद्रास, दिल्ली, लाहौर आदि देशके भिन्न भिन्न भागोम अरु गिरगर गए । हम ने और दो दिन चुप्पी लगाई । तब डिप्टी कमिश्नर के पास दो प्रतिया भेजी गइ । पुलिसको आवश्यक कायवाही मे दो दिन और लग गए और हमे पूर पाच दिनका समय मिल गया । सहगल की मेज पर रूपयो का मेह बरस रहा था । चागीम नए तलक स्टाम्फ मे बढाए गए । नई मशीने खरीदी गई और चाद दिग्दिग त मे प्रसिद्ध हो गया ।

इम अक से यथेष्ट आर्थिक लाभ श्री सहगल को हुआ । तथा हजार म्थायी आहूक बन गए । इसी समय भगतासह असेम्बली मे बम फेरते हुए गिरफतार हुए । पुनिम को सदेह हुआ कि चाद के इस अड्ड से इम पार्टी का कुछ सम्भव अवश्य है ।

पुलिस को चाद कार्यालय से उा लेखको के वास्तविक लेखक का नाम मिल गया जो फर्जी नाम से छपे थे । इस बात से मेरा मन श्री सहगत से गित्त हू गया ।

अब चाद के दूसरे विशेषाक की बारी आई । इम बार मारवाडी अड्ड के द्वारा मै मारवाड को उद्वोधन देना चाहता था । मारवाड की कुरीति पर आशेष चाहता था, पर तु इस अड्ड का सम्पादक यद्यपि मे था, परतु सहगलने कुछ ऐमे लय त्राप दिए जो मेने नही चुने थे । उहोने मेरे चुने लेख भी निकाल दिए । पहिले मेने इस बात का कुछ महत्वपूर्ण नही समझा । पर पत्र ज्योही प्रकाशित हुआ, एक तूफान खडा हो गया । खेतान बबुश्रो ने कलकत्ते के मारवाडी बाजार को उकसाकर एक मुकदमा खडा कर दिया । उसी दौरान मे श्री सहगल पर जूता भी फेका गया और तभी मुझे ज्ञान हुआ कि मारवाडी अड्ड जैसे साधनो से दबाव डालकर कुछ लाभां वित भावना श्री सहगत म थी । इन सब कारणो से मुझे उनसे एक बारगी ही पृथक हो जाना पडा और यह ठीक ही हुआ । क्याकि भारत मे अग्ररजी राज्य को लेकर जो मुकदमेराजी पणि त मुत्तरलाल मे चली, तथा श्री निरजनलाल भागत और श्री सेठ रामगोपाल जी मोदता से जो आर्थिक त्रिवाद उठ खडे हुए, तब यह असम्भव न था कि मुझे भी किसी मरगत परिणाम पर पहुँचना पडता । मेने तो आगे सहयोग से सवधा ही उन्फार कर दिया था, पर पीछे उहोने एक दो वैमे ही और विशेषान निकाले पर उनमे उन्हे सफलता नही मिली । इसके बाद ही शायद उह लीक्वीडेशन मे आना और फिर बाद मरथा मे शय बोना पडा । बहुत दिन बाद फिर एक दिन मुलाकात हुई । उन दिना व लगनऊ रहत थे । जाकर देखा कि वे अपने कुन को वेत से पीट रहे थे । कुत्ता जजीर स त्रा था और छोटी ही जात का था । उसने शायद उनकी आज्ञा का उल्लघन किया था । तट पिटकर बुरी तरह छटपटा रहा था । उसकी आखे करुणामयी थी । बनी कठनाई से मे

उह वहा म गीत गाया । जरा ने फूट पीदा मे मरे बराडे म—जिनका उन्हे बेहद शोक था, चाय पीन तठ तो एस पगत्र गांर निर्गार चित्त से त्रात करने लगे कि म हेरान रह गया और जिनना शीत्र हो सना तहा म भाग निकला ।

फामी ग्रह म जा निगनत्रवाद का मटर छपा था उमके लेखको की तलाश मे, और बाद म भगर्तागत न जा न ग्रप्रल १९२८ को ग्रसेम्बती म बम फेका, उसमे सूत्र दूढते हुए पुत्रिम न मुभे मो पत्रड त्रिया । उस प्रटनाका शुरू स कहता हूँ । एकदिन म भाजन पर प्रठाटो था कि त्रलव त्रिह त भपटत हुए आकर कटा—भटपट तयार होजाएण, म टरमी गाया ह ।

वहा, ताल अगारा मट दूज के चद्रमा क समान पतली और वाती मडे, मूडे के नीचे वैमी ही त्राती मुम्पुराहट, गिर पर अग्रजी हेट, टन कालर की शट और निकर, छाटी और तेज आय ।

मैने हसकर कहा । एतन्म अर्जेण्ट ग्राडर ?

जी हा, परन्तु समय नहीं है । आप जटदी कीजिए, और माताजी ? उसन मेरी पत्नी की और टेगत्रर त्रु त्रु टोठा हो टाटो म रहा ।

परन्तु तहा ? मत्र प्रश्न त्रिया ।

एसेम्बली मे । मत त्रल कहा न था कि आज वहा खास दिन है, स्पीकर पटेल स्तीफा दगे । स्त्रगज्य पार्टी त्राक आउट त्रगी । और भी न जाने क्या कुछ न हो जाय । उमके स्त्रर म त्रजो थी, आय न जान क्या सदेश दे रही थी और उसके पैर जसे तपते तवे पर थ ।

मने कहा - आज जाना नहीं हा सकेगा बत्रत्रन, मुभे एक बहुत ही जरूरी काम हे । फिर कभी ।

फिर तभी नहीं, आज ही । उमने भभला कर कहा । फिर पत्नी की और देख कर तहा आप त्रु टा दर लगायगी, जरा जटदी कीजिए, दस बज ही रहे है पहुचने म १०-१५ मिनट त्रग त्रायगे ।

पानी ने मरी और देखा । गाहत्रगाह यह युवक त्रात्र त मेरे पास आ जाता है । त्रिचित्र आदमी ह । कभी त्रच्चा की तरह बसिर पर की बात करता हे कभी खूब गम्भीर हो जाता हे, और कभी गुस्से म आता है, तो त्रोट बडे किसी को नहीं बरु शता । मै उस प्यार त्ररता ह । चाहता हूँ, जब आए, उसे दुलार करूँ, कुछ खिलाऊँ-पिलाऊ । पर बत्रन त्रम एसा कर पाता ह । एक तो वह कब त्राणगा, और कब चल खज होगा, त्रमना थीत ठिकाना ही नहीं, दूसरे शिष्टाचार की भी उसे परवाह नहीं, और खाने पहनन का तो कभी शोक ही नहीं । मूँहफट ऐसा कि कभी कभी मुभे ही फटकार बठता हे । लकिन मुभसे बात ऐसे करता है, जसे सगे पिता से । 'बाबूजी' कह

कर सम्बोधन करता है—गुस्से में भी और खुश रहने पर भी। कभी कभी जबतक चाय पानी मगाऊँ, बात करते करते भाग खड़ा होता है। बिल्कुल सनकी। पर आज कमीज निकर नहीं है। हट छप्पेदार बड़ी बाकी है। कमीज के खुने गले में पुष्ट गदन गम भली लग रही है। लाल सुख स्वस्थ चेहरे पर खूब लाल पतने होठ रंग दिखा रहे हैं। अभी उम्र ही क्या है। शायद २४ को पार कर रहा हो। अपना अता पता कभी पताता नहीं। अजुन अखबार के सम्पादकीय विभाग में अनुवादक है। मरे पाग गिफ दा वारण से आता है, या तो फटकारने के लिए या रुपया मागने के लिए। दोनो ही मामला मैं सकोच और भिभक से रहित। एकदम दो दून। फटकारता है मुझे कायर वह पर। इतने बड़े साहित्यिक होकर आप कुछ नहीं करते, यही उसका कहना है। रुपया मागता है, तो कहता है, कुछ रुपए दीजिए बाबूजी।

मैं हृज्जत नहीं करता। हाते हैं ता द देता हूँ। नहीं तो पत्नीने पास भेज देता हूँ। पत्नी कभी उसे छूछ हाथ नहीं लौटाती। रुपया हाथ में न हो, तो भी नहीं। नही से बंदोबस्त कर देती है। हम लोग उसमें यह नहीं पूछते—‘रुपया करोगे क्या।’ रुपया वह कभी वापस देता भी नहीं। वापस करने की चर्चा कभी करता भी नहीं।

उसने गुस्से में कहा—सारा वक्त आप यही बर्बाद कर देगे बाबूजी।

मैंने कहा—मगर पास कहा है ?

ये है, उसने जेबसे निकाल कर दिखा दिए।

मैंने कहा—देखू ?

देख लीजिएगा रास्ते में, अब आप हाथ धोइए।

क्या खाना भी न खाऊँ ?

अब लोटकर खाइएगा। कुल एक घण्टा ही ता लगेगा। मैं और हृज्जत पत्नी की। उठ खड़ा हुआ। पत्नी बिना खाए तैयार हो गई। चन्द्रसेन भी हमारा साथ था। हम लोग जब एसेम्बली भवन में घुस रहे थे, तब दस बजकर १७ मिनट हो चुके थे।

एसेम्बली भवन में आज बेशुमार भीड़ थी। दशक गलरी में तिल परा का जगह नहीं थी। मुझे दशको की गनेरी के द्वार पर छोड़कर बलवत्त न जाने कहा गया था। पत्नी को लेडीज गलरी में बठाकर मैं अपने बैठने को जुगत सोच रहा था। बैठने को जगह नहीं मिल रही थी। बहुत लोग मेरी ही भाँति खड़े या उर उर भटक रहे थे। मैं बीच बीच में लोगों के कंधों पर से उचक कर वक्ता का भाषण। एसा जवद सुन लेता था। उस दिन ‘पब्लिक सेफ्टी बिल’ पर बहस हो रही थी। बहस खूब गर्मागम थी। पर मुझे कुछ आनंद नहीं आ रहा था, आराम से बैठने का डीन ही पत्नी लग रहा था। मैं भीड़ से उचक कर आगे देखने लगा। मोतीलाल नेहरू अपने स्थान से उठकर किसी दूसरे सदस्य के पास जा उसके कान में फुसफुसा रहे थे। उर ही मेरा

व्यान था। एक टाँका गाड़ी का साधारण पीछे खड़ा-राती मण्डी खड़ी थी। म मुह खोल कर उठने कुट्टर गाड़ी काट रहा था, एक टाँका पानी सातने युद्ध पर हटात् मेरी नजर पड़ गई। म गोवा नगा, म जाती गया है। उगने मरी तरफ देखा-मुझे मालूम हुआ, मुझे स्वप्न पर आठ नब्बे टिका पर दूगरी की लगन वह आया स ओझन हो गया। योगी दर साता फातर साद गायता म व्यक्ति न भी चाद के फामी अक क लिए राजनीतिक फामी प्राप्त प्रदिया का प्रहत मा दुःप्राप्य मसाता दिया था, परतु यह भाग गया गया ? जान गया न ही ? म नजी म उमी और जो लपका जिस और वह गया था-पर उमता पाता नहीं जाता।

म उतर उतर नजर दौड़ी रही था कि सहमा तीर की भाति तेजी से चलता हुआ उतरत मर म गुजरा। पर एक प्रफार से मुझे धक्का देता हुआ मा निम्नल गया। मन म पतारा और एक म उमके पात्रे लपका, पर तु उसने म पर व्यान नहीं किया। कुट्टर गाड़ी-या-ती अतर पर वह उमी सातने युद्धम कुट्टरीने वीर जान कर रहा है। म नजी म-वहता चाहिए दौडकर उसके पास पहुँच गया, पर तु मुझे उतर आता श्व वे दोना ही भिन्न शिशाआ की आर जाकर एकदम भीड मे गायत्र ता गए।

म म प्रदभुन मामो मे चमत्कृत मा पाछा कुछ सोच ही रहा था कि घण्टी बजो। मर नाग आगे प्रफार फायदाही रखन नग। बहम खत्म हो चली थी और सदस्यगण प्रियतर के पात्रो की भाति मधम मे उमर बोट देने को उठ रहे थे। मनो रजन ह प था। मर लोग यान से श्व रहे थे। म भी और मर जान भूत कर यही दग्ने नगा।

म जाती न गतरी म फिकर ही खटा था। स्पीकर पटेल न स्थिर गभीर स्वर मे त्रिन पर मपता मिसाय रिया, और एक क्षण रुके। बगल के सज्जन बोले-तो, स्पीकर अर स्ताफा भांग, मरा गया मपाकर ही टिनतो हई दाती पर था। एकाणक भया न घात म मर म ति म गया और कोई दो गज विद्यत् प्रफाश ठीक उमी स्थान पर चमका, मरी सरकारा मरस्य पठ थ। माय ही ऊपर म विन्कियो के राच के टुकडो, और धूम म एक ही श्व म पर बरस गई।

श्वमभर म विना म विमूढ हो गया। किसी ने कहा-‘बम बम।’ परमाणु और फाँव के टुकडा हो गया मार ऊपर जाती थी। मरन धुण मे भर गया था। चारो ओर भगद मत्र गई थी। मारे सा म मरम पहले उउनछू हो गए थे। नेडोज गैलरी मे अग्रज स्त्रियाँ नीर रही थी। पर बुडिया मेम अपने ही साण मे उलभ कर छाता हाथ मे लिए औधे मुट गिर गई थी, शेष स्त्रियाँ उगे कुचलती हुई बदहवास भाग रही थी।

अंग्रेज स्त्रियों को निरीह भारतीय स्त्रियों की भाँति राने टगाना या यह मेरे निग पहिना ही अवसर था। विचित्र दृश्य था। मेरी पत्नी का हाथ पकटा और एक पक्षर से उहे घसीटता हुआ सीढियों तक ले गया। मेरा खयाल था— यह विचित्र भी नहीं रही है। पर तु कइ क्षण बीतने पर भी विचित्र दृश्य नहीं। जीने पर जाकर मैं खटा हो गया। मेने सोचा—जीवन मे फिर यह कत्र टखने का मिनगा। पता गोर च द्रगन को वही खडे रहने का मकेत कर मे भीतर को लपका। लोग भागे आ रट प्र आर म भीतर जा रहा था। मे सीधा घटना स्थल की ओर दोडा। तभी ओर एक टगाका हुआ। धुँ ओर अ वकार मे कुछ भी नहीं दीख रहा था। उसी समय जहा म था, वहा से ४५ गज के फामले पर अचल सडा बला त ओर उसके साथी टगाटन गागिया चला रहे थे। मेरे बदन का खून जम गया। मेने चाहा कि म उ ट प्रफारु गा उनके निकट पहुँच जाऊँ। इसी क्षण बलवत ने गरज कर कहा—‘नाग निव रयोयूशन !’ ओर बहुत से पर्चे निकालकर हवा मे उठाव टिया। उसके साथी त भी यही टिया।

धमना कम हो रहा था। नीचे झाक कर देखा—साटाग था। खन दा यक्ति वहा बैठे थे। एक श्री क्रोरार, सरकार के गृह म त्री ओर दूसरे १० मोतीनान नेटरु। कुछ व्यक्ति जो श्री क्रोरार के स्थान पर आक्रांत हुए थे पडे कराह रहे थे, उपर दोनो ही युवक अचल खडे थे। कुछ समय तक पुलिस को उन दोनो युवकों के पास जाने का साहस नहीं हुआ। अत म पुलिस की टुगिया समझ उन्हान अपने अपने रिवा ल्वर फेक दिए और अफमरो को पास आने का इशारा किया।

बरामदे मे शस्त्रो की सडक ओर भारी भारी बूटो की धमक सुनाई दी। ताना ही कण्ठो ने नारा बुल द दिया, ‘लाग लिव रेवोत्यूशन’ ओर इसी समय किसी न चीग कर कहा—‘पकडो इ ह ।’

गारे सार्जे ट मगीने ले लेकर दोडते टिखाई दिए। मन भी म घुमकर दगा, दोनो युवको को दो दो साजन्टो ने भुजपाश म पीट्रे से कम रग्या हे। ताना युवता ती छाती उभरी हुई थी ओर उनके होठोपर हास्य की रखाण भारतीय क्रांति के उतिहास का नया अध्याय लिख रही थी। लोग भाँति भाँति की वान कर रट थ। म अत्रन खडा उन दोनो युवको को देख रहा था। जिनका असनी भेद त्रपाँ क सम्पक म भो मै न जान पाया था। मे वहा से टटकर पत्नी के पास आ खडा हुआ। जत्र दाना पास से गुजर—बलव त की आखो ने एक चोर नजर से हमारी ओर रग्या, उगाओ आग्य हस रही थी। पत्नी की आखा म आसू भर आण, जि हे उन चार नजरों ने देख लिया। उ होने मुह फेरा, सीना ताना ओर क्रांति पथ का जैसे शिलायाम करते हुए पुनिम के घेर मे आगे बढ गण। मुझे ऐसा प्रतीत हुआ, भूचाल आया हे, विश्व जल रहा हे, प्रलय भूलोक को निगलने की तयारी मे हे।

देखा ही था परम्परा की भवन गारी कानी प्रतिम म भर गया। उसके सब द्वार पत्त कर थिय गण और एक प्रकार से भीतर के सभी प्राण रुद होगण। मेने बीरे बीरे भवन का पत्र चढ़ा र गया। चाट र गया था, काट परिचित पुरुष मित जाय, तो ज्ञान रू, ज्ञानर जान री राट निरान। प नी वहुत परगान थी। अत्र बलप त का क्या हागा ? क्या कुट्ट र र कर मामला गाफ नही क्रिया जा सकता ? यह इन्होने क्या क्रिया ? क्या क्रिया ? बम होता क्या हे ? यह नही जानती थी कि क्रातिकारी कम जीव होते हे। उनर क्रियात्राप री भावना और उद्देव्य क्या हे ? और यह तो म भी नही समझ पाया था कि यह युवक, जो सदत्र अस्थिर और अस्तव्यस्त मेरे पाम आता र गया हे, क्रातिकारी दल का अग्रदूत हे। सच पूछा जाय तो क्रातिकारी मामलों पर मने रभी गटराई म प्रिचार ही नही क्रिया था, यद्यपि चाद के फासी अरु मे मेने उगरी रहत उहापाह री थी।

पर तु यत्र ता गुमे यहाँ पाठको को भी भारतीय क्राति क म्ब्व र म दो गव्व निगुना उचित प्रतीत जाता हे। ईसी सन् १८/६ भारतीय क्रातिकारियों के नवयुग का प्रगान रगत था। उमी त्रप रार चेम्सफाड भारत के वायमराय होकर आण ये और तत्र से १९०१ तक उनका शासनकाल रहा। उनके इस पचवर्षीय शासनकाल मे बडे उडे महत्प्रपुग क्रिय हुए। 'मा ट्यू चम्सफोड रिफार्मस बिन पाम हुआ, जिसके फलस्वरूप भारत री शासनप्रणाली मे रद्दावदन हुए। लेजिस्लेटिव कोंसिल के स्थान पर कोंसिल आफ स्टेट्स और नेजिस्लेटिव कौंसिली दो विभिन्न चेम्बम स्थापित हुए। प्रत्येक प्रांत री व्यवस्थापिका सभाए बनी और उनमे ७० प्रतिशत लोक निराचित सदस्य आणीत हुए। सत्रप्रिम भारतीय नाड मि हा बिहार उडीसा के गवन्तर बनाए गए और रस प्रकार राज्य री (द्वत शासन) व्यवस्था स्थापित हुई। पर तु शीत्र ही उस परगानी क रीपा री दरकर रग म अमताप उत्पन्न होने लगा, जिसके कारणों की जान र निरा 'सा मा रमीशन' री नियुक्ति हुई। पर तु इस कमीशन मे एक भी नाक निरालिग र गया था। उगत्रिये भारत न उस कमीशन का तीत्र प्रतिष्कार क्रिया। नाटोर म जत्र यह कमाणा पहुँचा ता वता की जनता न सिंह प्रिक्रम लावा लाजपतराय। नवतम म कमीशन का काले भण्णे से तिरस्कार क्रिया। फलस्वरूप सरकार म मधुप टया गीर सिंह प्रिक्रम लाजपतराय पुलिस की लाठी को चोट से आहत हाकर रत्रगत हुए। पर तु मरन से प्रथम हे कह गए कि मरी डाती पर पडी हुई एक एक चोट प्रिण्ड साआज्य र रफन री नीले होगी।

सिंह प्रिक्रम लाजपतराय ही उस मृत्यु से देश भर क्रोर मे जल उठा और प्रति हिंसा की एक ऐसी प्रयासना जाग्रत हो गई कि जिसने सरकार को चिंतित कर दिया। देश का यौवा हुदार करने लगा और उसने क्रातिकारी त का सगठन क्रिया।

१७ नवम्बर १९२८ को लाला लाजपतराय का देहा त हुआ। उसके ठीक एक मास बाद सत्रह ही दिसम्बर को सध्या के कोई पौने पाच बजे दिन दहाडे लाहौर के पुलिस अफसर साण्डस को इन तरुण क्रांति दूतो ने गोर्लियो से ढेर कर दिया। यह उन ताठिया का पुरस्कार था जो देश पूज्य लाजपतराय की छाती पर घातरूप मे पटी थी।

पुलिस के दल के दल अपराधियो की खोज मे देशभर म घूम मचाने लगे, पर तु अपराधियो का कोई भी सुराग न लगा। बहुत से अपराधियो को जेल और पुलिस की यत्रणा अवश्य सहनी पडी। इसके चार मास बाद आठवी अप्रल को भारत को जगाने और अप्रजो के वहरे वाना मे चेतना उत्पन्न करने के लिए असेम्बली मे यह हुआ।

सकडो गोरे और काले पुलिस के कमचारी भारी भारी कदमो से भवन को दहलाते हुए तेजी मे इधर से उधर घूम रहे थे। मेरी ही भाँति और भी अनेक दशक वहा बंद हो गये थे। एक मजिस्ट्रेट द्वार पर एक एक की छानबीन करता जाना था और एक-एक को छोडता जाता था। मदेहास्पद जनो को रोकता भी जाता था। भीड बहुत थी और हम एक बार अपने उस प्रिय युवक को देखने को आतुर थ। मभवत कोई सहायता पहुँचा सके। भाँति भाँति के लोग भाँति भाँति की बात कर रहे थे और यह तो हम समझ ही गए थे कि आधा पागल और जिद्दी सा वह सु दर युवक एक जबदस्त क्रांतिकारी था। उसके प्रति स्नेह के स्थान पर श्रद्धा और आश्रय के भाव मेरे मन मे भर रहे थे।

तीन घण्टे व्यतीत हो गए। अब पुलिस कमचारियो के मह पर चिता और घबराहट के चिह्न न थे। साहब लोगो के चाय पानी का समय हो गया था। परा लोग चाय, टोस्ट, अडे ट्र मे मजाए तत्परता से इधर से उधर ले जा रहे थ। उन्हें देव नर पत्नी न धीरे से कहा—ये हत्यारे क्या उ हं भी कुछ खिलायगे पिलायगे। मैं जगव नही दे पाया था। मैंने सोचा—उन्हे अब खाना, पीना, सोना, हँमना कहा नसीब। कुछ पुलिस के अफसर तेजी से आते नजर आए। उनमे कुछ हँसर रात कर रहे थ। उनमे यूरोपियन भी थे। थानेदार लोग आमपास मे खडे लोगो को मवत से जगन म हटाते जाते थे। अकस्मात् हमने दखा—वे दोना युवक हथकडियो म जम्डे हुए सामने से चले आ रहे है। वही राज, गेठ की चान, वही निर्भीक दृष्टि, वही तिरछी मुसकुरा हट। मेरी जेब मे एक सतरा पडा था, ज्योही व मेरे पाम से गुजर—मेन चाहा, यह सतरा मैं उस प्यारे युवक को भेट कर दू। परन्तु मैं साहस न कर सका, वह चला गया। हमारी ओर उसने आगे तिरछी करके भी नही देखा।

अब हमने बाहर जाने की सोची। मैं पत्नी को आगे करके द्वार पर आया, भीड अब भी बहुत थी। बारी आने पर मैंने अपना पास मजिस्ट्रेट के आगे बढाया। खुदा की मार, उस पर मेरे नाम के आगे प्रोफेसर लिखा था। उन दिनों मैं गामसाह

अपने जो प्राफेसर किया करता था। मजिस्ट्रेट ने पूछा—‘आप कहाँ के प्रोफेसर हैं?’

‘अब तो नहीं, पर तु कुछ उप पूज लाहौर डी० ए० वी० कालेज में प्राफेसर था।’ डी० ए० वी० राजा का नाम मुनते ही उसने आखे फाड़ फाड़ कर मेरी तरफ देखा। फिर कहा—‘अच्छा, अच्छा, जरा ठहरिए, मैं आप से कुछ प्रश्न करूँगा। परंतु श्रीमती जी जा सकती हैं।’

मैंने मुस्करा कर कहा—‘सिद्द है, हम लोगों ने विवाह के समय सुख दुःख में साथ रहने का वचन दिया है। वे मुझे अकेला छोड़कर शायद न जा सकेंगी।’

मजिस्ट्रेट ने मुस्कराकर हमें देखा, हम लोग हटकर एक बगलमें खड़े हो गए।

वेदिक चंद्रमन के पास में भयकर बाधा आ खड़ी हुई। उसके नाम का पास तो बननाया गया नहीं था। वह हमारे साथ साथ जब असेम्बली भवन के द्वार पर पहुंचा ता हिंदुस्तान टाइम्स के रिपोटर चमनलाल उसे दीख पड़े। उसने लपक कर उनसे कहा कि एक पास दिनप्राण। चमनलाल के हाथ में ईसाई मित्र के नाम का पास था, जिसे वे देने के लिए दल रह थे। पर वह मिल नहीं रहा था। असेम्बली की कायवाही शुरू होने का समय हो चुका था। उन्होंने अपने उस मित्र की आज्ञा छोड़ दी और वह पास चंद्रमन को दे दिया। मजिस्ट्रेट ने जब नाम पूछा तो चंद्रसेन ने अपना सही नाम ही बताया और यह भी कह दिया कि मैं शास्त्रीजी का छोटा भाई हूँ। अब फर्जी नाम का पास बनवाने के अपराध में उम्मे संहितास्पद लोगों के घेरे में रखने की आज्ञा मजिस्ट्रेट ने गोरे साजट को दी। पत्नी सम और घबड़ा गइ, परंतु मैंने उन्हें शान्ति और धैर्य रखने का संकल्प लिया। मैं उपचाप चंद्रमन को बचाने का उपाय सोच रहा था।

यात्री इस बात मजिस्ट्रेट में पास आया, कुछ प्रश्न किए, पता लिखा, और मुझे चले जान की अनुमति दी। मैं मजिस्ट्रेट से चंद्रसेन के पास प्राप्ति की असली हकीकत प्रयास करती। चमनलाल पास ही घूम रहे थे। उन्हें गुलाकर अपनी बात का समर्थन भी करा गया। मैं और चमनलाल के कथन पर निवास करके चंद्रसेन को डाक दिया। मैं और चमनलाल के कथन में पत्नी का चेहरा पीला पड़ गया था। चंद्रसेन का हाथ पकड़कर तो उसी भाग आया। असेम्बली भवन से बाहर आकर भी हम लोग गए नहीं। भवन का गेट बंद कर दिया गया। वहल लोग ने बहुत सी बातें पूछीं। परंतु मैं स्वयं ही भाग्य भारी जिज्ञासाका भाग्य भरा हुआ था। अतः मैं द्वार के सामने भीड़ के साथ आ गया था। लोग उस बात से बड़े निराश हो रहे थे कि वम में न कोई मर, न यह भवन ही टूट कर ढेर हुआ। योनी देर बाद एक लारी आ खड़ी हुई। लारी खुली थी। उस पर आठ पान्स्टेटुन मशिन चढ़ गए। उसके बाद दोना अभियुक्त गोरे गाजेटा के पहरे में दृश्यकथिया में जकड़ कर बंदी बना कर लाए गए। दोनों लारी पर चढ़े हो गए। साथ में आ रहे थे श्री चमनलाल—प्रेस रिपोटर। युवकों ने

एकबार, 'क्रांति चिन्मयी' के नाम लगाए, लगी चली। ठीक उसी समय 'प्रति' दैनिक के बायालय के सदर दवाजे पर एक पहचाना जग भागी भगतमयी का नाम आजा साधारण मजदूरों जैसे कपड़े पहने था, एक जग सा निपाफा चपरागी का था। लिफाफा सम्पादक के नाम था। सम्पादक ने जब उग खाना तो उगम एक फाटा और अग्रजी में टाइप किए कुछ पेज उनके द्वारा मंगवाए। सम्पादक के हाथ बापन आगे। उनके सकेत से धड़बटाती मशीनें बंद हो गई। प्रेम के दरवाजे बंद कर दिए गए—पहले सम्पोज होने लगे। यह चित्र और चरित्र प्रसिद्ध क्रांतिकारी सरदार भगतसिंह का था, जिसने आज अंग्रेजी सरकार को नम प्रकार सनामी दी थी। राता रात पत्र छाप कर प्रभात से पहले ही उस तेजसी युवक का चरित्र और चित्र पर पर पहलू गया। और भगतसिंह का नाम एक बार विश्व की राजनीति में गूँज उठा। 'गति' का सम्म्यवादी जवाहरलाल नेहरू, प्रजापति मोतीलाल, और 'प्रति' के गान्धीजी ने उग फल की निंदा की, पर तु अभियुक्तों ने अत्यंत नम्रतापूर्वक गाने रट कर पत्रिका के सम्मुख अपराध की स्वीकृति दी। और कुछ कहने से इंकार कर दिया। उन्होंने कहा—'हम जो कुछ कहना है, अदालत ही में कहेगे।'

बड़ी ही धूमधाम और गम वातावरण में एक टी-यूनन के सम्मुख यह नम चला। इसका नाम हुआ 'लाहौर पट्टे का केस।' यह कपड़ों में प्रसन्नली में प्रसन्न ही में सम्भवित नहीं था, साण्डस हत्या, बम बनाना राजद्रोह आदि कर्मगणों में जुम भी साथ थे। इकतीस व्यक्तियों को इस अपराध का सगी साथी बनाया गया था, पर पाँडे गए थे केवल चौबीस ही।

अदालत के सम्मुख भगतसिंह के नेत्रों में अभियुक्तों ने निम्नलिखित प्रार्थना दिया—'हम लोग सगीन गुजरिमाँ की हंगियत में यहा उपस्थित हैं हम गन्तव्य जानन को पवित्र समझते हैं। हम न पागन हैं, न पागित हत्यारे। हम अतिहास के प्रियार्थी हैं और अपने देश की अदालत को ठीक ठीक देख रहे हैं। हम सकारात्री और पायण्य से घृणा करते हैं। हमारा यह व्यग्रहागिक प्रदर्शन एक ऐसी समस्या के प्रिस्ट्र था जो प्रारम्भ ही से अयोग्य और शतान है। यह ताताशाही प्रीर गर जिम्मेदार गन्था दुनिया के सामने भारत को बेबस और प्रपमानित स्थिति में प्रनाए हुए हैं। यह सरकार जनता के प्रतिनिधियों की राष्ट्रीय मागों को सदा दुस्मानी रही, अगन्तली द्वारा स्वीकृत प्रस्तावों को दमनकारी और निरकुश ढंग से न बावाना द्विभारत ने साथ नम क एक शोशे से रद्द करती रही है। बावजूद इस तमाम शानों शौकत और तत्क भन्तों जो करोड़ों मेहनतकशों के बल पर कायम रखी जाती है, यह शतानी सरकार एक ढोल—की पोल है। यह सस्था सब कुछ हडप जाने वालों की गताघाट तारुत का स्मारक और असहाय मेहनतकशों की गुलामी का चिह्न है। इसने देश के शादरगीय पतिनि

द्विया के मिर पर जान रखकर प्रभु मित्र प्रकर कानून बनाए है, जिससे देश के करोड़ों भूय जन अपनी जानत से उपरान्त उपाया से वचित कर दिए गए है। हम अपनी आत्मा से बचाने के लिए हमने अग्रजों को सुख स्वप्नों से जगाने के लिए गमम्पनी पर प्रभु पर प्रभु है। जिसमें हम अपनी हृदय को चीरनेवाली वेदना को पकट कर और प्रभु से जानत गौर उपरवाहा, अयमनस्को को समय पर चताद। प्रभु से हमने जानतूभ कर आत्मममपण किया है और हम अपने कृत्यों का फल भागन से प्रगत है।

देग भर से हम मन्त्रदमे की धूम मच गई। समाचार पत्र ही नहीं, छोटे बड़े प्रत्येक की जुमान पर उन तरफ क्रांतिकारिया का नाम छा गया। पकड पकड, और तनावशियो का तो रचना की क्या? देश में मन्त्र आशाना व्याप्त हो गई।

एक दिन भारत के तन्त्रे ही पुनिम के लाल गाल न मरा घर पर लिया। दिल्ली और नाटोर न कोई राजन भर पुनिम के उच्च अतिथारी और इसमें तिगुने सशस्त्र सिपाही। उनके अतिथि। एक दत्त घुम्पार सिपाही। रात्र गनी कूचा के नाके, रास्ते महान के द्वार पुनिम न अपन मन्त्रे म कर लिए। पत्नी की प्रवराहट का ठिकाना न था। पर मुझे तो मुकुटाकर उन मेहमानों का स्वागत करना ही था। दल के नेता थे, लाहौर पुनिम के ठाठदार निती मुपनिमे डेट गानतानु। उनके साथ मेरी शतरजी चाल प्रारम्भ हुआ। प्रारम्भ में मैं समझ गया था कि पुलिस के मेहगरी जनो ने चाद के फागी आगे उन क्रांतिकारिया के सम्बन्ध की सम्भावना से ही यह धावा किया है। यद्यपि मुझे उक्त अफ क लिए प्रीमपी शतादी के राजनीतिक हुतात्माओं के सम्पूण चित्र और चरित्र की उन योगा से प्राप्त हुए थे। पर तु यह भी सत्य है कि मेरे इन युवकों के मन्त्र प्रभु तथा उन क्रांतिकारी मार्या के सम्बन्ध में बहुत कम जानता था। उन योगा द्वारा जा मन्त्र मुझे मिला था, उनके मने खण्ड खण्ड कर डाले थे। एक एक चरित्र का प्रभु तरफ उनके पीछे लेगकर का कोई एक कात्पनिक नाम दे जाना था। उनसे अतिथि के उक्त मन्त्र प्रभु नागज का एक पुजा भी मेने अपने घर में जेप नती आया था। गमम्पनी भरत से लीटन ही मेने प्रती तत्परता से सबसे पहिले यही मन्त्र लिया था। पर त मुझे यह नती मालूम था कि चाद के मालिक ने यह जो स्फण दिए थे उसी मन्त्रा से स्फणत पुनिम का दिया दिए थे। ठाठदार गानवहाटुर ने बड़े तपान से गाननीत शुभ की। बनी मिठाम से बोले—‘आपके आराम में खलल दिया, माफ हीगिए। मगर हम नाग भी अपने फज से लाचार है। हम आपको ज्यादा तर शीफ नती दगे। चन्द मेकिण। ही की जान है। महज कुछ बातें आपमें जाननी है।’

मैंने स्थिर जात स्वर में कहा—‘रहित?’

जानतानु न एक मन्त्रपरपकटर को पास आने का सकेत किया और उमने

‘चाद’ का फासी अक उनके सम्मुख रखा । उसने पाने उलटते हुए खानबहादुर बोले—
इन मजामीन के लेखको को तो आप जानते ही होंगे ?

कुछ को जानता हूँ—मैंने सक्षेप में कहा ।

उ होने एक एक लेख का शीषक देखना शुरू किया । मैं सन्निपत् उत्तर देता
गया । अत मे वह स्थल आया जहा म्याऊ का ठौर था—बोने, ये लेख किसके हे ?

भिन्न भिन्न लोगो के ।

लेखको के नाम यही है, जो लेख के नीचे छपे है ?

जी नहीं, वे सब फर्जी नाम है ।

खानबहादुर की आखे चमकने लगी । बोले—‘फर्जी ?’

जी हा ।

क्यो ?

ऐसा हम अक्सर करते हे, कुछ लेखक अपना नाम जाहिर करना नहीं चाहते,
तो हम फर्जी नाम लिख देते है ।

लेकिन यह तो गरकानूनी हे ।

हो सकता है, कानून तो मैं जानता नहीं ।

लेकिन यह कहने ही से आप कानूनी जिम्मेदारी से उरी नहीं हो सकते ।

शायद ।

खर, तो आप इन मजामीन के असली लेखको के नाम बताइए ।

वह तो मैं नहीं जानता ।

‘क्यो ? क्या उ होने अपने नाम लिखे नहीं थे ?

जी हाँ, लिखे थे । पर वे सब तो जला डाले गए ।

खानबहादुर की वाणी धीरे धीरे सरत हाती जाती थी । बोले— ‘जला भी
डाले गए ?

चूकि मैं निकम्मा कमाडा अपने घर में नहीं रग्वता ।

कुछ देर वे अपना होठ चबाते रहे । फिर बोले—‘आपको रेफर म के लिए
उ हे रखना जरूरी था ।

इस बात पर मैंने विचार नहीं किया ।

फिर भी आपको कुछ नाम याद होंगे ?

जी नहीं, मुझे कोई नाम याद नहीं ।

तो आप नाम नहीं बतायेगे ?

जो बात मैं जानता ही नहीं, वह कसे बताई जा सकती है ?

तो जनाब सुनिए । हमे सरकारी हिदायत है कि आप यदि पुलिस की मदद

नहीं करे, ता आपको भी कम म मुनजिम गदान किया जायगा ।

मुकर प्रगम टपा । आपन किम तरीके पर मुनजिम जुटाए हे, समझ गया ।

तकिन म आपी तरफ मे आप पर ग ती करना नहीं चाहते । हम जानते हे कि आप गरीफ आत्मी है ।

आपको बनी टपा है ।

ता जताऊँ फिर ?

नाम ता जताए नहा जा मरते ।

यानत्रहापुरा निरन्त्री नजर स मेरी ओर देवा, एक कुटिल मुस्कान उनके होठा पर आई, फिर जाने—दजरत, कुछ कुछ हम मात्रम भी हे ।

यह ता बहुत अच्छा है ।

तो जतान, आप हमारे साथ शतरज की चान मत बनिए, सीवी बात कीजिए ।

बात सीवी ती है प्राप्ती आप जसा समझ ।

तो धर दरिण, यह स्या है । उन्हाने उलाहावाद के 'चाद' कार्यालय के बही खाते म एन रकम पर हुए दस्तगत मुझे दियाए । फिर कहा—अब कहिए, आप क्या अब भी इ नार करग कि आप उम शरस को नहीं जानते ?

मेरे बदन से पगीता छूट गया, और मेरी आंखो मे अ बेरा आ गया । हे राम, क्या सहगनजी ने पुनिस ता यह प्रमाण दे दिया । मैने उ हे एक खत लिखा था जिस—मे ऐसे मात्र नागज नष्ट करने का मनेत था । वह खत भी यदि पुलिस के हाथ मे हे तो बस अत्र लदे ।

म चुपचाप गोचता रहा । पर तु सीत्र ही मने अपने को मयत कर लिया ।

अत्र आप क्या सोत्र रहे है ?

यही, कि ये दस्तगत किमक हो सकते है ।

क्या उम नाम के किंगो आत्मी को आप नहीं जानते ?

जी नहीं ।

अच्छी बात है, तो पहिल तलाशी ली जायगी, पीछे और बात ।

तलाशी शुरू हुई । प्रम की, दगागाने की, घर की और घर से सम्बन्धित सब कमरो की । दिनभर तलाशी होती रही । दोपहर हुआ, शाम हुई । रात हो गई । सडक पर घुडमयार भिवाही घूम रहे थे । ठठ के ठठ लोग जुडे थे । हमारा खाना पीना, चूल्हा जलाना उम दिन नहीं हुआ । तलाशी म एक पुर्जा भी मतलब का नहीं मिला । पर पुलिस मेरे बहुतसे जम्बो और प्रधर लेग उठाकर ने गई । उन दिनो मै दो हजार पृष्ठो का एक सांस्कृतिक और राजनतिन महान ग्रथ 'तब अब क्यो और फिर' लिख रहा था । उसका बहुत सा मटर 'बगभग' अश उन दिनो मेरी मेज पर फैला था । भद्रसेन से उस

पढवा पढवाकर खानबहादुर 'तब अब क्यों और फिर' की गगभग गमची पाण त्रिणि उठा कर ले गए। बहुत थोड़ा ग्रश ही मे उनसे बचा सका था। तलाशी ग के गार पुगिम मुझे कोतवाली ले चली। जहा बहुत सी गीदड भभभिया के प्राद रात के दग गजे मुझे घर आने की अनुमति दे दी गई। जान बची, लाखा पाण। पर तु शमा का भूत मन मे बठा रहा। पता नहीं यह खूनी जमात अब कब किस प्रहान से गला आ दरोच। खानबहादुर की वह धमकी और उसकी वे खूनी आख रट रट कर यात आ रही थी। मेरा हृदय धडक रहा था, पर हँस हँस कर पत्नी का भय दूर कर रहा था। पर तु एक दिन जब मैं अपने रोगियो मे उलभ रहा था, पुलिस के एक ट्राट से दाने फिर अपने शुभदशन दिए। ये लोग लाहोर से आए थे। इंसपेक्टर ने शालीनता से कहा—आप इत्मीनान से काम से फारिग हो ल, हमे जल्दी नहीं है। यह वाक्य सुनते ही मनमे चोर बैठ गया। लो आए न समुराल वाले बिदा कराने, अब तो डोला जायगा—फिर जायगा। भटपट काम निबटा कर, भीड भाड को बिदा करके, मेने इ सपेक्टर के निकट आकर कहा—फरमाइए।

इ सपेक्टर भी शालीनता मे कम न थे। शान से बोले—माफ कीजिए, आपको एक तकलीफ करनी होगी। एक जमानत का व दोस्त कर दीजिए।

कसी जमानत ?

सिफ ५००) रुपयो की। एक वार ट हे। लाहौर मोर्ट का, आपको लाहौर चलना होगा। उ होने कागज उलट पलट कर वार ट सामने ला रा।

लेकिन वार ट हे कसा साहब ?

जमानती हे, मजिस्ट्रेट के इजलास मे हाजिर होने के लिए ?

मे कुछ समझा, कुछ नहीं। दो पडोमियाको बुला जमानत कीखनापूरी रागदी।

इ सपेक्टर ने धीरे से कहा—आज ही रात की गाडी स, गमभन हे न आप ? गाडी साडे आठ पर डूटती हे।

लेकिन । मैं इ सपेक्टर का मतलब समझना चाहा।

जी, आज ही चलना पडेगा। आप शरीफ आदमी हे मुझे खागतोर पर टिडा यत हे कि आप को तकलीफ न दी जाए। आप वायटा कीलिए रि स्टेशन पर आप पहुँच जायेगे, या फिर अभी तशरीफ ले चलिए।

उसका स्वर काफी रूखा हो गया। जमानत का मैं मतलब ही न समझा। मेने कहा—तो आप मुझे गिरफ्तार करते हे ?

इसकी क्या जरूरत है, मेने जमानत ले ली हे, आप स्टेशन पर पहुँच जाँँ। टिकट मे खरीद लूगा।

भभट करना वेगूद था। मेने स्वीकार किया और उनके बिदा हान पर मैंने

दवागारा में रक्खि। घर प. जा। भार परमान द ही अत्रयिशा का नजारा नजरो म धूम गया। जा उ न गया। दवागारा में उठाकर फासी के तर्ते तक ओर वहा स उठा कर हा। पानी प गया गया। मां हा वास्तव में ऐसा काम किया भी न था। पर मुझे एसा भाग गया कि प्रय तांतर आना नहीं होगा। उसदिन मेने खूब स्नान किया, डक्टर भाजन किया और पत्ना में हंग रंगकर गप्प लडाई। चार बज गए। पत्नी ने कहा—क्या, कहीं दूसरी जगह जाना है ?

मं हमा, ता यह रगी मर हो जाना म गत करने लगी।

पत्नी ने कहा—कहा ?

नुम्ही प्रताओ साच्चर।

वाह, मं भना क्या प्रताऊ ?

कुछ दर में हंगता रहा। फिर कहा—एक प्रारात मे जाना है, अमृतसर।

किसकी तागा है ?

क्या न एक जयदशमी का प्रारात है। आकार करते नहीं बना।

वाहन पर। तो नहीं कहा—एक गया उनकी आगो से छा गई।

अभी गुजह ती तो वेरा उ ताने।

इस प्रार अमय और मन की चंचलता को नेत्रो द्वारा पत्नी ने पढले, इस लिए म उठना र म गया और हसना हुआ तयारी की धूम राम करने लगा।

पर तु मन का क्या तयारी कमी रे ? विस्तर, कपडे, टिफन, और यह सब अगनम अगनम ता ता जायगा ? तीन जान किस राह जाना है। सब डोड यही। उमी तरह तब जग मु मु का साथ पत्नी जाता जाना है।

उम समथ प सी मरा आग दग्नी, ता मत्य फूट जाना। पर तु मे टाल गया। उमदिन ता हमा। मं मग्पुण जोरागति गच करतो। मैं तयार हुआ।

पत्नी ने कहा—अमा म त ता तने ?

आफिस म ता ता म भी है।

ताम ता ता गारा म प्राण ?

ह, मता ता ता क गा म तागा।

आमाग ता ?

न आ मरगा, मता ताम है।

किता मियार ?

कहा मियार का। क्या मसा, ताते मगी मारी है।

वाह, एसा भी पती ताता है, तपने वह जल्दी म प्रग म सायुन, तैत, मेविग केस भरन गयी।

मेने तिनक कर कहा—यह सब मैं नहीं पादने जा । रात भर रात में, मैं व्याह और फिर रातभर रेल । सुपह खटसे यहा । यह मत्र कहा लादगा ? गभी याग दास्त ही है ।

वह कहती ही रही और मे चल दिया । भीगा जै द्रमुमार के पास आया । सारा कच्चा चिटठा कह सुनाया । फिर कहा—भई, परमा सुबह आण तो रात, परना और एक दिन प्रतीक्षा करगा, फिर सब हाल खानकर घर वह देना तथा जम ठीक समझो करना । मैने घर बारात में जाने का बहाना किया है ।

और मे चला । स्टेशन पर इ सपेक्टर मौजूद था । एक जक्लाम का टिकट देकर कहा—गाडी मे अभी वक्त है ।

परन्तु मैं थड क्लास मे सफर नहीं करूंगा ?

लेकिन हमे तो यही किराया दिया गया है आप अपने खर्च में तबत्र तबत्र कदम बढ़ाये । टिकट को सेके ड का कराया, और जाकर वय पर प्रदहनाम पत्र रहा । नेत्रो मे फासी और कालेपानी के काल्पनिक चित्र बनने बिगडने लगे ।

लाहौर स्टेशन पुलिस की पगडियो से लाल हो रहा था । गांधी जी हाते ही उसे पुलिस ने घेर लिया । तुरंत उहोने मुझे एक बंद गाडी में बठाया और भीत्र किन ले चले । सुबह की सुनहरी धूप किले के विस्तृत मदानमें फन रही थी । प्रित्कुन सनागा था । दूर तक आदमी न दीख रहा था । जैसे हमारी वह मनाम नार शून्य में प्रती जा रही थी । अतत एक छोटे से बरामदे में हम पहुँचे । खानप्रहादुर न ता उम अतिथि का सत्कार किया । तत्परता से ठीक ठीक इन्तजाम बरों का आइज दिया । और तत्र एक सिपाही मुझे पेच पेचिले रास्तो से ले चला । हम लोग एत्र बहुत विगत दाता में पहुँचे, जहा फश पर अनगिनत चबूतरे बने थे जैसे बहुत सी तत्र क्रमश प्रन। दो गई हो और उनके नीचे सिसकनी हुई जिंदा लाश दम तोड़ रही ह। एक चारपाई मरे सुपर्द कर, और सुराही पानी में भरी पास रखकर सिपाहीगम अत यात दो गण । रह गया मे अकेला, उस कत्रगाह मे—भय, शशा और भूत भ्रमिण्य तान तान पुनता हुआ । उस समय जैसे ज म ज म की कायरता उमउ धुमउ तर मर रक्त त्रो एक एक बूद में समा गई । घटे पर घटे जीते । तापहर हुआ और दन चला । न आदमी न आदमजात । भूख, प्यास, नीद सब गायत्र । ढलते हुए सूरज की पीनी लाया जहा तहा उस मनहूस सन दालान में पड रही थी । मैं अभी चारपाई पर तट जाता, कभी उठकर टहलने लगता, कभी बैठकर गहरी नि तना में लग जाता, चैन न था, जग दत्तने अङ्गारो पर बठा हू । मैं ऐसा अनुभव करने लगा था जैसे आज ही मुझे फासी पर चढना होगा । पर मन कह रहा था, जो होना है, भटपट हो जाय । यह प्रतीक्षा और सूनापन तो सहा नहीं जा रहा । चार बजे के बाद एक छोटा सा दल मेरी ओर आता

नजर पड़ा। मेरे गाने गाते थे। दो प्रतिम क सिपाही। उनके बीच हथकड़ी बेड़ी से जकड़ा हुआ एक ही था, सामने एक मुगलमान प्रतिम टम्पक्टर। इस बारात को देखते ही मन प्रकृत गया, जग शरीर मरकत जम गया हो। एक सिपाही कहीं से एक चारपाई खींच लाया। उभरती तो बीच में उठाकर पुलिम बाते पड़े। मेरे देखते ही पहचान गया, मित्रागमनी समराज बाहर हूँ जा सरकारी गवाह हो गया था, और जिनमें दल में सारा अच्छा चिठठा खान दिया था, सबका भण्डाफोड किया था। मैं घृणा और भय से उभर प्रतिम यक्ति को धूर धूर कर देखने लगा। न जाने कहा से साहस न रहा - उस कमीन से तो मरने जान ही भय।

पर तुमने मेरी ओर ब्राव उठाकर भी नहीं देया। मुह उसका वस्त्र से ढँका था। वह मिर मुखाण उठा था। मन दग्गा, उसकी आँसो से भर भर आँसुओं की वार बत निरती। वस्त्रपत्रर न पूछा—क्या उह जानते हो ?

मेरे सामने रात्रर मुना नगा। उसने मिर हिनाकर गीरे से कहा—नहीं।

उसका वह एक शब्द 'नहीं' जस मेरे प्राणों के मृत्यु का था। पर मे निश्चल बठा रहा। फिर प्रश्न हुआ—इनका नाम कभी मुना है ?

'नहीं।'

मशहूर साहित्यकार है, इनकी कार्द पुस्तक पढी है ?

'नहीं।' उमने अपा आग पाठ उल और दृढता से हाठ भीच लिए। मने मन म कहा—गाठ, शायर भा साहसों हात है। इसको एक 'हा' मेरे जीवन को समाप्त करदेने का काफा था। यह निस्स दत्त मुझे जानता है। मेरे सामने एम०ए० का विद्यार्थी रहा है। उस परीति का दश है अनेक तरंगा का फासी तक तो जाने की कायवाही की हूँ, पर मेरे निरप्राज मुक्तिहृत जन कर आया है। पुलिम वाना ने और दो चार प्रश्न किए, और फिर उह मनग्ग बारात जिधर से आई थी, उधर ही की ओर चली गई। मने अपाहर साम लो। साहस नीट आया, दुनिया दीखने लगी। मेने उधर उधर नजर दा।। साहस पाम था। मे टां मता पगन्थिया पार कर उमी आफिस मे पहुँचा। वहा साहस था। मे मोरा चिक उठाकर सानबहादुर के सामने जा खडा हुआ। साहस साहस मि लाया, दुर्गा पर लठन का संकेत किया। मेने तपाक से कहा—जात्र, मे मुहद स विना साय धिप वैठा हूँ। आपका इरादा क्या है ?

मुझे बहुत अपमान है। उस दो काम थे। आपकी शिंनारत, और आपसे मुलजिमा की शिंनारत। एक काम गत्म हुआ, दूसरा अब कल होगा।

तकनि, जनात, मे टहर नहीं सकता।

मजदूरी है, तन्नीफ करनी ही होगी। आज मजिस्ट्रेट बीमार पड गये है, कल तक रक्ना पडंगा। इसके बाद उहोन पाम खडे एक सब इन्स्पेक्टर से कहा—

एक फस्ट क्लास तागा ले लो और शहर के बेहतरीन होटल में आराम की पर्याप्त तैयारी में आपको ठहरा दो तथा आपकी हस्वजूरत खान पीन ता गत्र तजाम कर दो। खचा सरकारी होगा।

भाई बाहू यह तो तस्वीर का रुख ही पलट गया। मैं उसपरान्त के साथ उस फस्ट क्लास तागे में बैठकर चला। उमन पूरा—आपका सामान ?

मुझे क्या मालूम था कि आपमेरी यह खातिरदारी करगे, सामान में नाया नहीं। कुछ परवाह नहीं। होटल में सब इ तजाम हो जायगा। उमन रात के स्थानीय स्थानों को बताना शुरू किया, यह शाही मस्जिद, यह रणजीतगढ़ की उत्तरी, यह बुज। हम लोग अनारकली की चहल पहल में चने जा रहे थे। सुबह का वह मनहस दिन मजेदार सव्या में बदल गया था। फासी के तर्ते और जेन की स्मृतिया गायन हो चुकी थी। सब इ स्पेकर न एक दो होटल टिप्पण। पर वे मन नापम द तर गिण। मेने कहा—जनाब, फस्ट क्लास हाटल का हुस्म हुआ है।

लेकिन यह सन् १९२८ का लाहौर था। मरु स्पेक्टर न कहा—गाहन लाहौर में तो ऐसे ही होटल है। जहा मर्जी हो ठहर सकते है।

अ तत एक होटल का सबसे उडा कमरा मन पम कर लिया। यानदार न हाटल के मनेजर को कह दिया—साहब जो चोज माग दा, त्रिन आफिग म चुकता होगा। वे चले गए और मेने चाय, टास्ट, मक्खन, दो दजन आम, एक और जान क्या क्या अगलम शगलम का आडर दे डाला। चाय पीकर त्रैंग ही था कि उसपरान्त न आकर कहा—तबियत हो तो मर कर आण। लोगों से भिग गिला आण, तागा हा जिर है। मेने क्षणभर सोचा। दिनभर की थकान अब अच्छी हो गई था। मागम अच्छा था। बालकनी में आकर देखा—नाके नाके पर पुनिस का माग त्रानरत है। दूर तक लाल पगडिया दीख रही है। मैं मन ही मन मुस्कराया। मननत्र म गमम चुता था। कमरे में आकर न कहा—जनाब, मे सोऊगा। फाई माग तास्त मरा यहा ही जिंगम मिलने जाऊ। आप भी तशरीफ ले जाय। यानदार चला गए।

दुमरे दिन म दस बजे से पढ़ने ही मा पीकर तयार हो गया। उसपरान्त ठीक दस बजे आया। हम लोग फिर उमी मनहस किन म पढ़े। उमी त्रिज्ञान त्रगामद मे एक मजिस्ट्रेट की मेज लगी थी। सामन कतार में फा. तीन मा आर.मो फरगा पोशाक में। हथकडी बडी किसो का नहीं थी। उम ततार म मुतरा मुतरा कर अपन मायी से बात करते मेने अपन प्रिय उम युवक को पहचान लिया।

गिनारत प्रारम्भ हुई। और भी कुछ तोग आय था। मरी त्रगो आई, ता मुस से पूछा गया—क्या आप इन लागो म से किसी आदमी का पहचानत है ?

मेने एक बार बारी बारी से सब पर सरसरी नजर डाली, फिर तीसरे त्रगो

लगाया। इन वीर युवकों की मुक्ति की अरदास की। बाजार में तूमा पूरी और हनुम से आत्म श्राद्ध किया। अमृतसर की बठिया, पापन और कुड फन रगीर और स्तेन रवाना हुआ। फ्रिटयर मेल आ रहा था। और जब मैं गान्धी की आरामन्द गद्दी पर आख बंद किये पडगया, तो सब कुछ स्वप्नवत् दीख पडा। अत्र त्रिचाराम पामी गार कालापानी के नजारे नहीं थे। ये वे ठहाके, जो य मौत में गाने गान मजन् नगात हुए फासीके निकट जा रहे थे। पापड और बडिया पापर पत्नी बहुत खुश हुए। पारात की एकाग्र बात पूछी। कुछ दिन बाद उनपर असल भेद भी खुन गया। सुनकर रई तिन तक रोना बोना मचाया। मुझसे कहा—तुम विश्वासघाती हो, तुम भूठे हो। मैं गान लाल और फूली हुई आख, अब भी स्मरण कर लेता हू। तब उठ दसकर जमे हसा था, अब भी हँसी आ जाती है, पर आखे अब गीली हो जाती है। ये बिछुटे हुए साथी भी कसा घाव कर जाते हैं।

विजनौर प्रात के एक सदृशस्थ मेरे बड़े सज्जन थे। उनकी मातृहीना भोजो उनके घर ही में पली थी। उ होने उसका वाग्दान एक योग्य घराने में योग्यतर में कर दिया। लडकी का पिता प्रसिद्ध बदमाश था। उसने सुना और लडकी का जन्मदस्ती उसके मामा से छीनकर ले गया और अय स्थान पर रूप लकर सम्बन्ध बनना निश्चय कर दिया। लडकी को उसका पिता लेगया है, यह सूचना मामाके द्वारा तर पत्रों मिल चुकी थी, परन्तु और किसी बात का सदेह न था। एनाएक उमर या के हाथ का लिखा एक पत्र मेरे नाम आया। उसमें लिखा था—प्राप मेरे प्रम और मेरे पतिकी रक्षा कर सकते हैं। विपत्ति में लज्जा त्यागकर लिखती हूँ कि मेरे पिता ने अयत्र सम्बन्ध करना विचारा है। मैंने जो शिक्षा पाई है, उससे मैं जाना हूँ कि मेरा जो सम्पन्न प्रप्रम हो गया वह अदृष्ट है। अगर आपने रक्षान की तो अमुक तारीख को मरी नई सगार्ड चढने की खबर है, उसी दिन मैं प्राण त्याग दगी।

उस कम पत्नी त्रिखी बालिका के टेढ़े भेटे अथर और उतने गार्हपण्य त्रिचार आज भी चित्तमें नहीं उतरते हैं। दुघटना की सभाजना मुझे नहीं थी। अगले दिन ही भगतसिंह केसमें पुलिम मुझे लाहौर ले गई। लाहौर से लौटते ही सगार्ड चढने के दिन मैं उसके शहर पहुच कर उसके पिता में मिलने पहुँचा। परन्तु वह प्रात दस गजे ही—कुए में कूद पडी थी और उसका पिता पुलिम की हिरामत में बंद था।

सिकन्द्राबाद में मेरे एक अत्यन्त निकट के मित्र की भतीजी की आयु चौदह वर्ष की थी। उसे उसके दुष्ट पिता ने नीलाम पर चढा दिया था। नित्य बढा चढा कर बोलिया बोली जा रही थी और वह पिता पशु सबसे अग्रिक बोली बालने वाले को पुत्री बेच देने को उत्सुक था। दैवयोग से मैं उही दिनों सपत्नीक सिकन्द्राबाद गया। मालूम हुआ एक पचपन साल का वर सबसे अधिक मूल्य दे रहा है और इसलिए वह

स्त्रीकृत हो गया *। उम्र भर ही रीति मोहूद थी। तीन लड़किया भी थी। पुत्र की कामनामे एक और बच्चा जानना मंगान सरीर रखा। सुयाग पाकर उस बालिका ने मेरी स्त्री ही चरगा ला। वह उम्र साथ मर पास आइ और मेरे पर पकडकर लोट गई। उफ, म उम उम उमग प्रियाप का प्रगन करन की शक्ति नहीं रखता। मुझे मालूम हुआ कि मर आगमन की प्रतीक्षा म उमने दो दिन से अन्न-जल नहीं किया है। और म निश्चित उमकी रक्षा पर मरगा मरका उमे पूग विश्वास था। मे बडी कठिनाई मे पना और अन्न मने उमे वचन दिया कि उमकी रक्षा हो जाएगी। उसकी पसन्द की जगह ही उमका प्रियाह हो जायगा। पर तु वचन देकर मे बडी विपत्ति मे फसा। सब प्रकार के नम गम प्रनाभन और मय व्यथ हुए। निरुपाय मुझे उम पापी को उस का मागा हुआ मृत्यु देना पना और वडकी का दिलनी लाकर उसकी रुचि के अनुसार विवाह कर दिया गया।

५७ वर्षीय और ६ वर्षा का राग सा प्रारग पढा लिखा एक राक्षस मनुष्य एक दिन मेरे रागने आ राग हुआ। वह रागम दूर से रिश्ते म मेरे पिता का कोई सम्बन्धी था। अपनी तगदस्ती और राज का हात बता कर वह कहने लगा कि मेरी कुछ मदद कर दीजण, नहीं तो मैं नरकी पर राग लूगा। इस पर मेरी आखोमे खून उतर आया और मैंने उम नीच से राग-मरग मागना और बात हे, और लडकी को वेचने की वमकी देना और रात हे। जो आज नरकी प्रचता हे वह कल औरत को भी वेचेगा। इससे उत्तम यती हे कि मुभम जहर माग। म गुरी से दू गा। तेर जसे अवम कीडे—जो अपने ही प्रधा का राग हे - जिानी जन्दी मगर से दूर हो अच्छा हे।

मने कहा 'म जा पहिने मर द पुना हे, उमसे तुमने गपनी क्या हालत सुसारी हे? जो म गुग उगा मर नही, म मे जिमे मय नहीं, वह कमे सुखी होगा?' मुभसा जा वन प उम रिया। वह चता गया। पर उमने अपनी सात वर्ष की लडकी को तीमी रूपया म वचन का गौदा कर लिया। लडका अनाथ विधवा का पुत्र था। प्रिया व अपा पना और, ता ल ता प्रचर उसी रूपया तयार किया था। पर जय बारात मर पर आई, ता उम त तिलजता से कहा कि नौसो से एक पाई भी कम न नगा। मर न मभागे अताय रात के पास ये और न बारातियो के। बहुत खुशामद को गई, पर पगुपर जरा भी अग नही हुआ। उमने व तो बारात को ठहरनेको जगह दी और न भाजा। प्रिय बारातिया न प्रगल दिन अपने पास के बटन मगूठी और फानू सामान न बचकर रूपयोका प्रव र किया। बारात वाले दिन मे भी एक आश्रयक काय म सपत्नो क मी रा म गया था। घर मे पहुँचने ही स्त्रियो के द्वारा पत्नी को म नीच म मी सूचना मिली। उन्टोने मुभमे कहा। मेने विश्राम नहीं किया—तुर त थाने गया और थानदार से सारी बात कहकर दस अ याय को रोकने को

कहा। थानेदार सज्जन पुरुष थे। मेरी बात सुनते ही चार पांच मिपारियों का मात्र लेकर मेरे साथ उस दुष्ट के घर पहुँचे। बाराती बहना जगाथ और स्पाण न की तथा रिया हो रही थी। वह दुष्ट मान किए अपने द्वार पर खना प्रागतिया और तन्त्र को कुछ अपशब्द कह रहा था।

मुझे देखते ही वह भय से पीला पड़ गया और परम अन्तर घुगन गया। थानेदार को मैंने संकेत किया। उ होने लपककर उसकी काना पकटनी। पिताजी वहा उपस्थित थे और वे लडकी को बहासे ले जाने की जुगत म थे। उहाने भी मुझे बहा अनायास आया देख आश्चय किया, पर तुर न ही सत्र जात समझ गए। उ हाने अपने पर मे मे जूता निकालकर उस नीच के मिर पर मारने शुरू किए और बारातियों से बहा—बारी बारी से सत्र भाई उस पर नोमो स्पाण उमी तरह बरगा ट।

वह मेरे परो पर लोट गया। मे जेर की तरह गुग रहा था। मा उगपर घृणा की नजर डालकर थानेदार से कहा—‘आप इन सब प्रागतिया वे और उगने भी बयान कलमबद कीजिए।’ सब को सच सच कहना पडा और उस रात्रय की पुनिस थाने मे ले जाकर बद कर दिया गया।

१९२९ के मई मास मे मुझे एक ऐसी स्त्री की अत्येष्टी म शरीर हान का अवसर मिला जिसे मैं कभी नहीं भूल सकता। मरने वाली की आयु ७५ वर्ष म भी अधिक थी। तीन मास से वह वृद्धा बीमार थी। एक बार वह मर गई थी। रात भर मुर्दा पडी रही। पर तु प्रात काल जब कफन ढाठी आ गया तब स्नान त्रगान के समय श्वास चलने लगा। उसके बाद नो दिन तक जीवित रही। यह नो दिन उमने कैसे काटे, यह मेने बहुत अच्छी तरह देखा। मैं प्राय नित्य उमे देखने जाता था। उम दिन थोडी चेष्टा से उसे चत य हुआ। मैंने औपत्र पीन को कटा—उमने तथ जोन्कर जवाब दिया—मेरा मम मत बिगाडो, मे रामजी के यहा जा रही ह। एक दा गिन म यह चोला डूट जायगा। मेने सबको दुग दिया, अब सब दुग दर हगे। यह अभागिनी नारी अपने विवाह के ढाई तप त्रद त्रित्रा हई थो, तत्र उसकी आयु पत्रह वर्ष की थी। विधवा होते समय चार मास का गभ था, वह गभ पूरा उतरा। कया हई। अन्तिम समय उसे अपनी पुत्री की बटुत स्मृति थी। लडकी तुनाई गड। उसकी आयु भी साठ के लगभग थी। उसे पाकर वृद्धा ने फिर प्राग त्याग। त्रित्रा हान क त्रद वह अपने भाई के घर रही। उसके बाद भाई क पुत्र के। उमके भी मरन पर भाई क छोटे पुत्र के। सब जगह चौका वासन करना, घर भाउना, बच्चा के मलमूत्र उठाना प्रत्येक की थाली मे बचे हुए भूँडे टुरुडे खाना या बामी सजा गला पत्र खाना। सत्रों गाली और धमकी सहना। बच्चों से खूब तग की जाना, फिर भी मधुर पत्रन, अत्रपट प्रेम और शांति तथा सहनशीलता बनाए रखना उसका जीवन था।

उसे मागव्यय देकर दिल्ली भेज दिया जाए । पूरे एक मास बाद च प्रेस में आती एक क्षमाप्रार्थना पत्र मेरी पत्नी के नाम आया । उसे पाकर मेने बम्पर्ट मित्र को तार दिया कि उसे वहा से ढूढकर किराया देकर समझा बुझाकर वापिस भेज दो । उमने एक सप्ताह बाद वह दिल्ली आकर अपनी भाभी के परो में पड गया । मेरे गार पिताजी के सामने तो वह ३ ४ दिन तक भी नहीं आ सका । अतः उसने कालिज में तो जाना स्त्री कार नहीं किया । अतः प्रेस और प्रकाशन का काय सीखने के लिए मेने उसे स्टेट्स मैन में कलकत्ता भेज दिया । जहा वह दो वर्ष रहा । माता की मृत्यु के उपरान्त भद्र की वह दिल्ली हमारेही पास आकर रहने लगी थी । पर तु उसकी मेरी स्नेहशील हृदया पत्नी में नहीं पटी । कुछ दिन तक तो दोनों मित्रया स्वयं निपटती रही परन्तु भद्र की पत्नी घोर कुसस्कारी में पनी थी । घमण्ड ईर्ष्या और चुगली ये तीनों बात अत्रिक् सित स्त्रियो में जो होती है, उसमें खूब थी । भद्रमेन का मन धीरे धीरे मेरी पत्नी की ओर से फिर गया और वह उसकी अवज्ञा करने लगा । इतना ही नहीं—मेरी भी अवज्ञा करने लगा । प्रेस से मुझे हजारों रुपयो की हानि हा ही चुकी थी । माता की मृत्यु से घर की पारिवारिक एकता छिन्नभिन्न हो रही थी । मेरे विदकुल स्तनत्र उच्च मिचार थे, मेरा जीवन घर भर से पृथक् था । इसलिए मैं भद्र को अपने व्यवसाय का एक अंश देकर प्रथक कर देने की सोच रहा था । प्रेस और प्रकाशन खत्म हो चुका था । मेने फार्मोसी विभाग उसे देने की व्यवस्था की । अब तक दो भाइयो और दोना बहिनो के विवाह में कर चुका था , च द्रमेन के विवाह के लिए भी लोग पिताजी के पाम आ रहे थे । पिताजी की इच्छा थी कि इसके विवाह से भी निवट लिया जाए । मेने भी यह उचित समझा कि तीनों भाइयो और दोनो बहिनोका विवाह करके मैं अपने उत्तरगायित्व को पूर्ण कर दूंगा । पर तु मेरे दिल की भावनाएं बदल रही थी । मेरी द्वितीय पत्नी में प्रेम सौज्य और सेवा भाव बहुत था, तुच्छता नहीं थी । भद्र का यह मदा प्यार करती रही पर भद्र की स्त्री के मिचार उसी तरफ में शुद्ध न रहे । उमने मदा उनका तिरस्कार किया । भद्र भी उनके विरुद्ध रहा । वह समझने लगा था कि उनके मिग्याने से मैं भी उसे गर समझता हूँ । ये दोनो ही पिता जी में मेरी स्त्री में मिपरीत मितर कहते रहे । फल यह हुआ कि माता जी के मरने ही भद्र मेरी पारिवारिक मयाग भङ्ग करके पृथक् रहने लगा । कुछ दिन लगभग आठ मास विना बोले चाते रहा । मेरी स्त्री ने बडी चेष्टा की, उसकी मंत्री की खुशामद भी की पर कुछ न हुआ । यह तुच्छ मिचारा वाली कुसस्कारी और भूख स्त्रो निकली । उसके पितृपश के लाग भी स्वार्थी और घमण्डी थे । मे इसमें स तुष्ट था कि ये दोनो स्त्री पुरुष मुगी है यही काफी था । पिछने दिनों मेरे सभी कामो की आलोचना करना भद्र का काम हो गया था । मेने मदा उसे प्यार किया । अपना पराया तनिक न समझा । अलबत्त अपनी स्त्री पर मैंने विशेष

ध्यान दिया था। मेरी दृष्टि थी कि उस कुत्ते को जाना चाहिए, पर सिया एक तो सोने की चीजों के कुत्ता बनकर मरना।

भद्र के जो विचार मेरे विपरीत हुए थे, उससे मुझे बड़ी मार्मिक पीडा हुई। ने रोगी पडा और मृत्यु की उच्छ्वा करने लगा। पर अचछा हो गया। मेरा चित्त मदा टुली रत्ना था। मैं समझता था कि भद्र मेरी प्रतिष्ठा नहीं करता। मन चिकित्सातय म जाना भी छोड दिया। चिकित्सातय की दशा बिगड गई। खच ग्रिक और ग्रामद कम।

उसकी एक कथा हुई। मेने दृष्टि की थी कि उसका प्रसव मेरे घर हा, पर उसकी स्त्री ने अस्त्रीवार कर दिया। फिर मैने क याका नाम रखा—शरद् कुमारी। पिता जी ने कहा—नहीं, शक्ति देवी। उसकी स्त्री ने हठपूर्वक मेरा नाम नापन्द किया। इस अवज्ञा से म तडा दुखी हुआ। पर तु फिर भी वह मेरी स्त्री की अपेक्षा मेरा आदर करती थी। विश्वास म तच्ची को खिलौने देती थी। अन्त मे बच्ची बीमार पडी। इसे प्रथम म बलकत गया था—मारवाडी अक वा मुकदमा था। भद्र और उसकी स्त्री को घर पर छोड गया था। उस घमण्डी स्त्री ने मेरी स्त्री से लडाई कर डाली। यह भी कह दिया कि तुम मेरी लकी से जलती हो। वह खूब रोई थी।

यह सुनकर मुझे बडा दु ख हुआ और मैने उस प्यारी तच्ची का मोह मन मे छिपा रखा। तहत कम उसे खिलाना था पर इसके बाद ही वह रोगिणी होने लगी। मुझे स्मरण हे एक तार मेने मन मे कहा था—रुसी सोने की पुतली के समान यह बच्ची है। सम्भव हे नजर लग गई हे। उसे टीका दिया गया, तभी से गडबडी हुई। चन्द्रमेन के व्याह मे मेने देखा था। रग पीला पड गया था। टुली भी हो गई थी, ग्राखो के नीचे सजन ग्रा गई थी। मेने कहा—यह बहुत बीमार हे इसका जिगर खराब हो गया हे। यह बात उसकी स्त्री को पुरी लगी। उसने मुझे सुनाकर कहा—ये तो ऐसे ही कहा करते हे। म चुप हो गया, पर उपचार किया जाने लगा। दिल्ली मे भी दवा चलती रही। अ त म उसे बल निमोनिया और सरभाम हो गया था। वह शाति से मरी गाद म मरी। म उन दिनों शाहदरे म रहता था। मै उसे दो तीन घण्टे गोद मे लिए बठा रहा—जय तक मेरी स्त्री शाहदरे से न आ गई। मेरी दृष्टि थी कि इस मरी कथा पर अत्र मरा ही अधिकार है, उसकी माँ का नहीं। मैं अपनी स्त्री से कहूँ—लो निश्चक हो मर गोद मे ले लो। पर न कह सता। तह मरने पर भी मुदर थी, बहन सुत्तर। हमने उसका दाह किया। भद्र का दिल उस घटना से टूट गया। वह बहुत नाजुक तत्रियत वा था। मैने दगकी कभी परवाह न की थी। मैने बचपन से उसे पाला, पर सदा सरती के साथ रखा। मीठा कभी नहीं बोला। पर यह चाहता था कि जब मे बकू भकू वह उधर मह करके हँस दे, जैसे स्वगवासिनी के सामने करता था। पर अत्र वह बुरा मानने लगा था। मै अकष्ट और अपने मानसिक कष्टों से, जिनके कारण

गम्भीर है चिडचिडा ही रहता था ।

मने उसे असहाय अस्थि मे चिकित्सालय की एक अलग राच पोतने के लिए अबोहर भेजा । इसलिए कि वह पृथक रहे तां दिल्ली के चिकित्सालय की आमतनी तो मुझे मिले । पर आमदनी कुछ थी ही नहीं । वह अबोहर दो मार रहा । कुछ ताभ नहीं हुआ, पर वह खुश और त दुस्त था । मुझे सुरा था । फिर मन साचा कि फार्मोसी विभाग उठाकर सिन्दबाबाद ले जाया जाय । भद्र नहीं रहे । हम भी उसे सम्भालते रहेगे । भद्र सिकन्द्राबाद आया, दो दिन रहा और चला गया । वह मरान नेकर उमने मुझे पत्र लिखा । पत्र पाकर मे गया । मकान मुझे पसन्द नहीं आया । यह मामने से आ रहा था, मुझे वह सु दर लगा । मने मन मे वहा-भद्र की चाल मे चितनी गम्भीरता है । वह खडा हुआ और चलता हुआ कमा सजता है । मे मन मे हँसा । पर जब पास आकर उसने नमस्ते की तो मैं भट विगड बठा । खूब नाराज हुआ । क्या चिना पूछे ऐसा मकान लिया ? क्यों सलाह नहीं ली ? वह चुपचाप बच्चे की तरह मुनकर चुप बठा रहा । उसके पास एकभी पैसा नहीं था । पैसे की यह उडा प्रतीत्याम था । आशा थी कि मे कुछ दे जाऊँगा, पर मेरे पास भी नहीं थे । मैं बारह रुपए मनीआडर द्वारा पहिले भेज चुका था । मैंने कहा—रुपये कल मिल जाएँगे । वह अग्रीर हो गया, पर चुप रहा ।

म दिल्ली लौट आया । भद्र को और रुपये भेजने की सोच रहा था । पच्चीस तीस रुपये आ भी गए थे, पर मोह मे पडा हुआ था । उमका रगत आया, मने उसे पडा, फाड दिया । उसमे लिखा था—मुझे ज्वर है, भारी सिर दद है । एक पसा भी नहीं है, रुपये भेजो । मने दस रुपये भेजे । एक काड भी भेजा । काड म रम गच की हिदायत थी । दूसरे दिन सुबह त्रीमारी बन् जाने का तार मिला । म चिन्तित ता था, तिलमिला उठा । उस दिन दिल्ली कोट म एक बेस था, पर म चना गया । अपना मित्र डा० भीमसेन को भी मने अपने साथ ले लिया । जाकर दगा भद्र भयानक ज्वर मे ग्रस्त था, आखे लाल थी । उसने क्रोश से देखा, फिर हाथ पकड कर रो उठा । मने तसल्ली दी हाल सुना । डाक्टर भीमसेन से सलाह ली । हमने गमभा टाडफास्ट टे । म समझता हूँ, हमने भयानक भूलकी । उस समय यदि उचित प्रव र होना तो भद्र बच जाता । मने दवा तो प्राय उस दिन और रात भर कुछ दी ही नहीं । ठड पानी का कपडा सिर मे लपेट दिया, दूध, पल खाने को लिए । असल मे उम सत्रिपात था । प्रायु प्रबल वेग से बढ रही थी । मुझे मिर पर मात्रा बखाना, तीक्ष्ण नस्य, अजन देना, हवा से बचाना, खूब घौटाया जल देना और त्रिदोष नाशक क्याथ देना था । यह सब कुछ बाद मे दिल्ली आकर समझा । उसने बात की । वह प्राय होशमे था । उसे अपना रोग और हमारा भी ज्ञान था । पर मने कुछ नहीं किया, न रोग पर ध्यान दिया, न कुछ चेष्टा की । तमाम दिन डाक्टर भीमसेन की खातिर मे बीता, रात सोने मे । प्रात काल

देखा—मज्ञा दूर थी। पर म तब भी रोग की असलियत को नहीं समझा। कहा—दिल्ली ले चला। बस छूटने का समय था। मने यह विचार किया कि दिल्ली ठीक उपचार हो सकेगा, यहाँ न जाने कब तक आराम हो। दिल्ली में अथ चिकित्सको की भी सहायता ली जा सकेगी। मैने बस म ले जाने का निश्चय किया। पर म अब समझता हूँ यह भारी भूल हुई। प्राणु उमके शरीर म हजार बचाव करन पर भी भर गई। दिल्ली आकर न हजी वद्य का पुलाया। भद्र ने दिल्ली आते ही खून नाराजी प्रकट की। कहा—मुझे गंगा ले चलो, यहाँ म मर जाऊगा। पर फिर हँसने लगा। अपनी भाभी से मशीन चलाने को मागी। कागज पेसिल मागा। खत लिखने लगा। म व्याकुल था। पर न ह वद्य की तजरीज पर भरोसा था। मिन्द्राबाद से चलती बार जब हम उमे हाथो पर ला रहे थे, वह हसकर सबसे 'नमस्ते' वर रहा था और कह रहा था—'अभी हम मर नहीं है।'

चार बज न ह वैद्य आण। देखा, नस्य दिया। १० १२ ठीक आड। कुठ दवा पी। रात बीती। मर ग्याल म उ होने भी रोग क वेग को बहुत प्रल्प समझा और चिकित्सा म ढोल की। पहिला दिन और रात गीती, वह उठ उठकर बैठता था। हाथपर चलाता था। उम ने पैर अकड गण थे। दूसरा दिन बीता, रात भी बीती। उस दिन सलाई में पेशाब उताग। बहुत लाल। रात भर बकता, उठता, चितलाता रहा। दवा वही रही, दूध भी जारी रहा, तीसरे दिन नन्हे वद्य फिर आण। उन्होंने हिरण्यगभरस दिया। उसस कुछ वायु का शमन हुआ। अगले दिन दिवाली थी। खमीरा दिया उसदिन दूध भी लिया। जत्र अभी १०० और १०१ के बीच रहता था। दस बजते बजते ज्वर १०३ हो गया। श्याम भी त्र गया। प्रकना भी बढ गया। मन बेचन था। मैने चद्र सेन का पोटा, स्त्री मे तडा, दिवाली पूजा भी नहीं की। स्त्री मेरे भाव को नहीं समझी, और रुठ गई। अत्यंत आवश्यक प्रायश्च प्राजार जाना पडा। लौटने पर देखा—भद्रकी हालत ठीक नहीं है। फिर तां वह सारीरात घबराहट बरपाद और न भूलने योग्य कप्र मे ही व्यतीत हुई। उम ग्याट पर रम्मी से बाँध दिया था, पर वह एक तरंग को भी शांत न था। गाप फ फन की भाति उमकी गदन अधर रहती थी। वह अहृष्ट जगत मे कुछ देगता था। प्रथम त्रप्राता, फिर हसता। यही उसका उन्माद था।

पत्नी वेदनाभरी दृष्टि मे मुझसे रहती भयना को किसी तरह बचा गीजिण। वह रेलगाडी का नाम लेकर चितलाता, मुझ को पुकारता। अपना नाम लेकर पुकारता, बीच बीच मे चिन्ता गानय म जाने और उठने की चेष्टा की। पेशाब त्रेखवरी मे किया। अभी आँखे खुली थी। मगर उस भयानक कष्ट, वेदना, श्रम, और जीवन। ईश्वर हमे क्षमा न फट गया। ओफ, कसा भयानक कष्ट, वेदना, श्रम, और जीवन। ईश्वर हमे क्षमा करे। मेरा दिन क्षण क्षण पर दूट रहा था, पर और सभी आशावित थे। प्रात काल

मााहरलाल वद्यराज भी आण । देगा, ता गगन गण । नमेनी के गगा ती वत्र । नि राज जी को भी बुलाया । उ होन दया भजी । ग य टास्टग न भो न गट्ट मिया, पर कुछ नही हुआ । दिन बीत गया । वह गिथिन और दूर हाता गया । रात जान रात राय पर ठडे होते गए । अब खाट से बघे बान खाल दिए गए, उमका सगा दू थरा रहा था । कभी कभी वह बडबडाता भी था । आगे नग्न हो गई । पमीना आ रहा था । नम्य भी दिया, पर शोक ये सब बहुत प्रथम देनी चाहिए थी । बीच बीच में साने के समान सास चलती, जिससे उसके सोने का भ्रम होता था । नज गीरे वीर जाने लगी, दिल भी बढ होने लगा । टम्प्रेचर १०४ हो गया और बढ़ता ही रहा । शरीर ठण्डा किन्तु टेम्प्रेचर १०६, १०७ तक था । शरीर गम करने की सभी चेष्टा व्यर्थ गई । फिर भी उद्योग जारी थे । चार बजते बजते निराशा हो गई । पाच बजे उभर खाम चलने लगे । जल मटाने में कष्ट होता था, पाच बजे नीचे ले लिया गया और नवम्बर १९३० में दिग्गामी बाद मैया दूज को प्रातः काल के लगभग उमने प्राण त्यागे ।

उसकी अभागिनी बहू के कष्ट क्या कहूँ । मेरी स्त्री भी गहन दुग्नी थी, पर चंद्र सेन की स्त्री उतना नहीं अनुभव करती थी । जबतक उसे जगाया नहीं गया, वह नहीं जागी । छोटी बहिन सौभाग्यवती आई—द्वार पर गिर पड़ी । उसे बहुत शोक था । पिताजी दीवार से सिर टकराने लगे । चंद्रमेन स्तब्ध था । मैं जमा प्राय रहता आया हूँ, रहा । लोग आए । डा० युद्धवीर और कृष्ण भी आए । मैंने स्नान कराया गार आचल से मुह पोछा । पसा हाथ में नहीं था । मेने पत्नी की चूडियाँ गिरनी रखकर सौ रूप सस्कार के लिए मगाए । सस्कार पचकुईयो पर हुआ । सिर्फ द्रागद से रोममन नहीं आ पहुँचे थे । भद्रकी स्त्री बेहोश बाप रही थी, सपेद हो गई थी । पर शोक दे खाय और तुच्छ विचार उसके हृदय में थे । उसने उसी समय भद्र की कानाई में पधी गान की घटी निकाल कर अपने बक्स में रख ली । ईश्वर उसे क्षमा करे । तीसरे दिन पात जान में चुपचाप उठकर श्मशान घाट पहुँचा । भस्म की ढेरी बनाई, अपनी चादर में गाड़ी और तागे में बठ गया की आर चला । एक भिन ने माग में हमकर पूठा—आज श्मशान में सुबह सुबह कहा ?

मैंने कहा—भद्र को गगा स्नान कराने ले जा रहा हूँ ।

‘भद्र को ?’ मित्र ने शक्ति चित्त से पूठा । मैंने अपने रत्न को होठों पर रोक कर गोद की पोटली दिखा दी । मित्र रोते हुए मुझसे लिपट गए और मरे साथ ही मेरे निषेध करने पर भी गढगगा तक गए । गगा में भस्मी विसर्जन करके जब मैं घर लौटा तो घर शोकपूरा परिजन स्त्रियो और पुरुषो से परिपूरण था । सब भाँति भाँति की बातें कह रहे थे, पर मैं किसी ओर ही विचित्र जगत में विचरण कर रहा था ।

मैंने सोचा था कि सिकन्द्राबाद वाला मकान भद्र की स्त्री को देदू । वह पडे

और फामनी को सम्भाल। मेरी छाती जटिन का लडका गोद लेले। पर वह मेरे आश्रीन रहना नहीं चाहती थी। मेरी स्त्री में उसे डाह थी। शोक है, उसके पिता भी मूख थे। व मेरी स्त्री का अपमान भी कर गए थे। भद्र की मृत्यु के एक सप्ताह बाद वह सिद्ध द्वात्रास पिताजा के साथ चली गई थी, वहा खेमसेन की स्त्री से भी नहीं पटनी थी उसने अपन व्यवहार में मेरी सहानुभूति सिद्धि कर दी।

भद्र चना गया, अत्र मे तथा करू ? मे उसके साथ कितना कठोर व्यवहार करता रहा। हाय, वह भरी जत्रानी मे मर गया। उमने जगत को एकवार भी आख उठा कर नहीं देखा। उमने त्रियोग में त्रिभुवणिया मैने अपनी डायरी मे लिखी थी—‘अरे भद्र, अब तू कहा मिलेगा ? वहा यदि कोई लोकर है तो तू बडा भाग्यवान है। अम्मा और स्वगामिनी वहा गरदकुपारी को हम हमकर खिना रही होगी। तू धीरे धीरे अपनी चाल मे चनकर त्राने-हसते वहा पहुँचना और हमारे लिए एक मुदर स्थान वहाँ त्रनाण रचना। अत्र हम भी वहा आते ही है। शोक है कि स्त्रियो के लिए कुछ भी प्रब व नहीं है। वरना में शीत्र आने की कोई न कोई तरत्री त्रिकाल लेना।

मुझे लगता है कि भद्र रात्रा मेरे पाप आकर सोता है। दिनम मेर पास आकर वठ भी गया था। बम्ई के समान रगग आस्था में भी दीया था। अरे भद्र, क्या तू अचानक किसी दिन वहा आ जाणगा ?

मेरी दरिद्रता मेरे मिर पर रात्रार है। यह मुझे तेरा यान तक करने का अवसर नहीं देती। मै काम करने को त्रिजग हूँ। पर मेरी भूख कहा गई। १०-१५ दिन बीत गए, भूग नहीं। हर समय जत्र रहता है मन नहीं लगता। नीद ना मुदतसे नहीं आती। मेरे प्यारे भद्र, तुम मुझे त्रामा करा। मेरे कटुत्रचन क्षमा करो। उनका यान न करना। मेने सदा तुम्हें प्यार किया। इतर में मुदत से तुम्हारी शिवायत करता रहा अब मै कम्बरत क्या कर ? मोह भद्र, अत्र तुम कहा हो ? क्या तुम कभी भूते जा सकाग ? यह तुम्हारे त्रिण मेरा त्रिगा हुआ अन्तिम पत्र है, जिम लिखते लिखते तुम्हारा तार पा कर में त्रिकन्द्रात्राद चता गया था—इगम भी त्रम ही है—

प्रिय भद्र, मकान त्रिगा हमारी पग द न लेना। मकान ऐसा हा जो बस्ती के बीच, बडा त्रनिणठा के योग्य हो। जिगम सत्र काम हो सके। त्रपए आज भज दिए ह—मिलेगे। मकान की जटदी न करा, कुत्र अत्रका नहीं है। सेठने अपना मकान क्या नहीं दिया खुलासा लिखो। २-४ त्रपण त्रिराण को परत्रा करा नही था और न मिले ता सगुग्रा का ले लो। त्रिराया बडा कर। कायम्यत्राडा ठीक जगह नहीं है। इधर उबर ही देख भाल करो। हमने यह प्रोग्राम बाया है कि इस सीजन मे दफतर यहाँ रहेगा। माल वहा से जायगा। तुम गौष्टिगा का चूग दमसेर त्रैयार करने की चेष्टा करो। खूब वारीक। राजा बाजार दिन्ती।

भद्र की मृत्यु ने मेरी नस नस को तोड़ डाला । म किरातय मिमूठ हो गया । मेरे हाथ खाली थे । अपना चिकित्सालय मने उठा दिया था । मन अत्यन्त उदाम प्रार सगी साथी हीन था । इन दिनों म नई दिल्ली म राजा बाजार ने एक ट्रोटे मे महान मे रहता था । पर तु दिल्ली मे मेरा दम घुट रहा था, म दिल्ली म तहर जाकर अपना मनस्ताप कम करना चाहता था ।

मुझे एक माग सूझा । सुधा सचालक दुलारेलाल भागव पर पुस्तका की रायल्टी बाकी थी । बहुत मागने पर भी टाल दूल कर रहे थे । मेरे पाम स्वास्थ्य त्रिपयक महान ग्रन्थ 'आरोग्यशास्त्र' लिख कर तैयार हो चुका था । मने दुनारंगलान का त्रिग्या त्रि रायल्टी के बदले मे मेरा यह पुस्तक अपने गगा फाइन आट पेस मे त्रापदे । उ होन इसे स्वीकार कर लिया । पर तु उ होने कहा कि इतना बडा ग्रन्थ त्राप त्रिलनी मे बैठ कर नही छपा सकेगे—यहा लखनऊ मे आकर कुछ मास तक बैठना होगा । म उनकी इस राय से सहमत हो गया । मने सेठ रामगोपाल मेहता को बीमानर लिखा कि आरोग्यशास्त्र के लिए कागज खरीदने के लिए कुछ रुपया उधार दे दीजिए । उ होने भी रुपए का प्रब ध कर दिया । अ त मे आरोग्यशास्त्र की पाण्डुलिपि त्रैकर कुछ औषधिया साथ मे रख पत्नी और च द्रसेन सहित म तखनऊ चल दिया । लखनऊ मने अलग मकान लिया और आरोग्यशास्त्र छपान तगा । यह सन् १९३१ ३२ की बात हे । लखनऊ म लगभग एक वष रहा । अमीनुद्दीना पाक के सामने मन एक महान किराए पर ले लिया था, वही चिकित्सालय भी खोल दिया । मरा नाम मुनकर तहा के कुछ मम्भ्रात परिवार मेरी चिकित्सा मे आए । इसी प्रवास काल म मुझे तलाहाबाद के कीटगँज के एक प्रयात रईस के एकमात्र पुत्र की चिकित्साथ कुछ दिना क लिए इलाहाबाद जाना आना पडा । इससे मेरी गाडी चल निकली ।

इलाहाबाद के कीटगज प्रवास काल मे इलाहाबाद के एडवोकेट मशी शी क हेयालालजी से मेरा परिचय प्रगाट हो गया । उनसे मेरा प्रथम परिचय चाट क फासा अक के कारण हुआ था । मेरे वे दिन इलाहाबाद म बहत अच्छी तरह स यीत तण । मुशी क हेयालाल जी कहानियों क वडे भारी ग्रान्तो त्रिग्या । उनने घर म ऊपर त्रात लम्बे से कमरे मे जब म घुमा तो म उनकी कहानी त्रियता त्रै देखकर आश्चर्य म डूत गया । वहा पृथ्वी भर की भाषाओ की कहानियों के सग्रह उनक पाम थ । त उनका नमूना सुनाते, आलोचना सुनाते, अनुवाद करते । उनका कहानी गमन शी जान और लगन अद्भुत थी । मुझे तो वे कहानी के अवतार ही प्रतीत हुए ।

कीटगँज के रईस साहेब की काठी म ही म ठहरा था । उनके रम्य पुत्र को म प्रात काल और तीसरे पहर देख लिया करता और औपव पथ्य की व्यवस्था बता देता था । शेष मेरा सब समय खाली रहता था । दिन का समय तो म अपने अध्ययन और

लेखन में बिता देता था, परन्तु सायनाल हानेपर सेठ की बगधी जुतवा 'कृष्णनिकुज' क हैयालालजी के निराम स्थान पर जा पहुँचना । दो तीन घटे तक हमारी बठक जमती थी, कहानियो की चर्चाण हांती रहती । कभी कभी म रात्रि का भोजन वही करता था । कृष्णनिकुज पहुच कर म रईसी प्रग्नी को वापिस कर देता था और रातको लौटता था क हैयालाल जी की फिटन में । आज वसी शानदार बगधी और फिटन कहा, न वैसे पानीदार घोडे ही रईया पान सन्ते हे । अब तो मोटरकारो की होड लग गई हे । एक दिन सव्या समय म क हैयालालजी म कहानियो की बहस में उलभा हुआ था कि एक विनयी युवक ने आकर मुझे प्रणाम किया । युवक में एक मस्ती थी । म उसकी ओर आकर्षित हुआ । यह युवक हरिवशराय बच्चन थे । फिर तो हम दो से तीन होगए । और हमारी त्रिगुटी गोष्ठी ठाट से जमने लगी । कभी कभी बच्चन रात को मेरे स्थान तक मुझे छोडने मेरे साथ फिटन में आत ये ।

उसी प्रवास म मन पृथ्वीराज रामो का अध्ययन किया और उसी पर आधा रित 'खवास का व्याह' नामक उपयास लिखा । इन्ही दिनों मुझे सूचना मिली कि हिंदी साहित्य सम्मेलन भागी का सभापतित्व कर श्री किशोरीलाल गोस्वामी इलाहा बादमें आकर निरजननाम भागवती कोठी में ठहरे हे । इन वयोवृद्ध साहित्यकारके प्रति मेरे मन में आदर भावना थी । उनका साहित्य भी पढा था, दशन नहीं किए थे । बस हमारी त्रिमन्ली म या समय उनके डेरे पर पटची । कमरे में पहुच कर देखा—वे पलग पर तक्रिए के गहारे त्रैडे हे । नेत्रहृष्टि उस समय उनकी जाती रही थी । मने उनके समीप पटच कर उनका चरग झुण । चरग स्पश होते ही उन्होंने प्रश्न किया—कौन ?

मने उत्तर दिया चतुरमेन

सुनाते ही पत्रग म उतर कर उन्होंने मुझे अपनी बाहो में भर लिया । मेरी कहानी 'पत्रपात्री' का उन्होंने पढा कर अनेक बार सुना था । उसीकी प्रशंसा करते-करते मरी पीठ ठोकरत रह ।

उ हाने मुझम आगाय किया कि अम्त्रपात्री को मैं स्वयं पढकर उहे सुनाऊँ । मेने स्वीकार किया । मनेने रित म मत्र प्रहा पहुँचे । निरजनलाल भागव तथा उनके परिजन मित्रजन भी प्रहा उपस्थित थे । मेने अम्त्रपात्री पढकर सुनाई । गोस्वामी जी ने अपनी सुपट्टे म आपना भिर मत्र लिया और बोने— आपने मुझे गौर ही लोक में पहुँचा दिया । आपकी जयन्ती के तहाने म किलना जीवन कितनी रगीनी भरदी है ।

मेने उत्तर दिया म आपही की स्वाम का विद्यार्थी हूँ ।

उसी प्रवास म मैं बच्चन म उनका प्रथम कविता पाठ सुना । उस समय बच्चन प्रहुा नती खुल था । इमक दो त्रप बाद उन्हे फिर एक कवि सम्मेलन में मधु शाला सुनाते और मस्ती म भूमत देया । मैंने उनकी प्रशंसा की । १९३८ में मैंने उह

तीसरी बार फिर एक कवि सम्मेलन में दया। उस समय उनकी पत्नी का प्रियाग उद्देश्य दिख चुका था। उन्होंने ऐसा दखना मुझे नहीं हुआ। मैं उनसे पूछा कि मैंने पाम शाहदरा गाकर कुछ दिन रहो—मेरे तुम्हारी विविक्तता होगा। शरीर और मन का अलग सत्ताए नहीं है। मेरे कहने पर १९४० में मैं पाम आकर रहा। मैं उनकी शरीर परीक्षा की। अबसाद विषाद की सारहीनता का समझाया। पुनः प्रियाग करो वैवाहिक जीवन ही से तुम शांत और सुखी हो सकते हो—यह समझाया। प्रीति भी दी। छ महीने तक उन्होंने मेरी प्रीति ली। विवाह किया। उतम फिर गीत मस्ती देख मुझे बहुत खुशी हुई।

जिन दिनों लखनऊ में आरोग्य शास्त्र उप रहा था, उही दिनों का ज्ञान है। महाप्राण जवाहरलाल नेहरू आज विश्व के मध्य हिन्दु और एशिया में महापति-निधि हैं। वे भारत के जन हैं। आज वायु की गति से वे दुनिया में दौड़ते, रात दिन व्यस्त रहते और मकड़ी के जाल में फंसी मक्खी की भाँति भूत भ्रष्टाचार की राजनीति के जाल में उलझे हुए हैं। वे जैसे व्यस्त अब हैं—वैसे ही पहिले भी थे। स्वनामधेय पं० मोतीलाल नेहरू का बहुत दिन बीमार रह कर देहात हो चुका था। श्री पुरुषोत्तमदास टण्डन ने मुझे लिखा—‘मोतीलाल जी पर एक स्मरण लिख दो। जवाहर लखनऊ आ रहे हैं। आपके निकट ही ठहरेगे। उनसे मैं कह दिया है, सो उनसे मिलकर आवश्यक प्रश्न करके काम की बातों की जानकारी प्राप्त कर लेना।’ मैं श्री जवाहरलाल जी की प्रतीक्षा करने लगा। शायद दूसरे या तीसरे दिन वे लखनऊ आ गए और मैं श्री दुनारलाल भागवत को साथ लेकर उनके डेरे पर उनसे मिलने गया। वे पड़ोस ही में उतर थे। पर जिस घर में वे उतरें थे उसकी बात तो दूर, उस गली में भी घुसना मुझे सम्भव नहीं प्रतीत हुआ। अवकाश के विचार से मैं देर करदी थी, काफी रात गीत गयी थी, पर भीड़ भाड़ का उस समय भी वही हाल था। बहुत कोशिश करने पर भी मुझे श्री जवाहरलाल तक पहुँचना असम्भव सा ही लगा। परेशान होकर तब मैंने श्री दुलारेलाल से सलाह की कि क्या करना चाहिए। श्री दुलारेलाल लखनऊ का पानी पीकर पले थे। भूत उ होने तिकडम भिड़ाई। बोले—वह सामने वाला घर मेरे एक परिचित मित्र का है, उसकी छत पर चलकर पुकारें तो कुछ हो जायगा। हम लोग उस मकान की छत पर चढ़ गए। छत एक मजिल अर्धक ऊँची थी। पृष्ठ भाग में वह घर था जहाँ श्री जवाहरलाल ठहरे थे। हजारों आदमी सहनमें भरे थे। हमने ऊपर बहुत आवाजें दीं,—पर किसी ने हमारी बात पर कान नहीं दिया। अतः हमने ढंके मारने शुरू किये। जिनके ढंके लगते, वह कुछ कहते, ऊपर देखते, पर हम कुछ कह न पाते। उनकी अपनी ओर देखते देख हम चिल्ला चिल्ला कर अपना अभिप्राय कहते, पर उसे भी कोई कोई का लाल सुन समझ न पाता। अतः हम एक गए। ऊपर ढंके पर ढंके फेकने से कई

आदमी हम लागे की प्रार देखने लगे। एक दो स्वयं सेवक भी आ जुटे। आखिर हमने एक पुज पर गपवा अभिप्राय निराकर प्रार उमे ढले म लपेट कर नोचे फेका। ईश्वर का व यत्रात् कि उमे एक प्रयमत्रक न उठाकर हमारी ओर दखा ओर हमारा अभिप्राय सगभ पुजा श्री जवाहरलाल जी का पहुँचा दिया। पुजा पाते ही जवाहरलाल तुर त बाहर निकल आए और तान पर हाथ धर कर खूब जोर से पुकार कर कहा— तण्डन जी ने मुझे रटा ता था, पर उा समय तो बात करना अमम्भव है। क्या आप परसो उलाहावाद नहीं आ पतने ?

मने कहा - 'अच्छी बात है, मं उलाहावाद आ जाऊगा।' बस वह साठ गज लम्बी छत की दूरी का मुताफात यही त्रम हो गयी। वे भीतर चन गये और हम अपने घर। तीसर दिन मं उलाहावाद पहुँचा। तहा मेरे मित्र श्री निरजनलाल भागव है, वही मे ठहरा। जाने ही आादभवता फोन करके मने जवाहरलालजी से पूछवाया— मै उलाहावाद आ गया हूँ, समय दीजिए कब आऊ ? जबाव मे कृष्णाजी वाली। उ होने नाम गौर काम पूछा। फिर कुठ रुक्कर कहा—रात को बारह बजे के बाद आउण। मुकर मिजाज गुनगुना हो गया। रात का चारह बज ? यह भी कोई मुलाकात का समय है ? पर तण्डनजी की बात थी, टाली नहीं जा सकती थी। श्री निरजनलाल जी की तार तार टीन समय पर आनन्द भवन जा पहुँचा। बारह बज चुके थे। मे सीधा कृष्णाजी के पास पहुँचा। जरा और त्रिस्तार मे अपना अभिप्राय कह सुनाया। सुनकर बोली— भारी अभी तक आण ही नहीं, खाना भी नहीं खाया है। आज ८-१० मीटिंगोमे उह शरीर टाना था। तैमिन आप बैठिए, आते ही मै पहले आपसे ही मुलाकात करा तगी। मने त्रन्यवाद दिया और त्राहर आकर बराे मे टहलन लगा। उस समय भी वहाँ सत्ता मुलाकाती उनकी प्रतीक्षा कर रहे थे। कोई बठा था, कोई टहल रहा था, कोई गीरे धीरे साथी स बातें कर रहा था। आधे घण्टे की प्रतीक्षा के बाद एक मोटर भीतर घुगी और प्रत्यक व्यक्ति बैचैनीमे 'आगण, आगण' कहकर उठ खटा हुआ। श्री जवाहरलाल गागी मे उतरे और तीर को भाति सीधे बँगने मे घुम गए। मै बहुत उब गया था। माच ती रटा था कि एकबार कृष्णाजी को याद दिला द।

कृष्णा जी भपतनी हुई आर। उहोने रटा आउण, जल्दी आउण।

मै माथ हो निया। भीतर जाने पर वे मुझे उस कमरे म ले गई, जिसमे श्री जवाहरलाल गठे थे। त्रे एक तीच की पीठ पर दोनो हाथो के बीच सिर थामे आँरो बदनिए मुझे पडे थे। मरी तरफ उहोने आख उठाकर भी न देसा। उमी भाति आँवे बदनिए किए बोले, 'तहिए आप तया चाहते है ?

मैने कृष्णाजी तों ओर देसा। वे आगो ही म जैसे तह रही थी—जल्दी बात खत्म कीजिए—देर मत कीजिए।

मेने कहा—मे यह चाहता हूँ, आप जाकर खाना खाऊँ और आराम कीजिए । मैं अब जाता हूँ ।

श्री जवाहरलाल ने हडबडा कर सिर उठाया, बोले—नहीं नहीं, अधिक नहीं तो कुछ थोड़ी बातें हो जायेंगी ।

मैंने कहा—‘मुझे कोई बात ही नहीं करनी है, परंतु यदि आप कहें तो मुझ मैं फिर आ सकता हूँ ।’

सुबह तो साढ़े छै बजे की गाड़ी से बम्बई जा रहा हूँ ।

तो मैं कानपुर तक साथ चला गया । ट्रेन में बातें हो जावेंगी ।

नेहरूजी ने लाचारीके स्वरमें कहा—मगर ट्रेन में तो काग्रेस रजिग कमेट्री की

मैं एकदम उठ खड़ा हुआ । मैंने कहा—‘तो फिर सही । हा, किंतु आप आज्ञा दें तो मेरा काम माता जी से भी हो सकता है ।’ इसपर जैसे दुखता हुआ फोटा छू गया हो उस भाँति कराह कर श्री जवाहरलाल बोले—‘नहीं, नहीं, माताजी से पिता जी के विषय में एक शब्द भी न कहना—वे सह न सकेंगी, बहोश हो जावेंगी ।’

मैं धीरे धीरे कमरे से बाहर चला आया ।

लखनऊ के प्रवास में प्रेमचंद जी मेरे अधिक निकट आए । सम्पादन और प्रेम से सायकाल को जब अवकाश मिलता तो प्रेमचंद आ बैठते । उन दिनों प्रायः नित्य ही वे मेरे पास आकर एक दो घंटे बैठते थे । उनके साथ गणशष्प रचना कर मेरे मस्तिष्क की थकान दूर हो जाती थी । साहित्य चर्चा चलने पर वे यही एक बात कहते कि लिखते तो आप हैं, मैं तो कलम रगड़ता हूँ । वास्तव में प्रेमचंद को उन दिनों अपनी रोजी कमाने में बहुत परिश्रम करना पड़ता था । उनका स्वास्थ्य भी बहुत अच्छा नहीं था । पर उनकी बातें और उनके कहकहे चिंता और दुख से दूर होते थे, निश्चल और प्रेम से श्रोतप्रोत । कभी कभी दुलारेलाल के भी लतीफें मेरे मनको प्रदलने में सहायक होते थे । उन दिनों मैं ‘सुधा’ के सम्पादकीय भी लिख देता था और उसके कुछ विशेषांकों का सम्पादन भी मैंने किया था । लखनऊ में रहते रहते अवकाश के अनेक तालुकेदारों से भी मेरा परिचय हुआ और मुझे अपने नज़दीक पर प्रियवाम हो गया । वास्तव में पत्नी के साथ और उससे सहारे का महत्त्व तो मुझे उन्ही दिनों अनुभव हुआ ।

आरोग्यशास्त्र छपते छपते मैंने उसकी विक्री का पूरा प्रबन्ध कर लिया था । सुधा द्वारा सैकड़ों अग्रिम ग्राहक बन गए थे । अतः मैंने १९३३ के आरम्भ में आरोग्यशास्त्र छपकर तैयार हो गया । यह ग्रन्थ मैंने अपने पिताजी को समर्पित किया था और भद्र की स्मृति से पल्लवित ।

आरोग्यशास्त्र की भूमिका में मैंने लिखा था—‘यह ग्रन्थ मेरे दस वर्ष के कठि

परिश्रम का फल है। उसे मात्र सा आरोग्य को प्रदान करने में अत्यंत सुखी हुआ हूँ, और इसके निर्गमन समाप्त होनेपर रावशक्तिमान परमेश्वर को बारम्बार धन्यवाद देता हूँ। इसमें मैं मेरा प्रवृत्तता अथवा सचय और अनुभव के द्वीभूत है। मुझे पूर्ण विश्वास है कि सभी स्त्री पुरुष युवा वृद्ध मद्गृहस्थ इससे बहुत कुछ लाभ उठा सकेंगे।

इस ग्रंथ को उपान और प्रकाशित करने में पूरा एक वर्ष का समय खर्च हुआ है, जिसमें मुझे मोलह स बीस घंटे तक काम करना पड़ा है। यह परिश्रम ग्रंथ लेखन के परिश्रम से प्रथम है। कठिन और दुरुह विषयों को सरल और सुगम रीति से पेश करने की चेष्टा में मुझे कुछ उठा नहीं खा है, इसलिए मुझे आशा है कि पाठक आसानी से ग्रंथ के सभी तन्त्रों को समझें और उसमें कुछ लाभ उठा सकेंगे। प्रारम्भिक अवस्था में ही मैंने ग्रंथ को उपाने का उपक्रम किया, मैं अयाचित विपत्तियों में होकर गुजरा। यदि मैं यह नहीं कि मरा गत वर्ष अब तक के जीवन में सर्वाधिक सुखपूर्ण रहा तो तनिक भी अत्युक्ति नहीं। मेरी अनगिनत विपत्तियों में सर्वाधिक विपत्ति मेरे पवित्रजीवी और परम आज्ञाकारी पुत्राभिर्भाई मद्रसेन का अविश्वसित जीवन काल में ही अनायास निधन है जिसने मेरे सातम और जीवन की मरुता की नस नस तोड़ डाली। फिर भी मैंने ग्रंथ का प्रकाशन रखा नहीं। इसी विचार में कि अणुभंगुर जीवन का भरोसा नहीं, जो काय हो जाय, अच्छा है। मुझे प्रवृत्त भय है कि मेरी मानसिक विमलता और अस्थिरता से ग्रंथ में प्रवृत्तसी गटिया रट गई होगी जिसके लिए मैं अपनी उपयुक्त वरुण दशा की और विज्ञ पाठना का ध्यान आर्कषिक करके दया और क्षमा की आशा करता हूँ और इच्छा करता हूँ कि यदि जीवित रहा और ग्रंथक दूसरे संस्करण का सुअग्रसर आया तो मैं उसे ऐसा रूप में आपनी भेंट करूँगा जिसकी मुझे चिरकाल से इच्छा थी।

आरोग्य शास्त्र पर लोगों के चर्चों से प्रेरित होकर मैंने प्रिंट कराकर मैं उसकी बहुत मुद्रा जिन्दगी बनाना चाहता था। उन दिनों १९३२ में उसकी जिल्द पर प्रति काफी उच्च रूपया प्रस्ता था। दो हजार प्रतिया के लिए तीन हजार रूपया मेरे पास उस समय नहीं था। मैंने पाठकों की प्रतिया की जिल्द बनवा कर अपने साथ ली और शेष दुनारगतान का पाम जिन्दगी बनाने को छोड़ी। काम से सौ ही पुस्तक मुझे और प्राप्त हुई। शेष १८०० प्रतिया दुनारगतान न तजम की और उन्हें खरी लिया। अन्त में जब पुस्तक की रगारि बनी और स्टाक समाप्त प्राय हो गया तो उन्होंने बचे फार्मों में से आठहजार पत्र पर फुल प्रतिया तैयार कराए और पन्द्रह, बीस, पच्चीस रूपया तक प्रति पुस्तक की। मुझे न उनकी प्रिक्री दी, न पुस्तक दी न मेरी पुस्तकों की आगे की रायदनी दी। जब प्रिन्टिंग मांगा प्रेम वाला को बुला कर डाट फटकार दिया। जिस आर्थिक लाभ व निगमने एक वर्ष खर्च से रहकर यह ग्रंथ प्रकाशित कराया था उसका लाभ उठाया दुनारगतान भागवत ने, मित्रता के नाम पर।

ग्रन्थ का लेकर मैं फिर दिल्ली नौट आया। और त्रादनी चौक फवारे में प्रते वाले हलवाई के पास एक स्थान किराण पर लेकर मैं अपने दिनां जीवन का पुन श्रीगणेश किया और च द्रसेन को भद्र की बुर्मी पर आरूढ़ किया।

जिस दिन मैं वहा अपनी कुर्मी पर बठा, मेरी पत्नी और ट्रोटी वटिन न नारि यल मेरी गोद में टानकर टीका किया था। उ होने मेरे लिए शुभ कामनाएँ मागी थी।

१८३३ के पारम्भिक दिनाम अपना दुगमय भूतनाल भुनाकरमै अपने वने में फिर जुट गया। आरोग्यशास्त्र की जितनी प्रतिया मैं लखनऊ से लाया था, उन सबकी वी० पी० ग्राहका के पास मैं भेज दी थी, जिनका रपया आने लगा था। कुछ वी परिवार भी मेरी चिकित्सा में आने लगे।

एक दिन पत्नी ने मुझसे कहा—आरोग्यशास्त्र की वी० पी० का जितना रपया आता जाय, उसे आय किसी काम में खच न करके एफ मकान खरीद लिया जाय।

पिता जी सिकन्द्राबाद से कभी कभी मेरे पास आकर रहते थे। उनमें तथा मित्रोंसे भी पत्नी ने यह बात मुझे कहलाई। उन दिनों मेरी चिकित्सा में एक ऐसे पति थे जिनकी बहुत सी खाली जमीन लालकिले के सामने पड़ी हुई थी। आरोग्य होने पर वे मुझे एक घोडा गाडी मय घोडे के ओर लालकिले के सामने जमीन का पाँच सौ गज का एक टुकडा देने लगे। घोडा गाडी तथा घोडा तो मैंने स्थान न होने के कारण वापिस कर दिया और भूमि में अधिक चाहता था। इसी समय यमुना पार शाहदरे के एक आचल पे सत्रा एकड का एक एकांत टुकडा जमीन का मुझे मिल गया, जिसे मैंने आरोग्यशास्त्र के एकत्र किए रूपयों से खरीद लिया, कुछ कमी पडी तो पत्नीने जिद्द करके अपने ठोस सोने के कडे, चूनिया तथा जजीर बचकर रकम पूरी करदी। १८३४ के प्रारम्भ में शाहदरा की यह भूमि मैंने खरीदी थी। सत्य बात तो यह थी कि मेरा मैं चिकित्सा की ओर कम लगता था और साहित्य रचना की ओर प्रवृत्ति अधिक सक्रिय हो उठी थी। साहित्य रचना के लिए मैं जसा एकांत कोलाहलरहित शांत स्थान दिल्ली के नजदीक चाहता था, वैसा ही यह स्थान था। परन्तु नीरत्र स्थान के खतरा की ओर मेरा ध्यान नहीं गया, जिसका शिकार मुझे निरंतर ८१० वर्षों तक हाने रहना पडा।

जगह को खरीद कर मैंने उसकी ऊबड़ खाबड़ भूमि को भरवानर ठीक किया और दो तीन छोटे कमरे तीन की छत डाल कर रहने योग्य बना कर प्रती रहने लगा। उन दिनों शाहदरा का यह क्षेत्र सवथा उपेक्षित और म्युनिसिपिल सुविधाओं से वचित था, न वहा रातको रोशनी का प्रबध था, न पुलिसके पहरेका ही। दो तीन महीने पीछे ही एक रात को चोर दीवार फोडकर घुस आए और राई-रत्ती सब ले गए। चोरो का यह मिलसिला चलता ही रहा और ८१० वर्ष तक मेरा राई रत्ती वे ले जाने रहे। मैंने म्युनिसिपिल कमेटी, पुलिस तथा शासन अधिकारियों को बहुत लिखा। मेरे बहुत बार

लिखने तथा दौड़बूप करण म पुगिम की गहन रात को उपर लगने लगी थी। अब तो मेरे कम मकान के उद गिद चारा गार बहुत मकान वा गण है, आयादी बड गई है, नागरिक सुविधाएं प्राप्त हो गई हैं, पर तु प्रारम्भिक काल म १९३४ ३५ मे दिन छिपते ही यह स्थान भयानक हा जाया करता था। उन दिनों तक भी यमुना पुल पार करके शाहदरे क माग मे पैदात और साइकिल सवार दिन छिपने के बाद आने का दुस्साहस करते भय खात थे। चकि मुझे रात्रि के दो बजे से प्रात ७-८ बजे तक लिखने की आदत है, इसलिए दो बजेसे तो मे जाग ही जाता था। दो बजे तक चौकीदार तथा नोकर चाकर जागते और पहरा देते रहते थ। एक बार चोर से मेरी तहुत भयांक मुठभेड हुई। रात को दो बजे मेरी श्राव खुल गइ और मे उठ बठा। गरमी के दिन थे, हम बाहर आगत म माण थे। नियमानुसार उठकर मेन देखा कि कमरे की पत्ती जल रही है और एक आदमी यस्त भागे कुठ उठा पराई कर रहा है। मा दया सब लाग अपनी अपनी खाटा पर मोण थ, तत्र यह तीन हा सक्ता है। म खडा हो गया। मेरे खडे होने का शब्द सुनकर चार ने मरी और देया। मने गज कर कहा— कोन ह ?

उसके उत्तर मे उगने एक लम्बा छुग मेरी और फक्कर मारा। म तेजी से हट गया और उग दीवार मे टकरा कर झल करके गिर पडा। म ताल बाल बच गया। हो हुल्ला सुन कर पर के सब आदमी जाग पडे थे। मौका पाकर चोर भाग गण। पीछा करने पर बहुत दूर गता म गानी त्रसे पडे मिले। कपडे लत्ते गहना सब गायब था। इन निर तर चारिया म मुझे त्रीस हजार रुपयो की हानि सहनी पनी थी।

मेरी आप ने तो ही जगिण थे। चिकित्सा और नयन। चिकित्सा के कारण म रागा था और नयन क कारण तगदस्त। पर तु जीवन म अनक भक्तावात आने पर भी म गापी को पीछे गिण जा रहा था। प्रितित होना मने जाना नहीं। भनिष्य की और उन्मुग होकर बडे चने जाना ही मेरी प्रवृत्ति मे है, सो म प्रत्तमान को समेट कर चलता रहता था। अब तक मने लागो त्माण थे और लाखो ही गच थे, पर म चिर दरिद्र ता दरिद्र ही हो जाता था। उम काल म भी मेरी चिकित्सा बहुत अचठी चल निकलो और म दो तार लाग रुपया बक चल ग कर सकता था, पर तु मुझे ऐसी बुद्धि हुई ही नहीं। यह त्रिष्टि हुई मुभे गप ही आयुकी अढसठी देहरी पर पहुँचकर, जब मेरा शरीर थक कर रोगा की और जात लगा और मुझे अपनी सत्रय की चिकित्सा के लिए डाक्टरों के नुस्खे लेने अनियाय हो गण।

१९३३ म मर तथ म एक बानक का कस आया। तालक के पिता चाँद के मारवाडी अर म प्रभाप्रित होकर मेरे परिचय मे आण थे और उहोने मेरा साहित्य पढा भी था। उनो एकमात्र पुत्र हरिमिह की चिकित्सा करने से जब पडे २ डाक्टरोने जत्राव द दिया, तत्र उन्होने अपने मुनीम जी को भेजकर मुझे चूरू (बीध निर) उलाया। हरीसिंह

को जत्र मैंने पहली बार देखा तो मुझे अमीम दुःख हुआ। उसके चिरराग जजर शरीर की भलीभांति परीक्षा करने के बाद निराशा ही एक लम्बी रास 'गोप्य' जैसे ही मैंने उसके पिता की ओर दृष्टि की, तो देखा—य प्रत्यक्ष उत्साह और आशाभरे नेत्रों से मेरी ओर देख रहे हैं। मैं बड़ी कठिनाई में पड़ा, अतः बानस मरी चिन्तना में गाया कि तु कुछ दिन बाद ही उसका जीवन प्रदीप बुझ गया ॥१॥

इस अति अल्पकालीन परिचय ही में दो बातों में अत्यन्त प्रभावित हुआ, एक उस बालक की असाधारण प्रतिभा और कष्ट सहिष्णुता, दूसरे उसके पिता की अद्वैत सुश्रुषा। मुझे सदब ही असाधारण रोगियों से वास्ता रहता है, पर ऐसा उदाहरण मैंने हजारों में नहीं देखा। उस बालक का जन्म चूल्के विरयात सुराणा परिवार में हुआ था। बालक के पिता श्री सेठ शुभकरणा की सुराणा एफ उदार, विद्वान् और राज्य के प्रतिष्ठित नागरिक थे। कलकत्ता की प्रसिद्ध फर्म मेसर्स तेजपाल त्रिद्विचंद्र के अतिप्रतिष्ठित। उनका वंश यद्यपि प्राचीन कालसे वीरता के लिए प्रख्यात है, पर उम्र घटाने में पास एक ऐसी सम्पत्ति है, जो न केवल राजपूताना, प्रत्युत् भारत भरके लिए गम्य की वस्तु है। यह एक दुर्लभ पुस्तक का विशाल संग्रह है, जिसकी हस्तलिखित पुस्तक सातवीं शताब्दी तक की है और जिसका मूल्य एक लाख के अनुमान का है।

ऐसे विद्याव्यमनी परिवार में ऐसे प्रतिभासम्पन्न बालक का जन्म लना आश्चर्य की बात नहीं। बालक की प्रतिभा के सम्बन्ध में मैंने कुछ असाधारण बात सुनी, जिनमें से कुछ का यहाँ जिक्र करना असंगत न होगा। बालक में अपने वंश की वीरता का अंश आश्चर्यजनक था। वह शस्त्रा का भारा शौकीन और निभयचिन्तित था। एक बार कलकत्ता में नववष की परेड के समय वह तोपाके अति गिन्ट खड़ा होकर उनकी गजना सुनकर हँसता रहा। उसने अपने संग्रह में बहुत सी पिस्तौलें, बंदूकें, कटारें रखी थीं। एक गेड़े की ढाल पर तो उसका गहुनही मन था। जब वह बाहर घाड़े पर सवार होकर घूमने जाता, तब हाथ में डोटा सा बछ्छा ने दो चार मशम्र मनुष्यों को गांभी पी कर ठाठ से निकलना था। अलग-अलग ही मैं वह निभय हो हवाई जहाज में चढ़कर घूमा। वह अतिकोमल चित्त और उदार था। दीन दुखिया का बहुत कुछ दयालु था।

उन्ही दिनों माघ मास में श्री बीकाणेर दरबार के कनिष्ठ पुत्र महाराजकुमार श्रीविजयसिंह जी का दुभाग्यवश स्वर्गवास हो गया। बालक उम्र समय उतना रम्य था कि एक क्षण पिता को आँखों से पृथक् न करता था। पर उम्र अग्रमर पर उमन तुरंत ही पिता को सहानुभूति प्रकट करने दरबार की मेजा में हठ करके भज दिया। वह गायन सुनने का भी बहुत शौकीन था। इस विषय में उसकी संस्कृति और अभिरुचि भी अत्यन्त शुद्ध थी। वह जनसम के नवकार मात्र का बहुधा गम्भीरतापूर्वक पाठ करता देखा गया। वह बालक बम्बई की 'यंग फोक्स लीग' का सदस्य था। ऐसा होनहार और अद्भुत

प्रतिभासम्पन्न बालक ८ वष की आयु मे ही अपने पिता, त्रिमाता और एउ ठानी बहिन को अपार शोक सागर मे छोड कर चल बसा । उन ८ वर्षा मे भी ७ वष उसने जीवन और मृत्यु से युद्ध किया, जननी का दुःख पान भी वह न कर पाया । कहने योग्य यदि कुछ उमने पाया तो पिताका असाधारण प्रेम और मेरा । अन्तिम वारम जब उसे देखने चूरू गयाथा तो उसने पथ्यपानी और औषध की व्यवस्था का सुनकर जिस दृष्टि से मेरी ओर ताका,उसे मै जीवनभर भूल नही सकता । उसमे कितनी वेदना,कितना वीरज और कितनी निराशा थी ? यह कोई देवीप्रेरणा ही थी कि दतना अल्पवयस्क बालक इस भाति मृत्यु मे युद्ध करे । इतने ही अल्प परिचय से मेरे हृदयमे उसका असीम प्यार था ।

मेरी एक राजनतिक कृति '२१ बनाम ३०' सन् १९३० मे छपी थी, जिसे मेने १९३० के प्रथम प्रभात-आलोक की प्रथम क्रिरण को समर्पित किया था । इस ग्रंथ का प्रारम्भ मेने इन पक्तिया से किया—गत वष की भीष्म प्रतिज्ञा के आशर पर महात्मा गांधी ने सन् १९२९ के अन्तिम क्षण व्यतीत होने पर रात्रि के १२ बजकर ३ मिनट पर अपनी पूगस्वाधीनता की घोषणा लाहोर की राष्ट्रीय महासभाकी वेदी पर सं करदी हे ।

दसकी भूमिका मे मैने लिखा था—१९२१ का महायोग आया और चला गया । भारत के दुधध दुर्भाग्य ने उसे हमारे जाग्रत होने से प्रथम ही मार भगाया । तब से अब तक दस वष का समय हमने जागृति और आत्मबोध की चेष्टा मे व्यतीत किया । आत्म बोध हमे हुआ और आज जब सन् ३० का प्रथम प्रभात उदय हुआ तो हम जाग्रत हो कर सच्चे युग की भाति अपनी उस सामूहिक अभिलाषा को वैय और वीरता से प्रकट कर मने जो हमारे चरम आत्मबलिदान से ओतप्रोत है ।

महन्मो उप बाद हमारी आत्मा मे सन् ३० के प्रथम क्षणमे वह भाव, तेज त्याग और साहस आया है, जो प्राचीन आय सस्कृति के लिए महा जातिया के इस नव्य उत्थान के युग मे ग्रमाधारण है । यदि उसी त्याग की भावना के ऊपर चलकर हमारा सवनाश भी हा तो भी हम पृथ्वी की समस्त जातियो मे अपने को महाभाग्यशाली समझेगे ।

ग्रन्थ की समाप्ति इन पक्तिया से हुई है—ऐसी दशम हमारा यह धम है, बतिक मकट माल क्त य है कि मय स्त्राय सत्र प्रलोभन सब दुबलताए सबद्वेष ईर्ष्या फूट भूल तर एउ मन एक पत्रा एक प्राण से उस युद्ध मे जूझ मरे । दिगत को कम्पायमान करती हुई हमारी आवाज निकले --'बाय वा मात्रयाम शरीर वा पातयाम ।'

३४म मे बम्बई नाग्रेम अधिवेशन हुआ । यह अधिवेशन कई कारणो से अत्यंत महत्त्वपूर्ण था । उस अत्रमर के लिए मैने एक पुस्तक 'पराजित गांधी' नामक लिखी । यह पुस्तक मैने सन् १९३१ ई० की २७ अगस्त की शाम को सात बजकर दो मिनट के गनहम क्षण को समर्पित की थी । असल मे इस पुस्तक मे मेरा सारा क्रोध इसी मनहूस क्षण के ऊपर था जबकि महात्मा जी राउटेटिल काफ्रेस मे सम्मिलित होने के लिए

शिमने से ल दन के लिए एकाएक रवाना हो गए। उस समय दूटी गीत अग्रजा ने भारत सरकारका मन्ट काट दिया था। वहाम निराश टाकर त्रिदा हात समय महात्मा जी ने स्वयं कहा था—‘मुझे फिरसे अपन आप का वट्टर अमटयोगी और पत्रिनय अज जाकारी घोषित करना पडेगा। मुझे वहा के करोडा मनुष्या को अमटयोग और आजा भग का सदेश फिर से दना होगा। भते ही भारत पर फिर अिनने ती तायुयान क्या न मडराये और भारत मे कितनी ही सनिक मोटर अयो न भेज दी जाए।’ इस पुस्तक मे महात्मा गाधी की वुराई नही की गई थी, अपितु उनक महयागिर्यो की रनाथ भावना की आलाचना थी, जिनके कारण काग्रेस के महान काय म कानिमा आती थी। इस पुस्तक का आरम्भ करते हुए मने लिखा था—‘१५ अप टुण, भारतकी राजनीति मे एक शक्तिशाली आधी का प्रवेश हुआ था। यह आशी गात्री थी, अथवा यह एक उजा तामुग्गी था, जिसकी प्रशात भव्यमूर्ति, उन्नत ललाट, गचल स्थय, अप्रतिप महिगुता तीगवी शताब्दी के लिए देखने की वस्तु थी। इसी अग्रेस मुग मे जो उज्ज्वल ज्योतिमय ला निकलती थी वह देखने मे सवथा हृदयहारी थी। पर तु वास्तव मे यह भीतर ही भीतर वधकती हुई महाग्नि समुद्र की बोठार थी। यह नसर्गिक पाताल तक गहरी थी और उसी क्षुद्र मुख से आकाश तक एक बार उठी। यह ज्वाला, करणा से द्रवित हाकर, बहने वाले पाप को भस्म करने वाली द्रवित अग्नि थी। यह पुस्तक जब बम्बई अवि-वेशन मे बिक्री के लिए पहुँची तो गुजराती काग्रम जना ने इस पुस्तक का गात्रीजी के विपरीत ममभ कर इसकी सब प्रतिया खरीद कर ढेर करके जला डाली। च द्रमन यह पुस्तक लेकर बम्बई गए थे। उ हाने जब यह वाण्ड देखा तत्र उ होन बहुत रात व्यतीत होने पर महात्माजी म उाके डेरे म भट की और पुस्तक की एक प्रति देकर सब हकी कत बयान की। यद्यपि महात्मा जी न गुजराती भाषिया मे उस पुस्तक के प्रति राष न करने के लिए कहा—परन्तु उ हान पुस्तक का वहा न त्रिको दिया आर अगले दिन दूसरे लोगो से पुस्तक गरीदवा खरीदना कर मत्रो ढेर नरके जाता जाता। इस प्रकार उस पुस्तक की तीन हजार प्रतिया जला कर रास कर डाली गई।

१६३२ के आं तम दिनों मे नाथद्वारेके युत्रक उत्तराधिकारी टिकतलाल जी श्री दामोदरलाल जी ने हमा नामन एक वेश्या से विवाह किया। इस विवाह को तकर समाचार पत्रो मे ख्व चर्चा रही। पर तु मेने उनके इस काय को समाज सुधारती दृष्टि से देखा और उसे उचित ममभकर कलकत के साप्ताहिक विश्रमित्र मे एक गम्भीर ताम ‘पाप और पुण्य’ उपाया। वह लेख यह है—

श्रीनाथद्वारे के टिकत लालजी श्री दामोदरलाल जी ने हाल ही मे जो विवाह किया हे, उसे लेकर डवर कुछ दिनों से हि दू समाज मे बहुत भारी हलचल मच गयी है। इसी हलचल के फलस्वरूप उस साहसी युवक धर्माधिकारी को लक्षावधि भक्तो और

सेवको का विरक्ति भाजन प्रनना पडा है। यही नहीं, गद्दीका उत्तराधिकार त्याग श्रीनाथ द्वारे से भी पृथक् होना पडा है। जहा तक मुझे विश्वास है, प्राय सभी पत्रो ने इस पश्न को लेकर उसकी घपणा की है।

इस सारे अन्या की जड यह है कि जिस बहन से इस वमगुरु ने विवाह किया है, वह ज म से उन भाग्यहीना प्रतिभो मे से एक है, जिस जाति की प्रत्येक पुत्री को वेश्या वृत्ति करना इस वमीनी हिंदू जाति ने सकडो वर्षो से अनिवाय प्रना दिया है, जिस जाति मे वेश्या वृत्ति एव वम, एक प्रारब्धरेख, एक सावारण स्त्री कत्तव्य समझा जाता है, जिस जाति की प्र यक बालिका अपने शुभ्र तालाट मे 'वेश्या' शब्द की मुहर विधाना के हाथ से लगी समझती है और जिसने विवाह करना, सदगृहस्थ बनकर रहना, पवित्र पतिव्रत प्रम की दीक्षा देना शताब्दियो से त्याग दिया है, जिस जाति की आज लक्षा वत्रि सुन्दर, सुशील प्रार रूपगुणो मे रानिया के समान बालिकाए इस घृणास्पद, नीच और गर्हित पाप को ठीक उसी प्रकार कर रती है, जिस प्रकार ताखो भगी बहिने दिन भर मलमूत्र के टोकरे भिर पर नादना अपना कत्तव्य समझती है। इन बहिनो के चारो ओर मयादा (?) की रेखा है, जो हिंदू प्रमने खीची हुई है, यह इस भाति नरकाग्नि की भाति तप्त है कि इस जाति की किसी भी बालिका के लिये उमका उल्लघन करके समाज के हरे भरे स्पर्च्छ र बाग म स्त्रत व्रता मे प्रहार करना उचित नहीं, फिर वह चाहे भी जैसी रूप, और गुण म ष्ट हो।

म युवक प्रमात्रिकारी ना भी केवल एक ही गुरुतर अपराध है कि उसने इस बहिन मे विवाह क्या किया ? उमे उग पतिन जीवन और विकार योग्य परिस्थिति मे उगारा स्यो ? उमे उम गार प्रगिन की साथी देकर पत्नी क्यो प्रनाया ? उसे इस लोक और परनाक म यश, प्रतिष्ठा, गोरत्र, सुग्य और पतिव्रता की अप्रिकारिणी क्यो बनाया ? उसकी ग तात को गौरव म भिर उठाने ना प्रमसर स्यो दिया ? उसे उचित था कि वह चुपचाप उमग्य अभिचार चेषण करता, समाजको इसमे न कभी उच्च हुआ है न होता। हजारो वमाचाय, राजा प्रार महाराजा नित्य ऐमा करते है, पर कोन उन्हे रोकता है ? अखबार प्रागे अलप्रता कु उ शोर मचाया करते है, पर ज्योती उन्डे कु उ टुकडे फके गये कि उ होन चुपपी गा गी, बस, यही तरु मामला प्रतम था। यदि यह बहिन गभवती हाती, तो उम उचित था कि किसी चिन्मित्मक चूनामणि को मुठ्ठीभर चादी देकर गभ पात करा देता, और जत्र यह वृद्धा हो जाती या उसका रग मूख जाता, उसमे मन भर जाता, तत्र उम त्यागकर उमे किसी और जीवन का रस लेना चाहिये था। इससे प्रम मे तनिक भी आच न आने पाती। श्री दामोदरपालजी मंदिर मे रह सकते थे, गद्दी के अधिकार पर भी आपत्ति न थी, वपणव भक्तो को भी इसमे हानि नहीं दीसती और हिन्दू समाज को भी एतराज न होता।

अब गम्भीरतासे विचारनेकी बात तो यह है कि टिफिन श्रीरामानन्दजी नाथ-द्वारे की जिस गद्दी के उत्तराधिकारी है, वह साधारण नहीं, उन्नाभ सम्प्रदाय ही भारत में एक प्रधान गद्दी है। उसकी सम्पत्ति कराटा की है और आर्य समाज की दृष्टि से इस गद्दी की कीमत किसी राज्य की गद्दी से कम नहीं। दूसरी तरफ मन्दिर के भक्त जनो में समस्त दक्षिण, गुजरात और बहुत सा वंश उत्तर भारत का परिपूग है। नाथ द्वारेके मन्दिरकी सम्पदा देखकर अनायास ही प्रभावित होना पड़ता है। कुछ वर्ष पूर्व जब मुझे प्रथम बार नाथद्वारे जाना पड़ा, तब वहाँ के मन्दिर का प्रभाव और भक्तजना की भक्ति, जिसे मैं अश्चर्या कहा करता हूँ, देखकर मुझे दंग होजाना पड़ा और मन अनायास ही यह समझ लिया कि इन दुर्गम पहाड़ियों में हम मन्दिरने सुरक्षित रहकर मुगल कालमें हिन्दुत्व की भावना को रक्षित रखने में कितनी महत्प्रयत्न की होगी। मैं जिम्मे अपने जीवन में कभी भी प्रतिमा पूजन नहीं किया, उन्ना उस विशाल प्रागम्य मन्दिर और भक्ति से श्रोतप्रोत शरीर और प्राणा में अग्रत, दरिद्र और अनाथ, मृत और विद्वान सभी को आत्म विस्मृत उस मन्दिर में स्थित देवमूर्ति में अद्वैत दर्शन गहन विचारों में डूबता उतराता रहा, तब मेरे मन में यह विचार आया कि यदि यम गुप्त राष्ट्र के उद्धारमें हाथ बटावे, यदि इन लोकाधिकारियों को, जो यहाँ अपने प्रभव, अविचार, विद्वत्ता सबको भूलकर श्रद्धामूर्ति बने खड़े हैं, यम गुप्त 'उठो, जागो और पर प्राप्त करो' का गुरुमन्त्र दे, उनमें एकता, समानता, विश्वमन्त्री जीवन और उत्थान की भावना भर दे, तो आज ही भारत का भाग्य जाग उठे। इस स्थान पर मैं किसी को शका है न सदेह, सभी एक रसमय हैं। मुझे यह कल्पना भी नहीं कि उस मन्दिर के वातावरण को भेदकर इस मन्दिर का कोई अमाधिकारी ऐसा साहस कर गुजरात कि कि वह अपने उस निश्चयके सामने इस विशाल सम्पत्तिके प्रभुत्व और अविनाश सम्मान को ठोकर मार देगा।

मैं समस्त हिन्दू जाति से यह प्रश्न करता हूँ कि वह उस बात पर विचार करें कि इस धर्माधिकारी ने कौन सा अनतिक्रम किया है? फिर मैं समस्त हिन्दू युवकों से यह भी जोरदार अपील किया चाहता हूँ कि वे अपना तिलम्व इस युवक यमगुप्त का अनुकरण करें, वे लाखों बहिनो को इस लज्जा और अविचार से परिपूग जीवन में उबारें, उन्हें कर्तव्यनिष्ठ सुगृहस्थिया बना दें, उन्हें आनन्ददायिनी बनावें, उन्हें चतुर और पवित्र पत्निया बनावें। वे समाज की जड़ से इस पाप के पाँदों का गौदर फर दें। वे अपवित्र को पवित्र, अधम को अम, अशुभ को शुभ बना दें। यह भारत की अम-क्रांति का सबसे उन्नत, सबसे उत्कृष्ट काय होगा।

क्या आपको मालूम है कि भारत में पाँच लाख से ऊपर ये अभागिनी बहिनें हैं, जो अवश्य ही किसी माता की पुत्री और किसी भाई की बहिन हैं। वे अपने नाचडनीय

व्यवसाय में प्रति १५ साठ करोड़ रुपया भारत के अग्रयमी युवकों से कमाती है जिस का जाड़ बारह वर्षों में वह नर अग्र्य हाता है जिसका सिफ मंद पांच फराड है। वन के इस भयानक अमृतव्यय के साथ मानसिक मरिन्ता और घृणित रोगों की समाप्तकारी वृद्धि का हिमात्र पृथक् है।

मंत्रिप्रासप्तक वह मन्त्रा है कि उन प्रहिया को मस्करि खूब उत्तम, स्मृति पूग है, पत्र श्री १५ पग स्फरण उत्तम है। यति प्र मित्राही जाकर म मर्पायिक भावना म्दर रखा जाण, उह प्रतिष्ठा या ममम्पान मानसिक उत्तमि क्तव्य यांर सामाजिक दायित्व का निष्ठा दी जाय ता य प्रहिन समां की मभ्य सिाया म एक ही पीली म प्रगाररा की टमकर न मरती है। आज भी उग जाति की मरुडो प्रहिया को बहत म राजा म्दाराजा और रईमा ने प्रग म्दारा हया है, यति मुभ्म उत्तमि फह रिम्न सागी जाय और मे उम प्रकाशित करे, तो फ्वाचित मभ्य समाज म लहवता मच जाय। उनम म मिशो ने भी श्रीदामाटरालजी की भाति मत्माहम नही किया मि उम अग्नि प्रां म की माप्ती लार 'प्रमप नी' का रूप द द, उहाने उह रगती बना रया है। य तन मन मे उनक काम ने, उहा म्प्रागो रियामत न पर युदा दो है उ होने प्रपगी उज्जव प्रांरु भी ता र्गो दो है। ता भी मनुष्य फत्र रूप पर डतना नही कर मरता। अग्रय ही उन प्रहिया ने अपन गुणा की भी करामात दिखायी है। गाप रूप की अग्रयना फरके अपन का मयमी क्त्ने का लोग रच सकते है, पर यदि प्राप किमी रीम गगा की भी केव न्गलिण अहलना करे मि समाज म उसका अमुक स्थान है ता मे क्के की चोट फ्वा कि गाप म्द नही, कायर है।

म आपका यान मित्राह के म्म ५ मे प्राचीन हिहू परिपाटी की गोर आन पित किया चाहता है। प्र जा गार्ग की अति प्राचीन म पुस्तक है, उसम मित्राह के म्म ५ म जानपान का मेदभाव विदुता न रा। रहा अग्रो प्राविशाण माता पिता द्वारा ही गती जाती थी। प्र श्वद की मित्राह म्म ५ की कथाण अत्यन्त मनोरम है, जिनका गात्र हम प्रहा म्दप म दने है।

ह उमारी, मय ने तुम्हे प्र न म प्राया है, अग्र हम तुम्हे उगसे मुक्त करके तम्हे नर पति म्द गाथ एम स्थान पर रखने है, जो म्चाउ और पुण्य का घर है (१०००६। मन् १६ प्र ता २२)

तुम्हे मन्तान ही और तुम्हे प्राणीगत मिले। अपने प्र का काम प्रमत्तामे कर, अपना गरीर म्म पतिने गाथ एम कर और युदापे तम उम प्रम प्रभुत्कर, (१००२०)

अग्र देवता हमारे (अग्रयु क) हृदयो को एक कर, जसे दो पात्रों के जन मयुक्त हो जात है। (१००१५)

यदि किसी स्त्री के दम पति जो ग्राहण नहीं हो चुके हो प्रां यदि उसके उप-

रा त कोई ब्राह्मण उससे विवाह किया चाहे, तो केवल वही अपना पति है। (अथर्व वेद ५। १७।८)

इससे पता चलता है कि स्त्रियों की विवाह सम्बन्धी स्वायत्तता कहा तब थी।

ब्राह्मणकाल में बहुभार्या होने लगी थी, तथा स्त्रियाँ अपने पतियों के सिवा अथर्व पुरुषों से भी सम्बन्ध रखती थीं। यह सम्बन्ध विशेष आस्थाओं में नियोग कहाते तथा वधुरीति से किए जाते थे और कभी कभी गुप्त भी होते थे। उदाहरण के लिए याज्ञवल्क्य ऋषि की दो पत्नियों का उल्लेख काफी है। ऋषि भी जब अनेक पत्नी रख सकते थे तब औरों की तो बात ही निराली है। ऐतरेय ब्राह्मण ३, २३ में स्पष्ट लिखा है कि— एक मनुष्यके कई स्त्रियाँ हो सकती हैं, पर तु एक स्त्री के साथ कई पति नहीं हो सकते। शतपथ ब्राह्मण में एक ऐसी घटना का उल्लेख है, जिससे हम बात का पता चलता है कि स्त्रियों के गुप्तप्रेमी होते थे।

शतपथ ब्राह्मण २।१।२।२० में यज्ञ के प्रसंग में लिखा है, 'इस पर पतिस्थान्त्र वह जाता है, जहाँ यज्ञ करानेवाले की स्त्री बैठती है। जब वह उस स्त्री को तो जाना (?) चाहता है, तब उससे पूछता है कि तू किससे ससग रखती है? अब यदि किसी की स्त्री किसी दूसरे मनुष्य से ससग रखती है, तो वह निस्सन्देह वरुण की अपराधिनी होती है। इसलिए वह उससे पूछता है कि जिसमें वह मन ही मन में वेदना के साथ यज्ञ न करे, क्योंकि पाप कह देने से कम हो जाता है, क्योंकि वह सत्य हो जाता है, इसलिए वह उससे इस प्रकार पूछता है, और जो वह ससग नहीं कबूलती तो उसके सम्पत्तियों के लिए हानिकर होगा।'

उपनिषद् में जो जहाँ तहाँ उदाहरण पाए जाते हैं, उनमें पता चला है कि उस काल में भी स्त्रियों की स्वतन्त्रता के प्रति लोगों की कोई विरक्ति या तिरस्कार का भाव नहीं था। सत्यकाम जावाल का उदाहरण ही इसका बहुत पुष्ट प्रमाण है। उगी प्रकार शतपथ ब्राह्मण (१।१।६।२।१) और ऐतरेय ब्रा० (२।१।६) उगी के पुत्र कर्म का वृत्तान्त है, जिसने उसे यह कहकर यज्ञ से निकाल दिया था कि यह दागी का पुत्र है, पर तु वह देवता और ब्राह्मण दोनों ही से परिचित था, वह ऋषि ही गिना गया।

बहु विवाह की प्रथा उस समय में केवल भारतवर्ष ही में, प्रत्युत अथर्व देशों में भी थी। सिकन्दर महान, और उसके उत्तराधिकारी जिमीमन्त्र, मित्युम्बर, अनेकों, डेमीट्रियस, पिट्स आदि सभी अनेक पत्नी रखनेवाले थे। द्रौपदी, तुती, तारा, मदीदरी के उदाहरण भी तत्कालीन विवाह सम्बन्धी स्वतन्त्रता पर प्रकाश डालते हैं।

स्मृति में यदि 'पुत्र' शब्द की व्याख्या देखी जाय तो उसमें प्राचीन स्मृतिकाल के विवाह बन्धनों पर भी काफी प्रकाश पड़ेगा।

गौतम, जो सवप्राचीन स्मृतिकार है, इतने प्रकार के पुत्र मानता है—

१—ग्रौरस (अपने वीय से अपनी वमपत्नी मे) २—क्षेत्रज्ञ (अपनी स्त्री मे दूसरे पुरुष के वीय से उत्पन्न) ३—दत्तक (गोद लिया हुआ) ४—कृत्रिम (माना हुआ) ५—गूवज्ञ (गुप्त रीति से उत्पन्न किया हुआ अथान् गुप्त प्रेम के परिणामस्वरूप) ६—अपविद्ध (त्यागा हुआ) ७- कानीन (अपनी स्त्री का कुमारी अवस्था मे उत्पन्न पुत्र) ८—सहोष (गभवती दुःखिता का पुत्र) ९—पोनभव (दुबारा विवाहिता अर्थात् विवाह द्वारा उत्पन्न) १०—पुत्रिका पुत्र (नियुक्ता क या का पुत्र) ११—स्वयदत्त (स्वयं दिया हुआ पुत्र) १२—क्रीत (मोल लिया हुआ पुत्र) ।

बोधायन और वशिष्ठ गौतम के बाद के स्मृतिकार हे। उनकी सम्मति गोतम से कुछ भिन्न हे—उनके मत स सजाति की पत्नी मे उत्पन्न पुत्र ही 'ग्रौरस' माना गया हे। किसी मृत व्यक्ति की या हीजडे की, या रोगी की स्त्री से यदि कोई व्यक्ति उसके पति की अनुमति लेकर पुत्र उत्पन्न करे, तो वह क्षेत्रज्ञ कहाएगा। इस प्रकार इन स्मृतिकारो ने जाति के बान तथा कुछ विशेष नियम बना दिए थे तथा 'निषाद' नामक एक नए पुत्रकी सृष्टिकी। निषाद वह पुत्र हे, जो द्विज जातिके पुरुष और शूद्रा स्त्रीसे उत्पन्न हो।

इन उद्धरणो मे यह भली भांति समझा जा सकता हे कि स्त्रियोके विवाह के सम्बन्ध मे किस प्रकार की स्वाधीनता थी और उन सब विषय अवस्थाओ मे जिन्हे वीरे वीर हिंदू समाज ने रोक दिया हे, जिससे गुप्त पापाचार बढ गए हे, जो सतान होती थी, उन सबके दायभाग नियत किए गए हे। आज विवाह सम्बन्धी कठोरताओ के कारण प्रायः ये सभी उत्पन्न पुत्र जन्मते ही मार डाले जाते हे या इनके गभ गिरा दिए जाते हे।

आपस्तम्ब जा बोधायन मे एक शताब्दी पीछे हुआ हे, विवाह सम्बन्ध मे स्त्रियो की स्वाधीनता का बहुत अंश तक बाधा देता हे। वह कहता हे—

'पूर्वजा सो उनके प्रताप के कारण पाप नहीं लगता था, अब जो उनका अनुकरण करेगा, पाप का भागी होगा। (आप० १०)' किसी पति को अपनी स्त्री, अपने हुटुम्ब सो छोड़कर, दूसरे को अपने लिए पुत्र उत्पादनके अभिप्राय से नहीं देनी चाहिए।'

यहां हम यह कह देना ठीक समझते हे कि वेद और गार्हग्यान मे जबकि वग विभाग हो गए थे, विवाह के सम्बन्ध मे केवल गोत्रो का प्रभाव था। जातिभेद न था। मत्र जाति के स्त्री पुरुष परस्पर विवाह करते थे। कवल आपस्तम्ब ने सत्रप्रथम अनुलोम और प्रतितोम विवाह की रीतिया विभक्त की। जहां भिन्न भिन्न प्रकार के विवाह सम्बन्धो के आधार पर पुत्रों मे केवल वयक्तिक नामभेद था, और जो केवल दायभाग के उपयोग के लिए था, उन पुत्रो की पथक जातिया विभक्त कर दी। जस—

१—शूद्र पति और गार्हग्य पत्नी से उत्पन्न पुत्र 'चाण्डाल' ।

२—शत्रिय स्त्री और शूद्र पुरुष से उत्पन्न पुत्र 'बैन' ।

३—वश्य स्त्री और शूद्र पुंस्य स उत्पन्न पुत्र 'अग्न्याग्निनि' ।

४—ब्राह्मण स्त्री और वश्य पति स उत्पन्न पुत्र 'रामस्य' ।

५—क्षत्रिय स्त्री और वश्य पति स उत्पन्न पुत्र 'पोतस्य' ।

६ ब्राह्मण स्त्री और क्षत्रिय पति स उत्पन्न पुत्र 'भूत' ।

इसी प्रकार निषाद, अम्बष्ठ आदि जातियाँ भी उल्लिखित हैं। अग्न्याग्निनि नाम की जातिभेद को पीछे के स्मृतिकारों ने बहुत विस्तार दे दिया है और यह भी कहा जा सकता है कि उनकी कोई गिनती ही नहीं रह गयी है।

जब हम ऋग्वेद स्मृति में विवाहों का उल्लेख देखते हैं, तब उन प्रकार के विवाह हम दृष्टिगोचर होते हैं। आपस्तम्ब भी वही उच्च विवाहों को मानता है। परन्तु गोतम और बोधायन ने विवाह की ग्राह्य रीतियाँ लिखी हैं। इन सभी विवाहों में जाति या वर्ग का कोई भी बंधन नहीं है। केवल गोत्र और प्रवरका ही विचार है। ऋग्वेद और आपस्तम्ब और बोधायन भी गोत्रों, प्रवरों और पीढियों के बंधन को ही दर्शाते हैं। आज भी विवाह के नियमों में वही बातें सावधानी से देखी जाती हैं, परन्तु अपनी ही जाति की तग दावारा में और एक ही जाति में अलग-अलग गोत्रों का मिलना असम्भव था, इस लिए अमरय गोत्रों की लोभों ने कल्पना कर ली है कि जिससे सुनकर दृष्टिगोचर होता है।

यह हुई पौराणिक काल से प्रथम की बात। अत्र पौराणिक काल का हाल सुनिए। वर्तमान मनुस्मृति जो श्लोकबद्ध है और जिसमें आप लोग मनुस्मृतियों में रामभक्त अति पुरानी स्मृति रचाल करते हैं, पौराणिक काल की स्मृति है। परन्तु जब भारत में बौद्ध धर्म का जोर था तभी वह सकलित की गयी थी। इस स्मृति में तीन प्रथम वर्गों की जाति के अर्थात् ब्राह्मण, क्षत्रिय, वश्य के मसग से नीचे जाति की स्त्रियों से जा पुत्र हो उसे पिता की जाति का ही माना गया है, नवीन जाति का नहीं। प्राचीन स्मृतिकारों की अपेक्षा इसने वह नवीन विभाग किया था और उच्चजाति की स्त्रियों में नीचे जाति के पुरुषों से उत्पन्न सन्तान को वर्गशून्य कहा था। यह वर्ग उच्च जाति की स्त्रियों की स्वतन्त्रता रोकने की चेष्टा की गई थी। अतः अथ कहा है कि उच्च जाति के पुरुष अन्य नीचे जाति की स्त्रियों को अपने घर में नहीं ले सकते थे, परन्तु उच्चजाति की स्त्रियों की वह स्वतन्त्रता छिन गयी थी और यदि कोई ऐसा करे तो उसके सामाजिक अधिकार और उसके पुत्रों का दायभाग भी अतिक्रमण से छिन जाते थे। मनु ने विवाहों का उल्लेख किया है, व वही प्राचीन है, गिफथार्ड और फिलिपस परिचित कर दिया है। इन विवाहों में सबसे बड़ी बात यह है कि नया गोत्र नामस्तम्ब स्मृतित्वा छिन जाती है और वह पिता के दान की वस्तु बन जाती है।

मनु ने जब अध्यायक २०४ श्लोक में एक अद्भुत बात लिखी है कि यदि वर को कन्या दिखायी जाय और विवाह दूसरों से किया जाय तो वह एक ही मृत्यु में दोनों

से विवाह कर सकता है। मनु ने पुनर्विवाह करने का भी अधिकार स्त्रियो से छीनने की चेष्टा की है। एक स्थान पर वह १२ वष की ऋया को ३० वष के मनुष्य से विवाह करने की सम्मति देता है (१०।६४)। वह यह भी कहता है कि पिता को चाहिए कि वह अपनी कया किसी पसिद्ध सुन्दर पुरुष को देदे भले ही वह उचित अवस्था को न भी प्राप्त हुई हो। वह त्रिववा या सववा सभी स्त्रियो को अथ पुरुष के ससग से बचाना भी चाहता है। वह उहे आजीवन पुरुषो के आधीन बना रखना चाहता है, वह बल पूर्वक पति के प्रति उनमे श्रद्धाभाव उत्पन्न किया चाहता है। वह उहे बताना चाहता है कि पति पृथ्वी पर सबश्रेष्ठ है।

मनु ने उच्च जाति के पुरुष को नीच जाति की स्त्री से विवाह करने की स्वतन्त्रता दी थी। परन्तु याज्ञवल्क्य ने इसका विरोध किया है। वह विधवाओ को मृत पति के साथ जीवित भस्म होने का आदेश देता है। पाराशर स्मृति की भी यही सम्मति है।

पुराणो मे इन सब आधुनिक स्मृतियो की छाप पडी है। अलबरूनी ने भारत मे देखा था कि विवाह फिर विवाह नहीं कर सकती थी। वह या तो जीवन भर अवध्य भोगती या जल मरती थी। उच्च जातिया अपनी ही जाति मे विवाह करती थी।

इस प्रकार हम देखते है कि प्राचीन हिन्दू जाति की विवाह पद्धति धीरे धीरे सकुचित होते होते अतत यहा तक सकुचित हो गयी।

यह सब धर्मशास्त्रो का विवाह सम्बन्धी अनुशीलन मुझे इसलिए करना पडा कि श्री दामोदरलाल जी एक प्रमुख वर्माधिकारी है और उनके आचार का प्रभाव हिन्दुस्तान की अतभावना पर पडेगा। पाठक यह समझ गये होंगे कि धर्मशास्त्रो की मर्यादा के त्रिपरीत तो उनका यह भाव नहीं हो सकता। अब केवल तीन बातें विचारने योग्य रह जाती है—

१—एक पत्नी के रहते उन्होने विवाह क्यों किया। मे यह स्वीकार करूंगा कि मे यह एक निन्दनीय और नीतिहीन भाव मानता हूँ कि एक पत्नी के रहते दूसरा विवाह किया जाय, परन्तु विचारने की बात तो यह है कि यदि वे इस अभागिनी बहिन से विवाह न कर किसी स्वजातीया कुमारी से विवाह कर लेते तो कदाचित् किसी को भी इसम आपत्ति न होती। मे ऐसे भायसमाजी, सनातनी, काग्रेसी और अथ कई प्रमुख व्यक्तियो को जानता हूँ, जि होने एक पत्नी रहते दूसरे तीसरे विवाह किए है और वे समाज के शिखर नहीं। मे अपने उग्र विचारो के कारण इस प्रश्न को अनुचित समझ समझता हूँ पर तु दामोदरलालजी जसी परिस्थिति के व्यक्ति के सामने यह उतना महत्त्वपूर्ण प्रश्न नहीं है। राजपूताने के साधारण राजा रईमो के यहा भी दजनों स्त्रिया होती है। समाधारण भी मारजाड मे बहूया अनेक पत्नी रखते है। वह दोप तो तब तक दूर नहीं हो सकता, जब तत्र स्त्रिया अपने उत्तरदायित्व को न समझे और

अपने अधिकारों की रक्षा करने का बल पुरुषों की भाँति उनमें न आ जाय।

२—दूसरा प्रश्न यह है कि उन्होंने समाज के शिष्टाचारों से स्त्री को ही क्या ग्रहण किया और उसे यह सम्मान दिया। मेरे पास उस बात का यह उत्तर है कि जो कोई किसी स्त्री या पुरुषसे यह प्रश्न करे कि तुम क्यों परस्पर एक दूसरेको प्यार करते हो, अमुक को क्यों नहीं करते, वह प्रश्नकर्ता ही गँवार है। विज्ञान न ऐसा दाँव न नहीं बनाया कि कोई किसी के प्रति प्रेम या आकर्षण का कारणों को ताप तोलकर बता सके, न समाज का ही यह अधिकार है कि वह उस बात का प्रतिबन्ध रखे। इस सम्प्रदाय में समाज का तो कर्त्तव्य यही है कि यदि दो प्रेमी स्त्री और पुरुष हैं, तो उनके प्रेम के बीच विवाह की मर्यादा होनी चाहिये, जिससे समाज में उस प्रेम के पुरे प्रीति न उग, और अव्यवस्था न फले। एक साधारण पिता यदि अपनी कन्याके प्रति किसी भी युवक का आकर्षण देख पाता है तो उसे अपनी भयानक अप्रतिष्ठा समझता है, परन्तु विवाह की रीति पूरी होने पर उसी युवक को उस कन्या पर पूरा अधिकार आ जाता है। वास्तव में पुरुषत्व स्त्रीत्व के लिये और स्त्रीत्व पुरुषत्व के लिये है। यह दोनों का नसर्गिक आदान-प्रदान है। समाज को मर्यादा चाहिये, वह मर्यादा 'विवाह' शब्द में है।

३—क्या यह पाप है? मे कहता हूँ कि यदि यह केवल इन्द्रिय परायणता है यदि इसमें विशुद्ध दाम्पत्य प्रेम और त्याग नहीं है, तो निस्सन्देह यह पाप है। पर, यदि इसमें विवेक है, त्याग है, गुणग्राहिता है, पुरुषत्व है अर्थात् ज्ञान है तो यह पुण्य है। किसी भी पुरुष के मन में पत्नी के प्रति और पत्नी में पति के प्रति जो भाव होने चाहिएँ, वे यदि दोनों में हैं तो यह अवश्य ही पुण्य है। खासकर जब कि पुरुष एक परम प्रतिष्ठित अति सम्पन्न सवसायन से युक्त वसगुरु है और स्त्री एक भाग्यहीन वृद्ध की असहाय समाज तिरस्कृत अबला है।'

उक्त लेख प्रकाशित होने के लिए भेजनेके बाद मुझे ज्ञात हुआ कि श्री दामोदर लाल जी अपनी नव विवाहिता पत्नी सहित दिल्ली पगारे हुए हैं और पृथ्वीराज रॉय पर एक आलीशान कोठी लेकर रहने लगे हैं। मैं उनमें बराबर तीन मिनट। और उनका मत जाननेकी चेष्टाकी। बीचमें पत्रव्यवहार भी हुआ। मैंने उक्त वे दो पत्र लिखे— प्रिय लालजी महाराज,

उस दिन आपकी इच्छानुसार खुले अधिवेशन में अछूता व सम्पन्न में आपने उदार विचार प्रकट करने की सब उचित सुविधाएँ करदी गई थी, पर तुम यह जानकर खेद हुआ कि ठीक समय पर आप कहीं किसी सिनेमा आदि में पधार गये थे। मनो रजन जीवन का एक प्रधान अंग तो है, पर उसका अपना एक सीमित स्थान ही रहना चाहिए, खास कर आप जैसे विशिष्ट व्यक्तियों के लिये इस खास अन्तर पर, जिनकी हजारी हृदय आपके ऊपर चरित्र की दुबलता का सन्देह कर रहें हैं।

मने आपसे दो मुलाकात की, तब तो मैं में समझता हूँ मेरा और आपका समय व्यर्थ ही नष्ट हुआ। मयादा और मकाच की तीव्रता ने हमें न खुदकर बात करने दी और न हम एक दूसरे को ठीक ठीक समझ ही पाए। यह सभी जानते हैं कि मैं एक अति उग्र समाज क्रान्तिकारी और अत्यंत कटु और नग्न लेखक हूँ और आप जैसे व्यक्तियों के शरीर, आत्मा और सम्पत्ति को समाज की ही प्रोत्साहन समझता हूँ, और आप जिस भाँति ईश्वर के सामने अपने धर्म के प्रश्न से प्रवृत्त हैं, उसी भाँति समाज के सामने कतव्य के प्रश्नों से प्रवृत्त हैं। आपसे पूजा नहीं देवता नहीं उपासना करके, जहाँ आज भी करोड़ों हिन्दुओं के प्राणों के द्रीभूत हैं, समस्त मनुष्यों से उच्च आसन प्राप्त किया है और इमनिष्ठा प्रत्यक्ष मनुष्य को, जो आपका सवापेक्षा उच्च समझने को अव्यर्थ है, यह उच्छ्वास करने का अधिकार है कि वह आपको वास्तव में हर तरह साधारण व्यक्तियों में उच्च रखे। यह उच्चता जहाँ अथवा शिथिल नहीं प्राप्त हो सकती। खासकर भविष्य के नवीन हिन्दू राष्ट्र में, जिसमें आपको अपने पूज्य पिता के बाद वही गौरवांश प्राप्त है जो उन्होंने पिछली अर्ध शताब्दी के विश्वासी भक्तों में पाया है।

इस समय आपके चरित्र पर ऐसा आरोप किया गया है कि यदि वह मृत्यु हो तो आपको अति साधारण व्यक्तियों से भी नीचे गिराता है। इस प्रकार के अग्र चरित्र, बहुत से राजा और राजाओं के आए दिन प्रकट होते रहते हैं और आमतौर पर लोगों की यह प्रारम्भिक प्रतिक्रिया है कि आप भी उसी प्रकार ऐयाशी और इन्द्रिय प्राप्ति में फँस गये हैं, स्वाभाविक ही हैं।

राजाओं और राजाओं की सम्पत्ति भी जन साधारण की सम्पत्ति है, परन्तु आप जैसे एक प्रभावशाली की सम्पत्ति तो मालहूँ आना जनता की है और मेरे जैसे तुच्छ व्यक्ति की दृष्टि में तो किसी प्रभावशाली को भिक्षा करके आना पेट भोजन करना तथा समस्त आय जनसंख्या में बाँटना उमका धर्म एवं कतव्य है फिर वह सम्पत्ति भले ही करोड़ों की हो। सच लागा कि विचार मेरे जैसे उग्र नहीं, इसलिए जनता आपके शाही ढँग के रहने सहने या सहनशीलता से देख सकती है, परन्तु चरित्रदोष को नहीं।

उन समस्त बातों पर विचार करते हुए आपके प्रति जो आन्दोलन उठ खड़ा हुआ है, उसका मर्यादा से निराकरण करना ही आपकी प्रतिष्ठा और मर्यादा की रक्षा कर सकता है। मैं तो यह समझता हूँ कि आप प्राचीन अन्धविश्वासों के भीतर पल कर भी, जिन्होंने हिन्दुओं का तत्सत्तम कर दिया है, विचारशील, साहसी, समाज क्रान्ति के लिए अग्रणी हिन्दुओं के भविष्य राष्ट्र के उपयुक्त युवक समूह हैं— जो उदात्त हिन्दु युवकों को रक्षित करने का आदेश स्थापित किया चाहते हैं। आपके इस विरोध को मैं इस भावना का एक उदाहरण समझता हूँ। अब यह आपका काम है कि आप मेरी यह भावना दृढ़ कर, अथवा सहस्रो युवकों की यह वारणा कि आप ईन्द्रिय-

अपने अधिकारों की रक्षा करने का बल पुरुषों की भाँति उनमें न आ जाय ।

२—दूसरा प्रश्न यह है कि उन्होंने समाज के शिष्टाचारों को ही क्यों ग्रहण किया और उसे यह सम्मान दिया । मेरे पास उस बात का यह उत्तर है कि जो कोई किसी स्त्री या पुरुषसे यह प्रश्न करे कि तुम क्या परस्पर एक दूसरों को प्यार करते हो, अमुक को क्यों नहीं करते, वह प्रश्नकता ही गँवार है । विज्ञान न ऐसा पाठ्य न नहीं बनाया कि कोई किसी के प्रति प्रेम या आरक्षण के कारणों को ताप तोताकर बता सके, न समाज का ही यह अधिकार है कि वह उस बात का प्रतिबन्ध रखे । इस सम्प्रदाय में समाज का तो कर्तव्य यही है कि यदि दो प्रेमी स्त्री और पुरुष हों, तो उनका प्रेम के बीच विवाह की मर्यादा होनी चाहिये, जिससे समाज में उस प्रेम के सुख बोज न उग, और अव्यवस्था न फले । एक साधारण पिता यदि अपनी कन्या के प्रति किसी भी युवक का आकर्षण देख पाता है तो उसे अपनी भयानक अप्रतिष्ठा समझता है, परन्तु विवाह की रीति पूरी होने पर उसी युवक को उस कन्या पर पूर्ण अधिकार आ जाता है । वास्तव में पुरुषत्व स्त्रीत्व के लिये और स्त्रीत्व पुरुषत्व के लिये है । यह दाना का नैसर्गिक आदान प्रदान है । समाज को मर्यादा चाहिये, वह मर्यादा 'विवाह' शब्द में है ।

३—क्या यह पाप है ? मे कहता हूँ कि यदि यह केवल इन्द्रिय परायणता है यदि इसमें विशुद्ध दाम्पत्य प्रेम और त्याग नहीं है, तो निस्सन्देह यह पाप है । पर, यदि इसमें विवेक है, त्याग है, गुणग्राहिता है, पुरुषत्व है कर्तव्य का ज्ञान है तो यह पुण्य है । किसी भी पुरुष के मन में पत्नी के प्रति और पत्नी में पति के प्रति जाँ भाव होने चाहिये, वे यदि दोनों में हैं तो यह अवश्य ही पुण्य है । खासकर जब कि पुरुष एक परम प्रतिष्ठित अति सम्पन्न सवमान से युक्त वमगुरु हैं और स्त्री एक भाग्यहीन पशु की असहाय समाज तिरस्कृत अबला है ।'

उक्त लेख प्रकाशित होने के लिए भेजनेके बाद मुझे ज्ञात हुआ कि श्री दामोदर लाल जी अपनी नव विवाहिता पत्नी सहित दिल्ली पारने हुए हैं और पृथ्वीराज राड पर एक आलीशान कोठी लेकर रहने लगे हैं । मैं उनसे बराबर तीन मिनट मिला । और उनका मत जाननेकी चेष्टाकी । बीचमें पत्रव्यवहार भी हुआ । मैंने उन्हें ये पत्र लिख-प्रिय लालजी महाराज,

उस दिन आपकी इच्छानुसार खुले अधिवेशन में ब्रह्मता के सम्प्रदाय में आपके उदार विचार प्रकट करने की सब उचित सुविधाएँ करदी गई थी, परन्तु यह जानकर रोद हुआ कि ठीक समय पर आप कहीं किसी सिनेमा आदि में पार गये थे । मनोरंजन जीवन का एक प्रवाह अग तो है, पर उसका अपना एक सीमित स्थान ही रहना चाहिए, खास कर आप जैसे विशिष्ट व्यक्तियों के लिये इस खास अन्तर पर, जबकि हजारों हृदय आपके ऊपर चरित्र की दुबलता का सदेह कर रहे हैं ।

मने आपसे दो मुलाकाते की, दोनों मम समझता है मेरा और आपका समय व्यर्थ ही नष्ट हुआ। मयादा और मयात्र का शीघ्र ने हम न खुलकर बातें करने दी और न हम एक दूसरे को टीक टीक समझ ही पाए। यह सभी जानते हैं कि मैं एक अति उग्र समाज क्रांतिकारी और अत्यंत कटु और नग्न लेखक हूँ और आप जैसे व्यक्तियों के शरीर, आत्मा और सम्पत्ति को समाज की ही प्रोहर समझता हूँ, और आप जिस भाँति ईश्वर के सामने अपने वम वचना से प्रार्थना करते, उसी भाँति समाज के सामने कतव्य के प्रश्नों से वचन देते हैं। आपसे पूछना चाहता हूँ कि आपका उपायना करके, जहाँ आज भी करोड़ों हिन्दुओं के प्राण संकटित हैं, समस्त मनुष्यों से उच्च आसन प्राप्त किया है और इमति प्रत्यक्ष मनुष्य को, जो आपका सवापेक्षा उच्च समझने को अव्यर्थ है, यह दृष्टि करने का प्रयास है कि वह आपको वास्तव में हर तरह से साधारण व्यक्तियों से उच्च दये। यह उच्चता जम अथवा गिनना से नहीं प्राप्त हो सकती। खासकर भविष्य के नवीन हिन्दू राष्ट्र में, जिसमें आपको अपने पूज्य पिता के बाद वही गौरवावधि पद प्राप्त है जा उन्होंने पिछली अथ शताब्दी के विश्वामी भक्तों में पाया है।

उस समय आपके चरित्र पर ऐसा आरोप किया गया है कि यदि वह सत्य हो तो आपको अति साधारण व्यक्तियों में भी नीचे गिराता है। इस प्रकार के अग्र चरित्र, बहुत से रडमा और राजाओं के आगे दिन प्रकट होते रहते हैं और आमतौर पर लोगों की यह धारणा प्रतीति आप भी उसी प्रकार गेयाही और इन्द्रिय वासना में फस गये हैं, स्वाभाविक ही है।

राजाओं और रडमों की सम्पत्ति भी जन साधारण की सम्पत्ति है, परंतु आप जैसे एक प्रमात्रिका की सम्पत्ति तो मानव आना जनता की है और मेरे जैसे तुच्छ व्यक्ति की दृष्टि में तो किसी प्रमात्रिकारी को भिन्ना करके आना पेट भोजन करना तथा समस्त आय जनसवा में लगाना उसका प्रम एव कतव्य है फिर वह सम्पत्ति भले ही करोड़ों की हो। मैं लोगों के विचार मेरे जैसे उग्र नहीं, इसलिए जनता आपके शाही ढँग के रहना महन या महनशीलता से देख सकती है, परंतु चरित्रदोष को नहीं।

उन समस्त बातों पर विचार करते हुए आपके प्रति जा आन्दोलन उठ खड़ा हुआ है, उसका मुक्तनी से निराकरण करना ही आपकी प्रतिष्ठा और मर्यादा की रक्षा कर सकता है। मैं तो यह समझता हूँ कि आप प्राचीन अग्रविश्वामो के भीतर पल कर भी, जिन्होंने हिन्दुओं का तहस तहस कर दिया है, विचारशील, साहसी, समाज क्रांति के लिए अति उग्र हिन्दुओं के भविष्य राष्ट्र के उपयुक्त युवक वमगुरु हैं— जो उद्-श्रीव हिन्दु युवकों को रक्षितों को कुचनने का आदेश स्थापित किया चाहते हैं। आपके इस विवाह को मैं इस भावना से एक उदाहरण समझता हूँ। अब यह आपका काम है कि आप मेरी यह भावना दृढ़ करे, अथवा सहस्रो युवकों की यह धारणा कि आप इन्द्रिय

वामना के चरित्रहीन शिकार है। आपके उस विवाह की जगह में य दो ही जाने हो सकती है, तीमरी नहीं। और मे और मेरे जस विचार जान मर गयउ मित्र प्रथम भावना का समर्थन करने पर आपकी जी जान से सहायता करने का और विपरीत हों पर भयानक विरोधपूर्ण आ दोलन करने को तयार है। जिनके साथ हजारों जाया माया रण भावुक हिंदू हैं।

हम लोग हम बात को सहन नहीं कर सकते कि उग विषय परिवर्तन में पत्कर आप एक वनी विलासी पुरुष की भांति येन तमाशो में अपना समय और हमारा पत्रि दान का वन व्यय करते रहे। हम यह चाहते हैं कि आप नव्य युवक दल के साथ न के क वा भिडाकर सडे हो। आप उनके वमगुरू बन।

आपको स्मरण होगा कि आपके सम्प्रदाय के आदि पुरुष, जय त्तिग भारत में उत्तर प्रदेश में आग थे, तब इसी प्रकार की लाउन युक्त प्रवृत्तियों ने उन्हें विचलित किया था। पर वे ऐसे तेजपूर्ण महापुरुष थे कि उन्होंने उत्तर भारत में अपना यह स्थान बनाया कि जिसकी प्रशंसा व्यर्थ है। आज त्रीसवीं शताब्दी के उम नवीन युग में हम चाहते हैं कि आप भी ऐसी ही कोई वनी भारी बात कीजिए। मृग जिस प्रकार उदय और अस्त होते समय लाल रहता है, तेजस्वी पुरुष भी उमी भांति उदय अस्त में अकरम रहते हैं। मैं तो आपको यह सम्मति दगा कि आप उत्तर भारत में एक करोड़ रूपयों की सम्पत्ति से एक नवीन मंदिरकी स्थापना करें, जो दूत अद्वैत सबके लिए समान भाव से खुला हो। वह मंदिर नव्य जाति के नव युवकों के हृदय का केन्द्र है। यदि यह आप करग, तो देखते ही देखते आप पर लाखों रूपयों का मेह परम जाणगा, और हजारों तपस्वी युवक जि हैं आज भारत पदा कर रहा है, आप की सेवा में खडे रहेंगे। आप सकडा वर्षों तक अमर हो जायेगे।

मे यह भी चाहूंगा कि आप अपनी नव विवाहिता पत्नी का पर्दे के पाप से मुक्त करें। खेल तमाशो के लिए नहीं, प्रत्युत उस सम्माननीय स्थान पर बठन के लिए, जिस पर बैठने का—आपसे विवाह करने के कारण उनका अग्रिहार है। उन्हें यह अमर दीजिए की वह बरती आसमान को कम्पायमान करने वाली आयाज में अपना पतित बहिर्नो के रोमाचकारी हाल बताकर पत्थर हृदय पुरुष को रमगा विग्नित करे। वे उन घृष्ट पुरुषों को भी विह्वल करे जो वसी अमहाय बहिर्नाको रमीन ताग्रेने टुफडो का लालच देकर पतित करते और उनके पतन के अग्रा प्रपूग जीवन का निराज्जनापूर्वक बैठे देखते और हसते रहते हैं, परन्तु विवाह की बेदी पर अम और अशर की सान्धी देकर स्त्रीधर्म की मयादा पालन की बात सुनना पाप समझते हैं। आपने यदि उन्हें विवाहा है, तो उनके प्रति आपका कतव्य केवल यही तक नहीं समाप्त होता कि आप उनके लिए सबस्य त्यागदे, प्रत्युत एक मद के नाते आपको उचित है कि आप उन्हें समाज

मे व० स्थान दिलात्र तो अपनी प्रसन्नता का मिलाना चाहिए और इसके लिए प्राणभक्त्यागन पढ़ तां त्याग ।

आपके उन कार्या के महायज्ञ आपकी बहुत मिनगे । जिनमें एक व्यक्ति में भी हू । अब आप विचार कर मुझे विग्न कि क्या आप मेरी योजना पर विचार करने का उद्यत है ? या हम लोग अ यत्न टु ख से यह समझ कि आपके सम्बन्ध में हमारी वाग्ग्या वित्कुल ही गत है ।

प्रिय लाजजी महाराज,

मैं तीसरी मुनाकान में भी मैं आपकी मनोवृत्ति को ठीक ठीक नहीं जान पाया । हा, यह मैं भतीभाति समझ गया कि आपके मंगितक में कोई महत्त्वपूर्ण योजना नहीं है, और किसी भी योजना की पूर्ति बिना योग्य साहस और अ यत्नमाय नहीं हाती । मुझे भय है कि आपके विषय में मैंने जा उच्च वाग्ग्या मनम बनाई है, वह कही गलत न साबित हो । मैं स्पष्ट रीति से नीचे लिखी बात जानना चाहता हू ।

१—क्या आपने यह विवाह करके प्राचीन रूटियों के तिरस्कार का उदाहरण समाज के सामने रखने का निग्न इतनी प्रती जोखिम उठाई है या यह योवनोन्माद और इन्द्रिय परायणता के खेल है ?

२—क्या इस विवाहसे वास्तव में नाथद्वारा मन्दिर के मूलत उत्तराधिकार से आपको उचित होना पगा है, और मन्मन्त्र आपके पिताजी ने आपको बहिष्कृत किया है, या यह सिर्फ जनता का भूटा भ्रम है । क्या आपने प्रथम ही में इन सब बातों पर विचार कर लिया था ?

३—क्या यह सत्य है कि आप वागा रूपों के जगहरात मन्दिर की सम्पत्ति में से लेकर आग है, और उ ह दिल्ली के जौहरिया के हाथ एकमुश्त बेचने का प्रब व दलाला की माफन कर रहे है ?

४—क्या यह सच है, कि आप अपनी नवविवाहिता पत्नी सहित योरोप जाना चाहते हैं, और जगहराता का फ्राम के राजाग में प्रचना चाहत है ?

५—क्या यह सत्य है कि आपकी प्रसन्नता ने ही यह विवाह आप पर जोर डालकर कराया है । यदि हा, तो किम अभिप्राय में ?

६—आप अपनी नवविवाहिता पत्नी के साथ एकत्र भाजन करते हैं या नहीं, और आप जातीय दृष्टि से उग नीचे ता नहीं समझते ?

७—यह विवाह करने से पूरा क्या आपका मानम था कि अमुक २ हिन्दू और मुगलमान व्यक्तिवाग आपकी प्रसन्नता का मन्त्र प्र रहा है । उनमें से तान भी प्रसन्न की है । वे मुसलमान पुरुषा के साथ मुसलमानी धम और मुसलमानी नाम के साथ रह चुकी है । क्या इन सब बातों का जानते हुए ही आपने यह विवाह किया है ?

८—क्या आप सिद्धांत रूप में यह मानते हैं कि दूत अद्वैत प्रत्यक्ष हिंदू को मंदिर प्रवेश का अधिकार है। क्या आप अपने तत्त्वज्ञान में एम एन मंदिर की स्थापना करने का प्रयत्न कर सकते हैं ?

मेरी आशा करता हूँ कि इन प्रश्नों के स्पष्ट उत्तर आप अतिशीघ्र निम्न भेजना का कष्ट करेंगे। फिर मैं आपके सावजनिक व्याख्यान का प्रबन्ध करूँगा जिनमें आप उपयुक्त घोषणाएँ कर सकें।

आपने मेरा त्रिधर्मिन्त्रमे प्रकाशित 'पाप या पुण्य' शीषक, लख पढ़ा होगा। न पढ़ा हो तो उसकी एक प्रति आपके पास भेज रहा हूँ। इसमें आप समझ जायेंगे कि मैं और इस पत्र के सम्पादक भी कहाँ तक आपके मित्र और आपके इस माय के समर्थन हैं।

परन्तु मैं आप पर प्रकट कर देना चाहता हूँ कि हमारी यह मंत्री और समर्थन तभी है जब कि आपने शुद्ध अतः भावना से यह विवाह किया है। मैं देखता हूँ कि अभी तक समाचार पत्रों में इतना आन्दोलन उठने पर भी आपने उसी की कोई सफाई जनता को नहीं दी। आपने मुझसे कहा था, कि आप मंदिर का धन चेंबर में हैं, यह बात असत्य है। परन्तु न तो अपने पत्र में आचरण में और न और ही किसी प्रकार से आपने इस सत्य पर प्रकाश डाला है। यह तो सच है कि आप साही टाउ म दिल्ली में रह रहे हैं। आपने कभी किसी सभा सोसाइटी में प्रवेश नहीं किया है। आपका समय किस प्रकार व्यतीत होता है, यह हम नहीं जान सकते। परन्तु हम में कोई शक नहीं कि आप देश और हिन्दू जाति के लिए कुछ कर नहीं रहे हैं। हम लोग, भारत के युवक यह भी चाहते हैं कि आपकी नवीन पत्नी महोदया का भी अपनी बहिनो के सुधार में तुरन्त जुट जाना चाहिए था।

और इस काम के लिए आपको भारत के नगर नगर में फिर से सार्वजनिक भाषण देने थे। आपकी पत्नी को भी पर्दे को चीर कर कलकसे धुला हुआ मुख दिखाना चाहिए था, जबकि उनका कालिमापूर्ण मुख लोग देख चुके हैं। परन्तु आप यह सब नहीं कर रहे। मेरी तीनों मुलाकातों में आपने सिर्फ मौखिक साहाय्य ही मेरे मित्रों को महत्वपूर्ण काम नहीं बताया।

मैं आपको बताना चाहता हूँ कि हम लोग इस प्रकार आराम में आपकी मीज बहार नहीं उड़ाने देंगे। आपने जो काम किया है, वह साधारण नहीं। या तो वह घोर पाप है, या भारी पुण्य। हम उसे पुण्य समझ कर उसकी प्रशंसा करने हैं, पर यदि वह पाप है, तो हम आपके लिए लाखों जनता को योग्य देते हैं। इसलिए या तो हम आपका समर्थन करेंगे, या इतना भयानक आन्दोलन खड़ा करेंगे कि कोई शक्ति आपकी प्रतिष्ठा की रक्षा नहीं कर सकती। अतः मैं यह सूचित कर देना भी आवश्यक समझता हूँ, कि यदि उपयुक्त समय में मेरे इस पत्र का उत्तर न मिला तो मैं अपना वह

पहला और यह पत्र भी समाचार पत्रों में उपा दगा ।

आपने इस विवाह के सम्बन्ध में आपने पिता जी एवं बम्बई तथा अयन के आपके सम्प्रदाय के आचार्यों का क्या मत है, इसके लिए मैं शीघ्र ही यात्रा कर रहा हूँ, और पाशा करता हूँ कि अगले सप्ताह आपके पिता जी का मत मैं ले लूँगा । तब मैं शक्ति भर आपके सबब में लोगों की भ्रांति मिटाने का उद्योग करूँगा ।

इन पत्रों के उत्तर में उन्होंने मुझे यह पत्र लिखा—

श्री हरि । आचार्य श्री चतुरसेन जी शम्भू आशीर्वाद,

आपका पत्र ता० २०-१ २२ का प्राप्त हुआ । उत्तर में देरी हुई क्षमा लीजिए । मनुष्य की मोक्षार्थी जानना अयन दुस्तर है । महत्त्वपूर्ण याजन ईश्वर-च्छानुसार समय पर सफल होती है । पहिने प्रयत्न होने देना बुझिमानि नहीं । छोटा आदमी सफल होता है, कभी बड़ा । ईश्वर-च्छानुसार व परिस्थिति ही मन्त्रका कारण है । आपके प्रश्न का उत्तर निचे लिखता हूँ ।

१ (क) यह विवाह मा यामिक रूढियाँ के मुद्दारे के उदाहरणार्थ समाज में प्रचलित हो सलिय—

(ख) यह विवाह शब्द से ही उत्तर होता है, अन्यथा अन्य प्रकार से भी उष्टिमिधि हो सकती थी ।

२ इस विवाह से मेरा नाथद्वाराके उत्तराधिकार वचित नहीं हो सकता, क्या कि वह परमनल है और जाता पर भी जभी ज्यादा असर पढ सकता है । जब किसी स्थान पर स्थित होकर अपने उत्पय का प्रचार किया जाए । परन्तु कट्टर जाती वालों से बहुत मभय है कि अलग होना पड़े । पिता जी भी शायद इच्छित करे, इसकी मुझे अभी तक कोई मुचना नहीं । यह सत्य होगा यह मुझे पहले से निश्चय था ।

३ अगत्य है ।

४ उस समय तक यारोप जाने का विचार नहीं है ना जवाहरगत बेषन का है ।

५ यह विवाह मैं अपनी प्री धमपत्नी के कहने में किया है, वयाकि वह प्राय ररणा रहती है ।

६ एरुत्र भाजन करत है, जातीय दृष्टि से नीच नहीं समझता । शम्भूत

७ हा, इन बातों को जानते हुए विवाह किया । अभी तक कोई सतति नहीं हुई और तीन साल हुए मुमामानी धम जोटकर अपना पहला हिंदू धम को शुद्ध होकर ग्रहण कर लिया और बाद में पद चर्चा से वैष्णव शिक्षा भी ले चुकी ।

८—दूआखून में मुगलमान या ईसाई कोई भी धम का हो ईश्वर के सामने समान है । श्रद्धा भक्ती ही अधिकारी अनाधिकारी बनाती है । इसलिए ईश्वर मन्दिर में सभी ईश्वर सेवन कर सकते हैं । प्रभु दुया में पबलिक व जातिगत मदिरो का सवाल

होता है। वही कानून के मवाफिक प्रमल होना चाहिए और जीव गति पर मगभी उस के मनुष्य मात्र ही जा सक वलकी जित मात्र भी जा सता पर मतिर ही रापाता इन का मैं समथक हूँ। पर मे स्वय आधुनिक प्रमिती का टगने हर राय मार अटग इन मे प्रसमथ ह। तटस्यतया मुभम जो सहायता हा सकगी वह सकगा।

‘विश्वमित्र’ का पटा और समभा। मन यह विवाह गपा गुन गत रगग ही भावनाओ मे किया है, ययानि यह मेरा परमतन राय टगताण जन। व समाना पना को सफाई देने की आवश्यकता नती समभी। मतिर का उन नपर अगा नती आया। पर श्रीनाथजी का मतिर पवलिक नही ह। अपन मात्र सफर हा मामता गामान जाया हूँ जमे धनि राग आया करत है। आपन जा समय व्यतित राग म व टुमरी वाता के लिए लिखा है यह जातिगत ह। हा नतना सच है कि म पि रागर हा रा विरागी हूँ। पर तु प्रवृति म म स्वास्थ्य के उपर विगप नय रगता व आर ता व जानी जब काम करन याग्य गमभ कर जप्र सता नना चाटगी उस व। जहा तस हा सकेगा सटप स्वीकार करु गा। व्रतिय पत्नी भा मरी तरह काय रता हा मार है। यह ही नती बलके बडी पना वगरह भी।

यह काय जा मन किया है वह सा राग नती वता उदाहरण हाकर पी क्राति हो और सप्र पहिा क गास्राव माफिक अतय हा अं ग य हा आगरे हा, न के मोज वहार के निय। म विवाह क सध म म पिता जा गार हमार मध्रप्राय क लागा ता मत गिवाफ ही ह एमा म मानता ह। आप हा मर लिए मष्ट वरने की आवश्यकता नती है। यस्तु आप अपनी दृष्टि म मस जनता का काि नाभ समभत हो तो जरूर कष्ट सिधारये।

ह०—हिज हातीनस श्रीमान गोस्वामी चि० श्री० १०५ श्री दामादरलान प्रासा साहेब ओफ नाथद्वारा १० गो० दामोदरलान।’

पर तु मुभे अत्यंत दुःख रा यह लिखना पटना है कि अत्र प्रमापिकारी व सख म मने गपने लेख म जा आशा की पी वह गविवाप म असपूग थी। अत्र दामोदरलान एक निस्तज, दवू, और आत्माणे प्रति सागरग मे आत्मा फिले। उन की बात चीत का कोई भी प्रभात मुभ पर नही पडा। सधभ्र है कि म कुठ गागरग पढे-लिखे भी रहे हो, परंतु अत्रि मिद्वान भी नही पतीत थ। उसी बातचोगे उस बात का भी पता लगा कि मतिर मे उनका काि भी मध्र म रिच्छे नती हुआ है और न उनके पिताजीमे ही फा टुभाप है। वे अत्र मतिरको हानि ग वचाने और भक्तजना मे उठ खडी हुई नई गशाति के दूर होत तक, साथ ही मर भगडे मभता क दूर होत तक दिल्ली की एक गानदार कोठी मे रह रह ये उनका कोई प्रोगाम नती, काई काय नही, कोई योजना नही। वे अपना समय येल तमाशा म और मदनमरा (?) म व्यतीत

करते थे। उनकी जुगुनी बातचीत सुनकर और जो मुद्दमा उनकी नवपत्नी के पूव पति न थायर किया, उसमें समझने के रहस्य को (बीस हजार रुपया पूनपति खामाहब को दिया गया) जानकर मन समझ लिया कि वास्तव में उनके विषय में मेरा जो अनुमान पतल है वह ठीक नहीं। मन अपनी यात्रा में मदमोर से ही एक विस्तृत पत्र विश्वामित्र के वचना का यह भेजा—

मेरे नाथद्वारा काङ्गानी, उन्धपुर आदि का दौरा करके अभी यहाँ आया हूँ। वहाँ श्री दामादरनाथजी का क्रम भयानक रीति से चचा का विषय हो रहा है। मेरे नाथद्वारे में महाराज श्री गोत्राननाथजी से मिलना। वे राने पोटने लगे। गात्र में प्रिजली की भाँति भर आने की खतर फल गई और ज्योही में मंदिर में निरुत्ता, मकड़ा आत्मिको न पेर लिया। भाँति भाँति के प्रान्त पूछने लगे। विश्वामित्र के गरा न कारण लोग का मर ऊपर गुना राप था। ठाट में बड़े तक लाग श्री दामादरनाथजी पर खुत्र रूप में क्रुद्ध हँ और मुझे न उनका समथक समझकर मर रास के विषय में कहने लगे—या तो आप विश्वत गया गए है या आप भ्रम में है। आपके लेख में जिन कारणों की युक्ति है, श्री दामादरनाथजी में उमरा काई सम्बन्ध ही नहीं है। गहरी छानबीन में मुझे पता लगा है कि प्रथम ही से श्रीदामोदरनाथजी का चाल-चलन बहुत खराब रहा है। उतान गरीब ब्राह्मण गोर अथ जातियाँ की सकडा क यात्रा और स्त्रियो का भ्रष्ट किया है और उनमें मित्र आदि प्रमाद आदि के लालच में इस कुकर्म में उनकी सहायता करत रहते हैं। मन कुछ ऐसे व्यक्तियों के बयान कलमबंद किए हैं और वे खुने तोर पर ये भद गानन को तयार हैं। मुझे यह भी प्रतीत हुआ है कि वे इस बार यहाँ से मथुरा जी में वातन का मुण्डन आदि कराने के बहाने वहाँ से गए हैं और उस काम में मदद दी है। मैं अग्रिमारी श्री रणराजलान जी ने एक मोटी रकम प्राप्त करके उत जा। मैं मदद दी है। मैं अग्रिमारी जी से मिलना गार वह मेरी जिरह में बररा गए। मन उसे सत्र रास से जानती ता वे कुछ भद सोल बडे। उन्होंने श्री दामोदरनाथजी में प्रति प्रम विश्वासता सिगाए।

हमा का यहाँ मुजगन लिए आना और श्री दामोदरनाथजी तक उसका पहचाना इसके रागव में भी कुछ अद्भुत बात पकट हुई है। उस चेष्टा में इस स्त्री ने कुछ व्यक्तियों को यहाँ आत्मसमर्पण भी किया था। श्री दामादरनाथजी जिन कारणों से उनकी और उतने आर्कषित हुए हैं, वह अनिश्चय युक्तिमत्त है।

यहाँ सबत्र यह प्रसिद्ध है कि नाराज रूप में जवाहरात ले गए हैं। यह बात सत्रथा गलत है कि नाराज हाथ है और वन तोकर नहीं गए हैं। उदयपुर जाकर मेने श्री दवार से मन्नाफात ही और मंदिर के जवाहरात, जिनके बेचे जाने की चचा बाजार में है, मेने की। और भी कई बातें हुई। दरवार उनसे बहुत क्रुद्ध है। वे क्या

होता है। वहां कानून के मुवाफिक़ ग्रामन हाना चाहिए और जोग मंदिर में सभी उस के मनुष्य मात्र ही जा सकें वरुकी जित्त मात्र भी जा सकें ऐसा निर्णय किया गया था। पर मैं समर्थक हूँ। पर मैं स्वयं आधुनिक प्रस्थिति का देखते हैं। मैं स्वयं भी ग्रामन करने में अस्मत्थ हूँ। तटस्थतया मुझमें जो सहायता हो सकेगी वह करूंगा।

‘विश्वामित्र’ का पढ़ा और समझा। मैं यह पत्रिका अपने गुरु गुरुजी की भावनाओं में किया है, क्योंकि यह मेरा परमपूज्य गुरुजी की भावनाओं को सफाई देने की आवश्यकता नहीं समझी। मंदिर का मैं नहीं समझता था। पर श्रीनाथजी का मंदिर पब्लिक नहीं है। अपने साथ गुरुजी का सामान जाया हूँ जमे धनिक लाया गया करने है। आपन जा समझें यतिवत्ता मैं प्रसंगी बातों के लिए लिखा है यह जतिगत है। हाँ पत्नी मन्त्र है कि मैं फिर गुरुजी का पत्रिका हूँ। पर तु प्रवृत्ति मैं भी स्वास्थ्य के उपर विचार करने लगता हूँ और मैं जानती हूँ जब काम करने योग्य समझ कर जप मंत्र पढ़ना चाहिए उसका मत जताते हैं। यह ही नहीं बल्कि बड़ी पत्नी पसंद भी।

यह काय जा मैं किया है वह साक्ष्य ही पत्रिका उपासना पत्रिका की क्रांति हो और मंत्र पत्रिका ने साम्राज्य मण्डित अन्तर्गत ही गुरुजी का आशय है। मैं के मोजे वहाकर के लिए। मैं पत्रिका के सम्बन्ध में पिता का आशय तमाम सम्प्रदाय के लोगो का मत खिलाफ ही है ऐसा मैं मानता हूँ। आप का मत विचार करने की आवश्यकता नहीं है। यस्तु आप अपनी दृष्टि में अपने जनता का ही लाभ समझते तो जरूर कुछ स्विकारेंगे।

ह०—हिज्ज हाजीनेम श्रीमान गास्वामी चि० श्री० १०१ श्री दामोदरलाल बाबा साहब ओफ नाथद्वारा १० गा० दामोदरलाल।’

पर तु मुझे अत्यंत दुःख है यह निखना पड़ता है कि अपने परिचारिकों के सम्बन्ध में मैंने अपने लिए मैं जा आशा की थी वह अतिरिक्त मैं अल्पवृत्त थी। इन दामोदरलाल एक निस्तेज, दबू, और आत्माके प्रति साधारण मैं आत्मी निकले। उन की बात चीत का कोई भी प्रभाव मुझ पर नहीं पडा। सम्भव है कि ये कुछ साधारण पढ़े लिखे भी रहें हों, परन्तु अतिरिक्त विद्वान भी नहीं प्रतीत हूँ। उसी बातचीतमें उस बात का भी पता लगा कि मंदिर से उनका कार्य भी सम्बन्ध विच्छेद नहीं हुआ है और मैं उनके पिताजीसे ही कोई दुःभाव है। मैंने येल मंदिरका हानि में प्रभाव और भक्तजनता में उठ खड़ी हुई नई अशांति के दूर हान तक, साथ ही सब भगडे भक्तों के दूर होने तक दिल्ली की एक शानदार कोठी में रह रहे थे उनका कोई प्राणाम नहीं, मैंने साथ नहीं, कोई योजना नहीं। वे अपना समय खेल तमाशा में और महनसरा (?) में व्यतीत

करते थे। उनकी जुगानी बातचीत सुनकर गोर जो मुझमा उनकी नवपत्नी के पुत्र पति न टायर किया, उसके समझते क रक्ष्य को (बीम हजार रुपया पुत्रपति सामाहब को दिया गया) जानकर मेने समझ लिया कि वास्तव में उनके त्रिपथ में मेरा जो अनु कृत पत्न है वह ठीक नहीं। मैं अपनी यात्रा में म दमोर से ही एक विस्तृत पत्र विश्वमित्र कृतज्ञता का यह भेजा—

मे नाथद्वारा काङ्गोरी, उध्यपुर आदि का दौरा करके अभी यहा आया हूँ। वहा श्री दामोदरनाथजी का कम भयानक राति में चचा का त्रिषय हा रहा है। मे नाथद्वार में महाराज श्री गोत्रधनलाजजी में मिला। वे रात पीटने लगे। गाव में विजली की भाति मर मान की खतर फल गद गोर ज्योही में मंदिर में तिक्ता, मकटो आत्मिको ने बेर लिया। भाति भाति के प्रश्न पूछने लगे। विश्वमित्र के तग न कारण लोग का मर उपर गुना राप था। ठाट में बड़े तक लोग श्री दामोदरनाथजी पर खुन रूप में क्रुद्र न गोर मुझे न उनका समथक समझकर मर तग क त्रिपथ में कहने लगे—या ता आप विश्वत ग्या गण है या आप भ्रम में हैं। आपके लेख में जिन कारणों की युक्ति है श्री दामोदरनाथजी में उसका कोई सम्बन्ध ही नहीं है। गहरी छान बीन से मुझे पता चगा है कि प्रथम ही में श्रीदामोदरनाथजी का चाल चलन बहुत खराब रहा है। उ तान गरीब ब्राह्मण गोर अ य जातियां की सफुडो क यात्रा और स्त्रियो को भ्रष्ट किया है गोर उनके मित्र आदि इन आर प्रसाद आदि के लालच में इस कुकर्म में उनकी सहायता करत रह है। मैं कुठ गमे व्यक्तियों के बयान कलमब द किए है गोर न खुने तोर पर य भेद ग्यान को तयार है। मुझे यह भी प्रतीत हुआ है कि वे इस बार यहा में मथुरा जो मैं बानक का मुण्डन आदि करान क बहाने वहा स आग है गोर उस नाम में मंदिर में अग्रिमारी श्री गंगा नालाज जी ने एक मोटी रकम प्राप्त करके उ ट जात में मन्द ही है। मैं अग्रिमारी जी में मिला गार वह मेरी जिग्ह में धररा गण। मैं उमे गन नालाज जी तो ने कुठ भेद खाल बठ। उहोने श्री दामोदरनाथजी में प्रति प्रम विश्वासा किया।

हगा का यहा मुजग्न त्रिण आना गार श्री दामोदरनाथजी तक उसका पहचाना उसके सम्बन्ध में भी कुठ अद्भुत बात प्रकट हुई है। उस चष्टा में इस स्त्री ने कुठ व्यक्तिया का यहा आत्मगमपण भी किया था। श्री दामोदरनाथजी जिन कारणों से उसकी गार उतने आर्कषित हुए है, वह अतिशय दुःखित है।

यहा सत्र में यह पण्डित है कि वे करारा रूप के जवाहरात ले गण है। यह बात सवथा गलत है कि ने गार हाथ है गोर उन लकर नहीं गण है। उदयपुर जाकर मेने श्री दवार से मुनासात की और मंदिर के जवाहरात, जिनके उचे जाने की चर्चा बाजार में है, मेन की। गोर भी कई बात हुई। दरवार उनसे बहुत क्रुद्ध है। वे क्या

किया चाहते हैं, यह बातचीत में मुझपर कुछ प्रकट हो गया। वे शीघ्र ही दिल्ली पधार कर इस सम्बन्ध में वायसराय से कुछ बातचीत किया चाहते हैं, पर तु वे क्या किया चाहते हैं, इसे गोपनीय रखने की उम्होंने मुझे आज्ञा दी है। उनका अनुरोध है कि हम लोग कलकत्ता और दिल्ली के बाजारों में देखभाल रख और जवाहरातों की विक्री की प्रत्येक हरकत से खर्च को सूचित कर। एक बार एक हीरा जम्बू में बेचने की चेष्टा की गई थी, हमपर स्वर्गीय श्रीमान ने उह बहुत खिन्ना था। मन्दिर को खालसा करने के सम्बन्ध में जनता के आदोलन को देखकर वे विचार कर सकते हैं। गुजराती पत्रों के आदोलन से वे पूरे पूरे नाकफ है। दरबार का रस है कि वे बम्बई में प्रमुख व्यापकों से मित्रों मन्दिर के सम्बन्ध में उनका मत ग्रहण करूँ और उनका उपदेशन महाराजा की सेवा में जाऊँ।

सगावाड के ठाकुर साहेब श्री जोरारसिंह जी में भी बहुत कुछ बातचीत हुई। वे भी श्रीदामोदरलालजी की चरित्र सम्बन्धी बहुत सी बातों के जानकार हैं। श्रीदामोदरलालजी की सब बातें सत्य रूप में प्रकाशित करती जाएँ, लोगों को सच को अंधेरे में रखना अनुचित है। मैं विश्वमित्र, कैमरी, प्रताप और अन्न ने निम्न नये लेख तैयार कर रहा हूँ। अज्ञात सम्पादक और मिस्टर गहनी से सब बात कहकर उनका मत लूँगा कि वे क्या कहते हैं। दीवान बहादुर शारदा प्रेमवती में इसप्रकार को उठा सकते हैं, आप सब कागजात एम्प्लॉयमेंट ऐक्ट को देख सकते हैं। मर प्रस्ताव के उत्तर में जो पत्र श्री दामोदरलालजी ने मुझे लिखा है, उसमें मुझे तब भी गतोप नहीं हुआ।

दिल्ली लौटने पर मैंने आपसे लिए कुछ भ्रमपूग्ग बातें सुनीं। जिन्हें सुनकर मैं फिर एक पत्र श्री दामोदरलालजी को लिखा —

प्रिय गो० श्री दामोदरलालजी महाराज,

१६ ३ २३

मुझे मालूम हुआ है कि नगर में और पत्रों में जाणा ने यह अपवाद फाया है कि आपने अपने पक्षमें प्रचार करने के लिए मुझे एक रस घस मारी है। मैं अभी दो मास की यात्रा में लौटा हूँ और मैंने पत्र आदि नहीं देखे, सुना ही है। आप की भाँति जानते हैं कि यह अपवाद सबथा भूठ और नीचतापूर्ण है। इसका आकार सम्भवतः यह लेख है जो मैंने कुछ दिन पूर्व विश्वमित्र में आपके विवाह के समर्थन में उपाया था।

मैं चाहता हूँ कि जनता के भ्रम निवारणार्थ आप प्रसूवक सत्य गत्य मुझे सूचित करे कि इस सम्बन्ध में आपका कहा तक ज्ञान है और यह बात कदा में उठी है। आपके काना तक पहुँची है या नहीं? आपने मुझे क्या दिया है या क्या देने का वायदा किया है। मैं आशा करता हूँ कि आप मेरी और अपनी प्रतिष्ठा की रक्षा के विचार से लोटती डाकसे इस पत्र का स्पष्ट उत्तर भेजने का कष्ट करेंगे जिसमें मैं प्रका

शित कर सकू ।

इसके उत्तर में उन्होंने प्राइवेट सेक्टर में आकर मेरे चिकित्सालय में मुझसे भेट की । उन्होंने कहा—श्री महाराज बहुत खिन्न और दुखी हैं । उन्होंने मुझे कहाया है कि आप उनके सम्पर्क में आकर कुछ न लिखें ।

सेक्टर में चले गए पर तु मेरा मन धमकी आड में इन कुकर्मोंकी ओर से घृणा से भर गया । मैं और वर ही गया सकता था । मैं अपनी कलम लेकर बठ गया और एक दिन और दो रात वी केवल तीन सिटिंग में मैं 'धम के नाम पर' पुस्तक को लिख डाला । धम के नाम पर होने वाले सभी कुकर्मों का इसमें भण्डाफोड था । तीसरे दिन ही पुस्तक प्रेसमें छपने के लिए दे दी गई । भाग्य की बात कि इस पुस्तक का प्रथम संस्करण दो मास में ही बिक गया । यह पुस्तक मेरे अपार क्रोध का परिणाम थी । 'धम के नाम पर' की भूमिका में गने लिरा—

'इस पुस्तक को पढ़कर मेरे प्रहत में मित्र और बुजुग मुझपर हृद दर्जे तक ना राज हागे । सम्भव है कि मुझे उनकी मित्रता में भी सांग जोना पड़े, क्योंकि उनमें से बहुतों की आजीवनिया पीढियों से इस पुस्तक में वर्णित पाखण्डों के द्वारा ही चल रही है । मैं यह मत्स्य कहता हूँ कि पुस्तक न तो किसी व्यक्ति को लक्ष्य करके लिखी गई है और न इसे लिखकर मैं किसी भी मित्र या अमित्र का अमंगल किया चाहता हूँ । इस पुस्तक को लिखने का मेरा उद्देश्य सिर्फ यही है, कि मेरे देश के नवयुवकों के दिमाग पाखण्डपूर्ण धम से आजाद होजाएँ, और जमें वे स्वतंत्रतापत्र अपने सुमस्कृत और सुशिक्षित मस्तिष्कमें अपने भने दुःखों वी और बहुत सी बाने सोचतेहैं वसे ही इस विषय पर भी मोच । क्योंकि मेरी राय में हिन्दुआ की भविष्य नस्त को—जो इन नवयुवकों की सतति टागी, मर बचना जानने का एकमात्र यही उपाय है । मैंने यह राय समाज की महान जागिया क नाश क उतिहासो का गम्भीरतापूर्वक मनन करके ही कायम को है । इस विषय में जिन भाइयों का नित्र इस पुस्तक को पढ कर दुःखे, उनके चरणों में शीश नमस्कार में प्रथम ही नामा माग जाता हूँ । क्योंकि उन पाखण्डों के बीच में जीवित रह कर मुझे उनमें कहां प्रति प्रति दुःख हो रहा है ।

मेरा सवप्रथम ट्राडकास्ट

राज्यसभ में मन्त्रेय भजन में श्री जगदीश चन्द्र बासु ने १८६५ में सफलता प्राप्त की थी, १९०४ में श्रीमत्या जी गोबिन्दा द्वारा प्रसारण काय शुरू किया गया । १९२६ में उषियन ट्राडकास्टिंग कम्पनी बनी और भारत सरकार के साथ हुए समझौते के अन्तगत कलाकृता और बम्बई में दो प्रसारण केन्द्र स्थापित किए गए । पहली माच १९३० को कम्पनी दिनालिया हो गई और इसी साल सरकार ने 'उषियन स्टेट ट्राडकास्टिंग सर्विस' के नाम से यह काय शुरू किया ।

उस समय अलीपुर रोड पर दिल्ली ब्राडकास्टिंग स्टेशन था। स्टेशन का स्टुडियो अत्यन्त साधारण था। तरतों के फंश पर दरिया वि. जी टुई थीं जिनसे कभी कभी कलाकार उलझ जाते और गिर भी पड़ते थे।

यह वह समय था जब नाटकोंके लिए आवश्यक ध्वनि प्रभाव पदा करना जटिल काय था। कितनी मजबूरियाँ थीं। रंगमंच की ही तरह रन्धियो नाटकों में भी स्त्री की भूमिका पुरुष पात्र ही अदा करता था। नाटक कम प्रसारित होते थे, लेकिन उनके अभ्यास में आज की अपेक्षा कई गुना अधिक शक्ति और समय लगता था।

आठ जून १९३६ को कुछ निजी प्रसारण के द्रो को एक मागठन के अंतर्गत शामिल कर ब्रिटिश शासन ने 'आल इण्डिया रेडियो' की नींव डाली।

उस समय दिल्लीमें 'इण्डियन स्टेट ब्राडकास्टिंग कम्पनी' का ब्राडकास्टिंग स्टेशन खुले केवल कुछ ही मास हुए थे। बुखारी बंधु ही इस समय स्टेशन के सचिववा थे। दोनों भाइयों की आकृति में बड़ा अंतर था। बड़े गोरे, गम्भीर, तथा शांत शिष्ट पुरुष थे, छोटे लम्बे चंचल आग्रही स्वभाव के तथा खटपटी आत्मी थे। उनके सिर के बाल उनकी विशेषता थी। छल्लेदार बालों का झुरमुट उनके मुस की शोभा बढ़ाता था। दोनों ही बंधु उन दिनों रेडियो विकास के काम में जीजान से जुट रहते थे। परन्तु बाहरी लोगों से अधिक सम्पर्क छोटे बुखारी से ही रहता था।

कोई भारी सूयग्रहण का सवग्रासी योग था, जिसके कारण कुरुक्षेत्र में बड़ा भारी मेला लगने वाला था। मुझसे अनुरोध किया गया कि मैं कुरुक्षेत्र और सूयग्रहण पर एक टांक तयार करूँ। बुखारी बंधुओं ने कुरुक्षेत्र से रिले करने की भी व्यवस्था की थी। जहाँ तक मैं समझता हूँ यह सवप्रथम रिले था। मुझे लेकर छोटे बुखारी कुरुक्षेत्र गए। वहाँ के सब महत्त्वपूर्ण स्थान और तालाब देखे। तब मुझे कहा गया कि मैं पंद्रह मिनट का टांक तयार करूँ। मैं तो उन दिनों लम्बे लम्बे भाषण देता तथा लेख लिखता था। मैं समझ ही न सका कि पंद्रह मिनट का भाषण में क्या कहा जा सकता है। मैंने बहुत इसरार किया कि पंद्रह मिनट क्या—घण्टे आधा घण्टा का टांक तो होना चाहिए। इस पर बड़े बुखारी साहब ने हँसकर कहा—एक मिनट, एक सेकण्ड भी अधिक नहीं, बस पंद्रह मिनट में अपनी टांक पढ़कर समाप्त कीजिए।

और जब मैं टांक लिखने बैठा तो जीवन में पहिली ही बार गागर में सागर भरने का प्रयत्न किया। मन में ठाना कि पंद्रह मिनट में सब कुछ कह दगा, एक शब्द एक मात्रा भी व्यर्थ न होगी। परन्तु जब लिखना आरम्भ किया तो दाँता में पसीना आ गया। विचारणीय विषय दो थे, एक कुरुक्षेत्र का सूयग्रहण से क्या सम्बन्ध है—कि जिसके कारण सूयग्रहण के अवसर पर कुरुक्षेत्र में इतनी भीड़ जुड़ती है। दूसरे—इसका नाम कुरुक्षेत्र क्यों पड़ा। इन दोनों प्रश्नों पर कभी गहराई से विचार नहीं किया

था—खयाल था कि पाण्डव कौरवों का युद्ध स्थान होने से कुरुक्षेत्र नाम पड़ा होगा। परन्तु महाभारत की छानबीन से पता लगा कि महाभारत काल में भी इसका नाम कुरुक्षेत्र था, तथा सूर्यग्रहण पर कुण्ड स्नान का उस समय भी महत्त्व था। यहाँ तक कि एक बार सूर्यग्रहण के अवसर पर कौरव पाण्डव दोनों ने ही कुरुक्षेत्र कुण्ड में स्नान किया था। बस गाड़ी रुक गई। छानबीन आरम्भ हुई। इतिहास देखा, महाभारत देखा, और ज्योतिष शास्त्र पर नजर गई। काशी, कलकत्ता, जयपुर, आदि विद्वानों को पत्र लिखे, पर कहीं से भी स तोषजनक उत्तर नहीं मिला। अतः मेरा ध्यान काशी के ज्ञान मण्डल द्वारा प्रकाशित सौर पंचांग पर गया और सौर वर्ष का मेने अध्ययन किया। तब बहुत छानबीन के बाद में इस निष्कर्ष पर पहुँचा कि कुरुक्षेत्र भूमि भूमध्य रेखा को स्पष्ट करती हुई है, और प्राचीन काल में दिन मान तथा सूर्यादय तथा सूर्यास्त की सही घटक गणना कुरुक्षेत्र के ही मध्यविन्दु से होती थी तथा कुरुक्षेत्र ही उन दिनों एशिया का ग्रीनविच था। इस प्रकार ज्योतिष गणित, भूगोल, इतिहास, तीर्थ विवरण, वम भाव और महाभारत का पूरा अध्ययन करने के बाद वह पन्द्रह मिनट का टॉक फुलस्केप के छे पृष्ठों में समाप्त किया गया, पर लिखे गए लगभग ३०४० पृष्ठ—जो रद्द कर दिए गए। और इस प्रकार मेरी लेखन पद्धति को एक नया मोड़ मिला। बात का व्यर्थ विस्तार न करके संक्षेप में केवल मुझे की बात सप्रमाण कहना।

बुखारी बन्धु मेरे परिश्रम को जानते थे और उन्होंने बड़ी उत्सुकता से मेरा वह प्रथम टॉक सुना। ठोटे बुखारी तो मेरे सामने ही खड़े रहे। माइक्रोफोन का ठीक अंतर, बठने और बोलने का ढग, तथा आवाज का उतार चढ़ाव बताते समझाते रहे। भाषण समाप्त करके ज्यों ही मैं बाहर निकला—बड़े बुखारी और महामहोपाध्याय प० लक्ष्मीधर शास्त्री हमते हुए सामने दिखाई दिए। बड़ बुखारी दोड़कर लिपट गए और कहने लगे न कहने योग्य बहुत सी बात कह डाली। उन दिनों दो बातों से मैं बहुत प्रभावित हुआ। एक बड़े बुखारी के शुद्ध हिन्दी भाषण से। जब मैंने पूछा, क्या आप हिन्दी जानते हैं? तो हसकर कहा—सीख रहा हूँ, क्या कहीं कुछ गलती हुई है। दूसरी बात जिसने मुझे प्रभावित किया—तत्कालीन रेडियो विभाग के प्रत्येक छोटे बड़े कर्मचारी का व्यवहार। जब जाता, बड़ी ही खातिर तराजा, चाय पानी और पानों से पाहुनाई होती, जैसे क्रिमी घनिष्ठ मित्रके घर आया होऊँ। बातचीत मैत्रीपूर्ण प्रेम और सम्मान सहित। उस समय तक सरकारी मस्थानों में सिर्फ अदालत कचहरी के वातावरण का मुझे अनुभव था, जहाँ हाकिमोंसे लेकर चपरासी तक बड़ों बड़ों को वक्के देते हैं। एक सरकारी मस्थान का यह सत्कारपूर्ण सद्ब्यवहार ऐसा चमत्कारिक था कि जिसने मुझे आरम्भ ही में रेडियो विभाग के प्रति अनुरक्त बना दिया। फिर तो मैंने कई नई व्यवस्थाओं में सहयोग दिया। काँकरोली महाराज से कह मुनकर मथुरा के श्री द्वारिका

धीश के मंदिर से ज माष्टमी पर रिले किया, कई मान तक मे हर जमाष्टमी पर जाता रहा। अनेक साहित्यिक दिन मनाने की परिपाटी भी चलाई, जो आग चलकर बहुत विकसित हुई।

कुछ दिन बाद एक ध्व यात्मक एकाकी 'राधा कृष्ण' रडियो के लिए लिखाया गया। इसमें राधा और कृष्णके ध्व यात्मक अत्यन्त लघु वार्तालाप मान थे। बड़े बुखारी को यह नाटक इतना पसंद आया था कि उन्होंने इसमें स्वयं कृष्णका पाठ किया था।

एक बार वे रेडियो स्टेशन के अहाते में खड़े हुए एक कुण की सफाई का आदेश दे रहे थे। कुण का किनारा उनके पैरोंके पास ही था। उनके आदेश के अनुसार मजदूर लोग अपने काम में लगने ही वाले थे कि उनका पैर फिसल गया और वे कुण में सीपे खड़े ही गिर पड़े। कुण में झाड़ भखाड बहुत उग रहे थे। वे उसी तह में दलदल में समूचे समा गए। सिर भी दीखना बन्द हो गया। सारा स्टाफ दौड़ पड़ा और रसी डालकर तीन चार आदमी बल्लियों को पकड़कर दलदलमें घुस गए। बहुत नीचे जाकर बुखारी का सिर उनकी पकड़ में आया और उन्हें खींचकर ऊपर लाए। बहुत शीघ्रता से दलदल उनके शरीर से साफ की गई और डाक्टरों उपचार के लिए मोटरमें टालकर ले गए। वे बिल्कुल बेहोश और मृतप्राय थे। भाग्य से पाम में ही एक डाक्टर रहते थे। उनकी तत्पर बुद्धि ने बुखारी के प्राण लौटा दिए और वे पुन जीवित हो गए। पूण स्वस्थ होने में उन्हें महीनो लग गए, पर तु मस्तिष्क में कुछ दोष उत्पन्न हो गया था। वे बात भूल जाते और भल्ला उठते थे। स्वस्थ होने पर उन्होंने बताया कि मैं जब कुण की दलदल में तेजी से नीचे घसता चला गया तब मैंने समझ लिया कि मेरा अ तक्राल आ पहुँचा। मेने क्षण भर में ही यह विचार कि मेरे बीमों की किश्त अदा हो गई है या नहीं। याद आया कि किश्त अदा हो गई थी और बीमा वृत्तिहीन है। दूसरे क्षण मेने अपने बीबी बच्चों की मूर्ति अपने मानस में उतारी और तीसरे क्षण मैं कृतमा पड़ा। तीन क्षण ही मैं जीवित रहा और चौथे क्षण मृत।

उनकी बात रोमाचकारी थी। मैंने उनका मानसिक दोष दूर करने के लिए ब्राह्मीरसायन बनाया और उन्हें दिया। औषधि की शीशी हाथ में लेकर वे अपने कमरे में चारों ओर घूमघूमकर नाच गए और कहने लगे—अब मैं अच्छा हो जाऊंगा, अब मैं अच्छा हो जाऊंगा।

दिल्ली की दक्षिण दिशा में महरौती के माग में निजामुद्दीन अलीलिया की दरगाह है। यह दरगाह बहुत पुरानी है। यही पर इस्लाम धर्म के प्रचारक रवाजा हसन निजामी रहते थे। सन १६२५ ३० में उनका यह आवास इस्लाम धर्म का गढ़ था। देश भर के इस्लामी कार्यों का वहाँ लेखा जोखा होता था और वही से सब आदेश दिये जाते थे। रवाजा हसननिजामी उर्दू के प्रामाणिक लेखक थे। पुस्तकों के अतिरिक्त वे

इस्लाम धर्म के उर्दू पत्रों में भी धूम्रआधार लिखते रहते थे। उनके अपने भी समाचार पत्र दिल्ली से प्रकाशित होते थे। सन् १९२४ के मध्यकाल में जब चादनी चौक में मेरा चिकित्सालय और सजीवन प्रस था, उही दिनों एकदिन वे मेरे कार्यालय में आए। इससे पहिले मेने उन्हें देखा नहीं था, केवल उनका नाम ही सुना था और इस्लामधर्म के उनके गुरुपद की बात भी सुनी थी। लम्बा, छरहरा शरीर, कुछ लम्बी सुखदाढी, आखों पर काला चश्मा, हाथ में छड़ी, लम्बा काला चोगा परो तक लटकता हुआ, सिर पर गोल नोक वाला टोपा, यही उनका वेश था। उनके साथ दो तीन उनके शागिद भी थे जो अदब से उनके पीछे आ रहे थे। निजामी साहब ने आकर मुझसे तस्लीम की और हाथ गिलाया। बठने पर उहोंने कहा—‘मेरा नाम हसननिजामी है। मेने कुरान शरीफ का हिदी तजुमा किया है। सुना है, आप भी बहुत बड़े लेखक हैं इसलिए मेने सोचा कि यह आपकी देखरेख में आपके प्रेस में छप तो ज्यादा अच्छी छपेगी। छपाई जो कुछ आप कहें दूंगा।’

यह कह कर उहोंने एक शागिद को इशारा किया और उसने अदब से भुक्कर रेशमी वस्त्र में निपटी हुई कुरान शरीफ की पाण्डुलिपि मेरे सामने रखदी।

मे अपने सामने बठा उस मुस्लिम बुजुग को गहरी आखों से देखने लगा। यही है वह दशभर में प्रसिद्ध इस्लामधर्म का गुरु जिसके अनेक चेले शागिद सबत्र धूमते और इस्लामी आदेश प्रचारित करते हैं। मैं अपने कागजात समेट कर एक ओर रख दिए और उनके साथ बातोंमें लग गया। मेने भद्रमेन को बुलाकर पुस्तक के छपाने की व्यवस्था करने का आदेश दे दिया और इमनान से उनके साथ बातोंमें लग गया। उस पहिली ही मुनाफात में वे मुझसे बहुत ही हिलमिल गए। उनकी पुस्तक मेरे प्रेस में छपी और उस सिलसिले में वे बहुत बार मुझसे मिलते रहे, और अत में मैं उनका एक श्रद्धास्पद मुरावी बन गया। उनके स्थान पर भी गया। बातों का जो तार लगता तो गदर की बहुत सी सच्ची तवारीख वे मुझे सुनाते, शाही परिवार की दास्तान कहते, पर उहोंने कभी भी इस्लाम धर्म की चचा नहीं की, न हिन्दुधर्म की। उनके डेरे पर जब मैं जाता—वे सौ पचास लोगों से घिरे रहते। कोई उनसे दुआ लेने आता, कोई मिन्नते मनाते। मेरे पहुँचने पर वे अपने शागिदों को इशारा करते और भीड़ वहाँ से छट जाती। फिर तो हम घंटे दो घंटे अकेले जमे रहते थे। एक बार उनकी सदा रत में निजामुद्दीन औलिया की दरगाह पर मुशायरा हुआ। उन्होंने मुझे भी निमन्त्रित किया। जब मैं पहुँचा तो उन्होंने मुझे अपने पास ही मसनद के सहारे बैठा लिया। मुशायरे में बड़े २ शुरुआत अपनी गजले, नयाते, नजमे सुनानेके लिए वहाँ उपस्थित थे। सब करीब से बठे हुए थे। उन्हीं में, बंगम वाली जो उस समय दिल्लीमें प्रसिद्ध शायरा थी, भी बठी हुई थी। उनके ठाठ निराने थे। निजामी साहब ने उन्हें दिखाते हुए मुझ

से गीरे से कहा—दुल्हन साहिबा है ।

मुशायरा शुरू हुआ । शायरा की शायरी ने वाट पाह गी धूम मचा ली । बेगम वली की बारी आने पर सदर ने उनका नाम लेकर कहा—अप मगम पली । सदर का संकेत पाकर मैने ठाठदार मजाक किया—‘आदण, आदण, दुल्हन साहिबा ।’ मेरा मजाक सुनकर बेगम वली ने ठहरी हुई निगाहा से मुझे देखा । लागा क कहकहान उ ह विचलित कर दिया था । पर क्षणभर बाद ही मैं द मुस्कान होठों पर लाकर प स्टेज पर आ खड़ी हुई । उम्र उनकी पचास स भी ऊपर थी ।

गजल इ होने नहीं पड़ी । नाज नखरो से उ होंन चुन्नी क तार स घघट काढा, दुल्हन के हाव भाव किए और मेरी ओर रख करक घघट उघाड दिया ।

मैने कहा—‘इरशाद हो बेगम साहिबा ।’

वे हँस पड़ी । उन्होंने कहा—‘वही कहिए देवरजी ।’ हमन निजामी बहुत कम कहकहे लगाते थे, पर तु उस वक्त जो कहकहा का समा बधा तो बहुत देर तक कह कहों की गूज होती रही । हसन निजामी ने मुझे अपनी बाहों में भर लिया । कटकहे उनके सकते न थे ।

पुत्र-पत्नी की विदा

१९३३ के मध्यकाल में मेरी पत्नी ने मुझे एक संकेत किया । उनके पर भारी हो रहे थे । इस समय मेरी आयु २ वर्ष की थी और मुझे अत तक के अपने वैवाहिक जीवन के इक्कीस वर्षों में एक बार भी अपनी सतान होने का चि ह नहीं दीया था । अब जो पत्नी ने बताया ता पाठक मेरी खुशी का आभास अनायास ही लगा सकते हैं । मेरे अब तक बच्चे नहीं हुए, सो इसके लिए मैं चिंतित अथवा प्रयत्नशील नहीं था, न मुझे इस ओर ध्यान देने का अपने व्यस्त जीवन में कभी अवसर ही मिला, फिर भी सतान की एक सुखद कल्पना ता मनुष्य के जीवन में व्याप्त रहती ही है । पत्नी को पुत्र की बड़ी तालसा थी, मुझे भी कम न थी । हम लोग एक दूसरे को प्यार करने थे और उस प्यार को समझते भी रहे । मानसिक चंचलता और अथरुप्ट न मन को चिड चिडा बना दिया था । पिछले वर्ष वह बड़ी दुग्गी रहों । उरन और गामग्री भी ठीक-ठीक न मिलती थी, पर उसके प्रेम का थाह न था ।

एक दो वर्ष पूर्व १९३१ में मेरा सर्वप्रथम कहानी संग्रह ‘अक्षत’ प्रकाशित हुआ था । सत्य पूछा जाय तो मेरी रचनाए ही मेरी सतान थी । अपनी कहानियों के पात्रों के साथ मैं बहुत दिनों तक रहता हूँ, इसलिए कहानियाँ मेरी सर्वप्रिय सतति हैं । मैंने इस कहानी संग्रह का नाम ‘अक्षत’ इसीलिए पसंद किया कि इस शब्दमें एक अति पवित्र भावना निहित थी । अक्षत की भूमिकामें मैंने सतति प्रेम का इस प्रकार संकेत कियाथा

‘अक्षत’ शब्दमें एक पवित्र आशीर्वाद की भावना है । उन अपदाथ कहानियों के

साधारण सग्रह का ऐसा महत्वपूर्ण नाम रखते हुए सचमुच मैं लजाता और भय भी करता हूँ, पर अपनी अमुदर सतति को भी प्यार करना और उसका सुदर नाम रखना मनुष्य स्वभाव की क्षम्य दुबलता है। मैं सतति हीन, मित्र, बंधु, बांधव और सगे सम्बन्धियों से हीन एक दली शापग्रस्त व्यक्ति हूँ। मेरे लिए इमक सिवा कोई चारा ही नहीं कि मैं अपनी रचनाओं को प्यार करूँ। अब इसके लिए बढियासा नाम चुनही लिया, तो मैं समझता हूँ—इसके लिए सहृदय पाठक मुझे प्रति असहाय और दयनीय समझकर मुझ पर क्रोध न करेंगे।

पत्नी का मदेश पाकर मैं कल्पनाओं के समुद्र में गोते लगाने लगा। मेरी माता मेरे पुत्र को अपनी गोद में खिलाने के लिए अत्यन्त व्याकुल रही। यद्यपि मुझमें छोटे दो भाई खेमसेन और भद्रमेन के विवाह भी उनके सामने बहुत पूर्व हो चुके थे, पर तु किसी को भी कोई सतति उनके जीवनकाल में नहीं हुई। भद्र की पुत्री शरद् भी उन की मृत्यु के बाद हुई थी। इसलिए इस सुखद सवाद के साथ साथ माता की स्मृति भी आती रहती थी।

दिन बीतते चले गए और भविष्य अपने खेल के तानेबाने तैयार करने लगा। मैं शाहदरे तो रहता ही था। जगल ही था। वर्षाऋतु समाप्त होकर चुकी थी। मच्छरो न मेरे घर को घेर रखा था। एक दिन मरी पत्नी को मलेरिया ने धर दवाया। तीन दिन तक तेज जुखार चढता और उतर जाता। डाक्टर को दिखाया, दवा दी। दवा कुछ गम थी या तेज बुखार का ही कुछ परिणाम था, कि गभस्थशिशु गभ से च्युत हो गया। रक्त स्राव बहुत होने लगा। लेडी डाक्टर ग्राइ, पर तु केस नहीं सभला। चौथे दिन विजयादशमी के दिन १८ अक्टूबर १९३३ का सध्या समय ६ बजे वह भी मुझे छोड़ कर चली गई ॥

मेरी बदनसीबी का अन्त नहीं था। जिसके सहारे जीवन चला रहा था, एक उत्साहवधक सदेश जो उसने मुझे दिया था, एक स्वप्न का स्वर्ण महल जो मने मन में निर्माण किया था, केवल एक घंटे की मूर्च्छाकाल में ही वे सब बातें समाप्त हो गईं। मैं हाय बरके रह गया। मेरे मित्रों ने आकर सहारा न दिया होता, तो मेरे लिए यमुना निगमबोध घाट तरु जाना सम्भव नहीं था। मेरे प्राण चारों ओर से खींचकर निकाले जा रहे थे। मेरी ग्राय खुती हुई थी और श्मशाने चन रही थी।

ज्ञान का आचल

दिन बीरे गीर बीतने लगे। त्योहारों के आनन्द उल्लास का प्रवाह मेरे सामने बहता रहता, परन्तु मैं एक शून्य लोक में बैठा उल्लास की नगरी को देखता रहता। अब तक जीवनके बड़े बड़े पन्दे उट्टे गए। वह भी गई जिसके सहारे जी रहा था। यह अकल्पित घटना इस प्रकार हो गई कि जिसका स्वप्नमें भी गुमान न था। मैं तमने मरने

की अपत्या जीवित रहना ही मेरे स्थिर निया प्रौर फिर शाय फनाकर गय के आनोके म जीवनमगिगी की खोज की । यह मात्र कितनी प्रीमत्न लज्जाताता योर दुग्गयी थी, यह म हृदय के बाहर प्रवट नही कर सफता । अपनो पराण गभी रय र्तिण । मनुष्य मात्र से घृणा हो गई । सबने मुझे तिरस्कृत निया । म माना मगी तान पर एक पत्ता था, अब गिरा कि अब गिरा । अन्तमे भाग्य न जो मयाग रच रखा था, यह गत्स्मात ही हो गया । उस दिन एकाएक मन उमका हाथ पकड निया और मेने अत बहु गान कर दग्गा—हे ईश्वर म पत्नीहीन नही हूँ । हे परमेस्वर, मर शरीर और आ मा की वह स्वामिनी जहा हो सुखी रहे । यह आन द नी मूर्ति जस सुग स जोहित र्नी और मरी, उस लोक मे भी सुरी रहे और मुझ अथम निर्लज्ज को त्पमा कर ।

मेरे एक मित्र डजीनियन बनारस रहते थे, उाका तार पाकर म प्रता गया और ३ मई १९३४को वही तभी मेरा तीसरा विवाह हो गया । वह एक अतिकामल मानिनी २१ वष की नाजो मे पलो बडे परिचार की तजस्वी युवती थी । तीजुआ वर पाकर खिन्न हुई थी, परन्तु उसने मेरे साहित्य को पढा था और राय उस म भी साहित्य रचना की प्रवृत्ति और अध्ययन पठनकी लगन था तीव्र बुद्धि थी । अत मेरी आयु ता क्षण भर म ही भुलाकर मेरी आर उमुख हा गई थी । जय तक उमन स्वीकार नही किया मन विवाह की हा नही भरी । इस विवाह के उपरा त क या क भाई न एक पत्र मेर पिता जी को दिल्ली भेजा था । पत्र इस प्रकार था—

पूज्य पिता जी । प्रणाम ।

६ मई, ३४

वतौर एक कसूरवार के आपव पास क्षमायाचना पत्र लिखने का माहम कर रहा हूँ । शास्त्री जी तारके मुताबिक बनारस आण । दो दिन तक बातचीन होती रही । ३ मई के दिन यह निश्चय हुआ कि विवाह होगा । परन्तु कुछ योग पीठ पड गए और कहने लगे कि विवाह जब निहायत सादगी ही से होन वाला है, तेनदन कुछ नही है तो आजही क्यों नही कर डालते । शास्त्रीजी और हम टाना इसका विनाप थे । परन्तु मित्र लोगो ने वतनी जिद्द शुरू की कि हम भी उस प्रार्हा म प्रह गए । फिर तो हमने भी शास्त्री जी से अनुरोध करता शुरू कर दिया और शास्त्री जी ने भी मजुरी देनी पडी । इस मोके पर आपके और चन्द्रमैनजी के न जानेना हम पश ताताप है, तान क्या किया जाय । हम इसलिए आपको यह पत्र लिखकर क्षमा मागत ह, कि आप प्रपा कर हम लोगो की स्वतन्त्र ज्यादाती से यह अथ न निताले कि आपकी गरटाजरी ही हम लोगो ने महसूस ही नही किया । शुरूसे आखिर तक हम लागा को यद् रयात बना रहा कि पिता जी यदि मौजूद होत तो यह उत्सव कही ज्यादा शोभायमान हा जाता । इसलिए हम क्षमाप्रार्थी है । आशा है कि हमारी गलती को भूलकर मरी ग्रहिन 'ज्ञान' को हृदय से बहू की तरह ग्रहण करके उसे हार्दिक आशीर्वाद देकर उमके जीवन को

सुखमय बनाने की प्रार्थना ईश्वर से करूँगे। मैं आपके पत्र की प्रतीक्षा करूँगा और जब तक पत्र न आयागा तब तक मैं डुब्ती रहूँगा।'

दुःख की स्मृतियों को मनाने योग्य अब मेरा हृदय नहीं रह गया था। उद्दे भुनाना ही मने ठीक समझा। मैंने साचा कि जीवन के पार जान तक का साहस मचय करना चाहिए और जिसे मरा है उसे विजय करना चाहिए। मेरी स्थिति मुर्दों से भी गई बीती थी। फिर भी मने भूत को भुला कर वत्तमान का ग्रहण किया और भविष्य की ओर दृष्टि फेरी।

ज्ञान ने मेरी गृहस्थी को अत्यन्त सरलता से संभाल लिया। उसे इस प्रकार अनायास ही गृहस्थी संभालते देख, मेरा वेदना और निराशामे डूबा हुआ मन उभार पा गया। मेरी प्रसुप्त इन्द्रिया और विचारवारा चत य हो गई। एक गम्भीर तत्वदर्शी की भांति मने पूव पत्नी की अमृत मूर्ति और प्यार को श्रद्धा मन्दिरमे स्थापित कर दिया। प्यार के शून्य स्थान म ज्ञान स्वय ही आसीन हो गई। पर तु मेरे सोचने का एक गहन विषय था। म सोचना था क्या यह अबम एक पाप नहीं? मे पूव पत्नी को इतना शीघ्र भूल गया? स्वगत्रासिनी क्या कहती होगी? यही न कि यह अधम पुरुष, जिसकी मने तन मन से त्राणान्त सवा की, अब दूसरी स्त्री का दाम बना वसे ही सुख से अपनी गृहस्थी चला रहा है माना कुठ हुआ ही नहीं। यह प्रश्न मेरे हृदय म लहराती हुई भावना नद की तरङ्गो म गपड खाता था, पर तु सदय त्रिवेक ही विचारो को परिमा जित करता है। मने मात्रना म उठा कर यह प्रश्न त्रिवेक ती क मुपुद किया। मेरा यह अतद्ध द कभी तीव्र, कभी शीमा चनता ही रहा और अन्त मे त्रिवेक ने निणय किया कि गृहस्थ के राज्य म पत्नी राजा है और पति मन्त्री। राजा गदैव अमर है। राज गद्दी सूनी नहीं रह सकती। यह बग ही धीमत्य तक है, पर तु राजगद्दी का क्षण भर भी शून्य रहना और भी अत्रिक बीभत्स है।

कोई स्त्री और कोई पुरुष उस समय तक गृहस्थ पदका अधिकारी नहीं, जबतक कि वह पति या पत्नी से मयुक्त न हा और एम व्यक्ति, जो त्रिपत्नीक है, या पतिहीन सदृगृहस्थ नहीं, यदि व उसी अवस्था मे गृहस्थ हो बने रहना चाहते है, तो कहना चा हिण—गृहस्थ म म की मयादा भग होती है। चकि गृहस्थ राज्य म पुरुष म त्री है, इस लिए स्त्रीत्व रहा प्रान है। बिना स्त्री के पुरुष गृहस्थ नहीं रह सकता।

मे गृहस्थ म म लीनित था। मने आश्रमो की मयादा पर बहुत विचार किया था। विरक्ति और त्याग के उन प्रकारो या, जो आश्रमो की परिपाटी पर वर्णित है, मे त्रिगे या था। वानप्रस्थ और सन्यास, भेष और स्थान बदलकर नहीं, गृहस्थ मे ही होने चाहिए, और पति पत्नी दोनो ही इसके अधिकारी होने चाहिये। परन्तु वानप्रस्थ का अर्थ बन मे रहना नहीं। आज बीसवी शताब्दी मे जो नागरिकता का युग है, वान

प्रस्थ का वह प्राचीन अनुकरण युगधर्म की चीज नहीं। पति पत्नी का शरीर सम्बन्ध प्रसयम के बन्धनो में सीमित होकर अध्यात्म सम्प्रदाय स्थापित होना ही गन्ना बानप्रस्थ है और मन वचन-क्रम से सत्र प्रकार की स्वायत्त भावना विना त्यागकर समाज मंत्रा में जीवन लगाना सच्चा सन्यास है। मैं उपनिषद् काल में उन ऋषियों की चर्चा पर भी विचार करता था, जो आदशत्यागी, तपस्वी एवं साथ ही राज-मङ्गलस्थ भी थे। एक तरफ वे ऋषि बनवासी—जि होने त्याग तप और दमन से परम अध्यात्म का ज्ञान लिया है—दूसरी तरफ वे गृहस्थ, जो पत्नी युक्त और सतान उत्पन्न करने वाले हैं।

इन उदाहरणों से मैं ठीक ठीक अर्थात् मेरे गृहस्थ धर्म के तथ्य को समझ गया था। और ज्ञान को पत्नी का अधिकार और स्थान देने में मन्त्रोक्त रहित होता जाता था। पूरे पत्नी एक क्षण को भी मेरे हृदय से दूर न हुई थी, पर अब यह मेरी पत्नी नहीं—आध्यात्मिक देवी थी। वह मानो अपने शरीर के बन्धन से उमुक्त हो मेरे शरीर में रम गई थी। ज्ञान पूरे पत्नी के पदपर मेरी गृहस्थी और हृदय की अग्रिष्ठाती थी, उसने व्यक्तित्व ने मेरे हृदय में स्थान बना लिया था।

फिर भी मेरे मन में एक बात थी, जो शूल की भाँति चुभती थी। उक्त यह कि ज्ञान जसी अल्पवयस्का कुमारी के साथ विवाह करके मैंने उसका एक अधिकार हरण किया है, मने उसे उसी के समान नवीन उत्साह से परिपूर्ण मुग्ध हृदय पाने के अवसर से वंचित कर दिया है, और उसके स्थान पर उसे घायल और वेदनापूर्ण हृत्य दिया है। ज्ञान यद्यपि अपने इस अधिकार से अनभिज्ञ थी, परन्तु इसमें मेरा अत्याय कम नहीं हो जाता था। इसी बात को सोचते सोचते मैं बहुधा उदास हो जाता, कभी रोने लगता। एक दिन प्रातः काल का समय था। मैं अपने कमरे में मेज पर झुका दोनों हाथों से मुझे ढाँपकर चुपचाप आसू बहा रहा था। ये आसू पूरे पत्नी के लिए न थे, ज्ञान के लिए थे। ज्ञान ने समझा मैं अपनी मेज पर बैठा लिख रहा हूँ। वह नाश्ते की तश्तरी लेकर वहीं आ पहुँची। उसने जब मुझे रोते देखा तो धबका गई और आँसू मरे पीछे गड़ी हाँ गई। उसने मेरे सिर पर हाथ रखा और स्वयं भी रोने लगी। मैंने चमत्कर देखा और रोना रोककर हँस दिया—परन्तु मेरी आँखें लाल हो रही थी। ज्ञान को रातों रात देग, मैं कुर्सी से उठ खड़ा हुआ। वह मेरे पैरों में धरती पर बैठ गई। उसका आँचन पकड़कर मैंने कठिनाई से उसे बैठाकर कहा—ज्ञान, मैं तुम्हारी वेदना का समझता हूँ। मैं तुमपर किये अत्याय को समझता हूँ। परन्तु, तुम मुझे क्षमा करो। मैं तुम्हें प्रार्थना देकर भी सुखी करूँगा। कही—तुम्हें क्या दुख है ?

ज्ञान अपनी फूली हुई आँखों से मुझे देखती रही। उसने गद्गद कण्ठ में कहा—आप अकेले में बँठकर रोते हैं ? मैं सूखा क्या आपको सुखी नहीं कर सकती ? कुछ ठहर कर वह बोली—यदि मैं आपको सुखी न कर सकी तो समझूँगी, मेरा जीवन ही व्यर्थ

हुआ ।'

मने ज्ञान का हाथ पकड़कर कहा—

यह वैसी बात ज्ञान, मेरे सुख की तुम कहती हो ? पर मने जो तुम्हें दुख दिया है अयाय किया है, उसी पर मुझे दुख है ।

क्या दुख दिया, जो अयाय किया है ?

मने तुम्हें अपनी पत्नी बनाकर तुम्हारे स्वाभाविक अधिकारो को छीना है ।

कोन से अधिकारो का ? यह म नहीं जानती, म तो यही जानती हूँ कि आपने मुझे अपनाकर सुयी किया है । यदि म आपको हसता देखूँ तो दुनिया मे मेरे समान सुखी और सौभाग्यशीला कोन है ?

अभी म पूरी तरह सभला भी नहीं था कि पिताजी को ज्वर आ गया । मेरे पिताजी का स्वास्थ्य बहुत अच्छा था । लोहे की भाँति उनका शरीर था । बहुत कम उह कभी किसी रोग ने घेरा होगा । उनका नियमित समयित सात्विक जीवन प्राकृतिक गति से ठीक ठीक चल रहा था । फिर यह तो साधारण ज्वर मात्र था । ज्वर दो तीन घटे आकर उतर गया, पर फिर चढ गया । मलेरिया समझकर औषध दी गई । ज्वर उतरा और फिर चढा । तीसरे दिन उ होने थोड़ी खिचड़ी खाई । रात्रि को तबियत अकस्मात् बहुत खराब हो गई । दौड घुप शुरू हुई, डाक्टरों के आने से प्रथम ही उनकी उध्व श्वास चलने लगी । मेरे उपचार चल रहे थे पर उनका कुछ भी प्रभाव नहीं दीख रहा था । डाक्टरों ने उनकी अवस्था देखकर कहा—अब तो कुछ नहीं हो सकता । हमारे देखते देखते ही उनके प्राण निकल गए । ८ जून १९३४ को उनका प्राणा त हुआ । उस समय उनकी मृत्यु शय्या के निकट मैं और मेरी पत्नी केवल दो ही परिजन व्यक्ति उपस्थित थे । चन्द्रसेन कायवश क्लवत्ते गए थे । पूज्य पिताजी ने हमसे कोई सेवा नहीं करवाई । बात करते करते ही उन्होंने मुझ मातृहीन को पितृहीन भी कर दिया । अत्र मैं ४३ वर्ष का अनाथ बालक मात्र रह गया था । मेरे और मेरी पत्नी के रूदन की कोई सीमा नहीं थी । मैं इतना किकत्तव्य विमूढ हो गया था कि मुझे दाह क्रिया के लिए लोगो को सूचना भेजने का भी ध्यान नहीं आया । उनकी मृत्यु के दो तीन घटे पीछे डाक्टर युद्धवीर उनकी तबियत का हाल पूछने आए, तब उ होने लोगो को सूचना भेजी । उस समय मेरे पास दस पाच ही रुपए थे । मेरी पत्नी ने मुझसे छिपाकर नौकर को एक जेवर दिया और उसे बाजार मे बिकवा दिया । राते राते उनकी आँखे सूज गई थी, उन्होंने नोट मेर हाथ मे रख दिए । उनकी सूझी आँखे और आँसुआ से भीगे पलक देखकर मुझे कुछ भी पूछने का साहस नहीं हुआ । मने वे रुपए एक मित्र को देकर दाह क्रिया का सामान लाने को कहा ।

अब मैं भाग्य के अनेक खेल देख चुका था । जीवन के दुख सुखो की एक रूपता

प्रस्थ का वह प्राचीन अनुकरण युगधर्म की चीज नहीं। पति पत्नी का शरीर सम्बन्ध समय के बंधनों में सीमित होकर अध्यात्म सम्प्रदायस्थापित होना ही गच्छावानप्रस्थ है और मन चंचल क्रम से सब प्रकार की स्वायत्त भावना निष्पत्त्यागकर समाज मंत्रात्मक जीवन लगाना सच्चा सन्यास है। मैं उपनिषद्काल में उन ऋषियों की चर्चा पर भी विचार करता था, जो आदर्शत्यागी, तपस्वी एवं साथ ही साथ मद्गृहस्थ भी थे। एक तरफ वे ऋषि-वनवासी—जिन्होंने त्याग तप और दमन में परम अध्यात्म का ज्ञान लिया है—दूसरी तरफ वे गृहस्थ, जो पत्नी युक्त और सत्ता उत्पन्न करने जाते हैं।

इन उदाहरणों से मैं ठीक ठीक अर्थों में गृहस्थ धर्म का तथ्य को समझ गया था। और ज्ञान को पत्नी का अधिकार और स्थान देने में मन्त्रोच्च रहित होता जाता था। पूव पत्नी एक क्षण को भी मेरे हृदय से दूर न हुई थी, पर अब वह मेरी पत्नी नहीं—आध्यात्मिक देवी थी। वह मानो अपने शरीर के बन्धन से उमुक्त हो मेरे शरीर में रम गई थी। ज्ञान पूव पत्नी के पदपर मेरी गृहस्थी और हृदय की अग्रिष्ठाणी थी, उसके व्यक्तित्व ने मेरे हृदय में स्थान बना लिया था।

फिर भी मेरे मन में एक बात थी, जो शूल की भाँति चुभती थी। यह यह कि ज्ञान जसी अल्पवयस्का कुमारी के साथ विवाह करके मने उसका एक अधिकार हरण किया है, मने उसे उसी के समान नवीन उत्साह से परिपूर्ण मुग्ध हृदय पाने के अवसर से वंचित कर दिया है, और उसके स्थान पर उसे गायल और वेदनापूर्ण हृदय दिया है। ज्ञान यद्यपि अपने इस अधिकार से अनभिज्ञ थी, परन्तु इसमें मेरा अयाय्य कम नहीं हो जाता था। इसी बात को सोचते सोचते मैं बहुधा उदास हो जाता, कभी रोने लगता। एक दिन प्रातःकाल का समय था। मैं अपने कमरे में मेज पर झुका दोनों हाथों से मुहूँ ढाँपकर चुपचाप आसू बहा रहा था। ये आसू पूव पत्नी के लिए न थे, ज्ञान के लिए थे। ज्ञान ने समझा मैं अपनी मेज पर बैठा लिख रहा हूँ। वह नाश्ते की तश्तरी लेकर वहीं आ पहुँची। उसने जब मुझे रोते देखा तो घबरा गई और आकर मेरे पाँजरे गठी हाँ गई। उसने मेरे सिर पर हाथ रखा और साथ ही रोने लगी। मैंने चमत्कार देखा और रोना रोककर हँस दिया—परन्तु मेरी आँसे लाल हो रही थी। ज्ञान को रात देख, मैं कुर्सी से उठ खड़ा हुआ। वह मेरे पैरों में धरती पर बैठ गई। उसका आँचल पकड़कर मैंने कठिनाई से उसे बैठाकर कहा—ज्ञान, मैं तुम्हारी वेदना को समझता हूँ। मैं तुमपर किये अयाय्य को समझता हूँ। परन्तु, तुम मुझे क्षमा करो। मैं तुम्हें प्राण देकर भी सुखी करूँगा। कहो—तुम्हें क्या दुख है ?

ज्ञान अपनी फूली हुई आँखों से मुझे देखती रही। उसने गद्गद ऋण्ट से कहा—आप अकेले में बठकर रोते हैं ? मैं मूर्खा क्या आपको सुखी नहीं कर सकती ? कुछ ठहर कर वह बोली—यदि मैं आपको सुखी न कर सकी तो समझूँगी, मेरा जीवन ही व्यथ

हुआ ।'

मने ज्ञान का हाथ पकड़कर कहा—

यह कैसी बात जान, मेरे सुख की तुम कहती हो ? पर मने जो तुम्हें दुख दिया है, अयाय किया है, उसी पर मुझे दुख है ।

क्या दुख दिया, कौन अयाय किया है ?

मने तुम्हें अपनी पत्नी बनाकर तुम्हारे स्वाभाविक अधिकारों को छीना है ।

कौन से अधिकारों को ? यह मैं नहीं जानती, मैं तो यही जानती हूँ कि आपने मुझे अपनाकर सुखी किया है । यदि मैं आपको हसता देख तो दुनिया मैं मेरे समान सुखी और सौभाग्यशीला कौन है ?

अभी मैं पूरी तरह सभला भी नहीं था कि पिताजी को ज्वर आ गया । मेरे पिताजी का स्वास्थ्य बहुत अच्छा था । लोह की भाँति उनका शरीर था । बहुत कम उन्हें कभी किसी रोग ने घेरा होगा । उनका नियमित समयित सात्विक जीवन प्राकृतिक गति से ठीक ठीक चल रहा था । फिर यह तो साधारण ज्वर मात्र था । ज्वर दो तीन घंटे आकर उतर गया, पर फिर चढ़ गया । मलेरिया समझकर औषध दी गई । ज्वर उतरा और फिर चढ़ा । तीसरे दिन उन्हें थोड़ी खिचड़ी खाई । रात्रि को तबियत अकस्मान् बहुत खराब हो गई । दौड़ धूप शुरू हुई, डाक्टरों के आने से प्रथम ही उनकी उच्च श्वास चलने लगी । मेरे उपचार चल रहे थे पर उनका कुछ भी प्रभाव नहीं दिख रहा था । डाक्टरों ने उनकी अवस्था देखकर कहा—अब तो कुछ नहीं हो सकता । हमारे देखते देखते ही उनके प्राण निकल गए । ८ जून १९३४ को उनका प्राणान्त हुआ । उस समय उनकी मृत्यु शय्या के निकट मैं और मेरी पत्नी केवल दो ही परिजन व्यक्ति उपस्थित थे । चन्द्रसेन कायवश क्लवत्ते गए थे । पूज्य पिताजी ने हमसे कोई सेवा नहीं करवाई । बात करते करते ही उन्होंने मुझ मातृहीन को पितृहीन भी कर दिया । अब मैं ४३ वर्ष का अनाथ बालक मात्र रह गया था । मेरे और मेरी पत्नी के रूदन की कोई सीमा नहीं थी । मैं तबना किञ्चित्तव्य त्रिभूट हो गया था कि मुझे दाह क्रिया के लिए लोगों को सूचना भेजने का भी ध्यान नहीं आया । उनकी मृत्यु के दो तीन घंटे पीछे डाक्टर युद्धीर उनकी तबियत का हाल पूछने आए, तब उन्हें लोगो को सूचना भेजी । उस समय मेरे पास दस पाच ही रुपए थे । मेरी पत्नी ने मुझसे छिपाकर नौकर को एक जेवर दिया और उसे बाजार में बिकवा दिया । राते राते उनकी आँप सूज गई थी, उन्होंने नोट मरे हाथ में रख दिए । उनकी सूझी आँखें और आँसुआ से भीगे पलक देखकर मुझे कुछ भी पूछने का साहस नहीं हुआ । मैंने वे रुपए एक मित्र को देकर दाह क्रिया का सामान लाने को कहा ।

अब मैं भाग्य के अनेक खेल देख चुका था । जीवन के दुख सुखों की एक रूपता

को मे समझने लगा था। मरी प्रकृति भी चिकित्सा की ओर से हटकर साहित्य रचना की ओर बढ़ गई थी। अपने मरीजा पर मे बहुत कम समय दे पाता था। मैं घटा मेरे सामने पड़े रहने पर नु मरी कम कामजो को काना करनेम नगी रहनी। कभी कभी पूरे एक घंटे बाद मैं कलम का विश्राम करूँ तब उम्मा हानचान प उता।

इसी समय मेरी द्वितीय पत्नी के पिता ने मुझे एक आश्चर्य काय म म मरी बुलाया। मदसोर मे एक अनिक युवक के पिता मीमार थे। युवक मदसोर मे रहत थे और उनके पिता बम्बईमे बीमार थे। पिता बम्बई से मदसार गान को तयार नही थे। युवक मेरे साहित्य को पढ पढ कर मेरे प्रति अमीम श्रद्धा और विश्राम रखत थे, इसीसे उन्होंने मुझेसे अनुरोध किया कि मैं बम्बई जाकर उनके पिता की चिकित्सा करूँ। मे बम्बई जाना नही चाहता था, पर तु मैं अधिक विरोध न कर सता। मुझे उनकी बात मानकर उनके साथ बम्बई जाना पडा। बम्बई जाकर रोगी का देखकर प्रती निराशा हुई। उनके स्वास्थ्य लाभ की आशा बहुत ही कम थी। मैंने उनके पत्र को सब बात स्पष्ट बहदी। फिर भी उन्होंने यथासम्भव चेष्टा करन का अनुरोध किया। मैं राग स उलझ गया। कभी रोग कम होता दीखता, कभी उभार पर। मन बढा परिश्रम उस केम पर किया। धीरे धीरे मुझे दो मास बम्बई मे लग गए पर मे मरीज को छोड कर जा भी नही सकता था। दिवनी से मरी पत्नी भी बम्बई पहुच गई थी। पूर साढे चार मास मुझे बम्बई मे रहना पडा। मरीज की दशा धीरे धीरे सुधार पर आ रती थी। मे उनकी जीवन रक्षा करके प्रमन्न था। अत म साढे चार मास के बाद मरीज को पथ्य दिलाकर मे दिल्ली लौट आया।

बम्बई से लौटने पर मे चादनीचौक से अपना चिकित्सालय उठाकर शाहदरे अपने निवास स्थान पर ही ले गया। अब मेरा सारा समय साहित्यरचना मे ही व्यतीत होने लगा। इस समय मेरे हाथमे कुछ नाटक, कुछ कहानिया और अय पुस्तक फँती हुई थी। मेरा यह स्थान धीरे धीरे साहित्य स्थल बनता जा रहा था। अब मेरे पाम दूर दूर से साहित्यिक एव साहित्य के विद्यार्थी आकर साहित्य चर्चा किया करते थे और अनेक प्रश्नों का समाधान किया करते थे। मने सायकाल का समय इसी काय के लिए रख छोडा था। इससे मुझे दो लाभ होते थे, मेरा दिन भरका यथा मस्तिक तरौताजा हो जाता था, और मुझे अनेक साहित्यजनाका घर बडे दशन लाभ होकर उनके आतिथ्य करने का सौभाग्य भी प्राप्त होता था। अतिथि सत्कार का म सदैव ही अभिलाषी और अभ्यस्त रहा हूँ। जहातक मुझे स्मरण है कोई दिन ही ऐसा शून्य रहा हागा जब म अपने साथ किसी अतिथि को भोजन की मेज पर साथ लेकर न बठा हाऊंगा। मेरे घर की व्यवस्था ही ऐसी थी कि दो चार बाहरी व्यक्ति भोजन करे, कुछ आगत मह मान मित्रगण चाय पानी पिएँ। जिस दिन कोई नही आता था, मेरा मन उदास रहता

था और मेरी पत्नी को काई काय नहीं रहता था ।

मरी ये तृतीय पत्नी बनारस की थी । उनके परिवार में उनके साथ केवल इनकी सगी माता और सगी छोटी बहन भी थीं शेष सब चचा ताऊ के परिजन लोग थे । इनकी पारिवारिक कठिनाइयाँ भी कुछ ऐसी थीं कि बनारस में बहुत भारी पैतृक जमींदारी होने हुए भी वे वहाँ रह नहीं सकती थीं और उसकी आय का कुछ भी अंश उनके हाथ नहीं लगता था ।

मेरी अपनी माता का अग्रमान होते ही मरा शशत्रु मानो सो गया था । आयु के साथ और वेदनामय परिस्थितियों के साथ जो गम्भीरता और एकाग्रता मुझमें आ गई थी, वह सब माता के सामने खो जाती थी । जितने क्षण मैं माता के सामने रहता एक शब्द भी मुझे आत्मिक भाजन भी मिलता था । माता ही के बल पर मैं अपनी प्रथम पत्नी का अभाव इस भाँति सह गया था ।

अब माता की मुझे नितांत आवश्यकता थी, माता के बिना मैं रह नहीं सकता था । एक दिन मैंने पत्नी से कहा—अम्माको यही दिवसी बुला लिया जाय तो क्या ?

पत्नी अवाक् मेरे शब्दों को तोलने लगी । मैंने फिर कहा—अम्मा को वहाँ रहने में बहुत असुविधाएँ हैं । फिर उनके कोई पुत्र भी नहीं है । तुम ही उनकी पुत्री और पुत्र हो । तुम्हीं को अब अपनी माता और छोटी बहन का जीवनभर ध्यान रखना है । मरा घर तुम्हारा ही घर है । तुम्हारी माता मेरी माता है । मुझे भी माता की सख्त जरूरत है । उह तुम पत्र लिखो और बुला लो ।

पर क्या मैं यहाँ रहना स्वीकार करेगी ?

बाधा क्या है ?

‘वे शायद ही उतना साहम कर । मैं पत्र लिखगी ।’ अतः उन्होंने पत्र लिखा । मैंने भी लिखा और हमारे बहुत अनुरोध करने पर मैं अपनी छोटी पुत्री को लेकर दिल्ली आया । धीरे धीरे मरी गृहस्थी फिर हरीभरी होगई । मरे पास पत्नी थी, माता थी, भाई था, उष्टमित्र और साहित्यिक जगत थे । मैं अपने नवीन समारम्भ में पूरा तन्मय रह गया ।

मार्च १९३५ के लगभग अखबार में राजा जयसिंह द्वारा एक निमंत्रण, वहाँ पर होने वाले संस्कृत साहित्य सम्मेलन के सम्भाषित्व के लिए मुझे मिला । इसी अवसर पर ही मैंने सम्मेलन का भी आयोजन किया गया था । इस संस्कृत साहित्य सम्मेलन में राजस्थान के प्रमुख विद्वान आण्ये और यह सम्मेलन बहुत अधिक सफल रहा था । पहले दिन संस्कृत साहित्य पर विद्वानों के भाषण हुए और उसी दिन आरम्भ में मुझे भी अपना अध्यक्षीय भाषण संस्कृत में देना पड़ा । परन्तु मुरग कठिनाई का सामना

मुझे अगले दिन करना पडा। उस दिन सस्कृत में कवि सम्मनन था। सभी कविया ने अपनी अपनी रचनाएँ सुनायी। अन्त में महाराज जी और मेरे सम्मन चार समस्या पूर्तियों का प्रस्ताव आया। मैं सस्कृत का इतना विद्वान नहीं था, महाराज का आदेश, अध्यक्ष पद का उत्तरदायित्व और उपस्थित विद्वानों की उत्सुक निगाहों ने मुझे शक्ति दी, और मेरे उन सभी समस्याओं की पूर्ति कर सका। मेरी सम्मन कविताओं को सुनकर सभी ने मुझे साधुवाद दिया।

१९३६ में मुझे अपने निजी काम से कलकत्ते जाना पडा। आठ दस रोज मुझे वहाँ रहना पडा, तो जरूरी व्ययमाय सब की दौड़ धूप के अलावा मैंने कलकत्ते के दश नौ स्थानों को भी देखा। यद्यपि ये सब स्थान मेरे देखे हुए थे, और उनके प्रति कोई कुतूहल मन में नहीं था, लेकिन सपरिवार जाने के कारण बहुत काफी समय उन सत्र चीजों में लगाना पडा। लौटने के एक दिन पहले एक ऐसी घटना घट गई, जिसने कारण मैंने यह समझ लिया कि मेरी इस बारकी कलकत्ता यात्रा पणतया गफल होगी।

हम लोग जिस वक्त विस्तर बाग रहे थे और रमाना होने की तयारियाँ कर रहे थे कि एक मदरासी युवक मेरे पास आण। यह बहुत ही सीधे सादे वेश में और प्रभावहीन ढंग से आण, और बठ गए। स्वयं ही परिचय दिया, और बातचीत करनी शुरू की। दक्षिण भारत सबधी बहुत सी बातचीत हुई। इस युवक की हिंदी की लगन, राष्ट्र भाषा का प्रेम और उत्कृष्ट प्रतिभा देखकर चित्त को बहुत प्रसन्नता हुई। उन्होंने मुझे एक बार दक्षिण भारत की यात्रा करने के लिये उत्तेजित किया। कई वर्षों से इस यात्रा की गन में भावना थी ही, उनकी बातचीत से वह उत्सुकता और भी बढ़ गई। चलते समय उन्होंने मुझमें 'नाहर सग्रहालय' देखने का अनुरोध किया। इस सग्रहालय की चर्चा में पहले भी सुन चुका था, और जब जय मैं कलकत्ते आया, मेरे इसे देखने की अभिलाषा की थी। पर तु एक तो समय न मिलनेके कारण और दूसरे किसी ऐसे व्यक्ति से परिचय न होने के कारण, जो नाहरजी से व्यक्तिगत परिचय करा दे, मैं उस उत्तम सस्था को देखने से वंचित रह गया। इस युवक ने नाहरजी की सस्था देखने का मुझ से बहुत अनुरोध किया। हम लोग आधे बधे हुए विस्तर और सामान छोड़कर, उनके साथ, बिना कपडों से चारु चौपद हुए ही, जैसे बठे थे, उठकर चल दिए। साथ में पत्नी और मित्र भी थे।

नाहरजी अपने कमरे में, भारतीय ढंग से सजे हुए गद्दे पर मसनद के सहारे बैठे, कुछ कागजात देख रहे थे। एक रफल का कुरता उनके बदन पर था, और एक चश्मा उसकी कमजोर आँखों पर। देखते ही उन्होंने खड़े होकर बड़ी ग्राव भंगत और सत्कार के साथ हम लोगों को बैठाया। कुछ ही क्षणों की बातचीत से उनके सौजन्य, विनयशीलता और प्रेम ने हमें विमोहित कर लिया। मेरा वह सकोच भी दूर हो गया,

जैसा पहले मैं समझता था कि हम एक दूसरे से विलकुल अपरिचित होंगे। मुझे मालूम हुआ कि वह पत्राचार मेरे प्रथम और लेखों को पढ़ते रहे हों, और उनके तृतीय पुत्र बाबू त्रिजयसिंहजी नाहर जी० ए०, जो कलकत्ता कॉरपोरेशन के कौंसिलर भी हैं, मेरे साहित्य से बहुत आकर्षित हैं। उन्होंने तत्काल ही हम लोगों को अपने सग्रहालय के सबब से बहुत आश्चर्यक नागजान दिखलाने शुरू कर दिए। उन्होंने संक्षेप से यह भी बतला दिया कि वह इस समय अग्निरोग से कितने पीड़ित और दुःखी हैं। और एक चिकित्सक की हेमियत से मैंने उनके कष्ट और दुबलता को ठीक तोर से समझ लिया। मैंने इस समय उन्हें इतना परिश्रम करने से रोका, लेकिन नारहजी ने इस पर कान तक न दिया। वह बराबर फाइलो पर फाटल उठा उठाकर मेरे सामने ढेर करते रहे, और मुझे दिखाते गए। मालूम होता था, वह उस समय अपने शारीरिक कष्ट को विलकुल भूल गए थे। साहित्य के प्रति उनकी अभिन्धि, गहनशीलता, अद्भुत लगन तथा सग्रह सबबी अपरिमित ज्ञान और माय ही उनका प्रकाण्ड पण्डित्य तथा आश्चर्यजनक विनम्रता देखकर चित्त गद्गद् हो गया।

थोड़ी ही देर बाद वह हमें अपना सग्रहालय दिखाने ले गए। सग्रहालय की पुस्तकें देखकर हमारे आनंद का पारापार न रहा। इसके बाद उन्होंने अपने बहुमूल्य और आकर्षक सग्रहालय की भिन्न भिन्न वस्तुओं को दिखलाया, जिनमें बहुतसी महत्त्वपूर्ण और दुर्लभ मूर्तियाँ भी थीं, और उन सबका परिचय दिया। इस तमाम सग्रहालय को देखकर मैं इस परिणाम पर पहुँचा कि ऐसा पुरुष धन्य है, जो इस प्रकार की लगन अपने मन में रखता है, और अपने धन तथा शक्तियों का इतना अच्छा उपयोग करता है। वह एक व्यक्ति होते हुए भी एक सरथा है, जिसने अपने जीवन को समाज के लिए प्रदान कर दिया है।

यह सब कुछ देख चुनने के बाद मैं इस प्रलोभन को नहीं रोक सका कि हिन्दी पाठकों को नारहजी के परिवार से, उनके इस बहुमूल्य सग्रहालय से परिचित कराऊँ। इसलिए इस सत्र में एक परिचयात्मक लेख मैंने सुधा में प्रकाशित कराया।

नाहर वंश पँवार राजपूतोंकी एक शाखा है। यह किम्बदन्ती प्रचलित है कि इनके पूर्वजों में आगधर उडे प्रतापी पुरुष हुए हैं। उन्हें उनकी माता की गोद से एक बाघनी चुरा ले गई थी, और उनका पालन उसके दूध को पीकर हुआ। उही आसधर जी ने, स० ७१७ में, जनाचाय श्रीमानदेव और मूरिजी के उपदेश से जन धर्म ग्रहण किया।

उनकी ६७वीं पीढ़ी में अजयसिंह जी हुए जो पारिवारिक स्थितियों के कारण मारवाड में आकर बसे। फिर कुछ ही पीढ़ियों बाद तेजकरण जी बीकानेर स्टेट के डेगा नामक गाँव में जाकर बसे। डेगाँ गाँव में यह परिवार बहुत सम्पन्न हो गया। इस परिवार में बाबू खड्गसिंहजी का जन्म हुआ, जिनका विवाह उसी गाँव की एक कन्या के

साथ हुआ। त्रिग्रह ने समय उठोने घोड़े पर चढ़कर तोरगग या या था, जिससे क्रुद्ध होकर उस गाव के ठाकुर ने उनका सिर फाटन फा फाम दे दिया। उग्रगण खडगसिंह जी को वहा से अपनी नयन के साथ रातोगत आगरे भाग जाना पया। आगरे में उन्होंने अपनी दूरदर्शिता से रयाति प्राप्त कर ली। इस समय मुर्शिदाबाद के जगत सेठ दिल्ली जाते हुए किसी वाम से आगरे उहरे। वह भी खडगसिंहजी के सजातीय और सहधर्मी थे। उन्होंने खडगसिंहजी को मुर्शिदाबाद आने को निमन्त्रित किया। उनके फल स्वरूप खडगसिंहजी बगाल गए, और वहा अजीमगज में तम गए। फिर जगत सेठ के आग्रह से उठोने दीनाजपुर में एक कोठी खोली, और कागबार में बन्दि हो जाने पर उसकी एक शाखा कलकत्ते में भी खोल दी। उठोने दीनाजपुर में एक सुंदर मंदिर और धर्मशाला बनवाई थी।

पवित्र धर्मगुरु

१९३७ के दिग्मन्तरके अंतिम सप्ताहमें काकरोली त्रिग्रह त्रिभागने दशाब्दी महात्सव के अवसर पर एक विशाल हिंदी कविगम्मन्त्रन काकरोली (मेराउ) में हुआ। इस के सयोजक थे लखनऊ के दुलारेलाल भागवत। दुलारेलाल जी ने मुझे भी उहा जाने के लिए तैयार किया। निम्न त्रण मेरे पास आ ही चुका था। मेरी एक पुस्तक 'यभिचार १९२३' में छपी थी। उस पुस्तक में पुष्टि सम्प्रदाय के त्रिरोम में बहूत कुछ लिखा गया था। इसके लिए मेरे उपर केम भी चलाया गया और मेरी पुस्तक में विरुद्ध प्रदर्शन भी किया गया। नाथद्वारा और काकरोली दोनों ही मेरे लिए अनुकूल स्थान नहीं थे। पर तु काकरोली पहुचकर जब मेरा माथात् वहाके युवक प्रभाचाय गाग्वामी श्रीजज भूषणलालजी से हुआ तो उनके प्रममे मैं तसकर बय गया। सम्मेलनमें सवश्री 'मरस्वती' सम्पादक—श्री नाथसिंह ठाकुर, हास्यावतार जगन्नाथ चतुर्वेदी, 'सुप्रति' सम्पादक स्नेही जी, हितवी 'प्रणयेप, त्रिरम, वचनेश, आदि—३७ कप्रियान भाग निया। इस निमन्त्रण को स्वीकार करने में मेरी एक अभिलाषा पुष्टिमाग की आ तरिक भांकी पैना था। मेरे वहा पहुचते ही त्रणय समाज के दकियानूसी तत्वों में एक तदाचन मच गयी। रात्रि को कविसम्मेलन के प्रारम्भ में काकराली महाराज श्री ब्रजभूषणताल जी का पुष्टिमाग की 'हिंदी सेवा' विषय पर व्याग्यान हुआ, जिस सुन कर मैं इन तरुण धर्माचाय के व्यवहार, सौजय और विद्वता से प्रभावित हुआ और मेरे मन में उगी क्षण से उनके प्रति सद्भावना अकुरित हुई। महाराजश्री के भाषण के बार जगन्नाथप्रसाद जी के सभापतित्व में कवि सम्मेलन हुआ। दो दिन तक काव्यरस का मधुर श्रोत प्रवाहित होता रहा। इसी अवसर पर मेरा भाषण 'कविता और रस' पर हुआ। मेरे भाषण में 'रस' की स्वतंत्र परिभाषा सुनकर ठाकुर श्रीनाथसिंह भक्क उठे थे और उन्होंने अपने भाषण में मेरे वक्तव्य पर कटाक्ष किया था। हास्यावतार जगन्नाथप्रसाद जी ने बड़े

कौशल से हम दोनों का समन्वय किया।

सम्मेलन का प्रगना दिन मेरे लिए एक कर्मौटीका दिन था। उस दिन मेरा नाम सुनकर वल्गव समाज के अनेक व्यक्ति रोपाप्रेषित हो मुझसे अनेक प्रश्न पूछने और मेरी भ्रमना करने के लिए बनी मर्यादा में उपस्थित हुए। मेरे भाषण का विषय था— 'वर्णावधम की उदात्तता और स्त्री जित्वा'। मेरा यह भाषण एक घण्टे से अधिक समय तक चलता रहा और स्वभावतः अपने क्षात्र तेज के कारण मैं अोजस्वी भाषा की सीमा को भी पार कर चुका था, परन्तु अपने भाषण के अंत में मेने अपने श्रोताओं के मुख पर आश्चर्य के भाव देये। वे मौन थे और उनके चेहरो से यह प्रकट होता था कि मैं अभी और बोलता रहूँ।

मेरी दोनों पुस्तको 'व्यभिचार' और 'अम के नाम पर' में शुद्धाद्वैत पुष्टिमाग पर बहुत आशेष था, जिसे पत्र समाजिकारी और उनके भक्तों में मेरे प्रति तीव्र असंतोष उत्पन्न हो गया था। परन्तु जब हम लोगों का प्रथम साक्षात् हुआ, तो दोनों ही के हृदयों में परिवर्तन हुआ। जब मुझमें उन दोनों पुस्तकों के सम्बन्ध में प्रश्न किया गया तो मेने सहज स्वभाव उत्तर दिया कि पुष्टिमाग के अर्थ और सिद्धान्तों का हिंदी में प्रवाराभाव ही इमहा मूल कारण है। राष्ट्रभाषा के साहित्य में इसके सद्गुणों पर प्रकाश डालने वाला कोई ग्रन्थ न लिखा गया है, न प्रकाशित हुआ है। मेरी बात सुनकर फिर किसी ने मुझमें प्लुतप्रतिवाद नहीं किया।

हिन्दी वृत्ति सम्मेलन तो तीन चार दिन में समाप्त हो गया, परन्तु मेरा काक रोलों का अद्भुत सम्पन्न हो गया। श्री महाराज सग्रहणी से पीडित थे। इसलिए सम्मेलन के बाद वे मेरी चिकित्सा में आए। उनके आरोग्य लाभ होने पर उनकी पत्नी तथा परिजनों की चिकित्सा भी गेने समय समय पर दी। उनको पुत्र की प्राप्ति भी मेरी चिकित्सा सहर्ष।

काकरोपी मेवाड़ की पहाड़ियों के मध्य एक विशाल झील के किनारे बसा हुआ बहुते सुन्दर स्थान है। एक पहाड़ी के ऊपर मन्दिर है और पास में ही महाराज श्री के महल। टाकुरजी के नित्य भोग में मनो मिठाई पूरी बनती थी। सेरो केसर चादी मोटा के पाटा द्वारा पीसी जाती है। ग्राह के भण्डार में शुद्ध घी के कनस्तर पर तनस्तर भरे रहते थे। गमली केसर के छिन्ने के छिन्ने भण्डार में रहते थे। देश भर के भिन्न भिन्न जागों में भजनगण टाकुर जी के भोग के लिए घी, केसर, रेशमी वस्त्र, अनाज, रुपया, गणिका मुक्ता ढेर ही ढेर भेजते रहते थे। भोग लगने के बाद वह सारा देवभोग प्रसाद ग्राह्यगो को बाँटता था, जिसे वे यात्रियों को बेच दिया करते थे।

मैं जब वहाँ चिकित्साथ ठहरता तो श्री महाराज मेरे लिए भी ढेरो भोग भेजा करते थे। प्रथम दिन कलेवे में जो भोग मुझे मिला उसका परिणाम भी सुनिए।

प्रातः वान ही मेरे सामने दारोगा ने आकर मुझ पर कलेत्र और भोजन की व्यय
स्था के सम्बन्ध में पूछा ।

उसने प्रश्न किया—कलेवे में पेडा कितना भेजा जाय ?

मैंने मन में सोचा दो तो चाहिये, इसलिए उत्तर दिया—दो ।

साथ में मक्खन भी ?

मैंने सोचा वाह, मक्खन के साथ पेडा बहुत स्वाद लगेगा । उत्तर दिया—‘हाँ’ ।

भोग का लड्डू भी ?

हाँ, एक वह भी ।

प्रसाद की पूरनपूरी भी ?

हा, एक दो वह भी ?

दूध ?

चाय न हो तो दूध ही सही ।

यह तो हुआ कलेवा, अब दापहर के भोजन के लिए उसने प्रश्न किया—

दोपहर के भोजन में दाल किसकी ?

मूग की धुली हुई ।

चावल भी ?

हा ।

फुलका ?

हा ।

सब्जी ?

दो सब्जी भी ।

चटनी, अचार ?

हा, थोडा थोडा ।

अब उसने रात्रिके भोजनके लिए पूछा—पूरिया बनेगी, आपको अनुकूल होगा ?

ठीक है, पूरी ही सही ।

शाक सब्जी के साथ दही भी ?

हा, दही हो तो अच्छा है ?

कुछ मिष्ठान्न ?

मावे का कुछ ।

मेरी फेहरिस्त बनाकर रसोई घर के दारोगा चले गए । परन्तु जब मेरे सामने
कलेवा आया और जिस प्रकार दिन भर उस लिस्ट की खानापूर्ति मुझे करनी पडी
उसे मैं ही भुक्तभागी जान सकता हूँ । भोजन सामग्री देखते ही मैं समझ गया कि मैंने

ये जिम मतयुग की मात्रा मे बताकर भूल की है। कलेवे का थाल जब मैंने उघाड कर देखा तो वाह ! एक एक पाव के दो पेडे। शुद्ध मावे और केसर के बने हुए। आधा सेर का एक लड्डू जिसमे केसर मेवेजात और शुद्ध घी की प्रचुरता दूर से ही दीख रही थी। पूरन पूरी पूरी एक फुट गोल बेसर और मदा मावा और मेवाजात मे भरी हुई।

मक्खन का एक पाव का गोला और एक सेर पक्का चादी के लोटे मे केसर पडा हुआ दूध। मै देर तक इस नाश्ते को देखता रहा। मैने साहस करके पेडे को तोडा और मक्खन तगाकर खाने लगा। दो चार कौर खाते ही तबियत भर गई। लड्डू का टुकडा तोडकर खाया, पर एक दो कौर से ज्यादा वह भी नहीं सरका। पूरनपूरी तोडकर चक्खी, वाह बडी मजेदार थी, पर एक दो कौर से ज्यादा वह भी नहीं चली। मक्खन और पेडे ने पहले ही तबियत भर दी थी। अब दूध और आक्षित कर रहा था। मैने प्याले मे ऊरके थोडा दूध पिया। दूध क्या था रबडी थी, दो घूट पीते ही सब इच्छाएं तृप्त हो गद। केसर की महक मुझे मस्त बना रही थी सब चीजो की ओर मे दयनीय दृष्टि से देख रहा था, पर अब और कुउ भी खा नहीं सका। तबियत भारी हो गई। नाश्ते के थाल को मैने ढककर रख दिया कि थोडी देर मे खाऊंगा। कमरे मे इतर उधर चहल कदमी की, पेट को बहुत हिलाया टुलाया पर नाश्ते के जो ग्राठ दस कौर कलेजे मे ठसे थे सो ठसे ही रहे। भूख नहीं लगी। दोपहर हो गया। बारह बजे ब्राह्मण ने आकर सूचना दी रसोई तयार हे। मैने पेट को हिला डुला कर देखा, बिल्कुल खाली नहीं था। मैने उससे कहा—थोडा ठहरो।

एक घण्टे बाद वह फिर आ हाजिर हुआ कहा—रसोई ठण्डी हो रही है।

मै हिम्मत करके उठा और रसोई मे जा बठा। वहा उसने जो एक एक कटोरी और तश्तरी रखनी शुरू की तो तबियत वहा मे भाग जाने को हुई। पर सब रसोइए और नोकर लोग हाथ बाये मेरी चाकरी बजाने को खडे थे और मेरी ओर ही सब की नजर गडी थी। मुझे वहा से भागने का साहस नहीं हुआ। मैने चुपचाप खाना शुरू किया। बिडिया के चुम्गे की तरह कभी चावल, कभी फुलके का टुकडा, कभी चटनी, कभी अचार, कभी दान, कभी शाफ सब्जी पर मेरी उँगलिया फुदकने लगी। घी की भर मार थी। दो चार कौर अदर जाते ही फिर सवेरे वाला ठसाठस मामला हो गया और मे भरा थाल ढोडकर उठ खडा हुआ। इतना मामान उसमे परोसा गया था कि चार व्यक्ति उस थाल मे जीम सकते थे। सब कुछ छोड जब मै उठ बैठा तो ब्राह्मण ने हाथ बाध मेरे सामने आकर दुहाई दी—सरकार को रसोइ पस द नहीं आई। श्री महा राज सुनेगे तो हमसे जवाब तलब होगा ?

मेने हँसकर उससे कहा—नहीं भाई, रसोई बहुत बढिया बनी हे, पर सवेरे के नाश्ते के कारण भूख ही नहीं लगी।

म जल्दी से अपने ऊपर आतर पलग पर नत गया। मैंने अपनी खाई की कीशिया टटोली, पर तु फिर भी म भी पात्रकृष्ण नहीं था, मया पगय म भीन के निनाये घूमने निबल गया। सूत्र पूसा। नी पर नि म ता गया। पर तु तत्का टपा। पर तु पेडे और मवया की उलिया अब भी पात्र पर प्रो रागती थी। मैंने निश्चय किया कि मे भोजन नहीं करूंगा। पर तु तीन समय पर जा पात्रकृष्ण ने आकर मुझसे भोजन करनेका आग्रह किया तो मैं फिमल गया, उगवे राय तो निया और फिर बैठ गया मरेरे के आसन पर। जिसे परोम परोम कर मेरे सामने ढेर कर दी गई। म उहे रोक नहीं सका। अब जो खाना गुरु किया तो चार पात्र आगवे, पाद तबियत टप्प। मिष्टान्न की दो चार बरफिया गावर तो यती सुभा नि आ चन दिया जाय। सामने देखा तो दोपहर की तरह सब सेवकों को दृष्टि मेरी तरफ हे। पर अब एक और भी खाना कठिन था। मैं सब मनाच त्याग उठ गया तुआ और अपने डेर पर ही आकर सास ली।

कलेव और भोजन का यह मेरा पथम अनुभव था। मुझे पीछे पता लगा कि काकरोली का पानी भारी है, सुपाच्य नहीं है। फिर ता दो तीन दिन तक मेरा कलेवा और भोजन हुआ ही नहीं। बड़ी तरहीवो से मने अपनी स्वाभाविक भूय फिग से जाग्रत की। मैं जब घर लौटा तो ढेरो भोग का मिष्टान्न महाराजश्री टोकरो मे भणकर मेरे साथ रख देने थे, जिसे मैं शाहदरमे गाकर अपने मित्राको सीगात रहकर वाटता था।

सन् १९४१ के दिसम्बर मे सूरत मे बालकृष्ण दुहाद्वैत महासभा का पचदश वार्षिकोत्सव मनाया गया। इसीके साथ एक हिन्दी साहित्यिक समारोह का भी गायोजन हुआ। जिसमे मर्वश्री गुलाबराय जी, सत्ये द्रजी, दीनदयालुजी आदि विद्वानो के साथ मुझे भी निमन्त्रित किया गया। इस समारोह के सयोजक काँकरोली त्रिया त्रिभाग के त्रय्यक्ष पण्डित कण्ठमणि शास्त्री थे। बल्लभ समाज की मेरे प्रति त्रिरोध भावना देखते हुए भी उन्होने मुझे निमन्त्रित करके साहस किया, क्योंकि मे वाभिक ऋधिया का आ लोचक था और गुण्टिमाग मे तो मैं त्रिरोध रूप मे ख्याति प्राप्त कर चुका था। श्रोता गुजराती थे, म गुजरातीमे भाषण दे नहीं सकता था और हि दी भाषणको वे समझ नहीं सकते थे, फिर भी कण्ठमणि शास्त्री के आग्रह पर मुझे अपना भाषण दे के निण मच पर आना पडा। मेरे भाषण का विषय था—‘बतभाचाय और अष्टछाप’। मेरे मच पर पहुँचते ही और सयोजक द्वारा मेरा परिचय देने और मेरे भाषण का विषय बताने पर समस्त उपस्थित वैष्णव समाज मे, जिनमे अनेक सेठ सात्कार और विद्वान् भी थे, एक शका की लहर दौड गयी। जिसका आभास उाकी ऊपर उठी हुड और मेरी और ताकती हुई आँखोमे मुझे मिल गया। मने अभी अपना भाषण आरम्भ भी नहीं किया था कि मेरे एक मित्र ने उटकर मुझसे कान मे कहा—‘सम्ल कर वालिए।’ कण्ठ

मरिण शास्त्री का सैन भी गये देखा। परन्तु मने उनकी ओर ध्यान नहीं दिया और मुस्कराकर अपने प्रोतागोत्री और अभिभुग टुगा। पुष्टिमाग पर श्री बल्लभाचार्य के त्याग और तपस्या पर पण एत पट तक मारापत्राह बालता जला गया। मेरा भाषण हिन्दी में था और प्रोतागग गुजराती समाज, परन्तु मने मुरग की भांति सब सुनते रहे। भाषण के अन्त में जत्र मन टिप्पण साहित्य में अष्टछाप की सम्पत्ति को पुष्टिमाग का देन बतलाकर मुर का बालीनाया पर प्रकाश डाला, तब समस्त पुरुष और महिला समाज की तालिया की गजगहट के वाच में अपने रान पर आ बठा।

तीसरे दिन हमारे निदा होने का ज्ञान का ओर हम लोग ताप्ली गरी पर भ्रमण कर रहे थे। एत पाठक म मुभगे व्यभिचार' नामक पुस्तक के मर ज म जुठ पश्न किए। मने उ न बतयाया कि म पने एन चिकित्सव ह मर बा म एक साहित्यिक। समाज की विवृति का निदान करना मेरे लिए परमावश्यक टा जाता हे।

श्रीमद् बलभाचार्य के पुत्र गान श्री गिठुलनाथ जी ने अपने सम्प्रदाय व सात पीठ स्थापित किए। स० १६४१ म तृतीय पीठ को स्थापना गोलुल म हुई। म० १७१७ में विपम राजनतिर उत्क्रांति क मरण गो० श्री त्रजभूपणलाल जा (प्रथम) ने काफरोली में द्वारिना गीश के साथ तृतीय पीठ को स्थापित किया। तब स अब तक ३६० वर्षों के काल में अनेक विपरीत जालावरण म भी यह पीठ वपणव साहित्य क संरक्षण में बहुत ठुनीयोग रटा। समय-समय पर उसने म शोधर और वपणव साहित्य निमाण म बहन टाय किया और आज यह काय पीठ के अतमान श्री शिवर काकरोली नरेश गो० श्री त्रज — — न जी महाराज की अव्यक्षता म एक पृथक् 'विद्या विभाग' द्वारा हो रहा हे। यहां के पुस्तक भण्डार म इस समय २००० के लगभग हस्तलिखित ग्रंथ ह, जिनम मनेक दुर्लभ, अज्ञात और अनुपलब्ध हे। विद्या विभाग का एक प्रथक 'अवेपण विभाग' टा जा म० १९८५ से अपना टाय कर रहा ह। इसने अहमदाबाद, सखेडा, अतिया, डीरमगढ, मद्रान, भापाल, जहानाबाद, वीकानेर, कामवन, आ मरा त में काय कर ५०० से अग्रा म तीन म या का विररण प्राप्त किया हे, जिनम अनक लुप्त प्राय थ। विभाग ने कई महत्वपूर्ण दुप्राय ग्रंथो का प्रकाशन और सम्पादन भी कराया हे। विद्याविभाग म प्रतिदिन स्वयं महाराजगी बठ कर ग्रंथ सम्पादन में हाथ बँटाते ह, विभाग का मचालन प० कण्ठमणि शास्त्री अत्यंत योग्यता से करते हे। म शोधर के सिवा विभागने शिक्षाविरतार गौर साम्कृतिक विषयोमें भी बहुत स्तुत्य काय किया हे।

काकरोली के पीठा शिवर गोस्वामी श्री त्रजभूपणजी महाराज के प्रति आरम्भ से ही मने मनमें बहुत मान था। उनका सदाचार, विद्या व्यसन और साधु स्वभाव अद्वितीय ह। उनकी धमपत्नी भी उही जैसी है। बीस वर्षों से भी अधिक समय से मेरा उनका स्नेह सम्पर्क दिन दिन प्रगाट होता गया। मे परम नास्तिक और महाराजश्री

परम आस्तिक । हम लोगोकी मेल मुत्राकात और घनिष्ठता पर उतुत नाग टीगाटिप्पणी और आश्चय करते रहे हे । अपने मन ना यद एक गूढ ज्ञान मे यदा रहता हे—कि इस पवित्र पुरुष के ससग सात्त्विय के प्रभाव स मेरी अन्तरात्मा स कभी कभी आस्तिक भाव की ऐसी वेगवती धारा बहती रही हे, कि वह सत्र तर्की और विवचनायो वा बहा ले जाती हे । मेरे उप यास 'सोमनाथ' की रचना इसी वेगवती धारा के प्रवाह स हुई, यद्यपि इसका उद्दीपन हुआ पजाब के विभाजन स । पर तु सोमनाथ स जा धम सपप हे, वह इसी वेगवती आस्तिक धारा की प्रतिक्रियायादीनी शक्ति स जबदस्त टकर हे । निस्मदेह मे सोमनाथ मे स्वय प्रतिक्रियायादी नही बना, और अपनी सामन्य स अ तत मानवतावादी ही रहा, पर मेरे सारे ही सामनाथ पर जो आस्तिक तत्त्व आया हुआ है, मे स्वीकार करता हूँ कि यह मेरे जीवन पर महाराजश्री के सम्पर्क का प्रभाव है । चाहे तो इसलिए समभिण, चाहे स्नेहाधिक्य से समभिण, मैने समझा— कि सामनाथ रचना मे महाराजश्री का भी प्रच्छिन्न हिस्सा हे । इसीलिए ज्या ही सामनाथ छप कर तैयार हुआ—मेने चुपचाप उसका समपण महाराजश्री और उनकी वमपत्नी को कर दिया, और जब इसकी सूचना मेने उह दी, तो बहुत सकाच के बाद उ होने स्वीकार किया । मेरे समपण बिना ही अनुमति के हुआ करते है । नगरवधू' जब श्रीजवाहर लाल नेहरू को समर्पित की थी, तब उनसे भी नही पूछा था । उसपर जब उ-होने शिका यत की, तो मेने कहा था—मैने आपको दिया ही है, लिया कुछ भी नही । कभी कुछ लेने का इरादा भी नही करता हूँ । स्वीकृति समथन की उमम वया ज्ञान हे, जिम पर श्रद्धा हुई, प्रिय वस्तु भेट कर दी । बस खत्म ।

पर तु सोमनाथ का समपण यो खत्म नही हुआ । महाराजश्री जमे बडे समगुर हे, वैसे ही राजसी पुरुष भी हे । उनके बहुत भक्त उाकी परावगी करत हे, पद पूजा करते हे । ऐमे ऐसे बडे भव्य समारोह मै देख चुका हूँ । बहुत बार मरा मन हुआ कि कभी एक ऐसा ही भव्य समारोह मेरे हाथो भी हा तो उत्तम । तो उस अवसर को मेने उत्तम समझा । बहुत ननुनच करने पर, बहुत लडाईं भगडे के बाद महाराजश्री ने मेरा अनुरोध स्वीकार किया । अन्तत पहली गितम्बर सन् ५८ के पूर्वाह्न स उम्बई के प्रसिद्ध ताजमहल के सवजन दुलभ प्रिन्सेस चैम्बर स यह प्रभूतपू गेति-गिफ भव्य समारोह सम्पन्न हुआ । समारोह के प्रधान ग्रामन पर न्यायमूर्ति श्रीनटवरताल हरी लाल भगवती, जस्टिस, सुप्रीम कोट सुशोभित थे । उपस्थित गण्यमान्य जनो स, महा राजश्री और उनकी वमपत्नी के अतिरिक्त महाराजश्री के अनुज गोत्रामी श्री त्रिवृल नाथ जी महाराज, गोस्वामी श्री गोपीनाथ जी महाराज, श्री कण्ठमणि शास्त्री, राजा बहादुर श्री गोविन्दलाल पिप्ती, महाराजप्रसाद दाधीच सालीसीटर, श्री रणछाडलाल जी महाराज, बम्बई के हिन्दी, गुजराती, मराठी, अग्रजी प्रमुख पत्रो के सम्पादक, सम्वाद

दाता तथा बम्बई के प्रमुख भद्र नागरिक और महिलाएँ उपस्थित थीं। मूसलाघार वषा होने पर भी समारोह की भव्यता अगाधारण थी। यायमूर्ति जस्टिम भगवती, महाराज श्री तथा राजा बहादुर गोविन्दलाल पित्ती आदि के महत्प्रपूर्ण भाषण हुए।

समारोह की दो और विशेषताएँ थीं। प्रथम महाराजश्री का ताजमहल में पदापण, जिस पर पम्परागत पद की मयादा का उल्लघन करके श्रीमतीजी का सबके समक्ष उपस्थित होना अगाधारण घटना थी। बम्बई भर के वप्यगवो ने तथा निकटस्थ परिजनो तक ने विरोध किया, पर तु महाराजश्री तो समयकी प्रगति के साथ हे। वे हठ रहे और हसकर यही कहा—देश में बाहर अछूताद्वार हे रहा हे, आज ताजमहल का अछूतोद्वार होगा।

एक बार जो मपुर से मुझे बुलावा आया। मेरी ट्रेन आवा घण्टा लेट थी। स्टेशन पर स्वयं रावराजा उदयसिंह अपनी मोटर लिए मेरी प्रतीक्षा में खड़े थे। ट्रेन से उतरने ही उ होने मेरा स्वागत किया और स्वयं ही कार को डाउन करके अपने साथ ले गए। स्टेट गेस्ट हाउस में ठहराया। बहुत बाने हुईं। चार दिन रुकना पडा। वहा चार दिन में मरे चौदह भाषण भी हुए। रवाना होने से एक दिन प्रथम मंन काकरोली तार दिया कि मैं जोधपुर आया हुआ हूँ, मेरी आवश्यकता हो तो आऊ। तुरत ही बुलाने का तार आ गया। मैं दिल्लीका प्रोग्राम मुलतबी कर काकरोली चल दिया। स्टेशन पर पहुँचकर देखा स्वयं श्रीमहाराज अपनी गाडी लेकर आए हुए ह। मैं महाराज से उनके कष्ट करने की बात कर ही रहा था कि एक घुडसवार तेजी में महलो से दौडता हुआ आया। उसन महाराज को सूचना दी कि उनके शिशु पुत्र को अकस्मात दौरा हो गगा हे। हम अपना असबाब वही छोड तुरत ही मोटर में बठकर महल में पहुँचे। जाकर देखा बच्चे का पेट बहुत फूला हुआ हे, सास कष्ट स आ रहा हे और डाक्टर बगले भाक रहा हे। बच्चे का दूर से देखते ही मैं उसके दौरे का कारण समझ गया। गरम जल क साथ औपध ही। एक भयानक बदबूदार दस्त हुआ। सारा बिस्तर खराब हो गया। पर तु दस्त होते ही वच्चा आराम से सुख की नीद सो गया और उसकी उध्व श्वासे प्राकृतिक हो गई। पेट पिचक गया। एक दस्त और हुआ और अगले दिन तक वह उठकर खेने और हसने लगा। दो दिन वहाँ रहकर मैं नाथद्वारा घूमने के विचार से गया। नाथद्वारा मैं बमशालामे ठहरा था। लोगो को पता चला तो मुझसे भेट करने आए। उनके आग्रह पर रात्रि का एक भाषण भी दिया। सुबह चलने लगे। बिस्तर बाधकर तैंगर थे कि नाथद्वारा मन्दिरसे बुलाया आया कि श्रीनेटीजी बीमार हे, उ हे देख लीजिए। उनका अनुरोध मुझे स्वीकार करना पडा।

महलो में पहुँकर उन्हे देखनेमें बाधा उपस्थित हुई। वे एक वर्माचाय की पुत्री थी। हर कोई व्यक्ति अन्त पुर की परछाई भी नहीं देख सकता था। कडे परदे और

महान वार्षिक व्यक्तित्व का वहा प्रश्न था। मुझे एक भारी परदा में पाग न जाकर बठा दिया गया। रुई का गद्देदार भारी परदा, और उमक पोत्र पर और परदा और उम दूमरे परदे के पीछे सुनहरी उपरखट पर मटीजी गटी हुई थी। उगरी बला से बाध कर एक डोरा मेरे हाथ में नब्ज देखने के लिए पकड़ा दिया गया। एंगी विद्या तो मेने वैद्यक में पढी नहीं थी। मेने कहा—मे कुछ भी नहीं कह सकता। फिर सलाह हुई। अतः मैं मुझे विशेषाधिकार प्रदान किए गए और मे परदा को पार करके सुनहरी उपर खटपर लेटी हुई युवती बेटीजी के पास पहुंचा दिया गया। मेने उनकी परीक्षा की, राग के हालचाल पूछे। यह भी मैंने जान लिया कि उनका अभी विवाह नहीं हुआ है तथा मासिक धर्म भी नियमित नहीं है। उनको ज्वर सम रहता था और किसी औषध से शान्त नहीं होता था, न वे पैलंग पर लेटे रहना पसन्द करती थी। उनके रोग और उसकी चिकित्सा को मेने तत्परण ही भाप लिया। पर मैं उहा असली बात किसी को कह नहीं सकता था। मयादा ही ऐसी थी। उह देखकर मे अपने डर पर लोट आया और औषध तैयार करके पानी में भिगो दी। रात भर भीगी रही। सधर पानी को चादी के कटोरे में छान कर उसे बेटीजी को पीने को दिया। दिन में तीन बार यही पानी दिया। उनका ज्वर उतर गया था। अब तो मेरा समान अर्मशाला से उठवाकर सरकारी मेहमानखाने में लगा दिया गया। तीन चार दिन वहा ठहरा। मटीजी मरी औषध से पूरा स्वस्थ एव प्रसन्न हो चुकी थी। मेने वहामे आजा ली। उहा से भी मुझे मदिर का प्रसाद दो टोकरे भरकर साथ कर दिया गया, जिसे हमने घर आकर महीनो खाया।

इसी प्रकार की एक चिकित्सा करने का अवसर मुझे १९२२ में मिला था। मेरे एक मित्र दिल्ली में नहर विभाग के सबसे बड़े इंजीनियर थे। रायमाह्व भी थे। बहुत मज्जन और मृदुभाषी। उनका एक ही पुत्र था। उसे भी उहाने इंजीनियरी पढाई। पढने के बाद उसका विवाह केवल पन्द्रह मिनट में उहाने सम्पन्न किया था।

विवाह के दिन उहोने मुझे तथा दो मित्र गौर साथ लिए। एक वे और एक उनका पुत्र दूल्हा केवल पाच व्यक्ति कार में बैठकर गरीब माल के घर, जो उनके बगले से पाच मात मिनट का ही रास्ता था, पहुंचे। एक बड़े में सुगन्जित हमरे में फूलों की बदनवार लटक रही थी। कुर्सियों पर कया के पिता, माता, बाहिन एक दो अथ सम्बन्धी तथा कयासहित कुल ६ व्यक्ति बठे थे। बीच में एक मेज पर फूलों की प्लेटें सजी हुई थी और एक थाल में फूलमालाए रखी थी। वर के पहुंचते ही सब खड़े हो गए। कया ने उठकर सब आगतों को प्रणाम किया और वर के गले में पुष्पमाला डालकर उसके वामपक्ष में खड़ी हो गई। वर ने भी एक पुष्पमाला लेकर कन्या के गले में डाल दी। कया के एक अन्य सम्बन्धी ने शायद वे उसके मामा थे, हम चारों अतिथियों के गले में भी पुष्पमाला डाल दी। इसके बाद कया पक्ष के सब व्यक्तियों

ने बारी बारी से आकर घर और पधू को रोरी ना टीका दिया। अन्त और पुष्प ऊपर फके। उमके प्राद व या क पिता ने अपनी जेब मे से पचास हजार का चेक निकालकर अपनी बेटी के हाथ मे थमा दिया। मेर मित्र रायसाहब ने भी अपनी चेकबुक निकाल कर पच्चीस हजार का चेक भरकर अपने पुत्र के हाथ मे थमा दिया। बस लीजिए विवाह हो गया, नंगा दना भी टा गया। यह सत्र होने के बाद व या के पिता ने हमसे फलो पर कृपा करने की प्रार्थना की। एक एक से से फल खाकर हम लाग उठ खड़े हुए। बीस मिनट भी उसमे नही लगे। एम विवाह ही मे कल्पना किया करता था, पर साक्षात देख भी लिया सम्मन्वित भी हुआ।

विवाह के चार पाच मास बाद रायसाहब ने मुझे बनारस पत्र लिखकर बुलाया। उन दिनों उनकी मॉरिस बनारस चक्रिया म नगी हुई थी। म गया तो मेरे सामने पुत्र-वधू को पश करके उन्होंने कहा कि इसकी चिकित्सा कीजिए। म उसको देख आश्चय और दुख मे डूब गया। चार मास प्रथम उमी गिले हुए गुताप पुष्पको मन भर जीवन मे आटहादिन देखा था। आज वह मुर्झाकर पीला पड गया था। आखो की बोरा पर कलौस झा गई थी। मुह सूख गया था। माना वह जोवित नही थी। मने रायसाहब से कहा—आपन अब तरु मुझे लिखा क्यों नही ?

उन्होंने नीची गदन करली। म उनके सगोती स्वभाप ना स्मरण करके प्रपने प्रश्न के लिए पश्चाताप करने लगा। मन रग— कोई चिन्ता की बात नही। सब ठीक होगा। आप त्रिस्तुत भी फिक्र न करे, न सकाव करे।

रायसाहब ने अपो बगले म ही मेरे ठहरने का प्रबन्ध कर दिया।

रायसाहब के पुत्र को एवान्तमे जुताकर मैंने सब हाल पूछा। उसने मुझे बताया कि विवाह रात्रि के बाद मे ही यह उस प्रकार सुस्त होती चली गई है।

लउ ही म मन अलग बातचीत ही, पर उमने नई विशेष बात नही बताई। अत्यंत शालीनता म 'हा' 'ना' म मेरे प्रश्ना का उत्तर मात्र देती रही।

उमकी ना ही शयना शरीर परीक्षा से कोई राग ल गग प्रतीत नही हो रह थे।

म दो चार दिन तर ताउती का तप्राआ और दिनचर्या का अध्ययन करता रहा। मे अपने निदान म पतामिजा ना भी प्रयाग करता हू, इसीमे मुझे कभी कभी मही रोग सूत्र मिल जाते हैं।

अत म मुझे उमके रोग का सूत्र भी मिन गया। मने रायसाहब के पुत्र से कहा— गार्ज रात का पत्तो को मोटरम बटाकर बाजार ले जाना और कुछ थण्ड रिफाड जिनस प्रस गायन था, उसकी पगन्द क खरीद लाना। उससे अत्यंत मधुर मित्र को भाति व्यवहार करना, अपना पतित्व अतिकार किमी भी प्रकार उस पर न चलाना। उसे अपना मित्र समझना, वह भी तुम्ह अपना मित्र समझे, ऐसी चेष्टा करना। उसे

नित्य कोई प्रमपूग पिक्चर भी दिखाने न जाना । पर तभी, जब ग्ट स्पीकर बरे, जबरदस्ती नही । उसके कमरे मे सदव वे रिक्वाड ग्रामोफोन मे बजते रहे चाहिणें । कमरे मे फूलो के गुलदस्ते तथा कामुक चित्र और मूर्तिया लगा देनी चाहिणें । पर तु रात्रि को गलग सोना, उसके कमरे मे नही, और जब तक मे आज्ञा न दू, उमने शरीर का स्पश भी न करना ।

मेरी व्यवस्था सुनकर वह कृत्र चकित हुआ । पर तु उमन आज्ञाकारी पुत्र की भाति मेर सभी आदेशो का पालन क्रिया ।

इवर मेने यह क्रिया कि सवेरे क नाश्ने पर मे उमे अपने पास बुताने लगा । बाहर बरामदे मे फूलो क गमल सजे रहते ये गोर मे चाय पीते पीते अनेक अद्भुत ज्ञान और प्रेमकी बाने उसे सुनाता रहता था । मे उमके साथ बच्चे की भाति बात कर के हसता रहता और उसे भी ग्विलखिताकर हँमने का प्ररित करना । ठोस भोजन मेने उमका बन्द कर दिया । कभी दूध, कभी फन, कभी मेवा मक्खन, शहद टोस्ट आदि भोजन देता था । गोपव मेने बहुत कम दी । केवल नाम मात्र का रात्रि को सोते समय उत्तेजनात्मक औषध की एक पुडिया शहद मे देता था ।

प द्रह दिन मे ही अनुकूल परिणाम हुआ । उमका कामोद्दीन जो ठण्डा हो गया था पुन लौट आया । अब वह स्वय कभी कभी प्रमगीतो को गुनगुनाती फिरती थी । पहले वह क्रिमी भी काम करने मे उदासीन रहती थी, पर अब यह बात नष्टी थी । वह घर के कामोमे दिलचस्पी लेने लगी, कभी वह मालीके हाथ से खुरपा लेकर पेडो को ठीक करने लगती, कभी अपने हाथ से फूल तोडार गुलदस्ते मजाने लगती ।

कुछ दिन बाद वह मेरे पास आकर चाय पीने मे विलम्ब करने लगी और चाय पीकर शीघ्र ही उठ जाने लगी । अत्र मेने उसके पति को आज्ञा दी कि वह भी हमारे साथ चाय मे सम्मिलित हो । पति के बठने पर वह बहुत देर तक वठी बातों मे लीन रहती । कभी कभी वह ऐसा प्रसग छाती कि मुझे हँसी की बात मुनानी पड जाती, फिर तो वह हसते हँसते लोट पोट होकर वहा से भाग जाती ।

एक डेड मास व्यतीत होने पर एक दिन उसने पति मे स्वय परनात्र क्रिया कि आजसे मेरे कमरे मे आपको सोना होगा । पति ने मुझ से कहा । मेने आज्ञा दे दी । पर तु यह भी सकेत कर दिया कि उसकी मरजी के विपरीत कोई आचरण न हो । वह जिमकी आज्ञा दे वही हो । यही हुआ । मेरी औषध-चिकित्सा और मनोविज्ञान चिकित्सा दोनो चलती रही । पूरे तीन मास मुझे वहा ठहरना पडा । तीन मास बाद मुझे यह विश्वास हो गया कि अब पति पति दोनो ही परस्पर मे लीन और आत्मसत् है, अब कोई रोग नही है । मैने रायसाहब से बिदा ली । चलती बार राय साहब से एक ब्लक चेक अपने दस्तखत करके मेरे आगे अत्यन्त सकोच के साथ पेश किया । बागी उनकी

नहीं निकली। मैंने ट्रेंकर रायसाहब के हाथसे चेक ले लिया और पाने वाले की जगह पुत्र बधू का नाम लिख कर उत्तरी टोटा दिया। मैंने कहा—रकम आप भर दीजिए।

रायसाहब की आग्या में पानी उलक आया, पर मैंने देर नहीं की। मैं उनके हाथों को अपने हाथों में गरमा कर तेजी से बाहर निकल आया। कार का दरवाजा खोल मैंने ड्राइवर से कहा—चलो।

रायसाहब नीची टिगि टिगि खूब मुझे दंगत रहे। रायसाहब के पुत्र और पुत्र बधू को मैंने पहिल ही पित्रर देगन भेज दिया था।

दिल्ली लोतने के चार पांच महीने पीछे मुझे रायसाहब का पत्र मिला कि बूबू के बाल बच्चा होने वाला है। मैंने उत्तर में लिखा—हजार बार मुबारक।

एक बार भालाभाऊ महाराजा की चिकित्सा से निपटकर जब मैं लौट रहा था तब वहाँ का एक समीपस्थ रियासत से भी मुझे जुलाया आया। वहाँ रनवास में पहुँच कर जब मैंने अपने मरीज को देखा तो मैं चकित रह गया। मरीज राजकुमारी थी। आयु पच्चीस तक, सगमरमर की नतात्मक प्रतिमूर्ति, गोरा उज्ज्वल रंग, लम्बा ठरहरा शरीर, सुगठित भरा हुआ कमनीय प्रदण ज्यातिमय स्वच्छ नेत्र। हिजहाइनेस अपनी पुत्री के मिरहाने खड़े थे, तरहाइनेस रेशमी पर्दे के पीछे तनिक हटकर थी, पर बात करती जाती थी, मैंने राजकुमारों की परीक्षा की, कुछ प्रश्न पूछे और चुप होकर महाराज की ओर देखने लगा। मेरा प्रश्न जटिल परीक्षा खत्म कर लेना उचित पसंद नहीं आया। महाराज ने पुत्रा - त्रिमारी का पता चना बखराज ?

हा महाराज, मैं जान चुका।

तब ?

उसी समय परदे में से प्रश्न हुआ—'क्या रोग है ?' मैंने सक्षेप में सकेत से उनसे निवेदन किया। कुछ लग बाद परदेमें एक थालमें कुछ गिन्निया लेकर दासी मेरे समक्ष आई। मैंने प्रश्नभरी दृष्टि में उसे देखा। उसी समय परदे में से कहा गया—'बखराज की, आपका जैसा नाम सुना, वसा पाया। बेटी जी के निण जो कुछ आपने कहा बिल्कुल ठीक है। आपने तो पित्रर पांच साल की रोग की जड ही पकड ली। मेरी ओर से यह भट स्वीकार कर।'।

मैं महाराज के साथ चतुरर दूगरे कमरे में आया। मैंने कहा—असली सोने की बीस तोने ही एक टिगिया बचता लीजिए, उसी में दण रखी जायगी। दो दिन बाद टिगिया बनकर भरे सामन आ गई। मैंने ग्राहनी बती उसमें रख कर राजकुमारी को भेज दी। एक एक गोली मुबह शाम ताजा पानी से। फूलों के बाग में हरी घास पर स्पच्छन्द घूमने का भी आदेश मैंने किया। एक सप्ताह में वे स्वस्थ और प्रसन्न थीं।

उनका सारा रोग विनाह न होने और मानसिक प्रसन्नता का अभाव था।

एक ठिकानदार क यह। मुझे जल गान्धी य चठकर निमिर्ग्याय जाना पडा । राह मे भी था का एक गात्र पडा । भीलो ही तच्चा चल पी । साय म स्यापी सत्रार न कहा—वे सय चार गात्र उलू हे । यानी ता विना गात्र त्मका जन नही तत, पर टनता प्रमान काम पशु की योगी हे । पशु चुराकर य उस एभी अद्भुत रीति स काता कर दते ह कि मालिक भी नही पहचान सक्ता । यह गुनकर भा गात्र म चवन ता आग्रह किया । पर गावम जाना गतेश एानी ता । गिपाही और गा जीवान किमने, पर तु मे हठ कर गया । सय लाग गात्र म पहुचे ता अनक स्त्रिया गालया न तौह व वसा हो सवारी घेर ली । कई पुष्प भी नागियल पीत आ सय हण ।

मेन कहा—मुझे पटन मे मिताना हे, उम बुलाआ ।

बूढा पटल अपन तन कृगकाय म आया तो मन गाठी स उतरकर जुहार किया और कहा—म चिकित्सक हूँ, दिली मे राजा का इनाज करने आया हूँ । यहा तुम्हारे गाव मे गुजरा तो मन वाहा कि तुम्ह मिल और पूत्र कि त्या म तुम्हारी कुत्र सेवा कर सकता हूँ । त्या तुम्हारे गात्र म कई प्रीमार है, जिम म देग ?

पटल प्रसन हा गया । उसकी पत्नी सग्रहणी म पीडित थी । त मुझे प्रपनी ओपडी मे ले गया—मने रोगिणी वा दगा, दया दी और प्रातचात म प्रपत्र किया । पटल ने बडे विनय मे दो रूपये भट करने चाहे । म ने कहा—पटल, रुपये नही, दोस्ती दो । पटल बहुत खुश हो गया । अटपटी भापा म उगने न जाने क्या त्या कटा ।

मने कहा—सुना हे, तुम पशु चुरात हो और उ हे वाला रग दते हा । त्या यह बात सत्य हे ?

उसन कहा—क्या आप देखेगे ?

मने अपनी स्वीकृति दी ।

वह मुझ अकेल को सयत स टेढे सीधे रास्त से ले गया । दाना और नागफनी थी, उनकी मनुष्यक कदक बराबर उच बाढ थी । साथमे तीन चार युवक भी थे । गुमसा रग, चमकता हुआ नगा सत्रस्य शरीर, गण्ड म मूगा को मागा, कमर म तलवार । दृश्य भयावह था, पर मुझे रहस्य जानन की बडी उत्पण्डा थी । अत मे वट मुझे एसे वाडे म लेगया, जहा सा उढ सौ बल खडे थे । सब कोने । उसने वह गूढ भद भी बताया कि किस प्रकार भिलाने के प्रयोग से वे पशुओ के रग बदलते है । घर लौटकर उस पर मने बहुत प्रयोग परीक्षण किए और बाजार मे बिकन वाते उस सस्ते त्रिप को अद्भुत शक्ति सम्पन्न रसायन पाया । तभी से लगभग २२ वष से म प्रति अप दीनऋतु मे यह त्रिप भक्षण करता हूँ । मेरे बाल म रुद होन लगे थे, पर इसके प्रभावसे आज तक काले है ।

१९३४ से १९४४ तक का दस वष का काल मेरे जीवन का शा त और स्थिर कात समझना चाहिए । इन दिनों मे अपने एकान्त स्थल ज्ञान ग्राम (अपने निवास स्थान

का नाम अपनी पत्नी ज्ञान के नाम पर जाना मरना था) में ही रहता था। कहीं जाता जाता नहीं था, मार्ग गगन साहित्य रचना में पीतता था। मन्नाडाल साहित्यिक मित्रों की गार्गीय व्यतीत होता था। रागियाकी चिन्तित्वाय दिल्ली में बाहर जानने लिए भी मैं प्रायः मत्त कर लिया करता था। जन्म में पहिले प्रताप हुआ मरी य पत्नी पड़ने में तीव्रतुद्धि थी, उन्ही घर के नामा से अग्रिनाश समय निकाल कर बहुत साहित्य पढ डाला। अश्रेजी और मरुतने ज्ञानको भी बहुत बढ़ा दिया। प्रभाकर परीक्षा तो उन्हीने छ महीन में ही तयारी करके पास करली थी। उन्हे मगीत गोर कविता का बहुत शोक था। वे रात को प्रत देर तक पारगानियम लेकर नये नये पक्के राग निकाला करती और पात जान की शांत प्रेता में फूला की क्यारियो में बैठकर कविताए लिखा करती। मरुतन में उन्हे उन् प्रो मरुभीय नेखो को, जि हे म बहुत दिनों से आलस्यप्रश हाथ नी गगा रहा था, उन्हीन पत्र करके अपन हाथ से सुनिश्चित किया और मेरी मेजपर डर कर दिया। मरुत पूत्र जाय तो मेरे जीवको उन्हा बहुत सुव्य वस्थित कर दिया था और पर को अनन्य चिन्ता गने मुझे छुटी दिना दी थी। मेरे सामने मेरा साहित्य और मेरे पारित्य मित्र ही रहते थे।

वीरे गीरे मने जान नाम म और भी दो चार कमरे रहने के लिए बनवा लिए। घाम के लान के गीना गीच मैंने एक अत्यंत सुंदर कलात्मक गीत उपपर बनाया। बास की टट्टिया गी गान गीवारे बनाकर लताए उस पर चढा दी, चारो तरफ सुगन्धित फूलो की क्यारिया लगादी। तपा, शरद, गोगम, सभी हस्तुओ की दुपहरी में उसमें बठ कर मुझे तहत मुग भिता था।

एक दिन श्रीमन् गनु को म यान्ट तला में र्सी उपपर म बठा हुआ में पत्नी के साथ गप्प लडा रहा था, कि एक बार ने ज्ञान नाम के फाटक में प्रवेश किया। वही गाल छप्पर ने आग आकर गान्तर ने कार रोक दी। उमने कार से उतर कर इधर उधर देखा। मने पात्राज देकर उमने अपने पाग उपपर के अन्दर गुलाया। अन्दर आकर अभिवादन करके उमो गिरेशन किया—जि गगद के राजा साहेब आपमें भेट करने आए हे। मे उम समय पात्रागा और अनियान पटिने मिर पर गीना अगोछा डाले बैठा था और वस्त्र पटिना। कि उठकर अन्दर जाना ही चाहता था कि एक दुबला पतला सा गारण सा गादमां घोती को रीर ठाक करता हुआ उपपर में ही घुस गया। उसकी अगुती में हीरे की अगुठी का एक चमक रही थी, नीमती चश्मा भी लगा हुआ था। पात्रा ने मुह कर उम व्यक्ति का अभिवादन किया और मुझसे गीरे से कहा—आप ही शिवगद के गीगतराज हे।

मैंने उसी अत्रस्था में उठकर उनका स्वागत किया। कुर्सी पर बैठाया। वे, बतफुलफी से कुर्सी पर बैठ गए। लोपी उतार कर मेज पर रख दी और झाइवर को

बाहर जाने का हुक्म दिया। झाड़र के बाहर जाते ही उनका निजू सेनक महाराज का कुर्सी के पीछे आकर खडा होगया। एक बडा सा चानी का पानदान उगके हाथ मे था। महाराज पद्रह बीम मिनटके बाद एक बीडा पान उममे से उठा कर मुह मे दवा लिया करते थे।

महाराज ने बात छोडी—हम होटल मे ठहरे हुए है, पर तु वहा ताजा दवा नही है। आप के यहाँ तो बहुत शांति का स्थान है। हम छपर को देगकर तो हमने सोचा है कि हम यहाँ दस पाँच दिन रहे। आपसे अपनी चिकित्सा के सम्बन्ध मे मशवरा भी लेना है। यही ठीक होगा।

मै भला दकार कसे करता। मैने वडी खुशी से अपनी स्वीकृति देदी। बहुत बाते हुई और पहिली ही मुलाकात मे मै उनका अत्यंत प्रिय और विश्वरत मित्र बन गया। वे फिर लौट कर दिल्ली नही गए। डाइर को भेजकर सब सामान होटल से उठवा कर उन्होने वही मगवा लिया। अगले दिन मैने दो तीन तम्बू मगाकर वहा लगवा दिए और महाराजके ठहरनेकी सब सुरामुत्रिया जुटा दी। परतु महाराजको वह छपर ऐसा पसन्द आया कि वे डरे तम्बूओ मे नही गए। छपर मे ही ठहरे रहे। उनके नौकर चाकरो ने ही तम्बूओ का उपयोग किया। पूरे पद्रह दिन वे वहाँ ठहरें।

भेट के अगले दिन ही वे मेरी चिकित्सा मे आए। उन्हें देखकर मैने उन्हें शौषव दी। उससे उन्हें लाभ हुआ। परतु वे डिक बहुत करते थे। शराब न उनकी पाचन-क्रिया को बिलकुल गिराड दिया था। मै इन राजा रईसो की प्रकृति से भलीभाति परिचित हो चुका था और यह जानता था कि इनसे शराब की आदत नही छुडाई जा सकती। इसलिए मै ऐसी औषध देता था कि जिससे शराब का गभाव पाचनक्रिया पर नही पडता था। फिर धीरे धीरे मै एक अन्य पय उन्हें देता था जो शराब की भाति ही तेज जायका, परतु हानिग्रहित होता था।

शिवगढ महाराज पूरे सालद बरस तक, जब तक उनकी मृत्यु हुई, मेरे सम्पर्क मे रहे। अनेक बार वे मेरे गोल छपर का आनंद लेते और अनेक बार उन्हें मुझे शिवगढ अपने राजमहल मे भी बुलाकर ठहराया। दवाशरू और चिकित्सा की बात खत्म हो जाने पर भी वे मुझे शिवगढ से लौटने नही देते थे। कहते—कुछ कत्रियो को बुलाया है उनकी कविता भी तो मुनिण। कोई लखनऊ से, कोई गंगागाइस, कोई रायबरेली से, कोई बनारस से। एक हफता इंग्लिण ठहरना पडता। कभी कहते—हमारे एक रिश्तेदार हिजहाइनेस शिकार खेलने आ रहा है, उन्हें भी जरा देग लीजिए। वे जब आते तो उनकी भी शरीर परीक्षा करनी पडती। वे चाहे बीमार हो या न हो, पर दो चार पुडिया उन्हें भी देनी जरूरी हो जाती।

महाराज शिवगढ के साथ मे मुझे एक बार एक हिजहाइनेस के विवाह मे

शरीक होना पडा। बारात म अनेक हिज्जाडेस और ट्राट राजा मरदार लोग भी थे। एक लम्बी पूरी स्पेशल ट्रेन रमाना हुई। मुझे खास बूलह हिज्जाडेस के सलून डिब्बे में बठना पडा। बारात रात को खाना खा पीकर चली थी। इसलिए सब बारातियों के बिस्तर ट्रेन में बिछ गण थे और पीने ही बोतले उनके सामने मेजों पर थी। सलून में बूलह राजा और उनके मामा राजा थे। उनके बिस्तर नीचे की बथ पर थे, मैं जानता था कि ये लोग पिपेग भूमेग, और मैं तो न पीता ही हूँ, न इसकी बदबू ही बरदाश्त कर सकता हूँ, इसलिए मैंने प्रपना बिस्तर ऊपर की बथ पर लगवाया।

कुछ गपशप के बाद हम लोगों ने सोने की तयारिया की। मैं ऊपर प्रपनी बथ पर जा चढा। उन दोनों के खाम गिदमतगार गिलास ले लेकर उनके पास खडे हो गए। अब पग पर पग पिए जा रहे थे। धीरे धीरे वह प्रबस्था मेरे सामने पेश हुई कि मुझे प्रपना मिर गिजाई म दुबकाकर यह दृष्य दरगुजर करना पडा। उन दोनों हिज्जाडेस महोदयों ने वह माहीतबाही की फाश गाणियाँ एक दूसरे को देनी शुरू की और अपने वस्त्र उतार कर फणो शुक्र मिए म जिसकी मैं कल्पना नहीं कर सकता था। इतना राब होने पर भी क्या मजाल जा दोनों के दा सेवक वहा से टल जाय या अपनी आँखें ऊपर उठाकर उनकी दशा को देखे या खाली पग को भरकर दुबारा न भरे। मैं नहीं जानता कि अब मुझे गहरी नीद आगई और ट्रेन न दूरी का सफर तय किया। सवेरे जब मेरी आँखे खुली तो मैंने देखा कि दोनों हिज्जाडेस नशे में बुत कम्पाटमे ट के पक्ष पर औबे पडे खुराटे भर रहे है। उनके मुह उल्टी होने से सन गए थे और उनकी एक प्रिनोन भिगारी के समान ग दी दशा हो गई थी। मैं ऊपर से नीचे उतर आया। मैं एक म विप्रिया गोल दी। ताजी हवा का आनन्द लिया। ट्रेन चली जा रही थी और मेरे सामने दो राज्यों के अधिपति पक्ष पर पडे सो रहे थे। मैंने उनकी दशा पर एक टाय की। मेरा मन धृग्गा से भर गया। परन्तु डेरे पर पहुच कर और दो दिा म्ता रम्भी तोर पर प्रिताकर मैं वहा से बडी नठिनाइ से बिदा ली और पर आकर चन ही मान ली।

शिवगढ महाराज अपने राजताजके अत्यंत पेरीदे मामलो में भी मुभसे सलाह लिया करते थे। प्रपन परिवार की एक अत्यंत खतरनाक और गम्भीर बात में जब उन्होंने मेरी राय मागी तो मैं प्रारम्भ प्रतिन रह गया। परन्तु मैंने अपनी राय देकर उनके राय का रूप ही प्रान लिया और एक घोर पाप होने जाने बच गया। उस काय की समाप्ति पर उन्होंने मुझे नरद एक वाग्य रूपया दना चाहा—पर मैंने नहीं लिया। मैंने कहा— उस रूपण का जब मैं अधिकारी ही नहीं हूँ तो क्यों लू। इस रूपण से आप अपनी रियासतमें छोटे बच्चाका निशुत्क स्कूल खुलवा दीजिए। उन्होंने ऐसा ही किया।

परन्तु उनके अन्तिम दिना में मेरी उनसे भेट नहीं हुई। मैंने दो वर्ष से उनके

समाचार नहीं सुनते, न उतावता हो-पत्र ही प्राया था। एक दिन एताएक युवराज का तार उनकी मृत्यु का मिला। मेरे तुरंत ही गिरावट पचा। जहां की आस्था देख कर बहुत दुःख हुआ। मेरी कन्या 'मुकुंदा' उगो जान हो लिंगो गई है।

इसी गोल टापर में जहां हुआ एक दिन में रूप का आनन्द न रहा था। धूप छन-छनकर मेरे शरीर पर पड़ रही थी और जगान भरा गभ्याम है, टोपहर का भोजन करके मैं अश्लील की भपकिया का आनन्द ले रहा था। उम्मी गमय एक व्यक्ति ने जहां आकर मुझे प्रणाम किया। मेरी अश्लील की भपकी जाती रही। मैं उठ बैठा। उन्हें कुत्सी दी। वात्तानाप से ज्ञात हुआ कि भामी के पास समथर रियासत से व आ रहे है। वहांके महाराज की पहिना टा जगान मे नत्रहप्रि खोचुती है। उन्ह कुठ दीखता नहीं है। उनका वचना न सुनकर गन फटा-गन तो आप किनी प्राई स्पशत्रिगट जावटर को बहा ले जाण। म ता आखो की चिक्लिमा करता नहीं। गाग तुफ उमी रियासत के राजवद्य थे। उनकी आयु साठ व ग्रामपास जी। उ जाने जहां—आयुत के सब प्रयत्न मने कर निण। वगन के डाक्टर ने भी नत्र चिक्लिमा करती, परंतु ताभ नहीं हुआ। आपका नाम सुनकर महाराज ने आपको बुला के निण ही मुझे भेजा है।

म नेत्ररोग का चिकित्सक नहीं था, इसलिए जाना नहीं चाहता था, परन्तु चार दिन तत्र वैद्यराज गए नहीं। मुझे चाने का राजी करने ही रहे। आखिर मने 'हा' भरी और म अनमने मन से उनका माथ चत दिया। उन दिनों मेरी तीन चार पुस्तक मेरी मेज पर फैली हुई थी, जिन्हे म अतिम रूप दे रहा था।

रिसायत में पहुँचकर मने मरीजा हो देगा। समथर के दिनों के अन्दर राज महल था। वरा जमींदोज किला मने पटिले नहीं दरा जा। अनक चक्करदार सडके पार करके हमारी कार राजमहल के बीच प्रागरण म हम ले गई। महाराज अपनी वहिन के पलंग के पास जाकर थे। मेरे पहुँचते ही उ होने मेरा स्वागत किया। कहने लगे—म अपनी ज्ञा पहिना का अपनी माता के समान आदर करता हूँ। आप किनी भी तरह उनकी दृष्टि ला दीजिए।

एक बनिष्ट ह्रप्रपुष्ट तीस पतीम उप की मोटी ताजी तात्र सुर्म युवती रेशमी वस्त्र और हीरे मोती के आभूषणा से सुमज्जित अपने पलंग पर बैठी हुई मारी की वाते सुनकर मुस्कुग रही थी। पान भी चबा रही थी। मैं उमना यह शारीरिक स्वास्थ्य देखकर बकित रह गया। बात करने म वह बहुत ही चपल और जिनादप्रिय थी।

डाक्टर और वगण भी जहां उपरिथत थे। उन्होंने अपने अपने निदान और चिकित्सा मुझे विस्तार के साथ बताई। सब सुनकर जो मैंने प्रश्न किए उससे उनकी किसी बात का मेल नहीं खाया। वे अवाक मेरे मुह की ओर देखने लगे।

मैंने प्रश्न किया—आपका विवाह कब हुआ ?

डाक्टर और प्रयोग महाराज की आर देखने लगे। महाराज ने कहा—प्रियाह छोटी आयु में ही हो गया था, पर तु भाग्य विमान से दा उप बाद ही पति का स्वगवास हा गया। उस समय जहां आयु सातह सत्रह उप की रही होगी। उस समय इनकी आयु पतीम उप की है।

मासिक काम कसा है ?

डाक्टर ने उमका उत्तर भी मुझे नहीं दिया। पर तु उ होने कहा—कि नेत्र रोग से आपके उन प्रश्नों का क्या सम्बन्ध है ? मने महाराज से कहा—मैं एका त मे बहिन श्री से कुछ प्रश्न पूछा। तत्काल परदे का प्रबन्ध कर दिया गया।

उनमे पश्चन करने मुझे ज्ञान हुआ कि बहुत समय से उनका मासिक काम ठा है। अच्छा कोई नहीं टुगा। पतिपुत्र को पति की मृत्यु ने जाद ही छोड दिया था, तत्र स यनी रती है। डाक्टर शास्त्र मने डाक्टरों को राय दी कि आपने रोगी ने डम पहलू पर विचार नहीं किया कि त्र तालविधया है, फिर और तर्पों त्र मासिक भी ब र है। जब तत्र उनका मासिक नहीं गुनेगा तत्र तक नेत्र दृष्टि नहीं लाट सकती।

डाक्टर मर उग निदान मे चौकन्ने हुए। उ होत कहा—इस ओर तो हमने व्यान ही नहीं लिया था। मने कहा—चिन्तित्सा आपकी ही रहेगी, मैं केवल सम्मति दूंगा। आप उ हे आज ही गानिया गामिक्रम प्रवाह ती लीजिए।

पर जो गोनिया मने बनाइ उ त देने को व तयार नहीं हुए। उ होने कहा—उन गोलिया का देने की जिम्मेदारी हम नहीं त्र सकत।

महाराज का भी गुला त्रिया गया। रात की सलाह हुई। अ त म महाराज ने कहा—शास्त्रीजी ती राय त्र अनुसार किया जाय।

ये गोनिया रियामत म भिन्ती न थी। निदान एक डाक्टर बम्बई उसी रात खाना हुए और त्रहा मे त्र गोलिया लाण। गोलिया दी गई। रजोधम का रक्त जारी होना शुरू हुआ। पति ने त्र न फाकी जोर से प्रवाह चगा। पाच दिन मे स्थिति पुत्रगी। पाचत्र दिन बटिन्ती ने गाम त्र जात हुए वातर को गुलाया। यह दत्री चमत्कार था। बालमको भी दिश्याग नहा टगा कि त्र मुझे देरकर पुकार भी सकती है। उाकी आवाज सुतार महल मे गभी गोग उनके इइ गिद गकत्र हो गण। वे सभी को पञ्चानन लगी और त्रात करने लगी। म जब उ त्र देरने उनके सामने पहुँचा तो उ होने मुझे देरकर प्रणाम त्रिया और अपने सिर का आचता ठीक किया। मेने महाराज से हमकर कहा—आपको मुबारिक हो, त्रितनश्री को त्रष्टि लौट आई है। सब व्यवस्था डाक्टरों को समझा कर म अपने डरे पर नीत आया। मेरा विचार दिल्ली लौट जाने का था। रात्रि को वैद्यराज मेरे पास आण। उस समय त्र अत्यन्त करुण भाव मे थे। उनकी इस दशा का कोई कारण मेरी समझ मे नहीं आया।

मने पूछा—क्या बात है ?

वे हाथ जोड़कर प्राते—आप मर भगतान थे। मर चार पापे थे। मरमे बडी कया का विवाह अगने माम ही टोना निश्चय हुआ है। यहा रिंगाना म ममे कुउ ज्यादा तो मिलता नही ह। फिर हमारी विरादरी ही रुदिया ममी हैं कि दहेज ही मारी गठरी लडके को पकडानी होती है। मे गरीब ब्राह्मण किसी प्रकार अपने बडे परिवार का गुजारा चला रहा हूँ। आशा थी आप यहाँ चिकित्सा करगे ता कुउ मेरा भी लाभ होगा। पर तु आपने आयुर्वेद चिकित्सा तो कुउ की नही, बम्बई से गानिया मगा दी और डाक्टरों से ही सब काम कराया।

मैने उसके करुण भाव का कारण समझा। मैने कहा—महाराज मे कहो, कल म चला जाना चाहता हूँ और मेरी फीस जो वे दे उमे तुम अपने पाम रख लेना।

बद्यराज चले गए। पर तु अगने पात काल महाराज स्वयं गेम्स्टहाउम म मेरी फीस लेकर आ पहुँचे। उनके साथ बद्यराज और दो तीन सेप्ट भी थे। महाराज के सकेत पर सेवकों ने थाल मेरे सामने पेश किया।

मैने महाराज से कहा—बहिनश्री के लिए मने सब व्यवस्था डाक्टरों को समझा दी है। कोई चिन्ता की बात नही है। एक सुरमे का नुस्खा म बद्यराज को लिख कर दे जाऊँगा। उसे आप इनमे बनवा लीजिए। दिन म तीन चार बार उस सुरमे को वे लगाया करेगी।

उहोने कहा—सुरमा आप ही दिल्ली से अपनी फार्मसी टाग बनवा कर भेजने का कष्ट करे तो और भी अच्छा है।

मने कहा—नही, ये बद्यराज यही बना लेगे और स्वयं अपने हाथ से सरल मे घोटेंगे। ऐसी कोई बात नही है यहाँ भी बन सकता है।

महाराज ने कहा—तब एक दिन आप और रुकिए। तुस्रो ही दवाइया मगवा कर आप पाम कर जाऊँ और अपने मामने उ हें सरल मे लवा लीजिए।

नुस्खा मने लिख दिया। उसमे मोती, हीराभस्म, आदि आठ बजुमूय चीजें लिख दी थी।

महाराज ने नुस्खा पढकर खजाँची को रुपया देने का हुक्म लिख दिया। मने बद्यराज को उमे देकर कहा—रुपया तो आइए तब मुम्बे की व्यवस्था की जाय।

बद्यराज दो हजार रुपया सजाने से लेकर आ गए। मैने कहा—इसे जेब मे रखिए। अपने थाल म से भी मैने पाँचसौ रुपए उ हें दिए। मैने कहा—अब तो लडकी का ब्याह नही सकेगा। बद्यराज ने मेरे पैर पकड लिए। मैने कहा—चलो मेरे साथ भासी, वहा से नुस्खा खरीद कर लाए। भासी जाकर मेने वहाँ कुछ नही खरीदा, दो तीन घण्टे इधर उधर घूम कर लौट आया। डेरे पर आकर मैने अपने बक्ग मे से निकाल

कर उ हे सुरमे की एक शीशी दी । मैंने कहा—यह मेरा बनाया हुआ मोतियो का सुरमा हे । इमे ही तुम खरल मे डालकर तीन चार दिन घोटते रहना और फिर शीशी मे भर कर मट्टो मे भेज आना । वास्तव मे बहिनश्री को सुरमे की कोई जरूरत नही हे । पर तु तुम्हाग प्रयत्न करने के लिए मुझे यह अमत्य व्यवहार करना पड । वैद्यराज को म चार पाच तोले सुरमे की पूरी शीशी ही देकर चला आया ।

१४ जनवरी १९८४ को एक अनहोनी घटना ने मेरे जीवन को बहुत जोर से झकझोर डाला । चन्द्रमैन के चार वष के पुत्र प्रकाश को मै प्रात ९ बजे अपने लान मे बठकर खिचा रहा था । खिलाले त्विलाते मै दो मिनट के लिए किसी काय से मकान के अंदर चला गया । दो मिनट बाद आकर देखता हूँ तो बालक गायब । उन दिनों मै दो कमरे बनता रहा था । राज मजदूर काम कर रहे थे । मैंने चारो तरफ सारे आदमी दौडा दिए । घर की स्त्रिया भी ढूढने म लग गइ, और मे फिर जिस अवनगी हालत मे था—वसी ही हालत म उसे ढढने चन दिया । चन्द्रसेन उम समय दिल्ली मे था । बडी फिक्र, परेशानी और दौडधूप की गई । जल की बूद भी शाम तक मुह मे नही गई । पुलिस ने १८ आग्नी तैनात किए । मैंने निश्चय किया कि यदि बालक न मिला तो अन्न जल त्याग कर इम जीवन को समाप्त कर दूंगा । दिन भर ढिंढोरा पिटवाया । चन्द्रसेन भी दिल्ली स आकर ढूढने मे लग गया । अन्त मे शाम को पाच बजे बालक एक भगी के घर म बरामत हुआ । नही कह सकता क्यो उसने छिपा रखा । बालकको स्नान कराकर गेहसे तुनातान किया । उसका वस्त्र दान किया । पाच रुपए की मिठाई प्रसाद पाता गया । अ न म रात को नौ बजे सवने भोजन किया । यह मेरे लिए एक दनी सकेत था कि तुनियादारी की जिम्मेदारी लादना मूखता हे । मैंने इरादा किया कि भत्रिग्य म प्रन्त्रो ना मोह त्याग दिया जाय । अवनगी हातत मे मे जीवन मे इसी दिन दिल्ली और गान्धर के बाजारो मे उदहवास फिरा ।

वशाली की नगरवधू इतिहास रस

१९८२ ने आगपाम मैंने अपनी प्रतिनिगि रचना वेशाली की नगरवधू लिखकर समाप्त की थी । तैशागी की नगरवधू इतिहास रसका हिन्दी साहित्यमे प्रथम उप यास था । उम उपन्यास को नेकर मेने हिन्दी कथा साहित्य सोपान की पाचवी पढी का शिला याम किया ।

यह प्रकृत है कि ऐतिहासिक उप यास काव्य और कहानियो मे जो ऐतिहासिक तथ्य होते हे, वे त्रिशुद्ध ऐतिहासिक नही । उनम बहुत कल्पना और विकृति मिली होती है । पाठको को यह आशा नही करनी चाहिए कि उपन्यास काव्य या कहानी को पढकर वे ऐतिहासिक ज्ञान अजन करगे । ऐसी पुस्तको मे तो उहे इतिहास के स्थान पर केवल 'इतिहास-रस' ही की प्राप्ति होगी । भारतीय साहित्य मे कभी रामायण महा

भारत इतिहास माने जाते थे, पर तु आधुनिक ऐतिहासिक रीति में उनका इतिहास कहानी को स्वीकार नहीं करती। उनकी दृष्टि में वे मात्र काव्य ही हैं। वास्तव में ऐतिहासिक काव्यों, उपवासों और कहानियों का अन्तर्भाव भी का उत्पन्न करने के कारण इतिहास कुल से विच्छेद कर दिया गया है। यह नेत्र भारतीय साहित्य ही की बात नहीं है, पाश्चात्य साहित्य में भी ऐसा ही हुआ है। इतिहास के 'विशेष सत्य' और साहित्य के भी 'चिर सत्य' के सिद्धांतों पर यहां हम ठोस विचार करेंगे। 'चिर सत्य' ऐसे साहित्य का प्राण है। चिरंतन मानव समाज में चरित्र और परिस्थिति की जो विकृति होती है वही चिर सत्य है। ऐसे कथानकों में साहित्यकार उसी चिर सत्य को चित्रित करता है। इतिहास की विशिष्ट घटनाओं का उगे पूरा ज्ञान नहीं होता। होने पर भी वह जान बूझ कर उनकी उपेक्षा कर सकता है, क्योंकि उसका काम तत्कालिक घटनाओं की सूची देना नहीं, तत्कालिक समाज प्रवाहका वेग स्थाना जाता है।

यह कहा जा सकता है कि उसे ऐसे ऐतिहासिक उपवासों और कथानकों लिखने से पहिले ऐतिहासिक विशेष सत्यों को जानना चाहिए। पर तु यदि यह ऐसा करे तो वह कदापि कोई रचना जीवन में नहीं कर सकता, क्योंकि ऐतिहासिक सत्या का ज्ञान कभी भी पूरा नहीं हो सकता, उनमें गवेषणा करने वाले विद्वानों के द्वारा नई नई जानकारी होते रहने से निरंतर परिवर्तन होते रहते हैं। फिर क्यों न साहित्यकार अपनी कहानी और उपन्यास को चिर सत्य के आधार पर, जिसमें गवेषणा की कोई गजायश नहीं, रचना करे और ऐसी रचनाएँ जो साहित्य ससल्लिप्त हैं और जिनका आरम्भ एक अनिर्दिष्ट रस है—अपने स्थान पर पूजित हो। साहित्य के आचार्यों ने जो मूल रसों को साहित्य सृजन में महत्त्व दिया है, पर तु उनके सिवा कुछ ग्रंथ 'अनिर्दिष्ट रस' हैं, जिन में एक 'इतिहास रस' भी है।

जगत में जीवन पाकर मनुष्य अनेक मुग्य दुखों की घाटियों को पार करता है। उसे अनेक बार रोना और अनेक बार हसना पड़ता है। उसका अपना जो दाना मा सुख और दुख है वह उसे बहुत बड़े रूप में दीख पड़ता है, क्योंकि वह उसी में अभिभूत हो जाता है। उस सुख दुख की समता में वह ससार की बड़ी घटनाओं का छाया-मात्र मानता है। एक नगण्य व्यक्ति भी जब राम, सीता, दमयंती, नल उपाख्यान में उनकी महती सम्पत्ति विपत्ति की कहानी पढ़ता है तो वह उनकी समता अपने छोटे से-छोटे सुख दुख से कर डालता है। उसे अपना सुख दुख भार और बना प्रतीत होता है। इसलिए उपवास या कहानी अथवा काव्य में जब वह विशिष्ट व्यक्तियों के जीवन और उत्थान पतन का ठीक-ठीक वर्णन पढ़ता है तो उसके हृदय में रसावेश का प्रवाह हो जाता है, जो उसके अतिनिकट आकर उसे आक्रांत करता है।

उपन्यासों और कहानियों में जिन पात्रों के सुख दुख, सम्पत्ति विपत्ति और जीवन

के साहसपूर्ण परिणामोन्नी भागी दिखाई जाती है वह प्रायः ऐसी हाती है जिसमें जीवन का क्षोभ व यु परिजन और कुछ अनिष्ट व्यक्तियों से ही समाप्त हो जाता है। इसी से पाठक उसे अपना ही पारिवारिक सम्पत्ति विपत्ति समझ कर हृष्य विपाद में डूब जाता है। परंतु समाज में कुछ ऐसे पुरुष भी जन्मते हैं जिनके मुख दुःख विश्व की महत् घटनाओं के साथ सम्प्रतिष्ठित होते हैं रक्त की नदिया बहती हैं, पलय की भेष गजना के समान महाकाल की नियति परम्परा में उनका राग विराग अंकित होता है और कवि की भाँति रूपना के सहार जब उनकी कहानी मनुष्यों के लिए ज्ञेय बन जाती है तो उसे देख सुनकर मानव लोक भाँति विमोहित हुए बिना नहीं रह सकता। ऐसे जातिव्यक्तियों के इतिहास के निमाता साहित्यकार यदि हमारे नेत्रों के सामने जीवित होते हैं तो अपने अल्प जीवन में उनका विराट रूप हम नहीं देख सकते हैं। इसी से उन्हें उनकी यथाथ प्रतिष्ठा भूमि पर स्थापित भी नहीं कर सकते। उन्हें महाकाल की नियति के एक अंग में देखने के लिए हम उनमें दूर खड़ा रहना पड़ता है, इसी से अतीत में उनकी स्थापना होती है और उन्हें अज्ञेय नहीं, जिस वृत्त नाटक अभिनय के एक पात्र के उसके साथ देखते हैं। तब मान्य होता है कि विश्व पथ पर मानव कुल के ये महारथी किस अलो किक कोशल गार सामर्थ्य गवान के पहिए को घुमाने चले जा रहे हैं। उस समय कोटि कोटि जनपद आवेशित हाकर जीवन की धुंध परिधि से क्षण भर के लिए मुक्त हो जाता है और उनमें वह अपने परिमित मुख्य दुःख का मुकाबला नहीं कर सकता। तब वह तथा कथित अनिर्दिष्ट रस 'इतिहास रस' के स्वाद की एक वृद्ध का गान प्राप्त करता है।

इस अनिर्दिष्ट 'इतिहास रस' के उदय का एक और कारण भी है। इसमें रस का एक स्रोत मिश्रित है। यह साधारण भी है और असाधारण भी। वह है नारी प्रणय। जहाँ इतिहास रस का पाठोर्भाव होता है वहाँ प्रायः यही देखने को मिलता है कि हृदय विप्लव के बाद राष्ट्र विप्लव हुआ। इतिहास के अनेक असाधारण नरवरों ने नारी की मायाके वशीभूत होकर जीवन भग किया है। मानव कुलके जीवनके ऐसे कष्ट भग्नावशेषों से हमारा पथ भरा पड़ा है। तैयक जब जीवन भग की इन घटनाओंपर विप्रलम्भ शृङ्गार और 'इतिहास रस' का मिश्रण करके भैरव सहार की भरी बजाता है तो कोटि कोटि जनपद उमत्त, उद्भ्रान्त होकर नोटपोट हो जाता है। अब कोई इसे प्रमाणों के प्रबल बक्के देकर हजार ऐतिहासिक भूले निकालता फिरे, उसे भ्रान्त और विकृत कहता फिरे, पर कवि ने जिस 'इतिहास रस' की सृष्टि की है वह इतिहास के लाख सत्य प्रकट होने पर भी फीका न होगा।

'वैशाली की नगरवधु' की कथा-रसु का आवार बौद्ध ग्रन्थों में उल्लिखित वैशाली की गणिका सम्प्रदायी थी। बहुत दिन हुए सम्भवतः सन् १९२६ में मेरी दृष्टि

इस गरिणिका से सम्बन्धित एक बौद्ध उपारयान पर पत्नी, जिसमें डग प्राप्त था उल्लेख था कि गरिणिका अम्बपाली ने वशाली में आग पर बुद्ध का भाजन का निमंत्रण दिया था और उस पर वशाली के राजपुरुषा ने श्या की थी। यह भी मेरा सुना कि वशाली गणतंत्र में एक ऐसा कानून था जिसके अन्वय पर राज्य की सवश्रेष्ठ सुदरी कन्या को अविवाहित रखकर उसे वेश्या बना दिया जाता था। इसी पर मैंने अपनी कल्पना के सहारे 'अम्बपाली' कहानी उही दिना में लिखी थी जो 'चाप' में उपा थी। इसके बाद अम्बपाली पर कई कहानी उपयास और लेख मेरे देखने में आए और मेरे मस्तिष्क में अम्बपाली को लेकर एक उपयास लिखने की भावना जड़ कर बठी। पर तु यह काम सहज न था। फिर भी मैं इसकी वास्तविक कठिनाइयों में ठीक ठीक अभिज्ञ न था। मैं उत्सुक और दत्तचित होकर बहुत दिन तक साधता रहा। समझमें आ ही न रहा था—कहा से प्रारम्भ करूँ, कैसे करूँ। सन् ३० के शरद में मुझे एक श्रीमन्त की चिकित्साथ बिहार जाना पडा। वे मुझे हठ करके राजगृह ले गए। वहाँ यों तो हरी भरी पहाडियों को झोडकर कुत्र भी न था। मैं कई दिन उन पहाडियों में भटकता और घण्टों गम जल के स्रोतों में सुखद स्नान करता रहा। पर तु पता नहीं कौन सी देवी प्रेरणा थी कि वहाँ पर रहते हुए मैं जाग्रत स्वप्न देखने लगा। मैं सब से आख बचा किसी शिलाखण्ड की आडम बठ जाता और सोचता रहता। मुझे ऐसा प्रतीत होने लगा जैसे मैं कोई ग्रथ पढ रहा हूँ। अध्याय के अध्याय मेरी आगोंके सामनेसे गुजरने लगे। पत्तों की बातचीत प्रत्यक्ष कानों में सुनाई देने लगी। मुझे भय हुआ कि कहीं कोई जहरीली वस्तु खा लेने से मस्तिष्क में विकार ता नहीं हा गया है? दैतयोग में मैं जिस रोगी की चिकित्साथ गया था, वह रोगी भी उमाद-राग ग्रसित था। वह एकान्त में बठा बठा बहुवा होठ और आख हिलाता, हँसता मुस्कराता और कभी कभी चित्ला चित्ला कर असम्बद्ध प्रलाप किया करता था।

मैं यह देखकर परेशान होने लगा कि मेरी भी ठीक उमरी के जसी दशा होने लगी थी। केवल चीखना चिल्लाता न था। अतः यह मोत्र पराग में दराचित्त्वस्थ नहीं हूँ, मने जल्द से जल्द घर लौटने का निश्चय लिया। घर आकर भी मेरी वही दशा रही। उन घाटियों में बसे हुए समृद्ध नगर, उनकी सना, सम्पत्ति, वभत्र, गन्धति, सधप दिन दिन सजीव होते गए। इसके साथ ही अम्बपाली की एक स्थिर मूर्ति का चित्र भी मेरे मस्तिष्क में अंकित होता गया। 'वसाड' को मैं पहने ही देख आया था। उससे बहुत दिन पूव एलौरा और अजन्ता की गुफाएँ देखी थी। अब उनसे स्त्री चित्रों का घण्टों देखकर अम्बपाली की उनमें अभिव्यक्ति करने लगा। मेरे मेरे अम्बपाली की एक लोकोत्तर मूर्ति मेरे मानस पर अंकित हो गई। तथावयित उस प्राचीन कानून ने मुझे अम्बपाली का हिमायती बना दिया। मैंने साहित्य और शृङ्गारके रस में उस मूर्ति को

ब्रह्मक्रिया दे देकर उभे गपने साथ दम प्रकार अगीभूत कर लिया कि एक दिन जब मैं शीतल स्निग्ध चादनी में सोया हुआ था तब मैंने आकाश में वह उज्ज्वल सजीव मूर्ति स्पष्ट देखी। उसके हाठ हिते हुए, आचत हमा में फरफराता हुआ, नेत्र आवाहन करते हुए स्पष्ट मैंने देखे। मेरे शरीर के सम्पूर्ण जीवकोष कल्पना के वीभूत हो गए और मैंने कहा—नाचो अम्बपाली। और अम्बपाली ने नाचा। मैंने दही आखो से उसे स्वच्छ नील गगन में चंद्रमा के उज्ज्वल शालोक में नाचते देखा। मुझे ऐसा प्रतीत हुआ जैसे मैं भी आकाश में ही उसके गिफ्ट पहुँच गया हूँ। मैं उसके रवास से निकलते हुए सोरभ और नृत्य में मस्कृत पजनिया की ध्वनि प्रयत्न अनुभव करता रहा। एकाएक मुझे प्रतीत हुआ कि वह मूर्ति गायत्र हो गई और मैं वेग से नीचे आ गिरा। सम्भवतः मेरे मुह से चीख या शब्द निकला था और पत्नी ने उठकर मुझे सावधान किया था। मेरा सम्पूर्ण शरीर पत्नीने मेरे तर था और मैं समझ ही नहीं पा रहा था कि मेरी क्या हालत है। पर तु यह मैं दृढतापूर्वक कहता हूँ कि मैंने स्वप्न नहीं देखा था। मैंने जो कुछ देखा जागते हुए। सत्य, सब सत्य। उस समय रात्रि के दाँ बजे थे। यही समय मेरे साहित्य लेखन का है। मैंने तुरन्त उठकर उस नृत्य का वर्णन लिखा, जिसका मशोबन रूप 'बंगाली की नगरप्रभु' में कलमबन्द है।

बस, यही से दम उपन्यास का लिखना प्रारम्भ हुआ। पर बड़ी ही वीभी गति से। थोड़े ही दिन में मेरा वह उन्माद समाप्त हो गया और फिर एक दो वर्ष तो मैंने इन कागजातों को देखा ही नहीं। इसी बीच एक बार अहमदाबाद जाना हुआ। वहाँ गुजर भापा के मार्मिक कथा लेखक श्री धूमकेतू से मिलने गया। उन्होंने अपनी कहाँ नियों का एक छाटा सा सग्रह दिया। उसमें एक कहानी अम्बपाली से सम्बन्धित भी थी। उसे पढ़ते ही पुराना उन्माद रोग फिर उभर आया और दम बार घर लौटकर मैं इस उपन्यास में जुट गया। बहुत अध्ययन किया, बहुत मनन किया। उस दिन आकाश में नृत्य करती हुई अम्बपाली का जो नेत्र दये थे, वे जैसे मुझे आखो से ओझल ही नहीं होने देते थे। मैं दिनमें तो लिखने पढ़ने का क्षणभर भी आकाश नहीं पाता हूँ, रात को दो बजे से लिखता हूँ। सो मैं स्पष्ट देखता था कि जब मैं एकांत निरामे लिखना प्रारम्भ करता तो वे दानो उज्ज्वल अदिनशर नेत्र मेरे नेत्रों के पीछे से भौंक भौंक कर प्रत्यक्ष अन्तर का पढ़ लेते थे। उसमें मैं दम उपन्यास को लिखते हुए कभी थका नहीं, कभी उबा नहीं।

१९४२ के जून में उपन्यास तैयार हो गया। अग्रस्तम जन अशांति हुई। उसी समय दो धूत मित्रों ने मेरा गान्धिव्य प्राप्त करके मेरी प्रतिष्ठा पढाई। उस अशांति में वे मुझे अपन सरक्षण में ले गये और भाग्यदोष से मुझे उनका उपकृत होना पडा। इसी समय मेरे इन हितपी मित्रों ने दम उपन्यास की पूर्णाहुति के उपलक्ष्य में एक भव्य

समारोह का आयोजन कर गया। अर्थात् तब तक कि उपवास का मन्थित सार और कुछ अनायास पाण्डुलिपि न बन पाए। अर्थात् आत्महत्या प्रत्यावर्तना हुई। मिठाइयां चाटी गईं। मुझे भी मिला।

तभी से पक्षाघात, मिनमात्रा और अनादर का पत्रा मुतासला और सौदो का ऐमा ताना लगा कि दूसरा काम करना ही नहीं होता गया। परंतु अभी मैं पाण्डुलिपि में कुछ परिवर्तन किया चाह रहा था। उसी समय पाण्डुलिपि का सम्पन्न में कुछ भय के कारण उत्पन्न हो गए और मैं उस तागा को खाना तथा उस सम्पन्न में बातें करना बिल्कुल बन्द कर दिया। परंतु एक दिन अक्सर पाताता हो कर यारो ने पाण्डुलिपि चुराली।

बहुत पर फडफडाए, पर सब व्यर्थ। प्रियजैस रमशात में प्रियजन का विसर्जन करके कोई लौट आता है, उसी भांति मैं भी मित्रा को समझा कर उनके सरक्षण का आभार मानकर मैं भी लौट आया और दो वर्ष मने हस्तांतरण करने के लिए भी लेखनी नहीं छोड़ी। सब काम बन्द कर दिए। लागा मैं मुलाकात भी बन्द कर दी। इन दो वर्षों में मने यह अनुभव किया कि मेरे रक्त का पत्रा उत्पन्न नहीं है, परंतु वह रक्त में मितकर शरीर के भीतर ही चमक रहा है, बाहर नहीं निकल पाती। तागो ने समझा मेरी साहित्यिक मृत्यु हो गई, परंतु तात ही प्रतिकारी, तात पाकर विदग्ध हृदय की जलन कम हुई, घाव पुरे, भावना अतृप्त हुई। मेरी पत्नी ने मने इस दुख को बड़ी बुद्धिमानीपूर्वक दूर किया। वे प्रयास मुझे उत्साहित करती रती। कई बार जबरदस्ती क्लम उठाने मेरे हाथ में पकटाई थी।

मने दुःसाहस करके दुबारा नए सिरे से यह उपवास विद्यना प्रारम्भ किया। प्रारम्भ में मुझे यह असाध्य प्रतीत हुआ। परंतु रती युक्त नयन के समान उज्वल आंखें मेरे साथ थीं। उस दिन जैसे मने कहा था—नाचा, उगी भांति वह आंग रह रही थी—लिरा। मने एकबार कहा था, पर वह आंग हर तरफ जाती थी। फिर लिखा कि कसे नहीं? प्रत्यंत मेरी जडता दूर हुई। मने नए उत्साह से पुरानी वृत्तियों का यथाशक्ति दूर करते हुए उपवास का पुनर्गमन प्रारम्भ किया। मने तब तो गई बात सामने आई—एक तो राहुल साह्यायन का 'मिह सनापति' उपवास, दूसरा उनकी कहानी पुस्तक 'दोल्गा से गंगा'। इन दोनों पुस्तकों को पढ़कर मने दण्ड रह गया। लेखक की भावसामर्थ्य का क्या बखान करूँ? दोनों ही पुस्तक में कहानी तथा उपवास के साधारण गुण भी नहीं थे, फिर भी ये दोनों पुस्तक विगपकर 'मो-गा से गंगा' विश्व साहित्य में शीर्षस्थानीय होने योग्य थी। विचारकता की प्रतिकारता को पल धक्का मार कर उनके विचारों के प्रवाह को पलट दे की सामर्थ्य तो मैंने उगी लेखनी के रती में देखी। इन पुस्तक को पढ़ने के बाद मने जैन और बौद्ध साहित्य का गहन अध्ययन

२०. १८२० के सुधार द्वारा १०० रुपय का ह
 २१. मंशरी लिखी हुई पुस्तक बेचना
 का नया कानून (प्रोविडेंट) का उद्देश्य पाठ्यपुस्तक
 और पुस्तक आदि प्रकाशकों की सर्व सुख
 प्रति सुरक्षित है। जिसके फलस्वरूप
 प्रकाशकों को नया कानून प्रकाशकों की
 प्रवृत्ति को लक्ष्य है। प्रकाशकों को
 प्रोत्साहित करने का उद्देश्य है।
 प्रकाशकों द्वारा प्रकाशित पुस्तक
 को रोक कर देना है और यह अभिलक्ष
 (नवीन) करना है कि प्रकाशकों
 के जीवन काल में नैतिकता का
 उन्नत प्रवृत्ति प्रकाशकों को उत्त
 रना है।

प्रकाशकों को १८२०
 प्रकाशकों को १८२०
 २००५

प्रकाशकों



١٩٤

प्रारम्भ किया। उपयाम नेरन भीमा हो गया। पर तु मने उसकी जल्दी नहीं की। मने यह ठाननी कि म त्म उपयाम म जहा एक तरफ मसीह से पूव पाचवी छठी शतांशि भी सम्पूर्ण प्रमनीति, राजनीति और समाजनीति का रेखा चित्र खींचू, उहा अपने अ ययन और विचारो को भी प्रकट करता जाऊँ। अपनी बात को अधिक बल से कहने के लिए मुझे जन साठ हिंदू साहित्य तथा संस्कृत साहित्य के साथ बहिर साहित्य दशन, विज्ञान और मनोविज्ञान का भी अध्ययन करना पडा। अनक अंग्रेजी और दूसरी भाषाओ के ग्रन्थ और पुस्तक भी पढनी पडी। यह उपयाम लिखकर म समाप्त ही कर रहा था कि मेरा भाग्य एक और ही विधान नेरन मने सामने आ खडा हुआ।

ज्ञान की बिदा

आधुनिक दृष्टीनिष्ठ राजनीति की भांति पचीली और माहक नई दिग्गी की भव्य उठा दशन जान पाल मनचत यात्रिया का यान वहा के दरबिन अस्पताल की दूर तक विस्तार म फली हुई भव्य लान इमारत अनायास ही अपनी ओर रीच लेती है। वह आज के मानव के प्राणा की माररूप पजी, और ब्रिटेन के महास्त्र अथवाद का महाप्रगाद है। उहा, यद्यपि मायप्रात असहाय दरिद्र भारत के स्वनामग्न्य निरीह प्राणियो का प्रतिनिधि प्रदशन ग्रन्थ्य हाता है, पर उह उदगीत इमारत, अपनी सजबज, ठाठ और शान मृत्त दरिद्र भारत का तनिक भी सम्बन्धित नहीं, उसकी एक एक इट अमहाय रागियो की नेत्रापूर्णा कराहना पर उपेक्षा की मुस्कराहट बखेरती हुई, उनके गरीर से विच्छेद हात हुए प्राणो के चिर पयाण की सदव्यवस्था सम्पूर्ण कोशत से करता ही रहती है।

विश्व की महाजातिया आज लोहू मे स्नान कर लोहा खाकर अमर हो रही है। वसी ही सद्ब्यक्त्या हमारे शत्रुओ ने हम गुलामा के लिए भी करने मे कोई कोर कसर नहीं रखी था, पर तु महामहिम चर्चिल की महामत्ता ने वह काय नहीं होने दिया। उसने हमारे उपपुक्त मृत्यु, भूय और महामारी ही के रूप म हमारे घर भेज दी, और हमने पमाग्नि कर लिया कि यदि योग्यता आधुनिकतम शस्त्र शिल्प जितने प्राणो का हरण कर सकता है, उगम तई गुना अधिक प्राण हम भूय और रोगी रहकर विस जन कर सकते है।

अब मुनिण आप। मनेरिया की कुत्र कपर्णी पत्नी के हिस्से मे पडी। दो चार बार ज्वर चढा ग्यर उतर गया। औरा को भी पर म उसका प्रसाद मिला। विवनन नहीं मिली, सो नहीं ही जा सकी। जापाग की भांति हमने मनेरिया को भी एक अति तुच्छ शत्रु समझा। परन्तु एक और सफट हमने मोल ले लिया। किराए के लालच म एक आधुनिक म विजतस पार्टी को मकान का एक हिस्सा दे दिया। एक मास का किराया पेशगी दकर उ होने अगूठा दिखा दिया, आगन मे जबदस्ती चिमनी खडी कर

दी, और सप्ताई विभाग की छत्रछाया में कोई कमीका बनाना प्रारम्भ कर दिया। रात दिन युग की जरीनी गस और कमिकता की बददू ने मांगे मांगे परिवार के प्राण छटपटाने लगे। उन्हूँ कहां, पुलिस का खबर ली, म्यूनिसिपल मेनेजी को लिखा स्वास्थ्य विभाग का लिखा, हटका मजिस्ट्रेट का लिखा—पर सब व्यर्थ। सप्ताई डिपाटमेंट की छत्रछाया में वह घातक विष पानकर सारा परिवार इयाम और अनिद्रा एवं रक्ताल्पता का शिकार हो गया। पत्नी और भाई की स्त्री की हाजत ज्यादा खराब हो गई। लाचार सारे परिवार को बनारस भेज दिया गया। वहां हाजत कुछ ठीक हुई। फिर घर आए, मगर यहां वही विष पान।

पत्नी पर दो तीन दिन मलेरिया का फिर आक्रमण हुआ, मलेरिया चला गया। दिल की बडकन, नाडी की थराहट और टूटका ज्वर कायम रह गया। वमन भी कायम रहा, कोई वस्तु नहीं पचन लगी। तब चिंता पड़ी। यदि मैं स्वयं चिकित्सा न होता तो कदाचित्त इन बारीकियों पर ध्यान न जाता। परन्तु हटका ज्वर, नाडी और हृदय की गति का बपम्य और वमन एवं रक्ताल्पता इन मंत्र लक्षणां से शंका बढ गई। स्थानीय डाक्टर से परामश लीया, और उ होने विशेष चिंता न करने का आशवासन दिया। परन्तु मेने रोगी को तत्काल ही सम्भव उत्तम चिकित्सा सहायता की आवश्यकता अनुभव की।

उम समय इरविन अस्पताल के इन्चार्ज और मिविलसजन एक ग्यातिनामा फिजीशियन थे, अस्पताल में रखकर उ ही की चिकित्सा में रोगिणी को रखना ठीक समझा गया। खास कर इसलिए कि रोगिणी के शरीर में रक्त सहायता पहुँचाने की आवश्यकता का मैं अनुभव करने लगा था।

२६ नवम्बर १९४८ को प्रातः काल रोगिणी को लेकर हम लोग ६ बजे इरविन अस्पताल चले। वहां पहुँचकर पता चला कि बड़े डाक्टर छुट्टी पर हैं। निराश होकर हम लेडी हार्डिंग अस्पताल पहुँचे। बड़ी मठिनाई से अनेक बार तकाजा करने पर नर्सों मेरी पत्नी को अंदर 'एक्जामीनेशन रूम' में ले गए। वहां चार घण्टे तक गाने रखा। साधारण देखभालकर केस को लौटा दिया कि रूम को एडमिशन करने के लिए कोई कमरा खाली नहीं है। हार भ्रूमर कर हम शाम को पाँच बजे फिर इरविन अस्पताल लौट, ज्ञात हुआ कि बड़े डाक्टर बाहरसे आ गए हैं और अपने बगले पर हैं। इस प्रकार दिन भर भारी दिक्कत उठाने के बाद शाम को साढ़े छह बजे उनके बगले पर पहुँचे। उस समय वे सपरिवार शायद सिनेमा जा रहे थे, पहिले ता देखने से इन्कार कर दिया, फिर बहुत मिन्नत खुशामद के बाद राजी हुए। रोगी को देखा। मैं समझता हूँ, दो या तीन मिनट से अधिक नहीं। इधर उबर छुआ। जरा स्टेथोस्कोप लगाया, एक दो सवाल किए और फिर कहा—फीस दीजिए ?

कितना ?

बीस रुपया ।

फीस मेज पर सामने रख दी गई, डाक्टर ने वीरसे व यवाद दिया और नुसखा लिखने बठे । कहा—दाखिल कर दीजिए अस्पताल के स्पेशल वाड मे ।

हम तो गए रूमी लिए थे । उनसे आज्ञा पत्र ले अस्पताल जब आए तो रात्रि के आठ बजे चुठे थे । डाक्टर ने रोगी को ठोक ठीक नहीं देखा था, इससे हमने यह समझा कि अब अस्पताल में भरती तो कर ही रहे हैं, सुबह वे आकर देखभाल कर ही लेंगे । कुछ डारम बरा ।

भरती करने वाले अफसर साहब ने नाक भौ चढा कर कहा—अब इस बात कुछ नहीं हो सकता, कल आइए । मेरा धैर्य जाता रहा । रोगी असहायवस्था में बाहर गाडी में आठ घण्टे से पडा है और महाशय घाँस दिखा रहा है । मैंने कहा—कितना रुपया फीस देने से आप मेरे साथ भलमन्नी में पेश आ सकते हैं ?

अफसर साहब ने धूरकर मेरी ओर देखा, फिर कहा—जाइए, उबर बटिए हम आते हैं । अपमान का घट पीकर हम उनकी बताई जगह पर जा बठे, और आठ घण्टे बाद उठोने एक मलक के साथ आकर कहा—पैतीस रुपए इनसे लें लो और अमुक कमरा दे दो । कतक बेचारा अधिक सम्य था, उसने भटपट सब सम्भव व्यवस्था कर दी । अतः रोगी को शैया पर लिटाकर हम तसल्ली हुई ।

रात बीती, सुबह दौडधूप शुरू हुई । रक्त परीक्षा, थ्रू परीक्षा, मूत्र परीक्षा, वमनद्रव्य परीक्षा, मल परीक्षा, और इन सबकी फीस । विवाह के जसा खच और धूम मच गई मगर रोगिणी की चिकित्सा की कोई व्यवस्था नहीं थी, न डाक्टर का पता था । पूरा दिन डाक्टर की प्रतीक्षा में बीत गया । पत्नी को दस्तों में खून भी आया और उल्टिया भी आती रहीं ।

तीसरे पहर एक युवक जैन डाक्टर कमरे में आए । मालूम हुआ मुझसे परिचित है, प्रेम और सहानुभूति से रोगी को देखा और कुछ इंजेक्शन बाजार से लाने का आदेश दिया । रोग में सम्बन्ध में मैंने अपने कुछ विचार बताए, विशिष्ट लक्षणों की तरफ ध्यान दिलाया, पर उठोने उतर यान नहीं दिया । यह दवा ले आइए—कहकर चले गए । शाम को बड़े डाक्टर भी आए । साधारण देखा और चले गए । २ दिसम्बर को सांन में कष्ट बढ गया । मैं, माता और छोटी बहिन पत्नीके समीप थे । उनका कष्ट मुझसे दया नहीं जाता था । वे कभी मेरी ओर, कभी माता की ओर दृष्टि प्रकटा देती थी ।

३ दिसम्बर को एक अग्रजी फीजी डाक्टर इरविन अस्पताल में आए । उठोने भी मेरी पत्नी को देखा । इस समय तक उनके हाथ परो में सूजन आ गई थी—पैरो

पर जानू नहीं रहा था। और भी तीन चार दिन मृत्यु से गाय सपना करते जाते गए। मृत्यु जग क्षण उनका निम्न था रही थी। गत ग यह राजी था पहली और न दिसम्बर को स या समय सात्मात राज उ हाने देवता का पयाग लिया। हगागे आग आमुश्री की भवी बरमा रही थी कि अभी हम यह कगरा याता करन न लिए कहा गया। रात हो गई थी गोर उन दिना यातायात क जाने मुनभ गाया नती थ जो म पत्नी ने मृत शरीर को शाहदत अपने घर ला मरता। पत्नी कठिनाई से एक ताभ जाता शत्र को यमुना तट तक पहुँचाने का नया हूआ। तागे महमन अपना विस्तर भी रगे गोर शत्र को गाद म लिटाकर हम यमुना तट पर शममान प्रात पर पहुँचे। केरा माता और पत्नी की छोटी बहिन ही गाय थी। रात्रि को ग्यारह बज हम शममान मे पहुँचे। उन दिनों निगमबाय घाट पर एक तो त्रिया आदमिया के विश्राम क लिए वाा हुई थी। हम वही शत्र को रखार रात भर वड रहे। यह रात्रि भी कगी भयातक और शाल रात्रि थी। काई किसी का नहीं पूछ रहा था, पर सब एक दूसरे को शा त करने के लिए व्यग थे। अत म प्रभात हुआ, वष चढी। म माता ने वही पठा रदन के लिए कह सामान लेने और मित्र सम्बन्धिया को जुलानक लिए वन दिया। दो चार कर्म चक्कर ही म लडखडाने गा। अपनी श्रिति मे गमभ गया। मुझे कितना गाहस उस समय सचय करना चाहिए, यह भी मने समझ लिया। मेने अपनी जीवनशक्ति एखित करके आगे बढकर एक तागे वाले को पुनारा और उमम पैरकर शहर चला। दो तीन घटे बाद म कुण्ड मित्रोका और अतिम सस्कारका सामान लेकर लौटा। म नती कह सनता कि मेने किस भाति वे काय निबटाए थे। मेरे हाथ पर चल रहे थे, पर हृदय शून्य था। एक बजा था और सूय हमारे सिर पर अग्नि बरसा रहा था। पर मेरी दृष्टि तो चिता की ज्वाला की लपलपाती गरमी की ओर थी। ऐसी भयातक ज्ञाना भी उम समय मुझे कष्टपद नहीं ग रही थी। म चाह रहा था कि ये ताल ताल ऊँची ऊँची लपट मुझे भी अपने म समाकर भस्मीभूत कर जाय।

२६ नवम्बर को प्रात का अपनी जिम प्रिय पत्नी को मे पर मे तागे मे बठा कर आरोग्य लाभ कराने की कामना मे उरगित अस्पनाता ताया था, उमे उस प्रकार न दिसम्बर को अगिरे को साप दसव दिन गिरता पन्ता पत्नी तीन होकर अपने घर आकर पड गया। आम् करते न थे किगको वीन करो वय प्रधाता। तीसरे दिन १० दिसम्बर का में उनकी चिता पर फूल डुाने गया। फूल डुने, एक थली म एकत्र किए। भस्म राशि को पोटती म एकर कर वही यमुना म प्रवाह कर दिया। फूना को लेकर गढगङ्गा गया और ज्ञान को गङ्गा की पवित्र गोद म सूँप आया।

अद्भुत और अकल्पित

इस समय मेरी आयु ५३ वष की थी। मुझ बदनसीब भाग्यहीन साहित्यकार

की कमी मिट्टी पानी ही गई, उमे मे आप लोग पर ही ट्रोवता हँ । भाग्य के खेल अद्भुत और अरुणित । फिर ही सभा पर से मेरा मन िग गया । मने ईश्वर प्रार्थना करती जाती । मं पापान नाति तत्र तृहस्पति क मत का कायल हो गया । म आत्मा का नरवर मानन लगा । आत्मा पला हानमे मरत तत्र ही रहता हे, उमने पश्चात कुछ नहीं । मेरी जोवन शक्तिया भाग्य ने एक एक करके डीन नी थी । आत्मप्रात मै कर नहीं सकता जा । मागने मे मृत्यु मिनी नहीं । मे अपने तमरे म चुपचाप पटा रहता । स्मरण गही वुठ माता भी या या नी । मेरी पत्नी कीमाता और छोटी बहिन मेरे पास उन दिनो न रहती होती तो सम्भगत भूख प्यास ही मेरा अ त उन दिनो कर देती । खाना पीना पाय मेने त्याग ही लिया जा । तमरे म पठा मे द्वार की ओर प्रतीक्षा से दखता रहता था कि पत्नी अत्र आकर मर समीप बठगी । पर वे थी कहा । माता मुझे जिद करने चाय पिताती, उ गिताती । पर अत्रिन उनम भी बोला नहीं जाता जा । उनके अपार दुःख । म गमभता गा, अत्रिन उनके आने पर म अपना सब विरोध और निश्चय डोट प्याना पत्रड लता, चाय पी दता, खाना भी जुठार देता । पूरे पाच महीने म अपने तमरे ग माहर नहीं निकला । अत्र गमभ नी आते बाते करते, मुझे रामभाते, म किसी का कोई उत्तर नहीं देता, चुपचाप बठा मुनता रहता । मानो म आदमी नहीं पत्थर का वुत था ।

अतम मेरे जाना म यह आराज पहुँची कि मेरे चौथे व्याह की चर्चा हा रही है । मने डोटे भाई गमभेन ना गुनाकर पूठा—यह क्या बात हे ?

मेर प्रान पर गह रा उठा । गहन देर बाट उमने गहा—भाभीजी की माता की यह आज्ञा हे, आगिर उाव जीवन । ओ आर भी तो देखना हांगा । वे आपने अपना पुत्र भी समभती हे । उ हौन तो कई तार मुभस त हा, पर मेरा माहस आपके सामने आने का नी हुया । आपना जीवन कितना मृत्युगान हे उसे तो पचाना ही हांगा ।

गेमगेन नी प्रात म अत्रिक न सुन सका । हृदय पर चाटे पड रही थी । मेन गहा- नी नहीं, नी ।

पर घर म बात गहत हटता ग तय नी जा चुकी थी । ज्ञान की छोटी बहिन कमला को मगिन गुना गया था । पता चला मरे दुखका देखकर कमला ने भी अपनी स्वीकृति माता ने मागने दे दी हे ।

जिसे मैंने प्रियार्थी नी भाई पटाया, जिसे मे किसी राजपरिवार मे व्याहना चाहता था और कुछ राजगुमारो से पत्र यत्रहार भी कर रहा जा, उसी अमल बवल हास्य और प्रम की पत्रिन मूर्तिको मे व्याह । कसा घोर अनथ हे । कसी लाठना हे । कसा अन्याय है ।।।

इन चार पाच महीनो म मैंने कमला को देखा भी नहीं था । मेने खेमसेन से

कहा— कमला को बुलाओ, उमे मै समझा दगा ।

पर जब वह मन प्रेश मे श्री और हास्यविहीन मुद्रा मे आकर मेरे सम्मुख नीची दृष्टि किए माता के साथ आ खटी हुई और उमने अपना चिर अभ्यस्त शब्द गी से कहा—‘जी’ ? तो मैं हाहाकार कर उठा । मैं उमना त्याग और अपने प्रति अद्भुत भक्ति सहन नहीं कर सका । मैं पराजित होकर और पड गया और फूट फूट कर रोने लगा ।

बहुत लोग हमारे घर में एकत्रित हो चुके थे । माता के कुछ परिजन भी बाहर से पहुंचे थे । मेरे सामने सभी का एक ही प्रस्ताव था । परन्तु मुझे परास्त किया अंत मे माता ने । एक दिन सब महमानो मे निगट सबको सुला कर वे मेरे सामने आ खनी हुई । आसू उनकी आंखो से अविरत गह गड़े थे । मने उनके चरण पकडकर उनसे प्रार्थना की कि इन आंखो को मैं भी मत मीजिए ।

वही प्रस्ताव उनका उत्तर था ।

मने कहा—भला यह कैम सम्भव हागा ?

मने उनके चरण छूकर कहा —नहीं नहीं, ऐसा नहीं हा सकता । आपने मात्र स्नेह से मे कभी उन्मूण नहीं हा सकता ।

पर उ होने नहीं माना । मुझे स्वीकृति देनी पडी । घरभरमे विवाह की व्यस्तता फल गई । ७ जून १९४५ को मेरा चतुर्थ विवाह हो गया । विवाह सम्पन्न होने के दा महीने बाद तक मुझे ठीक ठीक होश नहीं था कि क्या हो गया है, क्या हो रहा है । उन समय उमकी आयु २२ वर्ष थी । मेरे प्राणाक्षी बनिहारी कि मैं फिर सब कुछ भुलाकर कमला का हाथ पकड अपनी दुर्लभ जीवन यात्रा क माग पर चल खन्ना हुआ । मैं एक पुरुष स्त्री का माग प्रदर्शक नहीं था, एक स्त्री पुरुष का हाथ थामे माग प्रदर्शन कर रही थी । वही उसे मृत्युद्वार से हटाकर जीवित मगार में ला रही थी । मुझे मृत प्राण को कमला ही ने प्राण दिए । मैं फिर अपने जीवन और कार्य मे व्यस्त हो गया । मानो कोई अघट घटना गठी ही नहीं थी । कमला ही मेरी प्रिय चिर सहचरी मदद से रही हो । कमला मधुर भावनाओं की एक कोमलतम भातुक प्रतिमूर्ति थी । जब मैं वह अपनी माता के साथ मेरे घर आकर रहने लगी थी, मेरा घर सुगन्धित हो उठा था । प्रबल हास्य सदैव उसके होठो पर रहता था । सांने दिन घर का वातावरण सगीत की मधुर गुनगुनाहट से सुधन्धित रहता । स्नान करने, चाय बनाने, कोई और काय करने वह जब कभी इधर से उधर जाती, सगीत की गुनगुनाहट उसके मधुर होठो मे ध्वनित होकर सबत्र फैल जाती । इस आनन्द मूर्ति को देखकर मैं मन ही मन प्रसन्न होता था । मने उमे अच्यो शिक्षा दिलाई थी । मैं उसे किन्ही अत्यंत सुयोग्य हाथा मे सीपने की खट पट मे लगा ही हुआ था कि यह अकस्मात भाग्य रेख सामने आ खनी हुई । उमसे विवाह करने के उपरान्त तो मैं एक अपराधी की भाति उसके सामने पडता हुआ कतराता

था। यह उगी का कार्य था, जिमने मेरी अपराध भावना का वीरं बोरे नष्ट किया और मुझे पति रथान पर प्रतिष्ठित किया।

१८७७ में नाट्योत्सव में मेमम महारज द लक्ष्मणदास ने मुझसे "हिन्दी भाषा और साहित्य का इतिहास" लिखने का अनुरोध किया। यह केवल अनुरोध मात्र ही नहीं था, उ होने मुझे लाहौर पुताकर उमका जुआ मरे को पर रख दिया। अब मैं सब काय छोड़ उसमें नग गया। हिन्दी साहित्य का इतिहास लिखना अत्यंत गम्भीर काय था। मेरी इच्छा प्रहृत दिनो मे ऐसा ग्रंथ लिखने की तो थी, परंतु इसके परिश्रम से मे सचेष्ट था, इसी से टाल रहा था। अत्र जत्र सब काय छोड़ कर मुझे इसमें लग जाना पडा ता मने इसकी पूरी तैयारियाँ की।

उस ग्रंथ को लिखने में मुझे प्रहृत उलझनो का सामना करना पडा। दिल्ली स लखनऊ, बनारस, अलकनन्दा, अनाहावाद, नासरोवा और लाहौर के बारम्बार चक्कर लगाने पडे। प्रहृत काम नुसगान हुआ, बहुत परिश्रम करना पडा, बहुत खचा और हजा उठाना पडा। इसके लिखने की सामग्री जुटान के लिए बाहर जाना पडा और दो तीन महीन लाहौर ही बठगा पडा। सात महीन के रातदिन के सतत परिश्रम के बाद ग्रंथ समाप्त हुआ।

उस ग्रंथ में मैंने अपने पूजनीय और समकालीन प्राय सब इतिहास लेखको की प्रचलित परम्परा का उलटन करके अपने कुछ नए ऐतिहासिक दृष्टिकोण निवारित किए थे और उनके समयन में इतिहास की सामाजिक और राजनतिक पृष्ठभूमि की रेखाएँ दी थी। मैं नहीं जानता कि विद्वजन वहाँ तक मरे इस प्रयास को दाद देगे।

मेरा मदन ही यह विश्वास रहा है कि साहित्य मानुष अग का पृष्ट वेश है। मानुष का जीवन, जीवन की गति और उसकी सक्रान्ति साहित्य पर ही आवारित है। इसलिये मैंने साहित्य को इस ग्रंथ में अतिहासिक व्यापक रूप दिया है। मैं ललित साहित्य के फेर में नहीं पडा। भाषा और लिपि को मैं साहित्य का वाहन मानता हूँ। अत मैंने ग्रंथम उन्का भी यत्किंचित परिचय दे दिया था, तथा साहित्य पर भाषा से अमम्बद्ध एक व्यापक विद्वद् दृष्टि गानी थी।

त्रिपादास्पद त्रिपया को मैंने गणेषणा करन वाले विद्वानो के लिए छोड़ दिया। और जहाँ विद्वाना के भिन्न मत थे वहाँ प्रहृतमत का अनुसरण किया था। कुछ नई बातो का भी समावेश किया गया।

काकरानीनरेश गोरनामी श्रीब्रजभूपणलालजी महाराज, श्रद्धेय मिश्रबन्धु, महा गहोपाध्याय रायबहादुर ज० गौरीशंकर हीराचन्द श्रीभा, प० रामनारायण मिश्र, रायकृष्णदास, बाबू रामचन्द्र वर्मा मन्त्री नागरीप्रचारिणी सभा बनारस आदि विद्वानो ने इस इतिहास के लिखने में बहुमूल्य परामश द्वारा मेरी सहायता की। ग्रंथ में साहित्य

परिजनो के चित्र हस्तनय और हस्ताभरा का रखकर उसे परिपूर्ण किया।

हिंदी भाषा के इतिहास को समझ कर उपमाएँ में भी लिगा था —

यह एक गम्भीर विचारगण्य बात है कि यह गण्य का उदयगर हिंदी साहित्य के इतिहास का 'प्रथम' अर्थात् है। उसका यह अभिप्राय है कि मन् १९८१ तक हिंदी साहित्य में जो रचनाएँ हुईं उनका कागज समाप्त हो चुका, और अब मन् १९८६ हिंदी साहित्य के 'प्रथम अर्थात्' को प्रारम्भ करने का चिरम्भरगीय बाल है। अब तक हिंदी साहित्य में रहस्य रग, रम राजनीति और पगति का समावेश रहा। ये सब भाव समय समय पर अपने अपने कारणों से साहित्य में समाविष्ट होते रहे। आज उन सब का समय व्यतीत हो चुका। आज के समाज के सामने अब तक की सम्पूर्ण साहित्य सम्पदा बच्चों के पुराने टूटे फूटे गिनोना न समाप्त हो गई।

आज महत्तर युग का प्रारम्भ हो गया। मत्तर मान का यह प्रारम्भ 'अग्नि महास्त्र' के प्रयोग के साथ प्रारम्भ हुआ। उस 'अग्नि महास्त्र' के प्रयोग की दिग्ग पर दो प्रतिक्रियाएँ हुईं। १ — जब यह निमग्न नक्षत्र प्रयोग जापान के दो असायान नगरो पर किया गया तो विश्व ने इसपर तनिक भी क्रोध या घृणा नदी प्रकट का और इस घोर नरहत्या को उसने चुपचाप ही सह लिया। २ — इसका प्रयोग होते ही 'युद्ध' शब्द निरर्थक हो गया।

यह 'युद्ध' यद्यपि मानव की सम्पत्ति नहीं — पशु की प्रकृति है, परतु मानवता के बालकाल में लेकर आज तक मानव जीवन ने विकसित का महत्तर आधार 'युद्ध' है। 'युद्ध' ही से महाजातियों की चरम शक्तियाँ निहित और बर्धित रही हैं। 'युद्ध' ही ने जातियों को निर्माण किया है। 'युद्ध' का मन्त्र में हम मानव जीवन और उसकी सम्पदा के विकास का आधार ही कह सकते हैं। युद्ध ही मानवीय सम्भ्यता का इतिहास है, 'युद्ध' मानव की सबसे बड़ी सामर्थ्य है, गत मानव अपने ज्ञान का प्रमाण ही से युद्ध को अपने जीवन में प्राप्त करता आया है। उसने युद्ध का उतना प्यार किया है कि आश्चर्यजनक उत्तम और प्रगण उसने अपने प्राण और प्राणियों की पत्नी युद्ध की भेंट किए हैं, और जितना जितना अग्नि यह किया है साहित्य न अतिपुरुष कह कर उसका कीर्तमान किया है। परतु 'युद्ध' मनुष्य की सम्पत्ति नहीं पशु की प्रकृति है। फिर किसलिए पुरुष ने अपनी सम्पदा, प्राण और प्राण्य उस 'युद्ध' का भेंट किया है? किसलिए मानुष की रग पशुप्रति की परिजनो ने प्रशसा कर करके मेदिनी को वनित कर दिया है? इसका एक ही सत्य और गम्भीरतम उत्तर है वह यह कि मनुष्य कभी भी सम्पूर्ण मनुष्य नहीं हो पाया, वह पशुत्व में आया ही निश्चित एक 'प्रगतिशील पशु' रहा है, इसी से उसने अपने विकास की सारी ही प्रतिभा और प्रगति पशुत्व के इस महान् प्रतिनिधि 'युद्ध' के विकास में व्यय की है और यह 'अग्नि महास्त्र'

इस दिशा में उसके चरम उद्योगों का एक नूतनतम परिणाम है।

परन्तु सम्भवतः वह मानव मस्तिष्क में चिरविद्यित 'युद्ध तत्त्व' का पूरा विराम है। इस महास्त्र के पाटुर्भाव ने अब तक विकसित सम्पूर्ण युद्धकला को निरर्थक कर दिया है। अब मनुष्य के सामने दो ही मांग है—या तो वह अपने अपूर्ण मानव तत्त्व को एक बारगी ही त्याग कर सम्पूर्ण पशु बन जाय तथा इम, और इस जैसे महास्त्रों से अपना सवतोभावेन निध्वंस कर ले, या अपने में व्याप्त पशुत्व को एक बारगी ही निकाल फके, और 'पूग पुरुष' होकर विश्व सम्पदाओं का निभय भोग करे। निश्चय ही उसे दूसरा मांग चुना होगा।

मानुष में जो रोप है यही पशुत्व का प्रतीक है। मानुष में मानुष का प्रतीक 'विचार' है। वह जत्र तत्र 'विचार' के आवीन रहता है 'रोप' सुप्त रहता है, परन्तु विचारहीन होने ही वह रोपाभिभूत होकर जितना अधिक उसमें मानुष तत्त्व है, उतना ही अधिक हिंस्र बन जाता है क्योंकि उसकी विचारसत्ता रोप की गुलाम बन जाती है।

पशु रोप में आनेशित होकर जब युद्ध करता है—तब वह अनिवाय रूप से मृत्यु को वरग्य करता है। अल्प वारग्य ही में वह उस प्राणघाती मांग पर चल पड़ता है, क्योंकि वही उसकी प्रवृत्ति है। परन्तु मानुष ऐसा नहीं करता, वह रोषावेश में भी बलाबल, वारग्य और साधनों पर दृष्टि रखता है, पराजित होने पर वह रोष का दमन कर लेता है, उमन्त्रिये कि फिर वह बदला लेगा। यह सब वह उस विचारमत्ता के द्वारा करता है जो वास्तव में उसके मानुष तत्त्व का प्रतीक थी, परन्तु अब वह रोषाधीन हो गई है।

फिर बदला लेने की भावना तमोगुण बहुला है। इसके लिये उसे नई विराधिनी शक्तियाँ को जुटाने में निकट श्रम करना पड़ता है, तथा समय पाकर वह फिर 'युद्ध' करता है। उस युद्ध में वह चाहे हारे चाहे जीते पर उच्छा और आशा जीतने की ही रखता है। कारण, प्रतिरपट्टी की शक्ति के विषय में वह मदिग्ध है।

परन्तु 'अग्नि महास्त्र' का आज के मानव मस्तिष्क पर एक विल्कुल ही नया और अभूतपूर्व प्रभाव पड़ा है, इससे वह रोप को दबाने की नहीं, अपने में ही दूर निकाल फकने की साधने लगा है। उसकी चेतना में स्वच्छ विचारधारा का उदय हुआ है, और अब उसके 'पूग पुरुष' होने का युग आ गया है। उस युग में वह सबथा रोषहीन होकर विचार सामर्थ्य से अपना संगठन करेगा। बड़े बड़े क्रुद्ध जन निरर्थक फूत्कार कर, आकण्ठ रक्तस्नान कर मरण शरण हण। 'लोह और लोहा' जिनका नारा था उनकी बेहद दुःखशा हो गई। मानव रोप की निस्सारता विश्व ने देख ली। जातियों के भाग्य पलट गए, विश्व रेखाएँ बदल गई। इन सबसे मानुष ने अब चार बातें सीखी हैं—
१—विश्व के सब मनुष्य एक हैं—वे परस्पर भाई-भाई हैं, समान हैं, अभय हैं, और

विश्व की सम्पदाओं के अधिपति है। २-मानव विश्व की सबसे बड़ी सम्पदा है, उसकी पूजा, आत्मनिष्ठा, निभय विश्व विचरण तथा योग सामर्थ्य का अविनाश है। ३-जगत् सत्य है, मृत सम्पदा मानव उत्पत्ति का साधन है। ४-'कला और 'विज्ञान' मनुष्य का हृदय और मस्तिष्क है, दोनों का विचार कौशल सफलभूत करके उसे मानव कल्याण और मानव विभूति वधन में लगाना चाहिए, जिससे मनुष्य 'रोपहीन' हो।

इन चारों ही तथ्यों को मूर्तरूप देना साहित्यकार का काम है। जो साहित्यकार विचारों को मूर्त करता है, संस्कृति को मूर्त करता है, आधुनिकता का प्रतिनिधित्व करता है वह अपने काल और उस काल के बाद के मनुष्यों का नेतृत्व करता है। वह मनुष्यत्व का प्रतिनिधि है, वह मनुष्यों के आदर्श का विचार करता है 'अति मनुष्य' का निर्माण करता है, और अपनी 'नाद अति' के संकेत पर कोटि कोटि नर मनुष्यों को उसी लक्ष्य बिंदु पर केन्द्रित करता है। वही सच्चा साहित्यकार है। आज हिंदी साहित्य के महाप्राज्ञों में नए महत्तर काल के मानव की मूर्त सत्ता, जगत् की सत्यता, मानव विश्व बंधन, कला और विज्ञान का एकीकरण तथा मानव को अभय विचरण प्रदान करने वाले साहित्यकार के प्रादुर्भाव की प्रतीक्षा हो रही है।

इस अर्थ की तयारी में मिश्रव युगों ने मुझे बहुत अधिक सहयोग दिया। असल में वे इसके लिए बहुत व्यग्र थे कि हिंदी साहित्य का एक प्रामाणिक इतिहास कोई तयार करे। मेरा उनसे बहुत अधिक मित्रभाव था। अर्थकी समाप्ति पर जब मैंने उनसे इसकी भूमिका लिखनेके लिए कहा तो उन्होंने अपने व्यस्त शगोम भी उमें लिखा। उनका स्वास्थ्य भी ऐसा ही था कि वे इतनी लम्बी भूमिका लिखते, परन्तु उन्होंने जो भूमिका लिखी वह काफी लम्बी थी। भूमिका पर जो उन्होंने अपने हस्ताक्षर किए, यही उनके अंतिम हस्ताक्षर थे। उनके प्राण तो उनका वार्ड रेग्न आया ही नहीं। उनमें वे अंतिम हस्ताक्षर मने साहित्यनिधि में भाति यत्न में रग्य छोड़े हैं।

हिंदी भाषा और साहित्य का इतिहास अपने नए आदर्शों में आकर अन्य पुस्तक को हाथ में लेनेकी तयारिया कर रहा था कि मानसिक अशांति का एक भीषण तूफान दो रूप लेकर मेरे सामने आ खड़ा हुआ। एक तो कुछ गुणगाना दत्त और दूसरा— १९४७ की यमुना की भीषण बाढ़। मेरी प्राणियों में बहुत बड़ा भाग खाती पड़ा था। कुछ व्यक्ति मेरे पास उस भाग के कुछ अर्थों में किराण पर नए नए निष्ठाएँ और मुझे अच्छा किराया पेश किया। मैंने भी यह साच कर कि खाली पड़ी जमीन का किराया आगगा, आय बढ़गी तथा पड़ोस में आबादी भी रहगी, यह हिस्सा देना स्वीकार कर लिया। बातचीत तय होगई और अगले ही प्रातः काल आकर किरायानामा आदि लिख कर एक महीने का पेशगी किराया देने का वायदा कर वे चले गए। परन्तु उसी रात ३१ जुलाई और पहली अगस्त १९४७ को कुछ गुण्डों के दलने निश्चित योजना बनाकर

स्थानीय पुलिस के परामश और सहयोग से ५० ६० लाठीबंद आदमियों के गिरोह को लेकर मेरी अनुपस्थिति में मेरे घर पर आक्रमण किया, बलपूर्वक मकान के ताले तोड़ डाले, और मेरा तथा मेरे किराएदार का वहां रक्खा सब माल लूट लिया, विल्डिंग को भी काफी नुकसान पहुँचाया और उस भाग पर बलात अधिकार कर लिया। मैंने जाकर स्थानीय पुलिस में रिपोर्ट दर्ज नहीं की, मैं लाला देशब धुगुप्त और डा० युद्धवीरसिंह के पास गया, उन्होंने रायसाहब चुन्नीलाल अधिकारी के नाम पत्र दिया, परंतु दुःख है कि उन्होंने मेरी किसी भी प्रकार की सहायता से इंकार कर लिया और सरदार तेजासिंह (पुलिस) ने तो मुलाकात ही से इंकार कर दिया। फिर मैं प० बालकृष्ण शर्मा नजीन से मिला। उन्होंने डिप्टी कमिश्नर रन्धावा को फोन पर कहा। उन्होंने मुझे बुलाया, मैं गया भी, परंतु कोई सहायता नहीं की। बदमाश पार्टी इतना ही करके चुप न रही, वह और भी इरादा रखती थी। चारों ओर १० १५ दिन तक लाठीबंद आदमी घूमते रहे और मेरा बाहर निकलना बन्द हो गया। उस हमले में माताजी पर शारीरिक आक्रमण किया गया था, जिससे वह और पत्नी बीमार हो गई और मैंने निरुपाय ही अपनी सुरक्षा के विचार में बनारस सपरिवार चला गया। पीछे घरकी रक्षा के लिए एक चौकीदार और कुछ आदमी नियत कर गया।

इसी बीच शाहदरे में उपद्रव हुए। मुसलमान मारे गए और बदमाश पार्टी ने पुलिस के सहायक में एक मुसलमान के घरसे किसी हिंदू फम का लगभग एक लाख रुपए का खजाना लूटकर मेरे मकान के गोदाम में भर दिया।

३० मितम्बर को मैं दिल्ली आया तब मेरे आदमियों ने मुझे यह बात कही। पर मैं अगले ही दिन प्रनारस प्रपम जा रहा था। मैं अपने आदमी को डा० युद्धवीरसिंह के पास ले गया तथा स्थानीय कांग्रेस प्रमैटी के सेक्रेटरी से भी कहा। उन्होंने इस मामले को आगे चलावा का वचन दिया। उनके बाद शाहदरे में पानी आ गया। मेरे तमाम आदमी लानच देकर और प्रमकार भगा दिए गए। मेरा घर सूना रह गया। बदमाश पार्टी ने दरिबन और को दीवार तोड़ डाली और मेरे घर का सब सामान लूट लिया। दा कमर ढहा दिया, तथा नई दीवार प्रनारस मकान का नक्शा बदल दिया। डा० युद्ध वीरसिंहने उस चोरीकी सूचना मुझे बनारस भजी। मैं आया। उस समय में ऐसी स्थिति में था कि मेरे पास चाय पीने को एक प्याला भी घर में न था—मेरा सबस्व इन बदमाशों ने पुलिस में मिलकर लूट लिया।

सारी हकीकत मुझे मालूम हुई। पुलिस ने इस चोरी की रिपोर्ट लिखने से भी इंकार कर दिया था। मैं जिस दिन आया था उसी दिन स्थानीय थानेदार बदमाशों के साथ वहाँ उपस्थित था तथा जल्दी जल्दी दीवार बनाने की सलाह दे रहा था। मैंने जब थानेदारसे मिला उसने मेरा मजाक बनाते हुए रिपोर्ट लिखने से इंकार कर दिया।

विश्व मने सुपरि टडेड को रजिस्ट्री रिपोर्ट भज दी, साथ मे चारी मे गये माल की एक सूची भी भेजदी। कुल पंद्रह हजार रुपये का माल चोरी गया था। उमरगती हानि की एक रिपोर्ट स्थानीय पुलिस को रजिस्ट्री मे अगले दिन भेजी थी।

कुछ दिन बाद एक सबइंस्पेक्टर आए थे और चोरीके सम्बन्धमे कुछ बातचीत करके दूसरे दिन मुझे थाने मे बुलाकर चले गए। यदि मैं उनके गुलाब जाने का यथाथ अर्थ समझ जाता तो मेरा काम भी शायद हो जाता, परन्तु मैं उनका अभिप्राय नहीं समझा। प्रगले दिन व बहुत से प्रश्नोत्तरो के बाद आगे और फवटरी की तलाशी ली। तलाशी मे पुलिस ने अपराधियो के कजे मे चोरी हुए मालका एक टुक बरामद किया, परन्तु मेरे कहने पर भी न तो फवटरी पर अपना वज्जा किया न उनके घर और मकान की तलाशी ली। बरामद हुए माल का तोहर वे चले गए।

इसके बाद दो तीन दिन वे आते रह, पर और तलाशी नहीं ली, न गिरफ्तारी की। फिर वे छुट्टी लेकर चले गए। बाद मे दूसरे सब-इंस्पेक्टर आए। परन्तु नतीजा कुछ नहीं हुआ। इस डाकेजनी से पीडित होकर और पुनिम से निराश होकर मने एक पत्र डिप्टी कमिश्नर देहली को भी लिखा था।

पर तु इसका भी कोई परिणाम नहीं निकला। पुनिम जिसमे मिल जाय फिर उसकी हार कसी? मे पुलिस की श्रेष्ठ सत्ता को मानकर चुप बैठ गया। मैंने पत्नी की सोने की दो चूडिया गिरनी रखकर पचास रुपये उधार लिए और चाय पीने तथा भोजन बनाने के दो चार जरूरी वर्तन बाजारमे खरीद कर अपने घर मे राना बनवाया। मेरे लिए कितना भयानक वह समय था, उसका खगन नहीं कर सकता। बस यही समझिए कि बदमाशो ने मुझे मार नहीं आला, मेरी जमीन उठाकर न नहीं गए।

भीषण तूफान का दूसरा रूप यमुना की बाढ़ थी। १९७७ का अगस्त उपद्रवो के बाद यमुना मे बाढ़ आई। यह बाढ़ यमुना से गाजियाबाद की टिण्डन नदी तक व्यापक रूप से फैली हुई थी तथा इस ग्यारह मील के क्षेत्रमे पानी ही पानी टिनोरे ले रहा था। मेरा मकान शाहदरे में जी० टी० रोड के किनारे पर शहर से बाहर स्थित है, इसलिए वह समूचा पानी मे डूब गया। जैसाकि मे परले प्रता चुका हूँ उन गुण्डो से निरुपाय हो अगनी सुरक्षाके विचार मे मैं बनारस सपरिवार चला गया था और मकान के सत्र कमरो को ताले लगा केवल एक चौकीदार के भरोसे छोड़ गया था, परन्तु जब बाढ़ आई तो तुरंत ही सारे घर मे पानी भर गया और मेरा सत्र सामान पानी मे डूब गया। सामान मे घर गृहस्थी का सामान तो था ही, सबसे अमूल्य निधि तो मेरी लाय ब्रेरी की चालीस वर्षों से संग्रहीत अलभ्य हजारो पुस्तके थी। अलमारियो मे वे भरी हुई थी। पानी पूरे आठ दिन तक रुका खड़ा रहा था। दूध आठ दिनों मे मेरी वह विशाल अमूल्य लायत्री सवथा नष्ट हो गई। इसके साथ ही एक अलमारी मे वर्षों के

परिश्रम से लिखी मेरी पचासो मन्युस्क्रिप्ट रखी हुई थी, वे सब भी पानी ने वो पोछ कर साफ करदी और पानीमे गले कागज मात्र रहगए । पुस्तका और मैं युस्क्रिप्टो का नष्ट होना कोई साधारण सह्य दुख नहीं था, फिर मेरे जैसे व्यक्ति के लिए जो केवल इन दो वस्तुओ को ही अपनी आत्मा का भोजन और काय समझकर ससार के सब सघषों से टक्कर ले रहा था । इसी बाढ का लाभ उठाकर गुण्डो के दल ने मेरे अरक्षित घर को पूरी तरह से लूट लिया । बाढ की समाप्ति पर जब मैं सपरिवार बनारस से वापिस आया तो घर की दुदशा देखकर मेरा मन हाहाकार कर उठा । मेरे घर के फर्शों पर एक एक फुट मोटी बाढ की चिपनी मिटटी जमी हुई थी, जिसपर पैर रखते ही फिसल कर गिर जाना पडता था । बडों कठिनाई से वह फिसलनी कीचड हटाकर रास्ता बना कर हम अंदर कमरो मे पहुँचे थे । कमरे सब खाली पडे थे, केवल ध्वस्त पुस्तके और मन्युस्क्रिप्ट वहा ग्रन्थ थी । हफ्तो हमे मकान की सफाई और उसे बठने योग्य बनाने मे लग गए । उसी कीचडमे रपटफर मे गिर भी पडा था और कोहनी की हड्डी टूट गई थी । जिस तेकर मुझे डेड दो महीने ग्रस्पतात की हाजरी बजानी पडी । मलेरिया के शिकार सब लोग बने गो अलग ।

अत मे मेने नए सिरे मे जीवन नौका को खडा किया । अपनी प्रापर्टी को मेो एक मित्र महाजनके यहा रहन रखकर पाच हजार रुपया कज लिया और अपनी दुनियाँ दारी जमाई ।

सोमनाथ

१९२३ मे मन प्रथम बार गुजरात की यात्रा की । गुजरात के प्रभु सोमनाथ और वहा के शक्तव के सम्न्धमे मन बहुत उत्सुकता से उनदिनो अध्ययन किया था । गजनी महमूद का सोमनाथ पर आक्रमण उन दिनो मेरे अध्ययन का रोचक और आकर्षण त्रिपय था और तभी मेरी इच्छा 'सोमनाथ' नामक एक उपन्यास लिखने की हुई । पर त मूढ के इतिहास की पाठ्यपुस्तका मे सोमनाथ के आक्रमण की जो जरा सी चचा थी, उसे छोडकर अन्यत्र चली भी इस त्रिपयकोई अच्छा साहित्य मुझे हिन्दी मे नहीं मिला । गीर गीरे मेरी यात्रुता पढनी गई और मे सोमनाथ के इस आक्रमण के सम्बन्ध मे अत्रिफ मे अत्रिफ जानन मेो अगीर हा उठा । मजे की बात यह थी कि मेरे मुह से यह सुनकर मे भं सोमनाथ पर एक उपन्यास लिखना चाहता हूँ—एक प्रकाशक ने अपने अत्रिफार के त्रन से उमगा त्रिज्ञापन भी आप दिया, और सुना कि आडर भी बुक करने आरम्भ कर शिग । उमने बाद तो उमके तकाजो ने नाक मे दम कर दिया । प्रथम तो मुझे उम सम्न्धमे इतिहास की अत्रिफ जानकारी नहीं । दूसरे ऐसी लोक विश्रुत घटना को वैसे ही प्रभावशाली ढङ्ग से चित्रित करने की कल्पना शक्ति और साहस नहीं । मे उपन्यास त्रिख्यता कम ? धीरे धीरे विलम्ब होता गया, दिन बीतते

गण । अंग्रेजी इतिहासकारों के लिये कुछ दूढ़े फूटें विवरण ग्रहण भी, पर न यथेष्ट न थे । कुछ लोग तो यह भी कह देते थे कि यह घटना ही तपोन विषय है ।

गुजराती साहित्य तथा गुजराती संस्कृति से मेरा थाटा लगाव भी है । उसका श्रेय मे अपने दिवङ्गत मित्र हाजीमुहम्मद अतनारगिया शिखजीका ही देना चाहता हू । जि होने बरबस मेरा मन गुजराती साहित्य व कामन भातुरु भाव चित्रो पर मोहित कर दिया । और मैं गुजर साहित्य और संस्कृति व निकट आया । बम्बई में निवास करने से मैं गुजराती पढ़ने और समझने भी लगा था, पर तु रामनाथके प्रति मेरी आस्था तब हुई, जब दैतदुर्विपाक मे फँस कर मुझे बम्बई डाडनी पत्नी । कचन की सपन वर्षों में डूब कर छूछा हाथ लिए घर लोटना पडा ।

सम्भवतः सन् २६ में मैं काफी असमय व बाद फिर बम्बई गया और इस बार यह इरादा कर लिया कि सोमनाथ के सम्बन्ध में गुजराती साहित्य में जो कुछ भी मिल सकेगा बटोर लाऊँगा । पर तु मेरी आशा फलवती न हुई । एक दो पुस्तक मिली । पर प्रामाणिक जानकारी उनसे मुझे कुछ न मिली । बहुत निराशा हुई । इसी समय मेरे मित्र और शिष्य श्री महाधीरप्रसाद गीतानी मानीमीटर न, मुझसे श्री कल्याणलाल माणिकलाल मुशी से मिलने की सलाह दी । उन्होंने कहा—ये गुजराती के अच्छे साहित्यकार हैं, उनसे आपको अवश्य ही कुछ काम की बात मालूम हो जायगी । दाधीच ही को लेकर मैंने श्री मुशी से उनके आफिस में जाकर मुताकात की । पर मुताकात करके खुश नहीं हुआ । खोज ही गया । उन दिनों वे बम्बई में प्रतिष्ठित करत थे, और फाट में उनका आफिस था । उनकी न दृष्टि ही में, न बात चीत में, मुझे कुछ रस मिला । मैंने यह तनिक भी अनुभव नहीं किया—कि मैं एक साहित्य व धुन पास मित्रन आया हू । सोमनाथ के सम्बन्ध में मैंने कुछ प्रश्न किए, पर जवाब में ही मिले—जैसे प्रतीक अपने मुवकिकल में किसी मुद्दमे की बात कर रहा हो । जहाँ तक मुझे स्मरण है, मुलाकात खडे ही खडे खत्म हो गई । काफी देर बाद जब उन्होंने मुझसे प्रश्न की कथा, तब उनके उम ठण्डे लहजे से मेरे इतना कुछ गया कि तुरंत ही उनका इतना समय नष्ट करने के लिए क्षमा माग भाग खडा हुआ । फिर मुझे किसी साहित्यकार से मित्रन या साहस नहीं हुआ । हानाकि मुझे हाजी मुहम्मद अतनारगिया की आठ आठ घण्टों की मुलाकात नहीं भूनी थी । उसके बाद जब मैं अहमदाबाद जाकर गुजर शब्दशिल्पी श्री धूमकेतु से मिला तो एक बार फिर मेरे मन की खिन्नता मिटी । श्री धूमकेतु ने मुझे एक दो पुस्तकों के सङ्केत दिए । कुछ बातें भी बताई । फिर भी मेरे पास ऐसी सामग्री न जुट पाई कि मैं सोमनाथ पर उपयास लिख सकता । फलतः यह उपयास लिखने का विचार मैंने दिमाग से ही निकाल दिया । दिन पर दिन और वर्ष पर वर्ष बीतते चले गए । एक दो लहरे आई और शुरू के तीन चार परिच्छेद मैंने लिखे, पर गाडी फिर

वही रूढ़ गई ।

सन् ४१ आ गया, और मेने हिंदी साहित्य का इतिहास लिखा । उसमे मेने महमूद के आक्रमण के साहित्यिक प्रभाव पर पकाश डाला और एक बार फिर भारतीय संस्कृति पर मुस्लिम प्रभाव पर जाकर मेरी विचारधारा केन्द्रित हुई । अब मे कभी कभी सोमनाथ पर एक उपवास लिखने के लिए मन ही मन अधीर होने लगा । इसी समय श्री मुशी वा 'जय सोमनाथ' मेरे सामने आया । पहिले मैंने उसे मूल गुजराती मे पढा—पीछे हिंदी अनुवाद पढा । मुझे इस बात का ख्याल ही न रहा कि यह उपवास श्री मुशी ने लिखा है या मेने । मे यही सोचने लगा, कि क्या वास्तव मे सोमनाथ लिख दिया गया है । परन्तु मेरा मन भरा नहीं और किसी एक अतकित भावना ने मेरे हृदय मे एक ऐसी तीव्र आकांक्षा उत्पन्न कर दी, कि अब मे सोमनाथ पर कलम बिना उठाए रह ही न सकता था । अब मन यह विचार किया कि मैं श्री मुशी के इस उपवास से कुछ प्राप्त कर सकता हूँ या नहीं । मेने दो तीन बार उसे बारीकी से पढा ।

१९८८ मे मेरी 'बशाली की नगरवधू' प्रकाशित हुई । उस समय मे 'इतिहास रस की स्थापना मे' मे हतप्रबुद्ध पर चुका था । मुझे इस बात की परवाह न थी कि मे इतिहास मे दूर उतर हो जाऊंगा तो क्या होगा ? मनमानी कुलाचे भरने के लिए मैं तयार बठा था । श्री मुशी के 'जय सोमनाथ' के प्रति मेने एक प्रतिस्पद्धा की दृष्टि डाली, मन मे कहा—यदि मेरा उपन्यास उसमे निष्कृष्ट बना, लोगो ने इसे न पढा—तो क्या होगा । मेने यद्यपि श्री मुशी के उस उपन्यास मे कुछ भी प्राप्तव्य नहीं पाया था, परन्तु श्री मुशी का स्मरण तो मुझे पर था ही । साहित्यिक न सही—ठाट बाट का ही सही ।

मे मनी उठापोह मे फसा था, और उपवास के जही पुराने इस बारह वर्ष पूर्व लिये पाच ठे परिच्छेद मेरे सामने थे, जिन्ह मे जब तब उमङ्ग मे आकर मित्रो को सुना दिया करता था । मेरे मित्र मेरा मजाक उगाया करते थे—कि इन परिच्छेदो का उलङ्घन करके 'बशाली की नगरवधू' जन जीवन मे अपना स्थान पा चुकी । अब आपका यह 'सोमनाथ' उम पर नहन पर दहला मारे तो बात है । इस 'दहले' ने मुझे और भी दस्ता दिया । अभी तो श्री मुशी ही का स्मरण मारे उल रहा था, अब इस 'दहले' ने मेरी गाम रोस की । परन्तु यह मेरे बग की बात तो थी ही नहीं । मे आज भी यह नहीं जान पाया है कि नगरवधू मे कितना सौष्ठव है । मे निम्न देह उस पर मोहित है, उम पर अपना सम्पूर्ण साहित्यिक सम्पदा को वार चुका हू । परन्तु यह तो मैं कसम खाकर कह सकता ह कि उसकी जिस सुपमा पर मे इतना मोहित हा गया हूँ, उमे मैंने अपने परिश्रम मे निर्मित नहीं किया । मैं वास्तव मे 'नगरवधू' का निमाता नहीं—'प्रकटकता' हू । न जाने किस अचित्य शक्ति ने वे भव्य मूर्तिया मेरी घिसी घिसाई चातीस मान पुरानी कलम मे व्यक्त करा दी । भना मैं नगण्य कहा उन दिव्य मूर्तियो

का निवारण कर सकता था। परन्तु मगर यह नहीं था। परन्तु 'मित्रा' के नाम से मित्रा की एक कृति थी। उसका यह स्पष्ट ग्रन्थ था, कि 'मगरमूँ' से उत्पन्न 'सामान्य' का सके-
तो ही 'सोमनाथ' लिखना, नहीं तो नहीं।

अब बताइए इस चुनौती का क्या जवाब है? प्रगमन फिर उस लिखने का
इसका व्याख्यान दिया। वही प्रारम्भिक पाच सात परिच्छेद पढ़े थे, उन्हीं पर अपनी हसरत
भीषी कजर जब तब डाल लेता था। कभी कभी मगरमूँ की विचारों का 'मगरमूँ' के परि-
च्छेदों पर आरोप फला देता था, कि आगे रहा कर्म चरान की गुंजाइश है या नहीं।

इसी समय विभाजन का विघाट मेरी आशा का गाय आया। दिल्ली में रह-
कर दिल्ली और लाहौर के सारे लाल काले पाठन मन अपनी आशा में देखे, कानों से
सुनें ही बातें मुनी और विश्व के मानव इतिहास का सचराचर मर्ममन्त्रिमण दखा।
यह ऐसी बात नहीं थी—जिसे मैं देख और तरगुजर कर रहा। कट्टरता का अभियाग से मैं
हिन्दुओं को मुक्त नहीं कर सकता। पर तु मैं उन्हीं सूनी प्रकृति का तो नहीं स्वीकार
कठता। जिन्ना का 'डाइरेक्ट ऐक्शन' और उमरा सच्चा असली स्वरूप देख में समझ
गया। कि चाहे बीसवीं शताब्दी का सम्यक्मानन, चाहे बौद्धही गतान्ते का, चाहे जगली
फारानो—खिलजियो और गुलामो का अध-युग। मुस्लिम भागता ता सूत में तर है और
होगी। जब तक इसका जउमूल से निनाश न हो जायगा—मगी सूत की प्यास बुझेगी
हीगी। यह सवथा मानव त्रिराशिनी भागना है, जा साहृतिता रूप में मुस्लिम समाज में
इस्लाममूल है। ज्यो ज्यो पजाप व अत्याचार, पातकार उत्पात, दूटमार मर कानो में
फटते जाते थे, में सुलगता जाता था।

प्रारम्भ में यद्यपि मझ प्रकृत कम जाती का पता लगा। पर तु आग चतकर
जो मुझ हुआ, उमकी एक भीतिमूर्ति मर मन में पहिने ही अस्ति हो चुकी थी। विभा-
जन से बहुत पूव ही से, समथ मित्रा से बहुधा रहा करना था कि किसी तरह पजाव
श्रीट मित्र से हिंदू परिवारो से निहाल लाना चाहिए। प्रथम मित्रा को मन तत्कान
लाहौर डोड देने की सलाह भी दी थी। १९६६ का मर मरगा तू ग्रन्थ दि दी साहि
का इतिहास छपा और में उस समय जयपुरी—परवरी—मात्र म मगभग ताहौर में
रहा। मेरे प्रकाशक मेहरचंद लक्ष्मणशाम में मितठा गली में रहत था। यह मुहल्ला ही
मुस्लिमानी आजादी में था। अपनी अर्थात् म यात्रा में मर जाहौर का यह स्वरूप देखा,
जो किस्फोटो मुख ज्वालामुखी का होता है। रक्षक से अपना उन मित्र के घर तब पहुँ-
का म मेरे लिए अत्यन्त नासदायक हो गया। उस बार एक सन्तान तब लाहौर में रहा
श्रीट प्रभु दुभुत वातावरण देखा। रगजीतामत् की समाधि फूटी पड़ी थी। वहाँ ढरों मलवा
= और धाम फूम जमा था, पर तु प्रादशाही मस्जिद क गुम्बजा पर फिर से सगमरमर
भागा रहा था। मुझे ऐसा अनुभव हुआ—जैसे एक घर में दुर्घटन का व्याह की तया

रिया ठाठसे हो रही हे टुलहन पर हल्दी चढाई जा रही है और दूसरे घर मे मुर्दा उठाने को पडा हे । दो घटनाआने मे मुझे सत्य रूप का दर्शन करा दिया । एक दिन सुबह ही मै पडौस मे एक सलून पर जा बठा—बाल कटाए । क्षण क्षण मे मुझे भय हो रहा था कि वह नाई कही मेरा गला ही न काट डाले । लम्बे चौड़े डीलडौल का पचहत्था जवान था । बडी ही लापरवाही से कैंची, उस्तरा और ब्रुश चला रहा था । शुरू मे गुस्सा हुआ, पर फिर मुझपर आतक छा गया । मे अपनी भूल समझ गया । अंत मे मैने एक रूपया दिया और बकाया रेजगारी वापिस पाने को हाथ फलाया, परन्तु वह जवान मुस्लिम नाई धृततापूर्वक हस कर बोला—वाच्छा,तूने जो दिया सो दे दिया,अब चलता हो, और मेने चुपचाप चलता हौन ही मे कुशल समझी । हजामत ठीक बन चुकी थी ।

इसी प्रकार एक मेरे वाले से मेने दो आने का एक सतरा लिया, और रूपया देकर बाकी पस मागे—तो उसने रूपया गत्ते मे डालकर और यह कह कर—कि फिर कभी ले जाना, मेरी ओर से रख फेर लिया । निस्स देह यह सरासर डाकाजनी थी । वह भी बीच बाजार । दुकानदार उकू बने हुए थे । दूसरे दिन मै वहा से चल दिया, और अपने मित्रो से लाख लाख अनुरोध करता गया—कि वे तुरंत लाहौर छोड दे ।

अन्त मे जो हाना था वही होकर रहा । परंतु मै भय, क्षोभ और आतक से जसे शरारत हो गया और जिस दिन विभाजन हो जाने पर दिल्ली मे रवतत्रता दिवस मनाया गया, घंटाघर पर शानदार रोशनी की गई, लाल किले पर तिरगा फहराया गया, मै अपने घर के सब दराजे बन्दकर चुपचाप पडा सिसकता रहा । उस रात को मेने अपने घर मे दीप नही जलाया । दूमेरे दिन अखबारो मे पढा—कि जब दिल्ली मे घंटाघर रोशनी मे जगमग कर रहा था—लाहौर धाय राय जल रहा था । परंतु इस साहित्यकार ने आम् किसने दमे,लाहौर की चिताभस्म मे जसे वे भी जल मिल गए ।

मे लाहौर से चले चले अपने हिन्दी साहित्य के इतिहास के अंतिम पृष्ठो पर ये पक्तिया निरग आया जा मत्ताल की गति अति विषम है, वह घडी मे काँटे की भांति ठीक ठीक तपी तूनी गति मे नही चलती । कभी वह मद हो जाती है,और कभी अति भीषण तीव्र गति धारण कर लेती है । उसी के प्रभाव से व्यक्ति की भाति राष्ट्र के जीवन मे एक एक प्रप कभी कभी सौ वर्षो के समान भारी हो जाता है,और कभी हमने गलत ही बात ही रातमे शताब्दिया बीत जाती है । भारत के गत छब्बीस वर्ष बडे ही तेजी मे बीते है,मेरे आगतियों से सुप्त और आत्म विस्मृत भारतीय राष्ट्र एक अद्भुत उमंग और तेज मे साथ जाग उठा है । २६ वर्षोमे जो कुछ हुआ है उसका भारत के राष्ट्रीय और सांस्कृतिक जीवनपर कसा प्रभाव पडेगा—यह अभी नही कहा जा सकता । परंतु यह दीख पडता है कि आगामी पाँच शताब्दी और भी द्रुतगति से आगे बडेगी, और बची बडी घटनाएँ और बडे बडे परिवर्तन अकल्पित तेजीसे भारत मे होंगे,जिनका

का निमाण कर सफ़ता था। पर तु यत्र यत्र नता पर तता ? यत्र तो मित्रा की एक चुनौती थी। इसका यह स्पष्ट अर्थ था, कि 'नगरत्रय' में उत्रय 'सामनाथ' बन सके-तो ही 'सोमनाथ' लिखना, नहीं तो नहीं।

अब बताइए इस चुनौती का क्या जवाब है ? त्रग मैं फिर इस लिखने का इरादा त्याग दिया। वही प्रारम्भिक पाच मात परिच्छेद पड था, उ ही पर अपनी हसरत भरी नजर जब तब डाल लेता था। कभी कभी सत्रय तसा त्रिचार म 'नगरत्रय' के परिच्छेदा पर आरा फला दता था, कि आगे नहीं बनम चलान को गजाय है या नहीं।

इसी समय विभाजन का विघाट मेरी आशा में आग आया। दिल्ली में रह कर दिल्ली और लाहोर के सारे लाल काले पादत मन अपनी आशा में दख कानो में अनहोती बात सुनी और विश्व के मानव इतिहास का सत्रमे त्रय मटाभिनिक्रमग देखा। यह ऐसी बात नहीं थी—जिसे मे देय और दरगुजर कर । इदरता व अभियाग से मैं हिदुओ को मुक्त नहीं कर सफ़ता। पर तु में उत्र सूती प्रफ़ी का तो नहीं स्वीकार करता। जिन्ना का 'डाइरेस्ट ऐक्शन' और उसका सत्ता असती स्वरूप देय में समझ गया कि चाहे बीसवीं शताब्दी का सभ्यतान का, चाहे चौदही शताब्दी का, चाहे जगली पठानो खिलजियो और गुलामो का अध-युग। मुस्लिम भावना ता खून म तर है और रहेगी। जब तक इसका जटमूल में त्रिनाश न हा जायगा—सकी सूत की प्यास बुझेगी नहीं। यह सवथा मानत्र त्रिगिनी भावना है, जा सभ्यतान रूप में मुस्लिम समाज में दढबढमूल है। ज्यो ज्यो पजात्र क अत्याचार, त्रातरकार उपात्र, त्रमार मर काना म पडते जाते थे, मे सुलगता जाता था।

आरम्भ में यद्यपि मुझे बहुत कम ज्ञान का पता लगा। पर तु आग चतकर जो कुछ हुआ, उसकी एक भीतिमूर्ति मर मन में पहिच ही अस्ति हो चुकी थी। विभाजन से बहुत पूर्व ही से, समय मित्रो में बढधा रहा करता था कि किसी तरह पजाव और सित्र से हिदू परिवारों को त्रिनात्र लाता चाटिए। इहय मित्रा का मन तत्कान लाहौर ठोड देने की सलाह भी दी थी। १९५६ में मात्र म मरा त्रय अत्रि दी साहित्य का इतिहास त्रया और में उग समय जत्रयों-फरारी-गाव म त्रगभग ताहीर में रहा। मेरे प्रकाशक मेहरचंद त्रधमगदास सत्रमितठा गती मरता था। यह मुहत्ला ही मुसलमानी आत्रादी म था। अपनी अत्रिनम यात्रा में मर ताहीर का त्रह स्वरूप देखा, जो विस्फोटो मुख जत्रालामुखी का होना है। स्तशन म अपना उन मित्र को घर तक पहुँचना मेरे लिए अत्यत त्रासदायक हा गया। उस बार एर सत्ता तत्र लाहौर में रहा और अद्भुत वातात्ररण देखा। रगजी मित्र को सत्राधि फूती पगी था। त्रहाँ डरा मलवा और घाम फूम जमा था, परन्तु बादशाही मस्जिद क गुम्बजा पर फिर स सगमरमर मढा जा रहा था। मुझे ऐसा अनुभव हुआ—जसे एक घर में दुत्रहिन क ब्याह की तया

रिया ठाठसे हो रही है दुःख पर हल्दी चढाई जा रही है और दूसरे घर में मुर्दा उठाने को पडा है। दो घटनाओं ने मुझे सत्य रूप में दर्शन करा दिया। एक दिन सुबह ही मैं पड़ोस में एक सलून पर जा रहा था—जान बटाए। क्षण क्षण में मुझे भय हो रहा था कि वह नाई कहीं मेरा गला ही न काट डाले। लम्बे चौड़े डीलडौल का पचहत्था जवान था। बड़ी ही लापरवाही से कची, उस्तरा और ब्रुश चला रहा था। शुरू में गुस्सा हुआ, पर फिर मुझपर आतंक छा गया। मैं अपनी भूल समझ गया। आत में मैंने एक रुपया दिया और बकाया रेजगारी वापिस पाने को हाथ फलाया, परंतु वह जवान मुस्लिम नाई धूततापूर्वक हेंस कर बोला—वाच्छा, तुने जो दिया सो दे दिया, अब चलता हो, और मैंने चुपचाप चलता हाने ही में कुशल समझी। हजामत ठीक बन चुकी थी।

इसी प्रकार एक मेरे वाले स मैंने दो आने का एक सतरा लिया, और रुपया देकर बाकी पैसे मागे—तो उसने रुपया गटले में डालकर और यह कह कर—कि फिर कभी ले जाना, मेरी ओर स रख फेर लिया। निस्स देह यह सरासर डाकाजनी थी। वह भी बीच बाजार। दुकानदार डाकू बने हुए थे। दूसरे दिन में वहां से चल दिया, और अपने मित्रों से लाख लाख अनुरोध करता गया—कि वे तुरंत लाहौर छोड़ दे।

आत में जो होना था वही होकर रहा। परंतु मैं भय, दोष और आतंक से जैसे शराबोर हो गया और जिस दिन त्रिभाजन हा जान पर दिल्ली में स्वतंत्रता दिवस मनाया गया, घंटाघर पर शानदार राशनी की गई, लाल किले पर तिरगा फहराया गया, मैं अपने घर के सब दराजे बन्दकर चुपचाप पडा मिसकता रहा। उस रात को मैंने अपने घर में दीप नहीं जलाया। दूसरे दिन अखबारों में पडा—कि जब दिल्ली में घंटाघर राशनी स जगमग कर रहा था—लाहौर धाय वाय जल रहा था। परंतु इस साहित्यकार व आसू फिसन दख, लाहौर की चिताभस्म में जैसे वे भी जल मिल गए।

मैं लाहौर स चलते चलते अपने हिन्दी साहित्य के इतिहास के अंतिम पृष्ठों पर ये पंक्तियाँ पायीं गयीं थीं— महाकाल की गति अति त्रिपम है, वह घड़ी में काटे की भांति ठीक ठीक नहीं तुनी गति में नहीं चलती। कभी वह मंद हो जाती है, और कभी अति भीषण तीव्र गति धारण कर लेती है। उसी के प्रभाव से व्यक्ति की भांति राष्ट्रों के जीवन में एक एक वर्ष कभी कभी सौ वर्षों के समान भारी हो जाता है, और कभी हमें खेत में ही रात की बात में शनाब्दिया बीत जाती है। भारत के गत छव्वीस वर्ष बड़े ही तेजी में बीत रहे, सांस्कृतिकता स सुत और आत्म विस्मृत भारतीय राष्ट्र एक अद्भुत उमंग और तेज स साथ जाग उठा है। २६ वर्षों में जो कुछ हुआ है उसका भारत के राष्ट्रीय और सांस्कृतिक जीवनपर कसा प्रभाव पड़ेगा—यह अभी नहीं कहा जा सकता। परंतु यह दीख पड़ता है कि आगामी पाँच शताब्दी और भी द्रुतगति से आगे बढ़ेगी, और बड़ी बड़ी घटनाएँ और बड़े बड़े परिवर्तन अकल्पित तेजी से भारत में होंगे, जिनका

प्रभाव सम्पूरा विश्व पर पड़ेगा ।

अब ये मेरे ही वाक्य बारम्बार गान गहरा रूप धारण करने में मस्तिष्क में चक्कर खा रहे थे—कि मानव रक्त प्रहारे में चरण तब तक आ पहुँचा और अब एक हिंस्र, असह्य, और दुधय वल्लय तथा सीक स मरा तन मर भर उठा और किसी अचि त्य शक्ति से श्रोत श्रोत हाकर मेरी कलम अपना काम करने लगी । लीजिण साहब रातदिन की अनवरत गति से एक के बाद दूसरे परिच्छेद आप ही आप सम्पूण होने लगे । खून खराबी, लूटपाट अत्याचार और वनाफार के जा दृश्य घटनाएँ मेरे काना और आखा को आक्रा त करने लगी, उन सत्रवा म अपने सामनाथ म—ग्यारहवीं शताब्दी के उम बबर आक्रा ता के उत्पातो म आरोपित करता चला गया । मैं नहीं जानता कि मेरा यह काम कहा तक साहित्यिक अपराध हो सकता है । परन्तु यदि यह अपराध ही है तो मैं इसे आपस छिपाना पस द नहीं करूँगा ।

कि तु तीन बातों का मैंने अपने सामनाथ की रचना में गाथ्रय लिया । श्री मुशी चूकि मुझसे प्रथम 'जय सोमनाथ' लिख चुके थे । मैंने इस बात में मेने श्री मुशी को आप्त पुरुष मान लिया । उनकी अनन्य वात्पनिर्वास्थापनाओं का मैंने सत्य की भाँति ग्रहण कर लिया । इसमें एक तो मेरे उपवास में परम्पराभूत रसादय हुआ । दोनों उपवास पढने पर पाठक के मन पर उम घटना का द्विगुण प्रभाव होगा, विरोधी भावना नहीं पदा होगी । इसमें रस भग का दोष नहीं आएगा यही मैंने सोचा । ऐतिहासिक सत्या की मैंने परवा नहीं की । उनका ही काफी समझा कि महमूद ने सोमनाथ का आक्रान्त किया था । उसने गुजरात की लाज लूटी थी ।

फिर भी मुझे तत्कालीन आतावरण तथा घटनाओं को रूपरसा ननाने में गुजरात साहित्य और गुजरात विद्वानों के लिख सकत प्राकृत अथवा ग्रंथों का मन्तन करना पडा । सोलहवीं शताब्दी, तत्कालीन सामाजिक एवं राजनीतिक स्थिति अथवा व्यवस्था, राजतंत्र, वृद्धनीति चक्र साम्प्रदायिक भावना, सभी पर मेरा विचार किया । सत्रमे महत्त्वपूर्ण अथ इस कालके आतावरण का जिनमें गुजरात की प्रथम राजसत्ता को उलट टानि पहुँचाई, यह था कि राजा शत्रु टि हूँ और मैं ही जनता के थे । उसमें राज्य की अथ व्यवस्था जनता के हाथ में होती थी । तागरिन सठ साहसिक भी जैन धर्म में राज्य में राजा की अपेक्षा जन मन्त्री का अधिक प्रभाव रहता था । परन्तु यह गान गुजरात ही में थी—राजस्थानमें नहीं और यद्यपि गुजरात में राजा राजस्थान में भी अगत स्वामी तथा सम्बन्धी रिश्तेदार थे, फिर भी राजस्थान मालवा, मिठ और गुजरात के राजाओं में सहयोग के स्थान पर युद्ध और कलह ही का बालबाता रहता था ।

ये हुई दो बातें । तीसरी बात मरी अपनी थी । मित्रा की चुनीनी मुझे याद थी । वही—'नहले पर दहल' वाली । 'नगरवधू' पर अभी भी मुझे मोह था । अम्ब-

पाली, सोमप्रभ, विम्बसार चम्पा की राजकुमारी, कुण्डनी आदि असाधारण रेखा चित्र हे, पर तु सोमनाथ म तो मुझे नहल पर दहना मारना था, प्रभावशाली नए चित्रो की सृष्टि करनी थी ।

सब से प्रथम मेरा ध्यान हि दुओ के ऋडिवाद, अज्ञान, वमावता कट्टरता तथा जातिभेद ओर आत्म कलह पर गया । मेन स्वीकार किया, कि इसी ने हि दुओ को दलित किया, पराजित किया हे । मेन इसकी प्रतिक्रिया स्वरूप—दासीपुत्र देवा, देवस्वामी फतहमुहम्मदकी सृष्टिकी । उसमे विद्राह, तजस्विता शीय प्रेम, कमठता, निष्ठा ओर दृढता की म प्रतिष्ठा करना चला गया ओर अपनी समझ मे उसे मेने उसी की अनय प्रेमिका के हाथ स बध करा कर उसके जीवन को साथक कर दिया । दूसरी जिस अलौकिक मूर्ति की रचना मुझे करनी पडी—उह थी, 'शोभना', एक बाल विधवा ब्राह्मण कुमारी । इम मूर्ति मे माननीय कोमलतम प्रेम की पराकाष्ठा की स्थापना करने की मेने चेष्टा की । सत्साहस, दप प्रत्युत्पन्नमति सेवा, दया, धम, श्रौदाय और आत्मापण की प्रतिष्ठा करन मे मेने अपनी धुधली दृष्टि को न जाने कितनी बार एक बारगी ही अथा बना दिया । एउ ही शब्द म, एम प्रियतमा युवती को मेने अपनी सहृदयता के सम्पूर्ण आसुओ मे आचूड स्नान कराकर ही अपन पाठको के सम्मुख उपस्थित किया है । जो स्त्री अपने अनन्य प्रेमी का सिर फाट सकती है, तथा धम और मानवता के शत्रु को अपना निश्चल प्यार अपण कर सकती है, खतरे मे निश्चक दृढतासे आगे बढ़तीही जाती हे, उसको कितना प्यार दिया जाय, और कितनी उसकी पूजा की जाय, इसका निराण्य मे नही कर सकता ह, आप ही उह निराण्य कर । मैने तो चुपचाप गजनी के दुदात महमूद को उगनी आचन की ओह म गजनी की राह भेज दिया था ।

परन्तु निम्न उह, उह अपन आचल की छाह मे जिस महमूद को ले गई थी, वह उसी का निर्मित पुरुष हे । एउ स्त्री का अपने हाथो पुरुष का निर्माण करना आसान बात नही हे । महमूद का सम्म चरित्र चाह जो हो उह एक दृढ योद्धा, आक्रान्ता और वीर पुरुष था । उगना जीवन ही कठिन अभियाना म बीता । पर उस व्यक्ति मे मान्योचित गुण न थे यह मे कहेनेका माहम कम करू ? निम्न देह, जसा कि मेने पहिले कहा—विभा जन की विभीषिना म प्रभावित मन सभी सम्भव अत्याचारो का आरोप इस अभियान के नायक महमूद पर किया हे परनु वह मरी खीक ही तो थी ।

यह खीक हि दू शाने का नात नही, मनुष्य होनेके नाते थी, इसलिए उसमे आकर म एउ एगे महान विजता के साथ अत्याचार ही करता रहूँ, यह मेरी साहित्यिक निष्ठा नही । अत मेने आप को सम्पूर्ण साहित्यिक कोमलता, भावुकता और प्रेम की सम्पन्नता उसे प्रदान कर दी । मुझे यह याद ही न रहा, कि वह मनुष्या का शत्रु, खूनी और डाकू हे । अत वह मनुष्य है, यह मैं कैसे भूल सकता था । फिर, वह मनुष्य भी साधारण

नहीं महान विजेता, योद्धा श्रीर नियन्ता । प्रथम उगम जो भयगा । याग्य था उसकी घषणा कर, उसमे जो पूजाय था, उगमो में पूजा ही गौरवगा । पर भने अपना साहित्यिक धम पालन किया ।

जब मेने उमे दामामहता से पराजित कराया, तभी मेने उगम मन्चे शीय और मानवतत्व को स्पष्ट किया । इस पर उगमानी ही जान सी म, शोभता ही मुताकत मे, सुर सागर के तट पर, तथा पीर ही दरगाह में उगम सम्पूर्ण मानवतत्त्व को कोमल तथा भावुक प्यार, पीर और आत्मापण से आत प्राप्त कर उगम जाभता के आचल म बाध दिया ।

मुस्लिम सस्कृति की खूनी, जिरी और साग्रप्राप्त करणा मूर्ख पतृत्ति पर म जितना गुस्सा प्रकट कर सकता था—मो किया । पराजिता पर कदिया पर मने अत्याचारो के जो भर कर रेखाचित्र सीच । पर तु उम सागर रक्तपात श्रीर मानव विरोधी भावनाओं का मूलरूप जो महमूद था, उगमो म उगा ही उगत रक्तपिपासु न छोड सकता था । उमे मने जाण स ही मानवता का प्राण पीता कर गजनी वापस भेजा हे, शोभना क कत्याणाचन म तात्र पर उम आप उगिम विरोधी तत्त्व कह सकते हे । पर मने तो उपयाग म करत उत ही निताम का महारा किया हे कि सोमनाथ महालय पर महमूद का यह आक्रमण हुआ और यो उगा अगिम उमात्मक आक्रमण था ।

इसी सोमनाथ और महमूदक उगिम मूर्खता पर म मूर्खियाओ म ने उगा और मेरा साहित्य रस सुख न जाय—उसीका विरत म अतल किया । करन यही नहीं, कि आदशवादिता की भोक्म सैन ऐसा किया म मानवता की भा भा हे, मत्रयरो म दुनियाँकी सबसे बडी इकार्ड समझता हे । म मनुष्यता पुजारी हे श्रीर म मत्रय भरा देता हे । परतु 'मनुष्य', 'मानवता' नहीं । मानवता का म पजारी ही । मानवता मानवोय श्रेष्ठ गुणो की भावना की प्रतीति कराती हे । जा नाग मानवता म प्रया हे । म पीर, पीर, उदात्त, सच्चरित्र महापुरुष के पूजक हे । नि उ मे ही । म मत्रय मानवता पुजारी हूँ । वह मनुष्य, जो वृगित, पापी, अपराधी, रूा, पर, उगारा, उग, हाडी, व्यभिचारी, ग देरागो से आक्रान्त, मत्रय म नापता या पागता हे । ही मंगे उगमता हे । उसमे जो यह कतुप हे उसका अपता नहीं हे । नगीमा नहीं हे, उग पर उपर मे लाश हुआ हे । यह तो मेरा —पुजारी का नाम हे, कि उगो म पाठ कर, गाक श्रद्ध करके, पवित्र—पूजनीय बाण और अपता सम्पूर्ण प्यार और सेवा उमे आपता कर, जब मव मूत्र से लतपत अपने बच्चे को मा करती हे ।

वहा सैन किया । मत्रय बार भारत का तत्रार और आग तो भर करने वाला, लाखो बंदियो को निरीह पशुआ की भीति गजनी व जागारा म बचत जाता, दुर्दा त

लुटेरा महमूद मेरे हाथ लग गया। गुम्मे और त्रिरक्ति से उसके सब कुकृत्य मैंने देखे। पर तु उसका प्रच्छिन्न मानव तत्त्व भी तो मुझे देयना था, सो अबसर पाकर मैंने उसका सब कलुष वो पात्र कर, उसे साफ शुद्ध करके, एक कोमल भावुक, आतुर प्रेमी बनाकर, प्रेम तत्त्व की प्रतिनिधि एक रमणीयता के आचन की झाह में उसे उसकी गजनी खाना कर दिया। गङ्गसवज्ञ के रूप में मैंने उसे आशीर्वाद दिया, और आशीर्वाद का तत्त्व भी मैंने भीमदेव को बताया दिया। फिर दामो महतासे पराजित करा—उसे उसका दोस्त बना—उसके सम्पूर्ण पौरुष को सत्कृत किया। पर तु यह काफी न था। मैंने शोभना का रूप धारण किया, और उस रूपमें मैंने उस दुर्दांत लुटेरे को कितना बोया माजा, कितना मान्यता के तत्त्व में उसे श्रेष्ठ प्रोत् किया, इसका फसला तो मैं आप ही पर छोड़े देता हूँ। अब यहाँ वहीं मैंने चूक ही की है तो आप मेरे कान पकड़ सकते हैं, पर तु आपकी बात में मानना छोड़े हो। मैं तो यही कहे जाऊँगा, कि मैंने जा कुछ किया ठीक किया। विश्व का विद्रोह करने पर भी यही कहूँगा।

चौलादेवी मेरे उपन्यास की नायिका है। उसकी मूर्तिको जितना अमल अवल, कोमल, भावुक, प्रानात शय था, प्रानात मेने सारे सघर्षों के इस पारसे उस पार तक पहुँचा कर, फिर अपने प्रियतम के प्रक्ष में लगाकर उसे विदा कर दिया है। इस 'विदा' की वेदना आसू नही प्रदान देती, मूर्च्छित कर देती है। भीमदेव निस्स देह शीय का मूत अंतर है। वह इस उपन्यास का नायक भी है, पर तु उसके शीय का ही उत्कष दिखाकर मैं स तुष्ट हो गया। उसमें प्राना पुरुषता मैं उसे मान ही न सका।

सत्य और अहिंसा का तत्व

१९४० के अंत में एक छोटी सी किंतु सध्या नवीन पद्धति पर 'पगभ्वनि' नामक नाटिका में राष्ट्रपति डाक्टर राजेन्द्रप्रसाद की प्ररणा से लिखी थी। ८ मई के अपराह्न में मैंने उनमें मुलाकात की और साहित्य की प्रगति तथा साहित्य के द्वारा भारतीय जन जन को शान्तिप्रदान करने के विधि विधानों पर विचार परामश हुआ। मेरा कहना था कि भागी भारत को व्यवस्थित करने में साहित्यकार ही एक मात्र सहायक होगा राजनीतिज्ञ नहीं। राष्ट्रपति से इस भटका मेरा उद्देश्य यह उलाहना देना भी था कि तत्कालीन भारतीय गणतन्त्रीय सरकार ने साहित्य परिजनों का एक-पारसी ही त्यागन कर दिया है और वह भारत को पश्चात्य राजनीति के ध्वस्त माग पर घसीटे लिए जा रही है। मतालीस मिनट की लम्बी बातचीतके बाद हम इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि साहित्यजनों को गाँधीजी के सत्य और अहिंसाके तत्वों को अपनी साहित्य भावना में आत्मसात् करना चाहिए। राष्ट्रपति ने मुझसे अनुरोध किया कि मैं इस प्रकार के साहित्य की रचना में सक्रिय भाग लूँ और अन्य साहित्य परिजनों को भी प्रेरित करूँ। मैंने यह छोटी सी नाटिका लिखकर इस दिशा में स्वयं ही पहला कदम उठाया।

नहीं महान विजेता, योद्धा गौर निपत्ता । पराजिताओं परगना में पाग्य था उसकी वर्षणा कर, उसमें जो पूजाय में, खरी भी पूजा ही और पपा कर संन अपना साहित्यिक धम पानन किया ।

जब मेने उम तमोमहता में पराजिता परगना तमो में उगत गन्त्रे शीय और मानवत्व को स्पष्ट किया । उम ह ता रमा को ही ताती म, शोभना की मुलाकात में, सुर सागर के तट पर, तथा पीर तों रगा, म ख्य । अणुमा मानवत्व को कोमल तथा भावुक प्यार, पीर गौर आत्मपण में आता परा म जाभता के आचल में बाव दिया ।

मुस्लिम संस्कृति का खी, जि की और साग्र ही । परगना गून्त्र प्रवृत्ति पर म जितना गुस्ता प्रकट कर सता ता मी किया । पराजिता पर तस्थिया पर मने अत्याचारों के जो भर दर रगानिन्न खीव । पर म म गार रत्तपात और मानव विरोधी भावनाओं का स्वरूप जो मटमूद में, उग ता म मगा ती ; त रक्तपिपासु न छोड सकता था । उम मने जा एह ग ती मा ता ता ता ताता पति ता तर गजनी वापस भेजा है, शोभना में रत्यागानन में आता म आप ति म विराधी तत्त्व कह सकते हैं । पर मने ता उपयाग में वता ता ता ति म ता सताया किया है कि सोमनाथ महालय पर मटमूद काय, आक्रमण, या और य । मता श्री म च्चमात्मक आक्रमण था ।

इसी सोमनाथ और मटमूद के उचित मता ता ता म मी तया मोग में लगा और मरा साहित्य रस सूय न जाय—अतीता वि तन मी अतन किया । म न यती नहीं, कि आदशवादिता की भावम में मने किया म मता ता ता ता ता ता, मगायता म मुनियोंकी सबसे बनी उकार् समझता ह । म मनुयता पूजाय में गौर मगाय मरा वता है । परनु 'मनुय', 'मात्रता' वती । मानवता का म पूजाय ता ता । मात्रता मता मीय अष्ट गुणों की भावना की प्रतीति करती है । जो मग माता ता ता ता ता ता । म धार, गौर, उदात्त, सच्चरित्र मताणय में पूजा है । ति म म ता ता । म म म मगाय ता पूजाय हैं । वह मनुय, जो धर्मिन, पापी, मपरा ती, गूना, ता, मगारा, मरा, ताता, यमि चारी, गदरोगों में आक्रान्त, मममूद म नपता या पाता ता ता मरा वता है । उसमें जो यह मनुय है उमका अणता वती है । मगी म नती म उम पर मपर म लाडा हुआ है । यह ता मेरा पूजाय ता ता म है, ति उम ता पा ता ता, माप जुद्ध करके, पवित्र—पूजनीय वाताण और अप ता मणुमा प्यार मीर मता उग श्री ता ता, जग मल मूत्र से लतपत अपने बन्धों का गा करती है ।

यहां मने किया । सत्रह द्वार भारत ता ता ता ता और याग ता मट करने वाला, लाखों बन्दियों को निरीह पशुओं की भाँति गजता न मगाता म वतन वाता, दुर्दांत

लुटेरा महमूद मेरे हाथ लग गया। गुम्मे और विरक्ति से उसके सब कुकृत्य मेने देखे। पर तु उसका प्रच्छिन्न मानव तत्त्व भी तो मुझे टेपना था, सो अवसर पाकर मेने उसका सब कलुष धो पात्र कर, उसे गाफ शुद्ध करके, एक कोमल भावुक, आतुर प्रेमी बनाकर, प्रेम तत्त्व की प्रतिनिधि एक रमणीय रत्न के आचन की छाह में उसे उसकी गजनी रवाना कर दिया। गङ्गसवज्ञ के रूप में मेने उसे आशीर्वाद दिया, और आशीर्वाद का तत्त्व भी मैंने भीमदेव को बता दिया। फिर तामो महतासे पराजित करा—उसे उसका दोस्त बना—उसके सम्पूण पौरुष को सत्कृत किया। पर तु यह काफी न था। मेने शोभना का रूप वारण किया, और उस रूपमें मैंने उस दुर्दांत लुटेरे को कितना बोया माजा, कितना मानवता के तत्त्वों में उसे श्रोत प्रोत किया, इसका फैसला तो मैं आप ही पर छोड़े देता हूँ। अब यहाँ नहीं मैंने चूक ही ली है तो आप मेरे कान पकड़ सकते हैं, पर तु आपकी बात में मानना थाड़े ही। मैं तो यही चढ़े जाऊँगा, कि मैंने जा बुद्ध किया ठीक किया। विश्व का विनाश करने पर भी यही कहूँगा।

चौनादेवी मर उपवास की नाथिता है। उसकी मूर्तिका जितना अमल धवल, कोमल, भावुक, प्राना शाय था, प्रानाकर मेने सारे सघर्षों के दम पारसे उस पार तक पहुँचा कर, फिर अपना प्रियतम के तत्त्व में प्रानाकर उस बिदा कर दिया है। इस 'बिदा' की वेत्ता आसू नहीं बरान दनी, मूर्ति द्रव कर दती है। भीमदेव निस्स देह शीघ्र का मूत अवतार है। वह उस उपवास का नायक भी है पर तु उसके शीघ्र का ही उत्कष दिखाकर मैं तुष्ट हो गया। उसमें प्रान प्ररूप तो मैं उसे मान ही न सका।

सत्य और अहिंसा का तत्त्व

१९१० के अंत में एक छोटी सी किंतु सत्यता नवीन पद्धति पर 'पगध्वनि' नामक नाटिका में राष्ट्रपति राष्ट्र राज द्रप्रसाद की प्ररणा से लिखी थी। मैं मई के अपराह्न में मैंने उनमें मुनामान की आरगाहिय की प्रगति तथा साहित्य के द्वारा भारतीय जन जन को शांतिपुल्ल बनाय रगने के विधि विधानों पर विचार परामश हुआ। मेरा महता था कि भारती भारत का अयप्रस्थित कराने साहित्यकार ही एक मात्र सहायक होगा राजनीतिज्ञ नहीं। राष्ट्रपति में उस भट का मरा उद्देश्य यह उलाहा देना भी था कि व्यापारिक भारतीय गणतन्त्रीय सरकार में साहित्य परिजनों का एक वारणी ही त्याग कर दिया है और यह भारत को पाश्चात्य राजनीति के ध्वस्त माग पर घसीटे लिए जा रही है। सत्ता गीम मित्र की लम्बी बातचीतके बाद हम इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि साहित्यकारों का गाँधीजी के सत्य और अहिंसाके तत्त्वों को अपनी साहित्य भावना में आत्मसात् करना चाहिए। राष्ट्रपति ने मुझे अनुरोध किया कि मैं इस प्रकार के साहित्य की रचना में सक्रिय भाग लूँ और अन्य साहित्य परिजनों को भी प्रेरित करूँ। मैंने यह छोटी सी नाटिका लिखकर उस दिशा में स्वयं ही पहला कदम उठाया।

सब लोग यह बात जानते हैं फिर भी मेरे कटे देता है-- कि मैं तो गांधी जी का भक्त हूँ और न काग्रम का ही आदमी हूँ। गांधी सम्प्रदाय से भी मेरा कुछ वास्ता नहीं है। अतः मेरी यह रचना उन सब नामना और भावनाओं से परे शुद्ध साहित्यिक वस्तु है। गांधी जी को मैं प्यार अग्रश्य करता रहा हूँ। जब तक वे रहे तब तक भी, और उसके बाद अत्रिकाविक। मैं कबल एक बार उनसे मिला और फिर कभी कोई सम्पर्क नहीं रखा। मेरी इस रचना में वह प्यार ही प्यार है। उस प्यार के साथ कुछ आँसू भी हैं, जो प्रिय वियोग से आप ही उमर आते हैं।

डाक्टर राजे द्रप्रसाद राष्ट्रपति तो हैं ही—हमारे साहित्य परिजन भी हैं। साथ ही वे परम साधु हैं। ऐसे कि उन पर दया भी आती है और प्यार भी उमड़ता है। इसी से मैं उनसे मिला। यो मैं इस स्वदेशी सरकार से खुश नहीं हूँ। यह सरकार साहित्यकारों का कोई भला नहीं कर सकती, व्यक्तिगत सम्पर्कों का हम कोई मूल्य नहीं समझते, दिन दिन हम उससे और वह हमसे दूर होती जा रही है। हम इस राज्य में प्रतिष्ठित नागरिक नहीं हैं। प्रतिष्ठित नागरिक सदाचित् वे सदाचार फलाने वाली फिल्म तारिकाएँ हैं, जिनके साथ खड़े होकर राष्ट्रपति पाठो खिचवाते हैं या वे मिनिस्टर, जिनके घर नित्य दिन में रूँद और रात में दिवाली मनाई जाती है और जिन्हें अपने विभागों के सम्बन्ध में कुछ भी ज्ञान और लायित्व नहीं। अथवा वे घूमखोर और चोरबाजारी करने वाले उठाईगीर, जो आप लिन सरकारी दवातों में राष्ट्रपति भवन की शोभा बढ़ाते हैं। हम लोग तो सड़क के एक किनारे खड़े होकर उनकी बड़ी बड़ी मोटरों को आते जाते देखकर अपनी आँखें अन्यत्र मतते हैं यदि पुलिस के धक्के खाने की जोखिम वदास्त कर सकें तो।

इस नाटिका में मैंने सवथा नई पद्धति का प्रयोग किया है। नाटिका ही पुरानी सब परम्पराओं का उल्लंघन किया है। एक अरुम यत्र एक दृश्य है। दृश्यों का परस्पर सम्पर्क नहीं है, नाटिका में कोई प्रधान भी नहीं है। अत्रय भावना का स्याचित्र है। भूमि में केवल प्यार ही पीड़ा है, प्रस्तावना में पूजा है, प्रथम अत्र मैं गांधी दशन, दूसरे में गांधी भावना, तीसरे में गांधी प्रभाव, चौथे में गांधी जीवन और पाँचवें में विराय निराकरण और छठे में गांधी आदर्श है। देश काल का अत्र परम्पर सम्बन्धित नहीं है।

नाटिका में कुछ गहरे तत्व हैं। उनका सम्बन्ध गांधी दशन का है। गांधी दशन, धर्म और राजनीति का दूट सम्बन्ध पर आधारित है। उसका प्रकृत रूप 'सत्य और अहिंसा' है। इसी से मैं गांधी जी की विकास नामना और गय अहिंसा की रूपरत्ना की यहाँ थोड़ी विवेचना करूँगा।

गांधी जी के 'सत्याग्रह' सिद्धांत की आधार शिला पाश्चात्य है। रशियन नृषि टाल्स्टाय ने अपनी पुस्तक में सत्याग्रह कल्पना की एक विस्तृत योजना लिखी थी। गांधी

जी ने उसे ब्याहारिक रूप दिया, कहना चाहिए— राजनीतिक लड़ाई में गांधी जी ने रूस से पहले सत्याग्रह प्रयोग किया। उस प्रयोग में एक सांस्कृतिक तत्व पाश्चात्य था दूसरा भारतीय। पाश्चात्य तत्व 'दश भक्ति' था और भारतीय तत्व 'सत्य अहिंसा'।

पहले हम 'देश भक्ति' की विवेचना करगें। देश भक्ति भारतमें अंग्रेजों के साथ साथ आई। इसमें हम पाश्चात्यों का देवता कह सकते हैं। वैदिक काल में आर्यों के देवता इन्द्र थे, अशोक काल में बुद्ध, शकों के काल में महादेव और गुप्तों के काल में वासुदेव। उसी प्रकार अंग्रेजी राज्य में भारत का सबसे प्रधान देवता हुआ 'देश'। ज्यों ज्यों भारत में सत्ताधन के विद्रोह के बाद अंग्रेजी अमल जमकर बटता गया, यह नया देवता हिंदू समाज के मध्यम वर्ग को सबसे प्रिय होता गया। मुसलमानों ने हिन्दुओं पर अल्लामिया को लादने के लिए बड़े बड़े जोर जुल्म किये—पर तु हिन्दुओं ने उस देवता को राजी खुशी स्वीकार नहीं किया। पर इस पाश्चात्य देव को हिंदू समाज के सब अंग ब्राह्मण, ग्राय, जन गिर्य—आदि सर्वापरी देवता समझते चले गए। कहना चाहता हूँ कि इस देवता पर सत्ताधन के विद्रोह के बाद से अंग्रेजों तक सभ्य युगमें जितनी नर बली दी गई—उतनी शायद ही किसी देवता को जगली युग में दी गई होगी। इसलिए पाश्चात्य संस्कृति परभी यहाँ तो शब्द कहने पड़े जो इस 'देश देवता की ग्राधार शिला है।

मिस्र और बविलोनिया में हजारों वर्षों के पुराने साम्राज्यों का जब नाश हो गया तब ग्रीक लोगों का उदय हुआ। मगार के इतिहास में उ होने ही सबसे प्रथम यह सिद्ध कर दिया गया कि साम्राज्य जनता राजा की सहायताके बिना भी राज्य कर सकती है। यद्यपि उनमें गुलामी की प्रथा थी, पर तु मध्यम श्रेणी के सामान्य जनो को अपना नेता चुनने का उपाय अधिकार दिया। बुद्ध काल में भारत में भी मल्ल शाक्य वंशी आदि गणतंत्र थे, पर तु उसमें मध्यम वर्ग के लोगों को राज्य शासनके अधिकार नहीं थे। एक अथवा अनेक गांधी के सर्वाधिकारी जमींदार—जो राजा कहाते थे—एकत्रित होकर अपने में सत्ता थी का महाराज चुनते और उसके अनुरोध से राज्य चलाते थे। पर ग्रीक में सब मध्यम वर्गीय नागरिकों को अपना नेता चुनने का अधिकार था। प्राचीन ग्रीक किस प्रकार जनतंत्र का सत्ताधन करते थे, इस पर प्लेटो की प्रसिद्ध पुस्तक रिपब्लिक में बहुत कुछ प्रकाश पाना गया।

ग्रीक लोग फल प्रजातंत्रों राज्यों की स्थापना में अग्रसर न थे। क्ला-कौशल और शोय तथा दश। पर विज्ञान में भी उनकी गति सार की सब जातियों से बड़ी चढ़ी थी। कुछ काल बाद उनके अस्त होने पर रोमन लोगों का उदय हुआ। पर वे ग्रीकों के समान बुद्धिमान न थे। ग्रीकों को उन्होंने पकड़कर दास बनाया, पर ये दास ही उनके गुरु बन गए। रोमन लोगों ने कला, कौशल, साहित्य आदि जो कुछ सीखा—उन्हीं ग्रीक दासों से। रोमन लोगों ने भूमध्य सागर पर प्रभुत्व

स्थापन करनेके लिए बड़े बड़े युद्ध किए और उनके राज्याता बना विस्तार हुआ। यद्यपि रोम में प्रजातंत्र पण्डली अवस्थ थी, पर बाहरके देशों पर उनका निरंकुश शासन था। इस निरंकुश शाही का ही यह परिणाम हुआ कि रोम ही में साम्राज्यशाही की स्थापना हो गई।

रोमन साम्राज्य नष्ट होने पर ईसा ५०० तक का उत्पन्न हुआ, पर रोमन साम्राज्य का प्रभाव यूरोप पर बना ही रहा। रोमन साम्राज्य का नेता पाप बन गया, और उस मध्य युगमें पाप की तूती बोलती रही। इसी समय मंगोलों ने और फिर तुर्कों ने यूरोप को रौदना प्रारम्भ किया। यहाँ तक कि सोलहवीं शताब्दी के प्रारम्भ में तो ऐसा प्रतीत होने लगा कि जैसे मारा यूरोप ही मुसलमान बन जायगा। परन्तु यूरोप में तब तक अनेक सम्पन्न नगर बस चुके थे, और उनके व्यापार प्रवृत्त हुए थे, उन्हीं से यूरोप का भीतरी सुधार होता चला गया। क्रुस्तुनतुनियाँ उन दिनों यूरोप के व्यापार का मध्यमाग था। पर अभी तक उन्हें चीन और भारत का कुछ ज्ञान न था। धीरे धीरे पोर्तुगीज, डच लोगों की साहसिक यात्राया तथा युद्धों ने उन्हें भारत, चीन और अमेरिका से परिचित कराया। इन जातियों के प्रादुर्भाव में फ्रान्स और अंग्रेज प्राण और काफी संघर्ष के बाद—प्लासी के युद्ध करने पर भारत में उनकी जड़ जम गई। यह ई० स० १७५७ की बात है। आज इस राज्य का और इन उभय राज्य का पक्ष लेकर उठने वाले भारतवर्ष पर अधिकार जमा लिया। पर, देशी राज्यों को वह अधिकार में न ले सकें। यदि अंग्रेज उन देशी राज्यों को भी तब अपने अधिकार में ले लेते तो भारत का बहुत भला होता परन्तु राजा डलहौजी के जमाने में लोग यही समझते थे कि देशी राज्य हिन्दुस्तान की सरकृति हैं। इसी कारण सन् १८५८ में भारतीय सैनिक इन अधमरे राजाओं के राज्याधिकार के लिए लड़ पड़े। उसका फल यह हुआ कि अंग्रेजों ने इन मुर्दार राजाओं को उसी अधमरी अवस्थामें प्रणालय किया, और सन् १८५८ में रानी विक्टोरिया की घोषणा के बाद यत्र राजा का भी प्रितिया शासन की, गाड़ी में जोत दिए गए। इनकी स्थिति एसी रही कि तब अपनी प्रजा पर ता मनमानी स्वेच्छा चारिता कर सकते थे, पर अंग्रेजों के विरुद्ध जरा भी मिर उठाने पर उन्हें कुचन दिया जाता था, और उनकी छाती पर रजिस्ट्रेशन का मूगल उस नाम के लिए सदैव तयार रहता था।

विचारने की बात यह है कि पोर्तुगीज, डच, फ्रान्स और अंग्रेज इन चार यूरोपीय जातियों ने भारत पर अधिकार जमाने का यत्न किया, पर प्रियी अंग्रेज ही हुए। इसका कारण वह औद्योगिक क्रांति थी, जो पंद्रहवीं शताब्दी में मभी यूरोपीयन देशों में आरम्भ हो गई थी और अंग्रेज उसमें सबसे बढ गए थे। इंग्लैंड की सरकारी और मध्यम वर्ग के लोगों ने इससे बहुत पहले ही राजा पर अपने अधिकार 'माग्ना कर्टा'

द्वारा प्राप्त कर लिए थे। सत्रहवीं शताब्दी में जब राजा चाल्स ने इन अधिकारों में हस्तक्षेप करना चाहा तो अंग्रेजों ने अपने उस राजा का सिर काट लिया। इसके बाद इंग्लण्ड के राजा के अधिकार कम ही माने गए, पर चतुर अंग्रेजों को प्रजातंत्र की स्थापना समुचित प्रतीत न हुई, उह विजित प्रदेशों और उपनिवेशों पर स्वेच्छाधिकारी शासन के लिए एक राजा की आवश्यकता थी। विना राज सस्था के वे भारत पर भी अपना अध्याय शासन लागू नहीं कर सकते थे। जब कभी पार्लियामेण्ट गलती करती, भूट उससे बच निकलने के लिए राजा से राज का काम लिया जाता था। लाड कजन ने जब हिन्दुओं का मन्दिर बहाने के लिए बग भंग किया तो सारे ही भारत में आग लग गई। अंग्रेजों ने दमन करने का आस न देगा—यूराप में युद्धाग्नि सुलग रही थी, और युद्ध आरम्भ होने के पहले ही भारत के शोभ को दूर करना श्रेयस्कर था इसलिए जाज पत्रम का भारत भेजकर बग भंग रद्द करा दिया। राजा का यह अच्छे से अच्छा दूटनीति उपयोग था।

पुतगान और स्पेन पोप के फट में फसे रहते समाप्त बन गए हालण्ड बहुत छोटा सा देश था, फारस में राज सत्ता के विपरीत रक्त क्रांति हो गई, इन सब संयोगों से भारत में पर फटाने के लिए अंग्रेजों का बहुत अवसर मिला गए और प्रगति की दौड़ में अंग्रेज यूरोप के सब देशों से आगे बढ़ गए।

पाश्चात्य सभ्यता में हमारा सम्बन्ध अंग्रेजों ही के द्वारा हुआ। इंग्लण्ड में मध्यम वर्ग ने व्यापार पर अधिकार के सरकारी सत्ता पर अपना प्रभुत्व जमा लिया था। हमारे राजा गेयाश और घमण्णी थे, सामान्य बात पर लड पडते थे, परन्तु अंग्रेजों को युद्ध नहीं, व्यापार चाहिए था, युद्ध करना भी पता तो व्यापार के लिए। अभिमान तो उह था ही नहीं। मगान के दरबारों तथा पेशवाओं के यहाँ उनका मजाक उड़ाया गया अपमान भी किया गया पर वे पीठे नहीं हटे। सबसे बड़ी बात यह है कि व्यापार के कारण उनका हाथ तबों तक न रटा, पसा हमेशा उनके हाथों खेलता रहा। इससे वे सेना का प्रतापता समय पर लेने रते, जानि राजा महाराजाओं की सेनाओं के वेतन अभी समय पर मिलता ही था। उगीमें उनकी सेना ज्ययस्थित रही, और सदा वे जीतते ही गए।

जब अंग्रेजों के द्वारा पाश्चात्य सभ्यता की लहरे भारत में काबुल तक जा टक-राह ता भारत की वेदा राजतानि ही नहीं—धार्मिक और सामाजिक स्थिति पर भी भारी क्रांतिकारी प्रभाव पडा। उन स्वतंत्रतावादी राजाओं और नवाबों के कान में लोगों को अंग्रेजों की राजतानि बहुत भा गई, और आदान वृद्ध कहने लगे कि अंग्रेजों राज्य बहुत आशा है। पर उगरे माय ही बाददिल अपना काम करने लगी। लोग धमणरिवतन करने लगे। सासकर दलित हरिजन।

दूसरी समय राजा राममाहन राय । गान्धिवर ना ता गती, पर उमकी गोशरी सत्ता को आत्मसात् किया । यह मुस्लिम धर्म । अनुष्ठा भी ग । - ता उमक लिए उपनिषद् का सहारा लिया और ब्रह्म समाज की स्थापना की । - ता जाति भेद को बहिष्कृत किया । इसका अर्थ न त्रिरोप प्रवर्ध किया पर तु शिथिल बनने इस धर्म को अपनाया । पर तु अग्रजो भाषा क द्वारा अग्रजो अतिथाम के अ यवन करने से ब्रह्म समाज की गति रुक गई । अग्रजो ग माथे के पागल ग भारत म अग्रजी शिक्षा का प्रारम्भ किया और नौकरी की आशा ग उच्चरग क हिन्दू अग्रजी सीखने लगे । अग्रजो ने इस बात का कोई प्रतिबन्ध नहीं रखा था कि ईसायतन विना नौकरी न दी जायगी । फलत अग्रजी पढ पठकर उच्चरग हिन्दू ही अग्रजो के नौकर बनकर अग्रजी राज्य की जड जमाते मे उडे कारगर प्रमाणित हुए । - ता द्वारा माह्य लोगो को भारतीय धर्म म कहा क्या हो रहा है यद् गत्र मानूस टा गया । चर्चि सरकारी नौकरियों मे ब्राह्मण धर्म का उपयोग न हुआ तथा उगम ब्राह्मण ग लिए गान् स्थान ही न था, इपसे ब्राह्मण धर्म का समान नहीं मिला उसकी प्रगति रुक गई । अथल विनायत गण लोग जि हे ब्राह्मण जाति बहिष्कृत कर देने म, ब्राह्मण अगीकार कर गते थे ।

अग्रजी सीखने पर हिन्दुओं को यह पता लगा कि अग्रजो के उत्थाप का मूल कारण उनकी गान्धिल या ईसाई धर्म नहीं है देश भक्ति है । अग्रज अपने देश के लिए घटी से उड़ी हानि उठा सकता है, पर हिन्दू नहीं । हिन्दू अर्थि मे प्रथिम अपने धर्म के लिए कष्ट सह सकता था । देश की रक्षणा तो उठ थी ही नहीं । उमीमे उठोते मुसलमानो को देश विजय कर लेन दिया, पर धर्म के लिए मरते मरते गते । अथ अग्रजी भावना से श्रोत श्रोत शिथिल हिन्दू धर्म म देश भक्ति का भाव उचित हुआ और उमै यह धारणा उदित हुई कि हिन्दू धर्म अशाभिमान जाग्रत किया जाय तथा देश की एकता के लिए एक धर्म और एक भाषा की भी आवश्यकता ग उठो । अनुष्ठा किया । इस काय मे सबसे बठकर ऊँची आराज उठाई गामी दयानन्द और उनके द्वारा स्थापित आर्यसमाज ने । उत्तर भारत मे एग प्रबल शक्ति का स्वाग प्राप्त कर दिया-जिसमे एक वैदिक धर्म जो सब हिन्दुओं मे समर्पित था, एक आर्य भाषा गौर एग अनीयता की भावना मूलबद्ध थी । सारा देश सामूहिक रूप मे त्याग दनी आराज मे जाग उठा ।

इसके बाद ही दक्षिण मे लोकमान्य तिलक ने गान्धी गत्र गौर गगेश उदगवो की नीव डाली । शिवाजी मराठा राज्य संस्थापक थे और गगेश पेशवाओं के दत्रता । दोनो ही महाराष्ट्र मे बहुत लोकप्रिय थे । उसीलिए दोनो ही को गगेश गान्धिवर हिन्दुओं मे देश भक्ति और राष्ट्रभिमान जाग्रत करने की युक्ति लोकमान्य तिलक ने स्वाज निकाली । इसका अच्छा फल हुआ ।

गान्धी जी ने अपना काय भारत मे नहीं, दक्षिण अफ्रीका मे प्रारम्भ किया । वे

एक मुसलमान व्यापारी के मुहल्ले की परधी करने को उठा गए और वही बकालत करने लगे। उहा अपने देश भाउया के साथ सत्याचार होने देखकर उमका प्रतिकार करने का सत्याग्रह का प्रयोग करने लगे। दक्षिण अफ्रीका में नीग्रो लोग उहुत थे पर वे बुद्धिमान नहीं थे उगणित व गागा का काम अचरी तरह नहीं करते थे। इससे अग्रोजो ने भारत में बहत से मन्दूर कुली निचित आग्रि तरु नोकरी करने की पतिज्ञा पर भरती गिण। अग्रि मगात होने पर भी वे गोग पनी बमकर छोटा मोटा व्यवसाय करने लगे। उनम में कुट्ट ममद्व भी हो गए। इन सबके प्रति वहा के गोर अधिकारिया का बडा भारी पतपात था। गागी जी न उहा उहुत कुड किया। पीछे महायुद्ध आरम्भ होने पर उह भारत गोट ग्राण गोर स्त्रराज्य के लिए मसूचे भारत में सत्याग्रह करने का आयोजन करने लगे। परतु उनका माग म बनी कठिनाउया थी। जिनम सबसे बडी कठिनाउ हि दू मुसलमानो की फूट थी। परतु सन् १९१६ में लखनऊ में कौंसिल के स्थानो के सम्मेलन म हि दू मुसलमानो म समझौता हो गया, उवर योरपीय महायुद्ध की समाप्ति पर तुर्की के समथन म भारतीय मुसलमानो ने गिताफत आंदोलन प्रारम्भ कर लिया। उमी समय अग्रजो ने रौनट एक्ट पाम करवे भारत के नरमदली नेताग्री का नाराज कर लिया। उन सब परिस्थितिया से लाभ उठाकर गाधी जी ने सत्याग्रह का भारत में श्रीगणेश किया। उमी समय पजाब में नारर द्वारा अमृतसर का हत्या काण्ड हुआ तथा पनी माशन का द्वारा तमन किया गया। अत्र पजाब का माशल ला और हत्याकण्ड, गिताफत आंदोलन, रौनट एक्ट का विरोध, ये सब कारण एकत्र होने से गाधी जी का सत्याग्रह सहमा तीव्र हो उठा। समार की आग उत्र जा लगी, अंग्रज भी घबरा गए। पर उमी समय चौरा चौरी काण्ड हो गया और गागीजी ने सत्याग्रह स्थगित कर लिया - अग्रजा का मरट मन गया, उ होने अवसर पाकर गाधी जी को जेल म भेज लिया।

दा त्रप त्रर त्रब गाधी जी त्रहर गाण ता उ होन रानी, राष्ट्रीय शिवा प्रचार, हि दू मुस्लिम एक्ता और अस्पश्य ता निवारण उन चार त्रिगणक कार्या का भारत में प्रसार किया।

१९२६ म श्री जहादराता नरु व त्रग्रम के अ यन की कुर्मा में काग्रस का येय पूण सत त्रता घापित किया। त्रंगम अधिपेशन समाप्त होने पर गाधी जी ने ११ शत त्रानगराय त्र गम त्र पग री, तथा माच में त्रमम सत्याग्र उेट दिया। एक महीने ही म उ ह पतर तर यत्ररा जन में ठग दिया गया। परतु सत्याग्रह का वेग कम नहीं हुआ। तादशराय का माशन का स्थगित करना पना और अतन गाधीजी के साथ त्रिराम गन्नि करनी पडी। सधि त्रानात्राप के त्रिण गागीजी दग्लैण्ड गए। वहा उनका अपूत्र रत्रागत हुआ। त्रदशाह ने भी उनसे भट की। परतु सघष ब्रतता ही

इसी समय राजा रागमोहन राय ने प्रायश्चित्त का नाश करने पर अमरी एवेश्वरी सत्ता को आत्ममात् किया। यह मुस्लिम राजा गनुहुत भाग। उतान मरु लिए उपनिषद् का सहारा लिया और ब्रह्म समाज को रखापायी। उता जाति भद्र को बहिष्कृत किया। इसका पणित मण्टली न प्रियं प्रवर्ण्य किया पर तु जिनित वग ने इस वम को अपनाया। पर तु अग्रजी भाषा द्वारा यत्र ती त्रिहाय न अ ययन करने से ब्रह्म समाज की पगति रुत गी। अग्रजो न गगाने न पणय म भारत म अग्रजी शिक्षा का प्रारम्भ किया और नोकरी की आगा म उच्चयग न हि दू अग्रजी सीखने लगे। अग्रजो ने इस बात का कोई प्रतिबन्ध नहीं रखा था कि ईसागत न प्रिना नौकरी न दी जायगी। फलत अग्रजी पढ पढकर उच्चयगी हि दू ही अग्रजा क नौकर बनकर अग्रजी राज्य की जड जमाने म बडे कारगर प्रमाणित हुए। उते द्वारा साहय लोगो को भारतीय घरा मे कटा वया तो गटा है यह गव मायुम हो गया। चर्च मरकारी नोकरीयो मे ब्राह्मणम का उपयोग न हुआ तथा उगम ग्राह्या। गिए नार् रमान ही न था, इससे ग्राह्य वम को समान नही मिया, उसकी प्रगति रुत ग। नैयन विलायत गए लोग जि हे ब्राह्मण जाति बहिष्कृत कर देते थे, गइयम अगीकार करते थे।

अग्रजी सीखने पर हि दुआ हो यह पता लगा कि अग्रजा ने उरण क मूल कारण उनकी वाइविल या ईसाईयम नही है, नेश भक्ति है। अग्रज अपने देग ने निए बडी से बडी हानि उठा सकता है, पर हि दू नही। हि दू अग्रज से प्रिय अपने म के लिए कष्ट सह सकता था। देश की कल्पना तो उत थी ही नी। उमीमे उहोने मम लमानो को देश विजय कर देने दिया, पर म ने गिए नतो मरने रह। अग्र अग्रजी भावना से श्रोत प्रोत शित्त हि दू यग म नेश भक्ति का भाय उगिन हुआ और उनमे यह धारणा उदित हुई कि हिन्दुओ म देगाभिमान जाग्रत किया जाय तथा त्य की एकता के लिए एक धम और एक भाषा की भी आगगता गग तो अनुभव किया। इस काय मे सबमे बटकर ऊँची आरात्र उठाई गामी रयाग और उते द्वारा स्थापित आयसमाज ने। उत्तर भारत मे एक प्रयन शक्ति का श्रो प्रगित कर दिया-जिसमे एक बधिक म जो सब हि दुओ से समापत था, एक आय भाषा और एक रक्षीयता की भावना मूलबद्ध थी। सारा देश सामूहिक रूप मे दयान नता गगाज मे जाग उठा।

इसके बाद ही दक्षिण मे लोकमान्य तिलक ने गिमा ती म गम और गगेश उत्गवो की नीव डाली। शिवाजी मराठा राज्य मस्थापक थे और गगेश पेशवाओ क दयता। दोनो ही महाराष्ट्र मे बहुत लोकप्रिय थे। इसीलिए दोना ही को आगे ताकर हि दुओ मे देश भक्ति और राष्ट्रभिमान जाग्रत करने की युक्ति लोकमान्य तिलक ने योज निकाली। इसका अच्छा फल हुआ।

गांधी जी ने अपना काय भारत मे नही, दक्षिण अफ्रीका मे प्रारम्भ किया। वे

एक मुसलमान व्यापारी के मुकद्दम की पैरवी करने को उठा गए और वही बकालत करने लगे। उहा अपने देश भाइया के साथ सत्याचार होने देखकर उसका प्रतिकार करने को सत्याग्रह के प्रयाग करने लगे। दक्षिण अफ्रीका में नीग्रो लोग उहुत थे पर वे बुद्धिमान नहीं थे इसलिए वे गोगा का काम अच्छी तरह नहीं करते थे। इससे अंग्रेजों ने भारत में उहुत से सत्तूर कुली निश्चित आग्रि तक नोकरी करने की प्रतिज्ञा पर भरती रिया। अग्रि गगात होने पर भी वे लोग नहीं बसकर छोटा मोटा व्यवसाय करने लगे। उनमें से कुछ समृद्ध भी हो गए। इन सबके पति वहा के गों-अधिकारियों का बड़ा भारी पक्षपात था। गांधी जी ने उहा उहुत कुछ किया। पीछे महायुद्ध आरम्भ होने पर वह भारत चोट आए और स्वराज्य के लिए समूचे भारत में सत्याग्रह करने का आयोजन करने लगे। पर तु उनके माग में बनी कठिनाइया थी। जिनमें सबसे बड़ी कठिनाई हिंदू मुसलमानों की फूट थी। पर तु सन् १९१६ में लखनऊ में कोसिन के स्थानों में सम्मेलन में हिंदू मुसलमानों में समझौता हो गया, उधर योरपीय महायुद्ध की समाप्ति पर तुर्की के समर्थन में भारतीय मुसलमानों ने रिलाफ्त आंदोलन प्रारम्भ कर दिया। उसी समय अंग्रेजों ने गौरव प्राप्त पाम करके भारत के नरमदली नेताओं को नाराज कर दिया। उन सत्र परिस्थितियों से लाभ उठाकर गांधी जी ने सत्याग्रह का भारत में श्रीगणेश किया। उसी समय पंजाब में डाक्टर द्वारा समृतसर का हत्याकाण्ड हुआ तथा उहाँ माग में ता द्वारा दमन किया गया। अत्र पंजाब का माशाल ला और हत्याकाण्ड, रिलाफ्त आंदोलन, गैलट एक्ट का विरोध, ये सब कारण एकत्र होने से गांधी जी का सत्याग्रह समाप्त हो उठा। समार की आख उधर जा लगी, अंग्रेज भी घबरा गए। पर उसी समय चौरा चौरी काण्ड हो गया और गांधीजी ने सत्याग्रह स्थगित कर दिया। अंग्रेजों का सत्तूर रन गया, उ होत अंगर पाकर गांधी जी को जेल में भेज दिया।

उा उत्र माद जब गांधी जी राहर आए ता उ हान रानी, राष्ट्रीय शिक्षा प्रचार, हिंदू मुस्लिम एकता और अस्पृश्यता निवारण उा चार दिनांक कार्या का भारत में प्रसार किया।

१९२८ में श्री जहातराना टाकू का राग्रस के अग्रणी की कुर्मी से काग्रस का व्यय पूरा रानत बना धापित किया। राग्रस अग्रिपान समाप्त होने पर गांधी जी ने ११ अर्ने राग्रसय के समार पग की, तथा माच में समार सत्याग्रह उेड दिया। एक महीने ही में उा पार रर गरया जन में ठग दिया गया। परतु सत्याग्रह का वेग कम नहीं हुआ। राग्रसय को माशाल ला स्थगित करना पना और अतत गांधीजी के साथ विराम रगि करनी पनी। सार ता माग के लिए गांधीजी इंग्लैण्ड गए। वहा उनका अपूत्र स्वागत हुआ। रादशाह ने भी उनसे भट की। परतु सघष बरता ही

गया, मिटा नहीं।

मेने कहा कि पाश्चात्य देशों का यह युग भ्रमरगणों का युग है। 'देश' माना गया। गत महायुद्ध में जर्मन वैशोलिखों ने अपना और फ्रांसियों का रक्त इसी देवता को अर्पण किया था, अभी जर्मनी गारा देता है कि वह अमेरिका के जर्मन प्रवासियों ने जर्मनी में रहने वाले अपने भाइयों की निम्नश्रीत किया की। इस देश पूजन के सामने किसी का सम पैर चला, न ही जाये। देशाभिमान के लक्ष्य में मस्त होकर पाश्चात्य राष्ट्रां ने इस सभ्य युग में खूब ही नर बलि दी, दिन खोकर नर-रक्त में स्नान किया। यह 'देश' नाम का नया देवता हमारे युग अग्रजों के साथ आया और मध्यमवर्गीय हिंदुओं में उसका प्रचार राजा राममोहन राय, स्वामी दयानंद तथा भारते दुःहरिश्चंद्र ने किया। प्रथम ही 'देश' माना 'देश' उसका मूल मंत्र बन गया। प्रारम्भ में मुसलमानों में उसका ने इस देवता के गीत गाए पर मुसलमानों में वह भावना जड़ न जमा सकी। मुसलमानों ने भारत का देश देवता नहीं माना, वह उनका 'अधिदैवत' नहीं बना, न उनमें देशाभिमान जाग्रत हुआ। वे उसे अपने बाप दादा की विजित सम्पत्ति समझते रहे। जहाँ हिन्दु भारत को 'मातृभूमि' समझ कर उसकी पूजा करते रहे थे, वहाँ मुसलमान उसे अपनी पतल की हड्डी 'भोग्या लौडी' समझ रहे थे। इसी ने पहले गिनाफत, फिर पाकिस्तान के विभाजन और विभाजन ने ऐतिहासिक रक्तपात को जन्म दिया।

यूरोप के राष्ट्र वाङ्मय के देश का महत्त्व अभी तक समझने में, जहाँ तक वह, इस 'देश' नामक देवता का नाम नहीं। अभी प्रचार हिन्दुओं में भी उरी भावना जमी—पर मुसलमानों में उसका बीज अङ्गुलि तो होगा पर पल्लवित नहीं हुआ। हिंदू नेताओं ने हिंदुओं को पाश्चात्या जमा देशाभिमान से उतारने के लिए प्रथम धार्मिक पथों और गणपति उत्सव जैसे उत्सवों का माग किया और अंत में सम्पूर्ण देश के हिन्दुओं में यह भावना फल गई कि पहले हम अच्छे थे पर अंग्रेजी शासन से हम गिर गए हैं—इसी से उतरे उत्कृष्ट देशाभिमान जाग उठा।

मुसलमान शताब्दियाँ से उस देश में रहते आए थे, पर उनका ध्यान मक्का की ओर रहा और इधर तो वे सम्पूर्ण मुस्लिम राज्यों में मगठन का ही स्वर देना लगे। यद्यपि उनके मन में यह बात थी कि उनमें गतिरियाँ हुई हैं, उगी से उनका राज्याधिकार चला गया है और अंग्रेजी राज्य में जहाँ हिंदुओं में देश भक्ति के कारण देश के प्रति बलिदान की भावना का उदय हुआ वहाँ मुसलमानों के मन में अपना राज्य फिर से प्राप्त करने के हौसले जागने लगे। उनका खयाल था कि अफगानिस्तान, पश्चिम तुर्की, अरब आदि मुस्लिम देशों के मुसलमानों में एकता हो जायगी और बगाल से कुस्तुनतुनिया तक मुसलमानों का एकत्र राज्य हो जायगा। इसी भावना से उ होने

प्रथम सिव प्रान्त को प्रयत्न करने की भाग्य की, फिर बगाल और पंजाब में बहुमत प्राप्त करने की, और इस प्रकार देश हित में सम्भव में हिन्दुओं के वे सभी साथी न रहे—प्रतिद्वन्द्वी हो गए और उन्होंने आग्रहपूर्वक उसी प्रकार भारत का बटवारा भी करवाया—जैसे वे भारी अन्न के पिता की सम्पत्ति का बटवारा कर लेते हैं। दश भक्ति, देशाभिमान, दश शक्ति, की उल्लेख तन्त्र भी चिन्ता न की।

परन्तु मुसलमानों के इस प्रयत्न का जब हिन्दुओं को पता चला तो वे निष्क्रिय न बैठे। महामना मालवीय ने नायदे आज़म जिता का तुर्की बतुर्की जवाब दिया। उन्होंने बौद्ध धर्म के प्रति समादर प्रकट करके तथा बौद्ध मस्जिदों को हिन्दू संस्कृति में सम्मिलित करने का प्रयत्न भारत की बुद्ध की प्रतिष्ठा भूमि कहकर बर्मा, चीन, स्याम, जापान प्रादि देशों को बौद्धों की महानुभूति तथा गात्मीयता प्राप्त करने के उद्योग किए। परन्तु मुसलमानों ही का भाति हिन्दुओं को यह प्रयत्न भी 'देश भक्ति' के लिए घातक था। हिन्दू मुसलमान दोनों की चेष्टाएँ 'देशाभिमान' की विरोधिनी थी, यदि हिन्दू मुसलमान दोनों में पारस्परिक असादरता भारत में जाग्रत हो पाती तो भारत में हिन्दू मुसलमान एक होकर एक और तो हिन्दुस्तान के चारों ओर बिखरे हुए बौद्ध देशों तथा मुस्लिम देशों को कुचल डालते और साथ ही दूसरी ओर भारत को स्वतंत्रता के काल में हिन्दू मुसलमानों ने जा परस्पर रक्त बहाया वह न बहाकर उल्लेख करने वाले अग्रजों का रक्त बहता और तब अर्थात् एक भी अग्रज बच्चा जीवित स्वदेश न लायता। परन्तु पड़ोसी देशों के सीमांत से तथा अग्रजों के पुण्य प्रताप से वसी देश भक्ति का स्थापना हिन्दू मुसलमानों में फलीभूत न हुई और अग्रज हिन्दू मुसलमानों को अपने ही रक्त में स्नान करता छोड़कर फूलों और प्रशसाओं से लदे फदे सुख चला गया। सन्तान अपने घर लौट गए।

परन्तु गांधी जी ने पारस्परिकता के इस दंष्ट्रा के आगे सिर नहीं झुकाया। उन्होंने 'देश भक्ति' को, जिसे हिन्दू अग्रजों पर चूफे, तथा साम्प्रदायिकता को, जिस पर मुसलमान बटने मरने को तैयार थे—उपेक्षा भाव से देखा। वे अपना नया देवता लेकर आगे आए। यह देवता था 'मनुष्य'। उन्होंने 'मनुष्य पूजन' की परिपाटी चलाई। उनकी पूजन पद्धति थी 'साधना'। प्रथम जीवन के अन्तिम क्षण तक अपने इसी नवीन देवता की अर्पित पूजा करने रहे, उन्हें छोड़े जायत में एक भी साथी न मिला और वे इस देवता की पूजा करने में मर मिटे। वे अलकापुरमके राष्ट्रपतियों ने उनके कुछ आदर्शों को आशिक रूप में अपनाकर अपनी महानुभूति प्राप्त की।

आज भी गांधी जी का यह देवता 'मनुष्य' बिना पूजन पन्ना है। आज भी गांधी के स्थापना पर जो प्रत्येक अग्रज प्रकृत उस नए देवता की पूजा नहीं कर रहा। पाकिस्तान बन जाने का बाद भारत में मुसलमान अतिथि की भाँति भारत में रह रहे हैं

और कांग्रेस के राष्ट्रवादी राष्ट्र की रास्ता में फँस रहे हैं। राष्ट्रियता ही माता उनका बड़ा गक कर रही है, गांधीवादी जन प्रभु ही माता का पिता हैं। उनमें अन्तर्गत प्रयत्न भर है, जीवन नहीं। पर तु गांधी के उस 'व्रता' मनुष्य का पूजा नहीं किया, यदि वह मसार की जातियों का अविद्वत् नहीं बना ता सगारही खारिया नहीं। याराप न वही गलत राजनीति भारत में अपना है, इसमें गान चलने का राह नहीं है।

भारतीय राजनीतिक क्रांति का रुम ही क्रांति स अन्त गहरा गम्भ है। सन् १९०५ के पूव रूस के आतकवादिया न वम प्रयाग नियम आर पुत समितिवा की स्थापना की थी। इसी की प्रति वर्ति बग भग के समय वगातम रूस, जिगना शिलसिला बहुत आगे तक चला। सन् १९०१ में जपान रूस जापान युद्धके पारग रूस में प्रार अकाल पडा तो बोलशेविको ने अपनी आवाज उठी थी। रूस में अन्तर्गत वरार गइ, पर जारशाही ने पराकाष्ठा का दमन करके बालशेविको का कुचल पाता की चप्टा की। अत में जारशाही का सन् १९१७ में अत हुआ, और करेनस्की रूसी प्रजातंत्र का नेता बना। उसने अमेरिका से इस शत पर ऋण लिया कि यह युद्ध स न हटेगा। उन दिनो विश्व युद्ध में अमेरिका जमनो के विरुद्ध मित्रराष्ट्रा व गाय न रहा था, पर रूसी नडाइ से ऊब गए थे, उ होने अपनी व द्क रस दी और न गपन अपन खत जाता वर गय। करेनस्की को अपनी वक्तृत्व शक्ति क वर नरार जारी रखना असम्भर हा गया, इस अवसर स लाभ उठाकर लेनिन आग आया। उगत तीन तार पुनर्द नियम - 'मिल मजदूरो की, जमीन किसाना की, और लच्छा ब द'। य तार जनता का भा गण, और बिना अविक्त रक्त पात के रूस पर आतशत्रिता का अविहार हा गया। भिन्न राष्ट्रो पर यह भारी सकट था। वे डरने लगे कि वही यह बोलशेविक का भा गण पूजावाद को न ग्रस ले। उ होने इस नए पथ को कुचलन के प्रत्येक प्रयत्न निग जा अब तक जारी है, और वे घोर नशस रूप धारण कर चुके हैं। आगे व कम धारणम लगे यह नहीं कहा जा सकता।

रूस की इस महा क्रांति का प्रभाव सार गभार पर पाा, भारत भी उससे अड्डता न रहा। पूजीवादी राष्ट्रा न हिटार, मुसालिना और गणना जप जगो का आगे बढने का अवसर दिया, भारत में अग्नेजा रूस की उग ता। क्रांति की गाय न पडने देने के बडे बडे प्रयत्न किए, पर तु भारत का मध्यमग स्वतंत्र हात न निग सब कुड कर गुजरने को तत्पर हा गया, और भारी स भारी निगार के बावजूद उसके मन में शक्तिमान बोलशेविक माग से बलकर सार मजदूर गण का स्वतंत्र वर्गन की भावना जड पकडती गई।

यहा जापानी चमत्कार को हम नहीं भूल सारत। जिस सरदारी सत्ता से निकल कर मध्यमवर्गीय सत्ता स्थापित करने में इंग्लंड, फ्रान्स और जमनी का सैकडो वर्ष लग

गए, वही काम जापान ने फेरत तीस वष में कर डाला। सन् १८५३ तक जापान का अर्थ राष्ट्र में कोई सम्प्रदाय ही न था, पहले एक उच्च कम्पनी का यत्किंचित व्यापार सम्बन्ध जुग फिर अमेरिका ने चार युद्धों में एक मरिचकी, उसके बाद ब्रिटेन, फ्रेंच, डच तथा अमेरिकन राष्ट्रों ने जापान की अप्रतिष्ठा करने में कोई कसर न उठा रखी, परंतु सन् १८६६ में जापान का तरुण मण्डल जाग उठा, उ होने योरोप और अमेरिका जाकर—शिल्प प्रागिज्य और युद्ध हला का अध्ययन किया, और केवल तीस साल में ही महान चीन का परास्त करने फारसूसा और कोरिया को अविभक्त कर लिया।

भारत में गांधीजी के नेतृत्व में जब एक लाख आदमी जेल गए, जो अविनाश शक्त में गमवर्गीय तरुण थे, तो उन्हें उस पाश्चात्य साहित्य और रूस तथा जापान की क्रांति में सम्बन्धित साहित्य को अध्ययन करने तथा उस पर मनन करने एवं रोषा वेशित हो उनका प्रयाग अग्रजी राज्य पर करने की भावना को अकुरित करने का बहुत सुयोग मिला। और उन्होंने सन् १९२८ ही में समाजवादी दल की स्थापना कर ली। पाश्चात्य मस्तिष्क के महयोग में जो दशाभिमान उनमें जाग्रत हुआ उसने उनकी अन्तः आत्मा तब में प्रागिज्य तथा अदिन मस्तिष्क का एक प्रकारसे लोप कर दिया। वे स्वीकार करने लगे कि देवता के लिये वे किसी भी सम्प्रदाय या देवता की आन नहीं मानते। परंतु मुसलमानी अभिमान दशाभिमान का सबसे बड़ा दुश्मन था, दूसरा काटा राष्ट्रीयता का था, जिसमें सत्त्व ऊपर सार अमजीवी मजदूर वर्ग का सामूहिक सगठन करना चाहते लगे और अंगी मजदूर वर्ग के आंदोलन पर भारतीय स्वतंत्रता की इमारत खड़ी करना ही श्रेष्ठ तरत रह। उनका यह अमजीवी वर्ग दशाभिमान को भी पार कर गया और गांधीजी के अन्त में 'मनुष्य' का स्पर्श कर गया, पर गांधीजी के सम्पूर्ण मनुष्य का अन्त में उसी अचरगतता मात्र को।

इस प्रकार प्रागिज्य और समाजवाद ने मिनकर भारत के हिंदू समाज को पौराणिक मरुर्द्धा का तथागुण से आंतर स्वीकृत किया।

परंतु गांधीजी ने अमजीवी वर्ग का नाम न लिये देवता की प्रतिष्ठा अपने मातृस में ही, समाजवाद का भारत में आना था या गया, न योरोप का, न अमेरिका का, न रूस का। अमजीवी वर्ग पर आना अमजीवी वर्ग को सम्पन्न कर रहा है। योरोप और अमेरिका में जो समाजवाद का स्पर्श म पड़े है, और भारत कुछ राष्ट्रवाद की दल दल में, अमजीवी वर्ग का अमजीवी वर्ग राजनीति में अदृष्ट बन में उलभ रहा है। गांधीजी के अदिन मस्तिष्क में अमजीवी वर्ग का उदय हुआ। अमजीवी की पराधीनता का जुग्रा उसने उतार फेंका, राजगता में भी आप करी है अमजीवी में उसने जापान तक को मात कर लिया। फिर भी अमजीवी की अदिन देवता 'मनुष्य' को अपनी पूजा का केन्द्र नहीं बना पाया।

गांधीजी के इस 'मनुष्य देवता' ही पूजा का मत या धारणा ही प्रतीका है। ग्रहस्था ही सच्ची मानवी सम्स्कृति है, गांधीजी ने यह माना ही था। अतः तब प्रति नसंगिक बात पर लक्ष्य किया कि माता पिता प्रति अपनी पत्नी या पति के प्रति पूजाग्रहस्थात्मक वृत्ति न रखे तो न मनुष्य समाज ही वृद्धि। गांधीजी ने पशु समाज की। अपनी सत्तान के लालन पातन में आज भी माना पिता या पत्नी के त्याग और पुरुषाच करने पड़ते हैं। परंतु अत्यंत प्रारम्भिक काल में जब सम्प्रदाय का उदय नहीं हुआ था, माता पिताओं को अपनी सत्तान के लिए बड़े बड़े प्रयत्न करने पड़ते थे। अतः अतः उही की सुरक्षा के लिए उन्हें एक नेता के नेतृत्व में एकत्रित होकर रहना पड़ा, जिसने आगे चलकर मनुष्य को सामाजिक प्राणी बना दिया।

एक समय ऐसा भी था जब मनुष्य केवल अपने 'गायेट साम्राज्य' पर निर्भर था। वह दल बांधकर रहता था, प्रत्येक दल अपने-अपने बंधा और मनीषा तथा घायलो के प्रति सदय और अहिंसक था। पर इसमें दल के लिए हिंसा। गायेट चाहे मनुष्य का था, चाहे पशु का। उगे बाल बच्चों सहित मार डालना ही निरापद था। मीसे विजयी टोलिया विजिता को मार डालती थी। पीछे उह दाम प्रताकर उनमें सेवा लेना उहोने सीखा। बाद में जब यह अर्थ पर निराह करने योग्यता पराजितों की उपयोगिता बहुत बढ़ गई। उनके परिश्रम से उपार्जित सम्पत्ति का उपभोग करने की उहोने राह निकाल ली। तबसे विजयीजन शारीरिक परिश्रम में मुक्त होकर कना कोशल युद्ध कला और विज्ञान में गांठे बने गए। उनमें दल और सभ्य बन गए। वे नागरिक बने, दो नगर समीप समीप बने। उन्हीं मीमांसा मिली। मीमांसा के निबटारे के लिए युद्ध प्रिग्रह होने लगे। युद्ध का जोय भी एक काल का रूप धारण कर गया। योद्धाओं की फिर एक जाति बन गई। उन्हीं बाल बच्चों का परिश्रम देना ताओ की पूजा करने वालों की भी। योद्धाओं को पत्र जाति तो बन गई तां के धारण प्रकारण सवत्र युद्ध करने लगे। यह उन्हीं पत्नी ही प्रागया। सत्तान का निबटा को आश्रीन करके साम्राज्य की स्थापना कर ली और तब प्रागया देवताओं का साथ इस जीते जागत देवता, सम्राट या राज्य को भी पूजा का लगा।

परंतु ये सम्राट भी निभय न रहे। यमोमा का मरणा म मत्ता प्रिय रहे। युद्ध अब उनका प्रधान कर्तव्य बन गया। युद्ध द्वारा ही एक साम्राज्य का प्रिग्रह रत कर के दूसरे साम्राज्य की स्थापना होने लगी। ऐसा आराम में पडे 'सम्राट' पराभूत होते और साहसी लोग अपना नया साम्राज्य स्थापित करते गए।

बहुधा ऐसा हुआ कि नया साम्राज्य स्थापित करके बाल बच्चों को लोग सुधरे हुए लोगों में बहुत शिक्षा ग्रहण करते रहे। अशिलानिया में राजा प्रपतन ऐसा ही हुआ। शुरू में दक्षिण वेनिलोनिया में सुमेरियनो का राज्य स्थापित हुए। उह समेटिक

लोगो ने विजित किया, पर तु वे पिछड़े हुए थे। उन्होंने सुमेरियनो की सस्कृति ज्यो की त्या अपना ली। यही हात केशिजना का हुआ, जो केवत घुडसवारो मे प्रबल होने ही से विजयी हुए। उन्होंने त्रितीोनिया म साम्राज्य स्थापित करके वहा की सस्कृति अपना ली। यही हात रोमनस का हुआ। ग्रीस का उन्होंने जीतकर ग्रीको को दास बनाया फिर वे ही ग्रीक उनके गुरु बन गए। भारत मे शको का यही हाल हुआ, उनका केवल 'महादेव' देवता बचा रहा, शेष सत्र तरह से उन्होंने हिंदू सस्कृति अपना ली। हिंदुओ ने उनके देवता को अपना लिया। दूण, गुजरा, मालव आदि ने भी अपने राज्य स्थापित किए, पर उनके सब आचार और देवता लुप्त हो गए। सभीने भारतीय सस्कृति अपना ली। हूणो और गुप्तो मे बड़े बड़े युद्ध हुए, हूणो ने उत्तर भारत मे अत्याचार भी कम नहीं किए, पर अत मे वे भी हिन्दू हो गए। पर तु जब जब ये विजित पिछड़े हुए लोग पराजित उन्नत लोगो की सस्कृति को अपनाना नहीं चाहते रहे, तब तब विजित लोगो पर भारी सकट आया। उदाहरण के लिए हम चगेजया और उसके वंशज मुगलो को लेते है, इन्होंने पूर्वीय योरोप और मध्य ऐशिया पर कब्जा किया, पर न मुसलमानो की सस्कृति अपनाई, न ईसाइयो की। परिणामस्वरूप समरकंद, बुखारा आदि मध्य-ऐशिया के देशो तथा रूस का सत्यानाश हो गया। इन प्रदेशो की सस्कृति ही नष्ट-भ्रष्ट हो गई। मुसलमानो के उदाहरण भी ऐसे ही है। वे जिस देशमे नगी तलवार लेकर घुसे, अपने इस्लामी धर्म के जून मे उन्होंने उस देश की सस्कृति को अत्यंत हिकारत की नजर मे देखा। उन्होंने निदयतापूर्वक मिस्र और ईरान की उत्कृष्ट सस्कृति नष्ट कर डाली। हिन्दू सस्कृति को वे पूगतया नष्ट तो न कर सके पर मुस्लिम राज्य काल मे उसकी भारी प्रवणति हुई। हिंदुओ ने उनके हाथ से अवगनीय कष्ट भोगे।

साम्राज्यवाद बहुत पुरानी सस्था थी। पर इसमे दो भारी दोष थे। एक तो यह कि इसमे बहुमरयक जनो की दासता स्वीकार करनी पडती है, दूसरे लोग निबुद्धि हो जाते है। लोग समझने लगते है कि राजा के बिना काम ही नहीं चल सकता। राजा परमेश्वर का अवतार माना जाता है। वह स्वेच्छाचारी भी होता है। राजा अपनी इच्छा से जिस देवता की पूजा करता है उसके सरदार भी उसे ही पूजने लगते है। हिंदुओ मे ऐसा ही हुआ। ब्राह्मणो ने इन राजाओ को ईश्वर के समान बताकर तथा उनके स्थापित देवताओ को पूजकर भारी भारी दक्षिणा प्राप्त करके खूब मौज मजा किया। सब साधारण को इन राजाओ और उनके समथक ब्राह्मणो की दासता स्वीकार करके जीना पडा, और इस स्थिति मे वे दलित श्रमिक स्वदेश या भविष्य की उन्नति के विषय मे सवथा उदासीन बन गए। वे भाग्य को ही प्रबल मानने लगे। इस प्रकार जब उनमे बुद्धि मानिय उत्पन्न हो गया था तभी मुसलमान जैसे शत्रु घर मे घुस आए और उनमे सम्मुख ये हिन्दू जन विमूढ और निरुपाय बैठे रहे।

पर तु पाश्चात्या के सम्पर्क से जो व्यापारिक क्रान्ति वा बीज भारत में आया उसने मध्यम वर्ग का प्रभुत्व बहुत बढ़ा दिया । इससे तत्काल श्रमजीवियों को भी कुछ सन्तोष हुआ । बुद्धिमान जन पूजीपति बन गए । ऊपरी और शिल्पी अपने उद्योग में लग गए । इससे जो शांति, व्यवस्था और सम्पन्नता भारत में उत्पन्न हुई, उसका श्रेय अंग्रेजी राज्य को मिला, यहाँ तक कि राजा राममोहनराय तो उसे ईश्वरीय व्यवस्था तक कहने लगे । पर सौ वर्ष के भीतर ही इस नई प्रणाली के दाप दीग्य पड़ने लगे । प्रत्येक नगर का कलेवर बढ़ गया । एक आर लो पजीपतियों का महल खड़े हो गए जहाँ वे एशो आराम करने लगे, दूसरी आर श्रमियों की अत्यन्त हीनता हो गई । व गाव देहात छोड़कर इन नगरों में पशुप्रा की भाँति रहने और पट के जिए कडा परिश्रम करने लगे । उनमें अनाचार भी बहुत फल गया, राष्ट्र और घुन-दीड का जुग्रा भी इस व्यापारिक युग में एक भयानक व्यसन हो गया । जिससे श्रमिक भी न बचा । दूसरा दत्य मद्य उनके पीछे लग गया । इन श्रमियों की दशा इतनी निपत हो गई कि उनके यह भाव स्थायी हो गए कि जन्म भर दरिद्रता का कष्ट भोगने की अपेक्षा मर जाना ही अच्छा है, कदाचित् भगवान् ने उनकी इस इच्छा की पूर्ति के लिए ही हैजे, प्लेग, महामारी, चेचक, मलेरिया, रूफलूज का आदि घातक रोगों की सजा उन पर भेज दी, जिससे बूढ़ों की अपेक्षा जवान ही अधिक शिकार हुए और उनके आश्रितजन निराश्रित होकर और निरीह हो गए । उधर ये पजीपति राष्ट्र सम्पन्न तो हुए, पर उन पर एक घोर सकट आ गया । इंग्लण्ड और फ्रान्स इन सबके चौधरी बने थे । जमन घाट में था, पर उसकी जन सख्या बढ़रही थी । जापान भी बढ़ती हुई शक्ति और योरोप की फूट के कारण जमन चीन को हटपने में सफल न हो सता । उसने स्त्रीभरर फ्रान्स और इंग्लण्ड के उपनिवेशों पर लोलुप दृष्टि डाली और उसीस पथम महायुद्ध का सूत्रपात हुआ । इसके बाद जापान ने चीन को नोचना प्रारम्भ किया और मुसोलिनी अरीसीनियों को निगल गया इस सब लूट लमोट और शापाधाधी से पजीपति राष्ट्र परस्पर का सहयोग और प्रेम खो वठे और सन्सार भयियों की भाँति लड पड । इस ये द्वितीय महायुद्ध म शपने ही रक्त में खेल रह थ, उधर उन्ही का श्रमिक वर्ग क्रांति के लिए तैयार पैठा था । इससे ये सारे ही राष्ट्र भय और आशाता से भर उठे ।

यद्यपि बोलशेविकरू म इस भय से पर था । उहाँ के श्रमिक मजे में थे, पर तु सार ही पजीपति राष्ट्र उसके विरुद्ध थे । द्वितीय महायुद्ध के बाद ही उसका उन पजीवादी राष्ट्रों से गठजोडा टूट गया । उधर द्वितीय महायुद्ध ने पजीपति की रीढ भी हट्टी तोड डाली और अब उस तृतीय युद्ध का सूत्रपात हो रहा है, जिसमें यह सब पूजीवादी राष्ट्र दफना दिए जाएंगे ।

भोग तृष्णा मनुष्य के सब दुखों की जड है । शरीर के लिए आवश्यक वस्तुओं

के उपभोग का तृष्णा नहीं बहते, जब वस्तुओं की लालसा बढ जाती है, वही तृष्णा है। यही मनुष्य में तृष्णा वामना उत्पन्न करती है, जो सब अर्थों की जड है। मनुष्य के मन में जब तृष्णा का अक्षर फूटता है, तब तो बहुत अच्छा लगता है। पर तु अन्त में वही तृष्णा उस खा जाती है, उसका जीवन नष्ट हो जाता है। बुद्ध ने कहा है कि— 'आनंद, वेदना से तृष्णा, तृष्णामें पयपणा पयपणा, से लाभ, लाभ से निश्चय, निश्चय से आमक्ति, आसक्ति में अव्यवसाय, अव्यवसाय में परिग्रह, परिग्रह में मात्स्य, मात्स्य में आरक्षा, आरक्षा में दण्डादान, शस्त्रादान, कलह, त्रिग्रह, विवाद, तू तू मैं मैं, पशु य, असत्यभाषण आदि पापकारक बात होती है।'

यह भोग तृष्णा भाई भाई और सम्बन्धियों में कलह उत्पन्न कराती है। पर तु यह भोग तृष्णा जब जातियाम उत्पन्न होती है, तब महाघातक युद्धों और ऐसे ही घोर महापातकों की सृष्टि होती है। कदाचित् इसी भोग तृष्णा से विपरीत होने के लिए ईसा ने कहा था—कि ऊँट सुई के छेद में जा सकता है, पर धनी व्यक्ति स्वर्ग में नहीं।

पर तु बुद्ध और ईसा दोनों ही कथम सकेतो की अवहेलना करके मनुष्य परिग्रहान बने। योरोप में पजीवाद के जन्म के बाद व्यक्ति से समष्टि में भोग तृष्णा ने प्रवेश किया और समष्टि की भोग तृष्णा ही राष्ट्र का नाम धारण कर बठी। यह राष्ट्र सब छोटे बड़े लोगों का था, इसमें सब छोटे बड़े सामूहिक रूप से भोग तृष्णा के भूखे थे। गत महायुद्ध के आरम्भ तक इन राष्ट्रों में भोग तृष्णा खूब पनपी।

सोलहवीं शताब्दी में सबसे पहले अकाल और महामारी से पीडित होने पर इंग्लण्ड के उच्चवर्गीय जनों में राष्ट्रीय तृष्णा उत्पन्न हुई, और वे किसी भी सम्भव उपाय से अपने राष्ट्र की सम्पत्ति बढाने पर तुल गण, उबर उ होने अमेरिका में उपनिवेश स्थापित किए, इंग्लैंड ईस्ट इण्डिया कम्पनी स्थापित करके पूर्व में व्यापारका जाल फलाया। व्यापार में लाभ हानि दोनों ही सम्भव थे, पर तु चतुर अंग्रेज लाभ के स्थान पर आगे बढने और हानि के स्थान पर पीछे हटने लगे। लाभ के स्थान पर वे हठदृढ़ हुए, और उसी के फलस्वरूप उ होने समुद्र पर अपना एकलव्य प्रभुत्व स्थापित करने में खून की नदी बहा दी। इसने लिए बड़े बड़े युद्ध विग्रह कलह हुए। अंग्रेज कवि गोल्डस्मिथ ने इंग्लण्ड की इस राष्ट्र तृष्णा को देखकर—जिसमें सारा देश ऐश आराम के लिए भूठी सजबज सज रहा था, जहां सम्पत्ति एकत्र हो रही थी पर मनुष्य का ह्रास हो रहा था—ग्रपना 'डेजर्टेड मिलेज' काव्य लिखकर इंग्लैंड को भावी सकटों का संकेत किया। पर उसे बहरे कानों ने सुना, और बड़े-बड़े राजनीतिज्ञों ने यह बूटनीति स्थिर की कि देश हित के लिए, राष्ट्र व उत्थान के लिए, अन्य देशों की सम्पदा अपने देश में लाने के लिए, कोई भी कुकर्म निश्चय नहीं। भारतीय साम्राज्य पाकर अंग्रेजों का लोभ और भी बढ गया, और इसी गत महायुद्ध की नौबत आई। योरोपीय राष्ट्र आपस की लड़ाई

मे लगे रह इसमें शह पाकर अगज समुद्र पर अजेय होकर अफाना गोर पूर्ण दशो का भाग लेते रहे । पर गत में उम रात्र ७ अण्णा ही उ उ ट पराभन दिया । द्वितीय महायुद्ध उ होने जीता तो पर तहरा की उमी हुर्मत समाप्त हो गई और भारत छोडकर उह अगने डोटे में टापू म भाग जाना पडा । अत्र तुनिया दग्गी कि आगामी कुछ दशाब्दिया ही में त्रिटेन एक सा मारण रात्र रह जायगा ।

मनुष्य में गन्ध सब प्राणियों की अपथा एक वस्तु अत्रि है — प्रज्ञा । 'प्रज्ञा' उस ज्ञान का नाम है जिसका विकास पूमानुभव में होता है । उसी प्रज्ञा के सहारे मनुष्य अपनी पिछली पीढी के उपाजित ज्ञान से लाभ उठाकर नया ज्ञान अजन करता है । परन्तु मनुष्य में प्रज्ञा के साथ ही अहिंसा का भी उदय होना चाहिए, यदि ऐसा नहीं हुआ तो मनुष्य की प्रज्ञा ही मनुष्य को नर घाती बना दगी । वह दुर्बलो का पीडक बना रहेगा । अब आप आनुजित मन्धता के विकास पर दृष्टि वाले तो आप देखेंगे योरोप के प्रवासियों ने आस्ट लिया और अमेरिका में जाकर बहा ने मून निवासिया को निदयता से नष्ट कर डाला, अफ्रीका में अग्रे तोगो का महार ही नती किया उन पर अत्याचार करने में कोई कसर भी नहीं रखी । उ ह पशुआ में उदतर समझा और भेड बकरी की भाति उहे बेचा । लाखों नीग्रा पकडकर अमेरिका लाकर बच उने गए । भारत में भी अग्रेजोने वन शोषणके बडे बीभत्स प्रयोग किए । यह रात्र अहिंसा श् य प्रज्ञा के कारण ।

काल माक्स ने सामाजिक विकास का उत्कृष्ट माग यूरोप के सम्मुख रखा । उसने बताया कि कैसे समार के पीडितो को पीडना से बचाकर उनका मगठन किया जा सकता है । पर इस काय में अहिंसा का मयाल उम नहीं आया, उसने तो यही कहा कि सारे समार के पीडितो को एकत्र हाकर पीडिको का महार कर उलना चाहिए ।

रूस ने ऐसा ही किया । परन्तु यदि सब पीडित एताभूत हो जाँय तो पीडको को मारने की आउश्यता ही न रह जायगी । पश्चिम की राजनीति की परम्परा हिसा पर ही आधारित है, त्याति उमकी प्रेरणा उ ट अग्रे को म मिनो है, जिनकी सारी सस्कृति ग्रीक नगरो तक सीमित थी । अय नगरोस उम ता पूण मिराव रहा । उसी आधार पर योरोप की राष्ट्रीयता सर्गठन हुई, जिनका मून मत्र था अपन राष्ट्र हिन न त्रिए कोई भी कुकृत्य उचित है । इसी से दंग ने हिन के त्रिण व्यभिचार करना, भूठ प्रोदना, हत्या करना, डल कपट का जाल रचना, सभी प्रशमनीय टहराय गए । जैसे ग्रीक अन्य नगरो को त्रिरोधी समझते थे, यूरोप के राष्ट्र उमी भाति अय राष्ट्रो को त्रिरोधी समझते रहे । काल माक्स ने राष्ट्रीयता की कँद से केवल अमिको को निकाल बाहर कर एकता बद्ध करने की सलाह तो दी, पर योरोपीय नीति के इस दोष से वह न बच सका । इससे उहाँ राष्ट्रो का राष्ट्रो से जो बैर त्रिरोध था वह यहाँ पजीपतियो और मजदूरो में बायम रहा ।

काल माक्स की यह नीति काँटे से काँटा निकालने जसी रही । उमने समाज

वादके काटे से राष्ट्रीयता के काटे से निकालना चाहता। उसने कहा, मशस्त्र काति करके पूजीपतियों को मारो। पर गान्धाय ने कटा-कटी, पूजीपतियों के लिए शस्त्र ग्रहण मत करो। रूप में आगिन रूप में यह प्रयोग गफल हुआ। जार ने जागो को जबर दस्ती युद्ध क्षेत्र में भेजना चाहता पर जागा ने जगो ही से दकार कर दिया। इससे जार शाही स्वयं ही खत्म हो गई, यदि गत महायुद्ध के समय में ही सब योरोपियन देशों के मजदूरो ने युद्धोद्योगों में काम करने से दकार कर लिया होता तो युद्ध एक सप्ताह भी नहीं चलता और योरोपियन राष्ट्र महायुद्ध के त्रिनाश से बच जाते।

महागीर और युद्ध न गत्य अहिंसा को 'बहुजन हिताय' की भावना से प्रचारित किया था। पर वह साम्प्रदायिक दण्डन में फँस गया, उस अहिंसा का राजनीतिक क्षेत्र में उपयोग करने का श्रेय गाँधी जी को है।

आज हम उग प्ररूप की प्रतीक्षा कर रहे हैं जो उस पग अन्वि के सपेते पर 'मत्य और अहिंसा को न जाकर गाँधी जी के प्रस्थापित देवता 'मनुष्य' की विवि विधान में पूजा करना चाहिए जगो को गिखावे।

वयरक्षाम अतीत रम

सन् १९५० की मई के अतिम सप्ताह में एक दिन, जब मेरी पत्नी तीसरे पहर की चाय लेकर गेहूँ निकट आई तो सदा की भाँति मैंने प्रसन्न मुद्रा में उसका स्वागत नहीं किया। अपितु, चाय पीने की अनिच्छा प्रकट की। फिर भी उन्होंने प्याला बना कर दिया, तो सदा की आदत के अनुसार एक दो घूट पीकर काम करने लगा। कुछ देर बाद उन्होंने आकर देखा तो चाय पैंसी ही रम्बी गी और ठण्डी हो गई थी। नास्ता भी छुआ नहीं था। कारण पूछने पर मैंने कहा—तबियत नहीं चाहती, ठण्ड की फुरहरी सी लग रही है। मिरन्द भी है। उन्होंने माथा छूकर देखा—गम था। उन्होंने कहा—हरारत है, आराम करना चाहिए। मैं बिस्तर लगवाती हूँ। मैंने रोककर कहा—नहीं, यह काम सत्तम करने ही उठगा। अभी देर लगेगी। मेरी मेज पर ६० ७० विविध ग्रन्थ खुले पड़े थे। चारों ओर पत्र पत्रिकाओंके कटिंग थे, बहुतसे नए पुराने हस्तलेखोंका ढेर था हफ्तों महीनों हो गए थे, रात दिन काम—काम—काम। रात दिन टेबुल लैम्प जलता था। वे हैंसी में रुढ़नी—यह लागू पर दिया जल रहा है। 'भारतीय सस्कृति के इतिहास' के सतयुग और जेता स्पण्ड की तयारी हो रही थी। कोई दो हजार पुष्टोमें फलने वाला इतिहास। टेम्परेचर लिया तो १०१ था। पत्नी अपनी अम्मा को बुला लाई और उहे देखते ही मैं भले बालक की भाँति हँसकर कलम छोड़ बिस्तर पर लेट गया और ऐसा लेटा कि आठ दस महीनों में उठ पाया।

एक दो दिन तो साधारण मलेरिया का उत्पात समझा गया। पर शीघ्र ही चेहरा सुख, आँखें लालचोट, भयानक सिरदद और हाथ पैर ठण्डे बफ। ये लक्षण बढ़ते

ही गए। मेरे ही मेरे चेतना तोप होने लगी कि रीगियम के आगार दीगने लगे। चिकित्सक मिल जुलकर चिकित्सा करने लगे। पर तुलना गम्भीर होती गई। इसी समय भाग्य से एक वायुमेनाके च्च अग्रिमारी मुझे रखे आए। उहून मानन ये, रसर दिन वे सेना के एक तरुण अमेरिजन डाक्टर को ये आण, त्रिमनै उगतार ११ मिनट एक विचित्र यत्र द्वारा नेत्रोकी परीक्षा करने कृता प्राणनाती आगना उपस्थिता है,शरीर का रक्त दिमाग मे जमा हो रहा है, किसी भी योग नम फट सकती है। परहे लोगोके हाथो के तोते उड गए, पर प्रय है वह देवदूत। उह कई दिन तिरतर अपनी कार म आया और उसने प्रयत्नोमे जीवन ता खतरा नल गया, पर तु जान नी आया। मनुष्य को पहचानता रहा अवश्य, केवल पत्नी के प्रपना ता ठीक उत्तर देता। बीच बीच मे अद्भुत बात करता और कहता - भ्रष्टपट निखा फिर भूत जाऊगा।

दिन बीतते गए। राग मे रोग उत्पन्न होते गए। शरीर सूखते सूखते अत म जाँचे ग्राह जमी हो गड। शौच आदि को भी न उठ पाता था। बोती उहून गीमी हो गई थी। कि तु आश्चय की बात यह थी, कि मज म जत्र उटा था बात्मीकि का कोई श्लोक बूढ रहा था। उठा तो बिस्तर पर बाल्मीकि साथ लेता आया था। उह गहरी बदहवासोमे भी हाथमे नही छोडी। नीद नही आती थी। जत्र एवान होता, रामायण पढता। सम्पूर्ण बाल्मीकि उमी दशा म पढ टानी-न न्स्टरो का विप्रतिपमाना, न पत्नी का, न किमीका। सोता ता त्रानीसे लगाकर। सत्र लोग पीठ पीछे उतर-उतर जा कर रो लेते, पर सामने आत तो हँसी की बाता म बहलाने। खच ता अत न था। आधुनिक चिकित्सा के खच का म्या ठिकाना। शीत्र ही अथमकट का मामना करना पडा। जबसे प्रकितम छाडी-नस्टम पस्टम खच चत्रता था। हाथ मेरा मटा का खुला हे, हजार भी थोडे और लाख भी शाडे। अथमकट प्राय त्रता ही रहता था। पर तु बठा था तो कुछ होता ही था। मग जो खच ता भार पडा,तो पट न सारे जेत्र गए। फिर फालतू चीजे और उसावे बाद जो काम मरी पत्नी का करता पटा,उसके लिए मन आज तत्र उ हे थमा नही किया। मरी चालीस वर्षी म मन्त्रित सब मांगिक पत्रिकाआ की फाइले, जिनमे हन्दु, गुधा, माधुरी, चाद, सररवती, प्रभा, गृहलक्ष्मी, शारदा आदि अनेक थी, सभी को रही मे त्रच त्रचकर अपन लिए दो फोर अत्र और मेर लिए पथ्य जुटाया, इन दिनों गौतम युक्त डिपो, दिल्ली' 'वशानी की नगरवधू' सहित त्रीम पुस्तकोे टाप और बेच रहे थ। एक बारभी यह पकाशक इस विपत्तिमे मुझे रखे नही आया, एक पसा रायल्टी नही दिया, जब कि हजारों का हिसाब उनकी तरफ निकलता था। दुलारेलाल भागव पर ८ १० पुस्तको की रायल्टी और 'आरोग्यशास्त्र' का हजारों रुपया बकाया था। पर एक बार जब चद्रमेन उनसे कुछ माँगने गए—ता एक अटली पस से निकाल कर उ होने बडी लाचारी दिखाने हुए कृता—इस वक्त तो यही है।

विपत्ति यही समाप्त नहीं हुई, एक भय आसमी की मने जमानत दी थी। वह एकम उस भने आसमी ने नती अन्त की अगने पायादार इस अस्मर पर कुर्ची लेकर आ पहुँचा। इस समय मेरी असाध्य स्त्री एक आर जहा चपचाप, जिमम मेरे जानम भनक भी न पड़े न सब आर्थिय आपगामो का सामना कर रही थी, ऊपर मेरे प्राण भूले पर भूल रहे थे। बहुत बार इठिन धग आण एक बार तो नाखून और अग नीला पड गया, मून परीथा करने पर टाक्टर ने कहा— शायद ही आज का दिन निकले। पता नहीं, किस दक्षिणति ने मुझे पन दिया। मारी पृथ्वी पर उस रात मेरी शय्या के पास केवल तीन थे—पत्नी, माता जी और लन्द्रमन। सब के ऊपर भगवान।

विपत्तिया और भी हूँती। परन्तु अन्त मेर जीवन की रक्षा हो गई। जीवन रक्षा का श्रेय न चिरिन्मा का, न औपम को, न लोगो की अथक मेहा को। प्रागरक्षा हुई मेरे अपने अद्भूत आत्मबल से। अभी मेर हाथो 'सोमनाथ' और 'वयरशाम' जसा साहित्य का अजन होना था। और भी कुछ होने वाला था।

उत्सव तान पर आरम्भार मे उस पुल द पर नजर डालता था—पर मेरी पत्नी न दो साल तक रह गठरी न खोना ती। इस बीच भी मै छुटपुट कुछ लिखता रहा फिर 'सोमनाथ' को पूरा किया। इसका बाद मेन गठरी रोली और एक नया विचार मेरे मन में आया— कि भारतीय संस्कृति का इतिहास लिखने योग्य मुकम्मिल सामग्री अभी नहीं जुटी है। गीच म रहन यमान है। तब फिलहाल इम सामग्री का उपयोग क्यों न एक उपयाम लिखने मे किया जाय।

उन दिना जौ द्रकुमार क हमरे पर शनिवार ममाज की बठक होती थी। वहा से आया निमन्त्रण पर कहानी पढ़ने का, और तत्र एक मौखिककहानी सुनाई गई— जो इस उपयाम की आशरजिग थी। फिर तो मै इसी उपन्यास मे जुट गया पर लिखता था धीर धीर, शांतिपूरक। उपयाम पूरा हुआ भी नहीं और छपना आरम्भ हो गया। फिर तो परिश्रम की दृढ़ हा गई। मैं नहीं विश्वास कर सकता कि कोई पुरुष इतना परिश्रम कर सक्ता है— जितना उस उपन्यास और इसके भाष्यके लिखनम मैने किया। इश्वर की कृपा है कि परिश्रम परिगमास हुआ और यह अमर उपयाम हिन्दी कथा साहित्य मे प्रसिद्द हो गया, तदाचित पाँच सौ वर्षों के लिए, अथवा अधिक के लिए।

वयरशाम की भूमिका दिल्ली में छप रही थी तभी उस के प्रकाशक का एक रात मितता। प्रकाशक एक तरुण मारवाडी सज्जन है धनिक और भावुक भी है। देखा नहीं है, जानता भी नहीं हूँ, पत्रालाप श्री चन्द्रसेन से होता था, यह पत्र भी उन्ही के नाम है। चन्द्रसेन मेरा राब हारोबार करते हैं। 'वयरशाम' का सौदा भी उन्हीने किया था। चन्द्रसेन मे एक दोष है, वे बारबार और व्यवहार के सौजय को आत्मीयता मान लेते हैं, और सम्पक होते ही वे दूसरो की जिम्मेदारी अपने ऊपर लाद लेते हैं। जवाबदेही

की परवाह नहीं करते और सदिग्ग बन जाते हैं पर जत्र ये ऐसा काऽ काम मेर प्रति निधि की हैमियत से कर डालते हैं, तो बहुत मुझे जिल्लत उठानी पडती है और मे बहुत बहुत तकलीफ उठाना है । मैं एकानी ह, अमहाय, हूँ अपने ही म अ तमुख हू, इसी एक भाई के सहारेमे दुनियादारी मे सम्पन्न जनाए हुए हू । न भाई होत से द नार कर सकता हूँ, न कारोबार से ख्वास्त कर सकता हूँ ।

पत्र मे चन्द्रमेन के वान खीचे गए थे और एक लात कमकर मेरे ऊपर भी चनाई गई थी । पत्र का सम्बन्ध 'वयरक्षाम' से था और उससे लेगक और प्रकाशक की विषयगामिनी मनोवृत्ति पर प्रकाश पडता था, इसी से अपनी दम अनन्य कृति की बात कहने से पहले इस पत्र की बात मुझे कहनी पडी है ।

'वयरक्षाम' समूचा भागलपुर में प्रकाशक ने अपने प्रेम मे ट्रापा । प्रूफ केजत एक बार मेरे पास आया, फिर वह जिस प्रकार शुद्ध हुआ, यह मैं न देख सका था, अब भाष्यम् छपना शेष था जो तीन सौ पृष्ठोतक फला, और जिममे मेरा तीस वप स भी अधिक का गम्ययन सचित था । समूची पाण्डुलिपि मेरे हाथ में लिखी थी । टाइप मेन इसलिए नहीं कराया कि पाण्डुलिपि ही अशुद्ध हो जाने का भय था । जत्र तक पूरासस्कृ तत्र टाइपिस्ट मेरे पास बैठकर टाइप न करे—मै युस्क्रिप्ट टाइप नहीं करी जा सकती थी । फिर टाइप की हुई कापी को अमन से मिजाना भारी सिरदद था । इससे मैं यह सोचा—कि 'भाष्यम्' यहा दिल्ली मे मेरे सम्मुख ठपे तो ही अच्छा । काम जल्द खत्म होने के विचार से प्रकाशक ने यह प्रस्ताव स्वीकृत कर लिया, और 'भाष्यम्' यहा छपने लगा । जनवरी के आरम्भ मे मटर प्रस मे गया, और पूरे चार मास अप्रैल मे सम्पूरा हुआ । यो तीन सौ पृष्ठ एक सप्ताह मे छापे जा सकते थे प्रग इतना मात्रन-सम्पन्न था । इस चार मास के वान म प्रस का समूचा स्टाफ, मैं और चन्द्रमेन सभी बौखला उठे ।

मुझे छ छ और सात सात बार प्रफ देखने पडे । 'भाष्यम्' के लगभग सारे ही नोटस अबसे कोई बार्स वप पूव बनकता की गंगीरिया लाइब्रेरीमे बठकर तयार किए गए थे । इस समय मेरे पास अपना अच्छा पुस्तकालय नहीं है । सन् ०७ के यमुना प्रवाह मे मेरी समूची सम्पत्ति के साथ मेरा पुस्तकालय नष्ट हो गया और मेरी सबसे बडी दौलत पत्र-पत्रिकाओ की दुलभ फाइले, जो ०० वर्षों मे अर्जित की गई थी, इन सबका सदुपयोग मेरी रुग्णावस्था मे पत्नी वेचनर कर ही चुकी थी । यमुना प्रवाह मे मेरा घर १५ दिन तक ६ फुट पानी म दूबा रहा । अत मेरे हस्तलेख, नोटस आदि जो बच रहे—वे सब भीगकर खराब हो गए थे । उनको सहेजते सहेजते, परस्पर उनका तारतम्य मिलाते—नकन करते कराते, असल ग्रन्थो से मिजाते मिलाते मैं घातक रोग के चगुल म जा फसा था । अब इस मै युस्क्रिप्ट म बहुत बातें सन्दिग्ध रह गई थी ।

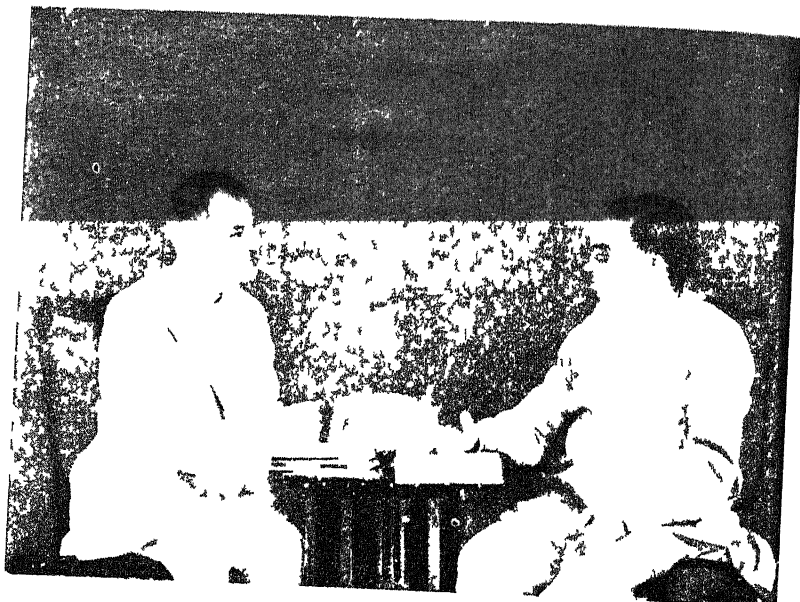
जसा कि मैंने कहा—'वयरक्षाम' बिना मुझसे पूत्रे च द्रसेन इन प्रकाशक को



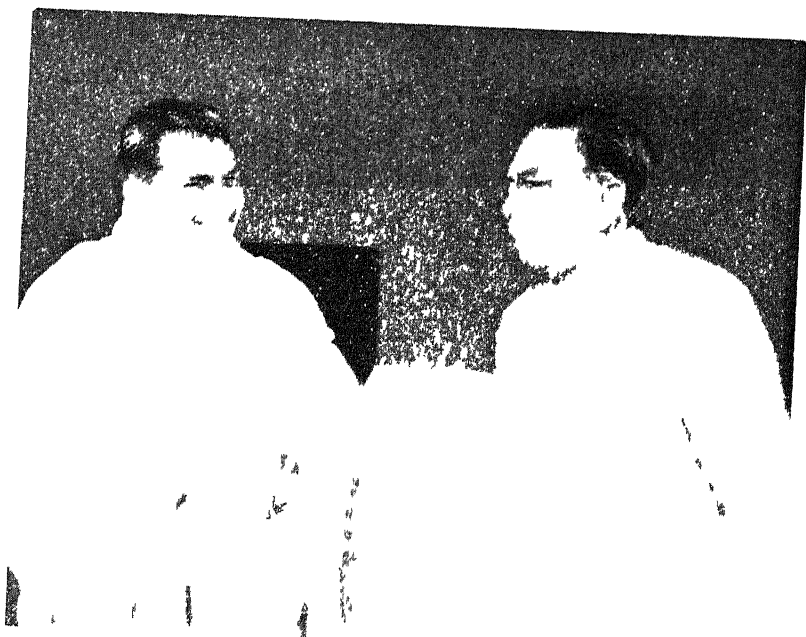
PKK



PKK



1840



1841

दे आए और उतारने उमे नुरन्त छापना शुरू कर दिया था, तब तक भी पूरा उपयाम नहा निया जा सका था। अब इतर 'वयरक्षाम' छप रहा था, उतर में आगे लिख रहा था। पित्रले प्रफ आते थे, उनके साथ आगेफा नया मँटर यहाँ से जाता था। उस प्रकार ऐस तृहद् ग्रथ का लिखना छपना और उसका पूजापर सम्बन्ध बनाए रखना आसात काम न था। और उसके लिए मुझे ग्यारह महीन तक केवल तीन घन्टा सोना मिला। २०-२१ घन्टे कठिन काम करना पना। मुझे केवल यही काम न था, गृहस्थ की और भी जिम्मेदारियाँ थी। फिर, मैं कोई तरुण साधन सम्पन्न पुरुष नहीं। अत इस भयानक परिश्रम ने मेरे सब अजर-पजर ढीले कर दिए, और मैं एक प्रकार से मर मिटा। अब आप मेरे वक्तव्य की पुष्टि मे एक प्रमाण देखिए—सन् ४८ मे 'वैशाली की नगरवधू' छपी, और ५४ मे 'सोमनाथ', यह ५५ मे 'वयरक्षाम' छपा हे। तीनों मे मेरे चित्र हैं, जो पुस्तको की समाप्ति काल मे तैयार किए गए थे। इसके गवाह फोटोग्राफर हे। इन तीनों चित्रों का मुकाबिला कीजिए। खासकर 'सोमनाथ' और 'वयरक्षाम' के चित्र से। आप देखेंगे कि इस 'वयरक्षाम' ने एक ही साल मे मुझे खा डाला।

मूल ग्रन्थ की समाप्ति के बाद मेरी विपत्ति का अन्त नहीं हुआ। 'भाष्यम्' छपना आरम्भ हुआ और ज्यो-ज्यो मीटर प्रेस मे जाने लगा, मुझे उसमे पहाड-पहाड सी त्रुटिया दिखलाई देने लगी। बहुत बार मैं हताश विमूढ हो बैठा। पर यह काम तो पार डालना था। कितना अच्छा होता, वह दारुण रोग मुझे मृत्यु की गोद मे फेंक देता तो आज मैं इस भयानक परिश्रम के बदले आराम से चिर विश्राम करता होता। परन्तु 'वयरक्षाम' के उपमहार मे जो प्रकाशक की लात खानी मेरे भाग्य मे लिखी थी, वह कहा मिलती।

हाँ, तो 'भाष्यम्' छपना आरम्भ हुआ, और अब सम्पूर्ण रेफरेन्सेज पर, प्रमाणों पर, सन्दर्भों पर बारीक दृष्टि डालना मेरा फज हो गया। बहुधा ऐसा होने लगा, कि मैं प्रूफ देख रहा हूँ, और कही एक शब्द पर सदेह उठ खटा हुआ, कोई श्लोक अशुद्ध प्रतीत हुआ, कोई एक उद्धरण अटपटा सा लगा, बस काम सब बाद। प्रेस वाले सिर पीट रहे हैं, मीटर मशीन रुकी पडी है, और मैं तीन तीन सहायको के साथ कभी हाडिंग लाइवरी मे, कभी मारवाडी पुस्तकालय मे, कभी दिल्ली लाइवरी मे, कभी कही, मोट मोटे ग्रथो के बीच अपनी एक पत्ति को दो दो दिन तीन तीन दिन तक ढढता रहा हूँ। चन्द्रसेन हे कि पुस्तके ढो ढो कर मेरे पाम ला रहे हैं, ले जा रहे ह। लायब्रेरियन कृपालु थे। बठने का विशेष प्रबन्ध कर दिया था। सुबह चाय पीकर जो बैठते तो दिन वही खत्म हो जाता था। भूख प्यास दोनो ही अक्षरो को खा पीकर मिटाई जाती थी। सब कुछ होने पर भी दिल्ली की कोई लायब्ररी भला कलकत्ता की इम्पीरियल लायरी (अब नेशनल लायब्ररी) का मुकाबिला कर सकती ह? तीन तीन दिन की भया

नरु खोज के बाद भी बहुधा किसी एक पक्ति की सगति नहीं बटती थी। कसा दुर्भाग्य है हमारा, हमारे जैसे मूढ असहाय लेखकों का, जो मातृन और सहायता से विहीन, अपनी सामर्थ्य और योग्यता से अधिक काम का बोझ सिर पर ढालते और अपनी भूख प्यास और नींद को हराम करते हैं। केवल प्रकाशकों की लात खाने के लिए, हैं राम।

चन्द्रसेन सुबह सूर्यादय के साथ ही, कभी कभी तो चाय भी न पीकर जाते प्रस, जो शाहदरे से दस बारह मील से कम न होगा। और लौटते रात को, कभी आठ बजे कभी दस बजे। प्रूफो का गट्टर लिए, जिनकी मे प्रतीक्षा में बटा रहता, और रात को एक बजा, कि मैं उन पर झुक जाता झुका रहता। बीच में उठ उठकर नाचता, अल मारिया खोलता। यह पुस्तक, वह ग्रंथ, यह कटिंग, यह नोट। यहा नहीं बहा, वहाँ नहीं, यहा। फिर भी कुछ मिलते कुछ नहीं मिलते, और एक कागज पर उन गुमनामों की सूची बनती रहती। रात गलती जाती, पानी का एक गिलास प्रागे रने में अपने नेत्रों पर जितना अत्याचार कर सकता था, करता जाता। तब रात गई, बव प्रभात हुआ, यह मुझे तब ज्ञात होता, जब पत्नी आकर मट में टेबुल नेम्प का स्विच आफ करती और उठो, चाय तैयार है, कहती। तब उठकर भटपट जरूरी कामों से निवट कर फिर वही कुर्सी और वही मनहूस कागज। चाय का प्याना पूरा खत्म भी न हो पाता, कि चन्द्रसेन का प्रश्न सिर पर, क्या लायनेरी चयना होगा ?

हा हा चलो तुम, पुस्तकें निकलवाओ, यह सूची है, मैं आ रहा हूँ।

कल रातभर भाग्यम् के अन्तिम प्रफ दये थे। परिशिष्ट टीक किए थे। और जब चार बजे रहे थे, मे 'इति' लिखने बटा, मस्त्रुत ग, और सूर्यादय के साथ ही खलम रख दी। चमत्कार की बात यह, कि आज रामनवमी है। मरी माता का भी अस्मान दिवस है। इस भयानक पुस्तक का सब काम समाप्त कर आज मैं मुरता रहा था, कि यह पत्र ? चन्द्रसेन प्रस गए थे, वे हाते तो यह पत्र प्रदानित् मेरी नजर में न पन्ता। पर तु भाग्य में जो उदा है वह तो मिलेगा। प्रकाशक ही उम जान मैं मरी आज की लिखी 'इति' भी श्रीसम्पन्न हो गई। रामनवमी का आज का पुण्य दिन भी गय हो गया, और मेरा साहित्यिक जीवन तो मप्रतिष्ठ हुआ ही।

हा, मृनिग लात की की बात। प्रकाशक न कुछ स्पष्ट भेज थे, कागज के त्रिण और प्रस का बिल चुकाने के लिए। उनमें से कुछ चन्द्रसेन ने उर उर रख कर दिए। किम कर रहे खच कर दिए ? रोज प्रस जाने प्रागे मैं दो तीन स्पष्ट उठता था। शाहदरे से पहाडगज। शायद कुछ खान पीने में खच किया, या गया। कागज अनुमान से अधिक लगा। और ८।६ फाम इकट्ठे हो गए। कागज के बिना काम रुक गया। सकोचवश उ होने मुझे नहीं बताया। या इसलिए, कि मरी आर्थिक दिवक्ते उन पर प्रकट है। प्रकाशक तो शायद उ होने कुछ और स्पष्ट भेजने को त्रिसा। इसी पर प्रका

शक ने रात में जो लिखा, उसका मतलब यह, कि तुम चोर हो, अविश्वासी हो, तुमने अमानत में खयानत की है, हमारा रुपया खा गए हो। रुपया हम अब नहीं भेजेगे।

और मेरे ऊपर यह लात है, कि तेरे अक्षर इतने खराब क्यों हैं, साफ साफ लिखना क्यों नहीं सीखता, तेरा लेख पढ़ने का कष्ट हम क्यों उठाएँ, जब कि हमने तुम्हें मजदूरी दी है। मेरे ऊपर जो यह लात है, सो तो बिलकुल मुझे कबूल है। ठीक ही तो है कि मैं खराब लिखता हूँ तो मेरे प्रकाशक इसका दण्ड क्यों भरे भला ? पर तु चंद्रसेन की बात इससे सबथा जुदा है। प्रथम तो चंद्रसेन प्रकाशक के नौकर नहीं, इन चार मासों में उन्होंने जो परिश्रम किया है, उसका यदि पाचसौ रुपया मासिक भी मुझाविजा दिया जाय तो कम है। निश्चित रूप से उन्होंने प्रकाशक की बेगार डोई है। रुपया भी जो खर्च हुआ, वह उन्हीं के काम में, प्रेस आने जाने आदि में। परन्तु सकोच वश या चाहे भी जिस कारण उसे उन्होंने अपना निजी खर्च मान लिया। यह रकम महज डेढ़ या दो सौ रुपया से अधिक न होगी। फिर चंद्रसेन का भी एक उपयास प्रकाशक ने छापा है, जिसकी रायल्टी भी थी। इस प्रकार जहा चार महीने उहोंने प्रकाशक की बेगार डोई, वहा पाकेट से डेढ़ दो सौ रुपया भी खर्च कर दिया। इतना ही नहीं, यह फवरी मास का मास साल की समाप्ति का समय था। केन्द्रीय तथा प्रांतीय सरकारों ने मेरी भी कुछ पुस्तकें खरीदी थी, सूची भी मिल गई थी, आशा थी, कुछ माल उठ जायगा, तो दिक्कतें कम हो जाएंगी। पर चंद्रसेन के इधर फसे रहने से दधर दौड़ धूप न कर सकें, फलतः धेले का भी माल न बिका। इस सबके बदले में वे बने अमानत में खयानत के मुजरिम।

लेकिन मैं जो 'प्रयत्न' का, अपनी महत्तम कृति का परिचय देने बठा, और प्रकाशक का परिचय देने लगा, इसका कारण यह है, कि मेरे पाठक यह समझ जायें कि साहित्य की एक ही नाव पर सवार दो व्यक्ति प्रकाशक और लेखक परस्पर कितने विरोधी तत्व हैं, वे परस्पर मिलते नहीं हैं, टकराते हैं। लेखक जहा अपनी साहित्य निष्ठा पर अपने रक्त की प्रत्येक बूंद से अपनी रचना में जीवन उडेलता है, वहा प्रकाशक पक्के कारखाने व्ययसायिक की भांति अपने नफे नुकसान पर पक्की नजर रखता हुआ, साहित्य का प्रकाशन करता है, उसे अपनी कौड़ियों का रयाल है, साहित्यकार का नहीं, उसके आदेशों का नहीं, उसके आत्मयज्ञ का नहीं, उसकी निष्ठाका नहीं। वह समझता है इस मजदूर का मैंने मजदूरी दी है, (यद्यपि दी नहीं है, देने का वायदा किया है) तो इसे मेरा काम, मेरी सुविधा और आराम के मुताबिक ठीक ठीक करके देना चाहिए। खरी मजूरी चोखा काम। वह साहित्यकार की टूटी हुई कमर में लात मारकर कहता है, अरे मूढ, तूने अपनी रचना में मोती बखेरे हैं या कूड़े का ढेर इकट्ठा किया है, इससे मेरा क्या सरोकार है, तू इतना खराब क्यों लिखता है, कि मुझसे पढा ही नहीं जाता। मेरा

तेरा जो साना हुआ है उसको गनुसार ऐसा तिरा, मि मे अपने बहीखाते की तरह उमे पढ और समझ सकू। नी तो यह बात तर मिर पर है।

यह मेरी निष्ठा तथा है आजक इम नए युग म जय मि की गार्हिय का सूय मध्याह्न म प्रार तेज बखेर रहा है, म 'वशाली की नगरवधू' तिय रहा है और भूखो मर रहा है। 'सोमनाथ' भट नर रहा है और टुफर टुफर दख रहा है जवान बेटी के बाप भी तरह, कि इस हयिनी का कोई गार्ह भी है। 'वयरधाम' भट कर रहा है और प्रकाशक की ताल पीली आख देख रहा है, लात खा रहा है। उसका पसा खच हो रहा है, काम का हज हो रहा है, कितनी राराय बात है। यदि वह बोती जोडा का बिजनेस करता, गेहूँ का, रुई का सौदा करता, याज पर रुपया चलाता तो हेर फेर मे अब तक कितना कमा लेता ?

जो हो, मेरे प्राणान्त परिश्रम का फल 'वयरधाम' १९५५ मे जनता के सम्भुरा आ गया था। इरादा जरूर यह कर रहा था कि उनके प्राद नया उपन्यास 'सोना और खून' दस भागोमे आपको भेट करू, परंतु न जाने कौन भीतरसे बोल रहा है कि यह कृति अपूरा रह जायगी। फिर भी मैं मुनता कब हूँ, जब तक दम मे दम है, होश हवाश दुरुस्त है रक्तवी एक बूद भी गम है, कलम छोड्ना नहीं। परंतु भविष्य अदृष्ट के हाथ मे है। 'वयरधाम' लिखकर मेने प्राचीन आय सस्कृति और सभ्यता की विस्मृत बातो को मूत किया। इस मूतकला मे मैं अपने ही पर आभारित हूँ। मैं ही अपना आदश हूँ। मेरे ही अपने विचार हैं, भावना हैं, कल्पना है, मेरा ही अपना दृष्टिकोण है। वेद ब्राह्मण पुराण स्मृति आदि से मित्र, मेमोपोटामिया, बabilonia, पर्शिया और यूनान के अति प्राचीन इतिहास का तुलनात्मक अध्ययन है। देव दैत्य दानव नाग यक्ष रक्ष मानव आनव आय प्रात्य मत्स्य गरुड वानर— ऋषि महिष आदि इतिहासातीत जातियो की अब तक अविश्रुत विस्मृत, सवथा नत्रीन, सागरग असा वारण स्थापना है। उसमे मुक्त सद्वास है, विवरान विचरण है, हरण और पलायन है। शिश्नदेव की उपासना है, वैदिक अवधि का अद्भुत सम्मिश्रण है, नर माम की खुले बाजार मे बिक्री है, नृत्य है, मत्र है, उ मुख अनामृत यौवन है।

जसे आपका शिव मंदिर मे जाकर शिवलिंग पूजन अरतीत नहीं है, उसी भाति मेरा 'शिश्नदेव' भी अश्लील नहीं है। उसमे धमतत्व समावेशित है। फिर, वह मेरा नहीं है, प्राचीन है, प्राचीनतम है, सनातन है। विश्व की देवदैत्य, दानव मानव आदि सभी जातियो का सुपूजित है। सत्य की व्याख्या साहित्यकार की निष्ठा है। उसी सत्य की प्रतिष्ठा मे मुझे प्राग्वेदकालीन नवश के जीवन पर प्रकाश गतना पना। अनहोन, अविश्रुत, सवथा अपरिचित तथ्य मेरे इस उपन्यास मे है।

'वशाली की नगरवधू' लिखकर मेने हिंदी कथा साहित्य मे यह नया मोड

उपस्थित किया था, कि अत्र उपयास हमारे मनोरजन के तथा चरित्र चित्रण भर की सामग्री न रह जाये। 'व्यरधाम' इस दिशा में जबदस्त अगला कदम था। इसमें प्राग्ब्रह्मानीन विप्रिय नवशा के तिस्रुत पुरातन रेखा चित्र है। उस के रगीन चमसे देर, हर जिह सारं ससार ने अ तरिक्ष वा देवता मान लिया था मने उह नर रूप मे इस उपयास मे आपने समस्त उपस्थित करने का दुस्सह साहस किया हे। 'व्यरधाम' कहने भर को ही उपन्यास हे, पर तु वास्तव मे वह मेरा दुस्सह शव्ययन है। आज तक कभी मनुष्य की प्राणी से न सुनी गई वाते में आपको सुनाने पर आमादा हूँ। व्याख्यात तत्त्वा की निवेचना मुझे उपयाम मे स्थान-स्थान पर करनी पडी है। मेरे लिए दूसरा माग था ही नहीं। फिर भी प्रत्येक तथ्य की सगमाण टीका बिना किए में प्रपना बचाव नहीं कर सकता था। अत तीन सौ पृष्ठो से भी अधिक का भाष्य भी मुझे उपयाम पर लिखना पडा है। अन्त मेरा परिमित ज्ञान इस अगाय इतिहास को साझोपाङ्ग व्यक्त कर सकता था। मध्ये मे मैने सब—वेद पुराण, दशन ग्राहण और इतिहास के प्राप्तव्या को एक वडी सी गठरी मे बाँकर इतिहास रस की एक पुवकी देदी है। सगको इतिहास रस में रग 'अतीत रस' की नई स्थापना की है।

निर्माण शशी भाषा और शव्ययजना के सम्बन्ध में भी दो शब्द कहना चाहता हूँ। आज के तिस्रुत मनुष्यी प्राय अंग्रेजी भाषा और साहित्य के पठित पण्डित हे। उनकी साहित्य गति भी भाषा, भाव, गली और कला की दृष्टि से अंग्रेजी साहित्यनिष्ठा की ओर उभरा है, मेरा यह उपन्यास इस दृष्टि से सवथा नई कला से ओत प्रोत है। जैसे उसकी तथावस्तु प्राचीन—प्राचीनतम हे, उसी भाति उसकी शली, भाषा निर्माण, कला भावव्यजनाए सबकुछ सस्कृतनिष्ठ है। कही कही तो सस्कृत मिश्रित भाषा हे, कही समूचा हो परिवेद सरकृत में है। बहुधा अनाय महत्पुरुषा का कथोप कथन सस्कृत मे कराया गया है। अथ का समपण पत्र भी सस्कृत मे हे और 'इति' व्याख्या भी सरकृत मे हे। अन्य ती ममाप्ति मदीदरी विलाप पर हुई हे वह विलाप भी सस्कृत मे ही हे।

सस्कृत का में पण्डित नहीं हूँ। जीवन के आरम्भ मे सस्कृत पढी अवश्य थी, अब सब भूलभात गया। सस्कृत से प्राय नाता ही टूट गया। यदा कदा कभी कुछ पढ लेता था, परन्तु अब उस उपयाग के लिखने के समय प्रासी कडी में उबाल आ गया। सो यह भी एउ चमत्कार कहना चाहिए।

भाषा को सञ्चारन मे मने पहनी ही बार इस उपन्यास मे चेष्टा की ह। परन्तु सवन नहीं, वही रही। भाषा के त्रिपय मे में बहुत नापरवाह हूँ। विचारो के प्रवाह मे तेजी से जब लिखने लगता हूँ, तो भाषा भागती, दीडती, लडखडाती, गिरती पडती पीछे पीछे भागती चली आती है। पीछे मुडकर मैं देखता नहीं। परन्तु इस उपयाम मे

तो भापा का मैंने रुचकर शृङ्गार किया है । एक वाक्य मे समास ही ग्राह्य देखिए—

कज्जलकूट के समान गहन श्यामल, अनावृत उ मुख यौवन, नीलमणि सी ज्या तिमयी बडी बडी आखे, तीरो कटाक्षोसे भरपूर जिनमे मद्यसिक्त लाल डोर, मदधूर्णित दृष्टि, कम्बु ग्रीवा पर अघर धरे से गहरे लाल लाल उत्फुल्ल अर, उज्ज्वल हीरकावलि सी ववल दन्तपक्ति, सम्पुष्ट प्रतिबिम्बित कपोल और प्रलय मेघ सी सघन गहन काली घुघराली मुक्त कुन्तलावलि, जिनमे गुथे ताजे कमल दल शतदल, कण्ठ मे स्वर्णभार ग्रथित गुजामाल, अनावृत, उन्मुख, अचल यौवन युगल पर निरन्तर आघात करती हुई मासल असफलक, भुजाओ मे स्वर्ण वलय और क्षीण कटि मे स्वर्ण मेखला, रक्ताम्बरमण्डित सम्पुष्ट जघन नितम्ब, गुल्फ मे स्वर्ण पंजनिया, उनमे नीचे हेमतार सूत्र ग्रथित कच्छप चम उपानत आवृत चरण कमल । सद्य किशोरी ।

सुलोचना का वर्णन देखिए—

मेघरहित क्षणप्रभा विद्युत् सी, कुमुदबन्धु चन्द्ररहित ज्योत्स्ना सी, मन्मथरहित रति सी थी वह सुलोचना सुलक्षणा दैत्यपुत्री मेघनाद प्रियतमा । जैसे विधाता ने उसे ससार की सब रचनाओ से अपने हस्तकौशल को परिष्कृत कर एक आदर्श रम्य मूर्ति रची थी । जो वसन्त ही फुलवाडी-सी प्रतीत होती थी । निर्दोष शुक्र नक्षत्र की भांति समुज्ज्वल दृष्टि, मनोज्य निर्वाच्य वदन कमल, जितवीरणा क्वणित वाणी । प्रस्फुट शरीर वि याम, शोभनीव अवयव सश्लेष, पीनपयोधर, सुशोभन गमन, शरदि दु सा गात्र समुच्चय, अभिनन्दित चरण युगल, अतिविपुल जघन, जसे काम ने सकाम हो, शरीरी हो, उसे रचा हो, जसे अनुराग ही का समूल आविर्भाव हुआ हो, जैसे तत्क्षणा ही उस गात्रलता मे सात्त्विक भाव अकुरित हुए हं । अतज्वलित मनोभव मे दह्य सी उसके गात्र से प्रस्वेद-जल प्रिय-सन्देश सुनकर ही भरने लगता था । कुसुम शरजाल पतिता सी वह तन्वी बारम्बार अनिमेष दृष्टिसे प्रियको जैसे पीती थी । उस स्तब्धतनु, सौत्कण्ठिता पुनकवती, स्वेदिनी, सनि श्वासा, के साथ धूत स्मर यथेच्छ क्रीडा कर उसे विह्वल रखता था । उसके नेत्रा की स्निग्धता राग प्रत्यायक थी । अनुराग के कारण उसकी वदनचञ्चल का तिमती प्रतीत होती थी । वाणी और गमन मे उस भीरु का जो स्पलन होता था— वह उसकी चारुता मे चार चाद लगाता था ।

उस बालाकी नवीन अनुरागागस्या मे उल्लासके साथ जो कुचयुगलमा उल्लसन् होता था, उसका सम्पन्न मनोहारि मीघ्य नेत्रो को पुलकित कर देता था । वह प्रणय भङ्गभीता ब्रीडिता— प्रियका त मेघनाद को समीप पाकर भी चित्त गन -माम्र पीडा को व्यक्त नहीं कर पाती थी ।

रूपगविता का विप्रलम्भ देखिए—

सखियो, कुछ चातुय करो, कुछ यत्न करो, आक्रान्त विपन्न का विपत्ति प्रति

कार न कर गुण उपदेश देनेसे क्या होगा ? यह सुरभिमास चत्र प्रिय होने पर भी अप्रिय सा लगता है। मृदु पत्रन ता स्वतः शोभन है, पर त्रिरहिणी के लिए अशोभन। अरी, हँसी तो मभी उडात है, पर समार म व्याकुल मन उमन जन को परित्राण देने वाले थोडे ही है। अब मे किमस कहूँ, आश्वामन कहा पाऊँ, किसकी शरण जाऊँ। मुझे तो यह शीतल मन्द दक्षिण मलय समीर बहुत ही पीडा दे रहा है। मुझसे तो कुछ कहा ही नहीं जाता—इमी से चिर मौनप्रता ये कोयल मुझसे वर निर्यातन कर रही है। ये क्षुद्र तियग्यानि निरकुशा भी मेरी व्यथा बताने को प्रिय विरहजनित स्वर मे कूक रही है। इन हमी ही तो देखो, दतराकर मेरी चाल का अनुकरण कर रहे हैं।

अब ये भोरे मेरे उल्लास वास से विदह्यमान होकर भी अलक कुसुमा का लोभ सतरण नहीं कर सकते। इमी से तो कहते हैं—कि विषय सभी दुष्ट्याज्य है। अरी, मुझे तो शरीर आरण भी भारभूत हो रहा है, और ये दुष्ट भोगे कणपूर मे सूखे फूलो पर गूज रह है। इह तो निवारण करो। यह हार, जो मेने बडे प्यार से हृदय पर आरण किया था—अब मेर शत्रु मनोभन से मिलकर मुझे दुख दे रहा है। भला अब कुशन कहा है उज्ज्वल स्वेदजन गण्ड और कपोलो से भर कर तथा कज्जलमिश्रित अश्रुजल से मित्रर गेमा हो गया है जसा प्रयाग मे गंगा यमुना का संगम है। कोयल की कूक मनय समीर, पुष्पा का सुवाम, पुष्पायुव और भौरे ये पाच अग्नि है। सो मे परिस्मरण की लानना म पचाग्नितप तपरही हूँ।’

अब सयाग शृङ्गार भी दगिण—

‘नसर्गिक प्रीति, अप्रतिबन्ध त्रिलाम, रतिरसायन वय तारुण्य, इन सबने मिल कर दोना को गनीभूत कर दिया। महशजनसमाश्रय काम। स्नेह के अतिरेक ने दोनो को वप्र बना दिया। व सोकुमाय का उल्लस कर निदय वामाचरण करने लगे, बारम्बार अभिनाप करने पर भी उनकी तृप्ति नहीं हुई। लज्जाभाव भी विगलित हो गया। वधमान राग के कारण—हृदय के गनीभूत भूत होने से—वस्त्राभरण भूषा सज्जा सभी कुछ अस्त व्यस्त हो गया। ऐसा उनका सुरतोत्सा हुआ। यथोचित रूप हो, यत्तथा अनुराग हा, अमन्द म जन हो, अभिराम यौग हो, ता जीवन का यथाथ प्राप्तव्य मिल ही मिने, और ममथ का अम द प्रेग भी अद्भुत प्रभाव रखा है। जहा अविनय ही शोभनीय माना जाता है। अनी चरण ही गमान समभा जाता है। निश्चकता ही जहा सोष्ठ्य और चाचय ही जहा गौरवा जान जन जाता है। जहा अग का अभेद हो जाता है। स्वदह म परदेह का त्रिनय करने की इच्छा कभी तृप्त ही नहीं होती। परिस्मरण परम सुखदाता हाता है। लज्जा जहा अग्रगुण कहाती है। विवेक जहा मूखतापूण बन जाता है। जो कामागिण आरम्भम ही धक्क धक जलती है, उनकी प्रवृद्धावस्था का वरणन कम किया जाय। जहा न पाण्डित्य काम देता है, न चातुय। सुरत रस मे निमग्न पुरुष

समाधि से भी परगति को प्राप्त होता है उसका वगन अरुध्य है। उहा हाम तिलास, चाटुभाव सभी समाप्त हो जाते हैं। उहा तो भगवान् तुमुमायु रतिपति ही का अबाय शासन चलता है। कैमा चमत्कार है यह, मृदुगात्र लता कामनरा त बाला दृढ पुरुष द्वारा आक्रात होने पर भी व्यथित नहीं होती, दर्पित होती है। निस्स देह यह मनोज्ञ मनोरथ का ही प्रभाव है। सुरतयोग म तो जस दानो का दह सायुज्य रूप द्रवत हो जाता है। इस हृदया-द्रवत भाव ही से दोनो, रमणीय और रमण भिन्न त्रिगी और भिन्न शरीर सम्पत्ति तथा भिन्न गुण होने पर भी तृष्णातिशय मे एक्याभिनाष स परस्पर अनुप्रवेग करते है। तब कौन रमण, कौन रमणी है। यह भद अभेद हो जाता है। यह मेरा अग अवश्य है, यह पराया, यह भेद बोध नष्ट हो जाता है। निर्व्याजरूपेण प्रिय के अक म अर्पित वपुषा कामिनी की मिलनरात्रि जसे क्षण भर ही म व्यतात हो जाती है।'

लका का एक राक्षस नागरिक अपने एक ऋणी का स्त्री पुत्र सहित पकड़ लाया। वह ऋण न चुका सका था। पुरुष को उसने बंध कर डाला। स्त्री और पुत्र को यूप मे बांध वह बंध करना ही चाहता था कि—

यह क्या किया रे व्याघ्रक्ष ?

तो मे अपना ऋण छोड़ दू ?

छोड़ उन्हें, अभी बंधन मुक्त कर।

तो ला तीन स्वर्ण, तू ही दे दे।

पर तूने पुरुष को तो मार ही ाला।

उस सूखे बूढ़े मे मास ही कितना है, एक स्वर्ण भी तो नहीं उठेगा उसका। आज युद्ध मे उस द्वीप के बहुत तरुणो का बंध हुआ है। वे सब बिरुन हाट मे आए हैं। आज नर मास का भाव बहुत सस्ता हो गया है। फिर यह बूढ़ा, यह बालक। ऊहूँक, में बहुत घाटे मे रहूँगा। सोच भला, तीन स्वर्ण और व्याज।

यह ले तीन स्वर्ण, खोल उनका बंधन। उसन स्वर्ण उरारी और फक दिए।

व्याघ्राक्ष ने हसकर स्वर्ण उठा लिए। फिर कहा—तनित्र परले आता ता यह बूढ़ा भी तेरे काम आता। वह बालक और स्त्री को प्रन्धन मुक्त करने लगा। परन्तु विकटोदरी ने क्रुद्ध मुद्रा से कहा—‘यह हृदय खण्ड और दसका मास में नहीं दूगी।

२६ अगस्त १९५५ को मेरी इस कृति का ग्रन्थिमोचन—समारोह सम्पन्न हुआ था। इस अवसर पर मैने अपने ६५वें जन्म नक्षत्र के शुभ क्षण मे समारोह मे उपस्थित सय छोटे बडो को प्रणाम कहते हुए कहा था कि आप अब आज अपने इस ६ साल के बालक को आशीर्वाद दीजिए कि वह इस कृति के बाद ‘सोना और खून’ वो दस भागो मे पूरा करके आपके समक्ष इसी भाँति उपस्थित होकर प्रणाम करे।

पूर्वीय भूखण्ड पर सवश्रेष्ठ पुरुष

पच्छीम उप पाम नन् १९३० म मने एक मासि पत्रिका का 'जवाहर विशे षाक' सम्पादन करते हुए श्रीजवाहरलाल नेहरू के विषय में लिखा था—आज के इन तरुणों के मस्तक पर जो उपगम शोभायमान है, वह 'जवाहरलाल' है। यह नररत्न आज भारत ही का नहीं, एशिया भर का सर्वांगिक त्राता और मरक्षक है। इस पुरुष की राजनीति और व्यापक याति ने विश्व के भाग्य विधाताओं को इसक प्रति चौकता किया हुआ है और यह कहा जा सकता है कि यही पुरुष निकट भविष्य में विश्व की सावभूम शक्ति का स्थापना में सर्वोच्च स्थान ग्रहण करेगा। देश ने उस आज राष्ट्रपति का स्थान दिया है, पर वह तो जन्मसिद्ध राष्ट्रपति है। आज भारतीय काग्रेस सम्भवत एशिया की सम्पूर्ण राजनीति में गतिप्रिय पर प्रभाव डालने की सामर्थ रखती है। कल ज्योही जवाहरलाल के नवतम म अट प्रिटेन का भारत से सम्बन्ध विच्छेद होगा, त्योही सम्पूर्ण ऐशियाई देशों की भाग्य रण्य भी बदल जावगी। इसलिए विश्व की राज नीति में जवाहरलाल का स्थान गांधी, चर्चिल, स्टालिन और चाकगाईशेक से कही अधिक महत्वपूर्ण है। वह सबसे सफलता दूर है, एक जवाहरलाल ही उसके द्वार पर पहुँचे है। जवाहरलाल हमारे लिए वेदनाओंके पवत छातीपर उठाए है। उन्होंने अपनी आयु का एक बड़ा भाग जेता की गृणास्पद कोठरियों में काटा है, पत्नी का विछोह सहा है, जीवन की बहुत सी लातनाओं से वे त्रित रहे है। उन्होंने इच्छापूर्वक श्रीमताई का ताज उतार फाटा है और हमारी गरीबी और भूख में शरीक रहे ह।'

उसी से मैंने अपनी गणस पिय वस्तु अपनी साहित्यिक प्रतिनिधि रचना वशाली की नगरमधु उह समर्पित करते हुए लिखा था—ओ ग्राह्यण, तेरे राज्यमें शतप्रतिशत असुविधाओं और निपरीत परिस्थितिया में जीकर हमने यह अथ तैयार किया है। तू जो पाश्चात्य राजनीति के प्रस्त माग पर अपने ग्रासपाम के कूडे ककट का भार लाद उतावली में दश को घसीट ले चला और मानव स्रष्टृति के निर्माता तथा कोटि कोटि जनपद के शास्ता साहित्यज्ञ था। एक बारगाँ ही भूत बैठा, उससे तुझ पर निभर रहने वालों और तुझे प्यार करने वालों को गिर धन धुन कर अपने ही कायर रक्त में ग्राह्य स्नान करना पड़ा। तू भी व तुझ प्यार करत है। किन्तु मैं रोपावेशित हूँ, क्योंकि मैंने उन सत्रमें अधिक तुझ प्यार किया है। इसलिए कि तू मेरी दृष्टि में पूर्वीय भूखण्ड पर एकमात्र जाग्रित गव्यष्ट पुरुष है। अपने साहित्यिक रोष और दार्दिक प्यारकी स्मृतिमें यह अपनी प्रतिनिधि रचना तुझे भेंट करता हूँ।'

नेहरू के लिए मैंने मदन चर्चित रहता हूँ। वेशक वे युग पुरुष है? पर तू जैसे मकनी अपने जाल में ही फँस जाती है, वैसे नेहरू भी आज अपनी ही राजनीतिमें फँस कर खतरे के किनारे जा पहुँचे है। नेहरू का व्यक्तित्व ही देश को उस अराजकता के

खतरे से बचा सकता है जो चारा आर से देश को नेरता चला आ रहा है । वास्तव मे काग्रेस पर अक्रमात ही अग्रजा न भारत का शासन भार फर दिया । इमरु लण काग्रेस की कोई तैयारी ही न थी । अतर्कित रूप से देश के शासन ही का भार काग्रेस पर नही आ पडा, त्रिभाजन की अकृतिपत विभिषिका को भी उमे भेनना हुआ । यह बडी बात समझनी चाहिए कि काग्रेस इस त्रिपम परिस्थिति को पार कर गई और उसका बहुत अश मे श्रय जवाहरलाल को है पर तु काग्रेस क सिद्धात म बहुत मूल भूत गलतिया थी । प्रथम तो यह कि उसका साराही सगठन राजनीतिक था । उसन अग्रजी सम्राज्य वादी ढांचे पर अपनी राजनीतिक लोकशाही का निमाण किया और उसका सगठन अमेरिकाकी आर्थिक लोकशाहीकी परिपाटी पर किया । जिसके परिणामस्वरूप भारतीय शासन काग्रेस की गाधीनता मे जनतंत्र न बन सका—गणतंत्र न गया । गणतंत्रा के भीपण परिणाम भारत शताब्दियो पहले भी भुगत चुका है । इस गणतंत्र की सबसे बडी खराबी यह थी कि अविचार योग्यतम पुस्पा क हाथम नही गया, जो जनतंत्र का प्रमुख मिद्धात है, प्रत्युत गुटो के प्रतिनिधियों के हाथ म गया । देश म दलब दी का ऐसा बुलित रूप बन गया कि आज काग्रेस तथा सच्चे देश भन । ही ने परस्पर त्रिरोधी गुट बन लिए । आज उनकी शक्ति देश का सुखी समृद्ध करन की अपक्षा परस्पर के सत्रप मे समाप्त हो रही है तथा जवाहरलाल दिन प्रतिदिन त्रिरोधी तत्या से घिरते जा रहे है । पटलके बाद तो वे सत्रथा अमहाय अकेले रह गए है । दूसरी बात है कि जवाहरलाल ने साहित्यजनो का साथ छोड दिया । गाधीके जीवित रहत साहित्यजन उनके साथ थ । कह सकता हँ कि साहित्यजन ही गाधीको अपन करे पर बटाकर सफलता और समथन के उस यशस्वी उच्च पद तक ले गए जटा त्र आज प्रतिष्ठित है । आजका साहित्यकार जवाहरलाल का समथक नही है । इमके अतिरिक्त मेरा यह भी विश्वास है कि गाधी युग बीत चुना । भावी राजनीति के निर्माण के लिए 'नय दशन' की आवश्यकता है, जिसका निमाण साहित्यकार करे ।

उनके प्रधान मंत्री पद पर आरूढ होने के कुछ मास व्यतीत होने पर मेने उन्हे भारतके भावी शासनत्रिगणम सर्वा त्रत साम्कृतिर स्मृतिपत्र भेजा, जो उस प्रकार था—
आदरणीय पण्डित जी,

मेने बहुत बार आपमे मिलने और विचार त्रिनिमय करने की गमय समय पर उच्छा की, परंतु आपके पदारूढ होने के बाद बहुत स सक्च के कारण पैदा हो गए । पूव का व्यक्तिगत परिचय भी नगण्य था । आप जब तत्र देशने नता थे, आपनी प्रतिष्ठा चरमसीमा पर पहुँच गई थी, परंतु राज्याधिकारी होने क बाद उसपर खतरे ही खतरे खडे हो गए और अब मेरी दृष्टि म वह पूव सचित प्रतिष्ठा खर्च करके ही आप अपने पद भार को ढोए जा रहे है । एक दिन वह रत्ती रत्ती खच हो जायगी और न जाने

ग्राप किम अपकीर्ति के गढे में बनेल दिण जायगे । इमका कारण मै यह समझता हूँ कि ग्रापने राजनीति के आगार पर नव्य भारत को अनुशासित करना प्रारम्भ किया, सांस्कृतिक आगार पर नहीं । यह जानत हुए भी कि हम राजनीतिमें योरोप के विल्कुल नोसिखिण और अच्छे शिष्य ने और यह देखत हुए भी कि हिटलर और मुसोलिनी जैसे रयातनामा जन राजनीति की चक्की में पिस मरें । ग्राप जैसे बहूदर्शी विद्वान् मनस्वी से यह भी छिपा न था कि भारत संस्कृति में विश्वगुरु है और उसकी सांस्कृतिक वाक इस हीनास्था में भी विश्व पर अन्तित है । कहने को कांग्रेस महात्मा गांधी की अनुगत रही, पर मत्य तो यह है कि कांग्रेस ने महात्मा गांधी के सांस्कृतिक विकास को तोड़ मरोड़ कर राजनतिक विकास का विकृतरूप दे दिया और कहीं दबाकर, कहीं विवश करके महात्माजी की शक्तिया का अपने ही विचारो के प्रचार का माध्यम बनाया । परिणाम यह हुआ कि जहां तक महात्माजी के सांस्कृतिक विकास का प्रभाव हुआ, देश का जनमत जाग्रत और सुगठित हुआ, परन्तु राजनतिक विकास जो कांग्रेस के हाथ में था, देश की जनता पर खतरे का बोझ लादता ही चला गया और अब जनसाधारण उस अमहायावस्था में पहुँच गए हैं कि यह नहीं कहा जा सकता कि किम क्षण ग्राप जकता के मृत्यु रूप में गिर जाय ।

कांग्रेस की हालत और भी दयनीय हो गई है, कांग्रेस ने सदैव ऊँचे आसन पर बैठकर अयाय स युद्ध किया उस पर फतह हामिल की, पर तु इसके बाद उसने उससे मुलह करली और उसे उमी आसन पर बहाल कर दिया । जो अयाय पहिले अंग्रेजी अदल और अग्रावके उपद्रवमें जनसाधारणको पीडित करता था, वह अब कांग्रेसके तिरगे भण्डे के नीचे मनमानी कर रहा है । अंग्रेज उस्ताद थे, कूटनीति के मझे हुए खिलाडी थे । इससे उनके चेहरे की लाली अन्याय से गद-से गद खेल खेलने में भी अक्षुण्य बनी रही, परन्तु कांग्रेस के हिमधवल खट्टर के परिवान पर तो अयाय के काले दाग छिप न सकगे ।

कांग्रेस ने दशभक्ति, स्वाधीनता और राष्ट्रीयता को अपनी राजनीति बनाया । उसने साम्प्रदायिक न हाने पर भी साम्प्रदायिक विभाजन स्वीकार कर लिया । नौकर शाही से घृणा कर । पर भी देश की जनता को उसीकी दया पर छोड़ दिया । सांस्कृतिक विकास को छोड़कर अग्राज स सीखी हुई राजनीति के द्वारा शासनचक्र चलाना प्रारम्भ किया ।

यह स्पष्ट है कि कांग्रेस का राज्य जनता का राज्य नहीं है, कांग्रेसी राज्य में योग्यतम हाथों में अधिकार नहीं है । अधिकारी, कतव्य की निष्ठा से नहीं, अधिकारके दप से उसी ढंग पर जनशासन चला रहे हैं जमे साम्राज्यवादी अंग्रेज अपनी प्रजा (?) पर चलाते रहे थे । सत्रमें अधिक यह जिस कच्ची राजनीति का तानाबाना कांग्रेस के

अनाडी अधिकारी बुरे रहे हैं, यह पजीनारके प्रभाव में गरागरा है। कांग्रेस की सरकार कीमती दूरबीन लगाकर दुनिया के लागा के टिप्पणियाँ मयत रूप से उत्सुक है कि हमारी ओर उनकी नजर कसी है, परन्तु ये भूये नये, अरिष्टित, असत्याय और प्रराजकता के भय से भयभीत अपने चारों ओर फले हुए करांडा नरनागियाँ जो नीचे देख रहे अथवा देखकर भी निरपाय हैं। यह कांग्रेस की सद्द्वान्तिव भाव है। सबसे अधिक दुःख की बात यह है कि कांग्रेस सरकार बुद्धिहीन और चरित्रहीन जाती जा रही है। उदा. भगडा हिंदू मुसलमानों का यह है कि मुसलमान हिंदुओं में बहुत अधिक मगणित और मभ्य है। वे हिंदुओं से बहुत अधिक हाजियार और तयार हैं, हिंदुओं के मुकाबिले उहाने एक मजिल जीत ली है, दूसरी की तैयारी है। कांग्रेस इस बात को समझना तो दूर, सुनना भी नहीं चाहती।

मेरे अग्रजों पढा लिखा आदमी नहीं हैं, वे वकील हैं। उस हिंसा से मैं मूख पुरुष हूँ। फिर भी मैं एक नगण्य साहित्यकार हूँ और व्यवहारिक जीवन में इतना पिछड़ा हुआ हूँ कि बिना विवाद मैं अपने को एक अनागरिक स्त्रीकार करना निरापेक्ष समझता हूँ। पर साहित्यिक दृष्टिकोण से मैं यह कहूँगा कि सांस्कृतिक विकास से ही जनगण का विकास होगा। हिन्दू मुसलमानों का सांस्कृतिक मिश्रण हुए बिना काम नहीं चल सकता है। दुःख है कि हमने भाषा के प्रश्न को भी एक राजनीति बना दिया है, मैं आपसे अनुरोध करूँगा कि साहित्य की सामर्थ्य पर विचार कीजिए। शासन में साहित्य को सांस्कृतिक प्रभाव उत्पन्न करने दीजिए और एक बार बल लगाकर देशकी राजनीति को साहित्य के सांस्कृतिक प्रभाव की निगरानी में दे डालिए।

साहित्य को हमें सोष्टव की दृष्टिसे नहीं देखना चाहिए। देखना है साहित्यकार का चरित्रबल कसा है और ससार पर उसके साहित्य का क्या प्रभाव पड़ता है। सिख सम्प्रदाय के 'ग्रंथ साहब' का मैं एक उदाहरण देता हूँ, उनकी रचनाओं का महत्त्व साहित्य की दृष्टि से उतना नहीं, जितना चरित्रबल के कारण है। इसी चरित्रबल से ये रचनाएँ उस समय देशोन्नति में इतनी सहायक हुईं कि हम कह सकते हैं कि हिंदी साहित्यका सर्वोत्कृष्ट ऐतिहासिक फल सिख जातिको मगठ और उसकी उन्नति है। उसी प्रकार तुलसी जी रामायण को लीजिए। उसमें भारत के उत्तिहास की धारा ही बदल दी, हिंदू मुसलमानों में एकरा बढा, समाज में महिम्नता, मर्यादा, शय, मगठन, शैय और आशा का बीज बपन हुआ। तुलसी के रामके प्रभावशाली भण्डेरी ठाया मैं आगे चत्तरर छत्रपति शिवाजी न दक्षिण में गीजापुर, गोनकुण्डा और दिल्ली को निर्मदित करके विशाल महाराष्ट्र राज्य की स्थापना की। तुलसी ही के राम का बल धरकर तीस वष राठौराने मुगला से लोहा लिया। इन्ही तुलसीके राम का बल पाकर छत्रमारा ने केवल पाच सवारों और पच्चीस पैदलों की सेना लेकर मुगलों से लोहा लिया और

त्रिजया पर त्रिजय प्राप्त करके दो कराट त्रिजय का विशाल राज्य बुन्देलखण्ड में स्थापित किया। तुनभी कभी त्रिजय को पाकर त्रिजय में बालाजी विद्वानाथ और वाजीराम पटना न मुगल साम्राज्य को धूम करके पांच सौ वर्षों में खाल हिंदू साम्राज्य की स्थापना की। ये तुनमीराम क हिंदू मगहन के महान परिणाम थे कि दो ही शताब्दी के भीतर हिंदू साम्राज्य भारत में स्थापित हो गया। यह हिन्दुओं का दुभाग्य था कि १८वीं शताब्दी में उगवी भ्रान्त सम्भालावाता बोर्ड प्रतापी मगहनकर्ता नहीं पदा हुआ।

आप पिछले २६।२७ वर्षों की क साहित्यिक सांस्कृतिक सामर्थ्य पर विचार कीजिए, जिस प्रकार उगने गच्छादियासे सुत और आत्मविस्मृत भारतीय राष्ट्र को उठा कर अद्भुत उमङ्ग और तेजसे जगमग कर दिया। अब आगामी पाँच दशाब्दी और भी द्रुतगति में गढ़ा चाह रही है। बड़ी बड़ी घटनाएँ और बड़े बड़े परिवर्तन अकल्पित तजी से भारत में हो चुके और अभी होंगे, जिनका पभाव सम्पूर्ण विश्व पर पड़ेगा। इन सब बातों पर विचार करके जहाँ आप देश की सम्पूर्ण चल-अचल सम्पदा को जन हित में लगाने में उत्सुक हैं, साहित्यिकों की विचारधारा का भी सदुपयोग कीजिए। महाकाल की गति त्रिपम है। वह कभी मल और कभी भीषण तीव्रगति धारण कर लेती है। उसके प्रभाव से व्यक्ति की भाँति राष्ट्रों के जीवन का एक-एक वर्ष कभी कभी सौ वर्षके समान भारी हा जाता है और कभी हँसते खेतते शताब्दिया बीत जाती है। इसलिए मैं अपने देश की जगी दामन व्यवस्था की कल्पना करता हूँ, उसका इस स्मृतिपत्र में त्रिचरण लिखना हूँ।

नात्मान्मदमयेत पूर्वाभिर समृद्धिभि

आमृत्योर्श्रिय मन्विच्छेने नाम्मयेत्सु बुर्लामाम् ।

‘पिछली असफलताओं के कारण अपने को अयोग्य न समझ, मृत्यु तक सिद्धि को ढूँढ और कभी उसे तुनभ न जान ।’

पहिला अस्याय

दक्षित सिद्धान्त

(अ) राष्ट्रीयता की भावना राष्ट्रीयता की भावना सघष और प्रतिद्वन्दिता को जग देती है और अनेकत्र का प्रतिपादन करती है, जिससे सघष अनिवाय हो जाता है क्योंकि उगम उत्कृष्ट का प्राबल्य है। इन कारणों से राष्ट्रीयता की भावना माननीय एकता की त्रिरोधी है। इसलिए हमें राष्ट्रीयता की भावना का सिद्धान्त त्याग करने माननीय एकता के सिद्धान्त को स्वीकार करना चाहिए।

वर्तमान भारतीय जीवन में राष्ट्रीय भावना का जन्म अब से २५ वर्ष पूर्व सन् १९२१ के लगभग महात्मा गाँधी के सत्याग्रह आंदोलन के साथ हुआ। उस

समय इस भावना ने सम्पूर्ण भारत की प्राचीनता तथा गम्भीरता भेदों को मिटा कर एक भारतीय राष्ट्र का रूप दे दिया था। अतः हम महत्तर काल में प्रविष्ट हो रहे हैं। हमें अतः एक कदम आगे बढ़ना होगा।

(आ) देशभक्ति—देशभक्ति की भावना विशुद्ध पूजापदी भावना है। देश वास्तव में मानव सम्पत्ति है। सम्पत्ति के प्रति ऐसी भक्ति भावना जिससे मानवजन रक्तप्लुत हो, अमानुषी सिद्धांत है। मानव जन जीवन, विश्व की बहुमूल्य निधि है। इसलिए देशभक्ति के स्थान पर 'मानव जन जीवन भक्ति' का सांस्कृतिक सिद्धांत माय बनना चाहिए।

वर्तमान भारतीय जीवन में देशभक्ति का जन्म अतः अगस्त ३० वर्ष पहले भारतेंदु हरिश्चंद्र और स्वामी दयानंद के द्वारा हुआ। उसी में देशभक्ति की यह भावना हिंदुओं और हिन्दू समाजप्रजना में ही पनपी। उन्होंने ही देश को 'जननी जन्मभूमि' कहा। 'व देमातरम्' गीत उन्हीं का भाववेश है। उन्हीं ने उसे मातृ भूमि कहकर माता के समान पवित्र पूजनीय और प्राणोत्सव तक के मूल्य पर सरक्षणीय समझा।

परंतु मुसलमानों और इतरजनों ने उसे मातृ भूमि नहीं माना। वे उसे एक विजित देश और अपने को उसके भोग का अधिकारी समझने लगे। इसी से हिंदू मुसलमान एक नहीं हो सके। एक उसे जननी जन्मभूमि और दूसरा भोग्यादासी समझता रहा। और हिंदू मुस्लिम विद्रोह का प्रारम्भ कांग्रेस के मंच पर 'व देमातरम्' गान से हुआ और अंत पाकिस्तान विभाजन, रक्तपात, में। दूसरे शब्दों में, देश स्वाधीन हुआ और देशवासी पराधीन हो गये। क्योंकि अपने घर के भीतर और बाहर सबके प्रत्येक जन अरबित, असहाय और भयभीत हैं।

(इ) स्वाधीनता—स्वाधीनता की आवाज गुलामी की आवाज है, जो आज सम्पूर्ण एशिया की सम्मिलित धरती में विश्वव्याप्त हो रही है। यह आवाज चाह व्यक्ति में हो या समष्टि में—मानवीय संस्कृति को विपरीत है। मानव एक सामाजिक जीव है और उसे अधिकारिक परस्पर अनुर्वारत रहना ही उसकी सभ्यता और सुसंस्कृति का प्रतीक है। गुलामी या दासता का प्रश्न प्रथम है। मानव जीवन उससे अवश्य मुक्त हो, पर सामाजिक सामाजिक जीवन में वह विश्व मानव से अनुबन्धित रहे।

पूजावाद ने दासता को जन्म दिया है। उसी ने विश्व के मनुष्यों को गोदाम में भरे हुए बोरो की भाँति एक के ऊपर दूसरे को लाद दिया है, और वे अपने ही जैसे समान भार और स्थिति के मनुष्यों के बोझ से दबे हुए हैं। ऐसा नहीं

होना चाहिए। सामूहिक जीवन में मानव को बाग में उन्मुक्त वायु में भूमती हुई लता जाम्बायो में मण्डिलिष्ट सुंदर खिले पुष्प की भांति हसते हुए विश्व में सौरभ विस्तार करना चाहिए। इसलिए हम मानव जनपद में स्वाधीनता की भावना को त्यागकर परस्पर आत्मापणपूर्वक सम सहयोग करना चाहिए।

(ई) साम्प्रदायिक साहित्यगुता— सामाजिक सावजनिक जीवन में साम्प्रदायिक साहित्यगुता सबसे अधिक प्रतिकूल है। समाज और सामाजिक जीवन में सम्प्रदाय का कोई सम्भव नहीं होना चाहिए। वर्तमान भारत सरकार की सबसे बड़ी विपत्ति यही है कि उसका देशविभाजन मत विभाजन, पद विभाजन सिद्धांत साम्प्रदायिक आधार पर किया गया। साम्प्रदायिक भावनाएँ केवल विश्वास और अंधविश्वास से अधिक विचारों तक ही सीमित रहे। सामूहिक जीवन में सम्पूर्ण जनपद एकरूप रहे।

(उ) सै य और शस्त्र—युद्ध का देवता मर गया। अब मानव जीवन में सेना और शस्त्र सदा के लिए विमज्ज हो जाने चाहिए।

अरुणसहस्र ने युद्ध शब्द को निरर्थक कर दिया। यह 'युद्ध' मानव सम्पत्ति नहीं, पशु की प्रकृति है। परंतु मानवता के बालकाल से लेकर आज तक मानव जीवन के विकास का महत्तर आधार 'युद्ध' रहा है। युद्ध ही मानव सभ्यता का उत्तिहास है। 'युद्ध' ही मानव की सबसे बड़ी सामर्थ्य रही है। अभी में मानव 'युद्ध' को अपने जीवन के शशव काल ही से अपने जीवन में लिप्त करता आया है। उसने युद्ध को वनना प्यार दिया कि आश्चर्यजनक वेग और उल्लास से उसने अपने प्राण और प्राणाधिक पदार्थ 'युद्ध' की भेट किये। और जिनमें अधिक किया उत्तिहास ने उसे प्रतिपुरुष बटकर कीर्तिमान दिया। परंतु 'युद्ध' मनुष्य का सम्पत्ति नहीं, पशु की प्रकृति है। फिर किसलिए पुरुष ने अपनी सम्पदा प्राण और पौरुष इस 'युद्ध' की भेट किए? इसका सत्य और एक ही गम्भीरतम उत्तर है कि मनुष्य कभी भी सम्पूर्ण मनुष्य नहीं हो पाया है, वह पशु का शोभा विकसित एक प्रगतिशील पशु रहा है। वहीसे उसने अपने विकास की सारी प्रतिभा और प्रगति पशुत्व के इस महान प्रतिनिधि 'युद्ध' के विकास में व्यय की है और यह 'अरुणसहस्र' इस दिशा में उसके चरम उद्योगों का नूतनतम परिणाम है।

परंतु सम्भवतः यह मानव मस्तिष्क में चिरविद्यित 'युद्धतत्व' का पूर्ण विराम है। इस महाशस्त्र के प्रादुर्भाव ने अतक विकसित सम्पूर्ण युद्धकला को निरर्थक कर दिया है। अब मनुष्यके सामने दो ही मांग है— या तो वह अपने अपूर्ण मानव तत्व को एक बारगी ही त्यागकर सम्पूर्ण पशु बन जाय तथा इस और

इस जैसे महात्मों से अपना स्वतोभावेन विनाश करने, या अपना म व्याप्त पशुत्व को एक बारगी ही निकाल फेंके और 'पूगपुरुष' होकर प्रिय गम्पदाओं का निभय भोग करे। उस निश्चय ही दूसरा ही भाग चुनना होगा।

यदि मनुष्य अपना मुरता से शक्ति हासिल अपना सामाजिक नागरिक जीवन में घातक शस्त्र धारण करके प्रियरग कर तो मना यह अर्थ है कि वह एक जगली अममथ और अप्रग सरकार की अमलदारी म रहता है। प्रत्येक सभ्य सरकारका पहिला लक्ष्य है कि उमने अमल में मानव को अभयमिले। सेना की महायता से व्यवस्था कायम रखना किसी भी सरकार की नालायकी का प्रमुख लक्षण है। अब तक अंग्रेज भारत पर सेना के बल पर शासन कर रहे थे। सेना के बल की वृद्धि के लिए ही सब सामरग पर शस्त्र रखने की मनाही थी। पर तु अब भारतीय सरकार को भारत पर शासन नहीं करना है। भारतकी व्यवस्था करनी है और यह सरकार भारतीय जन प्रत्यु मर्मित है। ऐसी दशा में भारत सरकार को प्रिय के सामने ऐसा आदेश रथापित करना चाहिए कि प्रिना ही सेना के देश की व्यवस्था हो और नागरिक जनता इस सरकार के अमल में अभय रहे। उह अपने पास पृथक् शस्त्र रखने की आवश्यकता न हो।

(ऊ) जनवाद—फिकट भ्रियम एकदूसरा दल वतमान भारतसरकार का उत्तराधिकारी होने की तथारी कर रहा है। इसमें और वतमान सरकार में मूलभेद 'जनवाद' है, जो बहुत कुछ सोत्रियत रूप की परम्परापर है। पर तु जन व्यवस्था वभी भी बहुमत पर निर्भर नहीं रह सकती। यह ता अनिपुष्टो और महापुरुषो की मेधा के आधार पर अत्रर्म्बित है। समाज में सब जन समान नहीं हो सकते। बहुमत प्रत्यु तो ना है। मेना ही प्ररुष जिन गम्भीर तथ्या पर मनन कर सिद्धांत निगय करगे, उनपर अत्यज्ञाता प्रमत लना अत्यंत हास्यास्पद है, अव्यवहाय भी है। अत जनवाद दश की व्यवस्था में सहायक नहीं हो सकता। 'वहुजन हिताय' गटापुरुष अतिपुरुष सदा समाज का पथ प्रदशन करगे, करते रहे है। हा, त्रितय का समाज में मम सहयोग होना शात्र श्यक है। परतु उसके लिए अनुशासन और मर्यादा पालन आवश्यक है, सबका समान होना नहीं। यह वभी हागा भी नहीं।

(ण) अधिकार और त्रतव्य—अंग्रेजी राज्य का मूल आधार अधिकार ना, इसी से वह सरकार दुर्मत करती थी। परन्तु जनता की सरकार का आधार त्रतव्य होना चाहिए। अधिकार यह कहता है कि मैं यह कर सकता हूँ पर त्रतव्य कहता है कि मुझे यह करना चाहिए। अधिकार का आधार सामथ्य

हैं और कतव्य का आचार विवेक और याय है। जन व्यवस्था सामर्थ्य पर निर्भर नहीं, विवेक और याय पर निर्भर होनी चाहिए।

स्वाधीन भारत की वर्तमान सरकार का ढाँचा भी अभी अंग्रेजी सरकार की पद्धति पर है। अदालत पुलिस, सेना और कुछ अय विभाग जो जन सम्पर्क में हैं अविकार मंद में कतव्य विमुख हैं। वे जनता के सेवक और सहायक न होकर हाकिम और अविकारी ही अपने को समझते हैं इसी से वर्तमान सरकार में अव्यवस्था भ्रष्टाचार और अराजकता का उदय हो गया है। जन साधारण अभी भी वर्तमान सरकार को अपना अग न मानकर अपने को विदेशी सरकार के पजे में फमी असहाय समझती है। जनता की सरकार जब कतव्य के सिद्धांत पर संगठित होगी, तब 'हुक्म', हाकिम, 'प्राथना', 'सेवक', 'रामा', 'आज्ञाकारी', आदि दासतामूलक शब्दों का वहिष्कार हो जायगा।

(ग) पूँजीवाद—६०% अपराध और १००% मघष पूँजीवाद के आचार पर अवलम्बित है। पूँजी के माध्यम को हमें सामाजिक मयादा से पूँगीभावेन निकाल डालना चाहिए। सामाजिक जीवन सस्कृति और सम सहयोग पर निर्भर रहना चाहिए। पूँजी का प्रभाव केवल विनिमय के मापदण्ड तक ही समित रहे। सावजनिक जीवन से पूँजीवादी प्रवृत्ति एव पूँजीवाद की श्रेष्ठता की भावना को नष्ट कर देना चाहिए।

दूसरा अध्याय

प्रस्तावित सिद्धांत

देश—'हिन्द'। जिमकी सीमा उत्तर में नेपाल, भूटान, सहित दक्षिण में लका सहित, पूव में बर्मा और द्वीप समूह सहित, पच्छिम में अफगानिस्तान सहित है। यह सम्पूग देश 'हिन्द' के अन्तगत होना चाहिए। वर्तमान हिन्द देश तीन भागों में विभक्त है—१—भारत, २—उर्हिभारत (पाकिस्तान), ३—बहिरङ्ग, भारत (नेपाल, भूटान, लका, बर्मा द्वीपसमूह, अफगानिस्तान)।

जाति—इम विस्तृत हिन्द के प्रत्येक निवासी की एक जाति हो—'हिंदी'।

भाषा—इम विस्तृत देशकी सावभौम भाषा 'हिन्दी' हो। इस हिन्दीमें २०% सस्कृत तत्सम शब्द समूह २०%, अरबी, फारसी, और अन्य एशियाई शब्द २०%, अंग्रेजी, फ्रेंच और योरोपीय देशों के शब्द, तथा ४०% रूढि योगिक नवीन शब्द हो।

लिपि—इम देश की लिपि हिन्दी, हो वह वर्तमान नागरी लिपि को सशोधन करके ध्वनि और द्रापों की दृष्टि से सुविवाजनक बनाई जाय।

मूलभावना—'मानव' विश्व की सबसे बड़ी इकाई है, उसकी पूजा निष्ठा

कविजन गेय है, इसके लिए 'सावभोम मानवीय एकता', मानव जीवन जन पूराभक्ति, तथा आत्मापरापूर्वक सावभोम सम सहयोग ।

सरकार—संपूर्ण सरकार जनपद की सरकार हो, उमी से व्यवस्थित हो । वह योग्यतम व्यक्तियों के हाथ में हो । वे शासन न हो व्यवस्थापक हो । व्यवस्था का सारा दृष्टिकोण कर्तव्य पर निर्भर हो, उस व्यवस्था का चरम व्यय जनपद में 'मानव अभय' हो ।

जनपद—सब उत्पादन, सब श्रम, सब सम्पत्ति जनपद की हो, जनपद के योग्यतम जन गपने ह्रायो उत्पादन श्रम और सम्पत्ति लेकर सब जनहिताय उसका उपयोग करे ।

राजा प्रजा—हिंद जनपद में दोनों न हो । सामी सबक भी न हो । ऊँच नीच का सीमित भेद कर्तव्य सीमा पर हो, जन जीवन में सब समान हो ।

हिंदी जनमघ—हिंदी सिद्धांतों के आधार पर 'हिन्दी जनसभ' संगठित हो और देश की व्यवस्था हिंदी जनमघ में संगठित जनो ने हाथ में हो । धीरे धीरे सम्पूर्ण जनपद 'हिंदी जनमघ' में एकभूत हो सांस्कृतिक दीक्षा ले ।

सघष—सघष और उपद्रवों का दमन सेना के घातक शस्त्रों द्वारा नहीं होना चाहिए, क्योंकि ये उपद्रवी जन असंगठित, क्षुद्र और अपराधी श्रेणी के लोग हैं, इनके लिए नगरीन प्रज्ञानिक उपाय जैसे अश्रु गैस, या उमी प्रकार के अय उपाय काम में लाए जायें ।

व्यवस्था स्थापन—भीति और दण्डके आधार पर नहीं सद्भावना और सावजनिक सुविधाओं के आधार पर होना चाहिए । उसका मापदण्ड नतिकता होना चाहिए ।

तीसरा अध्याय

क्रियात्मक कार्यक्रम

(क) प्रस्तावित सामूहिक योजना - भारत सरकार अतिगम्भीर सारकृतिक विभाग स्थापित करे और उसके सांस्कृतिक मंत्री नियत हो । वे सब जन साहित्य, संस्कृति, राजनीति और समाज व्यवस्था के महापणित हों, अतः वे ही उस विभाग का नेतृत्व करने योग्य हैं ।

(ख) यह विभाग निम्न कार्य करे—(१) सांस्कृतिक शिक्षा के द्रवी स्थापना । जहाँ सरकारी नौकरी पर आने वाला प्रत्येक व्यक्ति चाहे वह छोटा हो या बड़ा, एक निश्चित काल तक अध्ययन कर और वहाँ का प्रमाण पत्र बिना लिए सरकार में उसे नौकरी या पद न मिले । यहाँ पर निम्न विषयों की शिक्षा दी जाय—जनता के सहयोग और उसका विश्वास प्राप्त करने की रीति ।

बिना ही अधिकारप्रदशन कर्त्तव्य के मिद्धान्तपर जनव्यवस्था करने की रीति ।
हिंदी जनमण्ड के सिद्धांतों का सप्रयोग अध्ययन ।
व्यक्तिगत जीवन को आदर्श चिन्तन व बुद्धत्व के आधार पर चलाने के सिद्धान्तों
का अध्ययन ।

परीक्षार्थी की विचारधारा, जीवन शैली और क्रियाशक्ति के मापदण्ड की व्यवस्था ।

(२) सांस्कृतिक प्रकाशनकेंद्र—पंच मद्रास लाखके बनसे भारतमें तीन प्रकाशन केन्द्र स्थापित किए जाय १ कलकत्ता के निकट, २ दिल्ली के निकट, ३-मद्रास के निकट । जहां आधुनिकतम पुद्रण सहायता से ग्रंथों का मुद्रण हो । ग्रंथकी भाषा प्रारंभ लिपि हिंदी देवनागरी हो । यहाँमें समाज, राजनीति, शिक्षा, विज्ञान, स्वास्थ्य, सम्पत्ति, कला, साहित्य और इतिहास आदि सम्बन्धी ग्रंथों का प्रकाशन हो, जिन्हें सम्पूर्ण शिक्षा केन्द्र, स्त्रीवर्ग, जनसाधारण पढ़कर अपने नित्य जीवन में साम्कृतिक प्रतिष्ठा कर सकें । यह प्रकाशन ग्रंथ व्यक्तिगत प्रकाशकों की अपेक्षा अधिक मस्ता और टिकाऊ हो ।

१०० चुने हुए लेखक, कवि, विचारक, चुनकर उनसे मठ साहित्य तैयार कराया जाय और जनता में वितरण कराया जाय । ये लेखक वतन पर भी हो तथा रायल्टी पर भी इनके ग्रन्थ छापे जायें । ये सब लेखक भी सांस्कृतिक शिक्षा केन्द्र का प्रमाण पत्र प्राप्त हो ।

कम से कम तीनों केन्द्रों से एक साम्कृतिक मासिक पत्रिका भी प्रकाशित हो, जिसमें—बहुजन एकीभूत होकर सुखी, अभय और स्वावलम्बी जीवन व्यतीत कर सकें—ऐसी शिक्षा दी जाय ।

(३) सांस्कृतिक मंत्रालय विभाग—इसके द्वारा मन्त्रालय लेखकों, प्रकाशकों, सम्पादकों और वक्ताओं को अनुशासित रहना हागा । और वे बिना इस विभाग द्वारा स्वीकृति के कोई ग्रन्थ, पत्र आदि प्रकाशित न कर सकेंगे । सिनेमा भी इस विभाग से अनुशासित होंगे ।

(४) साम्कृतिक प्रचार विभाग—इस विभाग द्वारा ग्रामीण और अल्पजन्तुता को हिंदी सभके मिद्धान्त और सम सहयोग के सिद्धान्त समझाने को पम्फलेट, भाषण और सूचना पत्रों का वितरण किया जाय ।

रेलों में, मेलों में, सावजनिक घाटों और बाजारों में गायकजन ऐसे गीत गाये, जो साम्कृतिक कवियों ने तयार किए हों ।

सिनेमाओं के चित्रों, कथनांक और विवरणों द्वारा उन्ही भावों का प्रचार किया जाय ।

(ग) भारत सरकार का सांस्कृतिकरण—छोटी बड़ी पत्येक सरकारी नोकरी

या पद उ ही व्यक्तियों को दिये जाय जा 'हिन्दी जन सघ' म शपथ ले चुके हो और सांस्कृतिक शिक्षाकेन्द्र का प्रमाण पत्र ग्रहण कर चुके हों। गवर्नरसे चपरासी तक के लिए यह नियम अनिवार्य हो। ऐसी नियुक्तियों में इन बातों का खयाल रखा जाए—

इन सरकारी कर्मचारियों और अधिकारियों को सरकारी निवासस्थान दिए जाय जो सबसाधारण से प्रथम एक सांस्कृतिक मुहल्ले के रूप में बने हों। ये मुहल्ले छोटे बड़े सरकारी जनो के लिए उनकी सुविधा और सुख के अनुरूप हों। वहाँ वे 'हिन्दी जन सघ' के आदर्शों पर साम्प्रदायिक भाव से रहित एक सयुक्त पारिवारिक ढंग पर रहें। उच्च से उच्च पदाधिकारी और निम्न-कर्मचारी में सामाजिक और व्यवहारिक एकरता समता प्रेम पारिवारिक भावना से हो। कर्मचारी व्यक्तिगत रूपसे अपने विश्वासों और निन्दारोकी परिधिमें साम्प्रदायिक भावना रख सकते हैं तथा साम्प्रदायिक भावना वाले परिजनो में भी मिल जुल सकते हैं। पर वे स्वयं कोई ऐसा प्रदर्शन न कर सकते हैं, न उसमें सम्मिलित हो सकते हैं जो साम्प्रदायिक हो। साम्प्रदायिक भिन्नता के साथ ही जातपात और ऊँचनीच की भिन्नता भी उनके जीवन में रहेगी।

किसी भी जन से सरकारी दृष्टि से जाति, सम्प्रदाय, आदि नहीं पूछे जाय। सरकारी कामजो में टमका खाना भी न रहे।

'हिन्दी जनसघ' के आदर्शों पर जिनका व्यवहारिक जीवन उत्तम हो, उसी के आधार पर उन्हें नौकरियों पर तर्कही दी जाय। चरित्र, निष्ठा और मित्रता तय तीन प्रस्तुत उनकी उत्पत्ति व आचार रहें।

जो पुराने सरकारी कर्मचारी स्वच्छता में 'हिन्दी जनसघ' म शपथ ले और सांस्कृतिक शिक्षाकेन्द्र का प्रमाण पत्र भी ग्रहण कर चुके तथा चरित्र निष्ठा और मित्रता तय की दृष्टि से आदर्श हों, उन्हें तुरन्त ही पर उत्पत्ति दी जाय और उन्हें गतिरिक्त सुविधाएँ किसी न किसी रूप में दी जाय।

जो पुराने सरकारी जन 'हिन्दी जनसघ' म शपथ न ले, न सांस्कृतिक प्रमाणपत्र ही ले, उन्हें इसके लिए विवश न किया जाय, पर तु वे अपनी नियुक्ति में 'हिन्दी जनसघ' के नियमों का पालन करे तथा उनके स्थान के रिक्त होने पर प्रथम अधिकार उन पुराने जनो का हो जो पूर्वानुसार म उल्लिखित हैं।

(घ)—शिक्षा केन्द्रों का सांस्कृतिकरण—शिक्षा केन्द्रों का प्रत्येक अव्यय और कर्मचारी 'हिन्दी जनसघ' का सदस्य हो और सांस्कृतिक शिक्षाकेन्द्र का प्रमाण पत्र प्राप्त हो।

प्रत्येक बालक ५ वर्ष की अवस्था में, यदि उनकी है तो १८ वर्ष की अवस्था

तक, और यदि वह लडका ह तो २१ वष की अवस्था तक स्वस्थ अवस्था मे सास्कृतिक - ेन मे रहे । उमका रहन सहन,खान पान पठन पाठन शिक्षा के द्वा ही पे हो । पाठ्य ग्रन्थ सास्कृतिक मेमर स्वीकृत या सास्कृतिक प्रकाशन के द्वा के हो । उन पर कुल शिक्षा का व्यय सरकार करे और अपर प्राइमरी के बाद ठाना स कुछ ऐसे परिश्रम करा लिए जाएँ जिनसे वे अपनी शिक्षा और भोजन आदि के व्यय योग्य उत्पन्न कर सक । ताकि उनकी शिक्षाका भार सरकार पर न हो । उनकी छुट्टिया कम की जाए और उ ह एमे काम प्रतिदिन वा तीन घंटे कराये जाय, जिनमे विनोद, व्यायाम श्रम और आय भी हो । प्रत्येक लडकी लडके को ५ से १० वष की अवस्था तक एक साथ सहशिक्षा हो । इसम भाषा व्याकरण, गणित, काव्य, साहित्य, प्रारम्भिक शिल्प-कला और विज्ञान सिखाया जाय । स्वास्थ्य सदाचार शिष्टाचार, नित्यकर्म, व्यायाम और निचार भावना का अभ्यास कराया जाय ।

१० मे १५ साल की आयु तक लडकी और १५ साल तक लडके की शिक्षा प्रथक हो ।

लडकी गृहशिल्प, स्वास्थ्य प्राथमिक उपचार, रोगी सेवा, रकाउट,सगीत, साहित्य, अर्थशास्त्र, शिशुपालन, और गृहोद्योग सीखे ।

लडका साहित्य विज्ञान, शिल्प, गणित व्यापार तथा विविध कला और पुरातत्व का अभ्ययन करे ।

१५ साल बाद लडकी लडके समुक्त शिक्षा प्राप्त करे । लडकी को १५ वष की आयु म, और लडका को २१ वष की आयु मे स्नातक डिप्लोमा प्राप्त हो ।

इस कालमे वे चिकित्सा, अभ्ययन, कला, सम्पादन कला, विज्ञान, रसायन, शिल्प, कृषि, उद्योग, अर्थ शास्त्र आदि किसी एक विषय का विशेष अभ्ययन करे ।

इसके बाद उन्हें विवाह की अनुमति दे दी जाय । परन्तु यदि वे चाह तो दो वष तक विवाह स्थगित रख सकते है और किसी विषय पर रिसर्च या थीमिस तयार करके डाक्टर हो सकते है ।

स्नातक होने पर प्रत्येक स्नातक सरकारी वातावरण मे जनसेवा करे । सरकार उ ह सास्कृतिक रीति पर निर्वाह योग्य व्यय दे । यह वेतन उनके स्वास्थ्य जीवन और आवश्यकताओंके अनुरूप हो, जिसमे अति सचय का स्थान नही हो ।

२३ वष की अवस्था के बाद प्रत्येक युवक और २० वष के बाद प्रत्येक युवती अनिवार्य रीति पर विवाह करेगी । कुमार कुमारी रहने की आज्ञा सरकार खास हालतो मे दे सकती है ।

शिक्षाकेन्द्रा मे प्रत्येक हिन्दीजन वालक सम्प्रदाय या नीच ऊँच की बिना भेद

भावना के एक साथ रहे और शिवा प्राप्त करें ।

(ड) जनपद संस्कृतिकरण—सावजनिक जीवन में निम्न प्रकार से सांस्कृतिक प्रसार हो—

प्रत्येक युवक और युवती स्वयं पति पत्नी का चुनाव करें ।

वे प्रथम शारीरिक चिकित्सक और फिर मनोवैज्ञानिक चिकित्सक का प्रमाण पत्र प्राप्त करें, फिर सांस्कृतिक क्षेत्र की अनुमति लें । इसके बाद माता पिता या अभिभावक की स्वीकृति से विवाह हो । यदि माता पिता या अभिभावक सहमत न हों तो जिला मजिस्ट्रेट के समक्ष अभियोग हो और तब विवाह हो । विवाह वधू के घर पर जिला मजिस्ट्रेट दो साक्षियों की उपस्थिति में सम्पन्न करें । विधि में 'हिंदी जन सभ' में स्वीकृत प्रतिज्ञा होने पर एक विवाह सर्टिफिकेट दे दिया जाय ।

वरवधू विवाह के उपलक्ष्य में मित्रों का पीठि भोजन या अन्य प्रकार का समारोह विवाह के बाद एक सप्ताह के भीतर कर सकते हैं, परंतु उसमें कोई साम्प्रदायिक प्रदर्शन नहीं हो ।

भोजन, चिकित्सा, वस्त्र, और अन्य जीवा उपयोगी वस्तु वितरण सरकार द्वारा कंट्रोल से हो । प्रत्येक वस्तु में निश्चित दर सरकार करगी ।

प्रत्येक नागरिक अपने विचारों और विद्वानों में साम्प्रदायिक स्वतंत्रता रख सके, परंतु किसी भी साम्प्रदायिक भावनाओं सावजनिक प्रदर्शन न कर सके साम्प्रदायिक विद्वानों अलग माना जाय । साम्प्रदायिक विवाह की मनाही हो ।

सावजनिक साम्प्रदायिक पूजास्थाना, त्यौहारों, और रीति पद्धतियों का उपयोग व्यक्तिगत हो तथा अत्यन्त आवश्यक विषयों में सीमाबद्ध होना ।

ऊँचे नीचे की सामाजिक भावनाओं का हटाना चाहिए सामाजिक, परंतु उभरती सावजनिक व्यवहार नहीं होगा ।

समाज में उन्नत ऊँचे जनों का नीचे और वृद्ध नीचे जनों का ऊँचे रखने के प्रयोग अमल में लाए जाय ।

सम्मिलित समारोहों, उत्सवों और त्यौहारों की सृष्टि की जाय ।

पंजी बक सरकारी हो ।

व्यापार विनियम, यानायात सरकारी हो ।

वृषि, उद्योग, संश्लेषण समितियों का आचार पर हो ।

सामाजिक जीवन का सांस्कृतिक विनियोजन हो ।

रण शासन सब स्थापित हो ।

सावजनिक जीवन में विज्ञान को व्यवहारिक रूप में निकट लाया जाय, जिससे जीवन निर्वाह सरल, स्वस्थ, सुखी और स्वावलम्बी हो। नौकरो और आजी-वियों की आवश्यकता न रहे।

प्रत्येक मकान में बिजली फिट हो, फर्नीचर, प्रकाश, ताप और शीतोष्ण व्यवस्था मालिक मकान की ओर से प्रत्येक मकान में रहे।

पाखाने और रमोई आधुनिकतम हो। जहाँ बिजली के चूल्हे और तापयंत्र हो। मकान सामूहिक रूप से ऐसे बनाए जाय, जिनमें १०० परिवार एक साथ रह सकें। उन परिवारों की रोगी सुश्रुषा, रेडियो, फोन, आदि की व्यवस्था, बच्चों की देखभाल, प्रारम्भिक शिक्षा, विनोद आदि सम्भव संयुक्त हो, जलपान दूध आदि के प्राप्तिसाधन भी संयुक्त हो।

मकानों के निश्चित माडल हो अधिक से अधिक ६। उही में भिन्न भिन्न स्थिति के लोग रहें। मालिक मकान उसी पद्धति पर मकान बनावे।

राजा, रईस, जमींदार और पूजीपति—

राजा—वैधानिक हो। वह 'हिंद जन सघ' का एक सदस्य हो। शासनभार जनता के योग्यतम मनोनीत जनो के हाथ में हो, जो अंगिक से अधिक तीन वष के बाद नए सिरे से चुन लिए जायें। प्रत्येक राज्य का केवल प्रधानमंत्री अपने मण्डल के राजा और प्रजा दोनों का प्रतिनिधित्व भारतीय विधान परिषद में करें। प्रत्येक राज्य मण्डल में राजकोष से व्यवस्थित नियमित और अनियमित सेना रहे, परन्तु उसका सम्पूर्ण प्रबंध भारत सरकार के हाथ में रहे। राज्य मण्डल की सुरक्षा का सम्पूर्ण दायित्व भारत सरकार पर हो।

रईस और साहूकार—व्याज पर रुपया देने वालों पर सरकार का नियंत्रण रहे। उनके मूद की दर निश्चित हो, वे रास खास हालत में केवल उन्हीं व्यक्तियों को रुपया उधार दे सकें, जिन्हें उद्योगधंधों के लिए आवश्यक हो। इसके लिए आवश्यक प्रतिबन्ध नियत किए जायें।

किराए का आमदनी खाने वाले या इसी प्रकार की स्थिर आयवाले व्यक्तियों की जो बिना परिश्रम की आय पर निर्भर रहे, सूची बनाकर उन पर प्रतिबन्ध और नियंत्रण किए जायें। रहने के मकानों के सम्बन्ध में यह नियम बना दिए जायें कि नियत अवधि के बाद वे मकान किराएदार के हो जायें और फिर उन्हें किराया न देना पड़े।

जमींदार—जमींदारी की प्रथा उठा दी जाए और वे आधुनिक पद्धति पर किसान बना दिए जाएं। वे और उनके आसामी भूमि, परिश्रम और उत्पादन में संयुक्त कर दिए जाएं।

पूजीपति—सरकार के नियन्त्रण में अपनी पत्नी को विभिन्न उद्योगों तथा निर्माण में लगावे और सहयोग पद्धति पर श्रमिक और उनमें लाभ का बँट बारा हो जाए ।

दलित और खानाबदोश जातियाँ—दलित वर्ग दो है । १ हिन्दु, २ मुस्लिम । हिन्दु ७ करोड़ है और मुस्लिम ३॥ करोड़ । ये दोनों ही जातियाँ व्यवसाय में उपाश्रित, अशिक्षित और व्यसनहीन हैं । उन पर ५ करोड़ रुपये वष में खर्च किया जाय जो सांस्कृतिक दृष्टि से निम्न ढंग पर हो—

(क) इनकी बस्तियाँ नए ढंग पर बगाई जायें, जहाँ वे साफ सुथरे ढंग पर रहें ।

(ख) उनके बच्चा को भास ऐसी शिक्षा दी जाय जो उनके व्यसनमाय में सहायक हो और इसी अवस्था में विज्ञान और सहयोग समितियों की गहायता से उनके कार्यों को समृद्ध व्यवस्थित और सुविधाजनक बना दिया जाय ।

(ग) वे अपनी बस्तियों में और उनके बच्चे शिक्षा केंद्रों में साम्प्रदायिक भेदभाव से बचासम्भव दूर रहें और उन्हें रोटी ब्रेटी में रहने रहने में और कारबार में हिन्दु मुस्लिम भेद को व्यवहारिक तौर पर भुलाने के सब सम्भव उद्योग किए जायें ।

(घ) जनपद में वे समय समय पर बिना अपनी हीनता अनुभव किए सामूहिक समारोहों में सम्मिलित हो सकें । वयस्कि उन्नत होने पर व्यक्ति को उपयुक्त स्थान समाज में मिले ।

खानाबदोश जातियों को उलाहने व्यवस्थित करके नागरिक जीवन, कृषि, उद्योग और ग्राम्य के क्षेत्रों में जनसाधारण के साथ उस प्रकार अनुपस्थित कर दिया जाय—

(क) उन्हें खेती की जमीन देकर ।

(ख) छोटे बड़े कारखानों में काम मिलाकर ।

(ग) उनके बच्चों को अनिवार्य शिक्षा देकर ।

(घ) उनकी स्त्रियों को नागरिक जीवन का अभ्यस्तान बनाने ।

(ङ) उन्हें अनुपात से दलितजनता के साथ बंधा और उनके गुट तोड़कर । उस प्रकार भारतीय जनपद को वह लगभग १५ करोड़ कठोर परिणामी में प्राप्ति, सहिष्णु और स्वस्थ जनता का सहयोग प्राप्त हो जायगा, जो गृहोद्योग, ग्रामोद्योग, कृषि तथा निर्माण से भारत सरकार को प्रतिवर्ष ३०० अरब रुपये का उत्पादन देगा ।

महत, साधु, सयासी और भिखारी—सम्पत्तिशील महन्त और साधुओं की जागीरों के साथ जमींदारों के समान व्यवहार किया जाय ।

उनके क्रियाकलापो और मस्याओ की मागप्रदायिक उत्पत्ता कम करके जन-सेवा के रूप में बढ़ा दिया जाय। जैसे —

- (क) ग्राम्य चिकित्सालय
- (ख) ग्राम्य पुस्तकालय
- (ग) ग्रामोद्योग
- (घ) ग्राम्य मौखिक शिक्षण
- (ङ) सेवा, व्यवस्था आदि

साधु नायामी जन मजिस्ट्रेट से प्रमाण पत्र लें। जो जन सेवा कर उन्हें ही प्रमाण पत्र दिया जाय।

किसी भी नवीन व्यक्तिको चेला बनाना, मयास देना और दीक्षा देना कानूनन रोक दिया जाय।

भीख मागना, कानूनन रोक दिया जाय। और स्वस्थ स्त्री पुरुषों को उद्योग गृहों में भेज दिया जाय, जहाँ निवास, भोजन और पारश्रमिक उन्हें मिले।

बालक बालिकाएँ शिक्षा केन्द्रों में भेज दी जाय।

रोगी, अपाहिज और छूतके रोगियोंको प्रत्येक उपयुक्त स्थानोमें भेज दिया जाय। मन्दिरा, देवालया और पूजा स्थानोपर वन भेद करना कानूनन रोक दिया जाय। इस वर्ग की उत्थिति व्यवस्था करने और उन्हें समाज का अंग बनाने के लिए सरकार एक बरोड रपया वर्ष में खर्च करे।

‘हिन्दी जनसघ’—काग्रेस अब अपना नाम बदल कर ‘हिंदी जनसघ’ रखे। ‘हिन्दी जनसघ’ की शपथ लेने वाले नागरिक स्त्री पुरुषों को ही मताधिकार प्राप्त हो, वे ही सरकारी नौकरी में लिए जायें। सरकारी और अब सरकारी सहायता कृतोद्योगों में भी केवल वे ही लिए जाएँ। ‘हिंदी जनसघ’ की शपथ स्थानीय मजिस्ट्रेट के सम्मुख ग्रहण करके उसकी रजिष्ट्री कराई जाय, जो दो मासियों के समयन से हो। मजिस्ट्रेट अपने हस्ताक्षरका एक सर्टिफिकेट दें, जो सबत्र प्रमाण पत्र के तौर पर काम दे।

म भारत के प्रत्येक प्रधानमंत्री से निम्न प्रतिज्ञा करने की आशा रखता हूँ—
१—मे तीन नारे बुन द कहूँगा—१—देशभक्ति का नाश हो। २—राष्ट्रीयता का नाश हो। ३—स्वाधीनता की भावना का नाश हो। मैं जन जन की जय जयकार मनाऊंगा।

२—मैं इस गणतन्त्र को जनतन्त्र में बढ़ा डालूँ और गुट्टों के चौधरियों को कुर्सियों से उठाकर जनता के योग्यतम व्यक्तियों को योग्य अधिकार दूँ।

३—मे देश के किसी भी स्त्री पुरुष बालक को न अशिक्षित रहने दूँ, न गरीब,

न प्रमीर । मे सत्रको समान रूप से मध्य-राष्ट्रपत्र पीर पुगी बता २ ।

१—गव म ट या हृदयत साक्षाज्यशाही ५ सत्र १ । ११ म यय भारत के भागी ज्ञानतोष स प्रतिष्ठित करत । १२ के स्थान पर गह्याग व्ययस्था और १३ प्र की स्थापना कर, जिसस १४ भी मरगारी उच्च पदाधिकाारी अफमरी को धारा न जमा सट, शपन को जनसत्र सगके ।

५—मे किसी के पास व्यक्तिगत मारी और १५ १६ १७ १८ १९ २० २१ २२ २३ २४ २५ २६ २७ २८ २९ ३० ३१ ३२ ३३ ३४ ३५ ३६ ३७ ३८ ३९ ४० ४१ ४२ ४३ ४४ ४५ ४६ ४७ ४८ ४९ ५० ५१ ५२ ५३ ५४ ५५ ५६ ५७ ५८ ५९ ६० ६१ ६२ ६३ ६४ ६५ ६६ ६७ ६८ ६९ ७० ७१ ७२ ७३ ७४ ७५ ७६ ७७ ७८ ७९ ८० ८१ ८२ ८३ ८४ ८५ ८६ ८७ ८८ ८९ ९० ९१ ९२ ९३ ९४ ९५ ९६ ९७ ९८ ९९ १०० १०१ १०२ १०३ १०४ १०५ १०६ १०७ १०८ १०९ ११० १११ ११२ ११३ ११४ ११५ ११६ ११७ ११८ ११९ १२० १२१ १२२ १२३ १२४ १२५ १२६ १२७ १२८ १२९ १३० १३१ १३२ १३३ १३४ १३५ १३६ १३७ १३८ १३९ १४० १४१ १४२ १४३ १४४ १४५ १४६ १४७ १४८ १४९ १५० १५१ १५२ १५३ १५४ १५५ १५६ १५७ १५८ १५९ १६० १६१ १६२ १६३ १६४ १६५ १६६ १६७ १६८ १६९ १७० १७१ १७२ १७३ १७४ १७५ १७६ १७७ १७८ १७९ १८० १८१ १८२ १८३ १८४ १८५ १८६ १८७ १८८ १८९ १९० १९१ १९२ १९३ १९४ १९५ १९६ १९७ १९८ १९९ २०० २०१ २०२ २०३ २०४ २०५ २०६ २०७ २०८ २०९ २१० २११ २१२ २१३ २१४ २१५ २१६ २१७ २१८ २१९ २२० २२१ २२२ २२३ २२४ २२५ २२६ २२७ २२८ २२९ २३० २३१ २३२ २३३ २३४ २३५ २३६ २३७ २३८ २३९ २४० २४१ २४२ २४३ २४४ २४५ २४६ २४७ २४८ २४९ २५० २५१ २५२ २५३ २५४ २५५ २५६ २५७ २५८ २५९ २६० २६१ २६२ २६३ २६४ २६५ २६६ २६७ २६८ २६९ २७० २७१ २७२ २७३ २७४ २७५ २७६ २७७ २७८ २७९ २८० २८१ २८२ २८३ २८४ २८५ २८६ २८७ २८८ २८९ २९० २९१ २९२ २९३ २९४ २९५ २९६ २९७ २९८ २९९ ३०० ३०१ ३०२ ३०३ ३०४ ३०५ ३०६ ३०७ ३०८ ३०९ ३१० ३११ ३१२ ३१३ ३१४ ३१५ ३१६ ३१७ ३१८ ३१९ ३२० ३२१ ३२२ ३२३ ३२४ ३२५ ३२६ ३२७ ३२८ ३२९ ३३० ३३१ ३३२ ३३३ ३३४ ३३५ ३३६ ३३७ ३३८ ३३९ ३४० ३४१ ३४२ ३४३ ३४४ ३४५ ३४६ ३४७ ३४८ ३४९ ३५० ३५१ ३५२ ३५३ ३५४ ३५५ ३५६ ३५७ ३५८ ३५९ ३६० ३६१ ३६२ ३६३ ३६४ ३६५ ३६६ ३६७ ३६८ ३६९ ३७० ३७१ ३७२ ३७३ ३७४ ३७५ ३७६ ३७७ ३७८ ३७९ ३८० ३८१ ३८२ ३८३ ३८४ ३८५ ३८६ ३८७ ३८८ ३८९ ३९० ३९१ ३९२ ३९३ ३९४ ३९५ ३९६ ३९७ ३९८ ३९९ ४०० ४०१ ४०२ ४०३ ४०४ ४०५ ४०६ ४०७ ४०८ ४०९ ४१० ४११ ४१२ ४१३ ४१४ ४१५ ४१६ ४१७ ४१८ ४१९ ४२० ४२१ ४२२ ४२३ ४२४ ४२५ ४२६ ४२७ ४२८ ४२९ ४३० ४३१ ४३२ ४३३ ४३४ ४३५ ४३६ ४३७ ४३८ ४३९ ४४० ४४१ ४४२ ४४३ ४४४ ४४५ ४४६ ४४७ ४४८ ४४९ ४५० ४५१ ४५२ ४५३ ४५४ ४५५ ४५६ ४५७ ४५८ ४५९ ४६० ४६१ ४६२ ४६३ ४६४ ४६५ ४६६ ४६७ ४६८ ४६९ ४७० ४७१ ४७२ ४७३ ४७४ ४७५ ४७६ ४७७ ४७८ ४७९ ४८० ४८१ ४८२ ४८३ ४८४ ४८५ ४८६ ४८७ ४८८ ४८९ ४९० ४९१ ४९२ ४९३ ४९४ ४९५ ४९६ ४९७ ४९८ ४९९ ५०० ५०१ ५०२ ५०३ ५०४ ५०५ ५०६ ५०७ ५०८ ५०९ ५१० ५११ ५१२ ५१३ ५१४ ५१५ ५१६ ५१७ ५१८ ५१९ ५२० ५२१ ५२२ ५२३ ५२४ ५२५ ५२६ ५२७ ५२८ ५२९ ५३० ५३१ ५३२ ५३३ ५३४ ५३५ ५३६ ५३७ ५३८ ५३९ ५४० ५४१ ५४२ ५४३ ५४४ ५४५ ५४६ ५४७ ५४८ ५४९ ५५० ५५१ ५५२ ५५३ ५५४ ५५५ ५५६ ५५७ ५५८ ५५९ ५६० ५६१ ५६२ ५६३ ५६४ ५६५ ५६६ ५६७ ५६८ ५६९ ५७० ५७१ ५७२ ५७३ ५७४ ५७५ ५७६ ५७७ ५७८ ५७९ ५८० ५८१ ५८२ ५८३ ५८४ ५८५ ५८६ ५८७ ५८८ ५८९ ५९० ५९१ ५९२ ५९३ ५९४ ५९५ ५९६ ५९७ ५९८ ५९९ ६०० ६०१ ६०२ ६०३ ६०४ ६०५ ६०६ ६०७ ६०८ ६०९ ६१० ६११ ६१२ ६१३ ६१४ ६१५ ६१६ ६१७ ६१८ ६१९ ६२० ६२१ ६२२ ६२३ ६२४ ६२५ ६२६ ६२७ ६२८ ६२९ ६३० ६३१ ६३२ ६३३ ६३४ ६३५ ६३६ ६३७ ६३८ ६३९ ६४० ६४१ ६४२ ६४३ ६४४ ६४५ ६४६ ६४७ ६४८ ६४९ ६५० ६५१ ६५२ ६५३ ६५४ ६५५ ६५६ ६५७ ६५८ ६५९ ६६० ६६१ ६६२ ६६३ ६६४ ६६५ ६६६ ६६७ ६६८ ६६९ ६७० ६७१ ६७२ ६७३ ६७४ ६७५ ६७६ ६७७ ६७८ ६७९ ६८० ६८१ ६८२ ६८३ ६८४ ६८५ ६८६ ६८७ ६८८ ६८९ ६९० ६९१ ६९२ ६९३ ६९४ ६९५ ६९६ ६९७ ६९८ ६९९ ७०० ७०१ ७०२ ७०३ ७०४ ७०५ ७०६ ७०७ ७०८ ७०९ ७१० ७११ ७१२ ७१३ ७१४ ७१५ ७१६ ७१७ ७१८ ७१९ ७२० ७२१ ७२२ ७२३ ७२४ ७२५ ७२६ ७२७ ७२८ ७२९ ७३० ७३१ ७३२ ७३३ ७३४ ७३५ ७३६ ७३७ ७३८ ७३९ ७४० ७४१ ७४२ ७४३ ७४४ ७४५ ७४६ ७४७ ७४८ ७४९ ७५० ७५१ ७५२ ७५३ ७५४ ७५५ ७५६ ७५७ ७५८ ७५९ ७६० ७६१ ७६२ ७६३ ७६४ ७६५ ७६६ ७६७ ७६८ ७६९ ७७० ७७१ ७७२ ७७३ ७७४ ७७५ ७७६ ७७७ ७७८ ७७९ ७८० ७८१ ७८२ ७८३ ७८४ ७८५ ७८६ ७८७ ७८८ ७८९ ७९० ७९१ ७९२ ७९३ ७९४ ७९५ ७९६ ७९७ ७९८ ७९९ ८०० ८०१ ८०२ ८०३ ८०४ ८०५ ८०६ ८०७ ८०८ ८०९ ८१० ८११ ८१२ ८१३ ८१४ ८१५ ८१६ ८१७ ८१८ ८१९ ८२० ८२१ ८२२ ८२३ ८२४ ८२५ ८२६ ८२७ ८२८ ८२९ ८३० ८३१ ८३२ ८३३ ८३४ ८३५ ८३६ ८३७ ८३८ ८३९ ८४० ८४१ ८४२ ८४३ ८४४ ८४५ ८४६ ८४७ ८४८ ८४९ ८५० ८५१ ८५२ ८५३ ८५४ ८५५ ८५६ ८५७ ८५८ ८५९ ८६० ८६१ ८६२ ८६३ ८६४ ८६५ ८६६ ८६७ ८६८ ८६९ ८७० ८७१ ८७२ ८७३ ८७४ ८७५ ८७६ ८७७ ८७८ ८७९ ८८० ८८१ ८८२ ८८३ ८८४ ८८५ ८८६ ८८७ ८८८ ८८९ ८९० ८९१ ८९२ ८९३ ८९४ ८९५ ८९६ ८९७ ८९८ ८९९ ९०० ९०१ ९०२ ९०३ ९०४ ९०५ ९०६ ९०७ ९०८ ९०९ ९१० ९११ ९१२ ९१३ ९१४ ९१५ ९१६ ९१७ ९१८ ९१९ ९२० ९२१ ९२२ ९२३ ९२४ ९२५ ९२६ ९२७ ९२८ ९२९ ९३० ९३१ ९३२ ९३३ ९३४ ९३५ ९३६ ९३७ ९३८ ९३९ ९४० ९४१ ९४२ ९४३ ९४४ ९४५ ९४६ ९४७ ९४८ ९४९ ९५० ९५१ ९५२ ९५३ ९५४ ९५५ ९५६ ९५७ ९५८ ९५९ ९६० ९६१ ९६२ ९६३ ९६४ ९६५ ९६६ ९६७ ९६८ ९६९ ९७० ९७१ ९७२ ९७३ ९७४ ९७५ ९७६ ९७७ ९७८ ९७९ ९८० ९८१ ९८२ ९८३ ९८४ ९८५ ९८६ ९८७ ९८८ ९८९ ९९० ९९१ ९९२ ९९३ ९९४ ९९५ ९९६ ९९७ ९९८ ९९९ १०००

से पालन कराऊ ।

६—मे देशमे किसीभी स्वस्थ व्यक्तित्ता पिना परित्रम हिण गानी न रहा द । प्रयत्न से उसीमे योग्यता के अनुसार काम कराऊ ।

७—सुरता, निरिक्षा गीर जीवन विवाह करन के सब साधन मे लोगको घर बडे पहचान का परा करू । शिला और निरिक्षा निखर्ची होगी ।

८—मै न किसी के पास पू जी र न लगा, न पजी ११ नाम । नाने दूगा । मे सब भिन मारगानो फाटरिया उत्रागा १२ मरकारी प्रत्र १३ मे न लगा और उमका लाभ उसमे काम करने गाना का प्राद दगा ।

९—जमीन, जायदाद, मवान, दुवान और ऐंगी सम्पत्ति जिनमे लाग खाली बडे अपनी गानदनी करत हे सरकारा मंत्रिपर मे न गगा और ऐमे लोगो का काम करने के लिए लाचार करगा ।

१०—सामाजिा रहन सहन मे उच्च नीच दूआडून गही रहन दूगा । नेत्रमे नेवा एक ही दजा रखूगा । सत्रका ११ व ही परिवार के गादमी १२ भावि रखगा ।

११—ग दे गावा का मे नष्ट कर बागा । उनक स्थान पर स्वास्थ्य और वज्ञानिक साधना मे सम्पन्न नय गाव बताउगा, जिसमे मरक १२ तार, फान रेडियो, प्रिन्ती और स्वास्थ्य तथा जिलाकत्र होग ।

१२—मे शिक्षा का सारा ढाचा बदल गगा । शिक्षा विद्यान दाने न विण गती, जीवन का उपयोगी बनाने के लिए दगा ।

१३—मे श्रम का सत्रमे मंत्रि मरका गगा, तार प्र शारीरि १४ तोया मानगिन । उसका मे आदर दगा ।

१४—मित्रता को मे घर मे प्रादर काम गती करन दगा । उनका सत्र महानकाय अपने परा का मुय, यान द, गाराम और कला ती दृष्टि से सम्पन्न काम बनाना हागा । केवल शिक्षा और निरिक्षा मे ही वे पर स बादर रह सगगी ।

१५—मे किसी भी मरक १६ स्त्री पुण्य को अत्रिवाहित गती रहन दगा । केवल चिर्वात्मक की राय ही उसका अपवाद रहगी ।

१६—म बुद्ध नहीं करूँगा। मैं तु सुरक्षा के महत्त्व साधन रखूँगा।

१७—म किसी भी साम्प्रदायिक भावना को नहीं पनपने दूँगा।

१८—म प्रत्येक आदमी के दुख और दरिद्रता के लिए जिम्मेदार हूँगा।

१९—मेरे अविचार पर कर्तव्य को प्रायाय दूँगा और सदाचार की मयादा स्थापित करूँगा।

२०—म एक भाषा, एक जाति, एक समाज की रचना करूँगा और वह विश्व के मनुष्यों से हमें प्रयत्न न करे—ऐसी होगी।

परंतु मेरे इस साम्प्रदायिक स्मृति पत्र का कार्य प्रयुक्त मुझे नहीं प्राप्त हुआ।

छात्रों की दूषित वृत्ति

१९५५ की बात है। वयरक्षाम के भाष्य में उलझे हुए मुझे ग्यारहवां महीना बीत रहा था। मुश्किल से दिन रात के चौबीस घण्टों में केवल तीन चार घण्टे सोना मिलता। मेरी टेबुल और चारपाई पास पास पड़ी थी। रातदिन समान भाव में मेरा यह दस्तूर रहा है कि जब लिखते लिखते थक गया या कोई गुत्थी उलझ गई तो उठकर चारपाई पर आख बंद करके मन ही मन उस गुत्थी को सुलभाने को सोचने लगा। नींद आ गई तो एक झपकी भी लगी। उठे तो फिर टेबुल पर, रात हां या दिन, मेरा यह काम जारी रहता। 'वयरक्षाम' के अनिगूण प्रफूटकर प्रेम में भेने सो गया नहाया। अब तो तबियत कलम को फक देने की हाती थी। पर इन उगलियों के आश्रय में उसे पचास वर्ष बीत रहे हैं, अष्टशताब्दी। इन पचास वर्षों में इसन इन उगलियों के संकेत पर कितना हास्य रुदन किया है। कितना ज्ञान अज्ञान बखेरा है। रवींद्र और टगोर, तिलक गोखले, मालवीय लाजपतराय-श्रद्धानंद, गांधी, और उनकी प्रगति, दो दो विश्व युद्ध, भारत का महाभिनिक्रमण। राष्ट्रीयता का गठन और विघटन, नए समाजशास्त्र और अर्थशास्त्र का निर्माण सभी कुछ तो इस कलम में देखा है। मैं ही उगलिया के सम्पर्क से, फिर अब यह एकाएक छूटे तो क्यों कर? गो—विम विसाकर चोपट हा गई है, पर चलते रहने के दमखम तो बनी है। 'वयरक्षाम' ने मुझे सतम बर दिया। नेत्रों की आठ आना ज्योति हर ली और वही में, जो रात रात भर एक बठक में एन सो फुलिस्केप शीट में रंग कर डर कर देता था अब दो पृष्ठ लिखते ही थक कर टोट जाता हूँ। वयरक्षाम के भाष्य के दो तीन फर्मों मेरी मज पर फैले थे।

सुबह आठ बजे से लेकर तीन बजे शाम तक हार्डिज टाइमिंग में बैठा सहकारियों के साथ हिस्ट्री ग्राफ पेशिया तथा अरबकी हिस्ट्री की खोज पडताल करता रहा। चार बजे आकर स्नान किया, भाजन किया और पूफो को ठीक करने बैठा तो आठ बजे गए। अग प्रत्यग बकाम हो गए तो विस्तरपर जा पडा। लेटाही था कि नो बजते बजते 'समाज' के सम्पादक महावीर अधिकारी और कुछ तरुण कविवरण सागर यून-

रिमिटी से आए हुए एक तरुण को लेकर आपहने । रात में उठती हूँ । सूचना मिलते ही उठकर गया । अभिप्राय सुना, सागर युति रिमिटी का नाम सुनकर चला करता होगा । यात्रा कल रात ही करनी है । अपनी उद्देश्य में रात व सुबह में न रुकना । जाना जिनका हात में सम्भव न था । जान स फाम मशीन पर जा ही नहीं सकते थे । आगे का मटर भी तयार नहीं हो सकता था । स्पष्ट था कि एक दिन के अनुराग से आठ दिन तक काम रुक जायगा । फिर ये तरुण ही तो मेरा साहित्य के उत्तराधिकारी है । मेरी साहित्य सम्पदा के स्वामी भी तो यही हूँ । मैंने उनको बात रिमिटी सूच्य पर टाली नहीं जा सकती थी ।

कही ऐसा ही हुआ कि एक तरुण किसी गौड़ से आत्मीयता के साथ आनाया प्रकट कर और वह अपनी कठिनाइयाँ बताने बैठ गया । तरुण की गालियाँ भी कही रोनी जाने शोभ्य हाती है । मेने सोचविचार तो बहुत किया, पर मुझे स्वीकृति देनी पड़ी । मे सागर चला गया ।

सब के उद्घाटन समारोह के समय ज्यो ही मैं भाषण आरम्भ किया दस मिनट भी न बीते जागे कि मकिया की भिन्नभिन्नान्ट जसी चरित्र मेरे हाथ में प्राने लगा । मेने अनुभव किया, आज आपण सुना नहीं रहे है । कुछ ता याम तोर पर पायद गउर कर रहे थे । कानो ओर युतिवासिया क आजो ओर अनुशासन के प्रति सिद्धा वृत्ति में मे भली भाँति परिचित हूँ । मेरा ऐसा अनुभव भी है कि प्रता की विदितया उडाने ओर उसे अप्रतिभ करने में निरप्रविद्यातया के छान विद्वह्य है । बहुत जगह में ऐसा दखा है, प्रथम इसी प्रकार मकिया की भिन्नभिन्नान्ट जसो आज उठनी है, फिर वह जरा तेज होती है, फिर तालियो की तडातडे, परो की समसामाट और दूसरी फूलभुडिया डूटने लगती हूँ । ददौर लगनऊक राण भो मरे छुटि म थ । मे न तो पशेवर भाषणकर्ता हूँ, न मुझे भाषण दो की हविम ही है । प्रता चाहिए-- इन वर्षा में तो मूक और जड हा गया हूँ । फिर भता भ वह भोगत प्रता मे ला साना था कि उन आजो का मन बरबस अपनी ओर गीच न । फिर अभी तो उनी प्रस्ता प्रता ही । मुझे तो अपने भाषण में कुछ गम्भीर साहित्यिक समसामा पर इस दग्गिहोग स विचार करना था कि उनका हमारी भाषी पीढी के जीवन पर क्या प्रभाव पडेगा । विश्वविद्यालया में आज गुणधो स बतार मूर, तुतागी मार प्रेमबद न । म य यन करते है । पर उनके जीवन के साथ साहित्य का क्या सम्बन्ध है, यह बात तो उन्हें बतानी नहीं जाती । जिन गुणधो न कबीर, दादू, तुनमीदास साहित्य के ज्ञान विषयक बातों पर निबन्ध लिखकर विभिन्न ग्रानथो में गुणधो पाया है, वे भी अपने पाठ्य विषय से आजो को डर उधर नहीं जाने देते । उसीसे प्रसाद और प्रसन्नता आज भी काव्य और कथा साहित्य में चरम स्थान पर बैठे है । मानो आज के कवि और कथाकार

भकुआ ह, और हिंदी साहित्य का गत तीस वर्षों में कुछ विकास ही नहीं हुआ है, विश्व की बदलती हुई रेखाओं को जैसे हिंदी के साहित्यकार देख समझ ही नहीं रहे हैं। इसीसे आज पंचम वेद हिंदी के मन्त्रों पर उपवासकार और कामायनी, एम० ए० के छात्रों को पढ़ाने योग्य पुस्तक स्वीकार हुई है। इस प्रकार विश्वविद्यालयों का वातावरण अग्रदृष्टि नहीं रखता है। वहाँ तो छात्र घोंघे पर इस प्रकार सवार कराए जाते हैं कि उनका मह दुम की ओर होता है।

भला यह भी सम्भव हो सकता है कि हमारे विश्वविद्यालयोंमें छात्र और उनके गुरुपद सूर और बिहारी के पदों और अलंकारों की व्याख्या करते रहे, या कबीर की उलटप्रासियों पर गीसिस लिखकर डाक्टरेट की उपाधि लेने में सब का अनुभव करते रहे, प्रसाद और पत से उलभने रहे, कामायनी के मनु और श्रद्धा की अपोलॉलपिन, अप्राकृत मूर्तियों को दूरवीक्षण यंत्रों से सहारे देखते रहने में समय बर्बाद करते रहे, और उबर अणु और उद्जन वम दुनिया को तबाह करने की तैयारी करते रहे। क्या दुनिया की इस तलाशी पर उन पर कोई असर नहीं होगा? और जब तबाही की वह आग उन तक पहुँचैगी तब क्या पत का रहस्य, महादेवी की पीर, प्रसाद की श्रद्धा उनकी रक्षा में कुछ सहायता देगी? उहे छोड़िए—क्या सूर के कृष्ण और तुलसी के राम ही कुछ मदद करेंगे? क्या इस शिक्षा से कुछ भी जीवन की व्याख्या का सम्भव है? क्या हमारा साहित्य हमारे आज के जीवन की व्याख्या कर रहा है? क्या आज का साहित्य हमारे आज के आधुनिकतम जीवन का प्रतिनिधित्व कर रहा है?

हिंदी साहित्य के विकास की ओर भी तो जगदृष्टि डालिए। सामंती युग में उसमें वीररस ही प्रतिष्ठा हुई। मारना और मरना शैली की बात समझी गई। कविता और भावों तथा चारणों न, जो सामन्तों के बतन भोगी स्तुति गान करने वाले थे, इस मारकाट, हयाण्ड, मृत रागवी या ऐसा प्रशस्त गान किया कि लोग उसमें मग्न हो गए, वह राग बन गया साहित्य का एक स्थिर अंग और आज मानव मूर्ति के उदय होने पर भी वह साहित्यका अंग बना हुआ है। हाँ सामंती युग तो अब भी समाप्त नहीं हुआ। तनारों दूर गई। पर दूर भी रू ही चुम्बे, पर तो मृत्यु दत्त विज्ञानके रथ पर सवार हो नगरों को ग्राह करने पर तुले हुए हैं। पर तु क्या वीर रस के अतगत हम इन मृत्यु दूतों का, इन हत्याओं का भी यशोगान करना होगा? वीररस ही प्रतिष्ठा तो हमें करनी ही है और विनाग की का नाम यदि वीररस है, तो फिर अणु और उद्जन यंत्रोंके प्रयोक्ता घृणित हत्यार नहीं, वीरराम की शिरोमणि हैं।

मे स्वीकार करता हूँ। वह युग था जब वीररस ने तत्कालीन राजपूत और हमारी जातियों को जीवन दिया। यदि भाट और चारण अपने साहित्य में वीररस का सृजन न करते तो राजपूतों का बीज नाश हो जाता। प्रवल प्रतापी मुगलों को अपने

दिल्ली और आगरे के उद्द और फारसी साहित्य में वीररम का गालम्पन नहीं मिला । फलतः वे सटियामेट हो गए । वीर रम के पत्रान पर जगज की गुणद्विया उनसे आगे तुलकाइ गद, योजन और वामना की भट्टिया मुगगाई ग, जिम मुगा साआज्य को दूबकर और जलकर निशेष हो जाना पडा । निम्पदेह आज राष्ट्रवादी यारोप क लोह के प्यासे आज भी रक्तपात में रवि रखते हैं । इनका निर्माण ही रक्तपात के उपायान में हुआ है । यारोप ही जातिया पर पाचीन ग्रीस के गठार निष्ठुर जीवन का प्रभाव है । सुकरान और ईसा के प्रमानगीय वर हमने देखा है । शेषमपीयर ने अपने प्रतिम भाग नाटय औथेलो में एक क्रूर निदय पति को उपस्थित किया है, जो एता तरान में अपना पौरुष और विरक बोकर केवल सदेह के आसार पर अपनी शोच-पातु आर मुदर पत्नीका गला घोटकर वध कर डालता है । शेषमपीयरने रम घटनाही अभिव्यजन करत हुए गहन कुमलतम दर्शन भावाकी प्रभाव गथापना की है । पर तु में जिस बात की ओर विशेष ध्यान दिलाऊगा, वह है इस निमम हत्याकाण्ड को चुपचाप देखते रहना, जो योरोप की जातियो के परम्परागत निष्ठुर स्वभाव का चानक है ।

शौच और पराक्रम का प्रदर्शन पाश्चात्य साहित्य में कम नहीं है । परन्तु चरित्र का वह विकास, जो हम राम लक्ष्मण सीता भरत-युधिष्ठिर आदि के चरित्रों में देखते हैं वह योरोप के साहित्य में नहीं है । यह व्यास और वाल्मीकि की कलम के चमत्कार हैं कि वे प्रताडित होने पर भी तथा भयानक रक्तपात करने पर भी, न तो दया के पाव बातें हैं और न घृणा के । हमने विपरीत चरित्र प्रियाम ने उनसे प्रति जनपदके मन में द्रवा और भक्ति का भाव जनना आरि जाग्रत कर दिया है कि वे देवत्व के पद को पहुँच गए हैं । पाश्चात्य साहित्यकारों ने कुत्सा की प्रकृति में वीर रम को प्रकट किया है, पर भारतीय साहित्यकारों ने निष्ठा और चरित्र ही मयात्ति गीमा में वीररम को उदय किया है । यह निष्ठा ही है कि जिम हमने जग निम्पदेह को पाण्णा को परिजनो का रक्त बहाने को उताजत करत कुण्ठित नहीं होते । वाल्मीकि व्यास में भी वैसे बड़े हैं । व्यास निष्ठा के बाप पर मानव में देवता आराप नहीं करके, पर वाल्मीकि ने यह काय किया । वाल्मीकि ने शक्ति, धय और निष्ठा के संगम में राम को देवत्व प्रदान किया है । इस निष्ठा के दान आप सीता, शत्रु तथा मरीजिण । सीता और शकुन्तला के दूते हुए हृदयो पर नजर आता । सीता पति में व्यक्त होने पर भी प्रिया ही क्राध विण पति पर श्रद्धा और प्रेम के फूल बखेरती प्रियोगके लिन नाटती है । राम की भी आप औथेलो से तुजना हीजिण । राम औथेलो जसा, क्रूर विचारहीन और निष्ठुर पति नहीं है । वह गादश पति, आदश राजा और आदश पुरुष है । उसी से वाल्मीकि उनकी मानव मूर्ति में देवत्व की स्थापना कर सके गौर विश्व के सत्र साहित्यकारों के मूख्य हो गए । उ होने जो गादश चित्र अर्पित किए, उनकी रम सामर्थ्य के

पीछे एक मूर्ति थी—धर्माश्रय। धर्माश्रय ने ही उह अमरत्व दिया। अगर उन की रची हुई मूर्तियों का देवत्व प्रदान किया। पाश्चात्य कलाकार अपना कृष्ण नहीं प्राप्त कर सके। उसी से प्रेम दया उमा और तप के रखाचित्र वे नहीं खींच सके।

और आज जिन उद्‌जन बम, और अणु बम के नामसे दुनिया बस्त है वे मृत्यु दून महास्त्र एक ही दिन से उही बन गए हैं। इनमें मानव मन की चिरतन मानवता निहित है। मनुष्य जाति का सहस्रो वर्षोंका पिछला इतिहास प्राति गौर सत्त्व निष्काम के विवरणोंसे भरा हुआ है। आज पश्चिम का वैज्ञानिक और राजनीतिज्ञ विषम और विनाश का अग्रदूत हो उठा है। इसका कारण है योरोप की सस्कृति की क्रूर परम्परा, जिसमें योरोपके साहित्य की रक्तरेजित भावनाओं का पुट है। अणुबम और उद्‌जन बम उसी खेत की उपज हैं, जिनमें योरोप के साहित्यकारों ने मनुष्य के प्रतिहिंसा गौर खून की खाद दी थी।

हमारे विश्वविद्यालयों का वातावरण जहाँ आज भी पाश्चात्य साहित्य और सस्कृति से प्रभावित है, वहाँ वह आय साहित्य से नहीं। इसीसे आज जो विद्वान विष्व विद्यालयों से बीना प्राप्त करके निकलते हैं, साहित्य रचना करते हैं, सोचते विचारते हैं वह कुछ भी आय साहित्यसे प्रभावित नहीं होता। गत मैं यदि यह कहने की वृष्टता करूँ कि आज की डाक्टरेट की योग्यता, न भीके मिडिल पासो से कुछ भी अधिक महत्व नहीं रखती, तो मुझे क्षमा किया जाय। अभी से विश्वविद्यालय का छात्र साहित्य के सच्चे रूप से अपरिचित ही रह जाता है। जीवन और सौंदर्य की व्याख्या का नाम साहित्य है। बाहरी दुनिया में जो कुछ बनता प्रगुत्ता रहता है उस पर से मानव हृदय और भावना की जो रचना करता है, वही साहित्य है। साहित्यकार साहित्य का निर्माता नहीं उद्‌गाता है। वह केवल बामुगीमे फूक मारना है। शब्द शक्ति उमरी नहीं, केवल फूक मारने का कौशल उसका है। इसलिए साहित्यकार का आनन्द उमरा अपना नहीं है सब का है। अभी जैसे अपने आनन्द मग्न होकर गाता है, कवि वसे नहीं गाता। कवि का गान तो माता का दूध है—सतानके लिए। माता का दूध पीकर जमे कवि की नाद ध्वनि मुनकर जगत जीवन की राह पाता है। उसका स्वर जगत के लिए है, जगत के लाखों करोड़ों अरबों जना के लिए। कवि जो मोचता है जो कुछ अनुभव करता है वह मरता नहीं। वह एक मन से दूसरे मन में, एक कान से दूसरे कान में, एक कालसे दूसरे कालमें मनुष्य की बुद्धि और भावना का सहारा पाकर जीवित रहता है। यही साहित्य का सत्‌रूप है।

मोहनजोदड़ो और हड़प्पा के ध्वसो में, किसी विलुप्त विस्मृत मानव समाज के कुछ अक्षर हमें मिले, अज्ञात भाषा के अपरिचित अक्षर। उनमें किस समय की, किस सजीव मन की, क्या चेष्टा अंकित है, उसे जानने को हमारा मन छटपटा रहा है।

गणेश ने पत्थर के शरीर में खादकर अपनी अभिनापाई चिरनाल तत्र श्रुतिगोचर करानी पाही। उन पत्थर को अपनी बात कहन का भार साप पर अशोक का नखर शरीर लुप्त हुआ गया। अत्र व पत्थर का ताल का गुठ भी विचार न करके उम मझाट की उत भूनी हुई बातों को भूले हुए अशरो में, अनजानी भाषा में आज बोल रहे हैं। युग बीते, शताब्दियाँ गीनी, सहास्रद्वियाँ गीती, अर अज गणेश की वह महावाणी एकाएक फूट पड़ी।

परतु यह विचारों के अभिमान का केवल एक कारण है। उसकी सहायक और भी बातें हैं, जिनमें सामे प्रथम में सिनेमा का नाम आता है। सिनेमा वह खतरनाक वस्तु है जिसे तरंग वग का मारा प्रथम और निष्ठा का मतुन खराब कर दिया है। मा खूब वारीशों से दखा है कि विश्वविद्यालयों में जब साहित्यिक समारोह होते हैं, वक्ता भाषण देते हैं, तत्र भी तरंग विद्यार्थी का वग उसे सिनेमा ही की भाँति अपने मन की पसंद से नापना जोड़ता है। और जहाँ जहाँ भी नापमद अपनी रुचि के विपरीत, या अपने मूँट के प्रतिफल कुछ देखा—कि उममें अशक वह वैकल्प जाग उठता है जो ठीक ऐसे अवसर्गों पर सिनेमा देखते हुए जागता है, गौर वह उम वैकल्प को सयत नहीं रख सकता। इसी से विश्वविद्यालय के समारोहों में पत्रिता, गम्भीरता और एकाग्रता के स्थान पर हमें गिरोमा की भीड़ की गदगी और अनुशासनहीनता दीख पडती है।

ऐसा ही कुछ मने यहाँ इस अत्रमर पर देखा। भ अ भी अपने भाषण की प्रस्तावना की स्थापना कर रहा था कि मन्त्रियों की अभिनाट की भाँति एक वृद्धिगत ध्वनि मेरे कानों में आन लगी। यद्यपि प्रयाश अपयात था, परतु मेरा दखा कि जसा प्राय होता है वातावरण और भी अनुशासनहीन हो मरता था। तत्र तत्र पहुँचने दना कहा की बुद्धिमत्ता थी। मैं जानता हूँ कि एगी अत्रमर में तत्र तत्र खडा रहना दूभर हो जाता है। मने बुद्धिमानी से तत्र तत्र और भाषण की प्रस्तावना ही में उनसे हारकर में बठ गया।

परतु हमने तत्काल बाद ही वहाँ मचमुच ही सिनेमा का वातावरण स्थापित हो गया। स्टेज तुरंत नाटकीय रंगमंच के रूप में बदल गया। भ प्रमत्त होता—यदि विश्वविद्यालय के छात्र छात्राण कोई भावपूर्ण अभिनय का आयोजन करते। कला और सो दय का सत्य रूप दीयता। परन्तु तहाँ तो मगीत का एक अत्रि प्रदर्शन मात्र था, जो निस्मदेह दयनीय था। एक रेडियो गायिका क्षेत्र एक दिन के लिए तीन गीतों का फीस दकर दिल्ली से ले जाई गई थी, जो मेरे माथ ही आई थी। एकाग्र निष्प्राण गाना होने के बाद उसने दो गजले गाई, जिनमें आशिकेजार मुहवात की आग में जले जा रहे थे, तडप तडप कर या अपने मरने का मर्सिया गा रहे थे, या तूमतडाम से

दिल की दिल्लगी का इजहार कर रहे थे। छात्रगणों को अब रम आ रहा था। गायिका की कोमल बारीक आवाज माफ सुनाई देने में अब कीर्ई बाधा न थी।

विश्वविद्यालय के आचार्य श्री बाजपेयी जी तो आरम्भ में ही उठ कर चले गए थे। उन दो गजलाके खत्म होते न होते और भी अनेक उठ गए और तभी मैं भी उठ आया। इतनी देर सवारी की प्रतीक्षा में बटना पडा।

यहां क्या इस रात पर विचार नहीं किया जा सकता कि एक तरुणी रेडियो गायिका को गजले गाके लिए एक साहित्यकार के साथ विश्वविद्यालय के इस समारोह में तीन सौ रुपए की फीस देकर किस विचार से बुलाया गया था? संगीत तो वह था ही नहीं। साहित्य भी न था। कितना अच्छा होता—नए पुराने हिन्दी काव्य के कुछ अंश छात्र छात्राएँ म्य ही गाते—आनन्द को किराए पर खरीदने की यह पुरानी भारतीय परिपाटी है। उस काल में डोम मीरासी और वेश्याएँ किराए पर लोगों का मजलिसों में मनोरंजन करते थे—अब भद्र महिलाएँ और भद्र पुरुषों ने यह पेशा अरितरार कर लिया है। पर जमा कि स्वाभाविक है—ऐसी मजलिसों का वातावरण निर्दोष और भद्र नहीं रहता है। और इस प्रकार के दृश्यों का सांस्कृतिक मूल्य तो कानी कौडी के बराबर भी नहीं है। इसके अतिरिक्त विश्वविद्यालय के प्रमग में—जहाँ गुरुपद सहित छात्र छात्राएँ भी उपस्थित हों, ऐसा प्रदर्शन सवथा अशोभनीय और अनुचित था। केवल इस संगीत सभा का उद्घाटन करने के लिए मुझे कष्ट दिया गया था।

मुझे तो चला आना था। सो दूसरे दिन मैं चला आया। उस दिन कवि सम्मेलन भी होने को था। मैंने सुना कि किसी कविको दो नों, किसी को डेढ सौ और किसी को सो रुपया फीस देकर सम्मेलन में बुलाया गया है। कुछ ढाई तीन सौ माग रहे थे। उन्हें डाट दिया गया है। बचचन नहीं आ रहे थे उनकी फीस भारी थी। हलके हलके तरुण कवि हलकी हलकी फीस में जुटा लिए गए थे। किसी तरह महफिल सज जायगी—यहां भरोसा कर लिया गया था।

कवि सम्मेलन भी मेने देखे है। वहां सदैव ही कविता का उपहाम होता है। कविताके त्रिकामका तो इन सम्मेलनों से कोई सम्बन्ध नहीं है। उपयुक्त कविता की उपयुक्त सराहना भी नहीं होती है। गले दराजी उन कवि सम्मेलनों की जान होती है और इन सम्मेलनों की सफलता महफिल की सफलता से अधिक नहीं है।

इस कवि सम्मेलनमें चाह तरुण कवि हों, चाहे प्रोढ, परन्तु मेरा ध्यान उन फीस की ओर गया, जो इन कविजनों ने प्रथम ही ठहरा ली थी। फिर तुरन्त ही मेरा ध्यान उस रेडियो गायिका की ओर भी गया जिसे तीन सौ रुपया फीस देकर दो चार गजले और हल्के फुलके गाने गाने के लिए यहाँ बुलाया गया था। हठात् मुझे अपनी भूर्रता का खयाल आया कि मेने तो कोई फीस तय ही नहीं की। क्या कारण है कि ओर लोग

गठरिया बाध कर यहाँ से जाय—मे अर्पना इतना राग नष्ट कर और इतनी गममुग़मा, बर्दास्त कर हाथ फटकारता जाऊँ ? कुछ सीधे और कुछ विनोद व नूतन मन उस ग्रायो जन के पुरोहित डात्र से, जो मुझे और उस गायिका का दिव्य ग हास न गया जा साकेतिक भाषा मे पूछा—कि क्या मेरे भी हाथ पत्ते कुछ पन्ने की आशा है ? और इस तरुण ने तपाक से जरा लज्जा का अभिनय करते हुए कहा—दरिण, जो कुछ बन पड़ता है—हम साहित्यकारों की सेवा करते हैं आप की भी करेंगे ।

जब हम लोग—मैं और वह गायिका युवती स्टेशनपर पहुँचे तो आयोजनों का प्रमुख नोटों का बडल लिए वहाँ हाजिर हुआ । दिल मेरा बटन नगा । लेकिन सिफ घडक कर ही रह गया । उसने वह गठरी सावधानीसे गिनकर गायिकाके सुन्दर फ सी पस मे रख दी । उसके कुछ क्षण बाद मुबनिग पाच रुपय मेरी हाँ गी पर रख कर सम्य शिष्ट भाषा मे निवेदन किया गया कि हमारी युनिवर्सिटी गरीब है गायिक हम सेवा नहीं कर सकते ।

दो दिन इन छात्रों से मैं प्यार से बातचीत करता रहा था । अरु इस एक गुस्सा करने से क्या भला हो सकता था । अवश्य ही मेरा अपमान हा रहा था, लेकिन यह सत्य है, कि इन तरुणों का इरादा मेरा अपमान करन का नहीं था । फिर भी मेरे मस्तिष्क का मतुलन बिगडने लगा । वे रुपय रख लेना किसी भी हाततम सम्भव न था, पर मैंने तुरत ही अपने ऊपर काबू कर लिया । वे पाच रुपय चुपचाप जब मे रख कर मेने हँस कर इस डात्र की ओर देखा ।

पर तु अभी तो मुझे और एक परीक्षा देनी थी । तुरत ही टिकट लगी रसीद पर मेरे हस्ताक्षर मागे गए । दर्यातो रल टिकट के रुपयो समेत ये पाच रुपय भी उमस जोड कर मुभ से रसीद मागी जा रही है । अब ता में गयत न रह गया । तो भाँ मने चुपचाप दस्तखत कर दिए और चाहा कि अब ये लाग मेर मामन स हट जाय ।

लेकिन हटना पडा मुभ ही, जब रेलगान्ठी मुभे घभीटती हुई कहा स समक चली । कम्पाटमेन्ट मे सिफ हम तो थे, एक मैं, गाभक म भरा हुआ, जिसके दो सून्य वान दिन व्यथ ही नष्ट हुए थे और यात्रा का नष्ट सहना पना था पाटे मे, दूसरी यह रेडियो गायिका, होठ उमके खुशी मे फूल रहे थे ।

प्रेम का सून्य वन

वयरक्षाम से निबटकर मैं फिर भारतीय मस्कृति के इतिहास मे जुट गया । मुभे उसे पूरा करने की इतनी जटदी थी कि मे अपने कर्जों को उतारने की व्यवस्था करने को टालता रहा । मैंने कहा—मित्र के रुपए है, जरा देर मे ही उतर जाणँग, पर तु साहूकार कभी मित्र नहीं रह सकता । उसने मुभसे आकर सीधे मड तनाजा भाँ नहीं किया, अपने वकील के द्वारा रजिस्ट्री नोटिस सूद दर सूद लगाकर असल से ढाईगुनी

रकम बनाकर मुझे दे दिया। यह भी धमकी देदी कि एक माह के बाद वह दावा भी कर देगा, परन्तु मैंने उसे कुछ न कह कर उसके वकील को यह पत्र लिखा—

‘श्रीमान् लालाजी की ओर से आपका भेजा हुआ ता० २३ मार्च १९५१ का नोटिस मिला, अय्यवाद। उत्तर में निवेदन है कि प्रथम तो लालाजी ने केवल पाच हजार रुपया के एवज में मेरी एक लाख रुपए मूल्य की प्रापर्टी अपने कब्जे में करली है, हमने वे मुझमें कर्नर करारा सूद लेते हैं, तीसरे वे मेरे पुराने मित्र हैं चौथे उन पर मेरे कुछ अहसान भी हैं। एकवार उन्हें भयकर विमारीसे बचाकर शारोग्य किया, दूसरी बार त्रेक मेकिंग में उह सात वर्षकी सजा होनेवाली थी दाडूप करके उसमें बचाया। पाचरे में धन कमानेवाला जीव नहीं हूँ, साहित्य सेवा करके अपने देशके लाखों मनुष्यों की सेवा करता हूँ, छठे पिछले पूरे एक साल मैं सरत बीमार रहा और दूसरी मुसीबतों में भी फँसा रहा जिनमें लालाजी अनजान नहीं हैं। लेकिन इन सब बातों का लालाजी ने कोई विचार नहीं किया। उ होने बड़ी बेरहमी और सरतीमें ताने पर ताने करके मेरा नाम में दम कर दिया, जिसे मेरे दिल को बहुत सदमा पहुँचा है। अपनी विमारी की बुरी में बुरी हालत में मैंने एक पुरजा लिखकर उनके रुदमों में अपना सिर रख दिया, पर उ होने उसमें भी एक ठोकर मार दी। फिर भी इन सारी बातों में मैं उनसे नाराज नहीं हूँ, क्योंकि एक तो मैं प्रेम और विश्वास को अपने जीवन का सहारा समझता हूँ। दूसरे जिसे एकवार मित्र समझ लिया, उसके साथ दुर्व्यवहार रखना अपनी गान के खिलाफ समझता है, तीसरे मैं यह जानता हूँ कि लालाजी एक मामूली निबुद्धि आदमी हैं। उनका छोटा सा दिल, छोटी सी दुनिया और छोटे ही विचार हैं। वे न तो मेरी प्रतिष्ठा और योग्यता ही को जानते हैं और न उनमें कतव्य को समझने ही की शक्ति है। उनकी दोड़ अधिक से अधिक दुकान से ‘लाला की मा’ तक ही है। ऐसी हालत में उनमें मुझे इससे अधिक कुछ आशा ही नहीं करनी चाहिए कि जो सतूक उ होने मेरे साथ किया अथवा करने का इरादा रखते ह।

उस अम में मैंने उनका रुपया चुकता करने की अपने भरसक बहुत कोशिश की, क्योंकि उनका व्यवहार मेरे साथ ऐसा अपमानजनक था कि उसे मैं किसी हालत में बर्दाश्त नहीं कर सकता था। पर मेरा यह दुभाग्य है कि मुझे इस तुच्छ रकम को चुका देने में मफलता नहीं मिली। यह समय की बात है, ज्यादा क्या कहूँ? कभी इतनी रकम एक एक दिन में खर्च हो जाती थी। पर उन बातों से अब क्या सरोकार। मेरी बीमारी के दौरान में मेरे एक प्रतिष्ठित मित्र को मेरी इस दिक्कत का पता किसी तरह लग गया था। वे दौड़े हुए आए और बोले कि लालाजी आपके मित्र हैं, उन्हें तकलीफ देने की जरूरत नहीं। वे आपसे ब्याज नहीं लेंगे, असल पाच हजार रुपए में चुकता दिए देता हूँ। मैंने अछता पछता कर उनका दान लेना स्वीकार कर लिया। पर जब

ताता जी से मेने ब्याज छोड़कर ग्रसल रुपया देने का परताप दिया तो उन्होंने वह स्वीकार नहीं किया। ऐसी हानत में मित्रता की मयादा भंग हो गई और लालाजी का व्यवहार मेरे साथ गिरावट नहीं रहा, महाजन का व्यवहार रहा। मैं मित्र के लिए मित्र का दान ले सकता था, महाजन के लिए नहीं। यह मेरी शान के गिताफ था, क्योंकि मे अभी इतना निक्म्मा नहीं हो गया हूँ कि महाजन के त्रिण मित्र का रुपया ल। इसके लिए मेरी प्रोपर्टी है, शरीर है। उसे बेचकर महाजन का रुपया चुनाया जा सकता है। मैंने अपनी जमीन कुछ बचने तथा अग्रयन रतन रखने की भी चेष्टा की, पर कुछ ऐसी बाधाएँ आती गईं कि सफलता नहीं मिली, देर होती ही गई।

अब ईश्वर की कृपा से हानत बदलने लगे हैं और रुपया थोड़ा थोड़ा आने लगा है। मैंने तारीख २७ मार्च १९५१ का इलाहाबाद बक का एक किता चैक सरया डी० ८६७२८ इसी रहन के मिलसिले में ८ मार्च १९५१ तक का चुकता एक हजार रुपयो के ब्याज के पेट आठ आना मरुडा के दर से लालाजी को भेज दिया है। दूसरी किस्त अगले मार में भेजूंगा तथा उनका ग्रसल और ब्याज सब जून जुलाई तक चुकता हो जाय इसकी भरगक चेष्टा करूँगा। मो आप लालाजी को सूचित कर दीजिएगा, साथ ही नमस्त भी। मेरे कारण लालाजी को जो तकलीफ पहुँची है, उसके लिए, अब उनका रुपया मयब्याज चुकता हो जायगा, तब उनके दरे दौगत पर पहुँच कर प्राप्ता करूँगा कि वे जो मजा सुनासिप्र समझे, दे। इससे मुझे खुशी होगी। अपने कानूनी नोटिस के जवाब में मेरे इस लम्बे रतन को पढकर रायद आपको कुछ अजीब सा लगा होगा, पर तु में माग्ने—मुकद्दमों और कानूनी दावपेचों को पसन्द नहीं करता। लालाजी और चाहे जा व्यवहार मेरे साथ करे, पर यह मैं विश्वास करता हूँ कि त मुझे प्रेक्षान समझन की हिमायत नहीं न करेगे।

पर लालाजी ने मेरे वायदोत्र भरोसा ही किया। मेरे ऊपर नालिश ठोक दी। केम पला, अत न में बड़ी कठिनाई से जोर तोड़ लगाकर इस रज में १९५६ में उतार पाया था। पर तु कस हानेपर भी मे एक दिन भी तोट में नहीं गया। न भने लालाजी से एक पैसा कम करने अथवा टोउने की प्रायता ली ली। चद्रसन ही बेस करते रहे। केम के समाप्त होने से पहिले एक बार उन्होंने चद्रमेन में बहा था कि यदि शास्त्रीजी अग्र पाकर मुझसे न्याज छोडन को रत तो मैं कम कर दगा। पर में नहीं गया। मुझे उस आदमी में सख्त नफरत थी। चद्रसन ने उनसे कहा कि आप ही उनके पाम चल कर बात कर लोजिए, पर वह भी नहीं आए।

उनकी आयु सत्तर लो पार कर रही थी, शारात्र और गय्याशी उन्हें बड़ी तेजी से मृत्यु के पास ले जा रही थी। वज की अतिम किस्त देने त्र चद्रसेन उतारे घर गए तब वे मृत्यु की तयारी में थे। उन्होंने चन्द्रसेन से कहा—यह अतिम किस्त में नहीं

लूगा इमे मे छोडता हूँ । पर चन्द्रसेन ने इसे स्वीकार नहीं किया । उमन जिद्द करके यह किस्त बुकाना की त्रोग रसीद ली । कज से मुझे मुक्ति मिली ।

र गिन् देने के जाद वे रो पडे । रोते-राने उहाने कहा—‘मने बुरा किया ।’

इमके दो तीन महीनं बाद ही वे मर गए गे ।

सन् १९३८ मे हरिद्वार कुम्भ अवसर पर आलइण्डिया रेडियो की ओर से मुझे कुम्भ अवसर पर वहा से कमेटीर करनेका निमन्त्रण मिला । मेर साथ देहली के प्रमिद्ध वम पवृत्तिक पण्डित रामनाथ कालिया भी भेजे गए ।

कुम्भ जोरो पर था ओर दूर दूर स लाग्वा व्यक्ति वहा आए हुए थे । हरिद्वार पदचक्र मं अपने निवासस्थान के प्रब व पर विचार कर ही रहा था कि मेरे साथी पण्डित कालियाजी ने कहा—‘मेरे मित्र पण्डित लीलावर शास्त्री ऋषिकुल आश्रम मे रहो हे । मै तो वही ठहरूंगा, गाप भी पेरे साथ वहां चलिए ।’

मने स्वीकार किया ओर वहा जाकर ठहर गया । पण्डित लीलावर शास्त्री को जब यह ज्ञान हुआ कि कालिया जी के साथ आकर आतिथ्य गहण करने वाला व्यक्ति ‘चतुरसेन’ हे, तब वे थारु पडे । इससे प्रथम उहाने मुझे देखा नहीं था । केवल मेरे त्र थ पडे थ और ब्राह्मणो के प्रति मेरी आलोचनाओ से भी व भरे विपरीत थे । उन्होने मरा नाम सुनते ही कालिया जी से कहा—‘बाबा, तुम किसे मेरे घर ले आए हो ?’

कालियाजी न प्रश्न किया—‘कयो, क्या बात हे ?’

अरे बाबा, ब्राह्मण के घर मे घोर नास्तिक व्यक्ति को ले आए हो, जो खुले खजान ब्राह्मणत्व पर प्रहार करता है ।

कालिया जी हँस पडे । उन्होने उत्तर दिया—अभी तक इन्हे दूर से सुना ही सुना हे, अब पास से देखो, परखो, जाचो ।

गृहस्वामी चुप हो गए । मे दूसरे कमरे मे बैठा सब सुन रहा था । पर म वहा से गया नहीं, वही ठहरा रहा ।

तीसरे दिन जब हम अपना काय करके बिदा हुए, तब गृहस्वामी ने मुझसे एक दिन ओर ठहरने का आग्रह किया । उनके मन का भाव बदल चुका था ओर व अपने आ तरिक प्रेम उद्वेग को अपनी कम्पित वाणी मे छिपा रह थे ।

अपराजिता एक नारी

जब से प्रकटिस डोडी और कलम-घिसाई का धन्वा गरितयार किया, तगदस्ती बढती हा गई । अजब नहीं, एक दिन भूखो मरने की नोबत आ जाय । पर तु मुझ‘इच्छा दरिद्री’को इसकी शिकायत क्या ? १९५२ के दिन थे । महीनो से बच्चे फटेहाल स्कूल जा रहे थे । एक दिन बाजार मे कपडेका एक पीस सस्ता मिल गया । इत्तफाक से पसे जब मे ये, खरीद लाया । घर आकर व द्रमेन की पुत्री प्रभा से कहा—इस कपडे का तू

फ्राक बनवायगी या प्रकाशका बुशशट बनना द । उसने सोमनासे हँसकर कहा—प्रकाश का बुशशट बनवा दीजिए । और चली गई । फिर मने पनाश को गुलाब पूजा—इस कपड़े का तू बुशशट बनवायगा या मे प्रभाता फ्राफ बनना द । उमन भपटकर कपड़ा मेरे हाथ से खींच लिया और उसे लेकर हँसता गोर यह कटता हुआ भाग गया म बुश शट बनवाऊंगा ।

साहित्यकार खन्ती तो होते ही है । बहुत देर तक मे इस ग्रन्थ त छोटी सी बात पर विचार करता रहा । विचार करते करते बहुत पुरानी,साठ वर्ष पढ़नी धुवनी स्मृ तिया मानस पटल पर उदित हो आई । पिताजी कभी नाराज हाकर मुझे एकाध चपत मार देते थे या गुस्सा होकर बकते थे तो कला की आराम पानी भर आता था । कला मुझमे बहुत छोटी थी, नासमझ थी, फिर भी जो चपत मुझ पर पड़ती थी,उसकी चोट न जाने कहा, कसे उसे लग जाती थी, क्या उसकी आंखे भर आती थी । तब मेने यह मम नहीं समझा था,इस पर विचार नहीं किया था । परन्तु उसका बाद ही नारी जाति से मेरा परिचय बढ़ता ही गया । बचपनमे मेने अपनी माता की निरीह असहाय अवस्था देखी, अपने परिजन पास पड़ोस की स्त्रिया की दुर्बस्था न देखा । कोई पतिसे पिटनी थी और रोती हुई माता के पास आकर फरियाद करती थी कोई आधी रात से सूर्योदय तक चक्की पीसकर अपना और बच्चों का पट पालती थी । कोई बालिका विधवा थी, कोई युवती पति से त्यागी जाकर पिता के घर भरके तिरस्कार सह रही थी । एक बार अपने पड़ोस की एक सात वर्ष की बालिका को,जब मेने इसनिग फूट फूटकर राते देखा कि उसकी माता ने उसकी एक ही दिन पढ़ो पढ़नी चून्वियो को पत्थर से चकना चूर कर दिया, क्योंकि उसके विधवा होने का तार समुराग से आया था । वह मिसक मिसक कर रो रही थी । विधवा होने के कारण नहीं,चार पैमे की चूडियाके कारण !!!

मेरी आंख खुलती गई,और नारी की भावुकता और पीडा मर भ्रम मे प्रवेश करती गई । तब से अब तक,बहुत बार मुझे उनका लिंग आराम का पानी बहाना पडा । एक दिन एक ग्रसहाय नव प्रगुता को एक तनित्रमे अपराध म उसके पति ने निदय हो कर खून पीटा, उसके सब जवर उतार निग,उमे जाडा की गूनी कानी और ठण्डी रात मे धक्का धकर घरसे निकाल घरमे ताला बंद कर दिया । बचारी ग्रसहाय नारी ग्रसमत, गरत,लाज और मर्थादा से तदी-पत्नी किसी पाम पर्जोमिनके यहा शरण म न जा सकी, अफीम निकल गई । भोरके तडकेमे उअर जोचक निग निकना तो अघेरम ठोकर लगी । अरे,यह राह मे वीन सो रहा है ? देखा ता की यह ! आख पथरार्द,मुह स फे निकलता हुआ, बदन ठण्डाबफ लकड़ी मा पठा हुआ, डाती पर सग्ये स्तन चूसती हुई नव जात बालिका ! हे राम, हे राम,म दोडा दोडा माता के पास गया । मा ने उठाकर उसे गिड़ोने पर सुनाया, उपचार किया, मा को उसने धन्यवाद नहीं दिया, आखा मे पानी

भरकर कहा—अम्मा, अच्छा नहीं किया, मुझे दुख सागर में फिर धकेल लाइ, मैं जा रही थी सुख सागर में गोते लगाने, और मैंने अपनी चिरअभ्यस्त गाली दी, पगली ले दूब पी ! और गन दूब का गिलास उसके सूखे गीतल होठोंसे लगा दिया । तीन दिन मैं उस नारी की खाटके पास पाटी पर सिर टेके बठा रहा । सेवा टहल कुछ नहीं की, सिर्फ कभी कभी पूछता, अब कसी हो भाभी, क्या अम्मा को बुलाऊँ ? और उसका जवाब था, नहीं भय्या, मैं अच्छी हूँ ! इसके बाद पानी, पानी, पानी । वही आखोका पानी ।

इससे तो मेरी आखा का पानी भुलस उठा । वह उत्तप्त होकर चार बार धार बहने लगा । कितना बहा, अब इसका हिमाब कितना बका दू ? एक दो दिन का खाता नहीं है । साठ साल से कुछ ऊपर ही का जमा खच है ।

इस बीच, ज्ञान विज्ञान, धर्म, नीति, समाज, राजनीति और अर्थशास्त्र के गहन बनने में होकर जीवन पार करना पडा सम्पत्ति और विपत्तियों ने प्राणों को बहुत बार झुंझकोरा, बहुत बार जीवन मरण की समस्याएँ आई, अनगिनत शत्रु और मित्रोंसे हाथ मिले, आखे मिली, पर तु वह नारी जो हृदय में बैठी सो बठी, आसू से भरी हुई, दद से कराहती हुई निराशा से लाचार, अमहाय बेबस ।

चार युग देखते ही देखते बीत गए । युग ने पलटा खाया, नारी की ददभरी कराह क्रोध की चीत्कार और आवेश के फूत्कार में बदल गई । मेरी मा, दादी, चाची, भाभियों और बहनों की ज़ाया कभी घर की दहलीज के बाहर नहीं हुई । लक्ष्मण की खीची हुई रेखा जैसे रावण को भिक्षा देने आकर सीता के उल्लघन करने में आपत्ति थी, वैसे ही अपने छकडा भरे दुख सुख को लेकर घर की दहलीज से बाहर निकलना उनकी मर्यादाके बाहर था । घर ही में वह जमी, बढी, जीई, और मरी । पर तु आज की मेरी बेटियों ने उस लक्ष्मण की रेखा का, घर की दहलीज का उल्लघन कर दिया । उन्होंने कातेज से उच्च शिष्याएँ प्राप्त की हैं, वे जीवन के सघष में पुरुषों का प्रतिस्पर्द्धा करने लगी हैं । साहस और प्रतिभाका जहा तक सवाल है, वे पुरुषों से आगे हैं, पारचा त्यों के सग ने हमारी नारी समस्या को भारी उलझन में डाल दिया है और आज केवल हमारा ही नहीं, सारे ही ससार का सबसे अधिक महत्वपूर्ण और सब से बडा प्रश्न यह उठ खडा हुआ है कि 'नारी का समाज में क्या स्थान होगा ?' सभ्य ससार के सामने बडे बडे विकट राजनतिक और आर्थिक प्रश्न हैं । परतु मेरा खयाल है कि दुनिया के मेवावी उन प्रश्नों का हल निकाल लेंगे, किंतु इस नारी-समस्या का नहीं ।

सभ्य, शिष्ट, समुन्नत नारी समाज ने घर की दहलीज का उल्लघन अवश्य किया है, पर ऐसा करके उसने रावण के द्वारा हरण किये जाने ही का खतरा उठाया है । यह छद्मवेशी राक्षस, साधु के वेश में भिक्षा के मिस उसे हरण करने की ताक में है । नारी को उसके साहस ने, शिक्षा ने, समुन्नत होन ने तनिक भी तो सहारा नहीं दिया

हैं। बचुवर मथिलीशरग गुप्त ने एक ही वाक्य में नारी का सज कुछ प्रखान कर दिया 'आचल मे हे दूध, और आखा मे पानी'। यत्र यह नारी न दीलत, और सारी विभूतियो से लदी फदी रहे। उसका सच्चा परिचय ता यही है, "आचल मे हे दूध और आखा मे पानी"।

मैं तो पहले ही कह चुका हूँ, इस पानी मे मेने भी अपनी राख का बहुत पानी मिलाया हे, अलबत्ता, इसका वाई साखी नही हे पर तु यह दूध का ऋण गही हे यह तो मेरे 'जीवन' का ऋण हे। मैं समझता हूँ। और सज वया समझन हे, मे नही जानता।

मे चिकित्सक भी तो हूँ। और अपने पचास वष के अनुभव से मेने एक चिकित्सा तत्व पाया हे, 'विषय त्रिपमौषधम्'। यह वया भारी गूढ तत्व हे। इमी तत्व पर मैने 'नारी समस्या' को भी परखा हे और मे इस लिक्प पर पढ़ा हूँ कि नारी ही नारी की समस्या को हल कर सकती हे, परंतु 'नारी' रहकर, 'नर' बन कर नही। 'नारी' बननेके लिए उसे 'नारी तत्व' को जीवन मे आत्मसात् करना हागा। ऐसा करने ही से वह 'अपराजिता' के रूप मे उदय होगी।

बचसो से मे इस 'अपराजिता' नारी की योजना था, कही मिलती ही न थी। १९४९ मे जुलाई पास मे बनारस गया। सरत गर्मी थी, पखा पास न था। त्रिस्तर भी न काफी था, मस्तिक मे अनेक उलभने भरी हुई थी। वर्षा नही हा रही थी, हवा नही चल रही थी। खुली छत सोने के लिए नही थी। सब जण जगम सरजाम ऐसे ड्रट गए थे कि 'निदिद्या रानी' आई ही नही। अकस्मात् उम अथ निशा मे 'राज' से साक्षात् हुया। 'ब्रज' और 'राधा' उसी के साथ थे। तीनों बात करने लगे। तीनों नही, दोनो 'राज' और 'राधा'। ब्रज सुनता था, केवल हमता था। मैं भी सुनने लगा। सब बातें पते की थी। कलम मेरे पास थी, और कागज भी। जो कुछ सुना, लिख डाला। मैने देखा—ओह, इसकी 'राज' तो सारे सरार की राभ्य ग्रसभ्य नागियो से प्रथक अकेली ही खडी हे। केवल अपनी ही सामर्थ्य पर। वट अराहाय गती हे—को, दैय, आवेश, अवैय, सत्रसे पाक साफ हे। यह समय, तत्व्य और जीवन के सच्चे तत्वो की अग्रिष्ठाती हे। वह आज की नारी मात्र की पथ प्रदर्शिता हे। मेने उसे अपराजिता स्वीकार कर लिया और उस दिन 'प्रजराज' ने राज के चने जान के बाद जब उस भूमि पर, जहा उसके चरण चिह्न बने थे—स्वाष्टान् भूपात करके अपना मस्तक टेक दिया, तो सब की नजर बचाकर मेने भी उन चरण चिह्नो की एक कोर चूम ली और मेरा अब तक का जीवन अन्य हो गया।

दो अप्रतिम मित्र

अपने इन दो मित्रो का मैं विस्मरण नही कर सकता। एक डाक्टर अम्बेडकर और दूसरे राजा महेन्द्रप्रताप। दोनो ही योग्य राजपुरुष थे। मेरे कानो में डाक्टर



2823



284

अम्बेडकर का वह गम्भीर नाद गूज उठता है जो उस पुरुषश्रेष्ठ की व्यङ्गित विशेषता थी। लोग कहते हैं कि वह कानून के अमावास्या सिद्धान्त थे। आयुष्य शास्त्र के वह किलने गम्भीर मननरता थे, इस बात का साक्षी तो मैं स्वयं हूँ। वह श्रद्धा और अविश्वस के भ्रमेरे स पात्र साफ रहकर भाड भखाड में पिपटी हुई उन साम्प्रतिक दुराटयो को ऋटपट ताड लते थे, जिनके कारण जातियो का उत्थान पतन होता है। उनमें यह विवेचना शक्ति उनके पाण्डित्य और अध्ययनके कारण नहीं उत्पन्न हुई थी। वह उस प्रतिक्रिया से उत्पन्न हुई थी, जो उनमें अभिजात्य हिन्दुओ के हाथो मिलनेवाले तिरस्कार के फलस्वरूप आई थी।

मेजावी और तेजवान पुरुष अग्नि और सूर्य के समान असह्य दृष्टा करते हैं। उन से सब से प्रथम वे ही पुरुष भुलमते जलने हैं, जो उनके अति निकट रहते हैं। इसी से तेजवान पुरुषो की सेवा करना आमान काम नहीं है। ऐसे पुरुषो की पत्निया, परिजन और भक्तजन बहुधा उन्ही से गाहत होते रहते हैं। परन्तु तेजवान पुरुष सबसे अधिक आहत स्वयं ही होता है—अपने तेज से। विश्व को जला कर खाक कर देने की शक्ति वाला तेज जिस शरीर में, जिस चेतना में अधिष्ठित रहता है, वह उस शरीर को भी जलाया करता है। उस दाह की वेदना को तेजवान पुरुष आजीवन सहते रहते हैं। ऐसी दशा में वे इस बात की क्यों परवाह करने लगे कि उनके अतिवासी जन भी उनके द्वारा जल रहे हैं।

आप गाधीजी का ही उदाहरण ले लीजिए। उनकी पत्नी ने अपने जीवन का पूरा काल उस तेजवान सूर्य के तेज में जलने की वेदना सहन करते हुए ही व्यतीत किया। ऐसे ही तेजस्वी पुरुष डा० अम्बेडकर थे, जिनके तेज की असह्य ज्वाला गाधी जैसे हिमालय को भी स्पश किए बिना न रही।

बहुत अर्मा हुआ, उन दिनों वह हिंदू कोड का बिल निर्माण कर रहे थे। हिंदू दुष्ट पर उनका असाधारण अधिकार था। अछूतो के हितो के लिए उनके हृदय में बवल हृमर्दी और त्याग की कल्पना ही न थी, क्योंकि वह केवल उनके कोरे हिमायती न थे, वह तो उनके साथी और अग्र थे। वह चाहे जिस उच्च आसन पर रहे हों, पर वह यह कमे भूल सकते थे कि उन का जातीय आसन कितना नीचा है और वह इसे अमह्य मानते थे। इसी से वह आजन्म दलितो के अधिकार की रक्षा के लिए लडते रहे। यह उन की राडाई असहायो तथा दलितो की सहायता और हिमायत के लिए नहीं थी, आत्मनिष्ठाके लिए थी, आत्मोद्धारके लिए थी। इसी से वह इतने सबल, दृढ और अचल रह कि उन्हें न कोई प्रलोभन डिगा सका, न भय।

जिन दिनों वह हिंदू कोड बिल का मसौदा बना रहे थे, मेरी बहुधा उनसे मुलाकाते होती तथा इसी विषय पर वार्तालाप भी होता था। स्त्रियो को समाज में

समानाधिकार मिले और वे पतिव्रता क घरा मे उन वी आश्रित बन कर न रह, यहा तक तो मे उनमे सहमन था, परन्तु तलाक का मे एकदम विरोधी था। आरता की यह कानूनी बदल बदल मुझे पसंद नही थी। भारतीय संयुक्त परिवार पद्धति के सूत्रागार पर बहुधा उन से बातचीत हुई। हिंदू विवाह और उत्तराधिकार सम्बन्धी कानूनों के वह अपने काल के एक ही पण्डित थे। उन जमा कानून का ज्ञाता तो मेने मांगर वाले डा० हरिसिंह गौड़ को ही देखा था पर इन मे यह लगन न थी। मेने ही उनका ध्यान इस तथ्य की ओर आकर्षित किया था कि हिंदू व्यवहार (ला) स्मृतियों की व्याख्या के आधार पर बना है, जबकि अब भी हिंदू विवाह वदिक रीति से होते है। वदिक ओर स्मात अंतर पर भी हमारे गम्भीर विवेचन होते रहे। उत्तराधिकार और दाय भाग का अंतर, उनका प्रचलन, आर्यों की दुरगी विवाह नीति, प्रणशकर, अनुलाम, प्रतिलोम, महाभारत मे व्यास का विद्रोह, परम्परा का नियमित रूप मे चला आता विद्रोह—इन सभी शास्त्रीय बातों पर छानबीन और विवेचना होती रहती थी। वह सभी को जानते और मानते थे। वसे संस्कृत के यह पण्डित नही थे, पर सभी अमग्र थ मोलिक रूप मे उ होने अंग्रेजी अनुवाद के साथ पढे थे। वह सभी की बात सुनते और समझते थे, पर करते अपने मन की थे। अमग्र थो का यह आप्त वाक्य नही मानते थे। जा कुछ वहा लिखा है, वही हम आज भी करना चाहिए यह युक्ति वह निरंतर ससभते थे। उन का कहना था, अमग्र थ तो स्वय ही पूर्णपर विरोधी है। वेद, ब्राह्मण, सूत्र और स्मृतिया परस्पर एकमत नही है, पर आचार्यों ने पूरे आचार्यों की आज्ञा का उल्लंघन किया है। मा मे आज अपने पूर्वाचार्या का उल्लंघन करता हूँ। इसी से वह अपनी टेक पर टूट थे। कडे से कडे विरोध का यह जवाब नही देते थे, यहम नही करते थे, केवल हंस कर बात मे उडा देते थे। यह थी, उन की आत्मनिष्ठा, जिममे सशो वन और इतर उबर करने की गुंजाइश कही थी ही नहीं।

बहुत बार मुझे पीज आई। एक बार तो मेने यह किया कि आप तलाक की आज्ञा उठाकर हमारे हिंदुओं के घरों मे आग लगाता चाहते है, हमारे घरों को उजाड़ देना चाहते है, इस मे आप दया माया या हानि नाश का विचार ही नहीं करते। उस का कारण यह है कि आप आय ता है नहीं, द्रविड, है, कदाचित्त अनाथ।

यह बात भी सुनकर वह हंस दिण— नहीं अपनी सहज इसी जिसना स्पष्ट यह ग्रथ होता था कि हमारे ऊपर इस बात का भी आई अमर नहीं है।

विचारों और सिद्धान्तों की उनकी यह दृढता और उनकी अपनी मान्यताओं के प्रति अद्वैत लगन किसी प्रतिस्पर्धा के कारण न थी। वह मुटिल पुरुष न थे, पक्कत साधु थे—स्वच्छ मन और साफ हृदय के स्वामी। अपनी इमानदारी के ही कारण वह अपने सत्य से विगे नहीं। मान, सम्मान, अपमान की उन्हाने परवाह ही नहीं।

माधारण बातचीत और व्यवहार में वह मृदुल और कोमल थे। लोगो से अधिक मिताने जुलने या मुलाकातिया को खुश रखने की उह परवाह नहीं थी। अय अव्ययनशील जना की भाति वह एकान्तप्रिय और मितभाषी थे पर कटु नहीं थे, रूखे नहीं थे। मुझे याद नहीं आता कि उनसे मिलने वालो में से किसी ने कभी उनके द्रव्यवहार की शिकायत की हो या उन्हें धमण्डी पाया हो।

कभी कभी वह मुझे चिकित्सा की भाति भी याद कर लेते थे। ऐसा ही एक मजेदार सस्मरण में सुनाता हूँ।

श्री सोहनलाल शास्त्री ने मुझे लिखा कि डाक्टर साहब की कमर में दद रहता है, आपसे वह इस सम्बन्ध में कुछ परामश करना चाहते हैं, कृपा कर यदि असुविधा न हो तो अमुक समय पर आ जाइए।

उन दिनों वह कानून में ग्री थे और इण्डिया गेट के समीप रहते थे। ठीक समय पर मैं जा पहुँचा। पहुँचने पर मैंने देखा कि सोहनलाल जी कुछ धवराए हुए हैं। मैंने पूछा—मामला क्या है ?

‘आप बठिए, अभी बताता हूँ।’

वह मुझे बजाय डाक्टर साहब के डाइग रूम में बठान के अपने दफ्तर में ले गए। वहाँ बठाकर वह कुछ देर के लिए शायद यह देखने कि डाक्टर साहब क्या कर रहे हैं भीतर चले गए।

वापसीमें उठने विनीतभाव से कहा—‘कष्ट के लिए आप क्षमा कीजिए। अभी डाक्टर साहब दो मिनिट में फारिग हुए जाते हैं। मिल लीजिए, मगर कृपा करके बीमारी या चिकित्सा सम्बन्धी कोई बात मत कीजिए।’

मैं हेरान था—इसका क्या मतलब ? मुझे तो बुलाया ही गया है रोगके सम्बन्ध में सलाह करने के लिए।

परंतु सोहनलालजी बहुत परेशान हो रहे थे। असल बात वह कहना चाहते न थे। उ होने इतना ही कहा—‘मैं फिर आप को बताऊंगा, अभी तो आप उनसे मिल लीजिए। कृपा कर मेरी बात का ध्यान रखिए।’

मुझे यह बात अचट्टी नहीं लगी। मैंने कहा—‘अपनी ओर से कोई प्रश्न उठाने की मेरी कोई आदत नहीं है। चलिए आप।’

भीतर जाकर देखा तो डाक्टर साहब आराम कुर्सी पर बैठे थे। चेहरे पर थकावट के चिह्न तो जरूर थे, पर मुस्कान वसी ही थी। सामने मेज पर मकई के भुट्टों की १०-१२ गित्तिया पडी हुई थी। अनायास ही मेरा ध्यान उन की तरफ गया। साधा-रण शिष्टाचार के बाद मैंने हसकर कहा—‘आप अभी शायद मकई के भुट्टे खा रहे थे।’

डाक्टर साहब अभी जवाब न दे पाए थे कि उनकी धमपत्नी आकर पास ही

कुर्मी पर गठ गं और मेरी और कठोर मुद्रा में देखने लगी, जिसका कारण में समझ नहीं पाया। डाक्टर साहब ने हंसकर मेरी बात का जवाब दिया। उन्होंने पत्नी की ओर संकेत करके कहा—‘दखा यह डाक्टर है ही के गहरे में खाने है।’

‘लेकिन आपने तो कमर में दब है?’

‘हां, इनका ख्याल है कि यह उस बीमारी में फायदा है।’

मैंने श्रीमती जी की ओर प्रश्नसूचक ढंग से देखा। यह विवाह डाक्टर साहब ने उन दिनों कुछ महीने पूर्व ही किया था और मैं श्रीमती जी को देखने का मेरा यह पहला ही अवसर था। मैं समझ नहीं रहा था कि उतना मर प्रति उस बदर ऋडी नजर क्यों है।

उन्होंने पूछा—‘क्या आप डाक्टर हैं?’

‘जी, मैं बच हूँ। आयुर्वेदिक चिकित्सक।’

‘आयुर्वेद तो कोई विज्ञान नहीं है।’

मैं अपनी आदत से लाचार हूँ। लडाईं का चेतोज में सहन कर नहीं सकता हूँ। यह तो सरासर लडाईं का चुनौती थी। उनकी क्या नजर तो पहले ही थी। अब इस पर यह फतवा। स्पष्ट ही मुझे यह प्रकट हो गया कि वह यहाँ न मेरी हाजिरी चिकित्सक की हेसियत से पसंद करती है न आयुर्वेद पर ही उनकी श्रद्धा है। इसके प्रतिरिक्त शायद वह किसी भी चिकित्सक को अपने घर में देखल देना नहीं चाहती थी, क्योंकि वह एक नामांकित डाक्टर और पडिण्ता थी।

परन्तु वह चाहे जो भी हो, उन्होंने मुझे करारी जलवार दी थी इसलिए जब उन्होंने कहा कि आयुर्वेद कोई विज्ञान नहीं है, तो मैंने आहिस्ता से पूछा—‘क्या आपने आयुर्वेद पढ़ा है?’

इस प्रश्न से वह गुस्से हो गई और इतर में भी तीर-तमचे से लौट हो गया। कठिनार्थ यह थी कि जहाँ वह स्त्री थी और पुरुषाभिनी थी वहाँ मैं अतिथि था। फिर भी जब लडना ही है तो सोच विचार क्या?

परन्तु डाक्टर साहब ने मामले की गहराई को भाप लिया। उन्होंने हंसकर मुझसे बातचीत का प्रसंग दूसरी ओर फेर दिया। उन्होंने प्रथम मुझे प्रसन्न करने को आयुर्वेद की प्रशंसा की, फिर पत्नी का भी प्रसन्न करने के लिए उसकी वतगान श्रवण गति की थोड़ी व्याख्या की। इसके बाद चतुराई से उन्होंने बातचीत का प्रसंग औपचारिक बना दिया और उसदिन एक अप्रिय घटना हाते होते रह गई। यो जी ही देरमें मैंने विदा मागी और मैं श्रीमती जी को खुश करने का शिष्टाचार नहीं भूला। जब वह हँस दी, तभी मैंने उन्हें दुबारा प्रणाम किया और मैं चला आया।

मैं समझता हूँ, डाक्टर अम्बेडकर में भारत के राष्ट्रपति होने की योग्यता था।

यदि वह अछूतो का प्रतिनिधित्व त्याग देते और ममूचे भारतीय जनपद का प्रतिनिधित्व समझि में करते तो उ हे भारतीय राष्ट्रपति का पद मिलता, जिसके कि यह प्रकृत अधिकारी थे । यह बात मने उ हे एक पत्र में लिखी भी थी, परन्तु वह कैसे अपने रक्त सम्बन्ध से प्रकले रह सकते थे ? कैसे उन लाखों अछूतो का साथ छोड़ सकते थे, जिन के साथ अभिजात्य कुलीनों ने शताब्दियों से अत्याचार किए हैं । इसके लिए वह गांधी जी से भी लड़ते रहे, यद्यपि वह गाँधीजी को प्यार करते थे । गाँधीजी के प्रति उन की निष्ठा का पता ही तब लगा, जब गाँधीजी ने प्राणोत्पन्न उपवास किया था, जिसके कारण अम्बेडकर ने अपना अजेय वाण भुका लिया था । गाँधीजी भी इस महात्मा के सत्यव्रत को समझते थे, और उनका वैसा ही मान भी करते थे । अपने अन्त समय में वे बौद्धधर्म की गिरावट में गए । उनके मन की दुबलता में समझता था । कभी भी वे हिंदू न बन पाए । वे जानते थे, हिंदू समाज में घुसने के चार द्वार थे । चारों ही उनके लिए निषिद्ध थे । विद्वान होने पर भी पंडित होने पर भी, माननीय होने पर भी, क्यों कि वे जन्मजात अत्यज थे । जीवन के आरम्भ ही से उन्होंने इस निषेध का अनुभव किया । भारतीय जनतन्त्री राज्य में मंत्री पद पाकर भी, एक विद्वपी ब्राह्मण महिला से विवाह करके भी उनके मनका द्वैव मिटा नहीं । जिन्ना ने उ हे मुसलमान होने का निमन्त्रण दिया था, पर तु इतनी निष्ठा तो उनमें थी कि इस निमन्त्रण को वे ठुकरादे । बौद्धधर्म का उदय निस्स-देह उमी प्रतिक्रिया से हुआ था जो अम्बेडकर के मन में बद्ध मूल थी । इसलिए उनका मन बौद्धधर्म की ओर झुक गया । इसके लिए उ हे दोष नहीं दिया जा सकता । कोई भी आत्मसम्मानी व्यक्ति उम अपमान को सह नहीं सकता, जो अम्बेडकर जैसे प्रकाण्ड पंडित और धाराशाहनी को केवल जमदोप से सहना पडा । प्रायसमाज आज सजीव होता तो वे उधर अवश्य झुकते, पर वह प्रथम ही निस्तेज सस्था हो चुकी थी । बौद्ध सस्था में भी कुछ जीवन नहीं रहा था, न अब है । परन्तु नए युग के साथ बौद्धधर्म ने एक नया रूप और दृष्टिकोण स्थापित किया है, उसीसे डाक्टर अम्बेडकर ने उसे अपना आत्मापण किया ।

राजा महेन्द्रप्रताप जबदस्त काँतवारी तथा बीती हुई पीढी के देशभक्त पुरुष हैं । उनकी अटपटी वाणी और भावों को देश आज अपने में आत्मसात करने का काल नहीं देखता । सन् १९५७ के चुनावों में अनेक चमत्कार हुए, उनमें एक हुआ राजा महेन्द्रप्रताप का लोकसभा में चुनाव जाना । नेहरूजी का कहना था कि राजा साहब का लोकसभा में आना उनके लिए एक सिरदद है । उधर राजा साहब का कहना था कि वह यदि इस बार न चुन लिए जाते तो विदेशों में जाकर अपनी राजनीति का चक्र घुमाते, जो श्रीनेहरू के लिए और भी सिरदद का बाइस होता ।

अपनी इस सफलता को राजा साहब अपने शब्दों में 'दिल्ली पकडना' कहते थे ।

वह बरसो से दिल्ली पकड़ने की जुगत में थे। पिछले चुनाव में वह हार गए, दिल्ली न पकड़ सके। इसके बाद उन्होंने बाहर से भी दिल्ली पकड़ने की चपट मारी, पर साथियों ने साथ न दिया। वह दिल्ली न पकड़ सके। अंततः, अंत पकड़ी दिल्ली।

किन्तु अब ?

‘ग़ागबा नेटद, गुन वेतफा गुनची रकीर, कौन सुनता है चंगा म बालहाण ग्रन्दलीब।’ क्या करगे गज़ा साहब बहा पट्टुच तर मेरा ग़यात है प्रपा गिर म दद पदा करेगे। अपना समय बबाद करगे और अपने अय माथिया का भी। महगाग उनमे होगा नहीं। सपने जो कुछ वह देखते है, कभी साकार होग नहीं। उनीतंग बरस उन्होंने दुनिया के राष्ट्रों के द्वार पर अलख जगाया, प्रेम के गीत गाए, समार मव के कल्पना चित्र बनाए। जो कुछ था सब त्याग दिया। भागीरथ प्रयास किया। वह अपनी वन सम्पत्ति में ही नहीं, स्त्री बच्चों से भी वंचित रह गए। उनकी देशभक्ति में, प्रेम भावना में, मनुष्यों की हित कामना में, युद्ध विरोधी तत्वा में त्याग, तप में किसे सन्देह होगा ? इन सब सद्भावनाओं और तपस्याओं के कारण कौन उनका सत्कार न करेगा ? पर तु यह उत्कट देशभक्ति के नाम पर बलि देकर, दंग विदेशों की खाक उतार कर, विश्व के चाटी के महज्जनों से निकट सम्पर्क स्थापित करके भी ठूठे हाथा बद्वायस्था में झुकी हुई कमर और आधी शताब्दि तक दुनिया की राजनीतिक आगम भुनकी हुई पत्नी सफेद दाढ़ी तथा माथ में चित्ताओं की गसरय लकीरे लेकर फकीर के पंथ में अकेला लोटा, तो उस बात को भी आज दम बरस से अतिक्रम हा गए। वह तब से अब तक अकेला का अकला ही है। लाग कहते है कि यह खन्ती है, कही उसका दिमाग की कीत हिल गई है, वह सनकी है। उसकी बात हास्यास्पद है, अव्याहाय है, परस्पर विरार्थिनी है, क्रियात्मक योजनाओं से रहित है। एमों बमों है। मान ला यह सत्र तु ठ है, फिर अयम पचास साल प्रथम का क्रांतिकारी ता ऐमा हागा ही। अत्र तर्न जायित रहना ही शायद उनका सबसे बडा अपराध है। वह आज की प्रदनी टर्न राजनीति में फिट हान योग्य नहीं है। तजते बाज में गुर उमगा मितता नहीं है, ता गया उमीसे उसका सारा तप त्याग आर सच्चा तपा हुआ देश प्रेम किसी मूल्य का न रहा ? अत्र यहां शाभ नीय है कि वह दर दर मारा मारा पिरे, बकता रह। गाग मुने और सपती नह कर, हसकर उस पर उपेत्या की नजर डालकर चलत बने। आज दस की नजर में एक कानी कौडी के मूल्य की भी उसकी योग्यता नहीं। उसकी सेवाओं का मृत्य नहीं।

आज कितने मिनिस्टर न जाने रहा से किस योग्यता के आधार पर निकल आते और कुर्सियों में चिपक कर बठ जात है। यही बात कितने ही राज्यपालों के बारे में भी कही जा सकती है। क्या इनकी योग्यता कभी किसी ने जांच कर देखी है। एक चपरासी को यदि नौकर रसना होता है, तो उसकी योग्यता, अनुभव, सच्चरिता और

काम करने की शक्ति देख ली जानी है। पर मिनिस्ट्रो और राज्यपाला की नहीं। वस सया जिमे चाहे वही सुहागिन। क्षण भर म एकाएक काई भी व्यक्तित् चाहे जिम मिनिस्टरी की दुर्गि पर आ बठा और उसी विभाग का धडल्ले से चलाने लगा। हरीजन यह कि चलाने वाले चनाते ही रहते है, और चलने वाल चलते ही रहते है। कुर्सी पर मिट्टी का मागो भी यदि बठे तो क्या ? इसी लिए मिनिस्टरो और राज्यपाला के लिए हमारी इम गणत त्री सरकार मे किमी योग्यता की आवश्यकता नहीं है। वम, यह चाहिए कि वे बडे गुट के आदमी हो मिख हो, या हरिजन हो, या अल्पनरयक हो, तो उ हे कही न कही किसी मिनिस्टरी की कुर्सी पर चस्पा कर दिया जायगा। राज्यपाल के लिए तो इतना भी दरकार नहीं, केवल प्रभुजनो की कृपादृष्टि ही काफी है।

परन्तु ये दोनो महकमे मिनिस्टरी और राज्यपाल के जिनमे किमी भी प्रकार की योग्यता की कद नहीं, इनके योग्य भी वह बेचारा एकाकी बूढा क्रांतिकारी स न नहीं है। क्योंकि वह न हरिजन है, न किसी एक गुट का प्रतिनिधि है। इसके अतिरिक्त प्रभुजनो का वह कृपा पात्र भी नहीं है। वह तो अपना अलग ही वसुरा राग गलापता है। किसी की आवाज मे उसकी आवाज मिलती नहीं है। अब जो वह अपना वसुरा राग अलापने के लिए लोवसभा की सामूहिक राग मण्डली मे हटपूवक आया है, सो उसकी यहा किस कदर दुगति होगी, कितनी उसे परेशानी और निराशा होगी, यह हमे कुछ-कुछ अभी से दीख रहा है।

राजा महे द्रप्रताप एक पाथिक पत्र निकालते है—‘ससार सघ’। अंग्रेजी और हि दी मे। मुझे राजनीति का अजीरा ही है। राजनीति का मेरे ऊपर वही असर होता है जो अफीम का होता है। चार मित्र यदि मेरे पास बैठकर राजनीति की चर्चा करे तो मुझे भट नीद आ जाएगी। यो नीद मुझे कम ही आती है। पर तु राजा साहब के दस अखबार को तो मै सब त्राम छोड एक ही सास मे पढ जाता हूँ। एक एक अक्षर। मजेदार अखबार है मजेदार अटपटी, शुद्ध अशुद्ध भाषा। न शब्दो मे अचित्य का विचार न वाक्य योजना की परवाह, न शब्दशुद्धि का ध्यान, न किमी तरह की टीप टाप। रद्दी कागज, रद्दी छपाई। लेकिन प्रत्येक बात ठाठ की। खरी और पते की। सीधी चोट। टुहत्तड मार। आत्मश्लाघा की भरमार। पर उसमे बच्चा जसा भोला पन। वाते जरूर बहकी बहकी। जिनके सिर पर का पता लगाना मुश्किल। सबसे ऊँची आग्रज-एगार सघ की, प्रेमकर्म, धमजय, धमराज्य, पर तु साथ मे जाटो, राजपूतो, सनिको, भूस्वामियो को भडकाने के मसाले। हमारी समझ मे नहीं आता कि इन बातो को विश्व शांति से मेल कहा है, पर तु इन सब बातो से हमे क्या सरोकार। बहुत लोग बहुत तरह की बात करते है। उनमे कितन ही भूठे और लपाट है, भारी लीडर होने के बावजूद भी। सभी अपनी अपनी कहते है, राजा साहब भी अपनी कहते

है। पर इतना तो मैं कह सकता हूँ—उम ठूढे पालक की पत्येक बात निर्दाप है, निर्व्याज है, मरकरी और धूलता से कतई पाप साफ है। सच्ची है, भरो ही ठीक नहीं, आपका ठीक न जँचे तो आप उनमें बहम कर लीजिए, समझिए समझाए। सम्भव है, वह भी कुछ समझ जाँय, आज के जहाँ में मित जाय परन्तु उम ऐसे तपस्वी को अकेला छोड़ देना बड़ी तरुनीफ की, कहना चाहिए राम की बात है।

राजा साहब को खबर हमें याद आनी है रूग व महान् क्रांतिकारी टाट्स्की की, जो पुण्यश्लोक महात्मा लेनिन का न केवल मित्र था, उमका राजनीतिक दाहिना हाथ और पथ प्रदर्शक भी था। जिगम बीम आर्मियो की क्रिया शक्ति थी। हमें उस महान् क्रांतिकारी के वे दिन याद हैं, जब वह स्पेशल ट्रेन द्वारा यात्राकर रहा था। उस की ट्रेन पर पद पद पर आक्रमण हो रहे थे, जिनका जवाब ट्रेन में जड़ी हुई मशीन गने दनादन दे रही थी। पट पट पर ट्रेन के उलट जाने, उसमें प्राण लग जाने का भय था, परन्तु वह नरशाहूल, इन क्षणों में ट्रेन के भीतर गपने डबे में बैठा, एकाकी सा अपना क्रांति ग्रंथ लिख रहा था।

वित्तीय समता है इस महापुरुष में और राजा साहब में। वैसा ही लम्बा कद, वैसा ही झुकी कमर, वैसी ही कुछ हूटती हुई सी आकुल व्याकुल गांठें। वैसा ही चिन्ताओं की रेखाओं से मिकुडा हुआ मस्तिष्क और वैसे ही मौलिक एकनिष्ठ मस्तिष्क में भरे हुए विचार।

अधिकार के लालची उमके शत्रुओं ने उसे दुनिया में किसी कोने में आराम में न रहने दिया और अंत में उसका मिर हथोड़े से फोट कर उसकी हत्या कर गली। सुक है कि भारत के राजनीतिक धुर अरों ने राजा साहब में ऐसा सलूक नहीं किया। सिफ उनकी ओर से मुह फेर लिया है और अब उन्होंने दिल्ली पकड़ ली है।

दद की तम्बीर धमपुत्र

१९५४ के आरम्भ में कर्ण चन्द्र की एक पार्टी दी गई थी। पार्टी दिल्ली के एक प्रतिष्ठित प्रकाशक न दी थी। निम त्रण मुझे भी मिला। गो यह एक नई बात थी। आमतौरसे मुझे लोग पार्टियों में चुनाव उताने नहीं। नई दिल्ली के एक शानदार होटल में पार्टी का आयोजन था। पार्टी में प्रनक प्रकाशक, साहित्यिक पत्रकार और अध्यापक भी थे। और मैं तो था ही। पार्टी की धूम धाम और शान को मैंने देगा, कर्णचन्द्र को देखा, निपट बालक सा तरुण है। उसे भला क्या पार्टी दी गई। ऐसी शानदार पार्टी तो मुझे मिलनी चाहिए थी। उसके बाद अरमात् मेरे मन में एक विचार पैदा हुआ, कि क्या कारण है अब तक मुझे किसी न ऐसी शानदार पार्टी नहीं दी। चानीय साल कलम घिसी, पैसठ की दहलीज पर पहुँचा, ग्रंथा की सस्था एक सौ उक्कीय को पार कर गई, फिर क्या लोग अब वै, बहरे हे, मूख ह या साहित्य को समझते ही नहीं हे, क्या बात

हे, वास्तव मे पार्टी यदि किसी को मिलनी चाहिए थी ता मुझी को मिलनी चाहिए थी । मेने एकबार आख ओग सिर उठाकर चारो ओर देखा,तो मुझे ऐसा प्रतीत हुआ,कि इस जमघट मे मुझमे बडा साहित्यकार तो कोई नजर नही आ रहा हे । फिर भी पार्टी मुझे नही, कृष्णच दर को ही दी गई थी, इसमे तनिक भी शुबहा न था ।

बडी देर तक मै टम बात पर विचार करता रहा और अतमे मेरे मन ने मान लिया, कि मै आयु मे ही कृष्णच दर से बडा हूँ । परंतु साहित्यकार बडा कृष्णच दर ही हे । गो है बालक ही । अब मुझे इस बात का भी पछतावा हो रहा था कि मे तो कृष्णच दर के सम्बन्धमे कुठ जानता ही नही हूँ । खुदा की मार मुझपर,कि मेने उनकी कोई कहानी पढीही नही । नि दा ओर स्तुति मे साहित्यकारो की सुनने का आदी नही । अब मे घबराने भी नगा कि थोडी देरमे भाषण होगे,कृष्णच दर की ओर उनके साहित्य की प्रमगात्मक आलोचना करनी हागी । सम्भवत यह काम मुझे ही सब से प्रथम अजाम देना होगा । क्योकि यहा सबसे बडा साहित्यकार तो मे ही हूँ । गो कृष्णच दर से छटा ही सही । मगर कहा ? प्रशस्तिगान आरम्भ कराया गया देवेन्द्र सत्यार्थी से । मानता हूँ कि उनकी जसी शानदार डाढी दिल्ली भर मे नही मिल सकती,हालाकि इस वक्त दिल्ली डाढियो का समार भर मे सबसे बडा मार्केट है । मगर उम मजलिस मे तो था ही, उग्र थे, जैनेन्द्र थ और भी अनेक थे । इन सबके सिर पर इस लम्बी डाढी की यह हिमाकत मुझे बहुत ही नागवार प्रतीत हुई । गो डाढी बहुत ही शानदार थी, और कला की दृष्टि से यह भी साहित्य के अन्तगत आती है । निरालापन ही तो साहित्य की जान हे,और यह डाढी जरूर निराली थी । फिर भी हम लोगो के रहते हुए सिफ डाढी ही के जोरपर उम साहित्यिक मजलिस की नाक का बाल बनाना अप्रल की सिफ पहली तारीख को ही बदास्त किया जा सकता है । उग्र भी शायद गुनगुने हो रहे थे,मे सोच ही रहा था कि डाढी के बाद अब मेरी बारी आएगी पर तु कहा ? उग्र एक दम उठ खडे हुए । अपना परिचय दिया जो कहना सुनना था,कह गए, पर तु मेरी बारी तो फिर भी नही आई । बारी आई जनेन्द्र का । वत्तरे की । अब मुझे स्वीकार करना पडा कि जनेन्द्र भी मुझ से बडे साहित्यकार हे, यद्यपि उग्र मे वे भी डाटे हे । जनेन्द्र का भाषण आरम्भ हुआ, और मेने कुठ साचना आरम्भ कर दिया । पुरानी आदत हे, जनेन्द्र जब बोलने लगते हे तो मै किसी विषय की चि तना करने लगता हूँ । ध्यान से सुनने समझनेपर भी कुठ पताही नही लगता कि वे क्या कह रहे है । वस यही सोचकर मतोप कर नेता हूँ कि कुठ दाशनिक बात कह रहे होगे, जिनसे मे प्याज की बू की तरह घबराता हूँ । इसलिए, जनेन्द्र के भाषण के साथ ही मे अपने किभी प्रिय विषय को सोचने लगता हूँ । परंतु उस समय मै जैनेन्द्र की ही बात सोचने लगा । जरूर ही जनेन्द्र मुझ से बडे साहित्यकार है,तभी तो सग लोग मेरे रहते भी उटे ही आगे रखते

है। पर इतना तो मे कह सकता हूँ—उम बूढे जानकी पत्येक रात गिर्तोप हूँ, निव्याज हूँ मरकानी प्रौर धूतता से रतई पाफ माफ हूँ। मच्छी हूँ, भने ही ठीक नही, आपकी ठीक न जँचे तो आप उनमे बहम कर लीजिए, समभिए समभाउए। मस्थान हूँ, वह भी कुत्र समझ जाँय, आज के जहान म मिल जाय, परन्तु उम ऐमे तपस्वी को ग्रहेला छोड देना बची तकलीफ की, म्हना चाहिए राम की बात हे।

राजा साहब को खबर हूँये याद आनी हे रग न महान् क्रांतिकारी ट्राट्स्की की, जो पुण्यश्लोक महात्मा लेनिन का न केवल मित्र था, उमका राजनीतिक दाहिना हाथ और पय पदशरु भी था। जिगमे बीम आरमियो की क्रिया शक्ति थी। हम उस महान् क्रांतिकारी के वे टिन याद हूँ, जब वह स्पेशल ट्रेन द्वारा यात्राकर रहा था। उस की ट्रेन पर पद पद पर आक्रमण हो रहे थे, जिनका जवाब ट्रेन मे जड़ी हुई मशीन गने दनादन दे रही थी। पद पद पर ट्रेन के उलट जाने, उसमे प्राण लग जाने का भय था, परन्तु वह नरशादूल, इन क्षणो मे ट्रेन के भीतर अपने डब्बे मे बैठा, एकाकी मन अपना क्रांति ग्रन्थ लिख रहा था।

कितनी समता है इस महापुरुष म प्रौर राजा साहब मे। वैसे ही तम्बा कद, वैसे ही झुकी कमर, वैसे ही कुछ दूटती हुई सी आकुल व्याकुल आस्ये। वैसे ही चिंताओं की रेखाओं से सिकुडा हुआ मस्तिष्क और वैसे ही मौलिक एकनिष्ठ मस्तिष्क मे भरे हुए विचार।

अप्रिकार के लालची उसके शत्रुओं ने उमे दुनिया ने किमी कोने मे आराम से न रहने दिया और अंत मे उसना मिर हथोडे मे फोन् कर उसकी हत्या कर डाली। सुक्र है कि भारत के राजनीतिक धुरन्धरो ने राजा साहब मे ऐगा मलक नही किया। सिफ उनकी ओर स मुह फेर लिया हे और अब अन्होने दिल्ली पकड ली हे।

दद को तम्बीर धमपुत्र

१९५४ के आरम्भ म कर्ण चन्द्र की एक पार्टी दी गई थी। पार्टी दिल्ली के एक प्रतिष्ठित प्रकाशक ने दी थी। निम राण मुझे भी मिला। गो यह एक नई रात थी। ग्रामतौरसे मुझे तोग पार्टियामे बुजाते उलाते नही। नई शिक्तो के एक शानदार होटल मे पार्टी का आयोजन था। पार्टी म गोक पत्राशन, साहित्यिक पत्रकार और अध्यापक भी थे। और म तो था ही। पार्टी की धूमराभ और शान को मेने देगा, कृष्णचन्दर को दखा, निपट बालक सा तम्ग हे। उगे भना क्या पार्टी दी गई। ऐसी शानदार पार्टी तो मुझे मिली चाहिए थी। इसके बाद अंतरमात् मेरे मन म एक विचार पैदा हुआ, कि क्या कारण है अब तरु मुझे किमी न ऐसी शानदार पार्टी नही दी। चालीस साल कलम घिसी, पसठ की दहलीज पर पहुँचा, ग्रथा की सस्था एक सौ इक्कीस को पार कर गई, फिर क्या लोग अ घे है, बहरे हे, मूख हे या साहित्य को समझते ही नही हे, क्या बात

हे, ग्रास्तव मे पार्टी यदि किसी को मिलनी चाहिए थी तो मुझी को मिलनी चाहिए थी। मैंने एकबार ग्राव ग्रीग सिर उठाकर चारो ओर देखा, तो मुझे ऐसा प्रतीत हुआ, कि इस जमघट मे मुझमे बडा साहित्यकार तो कोई नजर नही आ रहा ह। फिर भी पार्टी मुझे नही, कृष्णच दर को ही दी गई थी, इसमे तनिक भी शुबहा न था।

बडी देर तक मै टम रात पर विचार करता रहा और अतमे मेरे मन ने मान लिया, कि मै आयु मे ही कृष्णच दर से बडा हूँ। परन्तु साहित्यकार बडा कृष्णच दर ही हे। गो है बालक ही। अब मुझे इस बात का भी पछतावा हो रहा था कि मे तो कृष्णच दर के सम्बन्धमे कुछ जानता ही नही हूँ। खुदा की मार मुझपर, कि मेने उनकी कोई कहानी पढीही नही। नि दा ओर स्तुति मे साहित्यकारो की सुनने का आदी नही। अब मे घबराते भी नगा कि थोडी देरमे भाषण होगे, कृष्णच दर की ओर उनके साहित्य की प्रमशात्मक आलोचना करनी होगी। सम्भवत यह काम मुझे ही सब से प्रथम अजाम देना होगा। क्योंकि यहा सबसे बडा साहित्यकार तो मे ही हूँ। गो कृष्णच दर मे छोटा ही सही। मगर कहा ? प्रशस्तिगान आरम्भ कराया गया दवेन्द्र सत्यार्थ से। मानता हूँ कि उनकी जमी शानदार डाढी दिल्ली भर मे नही मिल सकती, हालाकि इस वक्त दिल्ली डाढियो का समार भर मे सबसे बडा मार्केट है। मगर उम मजलिस मे मे तो था ही, उग्र थे, जनेन्द्र थे और भी अनेक थे। इन सबके सिर पर इस लम्बी डाढी की यह हिमाकत मुझे बहुत ही नागवार प्रतीत हुई। गो डाढी बहुत ही शानदार थी, और कला की दृष्टि से यह भी साहित्य के अन्तगत आती है। निरालापन ही तो साहित्य की जान है, और यह डाढी जरूर निराली थी। फिर भी हम लोगो के रटते हुए सिफ डाढी ही के जोरपर उम साहित्यिक मजलिस की नाक का बाल बनाना अप्रल की सिफ पहली तारीख को ही बर्दाश्त किया जा सकता हे। उग्र भी शायद गुनगुने हो रहे थ, मे साच ही रहा था कि डाढी के बाद अब मेरी बारी आएगी पर तु कहा ? उग्र एक दम उठ खडे हुए। अपना परिचय दिया जो कहना सुनना था कह गए, परन्तु मेरी बारी तो फिर भी नही आई। बारी आई जनेन्द्र को। बत्तरे की। अब मुझे स्वीकार करना पडा कि जनेन्द्र भी मुझ मे बडे साहित्यकार हे यद्यपि उग्र मे वे भी डोटे हे। जनेन्द्र का भाषण आरम्भ हुआ, और मैंने कुछ साचना आरम्भ कर दिया। पुरानी आदत हे, जनेन्द्र जब बालने लगते है तो मै किमी विषय की चिन्तना करने लगता हूँ। व्यान मे सुनने समझनेपर भी कुछ पताही नही लगता कि वे क्या कह रहे है। वम यही सोचकर सतोष कर नेता हू कि कुछ दाशनिक बात कह रहे होगे, जिनसे मै प्याज की बू की तरह घबराता हूँ। इसलिये, जैनेन्द्र के भाषण के साथ ही मे अपने किमी प्रिय विषय को सोचने लगता हूँ। परन्तु उस समय मै जैनेन्द्र की ही बात सोचने लगा। जरूर ही जनेन्द्र मुझ से बडे साहित्यकार है, तभी तो सग लोग मेरे रहते भी उह ही आगे रखते

हे जिमम उन्हें भी कभी मजबूत नहीं हुआ। अवश्य ही वह भी ऐसा ही समझत है। सोचते सोचते मन न बना पत्येक साहित्यकार का प्रथम प्रयत्न प्राण है। जन द्र जनेवी प्राण साहित्यकार है। उनके साहित्य में जनेवी जमा कुछ चिपचिप चिपकता, कुछ टप कता, कुछ गोल गाल उलझा, कुछ मुनझा, मीठा मोठा साहित्य रहता है, वासी होने पर प्रसाद कहकर बेचा जाता है। फिर मेरा ध्यान सामने उठे उग्र पर पडा। निम्स तेह उग्र डण्डा ब्रा उ साहित्यकार है। मी मा खोपड़ी पर खीच मारते है। फिर वह त्रिलबिलाकर अस्पताल जाय या चूना गुड का लेप करे और मे हूँ लाठी ब्रा साहित्यकार। चोट कसंगा तो ठौर करके बर देना ही मेरा ण्य है। साम आने का काम नहीं। सामने नजर उठी तो बनारसीदाम चतुर्वदी रसगुला पर हाथ साफ कर रहे थे। भई बाह, ये हे बल्ली ब्रा उ साहित्यकार। जिमका जी चाहे ताप कर देख ले। लीजिए साह्य, मे तो सोचता ही रहा और लोग उठ उठ कर चदन भी लगे। हड्डा कर देगा पार्टी खत्म हो चुकी थी, भाषण और भी हण थे। कृष्णच दरन जवाब मे भी कुछ बहापुनी की थी पर मेरी हिमागत देपिए मुझे कुछ पता ही न लगा। जब मैं समझ गया, कि क्यो लोग मुझे बुलाते चलाते नहीं। पर तु अब क्या हा सकता था? अठताता पत्रताता घर चला आया।

बहुत गुस्सा आ रहा था मुझे सब लोगो पर। क्यो नहीं लोग मुझे ऐसी पाटिया देते। पर तु कहूँ किमसे? मन ही मन खीभ रहा था कि मन ने एक वाक्का दिया, कहा—अपनी दतनी पूजा करता है तो दुनिया से क्या? तू खुद अपनी और देख अपना साहित्य रचे जा, अपनी कनम चलाए जा, अपने आसू प्येरे जा। अपनी रचना आप ही पढ, अपनी सम्पदा म आप ही सम्पन्न रह, मगन रह पार्टी पार्टी को गोली मार और उठा कलम। अभी उठा। हम पक्त शिल चुटाला है, एमी ही चोट याकर साहित्यिक वेदनाए मृत हाती है। ले खीच ता एम तद नी तस्पीर।

क्या कहा जाय, अपने ही मन की बात टाली न जा सगी। लो साह्य, हद हो गई। हाथ आप ही कलम पर आ पडा। कनम था फाउ टनपेन। इसी साल गये तिर सठवे ज म नयन पर दिवलो नी पगतिगील साहित्य परिपद् ने मुझे स्नेह भेट के रूप मे दिया था। म सम्म प्रम भी कुछ कहना पडा। आजतक किसी भी साहित्यकार, साहित्य नस्था, या साहित्य मत्र ने कभी मेरे पास याकर नहीं कहा—कि आ, तुझे हम सम्मानित कर, तेरा ज म नभत्र मनाए, तरी कुछ धूम राम कर, पल्लिमिटी कर, न कभी किसी न किसी सम्मेलन का सभापति ही मुझे बनाया। इ तजारी प्रहृत थी। सभापति बनाना तो दूर, साहित्य सम्मेलन तक क अविवेशन म कभी मुझे निम त्रण तक नहीं मिला। पिछती बार मरठ म हि दी साहित्य सम्मेलन का अविवेशन था, वहाँ म बिना ही गुलाए चला गया, इसलिए कि पास तो है ही, बहुत से साहित्य बंधुओ के दश पश हो जाएँगे। देखा सबन, पर किसी ने भीतर मच पर चलकर बैठन तक को नहीं कहा।

दो दिन बाहर ही बाहर धूम फिर कर चला आया। ऐसी हालत में हर साल मैं ही अपना जमाना बना लिया करता हूँ। व बुढ़ा वय मिन आर कुछ माहित्य परिजन आ जाते हे मेरे घर को जुठार जाते है मेरे प्राणा को आन द दे जाते हे। पर भेट उप हार कभी कोई नहीं देना। इम बार न जाने यह क्या एक बदपरहेजी ही हो गइ कि प्रगतिगीन परिपद न हरिदत्त भाई के हाथ मुझे एक कलम भट की। उमी समय, मेने यह स्वीकाराक्ति का गी, कि इस कलम से पहिली बार एक उप याम लिखूंगा और यह भी लिख दूंगा, कि यह उप याम इस कलम से लिखा हुआ हे। सो हाथ इस कलम पर आ पडा और वह स्वीकारोक्ति भी याद पड गई। बस एक पय दो काज। उमी कलम से दद की एक तम्बीर 'वमपुत्र' उप याममे खीची गई। उस तम्बीर मे दद जितना था, वह मेरे कलेजे का था, और प्यार जितना था, यह प्रगतिशील साहित्य परिषद के सदस्या का, जो उहोने अपने कन्म मे भरकर मेरे जन्म-नक्षत्र पर भेजा था।

दिव्यज्योति ज्योत्स्ना

१८५५ के आरम्भ में मुझे एक अद्भुत स्वप्न दीखा। रात को दो बजे मेरी आख खुल जाती है और मे बिस्तर त्याग अपनी मेज पर आकर लिखने बैठ जाता हू। उन दिना भारतीय सस्कृति का इतिहास मेरी मेज पर चारो ओर फला हुआ था। सतयुग खण्ड, त्रेता खण्ड, द्वापर खण्ड इन तीनों खण्डों में, जो लगभग सात सात सा पृष्ठ के थे, मैं उलझा रहता था। उस दिन दो घंटे काम करके ही मुझे नींद आने लगी और मैं पलंग पर जाकर सो गया। चार या पांच बजे पात काल की उस नींद में वह अद्भुत और आनंदप्रद स्वप्न देखा।

मेने देखा कि कारुली मंदिर के द्वारकावीश जी की प्रतिमा की भव्य मूर्ति ने सागरतल से निकलकर साक्षात् मेरे शयनकक्ष में प्रवेश किया। उनके हाथ में एक दिव्य ज्योति थी, जिसका तेज प्रकाश अत्यंत प्रिय था। मेरे सिरहाने खड़े होकर वह दिव्य ज्योति उहोने मुझे दी और मेरे ऊपर वरद हस्त रख आशीवाद दे चले गए।

अपनी डायरी में इस स्वप्न के सम्बन्ध में मैंने लिखा था—'सागर में मैंने एक स्वप्नद्रष्टा देखा, जिसके चहरे पर गहरी दार्शनिक रेखाएँ अंकित थीं। फिर वह स्वप्न भी, जो पत्थरो में अंकित हो रहा था, जिसके चरणतल में सागर, सागर, सागर! कामना हुई, उस प्रभु के चरणों में, वह स्वप्नद्रष्टा चिरजीव रहे। अपने स्वप्न को चमकधुआ से मूत देख सके।'।

इस स्वप्न का अर्थ कोई श्रेष्ठ और गूढ अर्थ है। प्रात उठकर चायपान के समय पत्नी से मैंने अपना स्वप्न कहा। सुनकर वह हसकर चली गई। पत्नी को यह प्रारम्भिक गभकाल था। २९ सितम्बर १८५५ को जब वह दिव्य ज्योति का रूप धारण कर मेरे घर जन्मी तो मैं सोचता ही रह गया कि मुझ सततिहीन, मित्र, बंधु

हे जिनम उन्हें भी कभी मकोच नहीं हुआ। प्रवश्य ही वह भी ऐसा ही समझते हैं। सोचते मोचने मन न बड़ा पत्यम साहित्यकार का पपम प्रथम प्राण्ड है। जने द्र जलेवी ब्राण्ड साहित्यकार है। उनके साहित्य म जनेरी जभा कुउ चिपचिप चिपकता, कुउ टप कता, कुउ गाल गाल उलभा, कुउ सुनभा, मीठा मीठा साहित्य रहता है, वासी होने पर प्रसाद कहकर बेचा जाता है। फिर मेरा ध्यान सामने पड़े उग्र पर पटा। निम्स देह उग्र डण्डा ब्रा ड साहित्यकार है। मी मा खोपड़ी पर खीच मारते हैं। फिर वह धिलमिलाकर अस्पताल जाय या चूना गुड का लेप करे और म हूँ लाठी प्राण साहित्यकार। चोट करूंगा तो ठौर करके वर देना ही मरा नश्य है। साम आने का काम नहीं। सामने नजर उठी तो बनारसीदाम चतुवदी रसगुल्ला पर हाथ साफ कर रहे थे। भई वाह, ये हे बल्ली प्रा ड साहित्यकार। जिमका जी चाहे ताप कर देख ले। लीजिण साहब, मे तो सोचता ही रहा और लोग उठ उठ कर चना भी लगे। हडबडा कर देखा पार्टी खत्म हो चुकी थी भाषण और भी हुए थे। कृगगच दरने जनाव मे भी कुउ कहावुनी की गी पर मेरी हिमाकृत दण्डिण मुझे कुछ पता ही न लगा। जब मैं समझ गया, कि कयो लोग मुझे बुलाते चलाते नहीं। पर तु अब क्या हा सकता था? अठताता पठताता घर चला आया।

बहुत गुस्सा आ रहा था मुझे सब लोगो पर। कयो नहीं लोग मुझे ऐसी पार्टिया देते। पर तु कहूँ किमसे? मन ही मन खीभ रहा था कि मन ने एक वस्त्र दिया, कहा—अपनी इतनी पूजा करता है तो दुनिया से क्या? तू खुद अपनी और देख, अपना साहित्य रचे जा, अपनी कलम चनाग जा, अपने आसू उगेरे जा। अपनी रचना आप ही पढ, अपनी सम्पदा म आप ही सम्पन्न रह, मगन रह, पार्टी पार्टी को गोनी मार और उठा कलम। अभी उठा। हम वक्त गिल चुटाला है, अभी ही चोट खाकर साहित्यिक वेदनाएँ मूत हाती हैं। जे सीच ता एग दद नी तस्वीर।

क्या कहा जाय, अपना ही मन की बात टाली न जा सगी। तो गाहब, हद हो गई। हाथ आप ही कलम पर आ पडा। कलम था फाउ टनपेन। उसी मान मेरे तिर सठव ज म नक्षत्र पर दिखलो ही पणनि गिन साहित्य परिपद् न मुझ रनेह भट के रूप मे दिया था। इस मन्त्र म भी कुउ रहना पडा। आज तक किसी भी साहित्यकार, साहित्य नस्था, या साहित्य सत्र न कभी मेरे पाम आकर नहीं रहा—फिर आ, तुझे हम सम्मानित करे, तेरा ज म नक्षत्र मनाए, तरी कुउ धूम ग्राम कर, पलिसिटी करे, न कभी किसी ने किसी सम्मेलन का सभापति ती मुझे बनाया। इ तजारी बहुत थी। सभापति बनाना तो दूर, साहित्य सम्मेलन तक क अविशेषन म कभी मुझे निम त्रण तक नहीं मिला। पिछती बार मरठ म हि दी साहित्य सम्मेलन का अविशेषन था, वहाँ म बिना ही बुलाए चला गया, इसलिए कि पाम तो हे ही, बहुत मे साहित्य प्रमुओ के दश पश हो जाएँगे। देखा सबन, पर किसी ने भीतर मच पर चलकर बैठने तक को नहीं कहा।

दो दिन बाहर ही बाहर धूम फिर कर चला आया। ऐसी हालत में हर साल में ही अपना जमना नशत्र मना निया करता हूँ। वधुवा वधु मित्र और कुछ साहित्य परिजन आ जाते हैं मेरे घर को जुठार जाते हैं मेरे प्राणों को आनन्द दे जाते हैं। पर भेट उपहार कभी कोई नहीं देता। इस बार न जाने यह क्या एक बदपरहेजी ही हो गई कि प्रगतिशील परिषद् ने हरिदत्त भार्द के हाथ मुझे एक कलम भेंट की। उसी समय, मन यह स्वीकारान्ति की थी, कि इस कलम से पहिली बार एक उपयास लिखूंगा और यह भी लिख दूंगा, कि यह उपयास इस कलम से लिखा हुआ है। सो हाथ इस कलम पर आ पडा और वह स्वीकारोक्ति भी याद पड गई। वस एक पथ दो काज। उसी कलम से दद की एक तस्वीर 'वमपुत्र' उपयासमे खीची गई। उस तस्वीर में दद जितना था, वह मेरे कलेजे का था, और प्यार जितना था, यह प्रगतिशील साहित्य परिषद् के सदस्यों का, जो उन्होंने अपने पत्र में भरकर मेरे जमना-नशत्र पर भेजा था।

दिव्यज्योति ज्योत्स्ना

१८५५ क आरम्भ में मुझे एक अद्भुत स्वप्न दीसा। रात को दो बजे मेरी आख खुल जाती है और मैं बिस्तर त्याग अपनी मेज पर आकर लिखने बैठ जाता हू। उन दिना भारतीय सस्कृति का इतिहास मेरी मेज पर चारों ओर फैला हुआ था। सतयुग खण्ड, त्रेता खण्ड, द्वापर खण्ड इन तीनों खण्डों में, जो लगभग सात सात सौ पृष्ठ थे, मैं उनका रहता था। उस दिन दो घण्टा काम करके ही मुझे नींद आने लगी और मैं पलंग पर जाकर सो गया। चार या पाच बजे प्रातःकाल की उस नींद में वह अद्भुत और आनन्दप्रद स्वप्न देखा।

मैंने देखा कि कारुली मंदिर के द्वारकावीश जी की प्रतिमा की भव्य मूर्ति ने सागरतल से निम्नतर माक्षात् मेरे शयनकक्ष में प्रवेश किया। उनके हाथ में एक दिव्य ज्योति थी, जिसका तेज प्रकाश अत्यंत प्रिय था। मेरे सिरहाने खडे होकर वह दिव्य ज्योति उठने मुझे दी और मेरे ऊपर वरदहस्त रख आशीवाद दे चल गयी।

अपनी टायरी में इस स्वप्न के सम्बन्ध में मैंने लिखा था—'सागर में मैंने एक स्वप्नद्रष्टा देखा, जिसके चेटरे पर गहरी दाशनिक रेखाएँ अंकित थीं। फिर वह स्वप्न भी, जो पत्थरो में अंकित हो रहा था, जिसके चरणतल में सागर, सागर, सागर। कामना हुई, उस प्रभु के चरणों में, वह स्वप्नद्रष्टा चिरजीव रहे। अपने स्वप्न को चमचक्षुओं में मूत्त देख सके।'।

इस स्वप्न का अर्थ कोई श्रेष्ठ और गूढ अर्थ है। प्रातः उठकर चायपान के समय पत्नी से मैंने अपना स्वप्न कहा। सुनकर वह हसकर चली गयी। पत्नी को यह प्रारम्भिक गभङ्गाल था। २६ सितम्बर १९५५ को जब वह दिव्य ज्योति काया का रूप धारण कर मेरे घर जन्मी तो मैं सोचता ही रह गया कि मुझ सततिहीन, मित्र, वधु

प्रायः और सगे सम्बन्धी वषा में हीन एक द ही रापग्रस्त व्यक्ति का, जा चासठ की दहरी पर पहुँच कर अपनी स या की और उगुय हो रहा है, ईश्वर एक शिशु के पिता बनान का गारव भी पतान कर पहा है। घेरे लिए यह दवी चभदकार था। मने तभी काफ़ीरोही महाराज ने पत्र लिया कि मेने इस प्रकार एक स्वप्न देखा था और अब मुझे स्या रत्न प्राप्त हुई है। ये नागित्त ही रहा हूँ। अभी द्वारिका ग्रीश की क्योदिया पर जाकर प्रणाम नहीं किया, फिर भी उहाने मुझे सतति से आणायित किया है।

काफ़ीरोही महाराज न पना पढकर मुझे लिखा था—पढकर हप और आश्चय दोतो हूण। अत्र आप सपत्नीक पुत्री को लेकर यहा प्राण।

प्रसन्न काल निरुक्त पाने पर मने पत्नी को टिकटोरिया जनाना अस्पताल मे रखदिया था, जहा डाक्टरों तथा नर्सी ही स्थभाल रहती थी। वही १६ फितरबर १९५५ को पुत्री ज्योत्सना का ज म हुआ। अस्पताल में एक सप्ताह रहने के बाद हम गाहदरे अपने घर चोटो की तैयारी करके मे मजानगे चद्रमेन का पात आया कि यमुना बाट का गानी जी० टी० रोड पार करके मजान में घुम आया है और अभी बढता ही जा रहा है। फोन का समाचार पाकर हम पोर चिंता में पना गए, क्योंकि मजान पर चद्रसेन अकेले थे। सासान भी बलन था, गाय बउटोहा भी भभक्त था। यमुना बाढ के बारण मेल। पुन पर भी खतरा हीं गया था और दिल्ली शाहदरे का यातायात साथा ब द था। नापहर तक तो टेलीफोन से समाचार सिनता भी रहा, परन्तु दोपहर बाद टेलीफोन भी बलन हा गया। टेलीफोन के खमरे उगयन गए थे। १९४७ की बाढकी भयकरता हम भूने नती थे। १९४५ ही उग बाढोे बाद तो सरकार ने यमुना पर बाध बनवा दिया था पोर फिर बाद में बाढ आने का कोई भय नही रह गया।

तिरग होकर हम लोग अस्पताल में छुट्टी लेकर नास्टर के मकान में जाकर पन्द्र वीस दिन रहे। घरकी चिंता हम वही ही रहती थी, परन्तु समाचार जानने का कोई उपाय न था। एक ही उपाय था कि पैदल जाकर वहा पहुँचा जाय। पाणतु ५ मील गाना और ५ मील लोटना १० मील का सफर करने दो चार घटो में चोट गाना मेरी शक्ति में बाढ ही गत थी। परन्तु मैं चद्रगा के समाचार जानने के लिए बहुत बलन था। यद्यपि चद्रमेन के पत्रे भी हमारे साथ अस्पताल में थे और उस समय डाक्टर युद्धीरसिंह न पर साथ ही रह रहे थे, फिर भी बाढ के समाचार सुन पुनका मेरा मन भयभीत हो उठता था। अतम मेरे मन में दुस्साहस किया और मैं पैदल शाहदरे चन दिया। पुन पर पुलिंग सिपाही तैनान थे और आगे जाने वालों की पूरी जाच करते थे। मेने अपनी चिंता बताने पुलिंग आफिसर से पाम बनवाया और पुल पार करके रलकी पटरी पटरी होता हुआ बडी कठिनार्से से मकान पर पहुँचा। मारी जी० टी० रोड पानी में लूनी हुई थी। रेल की पटरियों के ऊँचे भू-भाग को

छोड़कर शेष सब भूमि दूर दूर तक जलमग्न थी और वह अथाह जल समुद्रक समान लहने उछाल रहा था। जब मैं थका और बदहवास अपने मकान के फाटक के सामने पहुँचने लगा तो कुछ दूरीसे ही मैंने देखा कि मेरे फाटके सामने दो मृत्तारी रखे हुए हैं और बहुत से आदमी वहाँ एकत्र हैं। भय और आशंका से मेरे पर वही जमने लग। बड़ी कठिनाई से साहस बटोर कर मैं अपने फाटक तक पहुँचा और जाकर देखा, मेरा सारा मकान चार चार फुट पानी में डूबा पड़ा है। मेरे मकान के सामने की जी० टी० रोड पानीमें बची थी, शेष इधर उधरकी सारी जी० टी० रोड पानी में डूबी हुई थी। पानी रुका हुआ था, बह नहीं रहा था। मकान पर दृष्टि उठाई तो देखा कि चंद्रसेन मकान की छत पर सारा सामान ऊपर लिए बैठे हुए हैं। उसे देखकर मेरे प्राण लोट। पता चला कि ये दो व्यक्ति रात को सामने के खेतों में डूब कर मर गए थे और पुलिस उनकी शिनाहत करा रही थी।

मुझे देखकर चंद्रसेन उतरकर नीचे आया। मिलिट्री की छोटी छोटी किरितीया इधर उधर लोगों को पहुँचा रही थी। उसी एक किरितीया पर बैठ कर वे मेरे पास जी० टी० रोड पर आए। सब हाता पुनकर बहुत दुःख हुआ। पर मेरी तसल्ली होगई थी। गाय बछड़ों को एक सुरक्षित स्थान पर पहिल ही पहुँचा दिया गया था। आधा घंटा बहा ठहर कर अब मैंने दिल्ली वापिस लौटने की सोची। मैं कभी इतना पदल नहीं चला था। घुटनों में तकलीफ रहने लगी थी। मेरे सामने लौटने की बड़ी भारी समस्या थी। पर घर के और सब लोग दिल्ली में मेरे लौटने की प्रतीक्षा में चिंतित होंगे यह सोचकर मैं साहस करके चल खड़ा हुआ। लोगों ने मुझे बहुत रोकना चाहा, पर मैं चल ही दिया। दिल्ली घर पहुँचते पहुँचते तो मैं बिल्कुल बेदम हो चुका था। मेरी जान निकल गई थी। दो दिन में मेरी श्रान उतरी।

बीरे बीरे दो सप्ताह बाद बाढ़ का पानी कम हुआ। जी० टी० रोड और पुल पर आना जाना खुला। मकान में से सब पानी निकल जाने के बाद मैंने मकान की सफाई कराई, मफदी कराई और दिल्लीसे परिवार को शाहदर ले आया। यह अपने घर में उस दिव्य ज्योति पुत्री ज्योत्स्ना का प्रथम पदापण था।

बाढ़ से मरा घर बिल्बुल सगब हाँ चुका था। दो कमरे भी टूट चुके थे, सारा बगीचा उजड़ गया था। मेरा घर किसी भय आदमी के रहने योग्य नहीं रह गया था। पर मैं तो जैसे सघर्षों के लिए ही पैदा हुआ था, जिनसे जीवन में टक्करें तोकर मैं उनका अभ्यस्त हो गया था, मैंने फिर उत्तमान को सम्भारना आरम्भ किया। मेरे मित्र और परिजन लोग मुझसे तकाजे कर रहे थे कि जीवन में पहिली बार सन्तान के पिता बने हो तो उसकी शानदार पार्टी जल्दी करो। पर मैं उहे बार बार यही कहकर टाल देता था कि जरा घर में तो दस भने आदमियों को बठाने के योग्य नगल।

परन्तु मेरा हाथ रुफा नहीं। मेरे दो तीन उप प्राणा का अनुप प्र प्रशाशको से हुआ और मेरे हाथ मे रूपाया आ गया। मैं ११ तीन नए हमरे उन पाए। मत्र हमरो के फल नए करवाए और मरुतन का मत्र भाति मुमज्जित किया। प्रगीचा फिर लग वाया। इन सबके पूरा होने मे एक वष ११ लगभग समय लग गया और तत्र मने अपनी पुत्री का जन्मोत्सव तथा नामकरण सस्कार किया। मरी तृतिया ही मेरी म तान थी। चन्द्रसेन के अब तीन बच्चे थे, वे भी मेरे ही बच्चे थे। सो पुत्री ११ साथ उन तीन बच्चों का यज्ञोपवीत सस्कार भी मेने करा डाला। खूब प्रशाम रही। पुत्री का नाम पडिता ने बताया सुषमा, परन्तु मेने रखा—ज्यात्मनाकुमारी कमलाक्षीमेन प्रि मेस ग्रॉफ लाल बाग। बडी होने पर जब वह बोलने योग्य हो गई तो मेने यही नाम उम बता दिया था। जब वह मूड मे होती और उससे नाम पूछा जाता तो बडी शान से अपना यह लम्बा चोडा नाम बता देती। एफबार मन कागज पर उसका नाम लिख दिया—ज्यात्सना। इस पर वह बिगडकर मुझे डाटने लगी—पापा, मेरा नाम पूरा तो लिखो।

मेने पूछा—पूरा कसा बेटी ?

उसने रोब से कहा—ज्योत्सनाकुमारी कमलाक्षीमेन प्रि मेस ग्रॉफ लालबाग। मे खिलखिला कर हस दिया और स्नट पर पूरा नाम लिख दिया।

ज्योत्सना शशिकला की भाति बढन लगी। अपन शिशु कान की प्यारी प्यारी बातों से वह मुझे नई नई अनुभूति करान लगी। अत्र तत्र म दूर म ही बच्चों के प्रति कोमल भावनाए और प्रेम रखता था। पर अत्र वे जत्र मान्ना मुझे प्राण हो रही थी। उ ही अनुभूतियोसे मे अत प्रोत होरहा था। उगका पुप के समान गोरभ और हास्य। उत्फुल्लित कमलके समान प्यारे नेत्र मेरे मासम रमते चल गए। मे यह भूत गया कि यह केवल एक गबोर शिशुमान है और म ६४ उपका एक व्यक्ति। म और वे दोनों एक समान आयु के बन गए थे। वह दो वष की थी ता म भी दो वष की आयु का शिशु बन गया था। उसने तीन वष ११ होनेपर तीन वष का, चार वष ११ हान पर चार वष का। मने उसका प्यारा नाम रखा—मुन्ना। जब म विगत विगत थर जाता तो म उठकर मुन्ना का दूता और उमे गोर म उठाकर रता—आया मुन्ना, बात करे।

पत्र पर लटककर उम म अपन पटपर डान जाता और त्रात वरन लगता। मेरी बात होती जुजुगाना। म उपमे अनेक प्रश्न पूछता और तत्र उत्तर म क्विन्कारी मारकर अपना हास्य बखेर देती। म तो उसमे बात वगैरे वरत मा भी जाता, पर वह पजी पडी खेलती रहती।

जब वह चार पाच वष आयु की हुई और त्राता तो ममभ कर उत्तर देने योग्य हो गई तो मे उससे सलाह करता—मुन्ना, तुम्हारे निण यहा कमा कमरा बनवाऊ ?

अच्छा, मुन्ना आओ सलाह कर हम कहा कहा जाना है। त्रारस, कलकत्ता,

इलाहाबाद, बम्बई । और वह पूरे ध्यान से मेरी बातों को सुनकर अपना उत्तर देती ।

उसके उत्पन्न होने से पहले से ऐसे ही दो चार साधारण कमरों में रहता था । मैंने कभी गम्भीरता से इस बात का विचार भी नहीं किया था कि मेरे पास इतनी बड़ी जगह है, मे इसमें बहुत सुंदर कोठी बनाकर बहुत आराम से रह सकता हूँ । यह बुद्धि तो मुझे आई ज्योत्सना के आ जाने पर । जब से मैं उसे अस्पताल से लेकर घर आया तभी से मेरे मन में यह बात समा गई कि इसके लिए बहुत सुंदर कोठी बनादू । तभी से मैं अपनी कोठी को बनाने लगा । मेरी पुस्तकों की रायट्टी से जो बड़ी राशि आती, वही मैं मकान के निर्माण में लगाने लगा और ज्योत्सना की चार वर्ष की आयु होते होते मैंने पूरी कोठी दो मजिला बनाकर तयार कर दी । उसके एक एक कमरे के फर्श में मैंने अपनी रूचि के अनुसार बेल बूटे और पक्षियों के डिजाइन बनवाए और साधारण से बहुत अधिक उसमें व्यय किया । मैं तो यही कहता हूँ कि यह निर्माण मैंने जो चालीस हजार रुपये लगा वह सब इसी दिव्य ज्योति ने ही दिया । इसी ने निर्माण की प्रेरणा मुझे दी ।

जब वह डेढ़ दो वर्ष की थी, तभी मैंने उसे लेकर सपत्नीक विहार कलकत्ता और पुरी तक यात्रा की । इस यात्रा में पूरा एक महीना मैंने लगाया । परंतु आश्चर्य है कि मेरी घुटनों की तकलीफ ने मुझे बिल्कुल भी कष्ट नहीं दिया । चार वर्ष की होने पर वह मेरे लिए प्रातः चाय लाती और अपना दूध भी ले आती । हम दोनों साथ साथ पीते और बातें करते जाते । चाय पीने पर वह मुझसे कहती अब अखबार पढ़कर सुनाओ । और मैं अखबार की दो चार मुरय मुरय बातें उसे पढ़कर सुना देता । आधा घण्टा उसके साथ चाय पीकर और अखबार पढ़कर मैं उसे कहता—अच्छा मुन्ना, अब तुम अपनी अम्मा के पास जाओ और मैं अपने काम में लगू । वह हँसती हुई अखबार हाथ में लेकर अपनी माता के पास भाग जाती ।

उसे मैंने अक्षराम्याम कराया । मुझे यह देख कर चकित रह जाना पड़ा कि जो बात मैं एक बार मैंने बता देता हूँ उसे वह उसी बार में समझ और हृदयङ्गम कर लेती है । उसकी बुद्धि असाधारण है । मैं लोरियो की बाल पुस्तकें लाकर दोपहर में उसे पास लिटाकर लोरिया पढ़ पढ़कर सुनाया करता था । मैं सो जाता था, पर वह मेरे पास बैठकर उस पुस्तक में उही लोरियो पर उगली रखकर मेरी ही तरह पढ़ती थी । उसकी स्मरण शक्ति को देखकर मैंने उसे बहुत शीघ्र अक्षरभ्यास कराकर शब्द जोड़ने और पढ़ने बता दिए । अग्रजी का भी अक्षरभ्यास करा दिया ।

उपकृत हुआ

नवम्बर १८५५ में दिल्ली प्रादेशिक साहित्य सम्मेलन ने मेरी साहित्य सेवाओं के लिए मुझे एक ताम्रपट देकर उपकृत किया । इस समय मेरी आयु ६४ वर्ष की थी ।

ताम्रपट ग्रहण करते हुए मेने अपने भाषण में कहा था —

‘आपने मुझ अकिंचन बहिष्कृत साहित्यकार को यह उद्दुमूल्य ताम्रपट पदान करके जो प्रकल्पित असाधारण सम्मान प्रदान किया है, उसमें मे आश्चर्यचकित और विमूढ़ हो गया हूँ। भय और आशंका से मेरा दिल बटक रहा है कि नहीं किसी दूसरे साहित्य महारथी को जगह मेरा नाम भूल से तो नहीं लिख लिया गया है। उहुत दिन हुए— उन दिनों मैं अजमेर में रहता था। तब प्रबल पताप अग्रजी सरकार हर नए वप के उपलक्ष्यमें राजभक्त लक्ष्मीपुत्रों को रायसाहब, रायप्रहादुर या खिताब दिया करती थी। खिताबित लोगो की सूची अखबारों में छपती थी। उस तार एन माटेमल सेठ का नाम रायबहादुर की सनद पर छप गया। दूसरे दिन जब दाउन उड रही थी और मुबारक बादिया आरही थी कि तार आया कि गलती से आपका नाम छप गया था, खिताब कि ही दूसरे को मिला है। डरता हूँ कहीं मेरे साथ भी ऐसा ही न हो। डरने के अनेक कारण हैं। दिल्ली भारत की राजधानी है, साहित्य महारथियों की यहां क्या कमी। उनके सम्मुख में तीन में न तेरह में। पहिले ही कह चुका हूँ कि मैं साहित्यकारों में बहिष्कृत हूँ। जहां उपयासकारों की चर्चा होती है, मेरा नाम सिफर। कहानीकारोंमें, नाटककारों में, एकाकीकारों में, निबन्धकारों में, सब सिफर। यहां तक कि रेडियो टाकिस्टों में भी सिफर। मैं तो यह कहकर स तोप कर लेता हूँ कि—

साहित्य देव नमस्तुम्भ सिद्धास्त यत्प्रमादत ।

अहपश्यामि जगत्सर्व नमा पश्यति कश्चन ।

पर तु बड़ों की बाते भी बड़ी होती हैं। उनमें सम्मुख मुकने में ही कल्याण है। आप बड़े हैं, आपने जब मुझे यह सम्मान दिया है तो यह, एन तारा ही लिए हो, तो भी मेरे लिए मेरे जीवन में भी अधिक प्रिय और मूल्यवान है। अतः इस आपकी मानपत्र को शिरोधार्य कर, आप सब छोटे बड़े साहित्य परिजनों के चरणों में अपना मस्तक नवाता हूँ, और उचन दता हूँ कि आजीवन ईमानदारी से अपने अक्षिप्त जीवन के पत्येक क्षण को साहित्यधर्म में लगाकर उसका मूल्य चुकाना रहूँगा। औपचारिक तौर पर मेरा वक्तव्य यही समाप्त हो जाना चाहिए, पर तु ‘अयमिदं नृप्यत’ जय अर सर मिला है तो अनुमति चाहता हूँ कि मन की एक बात भी कहूं। भय ही मेरा पर्दा फास हो जाय। पर ईमान की बात तो यह है कि मुझे मान सम्मान की अपेक्षा आरामकी अधिक आवश्यकता है। कुछ अकेले अपने ही लिए नहीं, साहित्य रचना के निमित्त स्वस्थ रहने के लिए भी। पित्रज जमानत राजा महाराजा विद्वानों को जमीन-जागीर देते और उसके लिए ताम्र पट्टे लिख देते थे, क्योंकि तब रजिस्ट्रेशन का प्रचलन नहीं था। अब तो यह होगा ताम्र पट्टे है, साथ में जमीन-जागीर कुछ भी नहीं। आपने सम्मान दिया, वह मेरे सिर आखों पर। पर तु मैं अब उस आयु को पहुँच चुका



٢٤٤



2820

हूँ कि सम्मान की अपेक्षा आराम की अधिक जरूरत है। मसजद में बेकार हूँ—अर्थात् मेरे पास कार नहीं है, परमश्रेष्ठ बुतगानिन जितनी देर में भारत से चलकर समरकन्द पहुँचते हैं, और महामात्य नेहरू पालम हवाई गड्ढे से कन्नवत्ता या रगून पहुँचते हैं, उतनी देर में मेरे अपने घर शाहदरा से दिल्ली पहुँचता हूँ। बस की लाइन में घण्टा खड़ा रहता हूँ। बहुधा हट्टे कट्टे लोग वीगामुश्ती से पहले चढ़ जाते हैं। मर सामने तीन तीन बसे निकल जाती हैं और मैं निरुपाय रह जाता हूँ। अब आप ही साच लीजिए कि इस भाग्यदग्ध साहित्य का वैभव कितना है, जिसने अम्बपाली के वभव का बरण किया है। मुझे यह सब बात नहते शम आती है। पता नहीं आपको सुनते हुए शम आती है या नहीं। उपस्थित जनों में श्रद्धेय टण्डन जी थे, श्री गान तशयनम आयगार थे, पत जी थे—और भी बहुत से गणमान्य व्यक्ति थे। मन कह दिया उ होने सुन लिया। बस बात खत्म हुई।

साँस्कृतिक मूर्ति पुरुषोत्तमदास टण्डन

गर्प्रैल १९५७में दिल्ली प्रान्तीय हिंदी साहित्य सम्मेलन की ओर से पुण्य श्लोक श्री पुरुषोत्तमदास टण्डन की विदाई का समारोह दिल्ली में सम्पन्न हुआ जिसमें सम्मेलन हॉल के लिए जाते हुए मैं एक दुघटना में फसकर आहत हो गया और समारोह में उपस्थित होने की प्रतिष्ठा से वंचित रह गया। आज जब मैं इन पक्तियों को लिखने योग्य हो गया हूँ, मैं टण्डनजी के सम्बन्ध में अपने कुछ विचार लिखना चाहता हूँ, जिन्हें शायद मैं विदार्थ पभा में उपस्थित होने पर व्यक्त करता।

टण्डन जी की वॉप्रेस और राजनीति से विदाई तो ठीक है और उसका हिंदी क्षेत्र में जितना अभिनंदन दिया जाय कम है, परन्तु हिन्दी क्षेत्र से विदाई कैसी? इस घटनाको तो हमें राजर्षिकी अर्वाइ कहना चाहिए और उसका अभिनंदन करना चाहिए। वास्तव में टण्डन जी का राजनीति से सयास ग्रहण करना हिन्दी के लिए एक शुभ लक्षण है, जिसे हिंदी समाज को पूरा लाभ उठाना चाहिए।

मैं तो यह समझता हूँ कि जबसे हिन्दी राष्ट्रभाषा हुई है, हिंदी की अपार हानि हुई है। उस हानि में तो प्रमुख रूप है। प्रथम तो यह कि भारतवर्ष में जितनी भी हिंदी उच्चारण भाषाएँ, गोष्ठियाँ, सस्थाएँ हैं, वे सब हिन्दी प्रचार में जुट गईं। हिंदी साहित्य और साहित्यकारों को उनसे कोई प्रश्रय नहीं मिला, इससे हिंदी साहित्य और साहित्यकारों का विकास रुक गया। दूसरी हानि यह हुई कि विभाषी प्रांतों में हिन्दी के प्रति सपत्य भाव पैदा हो गया और यह भाव हिंदी भाषा ही तक सीमित न रहा, हिन्दी साहित्य का भी रूढ़ गया। केवल भाषा के प्रश्न को लेकर साहित्य में सपत्य भाव का समावेश अत्यंत दुःख की बात है। संस्कृत के बाद हिन्दी ही वह भाषा है जिसका साहित्य मोष्ठ्य हिमानय से लेकर कथाकुमारी तक व्यापक हो पाया है। इसीसे अविभूत

होकर नामदेव आदि न हिंदी में भक्तिवाद का प्रवाह उहाया और सुंदर दक्षिण व अचलो म सुर, तुलसी तथा मीरा के चर्चा का उत्तना ही प्रम और गदर पदान क्रिया जितना उनके अपने प्रा तो क भक्ता के वचना का प्राप्त था। हकीकत ता यह है कि साहित्य की कोई प्रारदरी नहीं है वह तो माननीय हृदय के सो दय का प्रतिबिम्ब है चाहे जिस भाषा में भी वसा साहित्य का वह मान्य हृदय को प्रतीभूत किए बिना नह रहेगा। पर तु भाषा के प्रति सपत्य भाव रहन स साहित्य पर भी उसका प्रभाव प जाता है, साहित्य के प्रति भी वसी भावना उत्पन्न हो जाती है।

जब अंग्रेजी अमलदारी का प्रारम्भ हुआ था, तब उर्दू और हिंदी के बीच सपत्य भाव पना हुआ था। उन दिनों दश की ताल चाल और व्यवहार की भाषा हिंदी थी और लिपि देवनागरी, किंतु अंग्रेजों ने उर्दू का प्रदालत की राज्य भाषा बनाया इस प्रश्न को लेकर उस समय भी बहुत बड़ा सत्रप राडा हुआ था। उर्दू का जम बहु पहले हो चुका था और उस समय तक उर्दू गद्य पद्य साहित्य का काफी विकास हो चुक था। इसलिए साहित्य की दृष्टि से हिंदू और मुसलमान समान रूप से रस लेते थे। प्रज्योही अंग्रेजों ने उर्दू भाषा को राजनीतिक रूप दिया, हिंदी और उर्दू में सपत्य भा पैदा हो गया और ऐसा मघप चित्रा, जो अंग्रेजों के राज्य की गमाप्ति तक भी समाप्त नहीं हुआ। पर तु यह मघप देगव्यापी न था, केवल उन द्विभाषी प्रदेशों तक सीमित था, जहां हिन्दी और उर्दू दोनों ही व्यवहार में लाई जाती थी।

भारतीय स्वतन्त्रता आंदोलन के अंतिम चरण में जब गांधी जी ने प्रवेश किया तब उनकी पनी दृष्टि दक्षिण भारत पर गई, जहां चार भिन्न भिन्न भाषाएँ बोली जाती थी। उन भाषाओं के कारण दक्षिण भारत सांस्कृतिक रूप से न केवल उत्तर भारत पृथक था, अपितु दक्षिण के चारों प्रांत भी भाषा के आधार पर परस्पर पृथक थे गांधी जी की राजनीति भारतके 'एक राष्ट्र' सिद्धान्त पर आधारित थी। जत तक दक्षिण और उत्तर भारत सांस्कृतिक रूप से एक न हो जाते, तब तक अगण्ट भारतीय राष्ट्र व उदय नहीं हो सकता था। उस समय अंग्रेजी भाषान दक्षिण के चारों प्रांतों और उन भारत में भी शिथाने माध्यम का रूप गहण कर गया था। पर तु यह मा यम त्रिद होने के कारण सांस्कृतिक नहीं था। गांधीजी ने तत्पश्चात् उग त्रुटि को भाषा निया अ उन्होंने सबसे पहला वार इमी पर किया। जमे प्रमराज अशोक ने अर्पन पुत्र मह द बोधि तृप्त की शाखा केर सुदूर लका द्वीप में भेजा था, उभी पहार गांधीजी ने अर्प पुत्र देवदास को दक्षिण में हिंदी का बीज वपा करने के लिए भेज दिया। यह का केवल दिव्य दृष्टि वाला ही कर सक्ता था। निरंतर बीस वर्ष तक फरोडा स्त्री पुरुषों हृदयों में हिंदी का बीज अत्रुरित किया गया और उसका परिणाम यह हुआ कि पह हिन्दी के माध्यम से दक्षिण के चारों प्रांत सांस्कृतिक रूप में एक हो गए और पि

उनका उत्तर भारत में एकीकरण हो गया। इस प्रकार एक गण्ड भारतीय राष्ट्र का उदय हुआ। यह कोई साधारण बात नहीं थी। यह एक ऐमा महत्वपूर्ण काय था जो बर्दिक काल से लेकर अब तक नहीं हो पाया था।

टण्डनजी गांधीजी के इस सांस्कृतिक यज्ञ में सबसे बड़े सूत्रधार बने यहा तक कि गांधीजी ने अपने विचारों में परिवर्तन किए, पर तु टण्डनजी पवत की चट्टान की भांति अचल रह। आज सारा पृथ्वी में टण्डनजी जसा दूसरा कोई व्यक्ति हिंदी का हिमायती नहीं है। परन्तु टण्डनजी भारतीय राजनीति का भी धुरीण पुरुष है।

टण्डन जी भारतीय संस्कृति के सच्चे प्रतिनिधि थे। उनकी हम सांस्कृतिक निष्ठा से प्रभावित होकर मेने अपनी अग्रतिम रचना 'भारतीय संस्कृति का इतिहास' उह समर्पित की है। रचना के पूरा होने पर उसकी पाण्डुलिपि लेकर मे उहे समर्पित करने गया था और उनकी गोद में उसे रख दिया था। उस समय दाना की आखे भावातिरेक से सिक्त थी।

आदश व्याह

जैने द्रकुमार की आयुष्मती पुत्री का विवाह बड़ी धूमधाम से सम्पन्न हुआ। विवाह में दिल्ली के छोटे बड़े सभी साहित्य पुरुष ही नहीं राजपुरुष भी उपस्थित थे। एक प्रकार से वह समारोह बड़े आदमिया का एक मेला सा लग रहा था। ऐसा भारी मेला कि जहा मेरे जैसे छोटे जीव ज तु एक प्रकार से छिप ही गए। कई बार चेष्टा की कि किसी तरह जनेद्र की नजर मुझ पर भी पड जाय, कई स्थान बदले, मार्के की जगहों पर जा खडा हुआ, पर बेकार। जैनेन्द्र पास होकर भी गुजरे, पर मुझे तो देखाही नहीं। मे समझताहूँ कि इन अनदेखों में मेरे जैसे अनेक छुटभये होंगे। जिन परिचितों देखा, वे भी नमस्कार मात्र के बाद अपनी मण्डली से बातचीत में व्यस्त रहे। फलत अपनी अति तुच्छ भेट, जो मे पुत्री के लिए ले गया था, जेब में डाल चुपके से खसक आया। कुछ तो इसलिए कि बड़े आदमियों के उम जगल में किसे दू, इसका बहुत पूछने पर भी जुड़ पता न लगा। दूसरे इस महा महिमामयी शादी में वह तुच्छ भेट देते लज्जा भी आई। उपराष्ट्रपति महामाय श्रीराधाकृष्णन जब विवाहवेदी पर पत्रों में छपने के लिए एक फाटो खिचवाकर भीड-भाड के साथ उठ चले, तो यह नाचीज साहित्यकार भी चोर की भांति सबकी नजर बचा कर भाग आया।

पर तु इस प्रफार का यह अनुभव मेरे लिए कुछ नया न था। लडकियों की शादी में प्राय यही होता है कि सभी इष्ट मित्रों की हेमियत एक अदली की रहती है। प्राय वे राह के दोनों ओर सफ बावकर खडे हो बारात का स्वागत करते है। विवाह समारोह में लडकी की ओर से आए हुए इष्ट मित्रों का स्वागत सत्कार या आवभगत करने का रिवाज नहीं है। बारात में आए हुए बुनिए, जुलाहे तक सम्मानीय समझे

जाते हैं। उन्हें फूल मालाएँ अर्पित की जाती हैं और उनके लिए स्वागत समारंभ और उपचार भी होते हैं। अमनमान यह है कि हम हिन्दुओं में प्रेमी का पत्र हीन माना जाता है और वह हीनता उन पुरुषों को भी सहन करनी पड़ती है, जो बटी की ओर से विवाह समारोह में सम्मिलित होते हैं। यह रूढ़ि दत्तनी जटपद्ध हो चुकी है कि बड़े बड़े लोग भी इस अपमान को अपमान नहीं समझते और प्रेमी का बाप तो इस अपमान पर समागत जनो की ओर आख उठाने भी नहीं देता। हाँ अब बड़े गागत अभ्यासों की बात और है, जो इष्ट मित्र की हेसियत से नहीं, समारोह की गरिमा बताने के लिए खाम मिन्नत खुशामद से शगुन भर के लिए, ममलन फाटो रिचवाने के लिए ही किसी तरह खीच लाए जाते हैं।

जा हो, समाराह बहुत ही भव्य था। जौनद्र मेरे अति निम्नस्थ आत्मीय थे। मुझे अपना उस प्रकार जाना आना तनिक भी बुरा नहीं लगा, पर मुझे श्री जनेन्द्र के व्याह की बात अवश्य याद आ गई। बहुत पुरानी हो गई है वह बात, पर उस रात में घर आकर जनेन्द्र के विवाह के ही सपना देखता रहा। उज्ज्वल और असाधारण था वह विवाह। वह एक साहित्यकार का विवाह था और उसमें एक भावपूर्ण कविता बहा जा सकता है। अब उसकी कृपा मुन लीजिए।

आज उन बातों को चालीस बरस बीत गए होंगे। विवाह अत्यंत तजातीय था। वर था जनी और वधु के पिता थे वल्लभ, परन्तु जनी जनेन्द्र न थे, उनकी माता थी। जनेन्द्र थे रूढ़ि के तरण और तीव्र मित्राही। विवाह का सयोजक मे था और योजना बनाई थी दूल्हा मिया के साथ मेने। अपनी उच्छ्वासे से नहीं, दूल्हा की उच्छ्वासे से, क्योंकि मैं भी उन दिनों प्रायसमाजी था। मेरे अतिरिक्त उन्हीं की भाति एक और बदीन आदमी थे, जनेन्द्र के मामा महात्मा भगवानदीन। हमारी योजना के तीन पहलू थे—

१—विवाह अति से अधिक आउम्बरहीन और सादगी से हो।

२—विवाह में कम से कम खर्च किया जाय।

३—विवाह सब रूढ़ियों और साम्प्रदायिक भावनाओं से रहित हो।

पहले पहलू की सफलता यह थी कि तारात में सयोजक ने सात तीन तारातीय। मैं, महात्मा भगवानदीन, दूल्हा और एक छोटी सी लड़की शायद जनेन्द्र की कार्यरिश्तेदार बहिन।

दूसरी व्यासा ऐसी थी कि न गाजा, न बाजा, न दूल्हा दुल्हन के लिए कोई जवर खरीदा गया, न कपडा, न दान, न दहज। एकदम बर्बाद शादी।

तीसरा पहलू और भी खामुलखास था। विवाह में न यज्ञ मण्डप, न वेदी, न वेदमंत्र, न अग्नि-प्रदक्षिणा, न सप्त वेदी, न नव गृह पूजन, न न्ययादान। हम लागो ने अर्थात् महात्मा भगवानदीन और मैं मिलकर सात सात प्रश्न हिन्दीमें लिख लिए, सात

दूल्हे के लिए मात दुल्हनके लिए । उना 'हा' मे उत्तर वर वधू को देना था । न पुरोहित, न विवाह पढनेवाला पण्डित ।

सुवह की गाडी मे बारात चली मुजफ्फरनगर आग हम लोग भोजन के समय वहा पहुँच गए । तीन आदमियां ही बारात का जनवामा एक सा मारण कमरा था,जिममे तीन पलग पडे थे । जाते ही हमने भोजन किया । आगम किया और चार बजे विवाह के लिए हमारी बारात बेटी वालेके घर की ओर चली । न बाजा न धूम । दूल्हे ने जामा नहीं पहना, न दूल्हा घोडेपर चला । धोवी का धुला खदर का धोनी कुरता पहने दूल्हा, खरामा खरामा हम दोनो प्रतिष्ठित बारातियो के साथ बाजारो और गलियो को गपनी पुरानी ही चप्पले पहिने पैदल पार कर बेटी के बाप के द्वार पर जा पहुँचा ।

तारीफ करताहू बेटी के बाप के साहम की । कोई अभ्यासक सज्जन थे । असीम साहस था उनमे कि दूल्हे की सनक को उहोने क्रियान्वित किया । मास्टर जी के घर मे बहुत लोग नगरके इस विवाह की साक्षी रहने को आये थे । नि न देह यह बागत की अगवानी करने वाले अदलियो की फौज न थी,लडकी के पिता के इष्ट मित्र थे । यद्यपि हम दोनो बाराती लाट साहव से कम हैसियत न रखते थे, हमारे स्वागत को कोई द्वार पर खडा न था । प्राङ्गण मे सभी भद्र पुरुष की भाँति बठे थे, उन्ही मे हम भी बठ गए ।

तब कोई साढे चार बजे थे । विवाह काय आरम्भ हुआ । सबसे प्रथम कुछ लडकियो ने व देमातरम् गीत गाया । इसके बाद वर वधू आमने सामने,परतु जग फासले से खडे हुए । प्रथम वधू ने सात प्रश्न कागजसे पढकर वरसे किए । वर ने 'हा' मे उत्तर दिए । फिर वर ने सात प्रश्न एक-एक करते पूछे वधू ने 'हा' मे उत्तर दिए । अब वर ने आगे बढ़कर वधू का हाथ पकडकर उपस्थित मण्डलीके समक्ष घोषित किया कि आप लोग साक्षी रहे आज मे हम पति पत्नी हे जीवन के अत तक के लिए । इस पर उपस्थित मण्डली ने हपनाद किया । महात्मा भगवानदीन जी ने वर वधू को आशीर्वाद दिया । परतु उपस्थित मण्डली की हपनाद की ध्वनि वायुमण्डल मे गूँज ही रही थी कि उठ खडा हुआ एक दुबला पतला अधनगा सा व्यक्ति भाषण देने को । ये थे 'भारत मे अंग्रेजी राज्य' के प्रणेता पण्डित सुन्दरलाल ।

उहोने भाषण क्या दिया, तोपो की बाढ दाग दी । पण्डित सुन्दरलाल आज भी अद्वितीय भाषणकर्ता है और उन दिनों तो वे आज बरसाते थे । क्रांतिकारी दिन थे वे । उहोने कहा—मे आशा करता था कि जैन व्रजैसा आदमी एक दिन फासी के तरते पर चढेगा, पर आज वह विवाह की बेडिया पहन कर बन्दी बन गया है । इसके आगे उन्होने प्रभावशाली शब्दो मे बताया कि आज भारत के प्रत्येक तरण को देश के लिए बलिदान होने की राह पर चलना चाहिए । ब्याह शादी के भ्रम मे नही पडना चाहिए । बडा सरत और कडुआ भाषण था उनका । कम से कम विवाह के मंगल समा

रोह के उपयुक्त तो कदापि न था। तब अपना उत्तर मुझे दना पटा और वैसे ही कड़े शब्दों में कहना पटा कि विवाह बनाने की है। आज ही मेरी जीवन मंगिनी है और हममें देश पर जूझ मरने की दुगनी शक्ति और प्ररग्गा मितवी चाहिए। अचछा खामा टिवेत् होगया यह। उस विवाह समारोह समाप्त हुआ। वहाँ में उठकर हम लोग भोजन के लिए बन्नी पक्ति बना बठ गए। पक्ति मगरानी गाराचो मभी प्र यहा तक कि दूहा के साथ दुलहन भी पक्ति म प्रठी थी। घण्टा और पद फा तोई प्रश्न ही न था।

दूसरे दिन सुबह जब हमारी मातृ तीन मादमिया की पारान विना हा रही थी और सामान तागा पर लद गया था, हमारे साथ मभ्यतिप्र मजाक बिया गया। एक थाल में कुछ मिष्टान्त म दुकड़े रखकर लाए गए और अनरा म किया गया कि जाने से प्रथम मुह मीठा कर लीजिए। थात म कुछ बर्फिया म दुकड़े म, कुछ पड़े थे। बर्फी सा ग रग थी, पर पेड़े अमा मारग रूप में प्रताण गए थे। एंगा प्रतीत होता था प्रहृत ही उत्तम मावे क बने हे। महात्मा भगवानदीन ने पर्फी ना एन दुकड़ा उठाकर मुह में दिया। मेने पेड़ा उठाया। महात्मा जी मज म पर्फी खाकर हँस रहे थे, जबकि मेरे मुह म मदा और रुई भर गई थी। अचछा मजाक रहा।

हम चने तो रेन चलते ही दुलहन ने खाने की टोकरी खोली और हममें कहा— आप लोग भोजनकर लीजिए फिर टण्ण हो जायगा। गोर उमने चिर अभ्यस्त गृहस्त्री की भाति गम गम पूरिया और तरकारी मिठाई हमारे प्रागे परोस दी, आग्रहपूवक परोसती रही। नई बधू ना पकोत्र वहा कोगा न था। अपने चालीस साल प्रथम नयपरि रिता दुलहन का यह व्यग्रहार उम अद्भुत विवाह में भी अद्भुत था।

वही भगवती दंगी अथ वृद्धा हा चुकी है। गारे वाग मफद और दात सब गायब। पुत्र पुत्रियो की माता और पुत्र पुत्रियो की माम। मे जानता हँ उम तपस्विनी ने अपनी गृहस्त्री म तप तपा हे। मेने गनत्रप ही ममूगी म चांगोम सात पुत्र की उगी भगवती क दशन किए थ। जनद्र से मिनने गया था। भगवती जी ने साथ ही हट्टी हूट गइ थी। हाथ पास्टर म था। एन०एल० बी० पाग प्रती आई पूम कर, दो जन और भी साथ थे। देखा तां बिगन् पडी— मा, यह गया हो रहा है चाय नयार नही हूट, मेरा सिामा का प्राग्राम था समय अत्र रहा रहा ? उमने अपनी प्रनाई की घनी पर हृष्टि दी। भगवती उठी और— अभी चाय दती है, रहकर रगोई पर मे घुम गइ। एन ग्रामू मेरी आख में आया था मा और बेटी को देखकर। अत्र हमी आ रही हे मा और बेटी के व्याह की याद करक। कितना अंतर था मा और बेटी में और उनके विवाह में ?

देवताओं के देश में

दिसम्बर १९५९ म मद्रास म 'प्राग दडिया राइट्स का फेस' हो रही थी। इसका निमंत्रण मुझे भी मिला था। मने उसे स्वीकार कर सपत्नीक उधर जाने का

प्रागाम बनाया ।

दक्षिण यात्रा की मेरे मन में चिर अभिलाषा थी। कहिए मन १९२२ में ही ऐसी यात्रा का प्रोग्राम बन रहा था। १९३२ या ३३ में दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा मद्रास में कुछ काय कत्ता और विद्यार्थिगण दिल्ली भ्रमणार्थ आए थे। उनके साथ सत्यनारायण जी भी थे जिनके अनथक परिश्रम से दक्षिण भारत में यह सन्स्था हिन्दी का काम कर रही थी। अपने दिल के साथ वे मुझ से भट करने के लिए आए। साहित्य चर्चा के बाद सत्यनारायणजी ने मुझसे अनुरोध किया कि मैं दक्षिण के हिन्दी के द्रो में आकर कुछ भाषण करूँ। जब मैंने उन्हें दक्षिण यात्राकी अपनी इच्छा भी बताई तो उन्होंने उसका सब प्रबन्ध करने का दायित्व अपने ऊपर ले लिया। इसके बाद हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग द्वारा उत्तर भारतीय विद्वानों के यानीमण्डल में सम्मिलित होकर दक्षिण भारत चलने का निमन्त्रण भी मुझे मिला। परन्तु मैं ऐसा फमा रहा कि उधर जा ही नहीं सका। अलपत्ता कईवार मैं दक्षिण हैदराबाद अपने मित्र कण्ठन सूय प्रताप से मिलने जाता रहा, परन्तु हैदराबाद से आगे दक्षिण में बट ही नहीं सका।

दक्षिण भारत के विशाल देवमंदिर मेरे आकर्षण के विषय थे। दक्षिण के राजसहलो के समान मंदिरोंके वरान मुन मुनकर उहे एक बार अपनी आँखों से देखने और वहाँ की संस्कृति को जानने की अभिलाषा तीव्र हो उठी थी। मेरा जीवन भी अब ६८ की देहरी पर पहुँच चुका था। इसलिए अब अधिक मोच प्रिचार न करके मैंने पहिले मुन्ना से और फिर पत्नी से सलाह की और चलने की ठान ली।

पर तु इस दिनों दो उपयास मेरे सामने फले हुए थे। एक 'पत्थर युग के दो बुत' तो मे राजपाल एण्ड सॉम के लिए लिख हीरहा था कि इसी समय एक अय प्रकाशक ने आकर अपनी पाकेट बुक सीरीज के लिए लघु उपयास की जबरदस्त माग की। मैंने टालना चाहा पर वे मेरी शक्ति की दुहाई देने लगे, मेरे हीने हवाले कुछ नहीं सुने और मुझसे एक सप्ताह बाद उपयास देने का वायदा कराकर चले गए। मुझे भी दक्षिण यात्रा के लिए रुपयों की जरूरत थी, इसलिए मैंने हा भर दी। उनके जातही मैंने दूसरे उपन्यास का ताना बाना तयार किया और लिखने लगा। इसका नाम मैंने रखा बिना चिराग का शहर'। अब लीजिए, 'पत्थर युग के दो बुत' और बिना चिराग का शहर' ये दो उपयास मेरी मेज पर फल गए और मेरी दक्षिण यात्रा सातवें दिन आरम्भ होने का प्रोग्राम भी बन गया। पत्नी से सब तयारियाँ करने को कह, मैं अपने कागजों में डूब गया। चौथे दिन मैंने 'पत्थर युग के दो बुत' तयार करके राजपाल को दे दिया और उसके बाद तीसरे दिन बिना चिरागका शहर पूरा करके दूसरे प्रकाशक के हवाले किया। रुपए जबसे डाले और सब भ्रमणों को दिल्लीमें छोड़ मुन्ना से गप्पे लडाता हुआ बालक बन मद्रास की रेल में जा बैठा। मेरी रेल फक फक करके चलदी। मैं सब चिन्ताओं से

रोह के उपयुक्त तो कदापि न था। तब उममा उत्तर मुझे देना पड़ा और वमे ही बड़ शब्दों में कहना पड़ा कि विवाह न बननी है। आज की रीति जीवन मणिनी है और हमसे देश पर जूझ मरने की टुगनी शक्ति और प्ररग्णा मिनती चाहिए। अच्छा यामा निवेद हो गया यह। वम विवाह समागोह समाप्त गया। वहा म उठकर हम लोग भोजन के लिए बटी पक्ति बना उठ गए। पक्ति म परानी प्राणती गभी न वहा तक कि दूहा के साथ दुलहन भी पक्ति में उठी थी। घूबत और पत्ता फा मोड़ पडन ही न था।

हमारे दिन सुबह जब हमारी मातृ तीन गादमिया की प्राणत प्रिया हो रही थी और सामान तागा पर लद गया था, हमार साथ मभरिण्ड मजाक प्रिया गया। एक थाल में कुछ मिष्टान व दुकड़े रखकर नाग गए और अनरगे प्रिया गया कि जाने से प्रथम मुह मीठा कर लीजिए। थान म कुछ प्रकियो ने दुकड़े ने कुछ पत्ते थे। बर्फी मावा रग थी, पर पटे अमा प्रारग रूप में प्रनाग गए थे। मेमा प्रतीत होता था वहन ही उत्तम मावे के बने है। महात्मा भगवान्तीन न प्रफी ता एक दुःख उठाकर मह मे दिया। मैने पेडा उठाया। महात्मा जी मज म प्रफी खारर हम रह न, जप्रकि मेरे मुह म मैना और रुई भर गई थी। अच्छा मजाक रहा।

हम चने तो रन चलते ही दुलहन ने याने की टोकरी गोती और हमसे कहा— आप लोग भोजनकर लीजिए फिर ठण्ठा हो जायगा। गोर उमने चिर अग्र्यस्त गृहिंगी की भाति गम गम प्रिया और तरकारी मिठाई हमारे आगे परगेम ली, आग्रहपूत्रक परो सती रही। नई बधू का गमोच वहा कोमा न था। अपने चानोम मान प्रथम नत्रपरि रिता दुलहन का यह व्यग्रहार उम अद्भुत विवाह मे भी अद्भुत था।

वही भगवती देरी अत्र वृद्धा हो चुकी है। सारे बाल मफ़द और नात सब गायब। पुत्र पुत्रियो की माता और पुत्र ननुआ की माम। मे जानता हूँ उम तपस्विनी न अपनी गृहस्त्री म तप तपा है। मने गतत्रप ही ममूगी म चा गिम मान पूत्र की उमी भगवती के दशन किए थ। जन द्र से मिनन गया था। भगवती जी न टाय की हृणी दूट गई थी। हाथ प्लास्टर म था। एन०एन० बी० पाग प्रती आई गुम कर, दां जन और भी साथ थ। देखा तो विगतपनी—‘मा, यह क्या हो रहा है चाय तयार नहीं हट, मरा मिनमा का प्रोग्राम था, ममय अत्र कहा रहा?’ उमने प्रपनी प्रना। ही घनी पर हण्टि दी। भगवती उठी और—अभी चाय दनी हूँ, फटकर रसाई घर म घुम गड। एक आसू मेरी आस मे आया था मा और बटी को देग फर। अत्र इसी आ रही है मा और पेटी के व्याह की याद करके। कितना अत्र था मा और बटी म और उनके विवाह मे ?

देवताओं के देश में

दिसम्बर १९५६ म मद्रास म ‘ग्राल इडिया रास्टम कान्फेस’ हो रही थी। इसका निमन्त्रण मुझे भी मिला था। मने उस स्वीकार कर सपत्नीक उधर जाके

प्रागाम बनाया ।

दक्षिण यात्रा की मेरे मन में चिर अभिलाषा थी । कहिए मन १९२२ से ही ऐसी यात्रा का प्रागाम बन रहा था । १९३२ या ३३ में दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा मद्रास में कुछ काय कत्ता और विद्यार्थिगण दिल्ली प्रमणाय आए थे । उनके साथ सत्यनारायण जी भी थे जिनके पत्र-परिचय में दक्षिण भारत में यह समस्या हिन्दी का काम कर रही थी । अपने दिल के साथ मैं मुझमें भट करने के लिए आए । साहित्य चर्चा के बाद सत्यनारायणजी ने मुझमें अनुरोध किया कि मैं दक्षिण के हिन्दी के द्रो में आकर कुछ भाषण कहूँ । जब मैंने उद्देश्य यात्राकी अपनी इच्छा भी बताई तो उन्होंने उसका सब प्रबंध करने का दायित्व अपने ऊपर ले लिया । इसके बाद हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग द्वारा उत्तर भारतीय विद्वानों के यात्रीमण्डल में सम्मिलित होकर दक्षिण भारत चलने का निमन्त्रण भी मुझे मिला । परन्तु मैं ऐसा फमा रहा कि उधर जा ही नहीं सता । अलवत्ता कईवार मैं दक्षिण हैदराबाद अपने मित्र कण्ठ सूय प्रताप से मिलने जाता रहा, परन्तु हैदराबाद से आगे दक्षिण में बढ़ ही नहीं सका ।

दक्षिण भारत के विशाल देवमन्दिर मेरे आकर्षण के विषय थे । दक्षिण के राजमण्डलों के समान मन्दिरोंके वगन मुन मुनकर उद्देश्य एक बार अपनी आँखों से देखने और वहाँ की संस्कृति को जानने की अभिलाषा तीव्र हो उठी थी । मेरा जीवन भी अब ६८ की देहरी पर पहुँच चुकाथा । इसलिए अब अधिक मोक्ष विचार न करके मैंने पहिले मुन्ना से और फिर पत्नी से सलाह की और चलने की ठान ली ।

परन्तु डाँ दिनों दो उपयास मेरे सामने फले हुए थे । एक 'पत्थर युग के दो बुत' तो मैं राजपाल गण्ड मस के लिए लिख हीरहा था कि इसी समय एक अग्र प्रकाशक ने आकर अपनी पापेट पुक सीरीज के लिए लघु उपयास की जबरदस्त माग की । मैंने टालना चाहा पर वे मेरी शक्ति की दुहाई देने लगे, मेरे हीने हवाले कुछ नहीं सुने और मुझमें एक सप्ताह बाद उपयास देने का वायदा कराकर चले गए । मुझे भी दक्षिण यात्रा के लिए रूपयों की जरूरत थी, इसलिए मैंने हा भर दी । उनके जातेही मैंने दूसरे उपयास का ताना बाना तयार किया और लिखने लगा । इसका नाम मैंने रखा 'विना चिराग का शहर' । अग्र लीजिंग, 'पत्थर युग के दो बुत' और 'विना चिराग का शहर' ये दो उपयास मेरी मेज पर फले गए और मेरी दक्षिण यात्रा सातवें दिन आरम्भ होने का पोग्राम भी बन गया । पत्नी से सब तयारिया करने को कह, मैं अपने कागजों में डूब गया । चौथे दिन मैंने 'पत्थर युग के दो बुत' तयार करके राजपाल को दे दिया और उसके बाद तीसरे दिन 'विना चिराग का शहर' पूरा करके दूसरे प्रकाशक के हवाले किया । रूपये जबमें डाले और सब भ्रष्टा को दिल्लीमें छोड़ मुन्ना से गप्पे लडाता हुआ बालक बन मद्रास की रेल में जा बठा । मेरी रेल फक फक करके चलदी । मैं सब चिन्ताओं से

मुक्त था। दक्षिण यात्रा में कटा कटा घूमना होगा, उसी सूची मुता से पूछकर और रेलवे टाइमटेबल में दस दस कर में बनाता जा रहा था।

भारत के दक्षिणाचल को मैं जानाया तो दस कटा कटा हूँ। बहुत दिन से मेरी अभिलाषा भारत के दक्षिणाचल को घूमनी थी, पर तु स्वस्थ और अनवकाश के कारण, ऐसा असमर नहीं पाएँ हुआ, उस समय दिल्ली में बनी ठण्ड थी और अब मे गमकी भानि सर्दियाँ भी सहन नहीं कर पाता था। दक्षिण में ठण्ड है, यह मुझे ज्ञात था। सो मे पत्नी और पुत्रीके साथ चल ही दिया। पूरे १८ घण्टे की लम्बी रका डेने वाली यात्रा थी। पर तु ज्योही दक्षिण की भूमि का सूर्योदय देगा, यात्रा की सब थकान दूर हो गई। वह एक प्रभावशाली हृदय था। अभी उपा का उदय हुआ था और बज बाडा का भव्य नगर सम्मुख था। दूर पर चारा और उटी टोपी पहाडियाँ, सहस्रो विजनी बनिया का गालोक और कृष्णा नदी की सुषमा, जिस न दक्षिण के इस नगर क सोदय को चार चाद लगा दिए हैं। दूर तक फन हुए प्रशस्त समतल मटानो मे लह जहात खेत, बीच बीच में ताड़-खजूर, नारियल की रकी वृक्षावनिर्गाँ टुटपुट के घूमिल प्रकाश मे बडी सुंदर लग रही थी। मैं तो यहाँ तक कह सकता हूँ कि ऐसा सुंदर प्रभात मैंने पहिले नहीं देखा था।

सूर्योदय होता गया, और दक्षिण भूमि की सुषमा प्रकट होती गई। रेलगाडी अपनी चाल चल रही थी। और एक के बाद दूसरे लुभावन दृश्य सम्मुख आते थे। बीच बीचमे छोटे छोटे गाव जिनमे कच्ची दीवारो पर ताउपनो स या पास में ट्राए हुए उपपर, प्राणामे एफाव नारियल का वक्ष, कही कही चरते हुए पशुआके भुण्ण और उा के बीच कृष्णवर्णी कि तु बरल वेशमारी ग्रामीण रूपक। निरवदह यह दरिद्रवग हे, परंतु जैसे उन के घर बार साफ सुथरे हे, वसे उन के मन भी। मस्त शरीर पर थोडे ही हे, पर स्वच्छ हे। ऐसा प्रतीत हुआ कि मर्यादा भी दक्षिण की एक सामाजिक वस्तु हे।

मद्रास पहुच कर दक्षिण की भव्यता के भी दाटा हुए। यह पाचीन दक्षिणी सभ्यता का एक प्रतीक नगर हे। कर्नाटक संगीत, भरत नाट्यम्, और इतरीशत कला का एक केन्द्र हे। यहा दक्षिण के भय स्यापत्य के बहुमूल्य नग्ने दीप पडते हे। प्राचीन मदिगे, मूर्तियो का अथाह रजाना उस दक्षिणाचल मे हे। प्रत्येक मूर्ति अतीत की कहा निया वर्णित करती हुई सी प्रतीत होती है। मद्रास नगर वास्तव मे दक्षिण का द्वार है। हिन्दी केन्द्र 'दक्षिण भारत हिन्दी प्रचारगभा' मद्रास का एक सब प्रधात आधुनिक सास्कृतिक केन्द्र है। इस की स्थापना गाबी जी ने सन् १९१९ में की थी।

नमदा तथा वि व्याचल का दक्षिण भूभाग प्राचीन कालसे दक्षिणापथ कहलाता आ रहा है। लगभग पाच लाख वग मील के इस भूभाग मे तेरह चौदह करोड मनुष्य

वसते हैं। सामाजिक सांस्कृतिक और लौकिक तथा आध्यात्मिक दृष्टि से यह भूभाग भाषा और साहित्य में अत्यंत प्रगतिशील है। इस मसूचे भूभाग में पांच प्रधान भाषाएँ बोली जाती हैं। पश्चिम समुद्र में परिवेष्टित भूभाग, जो लगभग सवा लाख वर्गमील में विस्तृत है, महागङ्गा के नाम से प्रसिद्ध है, जहाँ की भाषा मराठी है। इनका ही बड़ा प्रदेश तेलंगाना है जो पूर्व समुद्र बंगाल की खाड़ी से परिवेष्टित है। इन दोनों प्रान्तों में से प्रत्येक की आबादी साठे तीन करोड़ के लगभग है तथा इन दोनोंके दक्षिण का हिस्सा तीन प्रदेशों में बँटा हुआ है। जो क्रमशः तमिलनाडु, कर्नाटक, तथा केरल के नाम से प्रसिद्ध है। दोनों प्रान्तों की आबादी पाँच करोड़ के लगभग है तथा इस भूभागमें तामिल, मलयालम तथा कन्नड भाषाएँ बोली जाती हैं।

भाषाई गठन तथा मारूप्यता की दृष्टि से महाराष्ट्र की भाषा मराठी उत्तर भारतीय भाषाओं से अधिक मेल खाती है। खामकर उस की लिपि तो देवनागरी ही है। तल्लू तामिल कन्नड और मलयालम द्रविड भाषाएँ कहलाती हैं। ये भाषाएँ अति प्राचीन सुसम्पन्न तथा साहित्य से परिपूर्ण हैं। इसलिए इन प्रदेशों के निवासी अपनी भाषाओं के प्रति प्रगाढ़ प्रेम और आसक्ति रखते हैं। प्राचीन काल में इन प्रदेशों में संस्कृत एक समन्वय भाषा थी। वह न केवल दक्षिण की ही समन्वयमूलक भाषा थी अपितु उत्तर भारत से भी दक्षिणी संस्कृति का समन्वय संस्कृत भाषा के द्वारा ही होता था। तथा संस्कृत के माध्यम ही से उत्तर भारत में दक्षिण का हिंदू धर्म गया।

आज उत्तर भारत का जो हिंदू धर्म है—वह प्राचीन आर्यों का वैदिक धर्म नहीं है। दक्षिण से गया हुआ हिंदू धर्म है जिसके प्रवर्तक शंकराचार्य थे। यद्यपि उससे प्रथम ही गुप्तों मौर्यों तथा उत्तरकालीन मिश्रित भारतीय राजाओं ने ही वैदिक धर्म को वर्तमान पौराणिक हिंदू रूप दे दिया था। परंतु उसे कुछ शुद्ध त्रिदेवमूलक हिंदू धर्म का स्वरूप शंकर के बाद ही मिला। शंकर ने ही वेदों के स्थान पर उपनिषदों की श्रुति, गीता की स्मृति और वेदान्त को समीक्षा ग्रंथ स्वीकार कर प्रस्थान-त्रयी की स्थापना की थी। उसके बाद दक्षिण से धर्मकर्मों का अधिक प्रवाह चलता ही रहा। रामानुजाचार्य, मध्वाचार्य, निम्बार्काचार्य, बल्लभाचार्य और रामानंद स्वामी ने वैष्णव धर्म की परम्परा उत्तर भारत में कायम की। यह सब काय संस्कृत भाषा ही के द्वारा हुआ। दक्षिण भारत के ये आचार्य यदि संस्कृत भाषा को न अपनाते तो आज उत्तर भारत में हिंदू धर्म का यह स्वरूप बनपता ही नहीं, जिसने आर्यों के प्राचीन वैदिक धर्म को परास्त कर दिया था। इस प्रकार संस्कृत के माध्यम से उत्तर भारत में दक्षिण का हिंदू धर्म अपना कर अपना स्वतंत्र धर्म साहित्य बना लिया और उस में इस बात का कोई चिह्न शेष नहीं रह गया कि वह दक्षिण से गया हुआ धर्म था। इसी से दक्षिणी भाषाओं से उत्तरीय भाषाओं का अभिन्न सम्पर्क स्थापित नहीं हो पाया, तथा दक्षिण के हिंदू धर्म

को अपना कर भी उत्तरी भारत सांस्कृतिक रूप में दक्षिण भारत में पृथक ही रहा ।

परन्तु अब जब भारत में राष्ट्रीयता का सर्वोदय हुआ तो जन सामान्य से सम्बन्धित एक लोक भाषा को सामान्य भाषा के तौर पर भारत भर में व्याप्त करने का कठिन प्रश्न आया । जिसका अविकतर जटिल स्वरूप दक्षिण की भाषाओं से सम्बन्धित था । केवल भाषा के ही मूल प्रश्न को ले कर वैदिक काल से ले कर अब तक भी दक्षिण उत्तर से पृथक रहता आया था । अब राजनीतिक एकत्व का प्रश्न न था, सांस्कृतिक एकत्व का प्रश्न था, इस लिए उत्तर दक्षिण की भाषा समस्या सुलझने की जरूरत पड़ी । जिस पर गांधीजी का भारत में आते ही, सन् १९१८ में ज्यों ही उन्होंने भारत नेतृत्व ग्रहण किया, ध्यान आकर्षित हुआ और उन्हीं की दिव्य दृष्टि ने यह चमत्कार प्रदर्शित किया कि उत्तर की भाषा हिंदी में विन्ध्या को लाघकर नमदा को पार किया, और दक्षिण में जहां की मूल भाषाएँ हिंदी की अपेक्षा अत्यधिक प्रोढ़ और सम्पन्न थी, हिंदी में स्थापित हो कर उत्तर दक्षिण भारत का सम वय करना आरम्भ कर दिया ।

आज उस बात को ३७ वर्ष हो गए । इस ३७ वर्षों के काल में हिंदी ने जो काय किया है उसने सहस्राब्दियों की विचार तथा आचार धारा को बदल दिया है । आज यह काय दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा कर रही है । इस सभा ने देश की सामूहिक एकता को पुष्ट करने वाली राष्ट्रभाषा, साम्प्रदायिक एकता को दृढ़ बनाने वाली हिन्दुस्तानी, दक्षिणी भाषा तथा साहित्य को समन्वित करने वाली हिन्दी के ग्रन्थों को आश्चर्यजनक सफलता से संचलित किया है ।

भारत के दूसरे प्रदेशों की अपेक्षा दक्षिण भारत अधिक साक्षर है । कहीं कहीं तो साक्षरता ८० प्रतिशत तक पहुँची है । उस प्रकार अपनी भाषा को प्रेम करने वाले लोग भी हिंदी को अपना रहे हैं । आज दक्षिण में हिंदी भाषाभाषी तथा हिंदी में साक्षरों की संख्या लाखों में है । तथा हजारों ही जन हिंदी साहित्य के प्रेमी और ज्ञाता भी आज दक्षिणी भारत में हैं । सभा के उपाध्यक्ष १८,००० के लगभग हैं और उन में ५०० से अधिक विश्वप्रिया नयों के उपाध्यक्ष हैं । जिन में द्विती के विद्वान वी० ए० तथा एम० ए० तथा भाषा प्रवीण भी सम्मिलित हैं । हिन्दीके लेखकों तथा पत्रकारों की संख्या भी बढ़ रही है । महत्त्वपूर्ण बात यह है कि सभा के माध्यम में जनता का पूरा सहयोग प्राप्त है, तथा दक्षिण भारत की भिन्न-भिन्न राज्य सरकारों की मायनाएँ भी उसकी परीक्षाओं को प्राप्त हैं । सभा के ५ हजार के लगभग कार्यकर्ता हैं जिन्हें सभा ही ने शिक्षित किया है, दक्षिण भारत के कानि कोने में फले हुए हैं तथा दश के इस महत्त्वपूर्ण काय में हाथ बटा रहे हैं । सभाकी प्रादेशिक मस्थाएँ तैलंगानी, आन्ध्र कनाटक तमिलनाडु और केरल राज्यों में स्थापित होकर प्रचार काय कर रही हैं ।

सभा के साठे पाच सौ प्रचार केन्द्र हे, तथा ६०० के ऊपर स्थापित सस्थाए है। कुल मिलकर ६० लाख रुपया सभाने खच किया हे। तथा सभाकी सम्पत्ति २० लाख रुपया हे। सबसे बडी बात यह कि मस्था गाधीजी द्वारा स्थापित सवप्रथम मस्था है। मभावे शिक्षण के अ तगत ५० लाख से अधिक विद्यार्थी शामिल हो चुके हे, तथा सभा के प्रकाशनो की सरया भो २०० तक पहुच चुकी है। ९ लाख से अधिक परीक्षार्थिया ने परीक्षाए दी हे तथा सभाके अपने प्रेमसे प्रकाशना की १ करोड प्रतिया छप चुकी है। सभा के प्रेस मे इस समय १० भाषाओ मे छपाई की सुत्रिधा है। इस मभा के महत् काय के सचालन का श्रेय सभा के प्रधान पद्मश्री सत्यनारायण और उनके सहयोगियो को है जो सम्पूरण भारत के श्रद्धा तथा आशीवाद के पात्र हे। देवदास गाधी के प्रारम्भिक प्रयासो का जो उन्होंने गाधी जी के आदेश पर इस सस्था के लिए किए, सांस्कृतिक मूल्य महाराज अशोक के पुत्र महेन्द्र के लका प्रयाण की अपेक्षा कम नहीं है।

दक्षिण की सगीत और नत्यकला भी उत्तर भारत से सवथा भिन्न ह। कहना चाहिए कि भारतीय सगीत उत्तरापथ और दक्षिणापथ को दो भागो मे विभाजित करता है। दक्षिण का भाषावार विभाजन तो चिरकाल से है, पर तु उसका सगीत तो सांस्कृतिक एकता का मन्देश सुनाता है।

दक्षिण की वत्तमान सगीत पद्धतियो की परम्परा पल्वी के समय से आरम्भ होती है। जब आपवार और नाकनमार अपन श्रुतिगीत गाते थे, और प्रादेशिक रूप मे विजयनगरम और हेदराबाद से ले कर तिरुवनन्तपुरम और एट्टयपुरम के बीच का क्षेत्र उममे प्रभावित हो कर उसका पोषक बन गया था।

नवी दशमी शताब्दियो मे जब उत्तर भारत विदेशी आक्राताओ द्वारा दलित होने लगा तो उत्तर भारत की मस्कृति ने दक्षिण मे शरण ली तथा यहा की मूल मस्कृति से मिलकर उसके नवीन रूप का यहा विकास हुआ। इसलिए यदि देखा जाए तो ऐतिहासिक दृष्टिकोण से केरल और तमिलनाड की सांस्कृतिक परम्परा भारतवप भर मे एक खास प्रभाव रखती हे। तामिलनाड की अभिरुचि सदब कलाके प्रति कोमल भाव रखती आई है। कलाकार और आचायगण अपनी कला और पाण्डित्य के पोषण के लिए तमिलनाड और चोलुनाड के प्रति कृतज्ञ रह हे। सगीत के सम्बन्ध मे खास तोर पर यह बात हे। कर्नाटक सगीत सम्राट त्यागया का वामस्थल चीलनाडु था और उन्होंने अपनी रचनाओ मे चीलनाडु के प्रति असीम श्रद्धा प्रकट की हे।

दक्षिणी सस्कृति की विगत दो शताब्दियो से सगीत की सभी वाराण इसी और को अभिमुख होती गई। भारतकी प्राय सभी सगीत पद्धतियो मे सगीत की इम प्रायोगिक सूक्ष्मता के लिए दक्षिण की पद्धति को आदर्श माना। तमिलनाड भारत भर मे सबसे अधिक सगीत मे रुचि रखता है, यह कहना अत्युक्ति नहीं हे। सस्कृत के प्रसिद्ध

को अपना कर भी उत्तरी भारत सांस्कृतिक रूप में दक्षिण भारत से पृथक ही रहा।

परन्तु अब जब भारत में राष्ट्रीयता का सर्वोच्च हुआ तो जन सामान्य से सम्बन्धित एक लोक भाषा को सामान्य भाषा के तौर पर भारत भर में व्याप्त करने का कठिन प्रश्न आया। जिसका अधिकतर जटिल स्वरूप दक्षिण की भाषाओं से सम्बन्धित था। केवल भाषा के ही मूल प्रश्न को लेकर वैदिक काल से लेकर अब तक भी दक्षिण उत्तर से पृथक रहता आया था। अब राजनीतिक एकत्व का प्रश्न न था, सांस्कृतिक एकत्व का प्रश्न था, इस लिए उत्तर दक्षिण की भाषा समस्या सुलझने की जरूरत पड़ी। जिस पर गांधीजी का भारत में आते ही, सन् १९१८ में ज्यों ही उन्होंने भारत नेतृत्व ग्रहण किया, ध्यान आकर्षित हुआ और उन्हीं की दिव्य दृष्टि ने यह चमत्कार प्रदर्शित किया कि उत्तर की भाषा हिंदी ने विन्ध्या को लापरवाह नमदा को पार किया, और दक्षिण में जहाँ की मूल भाषाएँ हिंदी की अपेक्षा अत्यधिक प्रोट और सम्पन्न थीं, हिंदी ने स्थापित हो कर उत्तर दक्षिण भारत का समन्वय करना आरम्भ कर दिया।

आज उस बात को ३७ वर्ष हो गए। इस ३७ वर्षों के काल में हिंदी ने जो काय किया है उसने सहस्राब्दियों की विचार तथा आचार धारा को बदल दिया है। आज यह काय दक्षिण भारत हिंदी प्रचार सभा कर रही है। उस सभा ने देश की सामूहिक एकता को पुष्ट करने वाली राष्ट्रभाषा, साम्प्रदायिक एकात्मता को दृढ़ बनाने वाली हिन्दुस्तानी, दक्षिणी भाषा तथा साहित्य को समन्वित करने वाली हिन्दी के आदोलन को आश्चर्यजनक सफलता में सन्निहित किया है।

भारत के दूसरे प्रदेशों की अपेक्षा दक्षिण भारत अधिक मान्य है। कहीं कहीं तो साक्षरता ८० प्रतिशत तक पहुँची है। उस प्रकार अपनी भाषा का प्रेम करने वाले लोग भी हिंदी को अपना रहे हैं। आज दक्षिण में हिंदी भाषाभाषी तथा हिंदी में साक्षरों की संख्या लगभग ५०,००० के लगभग है और उनमें ५०० से अधिक विश्वविद्यालयों के उपाध्यक्ष हैं। जिनमें हिंदी के विद्वान बी० ए० तथा एम० ए० तथा भाषा प्रवीण भी सम्मिलित हैं। हिन्दी के लेखकों तथा पत्रकारों की संख्या भी बढ़ रही है। महत्त्वपूर्ण बात यह है कि सभा के कार्य में जनता का पूरा सहयोग प्राप्त है, तथा दक्षिण भारत की भिन्न-भिन्न राज्य सरकारों की मायताएँ भी उसकी परीक्षाओं को प्राप्त हैं। सभा के ५ हजार के तगभंग कार्यकर्ता हैं जिन्हें सभा ही ने शिक्षित किया है, दक्षिण भारत के कोने कोने में फले हुए हैं तथा देश के इस महत्त्वपूर्ण कार्य में हाथ बटा रहे हैं। सभा की प्रादेशिक मस्याएँ तैयगानी, आन्ध्र कनाटक तमिलनाडु और केरल राज्यों में स्थापित होकर प्रचार काय कर रही है।

सभा के साठे पाच सो प्रचार केन्द्र है, तथा ६०० के ऊपर स्थापित सस्थाए है। कुल मिलकर ६० लाख रुपया सभाने खच किया हे। तथा सभाकी सम्पत्ति २० लाख रुपया हे। सबसे बडी बात यह कि सस्था गाधीजी द्वारा स्थापित सवप्रथम सस्था है। सभाके शिक्षण के अ तगत ५० लाख से अधिक् विद्यार्थी शामिल हो चुके हे, तथा सभा के प्रकाशना की सरया भो २०० तक पहुँच चुकी है। ६ लाख से अधिक् परीक्षार्थियो ने परीक्षाए दी हे तथा सभाके अपने प्रेससे प्रकाशनो की १ करोड प्रतिया छप चुकी हे। सभा के प्रेस मे इस समय १० भाषाओ मे छपाई की सुविधा हे। इस सभा के महत् काय के सचालन का श्रय सभा के प्रवान पद्मश्री सत्यनारायण और उनके सहयोगियो को है जो सम्पूरा भारत के श्रद्धा तथा आशीर्वाद के पात्र है। देवदास गाधी के प्रारम्भिक प्रयासो का जो उहोने गाधी जी के आदेश पर इस सस्था के लिए किए, साम्बृत्तिक मूल्य महाराज अरुण के पुत्र महेन्द्र के लका प्रयाण की अपक्षा कम नहीं ह।

दक्षिण की सगीत और नत्यकला भी उत्तर भारत से सवथा भिन्न ह। कहना चाहिए कि भारतीय सगीत उत्तरापथ और दक्षिणपथ को दो भागो मे विभाजित करता है। दक्षिण का भाषावार विभाजन तो चिरकाल से हे, पर तु उसका सगीत तो मास्कृतिक एकता का सन्देश सुनाता है।

दक्षिण की वत्तमान सगीत पद्धतियो की परम्परा पल्वी के समय से आरम्भ होती है। जब आपवार और नाकनमार अपने श्रुतिगीत गाते थे, और प्रादेशिक रूप मे विजयनगरम और हैदरावाद मे ले कर तिरुवनन्तपुरम और एट्टयपुरम के बीच का क्षेत्र उममे प्रभावित हो कर उसका पोषक बन गया था।

नवी दशमी शताब्दियो मे जब उत्तर भारत विदेशी आक्राताओ द्वारा दलित होने लगा तो उत्तर भारत की मस्कृति ने दक्षिण मे शरण ली तथा यहा की मूल मस्कृति से मिलकर उसके नवीन रूप का यहा विकास हुआ। इसलिए यदि देखा जाए ता ऐतिहासिक दृष्टिकोण से केरल और तमिलनाड की सास्कृतिक परम्परा भारतवष भर मे एक खास प्रभाव रखती हे। तामिलनाड की अभिरुचि सदैव कलाके प्रति कोमल भाव रखती आई है। कलाकार और आचायगण अपनी कला और पाण्डित्य के पोषण के लिए तमिलनाड और चोलुनाड के प्रति कृतज्ञ रहे हे। सगीत के सम्बन्ध मे खास तौर पर यह बात हे। कर्नाटक सगीत सम्राट त्यागया का वासस्थल चीलनाडु था और उ होने अपनी रचनाओ मे चीलनाडु के प्रति असीम श्रद्धा प्रकट की हे।

दक्षिणी सस्कृति की विगत दो शताब्दियो से सगीत की सभी वाराण इसी और को अभिमुख होती गईं। भारतकी प्राय सभी सगीत पद्धतियो मे सगीत की इस प्रायोगिक सूक्ष्मता के लिए दक्षिण की पद्धति को आदर्श माना। तमिलनाड भारत भर मे सबसे अधिक् सगीत मे रचि रखता है, यह कहना अत्युक्ति नहीं है। सस्कृत के प्रसिद्ध

शिवि राजशेखर ने नवी शताब्दी में तमिलनाडु की उस प्रगति पर ग्राह्य प्रकट किया था। पुरन्दरदाम के कन्नड पद और त्यागराज ने नेलगु पद और कृतिया तिरुवात्तपुरम से स्वाति तिरुनाल महाराजा की रचनाओं ने एक ऐसी परंपरा को जन्म दिया जो भारतीय संस्कृति को सूत्रबद्ध करने में बहुमूल्य है। उसने भाषाओं की सीमा का तोड़ कर उत्तर दक्षिण को एक सूत्र में बांधा है।

कर्नाटक संगीत लोकसंगीत के स्त्रोतों का प्रवाह है। 'तेनारम' और 'कीतनों' की परंपरा हमें अति प्राचीन आदिवासियों तक ले जाती है।

संगीत के साथ नाट्य का सम्बन्ध भी प्राचीन है। इसी प्रकार शैली और पद्धति में गेय और वाद्य संगीत का भी महत्त्व एक दूसरे पर प्रभाव रखता रहा है। वीणा सद्धान्तिक और प्रायोगिक संगीत के क्षेत्रों में गायों की रानी बनकर आई। नागस्वर दक्षिण का एक वाद्य विशेष है, जिसका प्रभाव आधुनिक काल में बहुत है। यह कहा जा सकता है कि दक्षिण में संगीत शास्त्र का विवेचन प्राचीन भारत की भांति पूरण रूप से निरूपित है। महत्त्वपूर्ण बात यह है कि दक्षिण में यह महती कला भारत के अन्य भागों की भांति राजाश्रय से हट कर लोकाश्रय में गिरा हाथों के आती जा रही है। दक्षिण में तो मैंने पाकर यह देगा कि संगीत जनता की सम्पत्ति बनता जा रहा है। सत्रों बढ़कर बात यह कि दक्षिण में संगीत और नृत्य दोनों ही धर्मविक्षित हैं। संगीत और नृत्य भी धार्मिक कथाओं पर आधारित है। इसका प्रभाव यह हुआ है कि दशक के मन में विलास की कुत्सा नहीं आ पाती और संगीत नृत्य एक शुद्ध धर्मानुष्ठान प्रतीत होता है।

मद्रास दक्षिण का द्वार है। यहाँ में दक्षिण में प्रवेश होता है, मद्रास में मैंने दक्षिण का आतिथ्य, दक्षिण का भोजन और दक्षिण की भाषाओं के साथ दक्षिण का नृत्य संगीत देखा। दक्षिण में वह वस्तु जिसके कारण मैं उसे देवताओं का देश कहता हूँ देखने का भी शत्रुसर गागा। यह दक्षिण का विशाल दरवाजा, सबसे प्रथम मैंने महावलीपुरम में देखा। महावलीपुरम मद्रास से ८८ मील दक्षिण कोण में है। अति शोभायमान समुद्र तट पर अवस्थित है। यहाँ समुद्र की सुगन्धि भी अनोखी है। यह बंगाल की खाड़ी का ही एक भाग है। यहाँ पर महावलीपुरम की गुफाएँ हैं। पत्थर पर खुदाई के काम और मूर्तियाँ हैं। कभी यह महावलीपुरम पत्थर राजाओं का एक महत्त्वपूर्ण बंदरगाह था, जो अब एक शांत ग्राम के रूप में रह गया है। यहाँ सात पंगोडा प्रसिद्ध हैं, जो सभी अत्यंत प्रभावशाली खुदाई के काम में भरपूर हैं। उन पंगोडों में हम पत्थर राजाओं के काल का शिल्प, गृहनिर्माणकला और पत्थर खुदाई के कामों के उत्कृष्ट नमूने देख सकते हैं। जिन्होंने ई० की ७ठी से आठवीं शताब्दी के मध्य काल तक दक्षिण में शासन किया था। यह कमाल की ही बात कहनी चाहिए कि महावली

पुरम की प्रत्येक चट्टान को शिल्पी ने अपनी छनी गौर हथोडो से जीवन प्रदान किया है। यह तथ्या चार भागो मे विभक्त किया जा सकता है। गुह्यमन्दिर, तटस्थ मन्दिर, शिलातक्षर और तलशिल्प। असुरमर्दिनी दुगा का महिषासुर मण्डप न एक जीवित तक्षण है। ऐसा ही वाराह मण्डपम भी है। गोवद्धन तथा पशुमण्डप भी देखने योग्य है। किंतु जब हम गणेशरथ के दशन करते है तो मानव कृत एक विराट, कि तु साथ ही उत्कृष्ट तक्षर और वास्तु के एक साथ ही दशन होते है। ऐसा ही प्रजुन का गोड है, जो ६० फुट लम्बा और ३० फुट ऊँचा है। समुद्र तट को छूता हुआ तट मन्दिर है, जिनके आसपास दो-तीन मन्दिर और है जिनके चरण सागर पखारता है।

मे मद्राम आल इण्डिया राइटस कानफरेस (अ भा लेखक सम्मेलन) के निमंत्रण पर आया था। कानफरेसके कायकर्ता-प्रबन्धक तथा स्वागतकारिणीके अधिकारी सभी महापुरुष थे। महत्वपूर्ण बात यह थी कि प्रबन्धक पुरुषो की अप्रत्या महिलाओ का अधिक भाग था। खासकर भोजन का प्रबन्ध तो सवतोरूपेण महिलाओ के ही हाथ मे था। अतिथियो के निवास और उनकी सब सुख सुविधाए भी उही के हाथ मे थी। जब एक अल्पवयस्का कुमारी ने मेरे ठहरने के स्थान पर मुझे पहुँचा कर शुद्ध सुसंस्कृत अंग्रेजी भाषा मे मुझ से गम्भीर मुद्रा मे कहा—‘आप को कोई असुविधा हो तो आप कृपा कर मुझसे कहिए’—तो मुझे अनायास ही हसी आ गई। एक और प्रौढाकुमारी, जो अतिथि व्यवस्था मे मुख्य भाग ले रही थी—आश्चर्यजनक फुर्ती और तत्परतासे यहा वहा सबव्यापिनी नजर आ रही थी ठेठ अंग्रेजी की भाति वह अंग्रेजी मे अपने सभी भाव प्रकट करती थी। स्वागतकारिणी के जनरल सेक्रेटरी, का० ना० सुब्रह्मनयम, अध्यक्ष श्री एम० भक्तवत्सलम्, उपाध्यक्ष श्री डा० ए०एल० मुदालियर, श्रीमती रुक्मणीदेवी ग्रहडेल, श्री बी० एस० त्यागराज मुदालियर, श्री सी०आर० श्रीनिवासन श्री एस० ए० गोविन्दराजन, मंत्री श्री कोडुमुडि राजगोपालन—श्री एस० मिश्रपाथा सुन्दरम् आदि बडे यत्न और लगन से कानफरेस को सफल बनाने मे तन मन से प्रयत्नशील थे। और इन सब महिला तथा महानुभावो के अथक् परिश्रम का ही यह फल था कि समारोह असाधारण भव्यता तथा सफलतापूर्वक सम्पन्न हुआ। अतिथियो के तथा प्रतिनिधियो के सम्बन्ध मे मार्के की बात यह थी कि क्या निवास व्यवस्था, क्या भोजन, क्या सभा, सबन ही एक पारिवारिक आत्मीयता का वातावरण था।

परन्तु मेरे हृदय को सबसे अधिक वेदना यह देख कर हुई कि इस कानफरेस मे अंग्रेजी का ही डका बज रहा था। अंग्रेजी ही का सबन बालबोला था। वेशभूषा मे सब भारतीय थे—सरल, उज्ज्वल भारतीय सवथा और जिह्वा पर अंग्रेजी का धारा प्रवाह। निस्सदेह यह एक जबरदस्त कठिन समस्या है कि जहाँ भिन्न भिन्न देशके भाषा भाषी एकत्र हो, जो एक दूसरे की भाषा को न समझ सके—वहा एक समन्वय की

भाषा होनी चाहिए। पर वह समन्वय की भाषा अंग्रेजी नहीं हो सकती, जोड़ भारतीय भाषा ही हो सकती है। अब स १०।१५ तप प्रथम यह त्रिदशित्वांगम अंग्रेजी सम वय की भाषा थी। केवल उत्तर भारत ही जो बात नहीं त्रिदशित्वांग के चार अभिन्न भाषा भाषी प्राप्त भी आपस में अंग्रेजी के माध्यम में ही भाषी का आदान प्रदान करते थे। परंतु आज जब अंग्रेज भारत का छोड़ गए तो अंग्रेजी को हम अपने लिए सम वय भाषा कैसे रख सकते हैं। मुझे बड़ी आशा थी कि मैं दक्षिण में हिंदी के उदीयमान स्वरूप को देखूंगा, पर यहाँ कानफरस ने हम अंग्रेजी नातांतरण को देखकर मनी वह आशा धूल में गिल गद् और आतिथ्य में जो आत्मोयता और प्रेम रहा देखकर मेरा मन खिल रहा था—खिल हो गया।

परंतु जब मैं अंग्रेजों के इस पारिवार में घबराया हुआ सा खड़ा था—तभी एक भद्र महिला का तीन लड़कियों के साथ लिए भपटती हुई आद, और उठाने बड़ी उत्सुकतासे हिंदी भाषामें मेरा नाम पूछा और मेरा परिचय प्राप्त करनेके बाद जैसे वह महिला और वे लड़कियाँ गद्गद् हो गईं। बहुत स्थानों पर साहित्य समारोह में जब मेरा जाना होता है तो लोग मुझे कुतूहल में देखते हैं। कभी अटपटे प्रश्न करते ही गद्गद् हो जाने की प्रटना तो मन यही दर्शाती। महिला भी प्रबल में व्यस्त थी। जल्दी जल्दी में उठने मेरे साहित्य के सम्बन्ध में दो चार शब्द कहे और कहा—अतिथियों की सूची में आपका नाम देखते ही मैं भागी आई हूँ। दा लड़कियाँ भी आपको देखने का बहुत उत्सुक हैं। हम सब आपकी रचना का पढ़ते हैं। उसका बाद उठाने तत्परता से मेरी पत्नी को जलपान के लिए तैयार करने में लड़कियों के साथ भेज दिया और मुझे वे प्रेरण कर मायत गये। मेरे लिए वही काफी आरंभ नाशता मंगा दिया गया। उसके बाद तो लड़कियों का मेला लग गया और तब मन जाना—कि अब दक्षिण में यह अंग्रेजीका महज लिफाफा ही रह गया है, त्रिदशित्वांग की आत्मा में हिंदी बस चुकी है।

प्रबल यही बात नहीं कि त्रिदशित्वांग अंग्रेजी में नाम लिया गया। वास्तव में हिंदी विरोधी नातांतरण ही उसका महत्त्व है। त्रिदशित्वांग हिंदी के लोको भी स्थानीय काय कता कानफरस में उपस्थित न था। यह भी ज्ञात हुआ कि उनकी जान-पूझकर उपक्षा की गई और उनके सहयोग में उन्मत्त कर लिया गया। हिंदी के आगत अतिथियों में मेरे अतिरिक्त गवश्री अमृतारय, सच्चिदानंद वात्स्यायन शिशुदानामह चौहान तथा सोनरिम्सा दम्पति ही थे।

यहाँ आने से प्रथम ही भोजन और अन्य व्यवस्था के सम्बन्ध में जानकारी संगतवारिणी से प्राप्त कर ली थी। उसमें एक बात यह भी थी कि भोजन निरामिष होगा या सामिष। भाजनागार के एक अचल में सामिष व्यवस्था भी थी। परन्तु यहाँ केले के पत्ता के स्थान पर पेटों की व्यवस्था थी। इस अचल में बंगाली प्रतिनिधि,

मुस्लिम प्रतिनिधि और रूसी प्रतिनिधि तथा कुछ अक्सरवादी प्रतिनिधि भोजन करते थे। अक्सरवादी वह जो मिल जाय तो मछली मुर्गी का भी आस्वादन कर लिया जाए।

मास्को से श्री चेलीशेव आए थे। उनके साथ दो सज्जन और भी थे। श्री चेलीशेव हिंदी के अच्छे विद्यार्थी हैं। उन्होंने आयावादी कविता का अच्छा अध्ययन किया है। पत, निराला, महादेवी वर्मा, प्रसाद के वह बड़े भक्त हैं। जब उन्होंने सुना एक में भी यहाँ आया हूँ, तो खोज कर आए, मेरी कहानियों तथा वशाली की नगर वलू की बहुत देर तक चर्चा करते रहे। मेरा भारतीय सस्कृति का इतिहास भी वह पढ़ चुके थे। उसकी उहे बहुत तलाश थी। पुस्तक प्रदर्शनीमें मेरा साहित्य उपस्थित था। वहाँ से मेने सस्कृति का इतिहास उहे दे दिया। हिंदी भाषा के इतिहास की भी एक प्रति दी। मेने उहे जो पुस्तक पसंद हो, उठा लेने को कहा तो बहुत प्रसन्न हुए। बच्चों जसी सरल प्रसन्नता थी वह। उन्होंने पुस्तकें चुनली और बहुत बहुत बातें की। काफ़रेम समारोह में वह बहुत प्रतिनिधियों से मिले। महिलाओं ने तथा लड़कियों ने तो उहे खिलौना बना लिया। परंतु चमत्कारिक बात यह हुई कि वह हिंदी बोलते थे और महिलाएँ हिंदी न समझ कर अंग्रेजी बोलती थी, तब वह इस कठिनाई में फस जाते थे कि क्या कारण है कि ये लोग हिंदी नहीं समझती। दक्षिण भारत में हिंदी की व्यापकता की बात वह जानते थे, पर इस कानफरेस में अंग्रेजी की प्रमुखता देख वह हेरान हो रहे थे।

विवेचनीय विषयों की सूची प्रथम ही प्रतिनिधियों के पास भेज दी गई थी। और प्रतिनिधि अपनी अपनी रुचि के विषयों पर निबन्ध लिख लाए थे। विचारणीय विषय थे— १ भारतीय लेखन परम्परा और सम सामयिक लेखक, २ भारतीय भाषाओं में मौलिक एकरूपता, ३- सामूहिक व्यवहार और व्यक्तिगत सम्पर्क, ४ भारतीय भाषाओं की सम सामयिक वैज्ञानिक और परिभाषिक व्यक्त सामर्थ्य, ५- प्रामाणिक लेखकों से तुष्टिकरण, ६ राज्य और लेखक, ७ भारतीय उपन्यास कला, ८ भारतीय लेखकोंका सम सामयिक भुकाव और ९ अनुवाद की कला। प्रत्येक प्रस्तावित विषयपर पृथक पृथक परिषदोंमें मौखिक भाषण हुए तथा निबन्ध पढ़े गए। सवश्री काजी अब्दुल बद्द, श्री एस० आर० मागव व शर्मा, डा० एन० शेपाद्रिनाथन, एन० रघनाथन, श्री के० चंद्रशेखरन, श्री श्रीनिवासन, डा० नगेन्द्र, श्री जे० जी० कोल, श्री अमृताराय, श्री बालकृष्ण राव, श्री पी० टी० भास्कर पन्निक्कर, श्री शंकर राय, श्री पी० वाई० देशपांडे, श्री गोपीनाथ महन्त, श्री प्रो० एम० वी० मलकानी, श्री गोरीनाथ शास्त्री, श्री सच्चिदानन्द वात्स्यायन, श्री सुरेश जोशी, श्री माधो वी० अचल, श्री एस०पी०एस० योगी आदि ने परिषदों में महत्वपूर्ण भाषण दिए तथा निबन्ध पढ़े। कुछ महिलाओं ने भी वाद विवाद में भाग लिया।

भापा होनेी चाहिए। पर वह सम जय की भापा अग्रजी नहीं हो सकती, जो भारतीय भापा ही हो सकती है। अब से १०।१५ १५ प्रथम यह त्रिभिन्न अग्रजी सम वय की भापा थी। केवल उत्तर भारत ही ही जान नहीं - त्रिभिन्न के चार त्रिभिन्न भापा भापी प्रा त भी आपस में अग्रजी के मायम से हों भापा का आदान प्रदान करते थे। परंतु आज जब अंग्रेज भारत का डोड गए तो अग्रजी को हम अपने लिए समवय भापा कैसे रख सकते हैं। मुझे बड़ी आशा थी कि मैं दक्षिण में हिंदी का उदीयमान स्वरूप को देखगा, पर यहाँ कानफरम के अग्रजी वातावरण को देखकर मरी वह आशा धूल में गिल गद्द और आतिशय में जो आत्मोयता और प्रेम रहा देखकर मेरा मन खिल रहा था—खिल ही गया।

परंतु जब मैं प्रयोजने इस पारावार में घबराया हुआ सा खड़ा था—तभी एक भद्र महिला दो तीन लड़कियाँ को साथ लिए भपटती हुई आई, और उन्होंने बड़ी उत्सुकतासे हिंदी भाषामें मेरा नाम पूछा और मेरा परिचय प्राप्त करनेके बाद जैसे वह महिला और वे लड़कियाँ गद्गद् हो गईं। बहुत स्थानों पर साहित्य समारोह में जब मेरा जाना होता है तो लोग मुझे कुतूहल में देखते हैं। कभी अटपट प्रश्न करते ही गद्गद् हो जाने की प्रवृत्ति तो मैं यही देखी। महिला भी प्रबन्ध में व्यस्त थी। जल्दी जल्दी मैं उठने मेरे साहित्य के सम्बन्ध में दो चार शब्द कहें और कहा—अतिथियाँ की सूची में आपका नाम देखत ही मैं भागी आई हूँ। दा लड़कियाँ भी आपका देखने को बहुत उत्सुक हैं। हम सब आपकी रचना का पढ़त हैं। उसका बाद उन्होंने तत्परता से मेरी पत्नी को जलपान के लिए फटीन में लड़कियाँ के साथ भेज दिया और मुझे वे तैयार कर साथ ले गईं। मेरे लिए तैयारी काफी और नाश्ता मंगा दिया गया। उसके बाद तो लड़कियों का मेला लग गया और तब मैं जाना—कि अत्रिभिन्न में यह अग्रजीका महज लिफाफा ही रह गया है अत्रिभिन्न की आत्मा में हिंदी बस चुकी है।

बैठक यही बात नहीं कि त्रिभिन्न अग्रजी में काम लिया गया। आत्मन में हिंदी त्रिभिन्न वातावरण ही उसे रहना चाहिए। त्रिभिन्न हिंदी के लिए भी स्थानीय कार्यकर्ता कानफरम में उपस्थित थे। यह भी जान लिया कि उनकी जान-पूछकर उपेक्षा की गई और उनके सहयोग में स्थापित कर दिया गया। हिंदी के आगम अतिथियाँ में मेरे अतिरिक्त सवश्री अमृतराय, सच्चिदानंद आत्म्यायन त्रिभिन्नदानमिह चोहान तथा सोनरिक्मा दम्पति ही थे।

यहाँ आने से प्रथम ही भोजन और अत्रिभिन्न स्थिति के सम्बन्ध में जानकारी स्वागतकारिणी से प्राप्त कर ली थी। उसमें एक बात यह भी थी कि भोजन निरामिष होगा या सामिष। भोजनागार के एक अंचल में सामिष व्यवस्था भी थी। परंतु यहाँ केले के पत्तों के स्थान पर पेटों की व्यवस्था थी। उस अंचल में बंगाली प्रतिनिधि,

मुस्लिम प्रतिनिधि और रूमी प्रतिनिधि तथा कुछ अक्सरवादी प्रतिनिधि भोजन करते थे। अक्सरवादी वह जो मिल जाय तो मडली मुर्गी का भी आस्वादन कर लिया जाए।

मास्को से श्री चेलीशेव आए थे। उनके साथ दो सज्जन और भी थे। श्री चेलीशेव हिन्दी के अच्छे विद्यार्थी हैं। उन्होंने ज्ञायावादी कविता का अच्छा अध्ययन किया है। पत, निराला, महादेवी वर्मा, प्रसाद के वह बड़े भक्त हैं। जब उन्होंने सुना एक म भी यहा आया हूँ, तो खोज कर आए, मेरी कहानियो तथा वशाली की नगर वधू की बहुत देर तक चर्चा करते रहे। मेरा भारतीय सस्कृति का इतिहास भी वह पढ चुके थे। उसकी उहे बहुत तलाश थी। पुस्तक प्रदर्शनीमे मेरा साहित्य उपस्थित था। वहा से मेने सस्कृति का इतिहास उहे दे दिया। हिन्दी भाषा के इतिहास की भी एक प्रति दी। मेने उहे जो पुस्तक पसंद हो, उठा लेने को कहा तो बहुत प्रसन्न हुए। बच्चों जैसी सरल प्रमत्ता थी वह। उ होने के पुस्तके चुनली और बहुत बहुत बातें की। का फरेम समारोह मे वह बहुत प्रतिनिधियों से मिले। महिलाओं ने तथा लडकियों ने तो उहे खिलौना बना लिया। परन्तु चमत्कारिक बात यह हुई कि वह हिंदी बोलते थे और महिलाएँ हिन्दी न समझ कर अंग्रेजी बोलती थी, तब वह इस कठिनाई मे फस जाते थे कि क्या कारण है कि ये लोग हिन्दी नहीं समझती। दक्षिण भारत मे हिन्दी की व्यापकता की बात वह जानते थे, पर इस कानफरेस मे अंग्रेजी की प्रमुखता देख वह हेरान हो रहे थे।

विवेचनीय विषयों की सूची प्रथम ही प्रतिनिधियों के पास भेज दी गई थी। और प्रतिनिधि अपनी अपनी रुचि के विषयों पर निबंध लिख लाए थे। विचारणीय विषय थे— १ भारतीय लेखन परम्परा और सम सामयिक लेखक, २ भारतीय भाषाओं मे मौलिक एकरूपता, ३ सामूहिक व्यवहार और व्यक्तिगत सम्पर्क, ४ भारतीय भाषाओं की सम सामयिक वैज्ञानिक और परिभाषिक व्यक्त सामर्थ्य, ५ प्रामाणिक लेखकों से तुष्टिकरण, ६ राज्य और लेखक, ७ भारतीय उपयास कला, ८ भारतीय लेखकोंका सम सामयिक भुकाव और ९ अनुवाद की कला। प्रत्येक प्रस्तावित विषयपर पृथक पृथक परिपदोमे मौखिक भाषण हुए तथा निबंध पढे गए। सवश्री काजी अब्दुल बद्द, श्री एस० आर० मागवन्व शर्मा, डा० एन० शेषाद्रिनाथन, एन० रघनाथन, श्री के० चन्द्रशेखरन, श्री श्रीनिवासन, डा० नगेन्द्र, श्री जे० जी० कोल, श्री अमृताराय, श्री बालकृष्ण राव, श्री पी० टी० भास्कर पन्निक्कर, श्री शंकर राय, श्री पी० वाई० देशपांडे, श्री गोपीनाथ महन्त, श्री प्रो० एम० वी० मलकानी, श्री गोरीनाथ शास्त्री, श्री सच्चिदानन्द वात्स्यायन, श्री सुरेश जोशी, श्री माधो वी० अचल, श्री एस०पी०एस० योगी आदि ने परिषदो मे महत्वपूर्ण भाषण दिए तथा निबंध पढे। कुछ महिलाओं ने भी वाद विवाद मे भाग लिया।

कुछ विद्वानों ने महत्वपूर्ण निबंध भेजे—श्री आर०एम० शैली ने तामिल साहित्य के इतिहास पर प्रकाश डाला। का० ना० सुब्रह्मण्यम ने आधुनिक तामिल साहित्य की विवेचना की। श्री पी० महादेव ने सुब्रह्मण्यम के कार्यात्मक प्रगणन किया। श्री सिवना रायण राय ने आधुनिक भारतीय साहित्य पर विचार प्रकट किए। श्री चंद्रशेखरन के निबंध में रवींद्र साहित्य की चर्चा थी। इसी प्रकार प्रथम महत्वपूर्ण तमिल भी अनेक विद्वानों ने, जो यहां न आ सके थे, भेजे।

स्वागत यक्ष श्री एम० चन्द्रन्मन्यु ने अपने मलिनस्त स्वागत भाषण में अतिथियों के प्रति समादर प्रकट करते हुए भिन्न भिन्न भारतीय तथा अन्धभारतीय लेखकों के एकत्र होने के महत्व का वर्णन किया। उन्होंने प्राचीन और अन्धप्राचीन साहित्य की गति त्रिविध पर प्रकाश डालते हुए सब भाषा भाषी लेखकों के एक मंच में प्रविष्ट होने के महत्व पर जोर दिया। उन्होंने तामिलनाडु के साहित्य की स्थिति पर भी प्रकाश डाला और दक्षिणी भाषाओं में साहित्य की अन्धप्राचीन तथा प्राचीन जो परिपाटी थी उसकी पूर्वापर प्रसंग वर्णन किया, तथा भिन्न भिन्न भाषाभाषी लेखकों में परस्पर + विचार विनिमय का अनुरोध किया।

काफ़े सभा अध्यक्षपद ताराशंकर बनर्जी ने ग्रहण किया था। उन्होंने भी अपना भाषण अंग्रेजी में पढ़ा। भाषण उनका ढीला ढाला था तथा व्यक्तिगत विवेक और तेज के सम्मुख फीका सा जंच रहा था। अच्छा होता वह बगला में भाषण देते और उसका अनुवाद तामिल या अंग्रेजी में प्रकाशित कर दिया जाता। अपना भाषण मैं उठने अपने चुनाव के लिए स्वागतकारिणी का आभार प्रकट किया और कहा कि बगला में अभी तक इस प्रकार की सब भाषा भाषी काफ़े सभा नहीं हुई। यहां जो भारत के भिन्न भिन्न भाषा भाषी विद्वान या जिनके केवल नाम सुने जाते हैं, व्यक्तिगत रूप में एकत्र हुए हैं, यह प्रसन्नता का विषय है। उन्होंने अंग्रेजी में भाषण करने का खेद प्रकट किया और कहा—'मैंने उसी भाषा में रचनाएँ की हैं, जिसे मैंने माता के मुँह से सीखा था।' उन्होंने काफ़े सभा के महत्व की चर्चा करते हुए कहा कि 'इसका सत्रमें बड़ा महत्व उत्तर और दक्षिण की सीमाओं को तोड़कर एक बनाने का है।

उत्तर और दक्षिण की भाव विभिन्नता का मनेत करते हुए उन्होंने बताया कि इस काफ़े सभा में उत्तर और दक्षिण सांस्कृतिक रूप में मिलकर एक हो रहे हैं, जो राजनीतिक दृष्टिकोण से भिन्न है। उन्होंने सांस्कृतिक मन्त्री हुमायूँ कबीर का जवाब देते हुए कहा कि हमने एशियन लेखकों की काफ़े सभा की चर्चा की थी, जो पूरी तौर पर सफल नहीं हुई। उन्होंने ताशकंद की एशियन एशियन का भी जवाब दिया और साहित्य के साथ राजनीतिक प्रचार का संकेत किया। इसके बाद काफ़े सभा की चर्चा की और इस बात पर जोर दिया कि ऐसी परिपदों का उद्देश्य राजनीतिक

वातावरण से ऊपर रहना चाहिए और लेखक को पूरा विचार स्वातन्त्र्य प्राप्त होना चाहिए। उन्होंने भाषण का उपमहार एक वदिक मंत्र से किया।

१८ दिसम्बर को खुले अतिवेशन में राजगोपालाचार्य ने एक सक्षिप्त भाषण में समारोह की उपादेयता और इसके प्रति बड़ी प्रसन्नता प्रकट की।

कान्फ्रेंस के कार्यक्रमों में सांस्कृतिक समारोह अति भव्य रहे। दूसरे दिन 'सीता स्वयंवर' का मूक अभिनय कला क्षेत्र के द्वारा प्रस्तुत किया गया। गायन-वादन अप्रस्तुत रहता था और कलाकार काल अपनी भाव भंगिमा में ही गायन में प्रस्तुत प्रसंग विषयों को प्रकट करता था। यह भाव भंगिमा इतनी सजीव और प्रभावशाली थी कि उसकी जितनी ही प्रशंसा की जाय, थोड़ी है। उत्तर भारत में हमारे यहाँ राम-लीलाएँ होती हैं, जिनमें बड़ी भारी धूमधाम और भीड़ भाड़ होती है। बहुत खर्चा भी होता है, पर इस अभिनय का जैसा सजीव प्रदर्शन होता है इसके सामने हमारी वह रामलीला एक सवया भोड़ी सी बेतुकी उछल बूढ़ प्रतीत होती है। सीता स्वयंवर में जो भाव अभिनय हुआ वह इतना सुन्दर था कि मैं उसे शीघ्र नहीं भूल सकता। मैं यह भी कह सकता हूँ कि मैंने इससे प्रथम ऐसा अभिनय नहीं देखा था।

इससे प्रथम दिन 'नादस्वरम्' का कार्यक्रम था। जो कारकुलीचि अरुणाचलम और मण्डली द्वारा प्रस्तुत किया गया था। प्रायः मदिरो में इसी नादस्वर का प्रयोग होता है। दो व्यक्ति बहुत बड़ी नफीरी के ढग का वाद्य बजाते हैं। अनुक्रम से और दो व्यक्ति दोनों मिरो पर बैठकर मृदंग की भाँति का कि तु मृदंगसे बहुत मजबूत वाद्य बजाते हैं। उगलियों की पूरी पोर में बड़े-बड़े छल्ले पहन कर तथा सवथा नगे बैठकर वे यह वाद्य बजाते हैं। पहिले तो नगे बैठने पर आश्चर्य हुआ। पर शीघ्र ही पता लग गया कि उनका वेग इतना तीव्र होता है कि पाँच मिनट ही में व्यक्ति पसीना पसीना हो जाता है। बड़ा गम्भीर नाद होता है, जैसे बादल गरज रहे हों और उसका प्रभाव भी अद्भुत पड़ता है।

तीसरे दिन मद्रास की प्रसिद्ध नतकी कमला लक्ष्मनन का 'भरतनाट्यम्' हुआ। ये सम्प्रात कुल की दोनों विदुषी बहने अपनी कला के लिए समूचे दक्षिण में प्रसिद्ध हैं। उनका शुद्ध शास्त्रीय नृत्य कोरा नृत्य ही न था। नृत्य के साथ एक-एक पौराणिक वम गाथा का उसमें समावेश था। कला में इस प्रकार धम भावना का समावेश एक महत्वपूर्ण बात थी। जिसका यहाँ अकस्मात् ही दर्शन हुआ। दर्शकों के मन में विकार का पता न था। वे नृत्य की भाव-मुद्रा को सवथा एक धर्माभिनय रूप में देख रहे थे। इस दिन तो हाल में तिल बरने को स्थान न था और यह नृत्य भी ऐसा अद्भुत था कि जिसका दर्शन उत्तर भारत में दुर्लभ है। हमारे रूसी प्रतिनिधि चेलिसेव भाव मुग्ध होकर यह भारतीय कला देख रहे थे। जब मैंने पूछा—'कसा लगा?' तो वह कहने

लगे—स्वप्न था, जो खत्म हो गया ।’

काचीपुरम (रवणनगरी) की सु दर नगरी मद्रास से केवल १७ मील के अंतर पर है। उसकी गणना भारत की सात पवित्र नगरियां में है। यह पल्लव राजाओं की वंशी राजधानी रहा थी। यहां अनगिनत भव्य मन्दिर हैं, जिनका तत्पण अद्भुत है। काची के भीतर बाहर मदिदग की माला गुथी हुई है। जो कोई दक्षिण भारत के अतुल तक्षण का चमत्कार देखना चाह वह इस स्वगनगरी में आकर अपनी आखा का फल प्राप्त करे। सम्भवत भारत भर में ऐसा भव्य तत्पण अत्र नहीं है। सब से प्राचीन मन्दिर कलाशानाथका है, जो बारह सौ वर्षों से भी अत्रि पुराना है। पल्लववशीय राजाओं के काल के तत्पण और स्थापत्य का यह उत्कृष्ट नमूना है। यहां पर पल्लवकालीन चित्रा का भी प्रदर्शन है। वकुण्ठ पारिमल मन्दिर एक दूसरा महत्वपूर्ण दवालय है, जो दक्षिण के पांच प्रसिद्ध मदिदरो में एक है। यह विष्णु का मदिदर है। स्वाम्बवेश्वरम् के मदिदर का गापुरम गगनस्पर्शी है, जो पल्लव शिल्प कौशल का अत्युत्तम नमूना है। इस मदिदर में चोल, पल्लव और विजयनगरम् साम्राज्या के स्मृति अंक उपस्थित हैं। मदिदर के सैकड़ों रम्भे और मण्डप हैं जो १२वीं शताब्दी की वरामात हैं। जो इतिहास और वास्तु शिल्प की दृष्टि से जगत्भरत के मूल्य सन्तम नहीं हैं। काचीपुरम् आज भी एक महान तीर्थ है और दक्षिण भारतीय नस्कृति शिल्प, वास्तु और मूर्ति कला का अग्रतम प्रतीक है। यहां की रेशमी सानिया भारत भर में प्रसिद्ध है। यह हेण्डलूम भी मी टर है। परन्तु इस स्वगनगरी में जूता चार बहुत हैं। मदिदर की पौर से मेरा नया कीमती जूता कोई देवता चुरा ले गया।

मद्रास में अ० भा० लेखक सम्मेलन में आयोजित पुस्तका की प्रदर्शनी में सवा त्रिक मेरा ध्यान तजोरके सरस्वती महल ग्रथागार की हस्तलिखित पाठुलिपियों ने आन पित किया। अनेक ऋतूमूल्य दुलभ पाठुलिपिया तो तानपत्रों पर लिपी थी ही, ऋग्वेद की एक सचित्र पाण्डुलिपि भी थी। एक महाराष्ट्र तत्पण उस मग्रह को लकर यहां प्राण थ। उनका नाम था श्री गरुपतिराव। मेरा परिचय पाते ही उन्होंने मुझमें मुताकत की तथा उनमें सरस्वती महल ग्रथागार का जा परिचय मुझे मित्रा, उरगमें मैं उस अलभ्य ग्रथागार का दर्शन के लिए अत्रि हो उठा और मैंने हृदयपूर्वक उनका निमंत्रण स्वी कार कर लिया। श्री गरुपति राव महाराष्ट्र तत्पण हैं, परन्तु पीढ़ियों से तजोर में ही निवास करते हैं। मेरा ग्राधा दिन सरस्वती महल ग्रथागार को देखने में लगा। तजोर में मुझे दक्षिण की महत्ता के दर्शन हुए, यह रहना अत्युक्ति नहीं मानी जानी चाहिए। प्रथम तो यहां के प्रसिद्ध बृहदेश्वर क दुर्गाकार मदिदर को देखकर ही मैं दग रह गया। ससार भर का सबसे बड़ा नदी यही है। यह गार्ह फुट ऊंचा है और काले रंग के एक ही पत्थर का बना हुआ है। ज्योतिर्निग भी इतना विशाल है कि भूमि पर खड़े होकर

उसका ऊपरी सिरा नहीं ढुंग्रा जा सकता है। किन्तु वृहदेश्वर से भी बहत यहा के सर-स्वती महल का वृहत्तम ग्रथागार है, जिसे विश्व के सबसे महान और बडे ग्रथागारो मे से एक कहा जा सकता है। मद्राम मे डा० एनीबीमेट का जगत्प्रसिद्ध अडियार का ग्रथागार देखा या जिसकी भव्य इमारत मद्रास की एक दशनीय वस्तु है। वहा एक लाख पुस्तका का संग्रह भी है, जिनमे १० हजार के लगभग मस्कृत की हस्तलिखित पाण्डु निपिया भी है। सच पूछा जाय तो अडियार का ग्रथागार डा० एनीबीमेट का अभूत-पुव सास्कृतिक वृहत्काय है।

तजौर चाल राजाग्रा की राजधानी थी। राजा कारिकाल चोल चोल साम्राज्य का सस्रापक था। उसने ईस्वी ५० से ९० तक राज्य किया। वह केवल योद्धा और विद्वान् ही न था, एक कुशल इंजीनियर भी था। उसकी प्रतिभा बहुमुखी थी। उसने कोट्लवेण्ण मे, जो तजौर से पूव कोई १५ मील पर है, चेर और पाण्य राजाग्रा को पराजित किया था तथा कावेरी पर बाध बधवाया था। 'कावेरि प्पूम्यहिराम्' को एक व्यवस्थित बादरगाह के रूपमे परिणत किया था, जो उस कालमे ससार भर के अत राष्ट्रीय सोदागरो का वाणिज्य केन्द्र तथा भारत का मुख बन गया था। 'पह्णिण तुप्पालै' ग्रथ, जो इसी राजा के राजत्व कालमे रचा गया, अत्यतम साहित्य ग्रथ है। इसी राजा के राज्य काल के व्यापार वाणिज्य वभव का चमत्कारिक वरण है। शिलप्पविकारम् मे जो तामिल के पाच प्रसिद्ध काव्यो मे सर्वापरि है, लिखा है कि इस तेजस्वी राजा ने उत्तर के मगध और अरव ती के राज्यो को भी युद्ध मे पराजित किया था। चोलवश का उद्य तामिल साहित्य के उदय का काल है।

पाचवी शताब्दी मे पल्लवो ने चोल राज्य वश को पददलित किया और तब नोवी शताब्दी के मध्य तक उनके आधीन राजा होकर रहना पडा। विजपाल मचोल ने ई० ८५०मे ८७१ तक राज्य किया और तजौर को मत्तरयर के हाथो से मुक्त कर प्रथम बार उसे अपनी राजधानी बनाया। विजपालम के पुत्र आदित्य ने श्रीपुरम्बियम मे एक निर्णायक युद्ध करके सदा के लिए पाण्यो को पराभूत कर दिया। उसने सन् ९०७ई० तक राज्य किया। आगे इसी वश के राजराजन चोल ने अपने बाहुबल से समूचे मद्रास प्रांत, मैसूर और लफा पर भी अधिकार कर लिया तथा उमकी जल सेना ने मलाया के सघ राज्य, इडोचादना और बर्मा को जीत कर महान चोल साम्राज्य की स्थापना की। इमी प्रतापी यगस्वी राजा ने तजौर का वृहदीश्वर का विशाल मंदिर बनवाया, जो सबप्रथम पेटिपकोडल(बडा मंदिर) कहलाता है। इसमे तत्कालीन वास्तु कला के प्रत्यक्ष दान होते हे।

राजरानन ने ई० ९८५ से १०१४ तक राज्य किया, इस के बाद उस के पुत्र राजेन्द्र चोल ने १०१४ से १०४८ तक राज्य किया। राजेन्द्र चोल ने चोल साम्राज्य

की और भी वृद्धि की। उमने तजौर क चोल साम्राज्य को समुद्र के उग पार तक फला दिया। एक गोर उसके राज्य की सीमा उत्तर भारत को और, दूसरी आर मलाया को छू रही थी। इसके बाद प्रतापी चोल सम्राटों ने ई० ग० १२७६ तक शासन किया। इस वंश का अंतिम सम्राट राजेंद्र तृतीय था। उसके बाद भी १४वीं शताब्दी के अंत तक अनेक सामंत अपने का चोल कह कर दक्षिण में शासन करते रहे। अंत में १५वीं शताब्दी के समाप्त होते-न होते चोल मण्डल को विजयनगरम् साम्राज्य में मिला लिया गया। अब केवल तामिल साहित्य ही चोल साम्राज्यकी अमर विभूति रह गई।

विजयनगरम् साम्राज्य का प्रतिनिधि वंश आगे तजौर नागर वंश के नाम से शासन करता रहा। इस वंश में से प्रथम नायक पंमुख पुरुष था। उसने १५६० तक राज्य किया। इसी राजा के शासन काल में पुनगाली लोग नागपट्टणम् में प्रथम बार आए। आगे इस वंश के अनेक वीर राजा हुए। विजयराघव इस वंश का अंतिम राजा था, जिसने १६३४ से १६७३ तक तजौर पर राज्य किया, बाद में तजौर बीजापुर शासन के अधीन हो गया। यह वह काल था कि जब पुनगाट-डेनिश और अंग्रेज लोग दक्षिण भारत में पैर जमा रहे थे। उधर उसके उत्तरी कोण पर छत्रपति शिवाजी अपना पसार कर रहे थे। अंत में शिवाजी ने बीजापुर राज्य की जड़ खोखली कर दी। इस पर अवसर पा मटुरा के राजा ने तजौरको अपने आधीन कर लिया। इस पर बीजापुर राज्य ने शिवाजी के भाई वेकोजी को तजौर भेजा। अनेक युद्धों के बाद वेकोजी ने तजौर को अधिकृत कर लिया और तजौर में मराठा राज्य का श्रीगणेश हुआ।

वेकोजी का नाम यहां एकोजी प्रसिद्ध हुआ। उन्होंने ई० स० १६७६ से १६८३ तक राज्य किया। शिवाजी ने उस राज्य को अपने साम्राज्य में मिला लेने की इच्छा भी की पर एकोजी ने स्वीकार नहीं किया। एकोजी को अनेक युद्ध करने पड़े, फिर भी उसने कला तथा साहित्य का गहन विचार किया। एकोजी के तीन पुत्रों ने दक्षिण में तीन नए राज्यों की स्थापना की। यह काल यद्यपि लड़ाई भ्रमणों का काल रहा, तथापि कला कौशल की बहुत वृद्धि हुई। सन् १७३६ में मटाराष्ट्र शासन खत्म हुआ। इसके बाद ईस्ट इंडिया कम्पनी और कर्नाटकके नवाब सघन चर्चा करते और तजौर पर १७७६ तक पुलिस शासन रहा। बाद में ब्रिटिश प्रभाव का शिकार हो गया। उन्होंने महा राष्ट्र राजाको गद्दी पर बठा दिया, जिसके उत्तरपुत्र शरभोजी ने ईस्ट इंडिया कम्पनीको अपने अधिकार सौंप दिए और स्वयं उनके अनुशासन में राज्य करने लगा। वह १७६८ में गद्दी पर बैठा। कम्पनी ने हवाटस नामक शिक्षक को शरभोजी के शिक्षण के लिए नियत किया। इस योग्य शिक्षक ने शरभोजी को अनेक पाश्चात्य भाषाओं तथा संस्कृत का पूरा पण्डित बनाया। आगे चल कर यह राजा बड़ा गुणी प्रमाणित हुआ तथा सरस्वती महल ग्रंथालय की स्थापना उसी ने की। शरभोजी की मृत्यु १८३२ में हुई।

उसके बाद उस का पुत्र राजा हुआ। उसकी मृत्यु के बाद ई० स० १८५५ में तजोर राज्य ब्रिटिश राज्य में मिला लिया गया।

सरस्वती महल ग्रन्थागार तीन भिन्न भिन्न मस्कृतियों का सगम है, जो अपने युग के तीन प्रभावोंसे सम्बन्धित है। तामिल के चोल, तेलगू के नायक तथा महाराष्ट्र राज्य और पाश्चात्य प्रभाव—ये तीन स्रोत इन सस्कृतियों के हैं। चोलों ने ई० पू० २५० में ही दक्षिण में प्रभाव स्थापित किया था तथा १३वीं शताब्दी में उस का अवसान हुआ। यह दो हजार वर्ष व्यापी दीर्घकाल चोलों के माध्यम से तामिल विकास का काल है, जिस का अलभ्य साहित्य भी सरस्वती महल ग्रन्थागार की अलमारियों में है। चोलों के बाद नायक राजा हुए। सभी नायक पालक उच्च कोटि के विद्वान् रहे और ई० सन् १५२२ से १६७६ तकका काल उनके सरक्षण में सस्कृत और तेलगू के साहित्य के सम्बद्धन का काल रहा। सस्कृत और तेलगू का यह अलभ्य साहित्य भी सरस्वती महल की अलमारियों में सुशोभित है। नायक पालों के बाद महाराष्ट्र आए। सभी महाराष्ट्र महीभुज कला और शिक्षा के प्रेमी रहे। उन्होंने तामिल, तेलगू तथा मराठी एवं सस्कृत का बहुत भण्डार भरा। महाराज शरभोजी ने अन्ततः 'सरस्वती महल ग्रन्थागार' की स्थापना करके महान सांस्कृतिक सम्पदाको एक स्थान पर एकत्र किया।

ग्रन्थागार में पाण्डुलिपियों के अतिरिक्त अनेक विदेशी भाषाओं का अथाह साहित्य भरा है, जो राजा शरभोजी ने सग्रह किया था। सब पुस्तकों पर इस विद्वान राजा के हस्ताक्षर हैं। इन पुस्तकों में बहुत सी तो प्रथम सस्करण की दुर्लभ पुस्तकें हैं। कुछ प्राचीन पत्र पत्रिकाएँ हैं। योरोप और एशिया के विविध खण्डों में बोली जाने वाली भाषाओं का यहाँ अथाह मागर् है कुछ अद्भुत पुस्तकें सचित्र हैं। चित्रों तथा छाया चित्रों का भी यहाँ अलभ्य सग्रह है। शरीर शास्त्र, स्थापत्य विज्ञान, युद्ध शास्त्र एवं देश देशान्तरो की वेपभूषा सम्बन्धी अनेक महत्वपूर्ण ग्रन्थ यहाँ हैं। सामुद्रिक शास्त्र पर अनेक ग्रन्थ फ्रेंच भाषा में हैं, जिनमें कई दुर्लभ हैं। एक फ्रेंच भाषा की अलभ्य पुस्तक ऐसी है जिसमें मानवों, पशु पक्षियों के मुह सम्यक्ताक्रम की दृष्टि से छपे हुए हैं।

मराठी पाण्डुलिपिया कसपूर के वस्त्रों में बँधी पकितबद्ध रखी हैं। ये ग्रन्थ वेदात, साहित्य, संगीत, वद्यक और विज्ञान से सम्बन्धित हैं। इनमें राजा शरभोजी तथा अन्य राजाओं के नाटक तथा देवेन्द्र कुरवेजि नामक अनोखी भूगोल रचना है। इसमें दुनिया के अन्यान्य स्थानों का वरान 'कुरत्ति' नाम से प्रसिद्ध चलती फिरती स्वर्गीया युवतियों द्वारा गीत रूपसे प्रस्तुत किया गया है। इसके रचयिता शरभोजी स्वयं थे। इस विभाग में एक मराठी, सचित्र महाभारत तथा भागवत का ग्रन्थ है, जिसके हर मुख पृष्ठ पर चित्र हैं। ये रचनाएँ एकनाथ के वंशज एवं शिष्य माधव स्वामी द्वारा विरचित हैं, जिन के चित्र का रंग आज ढाई सौ वर्ष बाद भी वसा ही चटकीला बना हुआ है।

की गौर भी वृद्धि की। उसने तजौर के चोल साम्राज्य का समुद्र के उग पार तक फला दिया। एक ओर उसके राज्य की सीमाएं उत्तर भारत की ओर, दूसरी ओर मलाया को ढूँही थी। इसके बाद प्रतापी चोल सम्राट् १००० ग० १२७६ तक शासन किया। उस वंश का अन्तिम सम्राट् राजेंद्र तृतीय था। उसके बाद भी १४वीं शताब्दी के अंत तक अनेक सामंत अपने का चोल कह कर दक्षिण में शासन करते रहे। अंत में १५वीं शताब्दी के समाप्त होते-न होते चोल मण्डल को विजयनगरम् साम्राज्य में मिला लिया गया। अब केवल तामिल साहित्य ही चोल साम्राज्य की अमर विभूति रह गई।

विजयनगरम् साम्राज्य का प्रतिनिधि वंश आगे तजौर नामक वंश के नाम से शासन करता रहा। इस वंश में सेत्रय्य नायक प्रमुख पुरुष था। उसने १५६० तक राज्य किया। इसी राजा के शासन काल में पुतगाली लोग नागपट्टणम् में प्रथम बार आए। आगे इस वंश के अनेक वीर राजा हुए। विजयराघव इस वंश का अन्तिम राजा था, जिसने १६३४ से १६७३ तक तजौर पर राज्य किया, बाद में तजौर बीजापुर शासन के आगे न हो गया। यह वह काल था कि जब पुतगाली डेनिश और अंग्रेज लोग दक्षिण भारत में पैर जमा रहे थे। उस पर उसके उत्तरी कोण पर छत्रपति शिवाजी अपना पसाव कर रहे थे। अन्त में शिवाजी ने बीजापुर राज्य की जड़े खोखली कर दी। इस पर अवसर पा मट्टरा के राजा ने तजौर को अपने आगे न कर लिया। इस पर बीजापुर राज्य ने शिवाजी के भाई बेकोजी को तजौर भेजा। अनेक युद्धों के बाद बेकोजी ने तजौर को अधिकृत कर लिया और तजौर में मराठा राज्य का प्रवेश हुआ।

बेकोजी का नाम यह। एकोजी प्रसिद्ध हुआ। उसने १६०० से १६८३ तक राज्य किया। शिवाजी ने उस राज्य को अपने साम्राज्य में मिला लेने की इच्छा भी की पर एकोजी ने स्वीकार नहीं किया। एकोजी को अनेक युद्ध कराने पड़े, फिर भी उसने कला तथा साहित्य का बहुत विकास किया। एकोजी के तीन पुत्रों ने दक्षिण में तीन नए राज्यों की स्थापना की। यह काल अंग्रेजों का उदय का काल रहा, तथापि कला कौशल की बहुत वृद्धि हुई। सन् १७३६ में मट्टाराष्ट्र शासन खत्म हुआ। इसके बाद ईस्ट इंडिया कम्पनी और ब्रांडेडके नवाब सघन चलाते रहे और तजौर पर १७७६ तक पुलिस शासन रहा। बाद में यह ब्रिटिश प्रभाव का शिकार हो गया। उन्होंने महा राष्ट्र राजाको गद्दी पर बैठा दिया, जिसके दत्तपुत्र शरभोजी ने ईस्ट इंडिया कम्पनीको अपने अधिकार सौंप दिए और स्वयं उनके अनुशासन में राज्य करने लगा। वह १७८६ में गद्दी पर बैठा। कम्पनी ने हवाटम नामक शिक्षक को शरभोजी के शिक्षण के लिए नियत किया। इस योग्य शिक्षक ने शरभोजी को अंग्रेजों के शासनात्मक तथा संस्कृत का पूरा पण्डित बनाया। आगे चल कर यह राजा बना गुणी प्रमाणित हुआ तथा सर स्वती महल अथागार की स्थापना उसी ने की। शरभोजी की मृत्यु १८३२ में हुई।

उसके बाद उस का पुत्र राजा हुआ। उसकी मृत्यु के बाद ई० स० १८५५ में तजौर राज्य ब्रिटिश राज्य में मिला लिया गया।

सरस्वती महल ग्रथागार तीन भिन्न-भिन्न मस्कृतियों का सगम है, जो अपने युग के तीन प्रभावोंसे सम्बन्धित है। तामिल के चोल, तेलगू के नायक तथा महाराष्ट्र राज्य और पाश्चात्य प्रभाव—ये तीन स्रोत इन संस्कृतियों के हैं। चोलों ने ई० पू० २५० में ही दक्षिण में प्रभाव स्थापित किया था तथा १३वीं शताब्दी में उस का अवसान हुआ। यह दो हजार वर्ष व्यापी दीर्घकाल चोलों के माध्यम से तामिल विकास का काल है, जिस का अलभ्य साहित्य भी सरस्वती महल ग्रथागार की अलमारियों में है। चोलों के बाद नायक राजा हुए। सभी नायक पालक उच्च कोटि के विद्वान् रहे और ई० सन् १५३२ से १६७६ तकका काल उनके संरक्षण में संस्कृत और तेलगू के साहित्य के सम्बद्धन का काल रहा। संस्कृत और तेलगू का यह अलभ्य साहित्य भी सरस्वती महल की अलमारियों में सुशोभित है। नायक पालों के बाद महाराष्ट्र आए। सभी महाराष्ट्र महीभुज कला और शिक्षा के प्रेमी रहे। उन्होंने तामिल, तेलगू तथा मराठी एवं संस्कृत का बहुत भण्डार भरा। महाराज शरभोजी ने अन्ततः 'सरस्वती महल ग्रथागार' की स्थापना करके महान सांस्कृतिक सम्पदाको एक स्थान पर एकत्र किया।

ग्रथागार में पाण्डुलिपियों के अतिरिक्त अनेक विदेशी भाषाओं का अथाह साहित्य भरा है, जो राजा शरभोजी ने संग्रह किया था। सब पुस्तकों पर इस विद्वान राजा के हस्ताक्षर हैं। इन पुस्तकों में बहुत सी तो प्रथम संस्करण की दुर्लभ पुस्तकें हैं। कुछ प्राचीन पत्र पत्रिकाएँ हैं। योरोप और एशिया के विविध खण्डों में बोली जाने वाली भाषाओं का यहाँ अथाह सागर है। कुछ अद्भुत पुस्तकें सचित्र हैं। चित्रों तथा छाया चित्रों का भी यहाँ अलभ्य संग्रह है। शरीर शास्त्र, स्थापत्य विज्ञान, युद्ध शास्त्र एवं देश देशान्तरो की वेषभूषा सम्बन्धी अनेक महत्वपूर्ण ग्रन्थ यहाँ हैं। सामुद्रिक शास्त्र पर अनेक ग्रन्थ फ्रेंच भाषा में हैं, जिनमें कई दुर्लभ हैं। एक फ्रेंच भाषा की अलभ्य पुस्तक ऐसी है जिसमें मानवों, पशु पक्षियों के मुहू सम्बन्धिताक्रम की दृष्टि से छपे हुए हैं।

मराठी पाण्डुलिपियाँ कसपूर के वस्त्रों में बँधी पकितवद्ध रखी हैं। ये ग्रन्थ वेदात्, साहित्य, संगीत, वद्यक और विज्ञान से सम्बन्धित हैं। इनमें राजा शरभोजी तथा अन्य राजाओं के नाटक तथा देवेन्द्र कुरवेजि नामक अनोखी भूगोल रचना है। इसमें दुनिया के अन्यान्य स्थानों का वर्णन 'कुरत्ति' नाम से प्रसिद्ध चलती-फिरती स्वर्गीया युवतियों द्वारा गीत रूपसे प्रस्तुत किया गया है। इसके रचयिता शरभोजी स्वयं थे। इस विभाग में एक मराठी, सचित्र महाभारत तथा भागवत का ग्रन्थ है, जिसके हर मुख पृष्ठ पर चित्र हैं। ये रचनाएँ एकनाथ के वंशज एवं शिष्य माधव स्वामी द्वारा विरचित हैं, जिन के चित्र का रंग आज ढाई सौ वर्ष बाद भी वसा ही चटकीला बना हुआ है।

इसके बाद तेलगू का अथाह भण्डार है। 'मन' की ओर देखकर इस बात का पता चलता है कि उस काल में लिखन की अनन्य परिपाटियाँ प्रचलित थी। अनेक संस्कृत रचनाएँ तेलगू लिपि में हैं। तेलगू रचनाएँ टटनागरी लिपि में हैं तथा तमिल की प्रतियाँ नागरी एवं तेलगू लिपि में हैं।

दुर्प्राम्य तेलगू रचनाओं में रघुनाथ नायकाभ्युत्थमु गौर कट्टरदराजु रामायणु उल्लेखनीय है। प्रथम रचना में तजोर राजमहा ने वास्तु का प्रयोग है। यह चार सौ वर्ष प्रथम की कृति है। तजोर के राजा ताहजी के, जो स्वयं एक सिद्धहस्त गायक थे, रचे हुए गाने योग्य पाँच सौ पद संग्रहीत हैं।

तमिल पाण्डुलिपियाँ में निरुच्छिन्न वृत्त वाच्यर की अप्राप्य कई टीकाएँ, तिरुवायमोलि, नावडियार, पुरु देवनार भारतम् तथा तिरुमुत्तु प्प की अलभ्य पुस्तक है। इस विभाग में विज्ञान और वयस्क की भी अनेक रचनाएँ हैं। रसायनशास्त्र के ग्रंथ भी हैं। एक रचना शरभोजी कृत है—शरभेन्द्र वरमुत्तु, जो १८ भागों में है। शरभजी का वैद्यक से भी बड़ा प्रेम था। उन्होंने एक पुस्तक तिरि महा की भी रचना की थी। मोडी लिपि की पाण्डुलिपियों के कुछ उड़े बण्डल नजर आते हैं। यह वह लिपि है जिसमें तजोर के मराठी राजाओं के वही पाने लिखे जाते थे।

संस्कृत पाण्डुलिपियाँ का संग्रह गमने बड़ा है। उनमें विभिन्न विषय हैं। यह संग्रहालय पृथक् ही प्राच्य संग्रहालय के नाम से परिचित है। संस्कृत की पाण्डुलिपियाँ ही संस्कृत-महल ग्रंथागार की अमूल्य निधि हैं। मंत्र शास्त्र, दुर्लभ वैदिक ग्रंथ 'वचक' संगीत, विज्ञान, ललित कला की अमूल्य रचनाएँ उस विभाग में हैं। मन्थी गोविंद दीनित, च्यम्भराय मरुती आदि वेदका की रचनाएँ भी संग्रहित हैं। पद्यक रसवाद की दुर्लभ पुस्तक 'आनन्द' की पाण्डुलिपि अद्य है, गम संग्रह विज्ञान तथा नोहो को प्रत्येक दो त्रान अंगु गमनी परिचलन प्रयोग की महत्त्वपूर्ण भूमि है। अक्षय गज शास्त्र भी है। मन्थी गोविंद अद्य संग्रहित हैं, जो संग्रहित हैं।

प्राचीन तर्निरित्य अक्षरों की विग्रहण की भी मन्थी पाण्डुलिपियाँ हैं, जो विना खुदशीन नहीं देखी जा सकती। एक मन्थी संग्रह की पाण्डुलिपि भी है।

उन दुर्लभ पाण्डुलिपियों के अतिरिक्त यहाँ इत्यादि भी भी भारी भण्डार है जो इतिहास की महत्त्वपूर्ण सामग्री है और जिनमें भारतवासियों की पुनर्रचना में बड़ी सहायता की जा सकती है, खास कर वे दस्तावेज पिछले प्रिन्सिपल पर पूरा प्रकाश डालते हैं। ई-वी सन् १७३० के आगे के पञ्चम वर्षों का समय दक्षिण भारत की महान राजनीतिक घटनाओं का समय है। उसी काल में ईस्ट इण्डिया कंपनी ने औपनिवेशिक शासन की घोषणा की थी। पञ्चायतों के नेतृत्व में एक तरफ मराठों की और दूसरी तरफ हैदरअली एवं टीपू सुलतान की चढ़ाईयाँ हुआ करती थी। इसी

बीच तजोर राज्य तथा कर्नाटक के नवाब मे भी मुठभेड हुई थी। उस समय तजोर इन घटनाओं का मुरय केन्द्र रहा था। यहा इन बातों पर प्रकाश डालने वाले अनेक बहुमूल्य डाकूमेट है।

तजोर से अ य स्थानों को देखते भालते हम लोग सेतुवध रामेश्वर तक पहुँच गए जहा ममुद्रजल भारत भूमि के चरण पखारता हे, उसे देख अपने नेत्र सफल किए।

इस यात्रा मे मुन्ना ने अपनी छोटी उगली से मुझे पकडकर खूब घुमाया, दोडाया, हँसाया। मेरे घुटनों की तकलीफ ने मुझे अधिक कष्ट नहीं दिया। मैं समझ रहा था कि यह दिव्य ज्योति मेरे शारीरिक कष्टों की भी श्रौषधि है। चिर हास्य मेरे जीवन का लक्ष्य रहा हे। यही चिरहास्य बहुत दिनों से कम हो गया था, अब उस तोतली शिशुवाणी ने उम चिरहास्य को फिर ला दिया। मेरे सुन्दर स्वास्थ्य का प्रमुख कारण मेरा चिरहास्य ही हे। मे माम, मदिरा तो दूर, प्याज की बदबू भी बरदान्त नहीं कर सकता। भोजन मे दाल, फुलका, एक दो हरी सब्जिया थोडा चावल। यही भोजन का क्रम सदैव रहा। दो एक भस मैं अवश्य रखता था। इससे शुद्ध दूध, मक्खन, घी, दही, छाछ मुझे मिल जाती थी। अनेक कष्ट आने पर भी भस का क्रम मैंने नहीं टूटने दिया। दूध से जब वह लात जाती, उसे गाव भेजकर दूसरी ले लेता था। सात्विक भोजन और चिरहास्य ही मेरे स्वास्थ्य का भेद था।

महाप्रयाण

(अनुज चन्द्रमेन द्वारा वर्णित)

दक्षिणाचलकी देवभूमि का भ्रमण करके १० जनवरी १९६० की प्रात वह लोट आए थ। इस भ्रमण से उनका स्वास्थ्य सुवरा था। घुटने की तकलीफ ने भी उ हे नहीं सताया था।

१०, ११ और १२ जनवरी तीन दिन वह स्वस्थ और प्रसन्न रहे। १३ जनवरी को स या समय से उ हे पशाव रकने की तकलीफ शुरू हुई। रात होते हाते यह कष्ट अधिक बढ गया।

डाक्टरों ने कहा—‘अब तो अरविन अस्पताल ही जाना होगा।’ अरविन अस्पताल गए। अरविन अस्पताल मे गत तीन वर्षों से घुटनों मे दद और पेशाव रुक रुक कर आने की चिकित्सा एव परामश के लिए वह जाते थे। वहा डाक्टरों ने उ ह बताया भी था कि आपके ‘प्रोस्टेट ग्लाड’ बढ गए है, इनका आपरेशन करा डालिए—तभी पेशाबकी तकलीफ दूर होगी। सो इस बार १४ जनवरी को भी डाक्टरों ने अपनी वही राय दोहरायी। मूत्रावरोधसे इतना छटपटा रहे थे कि उ होने सलाह मशवरा किए बिना तुरन्त आपरेशन करने और वहा भरती होने की स्वीकृति दे दी। बाड न० २ मे बिस्तर न० २३ उ हे दियागया। भरती करनेके बाद डाक्टरोंने नली तथा अय उपायो

द्वारा पेशाब कराया और तीन दिन तक वह बिस्तर पर बेट रह। तभी से पेशाब आता रहा। चौथे दिन नली निकाली गयी। पेशाब स्वतः माने लगा।

भाभीजी ने आपरेशनकी भयहरता का अनुमान करते-तबे मिलती की कि अब तो पेशाब आने लगा है, आपरेशन न कराया जाय। उनके और भी अत्यंत मित्रों ने कहा कि अब आपरेशन की बात छोड़नी जाय। परन्तु अस्पताल के उमराव में 'प्रास्टट क्लाड' आपरेशन के दो तीन बेस और थे, जो पच्छ हो चुके थे और दो चार दिन में ही जिन्हें अस्पताल से छुट्टी मिलाने पानी थी। उन्हें दिखाकर वह सबको समझाते थे कि चिन्ता की बात नहीं है। आपरेशन होने दो - मरी तब नीच मिट जायगी।

तीस जनवरी तक, जब उनका आपरेशन हुआ, उनमें यही अनुरोध किया जाता रहा कि आपरेशन टाक दो। परन्तु पेशाब की पीड़ा में वह बहुत परेशान थे। उ होने स्वयं भी माहस मचय किया और हम सबको भी टिप्पण प्रशयो।

परन्तु मेरा मन विद्रोह का रहा था। अस्पताल के उमराव में लगभग तीस बिस्तर थे। लम्बा कमरा, पलंगोनी तामी दो फतार दर तक चली गई थी। सब पर मरीज थे। अच्छे पुरे, सभ्य शसभ्य, उजले मन, शिक्षित अशिक्षित। फिर उनकी चीख, पुकार, वेदना, कराह। उ हीक बीच में एक बिस्तरपर यह महापुरुष। जिसने राजमहलों में राजा रानियोंके लिए मरमती कुमिया पर बठकर नुस्ये लिये, उनकी सम्पन्न वभव शाली अतिशयाताया में मेहमानदारी की, जो शरीर में अत्यन्त कोमल, गजालत और बदबू जिह एक क्षण भी असाह्य थी, जो अपने होने के तमरे में तनिक भी शार गुल बरदाशत नहीं कर सकते थे, जो पलंग पर तान तार गद्द मित्रा कोमल शय्या बनाकर ही सो सकते थे, उन्हें तब पडे दर में टाहातर कर उठता था। में सोचता-कसे इन्होंने यह सब सहन कर लिया है? यह बात का मरत पत्रग और उस पर बिछा इतना सरत गदा गद्दा, जिसपर सारा रोगियो ने अपना शीतागु छोडे है, यह कम नीद लेते होंगे। यह सब देखकर मैं उत तब से ते जाना चाहता था।

अत मे मैंने कहा—'गार्डन में। के तर्गमग होम में चलकर आपरेशन कराया जाय तो इस गन्दगी और कष्ट से तो त्रचा जायगा।'

कुछ देर के मेरी ओर तागजी से देखते रहे। फिर बोले—'तया में यहा बसन आया हूँ। आपरेशन कराकर अपने घर जा भग। बीमारी में तया मुग और क्या मीनसेख ?'

'उम सरत पलंग पर आपरेशो तसे तीद गा ती होंगे ?'

'खूब आती है, तुम मुझे परेशान मत करो।'

कुछ देर चुप रहकर मेने कहा—'मे राजेदरलाल हाडा जी के पास जाता हू, वे राष्ट्रपतिजी से कहकर आपरेशी चिकित्सा के लिए कही बढिया प्रबध करा देग।'

‘बड़ी मुश्किल से तो यहा आपरेशन की डेट आई है। परसो आपरेशन हो जाएगा। अब क्या करोगे उनसे कहकर, ओर फिर राष्ट्रपति क्यो मेरी चिंता करने लगे। नहीं, मैं किसी से कुछ नहीं चाहता।’

फिर भी मेरा मन नहीं माना। मैं चुपचाप उठकर अस्पताल के आफिस में गया। वहा पूछा कि प्राइवेट कमरा निया जाय तो कितना खर्च होगा। उन्होंने सब हिसाब जोड़कर कहा—‘लगभग डेढ़ हजार।’

‘और यदि कही प्राइवेट नॉनिंग हॉम में जाय तब?’

‘डेढ़ दो हजार ही वहा होगा।’

परन्तु पर मे इस समय इतना रुपया नहीं था जो यह व्यय किया जाता। मैं उदाम मन उनके पत्र के पास आकर खडा हो गया।

उन्होंने पूछा—‘कहा गए थे?’

‘आफिस में यह पूछने गया था कि प्राइवेट कमरा ले तब क्या खर्च होगा?’

‘तब क्या बताया?’

‘डेढ़ दो हजार।’

‘देख लिया न!’

‘मैं रुपए का प्रबन्ध करता हूँ। कुछ प्रकाशकों से मागूंगा, कुछ उधार लूंगा।’

‘इस समय कोई प्रकाशक धेला नहीं देगा। न वही में उधार मिलेगा। जाओ तुम, डाक्टर से मिलकर परसो आपरेशन की तैयारी पक्की करा दो।’

‘अच्छा’ कहकर मैं डाक्टर के कमरे की ओर चल दिया।

डाक्टर ने कहा—‘परसो आपरेशन जरूर होगा, लिस्ट में पहिला नम्बर है। खून का इंतजाम कर लिया है न?’

‘कहिए, कहा से करना होगा?’

उन्होंने एक फर्म का नाम बताया कि वहा से खून की बोतल मोल मिलती है, परन्तु आपरेशन के बाद यह ठीक नहीं कहा जा सकता कि कितनी बोतलो की जरूरत पड़ेगी। कभी दो बोतलो से भी काम चल जाता है, कभी सात आठ बोतले भी पूरी नहीं होती।’

‘एक बोतल कितने की आती है?’

‘शायद चालीस पचास रुपए की?’

मैं कुछ सोचने लगा। डाक्टर ने कहा—‘एक बात हो सकती है कि आपकी फेमिली में मे कोई व्यक्ति हमारे अस्पताल को खून डोनेट कर दे तो फिर मरीज पर अस्पताल ही खर्च करेगा, जितनी बोतलो की भी जरूरत पड़े।’

‘आपका ब्लडबैंक कितना खून निकालेगा?’

‘थोड़ा ही, ज्यादा नहीं ।’

‘अच्छा, मे ऐसा ही करता हूँ ।’ कहकर मैं टाक्टर के कमरे की ओर लपका । वहाँ जाकर मैंने दवाज में अपना पूरा दान की बात कही । उ होकर मेरी बाह की एक नस में से थोड़ा खून निकाल कर टेस्ट किया और फिर कहा—ठीक है, अभी निकालते हैं ।

अपने रजिस्टर में उ होने खातापूरी की ।

‘खून किस मरीज के लिए द रहा है ?’

‘वाइ न० २ रिस्टर न० २३ श्री चतुरमेन शास्त्री ।’ दवाज डाक्टर के पास एक युवा लेडी डाक्टर भी खड़ी थी । मरीज का नाम सुनते ही वे बोली—‘क्या वे हमारे अस्पताल में हैं ?’

‘हाँ परसो प्रोटेस्टी आपरेशन होगा ।’

‘ओह, उनके लिए खून मैं दूँगी डाक्टर ।’ उ हाने डाक्टर से कहा ।

‘वाह, आप यह कष्ट क्या कर ? आपकी कृपा के लिए बहुत ऋण्यवाद ।’

‘कष्ट कसा, यह तो उनकी सेवा होगी । एक तुच्छ सेवा ।’ फिर उ हाने डाक्टर को बताया कि शास्त्री जी कितने महान पेशकश दे और वे उनका प्रति कितनी गहरी श्रद्धा रखती हैं । उ हाने अपना सफेद कोट उतार दिया और अपनी बाह की नसों को देखने ओर दवाने लगी ।

मैंने उनसे प्रार्थना की—‘आप यह क्या कर रही हैं ?’ परन्तु डाक्टर ने मेरी रक्षा करली । उ होने उनसे कहा—‘आपको परेशान होने की जरूरत नहीं । खून इनका टेस्ट हो चुका है । थोड़ा सा ही तो लिया जायगा, उ द देने दीजिए ।’

मैं कुर्सी से उठकर ट्रा सफयूजन रूम में गया और दो बोतल खून नस में इतनी आसानी और शीघ्रता से निकाल लिया कि मुझे कुछ भी प्रतीत नहीं हुआ ।

खून लेकर उ होने एक पर्ची मुझे दी और कहा—‘इसे अपने डाक्टरको दीजिए ।’

पर्ची लाकर मैंने आचार्य जी को दी । उमें दया और समझ कर उनका मन उदास हो गया । उस दिन उ होने भाजन नहीं किया । भूख नहीं है, कहकर टाल दिया और अपना सारा खाना अपने सामने पठा कर मुझे गिना दिया । अस्पताल में भरत होने पर भी उनके लिए खाना हम घर से ही बनाकर लाते थे । दधिया, मक्खन, एक दो फल, थोड़ा दूध । उनकी उदासी के पीछे जो उनका मेरे प्रति प्रेम और वात्सल्य उमड़ पड़ा था, वह मैं ठीक ठीक समझ रहा था । वे भावुक जाये, और मुझे पाँच वष की आयु से पुत्रवत् पाला जो था । यद्यपि खून दकर मैंने कोई बीरता नहीं की थी न मुझे तनिक भी कमजोरी ही हुई थी, न मेरे शरीर अनिष्ट को कोई आशका ही थी फिर भी एक वात्सल्य उनकी नम आखोंमें झलक उठा था । मेर यह कहने पर भी वि

मुझे तनिक भी निबलता प्रतीत नहीं हो रही, उ होने विश्वास नहीं किया। उ होने जसे आज्ञाभरे स्वर मे कहा—‘घर जाकर आराम करो। खूब दूध पियो। एक डिब्बा आमूल मक्खन भी लेते जाना और खाना। कल दिनभर भी आराम करना, यहा आने की जरूरत नहीं। परसो सवेरे आपरेशन होगा, सो परसो ही जरा पहिले आ जाना।’

मन मारकर आज्ञा मान मैं चला आया। परसो तीस जनवरी को यद्यपि शाह दरे अपने घर से प्रात बहुत जल्दी ही चल पडा था, परतु फिर भी माग बावाओ के कारण अस्पताल देर से पहुँचा। भाभी जी साथ थी। हम दोनो चुपचाप अपनी अपनी भावनाओ को मन ही मन पी रहे थे। आठ बजे होंगे जब हम वाड मे पहुँचे। वे अपने पलग पर नहीं थे। हमने चिन्तातुर होकर इवर उधर देखा। वे सामने ड्रेसिंग रूम से अपने घर के वस्त्र उतार आपरेशन काल के वस्त्र पहन कर बाहर निकल रहे थे। मे लपक कर उनके सामने आया। उतारे हुए वस्त्रो की पोटली उनके हाथो मे थी। मैने पोटली उनसे ले ली। उस क्षण की उनकी मूर्ति मै भूत नहीं सकता। जीवन शून्य आकृति की भयकर झलक मुझे दीख पडी। मरफिया के इजेक्शन लग चुके थे। आपरेशन थियेटर से उहे ले जाने के लिए नम स्ट्रेचर लेकर आचुकी थी। उहे अतिम बार समझाने या रोकने का अब समय नहीं था। नस ने आहिस्ता से उन्हे ‘स्ट्रेचर’ पर लिटा दिया, और स्ट्रेचर के पीछे पीछे हम आपरेशन थियेटर के द्वार तक उनके साथ आये। परतु मन बिल्कुल बैठा जारहा था। फिर भी बुरी शका को मै अपने हृदय मे अधिक समय तक स्थान देना नहीं चाहता था।

घडकते हृदय से दो घटे तक मै, भाभी तथा अय इष्ट मित्र आपरेशन थियेटर के बाहर आकुल व्याकुल से खडे रहे। दो घटे बाद दरवाजा खुला और ‘स्ट्रेचर’ पर लेटे हुए वह बाहर निकले। नर्स तथा डाक्टर उनके साथ थे। डाक्टरो ने हमे चिन्तित देखकर कहा—‘चिन्ता की कोई बात नहीं है। आपरेशन ठीक हुआ है और अब तो ये होश मे भी है। ३०, ३१ जनवरी और १ फरवरी चिन्ता और शकाओ मे व्यतीत हुई। यद्यपि वह ठीक ही थे और दूध, पानी कभी कभी पीते भी थे, परतु जो चैतयता आपरेशन के बाद क्रमश होती है, वँसी नहीं हो रही थी।’

आपरेशन के बाद मुझे रात दिन उनके पास रहने की अस्पताल से आज्ञा मिल गई थी। इसलिए मैं चार दिन अन्त समय तक उनके स्वास्थ्य की कामना प्रभु से करता रहा। आपरेशन के बाद पहिला दिन ठीक बीता, परतु रात्रि को उनकी हालत गम्भीर हो गई। पैर ठडे हो गए, ब्लडप्रेसर गिरने लगा। डाक्टरो को सूचित किया गया, वे आए और विचार परामश के बाद पैरो के पास टाग मे फस्त खोलकर खून दिया गया। उस समय वाड के एक कोने मे एक अन्य मरीज की हालत मरणात्मन हो रही थी। नस बार बार डाक्टर को उसे तनिक देखने के लिए कह रही थी, पर डाक्टर

इन्हे अटे ड कर रह थे । वे नही गए और पात्र मिनट प्रा नम ने आकर कहा—
'वह मरीज मर गया डाक्टर ।'

डाक्टर ने कहा—'उम करना था । भगी मरना उसे बरामदे म ल जाय
और मुदाखाना भज दे ।'

सुनकर मन म भय व्याप गया । एक मनमम वातावरण प्राड म प्रतीत होने
लगा । रात भर उपचार चलन रहे । बहुत प्रयत्न प्रा जाद उनका व्यापार ठीक
गति पर आया और चिंता टली । रात्रि यनीत हुई और पभात का उदय हुआ ।
उस दिन रविवार था । रविवार का मन मरीजा तो प्राड म रा प्राटर निकाल कर
सारे हाल की धुलाई सफाई होती है । सो मव मरीजा को विस्तर छोडकर बाहर कर
दिया गया, जो विस्तर नही छोड सकते थे, उ प्रा पलग सहित बाहर बरामदे मे कर
दिया गया । उन्होंने इनका पतग भी प्रा से हानेको प्रा, पर मने उन्हें इस प्रिशिष्ट
केस की गम्भीरता की, उनके व्यक्तित्व की दुहाई दी हृज्जत की, त प्रा वही उ हाने उसे
वही रहने दिया । परंतु भगी ठडे पानी मे पक्ष प्रो रहा था । हलचल और ठडे पानी
के छीटे उन पर पड रहे थे । बहुत रोकने पर वे मुझे भी मन्नाते थे । फल यह हुआ
कि इ हे ठडे तगने लगी, शरीर काँपने लगा । खूब प्री दोनो प्रोतले जो सिरहाने स्टेड
पर टगी हुई थी, रबड की नली सहित हिलने लगी । डाक्टरको बुलाया तो एक कम्बल
और डाल दिया गया, उससे भी काम न प्रना तो तीमरा कम्बल और उढा दिया गया ।
पर सरदी की कपकपी बढ नही हुई । दात वज रहे थे । यह प्रात काल ९ बजे का
समय था । दसमी समय शाहदरे से भाभी जी प्रा पहुँची । पर तु नम ने उ हे डाट कर
द्वार पर ही रोक दिया । उनसे थोडी ही दूर पर उनके पति पलग पर पडे मृत्यु से
युद्ध कर रहे थे । पर अस्पताल के नियम जो थे, पत्नी अन्दर नही प्रा सकती थी । मेरी
दृष्टि उनके आकुल व्याकुल मुख पर पडी । मने डाक्टर से कहा—'इ ह गाने दीजिए,
नस नही आने दे रही है । डाक्टरने उनकी और देगा—पत्नी के ददका महसूस किया
और उ हे अन्दर गाने का इशारा किया । वे प्रा मे दूने पत्ने की भाति आकर पति के
सिरहाने पहुँच गई । सिरपर हाथ फरा, तवियन प्रू श्री । पतिने तेजासे टीन होनेका सकेत
किया । पर मेरा सूना मह और भरो आख दरफर भाभीजी ने फिन्तित दृष्टि से मेरी
और देखा । गुड देर बाद उ हे एक आर ले जावर मने कहा—'ईश्वर को ध यवाद
दो, रात को पुनज म हुआ है । पर इस समय उनके सामा रोना नही, दित कमजोर
बनाना नही ।' कहकर मै फिर डाक्टर मे कपकपी के उपचार के लिए प्राथना करने
लगा । अत मे दो घटे बाद कपकपी बढ हुई । भाभी जी को केवल प्रा ह बीस मिनट
ही वहाँ रहने दिया गया, फिर बाहर कर दिया । अस्पताल का नियम शाम को चार
मे पाच बजे तक मिलने आने का था । सो वे दस बजे से शाम के चार बजे तक बाहर

घास में भूखी प्यासी चिन्तित आशुन व्याकुल मन से बैठी रही। चार बजे जब ग्राइ तो जैसे उनके प्राण हर हो गए। वे पति के चरणों को पकड़ कर बैठ गई। तबियत उनकी ठीक क्या थी, चुपचाप आखे बंद किए आपरेशन की पीड़ा को, घावके दद को, आर रक्त प्रवेश के लिए बाह और टांग में घुसाई हुई दो दो सुइयों की वेदना को अद्भुत साहस से सहन कर रहे थे। हिलडुल नहीं सकते थे, करवट नहीं ले सकते थे। किसी भी प्रश्न का उत्तर देना उनके लिए सबथा कठिन था। न कुछ वस्तु ही मागते थे। हम ही थोड़ी थोड़ी देर में उनमें कभी दूध कभी पानी कभी ग्लूकोज दाने के लिए पूछते और यदि उन्हें हमारे प्रश्न का बोध होता तो वे जरा सा सिर हिलाकर स्वीकृति या अस्वीकृति दे देते थे। पत्नी का रूखा मुह देखकर उ होने बड़े श्रमसे क्षीण वाणी में पूछा—‘खाना खाया?’

‘नहीं।’

‘पहले खाना खा।’

‘कैसे खाऊँ?’

वे चुपचाप पत्नी की ओर देखते रहे। यह दृष्टि विचित्र थी। पत्नी ने तुरंत ही अपनी भूल समझ ली। बोली—‘यहाँ से जाते ही खा लूंगी, आप दुखी न हो। खाऊँगी नहीं तो क्या करूँगी।’

सुनकर उन्होंने फिर नेत्र मूद लिए।

इसी समय उन्हें बड़े वेग से वमन हुई। लाल लाल काला काला तरल गाढ़ा पदार्थ अन्दरसे निकला। सब कपड़े सन गए। वस्त्र बदलने में नर्सों ने तनिक भी कोमलता या दया नहीं की। उनके वस्त्र बदले गए, जिसमें उन्हें बहुत हिलना और कष्ट सहना पड़ा।

मुलाकात का एक घंटा समाप्त होगया। पांच बजे वाड की घटी बज उठी और भाभीजी को विवश पति से अलग होना पड़ा। रात गहरी होती चली गई। वाड की इन्चाज मेट्रन, डाक्टर और नर्सों की ड्यूटी बदलती गई। नर्सों की बदली से तो नहीं, परंतु डाक्टर की बदली के कारण ऐसे गम्भीर केस में बहुत कठिनाई होती थी। केस की प्रकृति समझने में समय लगता था। मैं उन बहुमूल्य प्राणों का मूल्य समझता था और मेरे रोम रोम में उनकी जीवन याचना बसी हुई थी, इसलिए मैं न दिन में सोता था, न रात में। सिरहाने बैठा उन्हें ग्लूकोज देता, ढारस बघाना, और उनकी कष्ट सहिष्णुता को देखता रहता था। रात भी बीत गई, दिन निकल आया। आज सोमवार था और पहली फरवरी। दिन भर साधारण गति से बीत गया। तीस जनवरी को जो डाक्टरों की अधिक और तत्पर अटेन्डेन्स थी, वसी आज नहीं थी। वाड में इस बीच एक मृत्यु और हो गई। मन शकाओ से भर उठा। रात आई। नर्सों और

डाक्टरों की बदली हुई। रात के दस बजे नए डाक्टर आए। उन्होंने बारी बारी स प्रत्येक मरीज को देखा। प्राणियों पर उन्हें भी ऐसा और देखकर रहा—ओ० के०।

मैंने कहा—‘डाक्टर, तबियत सुगर नहीं रही है।’

‘क्या तुम डाक्टर हो?’

मैं खीझकर चुप हो गया। बारह बजे, एक प्रजा। उनकी बराहना और छटपटा हट बढ़ती गई। श्वास गति भी बिगड़ती लीखी। उपकाद और हल्की प्रमन आती रही। डाक्टर को गुला कर मैंने दिखाया। देखकर बान—‘सो जाऊँ मिस्टर शास्त्री।’

उ होने क्षीण स्वर में कहा—‘नीद नहीं आती।’

डाक्टर नस से सोने का इजेक्शन लगाने को कहकर चले गए। नस में इजेक्शन लगा दिया, पर नीद नहीं आई। फिर डाक्टर को बुनाया गया, उसने एक और इजेक्शन मोने का लगा दिया और यह कह कर कि ‘सो जाऊँ मिस्टर शास्त्री’ फिर चले गए। नीद फिर भी नहीं आई। डाक्टर को फिर बुनाया। उसने तीसरा इजेक्शन सोने का लगाया। इस समय रात के २॥ बजे थे। वाउ में और भी कुछ मरीज कष्ट से कराह रहे थे। डाक्टर ने उन सबसे आज्ञाभरे स्वर में कहा—‘चुपचाप सो जाओ भाई।’ और वह वाड की बत्तिया बंद करके अंधेरा करके चले गये। मैंने कहा—‘इनकी तबियत बहुत खराब है, बत्ती बंद मत कीजिए। अंधेरे में इनको देखना ही कठिन हो जायगा।’

‘अंधेरा होनेसे सबको नीद आयगी। आप भी सोऊँ मिस्टर। बार बार परेशान क्या करते हैं।’

वे मेरा उत्तर सुनने लिए रुके नहीं, चले गए। अंधेरे में उनकी कराह मैं सुन रहा था। दूर पर कुछ और मरीजों की भी कराह मेरे कानों में पड़ रही थी। कुछ देर बाद मैंने वाड में अपने पास वाली बत्ती जला दी। उजाला देखकर नर्स अपने कमरे से निकल आई और बोली—‘डाक्टर मना कर गए हैं।’ वह बत्ती बंद करके चली गई। निह पाय शेष रात्रि उसी अधकार में व्यतीत हुई। प्रभात हुआ। सात बजे और ड्यूटी बदल कर नए लोग आए। नर्सों ने आकर सब मरीजों के मुह में थर्मामीटर लगाकर टेम्प्रेचर लेना और नब्ज देखकर नाडी की गति रोगी चाट पर निगमना शुरू किया। कपड़े बदलने वाली नर्सें मरीजों के वस्त्र और पताग की चादरे बदलने लगी। उनके पास भी एक नस पलग की चादर और वस्त्र बदलने आई, पर मैंने उसे यह कहकर राक दिया कि इहे तक भी डेडना खतरनाक है। वह चली गई। उस हचल और वात्तिलाप से मानो उनकी तत्रा भग हुई। उ होने क्षीण स्वर में मुझसे पूछा—‘दिन क्या?’

‘मगल है।’

‘टाइम?’

‘साढे मात बजे हे?’

‘दूध आया ?’

‘जी हा ।’

‘आधा प्याला बढिया कॉफी बनाओ ।’

‘अच्छा, अभी बनाता हूँ ।’

‘वे आइ ?’

सकेत पत्नी से था । मेने कहा—‘नौ बजे तक आयेगी ।’

‘तुम सब मिलकर प्रेम से एकत्र रहना, लडना नही ।’ उनकी काफी पीने की इच्छा जानकर जो प्रसन्नता और सात्वता मन म हुई थी वह यह वाक्य सुनकर उडे गई । सुनकर मैं काफी बनाने के लिए जाता जाता रुक गया ।

उहोने फिर कहा—‘मुन्ना को खूब पढाना, योग्य लडका ढूढकर व्याह करना ।’ शब्द अत्यन्त क्षीण थे किन्तु मेरे हृदय की मानो गति ही रुक गई । मेने उनके सिर पर बालो मे प्यार से हाथ फेर कर कहा—‘आप अच्छे हो जायेगे, ऐसा क्यों कहते है ।’ पर आखे मेरी भर आई और वाणी अवरुद्ध हा गई । कुछ ठहर कर आखे मदे ही मूदे उहोने प्रश्न किया—‘काफी बन गई ?’

‘अभी लाया ।’ कहकर मैं कॉफी बनाने चला गया । मैंने बिजली के हीटर से गरम पानी लिया, काफी डाली और दूध गरमाया । ग्लूकोज मिलाकर प्यालेमे ले आया । बडे यत्नसे दो तीन चम्मच ही पी सके, सास मे तकलीफ होने लगी । मैंने शकित होकर उनकी चेष्टाओ को देखा । सास धीमी होती जा रही थी, आखे पथराने लगी थी । मेने सामने जाती हुई बडी नस को पुकारा । वह आकर खडो होगई और स्वास गति को देखकर उसने कहा—‘शाम तक तो अच्छे थे, अब यह क्या हुआ ?’

इम प्रश्न का मर्म और उनके अन्तिम आदेशो का अर्थ मेरे मस्तिष्क मे घूम गया । मैंने प्राथना के स्वर मे नस से कहा—‘डाक्टर को जल्दी बुलाइए ।’

वह तेज कदमो से डाक्टर को बुलाने चली गई । मैं लपककर मेट के कमरे मे टेलीफोन करने गया और शाहदरा भाभीजी को फोन किया कि तुरत आएँ । एक फोन मेने चीफ मैडीकल आफिसर के बगले पर भी उहे शीघ्र आने के लिए किया । डाक्टर युद्धवीरसिंह को भी फोन किया ।

१० १२ मील दूर शाहदरे से भाभीजी आधा घण्टा मे ही अस्पताल पहुँच गई, परन्तु मैडीकल आफिसर दो घण्टे बाद आए । इस बीच मे अटेंडिंग डाक्टर ने आकर उहे देखा । अब वह निश्चित रूप से मृत्यु मुख मे जा रहे थे । डाक्टर ने इन्जेक्शन लगाए और भी कसल्टेशन हुआ, परन्तु कुछ लाभ नही हुआ । सूत्र नली से खून भी निकल रहा था । कपडे खूनमे सन गए थे । स्टाफ नस को जब यह ज्ञात हुआ कि मैडीकल आफिसर उन्हे देखने आ रहे है, तब उसने शीघ्रता से आकर उनके वस्त्र बदले । इस समय वे

डाक्टरों की बदली हुई। रात के तम बजे नए डाक्टर आए। उन्होंने बारी बारी स प्रत्येक मरीज को देखा। बारी बारी पर उन्हें भी दया और देखभाल कहा—ओ० के०।

मैंने कहा—‘डाक्टर, तबियत सुधर नहीं रही है।’

‘क्या तुम डाक्टर हो?’

मैं खीझकर चुप हो गया। बारह बजे एक प्रजा। उनकी कराहना और छटपटा हट बढ़ती गई। श्वास गति भी बिगड़ती दीखी। उपकाश और हल्की प्रमन आती रही। डाक्टर को बुला कर मैंने दिखाया। देखकर बोले—‘सो जाइए मिस्टर शास्त्री।’

उ होने क्षीण स्वर में कहा—‘नीद नहीं आती।’

डाक्टर नस से सोने का इजेक्शन लगाने का कहकर चले गए। तम ने इजेक्शन लगा दिया, पर नीद नहीं आई। फिर डाक्टर को बुलाया गया, उसने एक और इजेक्शन सोने का लगा दिया और यह कह कर कि ‘सो जाइए मिस्टर शास्त्री’ फिर चले गए। नीद फिर भी नहीं आई। डाक्टर को फिर बुलाया। उसने तीसरा इजेक्शन सोने का लगाया। इस समय रात के २॥ बजे थे। वाड म और भी कुछ मरीज कष्ट से कराह रहे थे। डाक्टर ने उन सबसे आशाभरे स्वर में कहा—‘चुपचाप सो जाओ भाई।’ और वह वाड की बत्तिया बंद करके अंधेरा करके चले गये। मैंने कहा—‘इनकी तबियत बहुत खराब है, बत्ती बंद मत कीजिए। अंधेरे में इनको देखना ही कठिन हो जायगा।’

‘अबेरा होनेसे सबको नीद आयगी। आप भी सोइए मिस्टर। बार बार परेशान क्यों करते हैं।’

वे मेरा उत्तर सुनने लिए रुके नहीं, चले गए। अंधेरे में उनकी कराह मैं सुन रहा था। दूर पर कुछ और मरीजों की भी कराह मेरे कानों में पड़ रही थी। कुछ देर बाद मैंने वाड में अपने पास वाली बत्ती जला दी। उजाला देखकर तम अपने कमरे से निकल आई और बोली—‘डाक्टर मना कर गए हैं।’ वह बत्ती बन्द करके चली गई। निह पाय शेष रात्रि उसी अधकार में व्यतीत हुई। प्रभात हुआ। सात बजे और झूठी बदल कर नए लोग आए। नर्सों ने आकर सब मरीजों के मह म थर्मामीटर लगाकर टेम्प्रेचर लेना और नब्ज देखकर ताप की गति रोगी-चाट पर लिखना शुरू किया। कपडे बदलने वाली नर्सों मरीजों के वस्त्र और पलंग की चादरे बदलने लगी। उनके पास भी एक नस पलंग की चादर और वस्त्र बदलने आई, पर मैंने उसे यह कह कर रोक दिया कि इहे तक भी छेड़ना खतरनाक है। वह चली गई। उस हलचल और वार्त्तालाप से मानो उनकी तन्ना भंग हुई। उ होने क्षीण स्वर में मुझसे पूछा—‘दिन क्या?’

‘मगल है।’

‘टाइम?’

‘साढे सात बजे हैं?’

‘दूध आया ?’

‘जी हा ।’

‘आवा प्याला बढिया काँफी बनाओ ।’

‘अच्छा, अभी बनाता हूँ ।’

‘वे आइ ?’

सकेत पत्नी से था । मैंने कहा—‘नौ बजे तक आयेगी ।’

‘तुम सब मिलकर प्रेम से एकत्र रहना, लडना नहीं ।’ उनकी काफी पीने की इच्छा जानकर जो प्रसन्नता और सा त्वना मन म हुई थी वह यह वाक्य सुनकर उड़ गई । सुनकर मैं काँफी बनाने के लिए जाता जाता रुक गया ।

उन्होंने फिर कहा—‘मुन्ना को खूब पढाना, योग्य लडका ढूँढकर व्याह करना ।’ शब्द अत्यन्त क्षीण थे कि तु मेरे हृदय की मानो गति ही रुक गई । मैंने उनके सिर पर बालो मे प्यार से हाथ फेर कर कहा—‘आप अच्छे हो जायेगे, ऐसा क्यों कहते है ।’ पर आखे मेरी भर आई और वाणी अवरुद्ध हाँ गई । कुछ ठहर कर आखे मदे ही मूदे उ होने प्रश्न किया—‘काफी बन गई ?’

‘अभी लाया ।’ कहकर मे काँफी बनाने चला गया । मैंने बिजली के हीटर से गरम पानी लिया, काफी डाली और दूध गरमाया । ग्लूकोज मिलाकर प्यालेमे ले आया । बडे यत्नसे दो तीन चम्मच ही पी सके, सास मे तकलीफ होने लगी । मैंने शक्ति होकर उनकी चेष्टाओ को देखा । सास धीमी होती जा रही थी, आखे पथराने लगी थी । मैंने सामने जाती हुई बडी नस को पुकारा । वह आकर खडी होगई और स्वास गति को देखकर उसने कहा—‘शाम तक तो अच्छे थे, अब यह क्या हुआ ?’

इम प्रश्न का मर्म और उनके अतिम आदेशो का अर्थ मेरे मस्तिष्क मे घूम गया । मैंने प्राथना के स्वर मे नस से कहा—‘डाक्टर को जल्दी बुलाइए ।’

वह तेज कदमो से डाक्टर को बुलाने चली गई । मैं लपककर मेट के कमरे मे टेलीफोन करने गया और शाहदरा भाभीजी को फोन किया कि तुरन्त आएँ । एक फोन मने चीफ मैडीकल ग्राफिसर के बगले पर भी उहे शीघ्र आने के लिए किया । डाक्टर युद्धवीरसिंह को भी फोन किया ।

१० १२ मील दूर शाहदरे से भाभीजी आवा घण्टा मे ही अस्पताल पहुँच गई, परन्तु मैडीकल ग्राफिसर दो घण्टे बाद आए । इस बीच मे अटेंडिंग डाक्टर ने आकर उ हे देखा । अब वह निश्चित रूप से मृत्यु मुख मे जा रह थे । डाक्टर ने इन्जेक्शन लगाए और भी कन्सल्टेशन हुआ, परन्तु कुछ लाभ नहीं हुआ । मूत्र नली से खून भी निकल रहा था । कपडे खूनमे सन गए थे । स्टाफ नस को जब यह ज्ञात हुआ कि मैडीकल ग्राफि सर उन्हें देखने आ रहे है, तब उसने शीघ्रता से आकर उनके वस्त्र बदले । इस समय वे

मज्जा में नहीं थे। साम में रक्तमण्ड पैसा तो गई थी, मन में घुम घुम शान्त होता था। उन्हें तनिक भी हिताना ठुलाना खतरनाक था। हमारे तब तब रातों पर भी मन ने उनको इधरसे उधर टिपाकर बन्धन और पलंगी चादर चन्चल कर ही रखा। उसमें उनकी स्वास गति और भी बिगड़ गई। भाभी प्रारणों में आसू भर गयीं अपने पति से प्रश्न कर रही थी, पर उत्तर एक का भी नहीं था। न सकत रा, न मुख म। उतक खुले नेत्र अवश्य उह देख रहे थे। उनकी वारणी क्रिया जा चुकी थी। मडीकल ग्राफिसर के साथ और भी डाक्टर आए थे, देगभाल कर उ हान एक नया अज्ञान तजरीज लिया। हाट की गति पल पल पर बिगड़ रही थी। परंतु गति बिगड़ने का कारण उनकी समझ में नहीं आ रहा था। नए इजेक्शन की दवा अस्पताल में नहीं थी, पुर्जा निखर बाजार से मगाने को कहा गया। मैं स्वयं दरियागत्र टक्की में जाकर वह दवा लाया, हाट कीमती थी। डाक्टरों ने यह इजेक्शन बहुत बड़ी आशा में लगाया, परंतु कोई परिणाम नहीं निकला।

प्रात सात बजे से दोपहर एक बजे तक वह मृत्यु से यथाशक्ति सघप करते रहे। बीच में कुछ चेतनाशक्ति सचय करके उन्होंने पत्नी से कहा 'मुत्रा'

बालिका मुन्नी अभी तक परपर शाहदर थी। तुरन्त आदमी भेजकर उसे अस्पताल बुलाया गया। उसके पहुँचने पर जब उस उनके सम्मुख किया गया, तब दैवीशक्ति ने उ हे प्रेरणा दी। उनका दाहिना हाथ पीर पीरे उठा और पुत्री के मस्तक पर लग गया। सिर पर हाथ फेग आर अट्ट टयार आगों में भरकर उसी और देखते रह। सभी इस करण हृदय को देखकर अपने अरुणग हो कठिनार्थ से रात रहे थे। पुत्री ने कहा—'पापा'। जब हृदयगति गत्यत क्षीण हो गयी तब दोपहर को एक बजे हृदय को जाचा गया। उसके बाद डाक्टरों ने सबको वहाँ भी न करने का अनु रोध किया। सब वहाँ से हट गए। एक्सरे मशीन लाकर हृदय का एक्सरे लिया गया। हृदय की खराबी जानना का यही एकमात्र उपाय था। एक्सरे तो पेटे गरु कम में जाने के लिए भेजदी गई। सब सम्भव उपचार जा तेजी से किए जा रहे थे, अब फोटो आने की प्रतीक्षा में शिथिल कर दिए गए।

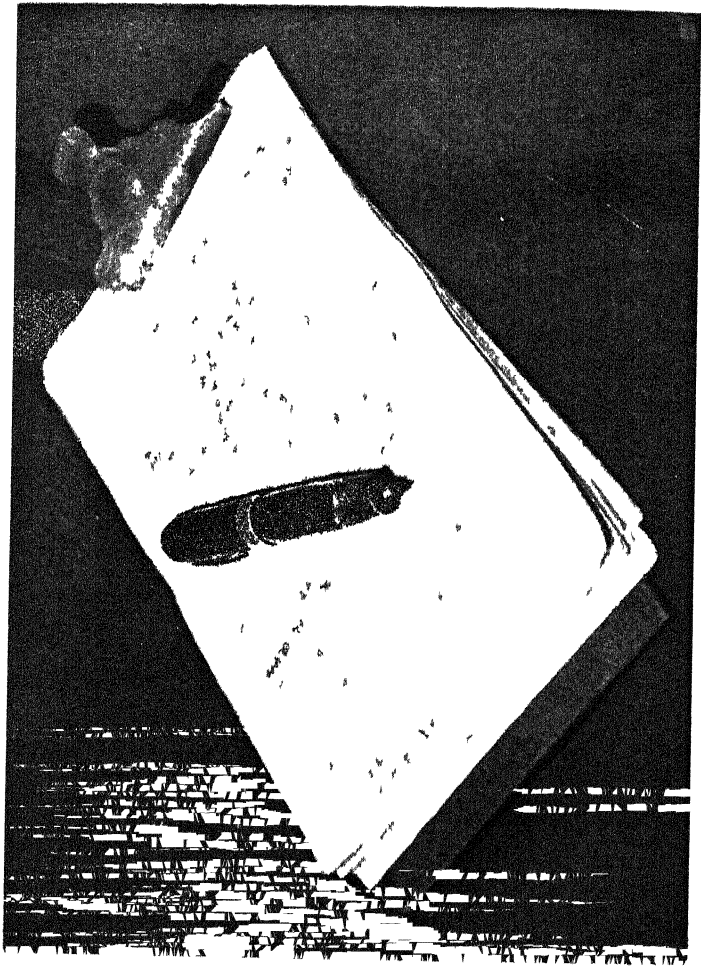
पर तु मानो वह दृढ चरणों से स्वर्गारोहण कर रहे थे। कोई मदना, कोई मष्ट, कोई अमुविद्या उ हे प्रतीत नहीं हो रहा थी। भाभी जी का क्या पूछना। वह एक टक अपने यशस्वी पतिके मुखको देपरही थी और भगवान से प्रार्थना कर रही थी। उ होने एक डाक्टर के चरण पकड कर आसू बहाते हुए प्रार्थना की—'उन्हें किसी प्रकार बचा लीजिए।' डाक्टर विचलित होकर चलदिए। उसी नाम से सबको नली उताकर हलक में उतार दी जाती थी और उसे अन्दर तक पहुँचा कर उसके बाहरी सिरे में पिचकारी लगाकर अन्दर का बलगम खींच कर बाहर निकाला जाता था। घटे आध घटे में यह



2826



2827



क्रिया की जाती थी। इस क्रिया में जब नली उनकी नाक में ठूसी जाती, तब उ हे बड़ा कष्ट होता था। अंतिम बार जब यह क्रिया की गई तो वह कष्ट से छटपटा गए। भाभी यह न देख सनी। उ होने डाक्टर से कहा—‘अब नली मत लगाइए, ये कभी सरसो का तेल भी सूघना बरदास्त नहीं कर सकते ये, इस नली का टूमा जाना कैसे बरदास्त करेंगे। इनकी कोमल प्रकृति पर भी तो विचार वीजिए।’ डाक्टर ने नली निकाल ली। परन्तु उनकी श्वासगति बहुत बिगडचुकी थी, अभी तक हाटकी एक्सरे भी बुलकर नहीं आई थी कि इसी समय डाक्टर युद्धवीरसिंह भी वहा आए। उहोने भी डाक्टरों से विशेष ध्यान देने को कहा। अत मे दोपहर के एक बजकर पतीस मिनट पर इस साहित्य मनीषी ने धीरे से अंतिम श्वास ली और भाभी चीख मारकर उनके वक्ष पर गिर पडी। अरविन अस्पताल के उस कक्षमें रुदन आर क्रादन का स्रोत वह चला।

विद्युत् वेग से यह दारुण समाचार शहर में फैल गया। आचार्यजी के बाल सखा और सबसे पुराने अन्यतम मित्र डाक्टर युद्धवीरसिंह और श्री जने द्रकुमार दीडे आए। सबकी आखे बरस रही थी। तीन का समय होते होते उनके दशन करने अनेक मित्र और सम्प्रन्धी आने लगे। श्री हमराज रहबार, बहुत उत्सुकता से उनका कुशलक्षेम पूछने और देखने आए थे, परन्तु वहा पर सब लोगो को अश्रुपूरित नीची गदन किए एकत्र देख और सबके बीच में ‘स्ट्रेचर’ पर कम्बल से ढके हुए आचार्य श्री का निश्चेष्ट दिव्य शरीर देखकर वह चीखकर रो पडे। जो आया वही इस अप्रत्याशित स्वर्गारोहण पर अवाक और स्तब्ध रह गया। आचार्य परिवार श्रीहीन होकर अनाथ बना खडा था। मन्ध्याह्नके रेडियो समाचारमें उनका मृत्यु समाचार सुना दिया गया था। दिल्ली में साहित्यिक बन्धु रेडियो के इस समाचार पर विश्वास नहीं कर सके। टलीफोन खडके और सब अपना अपना काम धधा छोडकर डरविन अस्पताल आने लगे।

हमने उनका शव अपने निवास स्थान शाहदरा लाने का प्रयत्न किया। अस्पतालसे निवास स्थान १० १२ मील दूर है, परन्तु चार घटे तक भी एम्बुलेन्स गाडी हमे नहीं मिली। दिन ढलने लगा था। इसी समय सब लोगो का ध्यान उनके शव की ओर गया। पिछले चार पाच घटो मे उनके शरीर में ८० ९० बार इजेक्शन लगाए गए थे। ओपवियो और क्लोरोफाम के विष का भी प्रभाव था कि शव का पेट फूलने लगा था। अत उहे शाहदरे लाने का विचार त्याग देना और वही से सीधे यमुना तट पर निगमबोव घाट ले जाकर तुरन्त शवदाह करने का निणय करना पडा। जिसके कारण दिल्ली के आसपास नगरो से आने वाले व्यक्तियो (जो अगले प्रात काल ज्ञानधाम पहुँचे) को उनके अन्तिम दशन करने और शवयात्रा में सम्मिलित होकर महान साहित्यकार के प्रति पुष्प श्रद्धाञ्जलि अर्पण करने से विवश बचित रह जाना पडा।

अन्त में हमने उन सब अश्रुपूरित जन समुदाय के साथ उनके शवयात्रा की

तयारी की। सृष्टि अस्त होने पर हम उन्हें यमुना तटपर निगमबोध घाट की ओर ले जा रहे थे। श्री अक्षयकुमार जन, मुकुटत्रिहारी वमा, जने द्र, गोपात्रप्रसाद व्यास प्रभृति साहित्य पुत्रों ने मौन भाव से उन्हें उस स्थान पर उतारा जहाँ उनके पचभूत शरीर को अग्नि भस्म करने वाली थी।

सब मित्र, सम्बन्धी और परिवार जना ने उनके चरणों में अतिम पुष्पमालाएँ चढ़ाई, प्रणाम किया और दशन किया। विता बनायी गया और उस पर उनका शरीर रख दिया गया। विप्रिका विधान अटल मानकर राते राते परिजनो ने उन्हें अग्नि देी और वेद मंत्रों के बीच अग्नि ज्वालाय तीव्रतर हाती गयी।

परिशिष्ट अंश

इस अंश में उस विशिष्ट सामग्री को प्रकाशित किया जा रहा है, जो उनके साहित्यिक जीवन से निकटतम सम्बंधित है। 'मेरी आत्म कहानी' को प्रकाशित करते समय 'चतुरसेन साहित्य समिति' द्वारा यह सामग्री अत्यंत खोज और कठिन श्रम से संग्रहीत की गई है।

अ—बालकाल की प्रारम्भिक रचनाएँ।

आ—१९१९-१९२५ के मध्यकाल की कविताएँ।

इ—राजनैतिक और साहित्यिक विचार।

ई—पत्र व्यवहार।

उ—रचनाओं की क्रम तिथि।

ऊ—साहित्य का प्रकाशन।

(सू १६१५ में आचायत्री ने पहिला उपन्यास 'अपराधी' लिखा । परतु यह उपन्यास प्रकाशित नहीं हुआ । लिखकर रखा रहा । अब खोजने पर इस उपन्यास की मूल पाण्डुलिपि में आरम्भ के ही कुछ पृष्ठ मिले, जिनमें कथानक नहीं है । इस कृति से लेखक की प्रारम्भिक शली का आभास होगा । पाण्डुलिपि के प्रथम पृष्ठ पर आरम्भ में लेखन समय दिया गया है—२४-६-१५, रात्रि १२ बजे)

अपराधी

प्रथम परिच्छेद

चादनी खूब मजे की चटक रही थी। समय बारह से कुछ ही अधिक होगा। जिला विजनौर के किसान छाटे से गाँव के उत्तर दिशा स्थित एक कच्चे घर में लगभग दस बारह आदमी किसी गुप्त मन्त्रणा में सलग्न थे। उनकी चेष्टा और चचलता से प्रकट होता था कि उ हे किसी की प्रतीक्षा है। बार बार वे चौकन्ने होकर खडके को देखते और फिर विचार में बैठ जाते। अन्त में एक ने कहा—

‘आदमी तो भरोसे का है न ?’

दूसरा—‘भरोसा क्या माने, मैंने उसे खूब पक्का कर लिया है।’

पहला—‘तब तो वह आवेगा ही, धोखा नहीं हो सकता।’

दूसरा—‘धोखा ? वाह ! धोखे की एक ही कही, वह आवेगा और अवश्य आवेगा। पर एक बात हे बूटासिंह ! म तुमसे पहले ही कहे देता हूँ, वह बडा सीधा-सच्चा आदमी है, बेचारा गरीबी और कज में पिस रहा है। लाचार हो हमारे काम को हामी भरी हे, एक लोभ पर, देखना ऐसी कोई बात न निकालना कि उछल जाय, क्योंकि चिडिया अनमोल है, निकली कि बस निकली है। यह अच्छी तरह समझ लेना।’

बूटा—‘तुमने क्या मुझे घोषाबसन्त समझ रखा है। १७ वष इसी काम में निकाले हे, ये बाल धूप में नहीं सफेद किए, मुझे क्या इतनी भी समझ नहीं है ? तुम खानिर जमा रखो केसरीसिंह !’

बूटा इतना ही कह पाया था कि टड्डा ने उन्हे रोक कर कहा—‘सुनो सुनो, देखो किवाड पर किसी ने थपकी दी है।’ सब कान लगा उबर ही को देखने तगे। अब फिर थपकी सुनकर टड्डा खुद किवाड खोलने गया। आगतुक वही था जिसकी प्रतीक्षा कर रहे थे। पाठको को इसका विशेष परिचय तो आगे मिलेगा, पर यहा इतना कहे देते हे, यह एक गठीला बलिष्ठ जवान था, पर मुख पर सादगी और नेत्रों में मूखता भापने वाली से छिपी नहीं थी। किवाड खुलते ही उसने कहा—‘केसरी हे न ?’

‘हा है, भीतर आओ ।’ इतना कह उमे भीतरकर टडुाने द्वार बन्द कर दिया । आग तुक कुछ घबराया सा था, वह बहुत ही धीरे धीरे किभकता सा आगे बढ़ रहा था, उसने मशक वित्त दबी जवान मे पूछा—‘और कौन कौन है वहा ?’

‘सब अपने ही आदमी है, चिंता की कोई बात नहीं है ।’ इतना कहकर टडुा उसे मण्डली मे ले आया । उसे देखते ही सब जोन उठे—‘यह लो ये आ गए ।’

केसरी ने कहा—‘मैने कहा था न कि कभी न रुकगे ।’

बूटासिंह ने हाथ बटा कर कहा — इतर आजाआ दोस्त ।

आगतुक अभी घबरा रहा था । उमका दिल बडक रहा था । टम मण्डली मे उमका प्रथम प्रवेश है यह स्पष्ट दीख पडता था । उस अपरिचित मण्डली मे केसरीसिंह ही उसका परिचित था, उमी को तक्ष्य करके और किसी और न देखकर उसने कहा—‘केसरी ! अब तो मै जाता हू तुम कल दिन मे आकर सब ठीक कर जाना, न हो तो मुझे ही बुला भेजना ।’

केसरी ने उठकर उमका हाथ पकड कर दिलासा देते हुए कहा—‘क्या उन दोस्तो से कुछ पर्दा है । ये सब बहादुर एक कालिब दो जान है । एक बार दोस्ती का दम भरने पर मरते दम तक निबाहने वाले हैं । इनकी बोटी बोटी काट दो पर दोस्त के खिलाफ जवान न हिलाएँगे । इनके चमडे की जूती बनाओ, ये उच्च न करेगे । यह देखो यही सर्दार बूटासिंह हैं, जिनकी बहादुरी का सिक्का जिले भर मे है । (बूटासिंह से) और सरदार जी, यही मेरे दोस्त बनारसीदाम है ।’

बूटासिंह—‘अच्छा, जिनकी आपने मल तारीफ की थी, सचमुच बडे बहादुर, सच्चे और मिलनसार मालूम होते है । आओ दोस्त, एक बार मिलो तो ।’ इतना कह कर बूटासिंह ने खडे होकर आगतुक को छाती से लगा लिया, फिर बूटा ने हाथ पकड कर पास बैठकर कहा—‘ये केसरीसिंह मेरे जिगरी दास्त है, इन्हे मैं अपना दाहिना हाथ समभता हूँ । जब से इन्हाने तुम्हारी तारीफ करी मुझे मिलने का शौक हो गया था । और जब से इ होने तुम्हारी गरीबी, कज और बड्ज्जती की बात कही, तब से तो बस मिलने को दिल उमटा पडता था । भला ऐसा बहादुर जवान गुलामी के टुकडे खावे ? बडे अफसोस की बात है गोपाल ! देगो तो कसा बदन है, रुसा मिजाज है, जैसा सुना उससे ज्यादा पाया ।’

गोपाल—‘उममे क्या शक है, बडे ग्यानदान के है । त्रेचारे विगड गए, मजबूरन गुलामी करनी पडी । नहीं तो इनगी नोग गुलामी करते ।’

बूटासिंह ने बात काटकर कहा—‘अजी तुम्ह खबर नहीं । इन्ही लोगो ने इनका खानदान बर्बाद किया है जिनकी सामने हवेली चमक रही है । ये साले किसके टुकडो से पले थे । एक दिन था कि इनके बाबा इ हे चने बाँटा करते थे, पर छल छिद्र, दगा

फरेब से सब छीन लिया, अब भलेमानस बनकर साह बने बैठे है ।’

गोपाल— तो अब उनके दिन भी पूरे हुए समझो, भगवान भी देखता है । जिमकी माया उसीको साजे । जिसे बर्बाद किया है, उसीसे बर्बाद होंगे भी । क्योंकि बबूल बोन से काटा ही हाथ आता है ।’

बूटा— पेशक ! डमीलिए हमने इ हे अपने साथ लिया है । पर आप लो गो को मेरी एक बात माननी होगी, इस मामले मे इ हे दूना हिस्सा मिलना चाहिए ।’

केसरी—‘हा इसकी मैं भी ताईद करता हूँ, कि इनका हक भी है ।’

बूटा—‘आप कहे चाहे न कहे । बूटा कभी दोस्तो मे बहक बात नहीं कहता, बेवकूफ साले हमे डाकू लुटेरा कहते है, पर कोई सोचे तो कि लुटेरे वे है जो पराया हडप लेते हैं और डकार भी नहीं लेते, न कि हम जो एक गरीब दोस्त को, जिसकी गिरस्ती डगमगा रही है उसका हक दिलाते है ।’

आग तुक अब तक चुपचाप बैठा सक्की बाते मुन रहा था । उमकी अजीब दशा थी । वह कभी भय से काँप उठता, कभी लोभमे फँस जाता, कभी हिम्मत बावता और कभी भागनेको छटपटाता । अब इतनी बाते सुनकर उसे भी साहस हुआ । उसने नम्रता से कहा—‘मगर मेरा दिल तो कहता है इन भगडो मे पडना अच्छा नहीं । जिस तरह कटती है कटने दे, भगवान की मरजी होती तो सभी क्यो जाता ।’

बूटासिंह ने हँसकर केसरीसिंह से कहा— देखा केसरीसिंह ! कसा भला आदमी है, कैसा सतोषी है, अगर इसको हम मदद न दे सके तो लानत है हमारी दोस्ती को ।’

केसरीसिंह—‘सचमुच मुझे तो बेचारे के बच्चो की याद करके रोना आता है । तन पर चीथडे नहीं, बेचारा छ रुपए कमाता है, करे भी तो क्या करे । बनवारीलाल, देखो भाई भगवान सबके दिन फेरता है । अब तुम्हारी भी बारी है, भगवान ने चाहा तो बारे के न्यारे हो जावेगे ।’

आग तुक ने हडबडा कर कहा—‘पर मुझसे सब होगा कैसे ? मेरा तो अन्दर से कलेजा धडक रहा है ।’

केसरी ने बात काटकर कहा—‘देखो भाई, जिन खोजा तिन पाइया गहरे पानी पैठ । बिना रोये तो मा भी दूब नहीं पिलाती । जब भाग्योदय के सब सामान जुट गए हे तो अपनी बुजदिली से सब चौपट मत करो । डर क्या है, हम सब है ही और तुम्हे तो ज्यादा काम भी न करना पडेगा, खतरे का काम तो हमारा ही हे । तुम्हारा काम तो बालको सा सीवा है और हिस्सा दूना । देखते हो सरदार कितने महरबान है ?’

बनवारी ने नम्रता से कहा—‘सरदारजी की कृपा है । अच्छा तो मुझे क्या करना होगा यह तो कहो ?’

केसरी—‘अधिक कुछ नहीं । ठीक बारह वजे किवाड खोल देना, रोकड का

‘हा है, भीतर आओ ।’ इतना कह उमे भीतरकर टड्डाने द्वार बंद कर दिया ।
 आग तुक कुछ घबराया सा था, वह बहुत ही धीरे-धीरे भिन्नकता सा आगे बढ़
 रहा था, उसने सशक्त चित्त दबी जवान से पूछा—‘और कौन कौन है वहा ?’

‘सब अपने ही आदमी है, चिंता की कोई बात नहीं है ।’ इतना कहकर टड्डा
 उसे मण्डली में ले आया । उसे देखते ही सब बोन उठे—‘यह लो ये आ गए ।’

केसरी ने कहा—‘मैंने कहा था न कि कभी न रुकगे ।’

बूटासिंह ने हाथ बढ़ा कर कहा—‘इस आजाओ दोस्त ।’

आगतुक अभी पत्ररा रहा था । उसका दिल बडन रहा था । उस मण्डली में
 उसका प्रथम प्रवेश है यह स्पष्ट दीख पडता था । उस अपरिचित मण्डली में केसरीसिंह
 ही उसका परिचित था उमी को लक्ष्य करके और किसी और न देखकर उसने कहा—
 ‘केसरी ! अब तो मैं जाता हूँ तुम कल दिन में आकर सब ठीक कर जाना, न हो तो
 मुझे ही गुला भेजना ।’

केसरी ने उठकर उसका हाथ पकड कर दिलासा देने हुए कहा—‘क्या इन दोस्तों
 से कुछ पर्दा है । ये सब बहादुर एक कालिब दो जान है । एक बार दोस्ती का दम
 भरने पर मरते दम तक निबाहने वाले है । इनकी बोटी बोटी काट दो पर दोस्त के
 खिलाफ जवान न हिलाएँगे । इनके चमडे की जूती बनाओ, ये उच्च न करेगे । यह देखो
 यही सर्दार बूटासिंह हैं, जिनकी बहादुरी का मिक्का जिले भर मे है । (बूटासिंह से) और
 सरदार जी, यही मेरे दोस्त बनारसीदास है ।’

बूटासिंह—‘अच्छा, जिनकी आपने उल तारीफ की थी, सचमुच बडे बहादुर,
 सच्चे और मिलनसार मालूम होते है । आओ दोस्त, एक बार मिलो तो ।’ इतना कह
 कर बूटासिंह ने खडे होकर आग तुक को छाती से लगा लिया, फिर बूटा ने हाथ पकड
 कर पास बैठकर कहा—‘ये केसरीसिंह मेरे जिगरी दाम्त है, इन्हें मैं अपना दाहिना हाथ
 समझता हूँ । जब से इन्होंने तुम्हारी तारोफ करी मुझे मिलने का शौक हो गया था ।
 और जब से इन्होंने तुम्हारी गरीबी, रुज और वड्ज्जती की बात कही, तब स तो बस
 मिलने को दिल उमडा पडता था । भला ऐसा बहादुर जवान गुलामी के टुकडे खावे ?
 बडे अफसोस की बात है गोपाल ! देखो तो कसा बदन है कसा मिजाज है, जैसा सुना
 उससे ज्यादा पाया ।’

गोपाल—‘उसमे क्या शक है, बडे गानदान के हैं । प्रेचारे बिगड गए, मजबूरन
 गुलामी करनी पडी । नहीं तो इनकी नाग गुलामी करते ।’

बूटासिंह ने बात काटकर कहा—‘अजी तुम्हें खबर नहीं । इन्हीं लोगो ने इनका
 खानदान बर्बाद किया है जिनकी सामने हवेली चमक रही है । ये साले किसके टुकडो से
 पले थे । एक दिन था कि इनके बाबा इह चन बाँटा करते थे, पर उल छिद्र, दगा

फरेब से सब छीन लिया, अब भलेमानस बनकर साह्र बने बैठे है ।’

गोपाल— तो अब उनके दिन भी पूरे हुए समझो, भगवान भी देखता है । जिसकी माया उसीको साजे । जिसे बर्बाद किया है, उसीसे बर्बाद होंगे भी । क्योंकि बबूल बोने से काटा ही हाथ आता है ।’

बूटा— वेशक ! इमीलिए हमने इहे अपने साथ लिया है । पर आप लोगो को मेरी एक बात माननी होगी, इस मामले मे इ हे दूना हिस्सा मिलना चाहिए ।’

केसरी—‘हा इसकी मैं भी ताईद करता हूँ, कि इनका हक भी है ।’

बूटा—‘आप कहे चाहे न कहे । बूटा कभी दोस्तो मे बेहक बात नहीं कहता, बेवकूफ साले हमे डाकू लुटेरा कहते है, पर कोई सोचे तो कि लुटेरे वे है जो पराया हडप लेते हैं और डकार भी नहीं लेते, न कि हम जो एक गरीब दोस्त को, जिसकी गिरस्ती ँगमगा रही है उसका हक दिलाते है ।’

आग तुक अब तक चुपचाप बठा सबकी बाते सुन रहा था । उसकी अजीब दशा थी । वह कभी भय से काप उठता, कभी लोभमे फँस जाता, कभी हिम्मत बावता और कभी भागनेको छुटपटाता । अब इतनी बाते सुनकर उसे भी साहस हुआ । उसने नम्रता से कहा—‘मगर मेरा दिल तो कहता है इन भगडो मे पडना अच्छा नहीं । जिस तरह कटती है कटने दे, भगवान की मरजी होती तो सभी क्यो जाता ।’

बूटासिंह ने हँसकर केसरीसिंह से कहा— देखा केसरीसिंह ! कैसा भला आदमी है, कैसा सन्तोषी है, अगर इसको हम मदद न दे सके तो लानत है हमारी दोस्ती को ।’

केसरीसिंह—‘सचमुच मुझे तो बेचारे के बच्चो की याद करके रोना आता है । तन पर चीथडे नहीं, बेचारा छ रूपए कमाता है, करे भी तो क्या करे । बनवारीलाल, देखो भाई भगवान सबके दिन फेरता है । अब तुम्हारी भी बारी है, भगवान ने चाहा तो बारे के न्यारे हो जावेगे ।’

आग तुक ने हडबडा कर कहा—‘पर मुझसे सब होगा कैसे ? मेरा तो अन्दर से कलेजा घडक रहा है ।’

केसरी ने बात काटकर कहा—‘देखो भाई, जिन खोजा तिन पाइया गहरे पानी पठ । बिना रोये तो मा भी दूध नहीं पिलाती । जब भाग्योदय के सब सामान जुट गए हे तो अपनी बुजदिली से सब चौपट मत करो । डर क्या है, हम सब है ही और तुम्हे तो ज्यादा काम भी न करना पडेगा, खतरे का काम तो हमारा ही हे । तुम्हारा काम तो बालको सा सीधा है और हिस्सा दूना । देखते हो सरदार कितने महरबान हैं ?’

बनवारी ने नम्रता से कहा—‘सरदारजी की कृपा है । अच्छा तो मुझे क्या करना होगा यह तो कहो ?’

केसरी—‘अधिक कुछ नहीं । ठीक बारह वजे किवाड खोल देना, रोकड का

ओर सेठ कहा मोते ह उमरा पना बताता । मत्र चाभी नजर म रखना बम ।'

बनवारी ने कुछ सोच कर कहा - 'बात तो कुछ नहीं पर मे पुराना नौकर हू, कसे कपट करू । नमत्र गाया हे, नमत्रहगामी भी तो होगी ।'

अब केसरी ने जोर म हँसकर कहा - 'नमत्रहगामी की पत्र ही नहीं । क्या वह त्र रूपण मं दम रूपण का नाम नहीं लगता हे ?'

'काम अजी काम का म्या रहना ह दिन भर माल के मत्र की तरह पिसता हूँ । दूसरा होता तो मत्र का रस्मा तुडा भागा होता, म ही हूँ जो जम रहा हू ।'

केसरी—'तो फिर ? मकर तुम उमरा गाते हो या मत्र तुम्हारा । अरे भाई जो घर बैठे तनखा देता तो बैसी बात कही जा सकती थी ।'

बनवारी—'ठीक कहते हो । मत्र पर मों सीने मह बात नहीं करता, जसे मे आदमी ही नहीं हूँ ।'

केसरी—'म तो । तुम्ही जानो । तुम्ही हो जो यह मत्र सह रहे हो । सच जानो मै होता तो मत्र तरु कब का जह नुम म्गीद करता ।'

बनवारी—'पर भाई करे क्या । गरीब आदमी । म्रिना खाण तो एक दिन भी नहीं चले । तुम जानो गुलामी तो गुलामी ही है ।'

केसरी—'मस कल मे तोड दो गुलामी मी फामी ।'

बनवारी—'अच्छी बात है । पर एक बात हे, मै भी साथ ही भागूंगा क्योंकि पीछे बिना जान मारे थोडे ही छोडेगा ?'

केसरी—'हा ऐमा तो होना ही चाहण । मागिर तुम्ह अपना दुगुना हिस्सा भी तो लेना है ।'

बनवारी—'अच्छा तो मे चना । देना म्रिमी मी कानोकान सबर न हो ।'

केसरीमिह - 'अजी कोई बात म्रते हा ? अच्छा चनो तुम्ह म्रहर पहुँचा दू, बनी तकलीफ दी हे ।'

दूसरा परिच्छेद

दिन अच्छी तरह निराला भी नहीं था । रातभर मच्छरा के सताये हुए लोग अब सबेरे की गुलाबी सर्तिस एक भीठी भपकी ले रहे थे । गात्र म सताटा था । उसी सताटे को तोड कर भजनलाल साह के घर मे हाथ पुकार का रौला उठा । लोग एकदम अक चका कर उठ बठ । जिसे चेत होता गया, म्रही मी साह की हवेगी मी दीपता गया । सूरज निरालते म्रिना मे गम गम करके साह जी मी बडी हवेती भर गई । सारा गाव इकट्ठा हो गया । म्या बालक म्या बूढे सभी आँखे फाट फाट कर देखने लगे । साहजी के घर की चीम्रा चीम्रा धरती खुदी पनी है । सडूक दूटे पडे हे । सामान म्रितर रहा हे । साहजी—'हाय लुट गया, मर गया वह म्र धरती आसमान एक कर रह है ।

शहर कस्बे के तो मामले ही और होते हैं, वहा तो किसी के आग लग जाय तो लोग तमाशा देखा करते हैं। एक घर में गमी हो गई है तो बराबर के घर में गाना बजाना और चार दोस्तों की चुहल बेखटके होती रहती है। मानो सामाजिक जीवन नष्ट ही हो चुका है। परस्पर की सहानुभूति मानो मर ही गई है। पर बाहर देहातो में इस खुदगर्जी की दूत नहीं है। वहाँ ब्राह्मण से लेकर भगी तक एक सगठन में, एक परिवार की तरह रहते हैं। जब उस सगठन का प्रश्न आता है, तब ऊँच नीच का भेद नहीं रहता। गाव के ब्राह्मण की नई बहू अपनी बुढ़िया भगन के पैर पडकर बूढ़ सुहागन का असीस लेती है। गाव की चमारी ठाकुर को काका चाचा ताऊ कहकर पुकारती है। उस सहानुभूतिमय सगठन का उदाहरण यहाँ देखा। गाव का गाव उमड़ा आज साहजी के घर पर चला आ रहा है। बालक दौड़े-दौड़े आते हैं और उन बड़े बड़े गढों और साह के पारिवारिक क्रन्दन को सुनकर अपनी स्वाभाविक चंचलता को भूलकर एकटक खड़े देखते रह जाते हैं। गाव के बूढ़े भी उठते ही लाठी टेकते आखे मलते गम्भीर भाव से आ रहे हैं। स्त्रियाँ में आज प्रौढा, मुग्धा, सरला और बालिका में भेद करना कठिन है। सभी तेजी से पाव बढ़ाये आया घूँघट निकाले उम भीड़ में मिल रही है। गाव भर में चोरी का रौला मच रहा है। जितने मुह उतनी बात। कोई कहता है—‘भाई, बड़ी भारी चोरी हुई।’ किसी ने कहा—‘चोरी क्या माने डकती कहो, डकैती।’ तीसरे ने कहा—‘डकैती में क्या कमर है देखते नहीं, सारा घर छलनी हुआ पडा है।’ चौथे ने कहा—‘क्या ठीक है इस माया का। अद्भूत सम्पत्ति थी।’ एक ने कहा—‘पर सभी लुट गई, भूजी भाँग भी नहीं रही। एक बोला—‘बडा पुगना घर था। पुस्तक दर पुस्तक की कमाई पल भर में उड गई।’ एक बूढ़े बागा बोले—‘इसी से कहा करते हैं नेकी कर और कुए में डाल, जाने कब क्या हो। करले सो काम, भजले सो राम। यह माया रॉड ठगनी है, सदा किसके रही है। दूसरे बड़े मिया बोले—‘हा साहव ठीक कहते हो, भला हुआ जो एकाध की जान जोखो नहीं हुई। इसी प्रकार तरह तरह की बात हो रही थी। जहा इस तरह की सहानुभूति की बात थी, वहा कोई कोई मन ही मन प्रसन्न होकर, पास वाले आदमी से कह रहा था—‘अच्छा हुआ, कजूम साला लुट गया।’ दूसरे ने सुर में सुर मिलाकर कहा—‘मजी न कभी किसी का भला नहीं किया।’ तीसरे बोले—‘ऐसा था कि एक कौड़ी भी गिरे तो दात से उठा ले।’ उधर में एक बोले—‘अब सब चौपट हो गया। वही मिसाल हुई, जोड़ जोड़ मर जाएँगे माल जमाई खाएँगे।’

भीतर स्त्रियों में और ही गौगा मच रहा था। कोई तो गृहणी के पास जाकर भूठभूठ को रो ही रही थी। कोई—‘क्या-क्या गया, क्या क्या रहा, अरी कह तो सही,’ की धुन बाँध रही थी। कोई प्रवीणा अच्छी तरह दूटे सन्दूक और गढों को जाँच रही थी, और कोई रणपण्डिता अपनी मुस्कुराहट को होठों ही में दबाकर उस दृश्य का

ज्ञान द लूट रही थी।

दधर यह खिचड़ी पक रही थी, उरर माहजी ने पाग पी दो चार गाव के मुखिया बठे आश्रासन गोर तरह तरह की सनाह दे रहे थे। विष्णुने यह नाम किया होगा, इस पर आलोचना पत्यालोचना चला रही थी। इतनेही म हल्ला मचा —‘दारोगाजी आगये, दारोगाजी आ गये।’

इस खबर ने दृश्य की कायापलट ही कर दी। मत्र रोना कराहना हाय हाय करना उड़ गया। स्त्रिया भयभीत होकर भीतर घुम गई। साहजी भी करारे हो गये। वे पगडी बांध मुह दो बाहर चले।

बाहर दलजल से दारोगा जी उठे हुए थे। कास्टेविल भीड़ को हटा रहे थे। दारोगा जो मूढे पर बठे पान कचर रहे थे। उनकी भिजात्र लगी डाढी बेतरह हिल रही थी। साहजी ने सामने पहुँच कर झुक कर सलाम किया।

दारोगा ने गम्भीरता से सलाम लेकर कहा—‘क्या कर डाना सेठ साहज। सब मामला साफ साफ कहो, कमे क्या हुआ।’ साहजी लगे गिर पकड़ कर रोने।

दारोगा ने कहा—‘बाह मिया, यह रोने का वक्त है, नामदों की तरह रोने से क्या होता है, उठो बयान लिखाओ।’

साहजी ने हाथ जोत्कर गिडगिडाकर कहा—‘सरकार लुट गया, मैं तो बर्बाद होगया। अब आपनी माई बाप है। उचाओतो बच, नही मरनेम तो कमर रही नही है।’

दारोगा ने जिना कुत्र जबाब दिए ही हैट फान्स्ट्रिंग को पुकार कर कहा—‘मिया विलायतप्रती, लागो फलमदान कागज। अरे तुम सुस्ती से क्या मुह ताका करने हो? पतिम ५ आदमी को ऐसी सुस्ती चाहिए?’

बिना ही बात उस बाते मुनकर विलायत लपककर फलमदान कागज ने आया। अब दारोगा जी प्रयान लिखने बठे।

दारोगा—‘हा सेठ! क्या नाम है तुम्हारा?’

सेठ—‘भजानाल, माई बाप!’

दारोगा—‘बाप का नाम?’

सेठ—‘करोडीमल।’

दारोगा—‘अच्छा, क्या बात हुई?’

सेठ—‘हजूर, क्या कहें कहते फलजा शरता है। रात एकाएक गटका पाकर आप खुली। पहले तो कुत्र समझ मे नही आया कि क्या है, पर गीरे धीरे एक परछाईं सी आगे बढ़ती दीखी। मैं उर कर चुपचाप उमे देखने लगा। मैंने समझा कोई भूत उत न हो। पर हिम्मत करके मैंने मह से आवाज निकाली ही थी कि वह दौड़ कर गला दबा बठा। मेरी तो जान निकल गई, और बेहोश हो गया। होश मे आने पर देखा,

कमरे में दिया बल रहा है और चार पांच पचहत्ते जवान खाट के चारों ओर मोट मोट लठठ लिए खड़े हैं। एक के हाथ में कसाइया वाला छुरा था, वह मेरी छाती पर ताने ही खड़ा था।'

दारोगा—'उन्होंने कुछ कहा तुमसे ?'

सेठ—'जी हाँ। उन्होंने कहा—'जान की खर है तो जो मालमत्ता हो बतादे, वरना यह छुरा है और छाती है।'

दारोगा—'उसके वाद ?'

सेठ—'उसके वाद तो मेरी नानी मर गई साहब। पहले तो मेरे मुहसे बोली ही नहीं निकली। पीछे हिम्मत करके कहा—'सब कुछ ले लो, पर जान बरस दो। इतना कहकर मैंने चाभी का गुच्छा तकिये के नीचे से निकाल कर उहे सोप दिया।'

दारोगा—'फिर क्या हुआ ?'

सेठ—'फिर साहब, उनके और साथी घर में घुस आए। उ होने चाभियो से सडूक अलमारी खोल खोल कर मालमत्ता निकालना शुरू किया।

दारोगा—'पर घर में खुदाई कैसे हुई ?'

सेठ—'वही तो कहता हूँ साहब। जब सब ले चुके तो फिर मेरी छाती पर आ डटे कि और बता कहाँ कहा गाढ रक्खा है।'

दारोगा—'तुमने बता दिया ?'

सेठ—'क्या करता सरकार, आखिर जान के आगे क्या प्यारा है ?'

दारोगा ने हुकारा भरकर कहा—'कोई गवाह है इसका ?'

सेठ—'गवाह कौन है साहब। रात में कौन इस डकती को देखता। सवेरे ये सब लोग आजुटे।'

दारोगा ने सिर हिलाकर कहा—'अदालत जब गवाह मागेगी तब क्या कहोगे ? वह यह नहीं सुनेगी कि वहाँ कौन था और कौन नहीं।'

सेठ साहब चुपचाप किङ्कतव्य होकर बठे देखते रह गये।

दारोगा जी फिर बोले—'अच्छा तुमने किसी को पहचाना ?'

'नहीं सरकार।'

'किसी पर शबहा है ?'

'सो कसे कहें—सरकार, भगवान् देखता है मुझे किसी पर शक नहीं।'

दारोगा मुस्कराकर मन ही मन बडबडाने लगे—'बेवकूफ कही का क्या ऊटपटाग लिखा रहा है। विलायतहुसेन जरा इन्हे हवा खिलाओ। देखता हूँ इनका सिर ठिकाने नहीं है। कहता कुछ है, निकलता कुछ है ?'

विलायत लाला को घसीट कर ले चला। उबर दारोगा जी नोकर चाकर पास

ज्ञान द लूट रही थी।

इधर यह खिचड़ी पक रही थी, उधर माहलों के पास भी दो चार गात्र के मुखिया बड़े आश्वासन और तरह तरह की सलाह दे रहे थे। दिगो यत्र नाम किया होगा, इस पर आलोचना पत्यालोचना चल रही थी। इतनाही मैं हलना मचा—‘दारोगाजी आगये, दारोगाजी आ गये।’

इस खबर ने दृश्य की कायापलट ही कर दी। मैं रोगी कराहना हाय हाय करना उड़ गया। मिनिया भयभीत होकर भीतर घुस गयी। साहजी भी करारे हो गये। वे पगड़ी बांध मुहों को बाहर चते।

बाहर दलाल से दारोगा जी उठे हुए थे। कान्स्टेबिल भीतर को हटा रहे थे। दारोगा जी मूढ़े पर बड़े पान रुचर रहे थे। उनकी गिजात्र लगी डाटी बेतरह हिल रही थी। साहजी ने सामने पहुँच कर झुक कर सलाम किया।

दारोगा ने गम्भीरता से सलाम लेकर कहा—‘भ्या कर उठना सेठ साहय। सब मामला साफ साफ कहो, क्रमे क्या हुआ।’ साहजी लगे फिर पकड़ कर रोने।

‘दारोगा ने कहा—‘बाह मिया, यह रोने का वक्त है, नामदों की तरह रोने से क्या होता है, उठो बयान लिखाओ।’

साहजी ने हाथ जोड़कर गिडगिटाकर कहा—‘सरकार लुट गया, मैं तो बर्बाद होगया। अब आपही माई बाप है। उचाओतो बचू, नहीं मरनेमे तो कसर रही नहीं है।’

दारोगा ने बिना कुछ जबाब दिए ही हैट कान्स्टेबिल को पुकार कर कहा—‘मिया विलायतप्रली, लागो कलमदान कागज। अरे तम सुस्ती म क्या मुह ताका करते हां ? पहिम हे आदमी को ऐसी सुस्ती चाहिए ?’

बिना ही बात दस बातें सुनकर विलायत लपककर कलमदान कागज ले आया। अब दारोगा जी बयान लिखने बटे।

दारोगा—‘हा सठ ! क्या नाम है तुम्हारा ?’

सठ—‘भजननाल, माई बाप !’

दारोगा—‘बाप का नाम ?’

सेठ—‘करोमीमल।’

दारोगा—‘गच्छा, क्या बात हुई ?’

सेठ—‘हजूर, क्या कहें कहते कलजा धरति है। रात एकानएक खटका पाकर आग्य खुली। पहले तो कुछ समझ म नहीं आया कि क्या है, पर धीरे-धीरे एक परछाईं सी आगे बढ़ती दीखी। मैं तर कर चुपचाप उसे देखने लगा। मैंने समझा कोई भूत उत न हो। पर हिम्मत करके मैंने मुह से आवाज निकाली ही थी कि वह दौन कर गला दबा बठा। मेरी तो जान निकत गई, और बेहोश हो गया। होश मे आने पर दखा,

कमरे में दिया बल रहा है और चार पांच पचहत्ते जवान खाट के चारों ओर मोटे मोटे लठ्ठ लिए खड़े हैं। एक के हाथ में कसाइये वाला छुरा था, वह मेरी छाती पर ताने ही खड़ा था।'

दारोगा—'उन्होंने कुछ कहा तुमसे ?'

सेठ—'जी हाँ। उन्होंने कहा—'जान की खर है तो जो मालमत्ता हो बतादे, वरना यह छुरा है और छाती है।'

दारोगा—'उसके बाद ?'

सेठ—'उसके बाद तो मेरी नानी मर गई साहब। पहले तो मेरे मुहसे बोली ही नहीं निकली। पीछे हिम्मत करके कहा—'सब कुछ ले लो, पर जान बरम दो। इतना कहकर मैंने चाभी का गुच्छा तकिये के नीचे से निकाल कर उहे सौंप दिया।'

दारोगा—'फिर क्या हुआ ?'

सेठ—'फिर साहब, उनके और साथी घर में घुस आए। उ होने चाभियों से सद्दू अलमारी खोल खोल कर मालमत्ता निकालना शुरू किया।

दारोगा—'पर घर में खुदाई कैसे हुई ?'

सेठ—'वही तो कहता हूँ साहब। जब सब ले चुके तो फिर मेरी छाती पर आ डटे कि और बता कहाँ कहा गाढ रक्खा है।'

दारोगा—'तुमने बता दिया ?'

सेठ—'क्या करता सरकार, आखिर जान के आगे क्या प्यारा है ?'

दारोगा ने हुकारा भरकर कहा—'कोई गवाह है इसका ?'

सेठ—'गवाह कौन है साहब। रात में कौन इस डकती को देखता। सवेरे ये सब लोग आजुटे।'

दारोगा ने सिर हिलाकर कहा—'अदालत जब गवाह मागेगी तब क्या कहोगे ? वह यह नहीं सुनेगो कि वहाँ कौन था और कौन नहीं।'

सेठ साहब चुपचाप किकतव्य होकर बैठे देखते रह गये।

दारोगा जी फिर बोले—'अच्छा तुमने किसी को पहचाना ?'

'नहीं सरकार।'

'किसी पर शुकवा है ?'

'सो कैसे कहें—सरकार, भगवान् देखता है मुझे किसी पर शक नहीं।'

दारोगा मुम्कराकर मन ही मन बडबडाने लगे—'बेवकूफ कही का क्या ऊटपटाग लिखा रहा है। विलायतहुसेन जरा इन्हे हवा खिलाओ। देखता हूँ इनका सिर ठिकाने नहीं है। कहता कुछ है, निकलता कुछ है ?'

विलायत लाला को घसीट कर ले चला। उधर दारोगा जी नाकर चाकर पास

पडीमियों के इजहार लेने लगे। इमर त्रिनायत सेठ साहब को हटा खिलाने लगे। कुछ एकान्त में लेजाकर त्रिनायत ने कहा—‘तुममें कुछ घर की अफल भी है या पूरे घन चक्कर हो?’

और समय होता तो यही विनायत सेठ साहब को बीस बीस सलाम करता। उस दिन लडकी के व्याह के लिए बीस रुपतली लेने आया था। बीस बार नाक रगड़ी थी, खुशामद की थी और तमस्सुक लिखा था, पर आज उमकी वन आई है। सेठजी ने चुपचाप गाली हजम करके कहा—‘मैंने क्या कसूर किया जमादार साहब?’

जमादार ने फ़िडकते हुए कहा—‘कसूर! अरे मियाँ हम क्या कसूर की बात कहते हैं, तुमने अपने पैर आप ही कुल्हाड़ी मार ली। बयान विगाड लिया।’

‘तो इसमें मैं क्या करूँ, जो बात थी वही कह दी।’

‘मिर तुम्हारा! इस तरह तो तुम खूब चोरी वसून करोगे? कहीं ऐसा न हो कि जेल जाना पड़े, लुट तो चुके ही हो।’

लाला बेत की तरह कापकर बोलेंगे—‘तो हुजूर! मेरी क्या अक्ल ठिकाने है, जो कहो सो करूँ।’

अब जमादार बडप्पन से बोले—‘देखो जो भला चाहते हो और चोरी पकडनी चाहते हो तो बयान से मेरी बात सुनो। तुम बह दो—पड़ाह वालो से मेरी अदावत है, उ ही पर मेरा शुबहा है। उनका एक आदमी मैंने पहचान भी लिया है?’

लाला के काटो तो खून नहीं। उसने कहा—‘भ्या बलदेवसिंह की बात कहते हो? यह तो न होगा—वे तो बडे ही भले।’

जमादार ने बात काटकर कहा—‘बको मत जी, मैं तुमसे भलमसाहत का सार्टि फिकेट लेने नहीं आया। चलो दरोगा जी के सामने। मैं समझ गया हूँ, इस चोरी में तुम्हारी ही साजिश है, समझ गये?’

लाता ने अकचफा कर कहा—‘भ्या कहा? मेरी साजिश?’

जमादार—‘हा, तेरी साजिस, धूरता क्या है?’

‘मैंने आप ही चोरी कराई है?’

‘बेशक।’

‘इसमें क्या फायदा है?’

‘जमाने का रुपया मारना—और क्या?’

‘ऐसा कहीं हो मरता है जमादार! मैं कसम।’

जमादार ने गुस्सेसे कहा—‘अबे कसमके बच्चे मैंने तुम्हें तुम्हें वितने बेच खाये। मुझे बनाता है। एक ही बात है जो चोरी पकडी चाहता है तो बलदेवसिंह का नाम ले दे—और उसके भतीजे को पहचान लीजो। फिर मैंने जानी और उससे पैसा पसा

बमूल करा दगा । वरना इस दारोगा को तुम जानते ही हो, कभी किसीको छोड़ने वाला नहीं है । बिना जेल जाये बच नहीं सकते ।’

‘पर बलदेवसिंह के यहां क्या मचमुच माल है और वह इस मामले में है ?’

‘तुम्हें इससे क्या ? वह हमारे देखनेका काम है, तुमसे जो कहा है वैसा करो ।’

निदान विलायतप्रली लाला को पढा लिखा कर दारोगा के सामने ले आया ।

उसे देखकर दारोगा बोले—‘कहो तुम्हारा दिमाग ठिकाने हुआ ?’

‘जी हा सरकार !’

‘तो तुम अच्छी तरह याद करके बताओ—किसी को पहचाना ?’

लाला—(कुछ सोचकर) ‘हुजूर कुछ पहचाना तो, पर कहते डर लगता है ।’

दारोगा—‘डरने की कोई बात नहीं, सरकारी अमलदारी है, देखटके कहो ।’

लाला—‘मेने बलदेवसिंह के भतीजे को देखा ।’

दारोगा—(मन ही में खुश होकर) ‘हूँ । बलदेवसिंह कौन ?’

‘हुजूर ! यहां वे जमींदार हैं । वहीं जो उस केस में भी खुबहा में आये थे ।’

बलदेव का नाम सुनकर भीड़ में हलचल मच गई । चारों तरफ से कानाफूसी होने लगी । पर दारोगा ने उधर ध्यान न देकर और गम्भीर बन कर कहा—‘खर देख लूंगा । तुम्हारे कितने नौकर चाकर हैं ?’

लाला—‘दो हैं सरकार, दोनों बहुत भले सीधेसादे हैं ।’

दारोगा—‘अच्छा उन्हें बुलाओ ।’

सेठजी के बुलाने पर बूढ़ा धन्ना काँपता काँपता आ खडा हुआ । दारोगा ने उसका नाम धाम पूछ कर डपट कर कहा—‘तू क्या जानता है रे ?’

‘हुजूर ! मैं कुछ नहीं जानता ।’

दारोगा—(गाली देकर) ‘दूधपीता बच्चा है न तू । घर में इतनी भारी चोरी हो गई और तू कुछ नहीं जानता । पूरा हरामखोर दीखता है ।’

नौकर ने गिडगिडाकर कहा—‘हुजूर की दुहाई है, मैं तो खडग में सो रहा था ।’

दारोगा—‘कह दे क्या हिस्सा मिला है, हम थोड़े ही बीच में मांगेंगे ?’

नौकर चुपचाप खडा कापता रहा । दारोगा ने फिर पूछा—‘तूने कुछ खटपट सुनी—या किसी को पहचाना ?’

‘मैं तो हुजूर सवैरे उठकर आया तो तभी कुछ मालूम हुआ ।’

दारोगा—‘साले ! समझूंगा तुम्हें । विलायत, इसे हिरासतमें लो, मशकूक है ।’

विलायत मानो उधार खाये ही बठा था, झटपट गदनिया देकर एक ओर को घसीट ले गया । बूढ़ा गिरता पडता—हुजूर हुजूर पुकारता शून्य दृष्टी से डर डर देखने लगा । उधर दूसरी ओर उसकी स्त्री और छोटे छोटे बच्चे हाय दैया । हाय

दया ॥ यह कर चित्ला उठ ।

पर दारोगा भी था उग्र यान मग । तेजी म भर रहे थे । मानो धीरे धीरे सुराग पा लिया है । अब गजदर बोले —‘दगर आदमी का हाजिर करो ।’

बनवारी भी अभी ताफ़िमी का गगर नहीं थी कि वह भाग गया है । अब अचानक उसकी खाज हाने लगी । कुड़ ही दर म हटना मच गया कि बनवारी गायब है । लाला के तो होश उठ गय । दारोगा जी पीजरे म प्रध शर की तरफ़ धर उवर टहलने लगे । निदान बनवारी का नाम ग्राम—ग्राम पता लिखकर तन्हीकात खतम हुइ । अब त्रिदार्दीकी तयारी होन लगी । त्रिनाया न तानाजी का एक ग्रार तोचाकर तहा—‘सुस्त कयो वठे हो । देपते नहीं मरुत मिर पर आ गया है, सरकार क खाने पोने का क्या इन्तजाम किया है ?

सेठ जी सितमिटा कर बाने—

‘जो हुकम हो सो करू ?’

‘अरे हुकम ? अभी हम मी ही इन्तजारी म है आप ?’

यह बाने हो ही रही थी कि केशव चोपरी भी आ खड हुये । त्रिना पूछे ही बीच मे ज़ोल उठे—‘यह तो फायदेरी बात है साहब ! तुम देपत हो हकीम हाकिम की भट हाती ही है ।’

ताला जी ने लीग स्वर से पूत्रा —‘तो त्रिना होना चाहिये ?’

‘तुम्हारी चोरी २५००) क करीब है ?’

‘जी हा ।’

‘तो २५०) रु० तो देने चाहिये ।’

सेठ जी तो यह सुनकर आसमानग गिर । पर त्रिलायतन कक्ककर कहा—‘आप यह क्या फसला करते है, रगर पटते पठ लीजिये ।’

चौ प्ररीजी ने मुशामद म कहा —‘बस जमादारजी ! हम म हक मी बात कह दी है, अब ज्यादा नहीं ।’

विचायत ने कहा —‘ता आप सरकार को ममभा त, मेरी तो तात्र नहीं पडती ।’

चौ प्ररीजी ने उमरी डापी महलाने महत्तात तहा—‘अब इसपर मिट्टरानी करो ।’

अस्तु, दारोगा ने कान मे पूत्रर त्रिनायत किमी तरह राजी हुआ । २५०) जब म डाल कर दारोगा जो दनत्रल महित बलदप्रगिट वी हरेली मी आर चले । इधर सेठ जी वे घर म उन नरुद दामादो के निण पूरिया तनी जान लगी । ग्रफसोस हम न हुये पुलिम के दारोगा ।

तृतीय परिच्छेद

जिस गाव की घटना का जिक्र ऊपर आया है, उससे १५ कोम दूर बनवारी

का गाव था । बनवारी जात का वैश्य था । जिस समय की यह घटना हे उस समय उसकी गवम्था २२ साल के करीब होगी । बनवारी के बाप को ७ वष से कम्पवाय की बीमारी थी । पहले उन लागो का घर अचछा था, लन दन भी हाता था और गुड तेल नमक की एक छोटी सी दुकान थी । दुकान छोटी सी तो थी पर चलती खूब थी । उसके सिवा गिरवी गाँठे का भी सि नसिला था । गरज उस आमदनीम उनके छोट से परिवार की अचछी कट रही थी ।

बनवारी माँ बाप का लाडला बेटा था । एक तो देहातो म पढने लिखने की चर्चा वसे ही कम होती है, पर जो थी, बनवारी ने दुभाग्य से उससे भी कुछ लाभ न उठाया । गाव मे एक छोटी सी पाठशाला थी । मु शी जी जात के छीपा थे । टोटा कद, चुन् गी ग्राखे ग्योर खनखनी आवाज से वे अलग पहचाने जाते थे । लोग तो उनकी तारीफ ही करते थे,पर लडको के लिए यमराज ही थे । बिना कमची तो उनका चलता ही नहीं था । ये बडे उस्ताद, बेत के लिए कभी पसा नहीं फेका,सदा खजूर की कम्मच से काम लेते । कम कीमत और गुस्सा ज्यादा । चपत व फिसी को न मारते थे, क्योंकि एक तो हाथ उनका टोटा था दूसरे लडके बडे शैतान । एक बार एक लडका टोपी म काटे रत् लाया,मु शीजी ने चपत लगाया तो काटे चुभ गए । एक बार एक लडके को चाटा रसीद किया, पर उस नामाकूल ने जो हाथ से बचाया तो उसके हाथ की पेसिल मु शी जी के हाथ मे घुम गई । तब से आपने इस खतरनाक रास्ते को ही छोड दिया । उस्तादो के अनेक रास्ते होते है, सो उ हाने यह कम्मच सिस्टम ही अविक पस द किया था । इसके सिवा, मुर्गी बनाना, उट्ठक बैठक कराना, गोला लाठी देना आदि महाग्रन्थो का भी प्रयोग आप कभी कभी किया करते थे । गरज लडके पढते लिखते तो वाजिनी ही थे, हा डरते खूब थे । दर्जे मे एकाव दजन तो ऐसे लडके थे जो मु शीजी के मुह पर पिशाब करते थे । ऐसे ही हमारे मु शीजी थे । घटनावश बनवारी भी इन्ही की शागिर्दो मे आया, पर पहले ही दिन छिटक गया । उसने देखा—दो तीन लडके मुर्गा बने खडे है, दो तीन उठ बैठ रहे हे,दो एक चिलम भर रहे है,और दो चार मु शीजी के सामने खडे सुन्नर गया बन बन कर बारी बारी बेंत खा रहे है ।

बम, बनवारी उसी दिन से जी चुराने लगा । लडको को किताब लिए कपडे पहने स्कूल जाते देखकर उसे भी जाने की होस तो होती,पर स्कूल की बात याद करके मिट्टी हो जाता । किन्तु पिता का कडा तकाजा था । कारण, बडे लाला हिसाब किताब कतई नहीं जानते थे । सोचा, लडका जल्दी से हिसाब किताब सीखे, तो अडचन दूर हो । पर जितना ही वे बेटे को मदरसे भेजना चाहते,उसकी मा उतना ही उनका विरोध करती । पर स्त्री की चलती नहीं थी,फिर भी कलह खासी पदा हो गई थी । एक दिन मामला ही अत हो गया । बात यह हुई कि बनवारी रोज पाठशाला का बहाना करके घर से

तो चना देना, पर जगन म जाहर मौन उडता । कुत्र तिन तो अनेना ही रहा, पर जी बहाने को वह गौर । नरा को भी साथ न जान को कुमाने लगा । मुशीजी ने जब मुना तो बडे कालाये आर पडने की सुन म लगे रह । उडके बडे दुगलयोर होते हे, तिसी ने । क दिन कह दिया कि जनवारी ता माती क साथ रामदास जी बगीचीम ग्राम तोड रहा हे । बम फिर क्या था, मुशी जी स्वय ही पकडने चन । खर सच्ची थी । क्योकि जासून कच्चा न था खास पर का भेदिया था । मुशी जी न दगा—वनवारी पेड पर चढ रहा हे और मोती को चढान की तयारी म हे । बप आप नपन । नीचे होता ता भाग जाना पर गरीब ने भाग म पिटना लिया था, बम पहुँचते ही मुशी जी ने उडाना शुरू किया ।

बम उस दिन घर नोटकर जनवारी न बडी टीका टिपगियो से मार के निशान दिखा लिया कर मा क सामने राया । अत्र क्या था, गुडिया पूरी करारी थी, भट ओढना ओढ कर बेटे को घसीटती हुई सीरी मुशी जी की छानी पर जा धमकी । अच्छा हुआ उम समय मुन्शी जी गाँव के एकात्र जमीदार के साथ रहा बैठ ये, वरना बिना ठुके न रहते । फिर भी गालियो म ता कोई कसर रही नहीं । उमी दिन स सदा के लिए बन वारी का पढना ब द हुआ । मा त्राप बट की तरफ से गाली कम रह सकते है, पढने पतान की फिक मिटी, ता व्याह की फिकर तगी और शीत्र ही उसका व्याह भी हो गया । पत्र मागे गुडिया, प्रथी के ऋण से उत्रण हुई, क्याकि रमो ६ मास त्राद ही बेचारी हेजे से परलोक गि गरी । अत्र गृहस्थी म बडी मुश्किल हुई । बन तो त्राटी थी, बूढा अपने हाथ से ठेक ठेकर सब को गिनाता । त्र माम के घर म बालिका त्र अपन और असहाय, सूख उजडु आवारा बातर पति ? पाठक समझल कि गृहस्थी कैसे सकट म फम गई होगी । तभी एत्र और घटना घटी । बूढे को कम्प्राय राग हो गया । पहले तो कुत्र कुठ हाथ पर ही हिनत ये, पर गीर धीरे सारा शरीर ठिलन लगा । निदान दुकान दारी धूल म मिलन लगा । बनवारी दुकान गौर घर को सभ्हाल ता क्या करता, घर की बोजो को बरा दुग कर त्चने लगा और यार दोस्ता को चात पानी गिमान लगा । कहना तो गनुचिन हे पर कहना ही प ता हे कि गात्र क कुत्र लु ता न उगनी सूबता से गहरा मतदाब निकालना चाहा । कुत्र पस त्र र उस अपनी स्त्रा म गितान को राजी कर लिया । पर कुर्मागयो का यह चक्र नानही । कुत्र तो बूढे की उपस्थिति और कुत्र बंवारो बालिका के भय, अज्ञान और नासमभी र मामला न बना ।

इसी प्रकार आठ वष बीत गए । तब स अत्र म अ तर पड गया हे । जब बन वारी कुत्र गृहस्थी की जिम्मेवारी म मझने लगा है गौर उसके दो छोटी छोटी लडकिया भी हे । बाप अब बितकुल पडा रहता है, नारबार बारहाट हो गया हे । अब वह तीन वष से भजनलाल साह के यहा ६ रूपण मासिक पर नौकरो करता हे । पर इस ग्राम

दनी से गुजर नहीं चलती। उसकी स्त्री भी कात पीस कर कुछ पसे बचा लेती है, पर फिर भी कुछ कज हो ही गया है। कुछ दिन से बेचारा बड़ी कठिनता में है। पसा बचता नहीं, बच्चे हर तीसरे साल हाते रहते हैं। अब वह कजदारो के डर से ७ मास से गाँव में नहीं आया है। प्रथम परिच्छेद में जिस युवक को चोरो के दल ने फुसला कर काम बनाया था, उस युवक का यही संक्षेपत परिचय है।

चतुर्थ परिच्छेद

बरमात का मौसग था, पर मेह बर्षा नहीं था। घमस की गर्मी और मच्छरो ने सोने वालो का नाक में दम कर दिया था। पर बेचारी बनवारी की स्त्री को दिन भर कठिन परिश्रम के बाद सोना मिलता है, तिसपर भी केवल चार घण्टे के लिए। क्योंकि पद्रह वीस मेर नाज पिसाई का रखा रहता है और दिन निकलते ही सबको पिसा आटा देना पडता है। निदान यह साधारण नियम सा हो गया है कि उसे नित्य तीन बजे ही उठकर घडघडाहट करनी पडती है। गर्मी हो या बरसात, सर्दी हो या कुछ, उसका इस पत्यर घिसने को छोडकर दूसरा उपाय नहीं है। नित्य की तरह आज भी वह अपनी चक्की ले बैठी है। उसकी छोटी सी बच्ची गोद में पडी सूखे स्तनो को चूस रही है। दूसरी पास ही खटोली पर पडी हुई बेसुध सो रही है। गर्मी के मारे पसीने में तर है। यद्यपि बेचारी ने चक्की के हथडे से पखा बाध लिया है पर यह क्या उस परिश्रम के पसीने को सुखा सकता है ?

अस्तु, आज उसे अच्छी नीद नहीं आई थी। सो वह जल्दी ही उठकर पीसने लग गई थी। अभी तीन बजेका समय था। रात अँधेरी थी। उसने घरघराहट में सुना कोई द्वार पर थपकी दे रहा है। अब वह चक्की बंद करके कान देकर सुनने लगी। बात सच थी। उसने मनमें सोचा इतनी रात को द्वार पर कौन है ? स्त्री की जात, फिर असहाय अवस्था, इसके सिवा अपने अबोधपतिकी मूखता से बहुत कुछ भुगत चुकी थी। उसे किवाड खोलने का साहस न हुआ। पर जब देखा कि आगन्तुक धडाधड किवाड ठोक रहा है तो विवश हो उसन बालिका का जगाकर ससुर के पास भेजना चाहा। पर बालिका कुनमुना कर ओर करवट बदलकर पड रही। दुबारा जगाने से वह रो उठी। यही नहीं बल्कि मा के मुह पर खीभकर एक चपत भी जमा दिया। उधर द्वार पर थपाथप चल रही थी, अन्तत वह स्वयं स्वसुर को जगाने चली। बालक और बूढे की नीद में बडा अन्तर है। तिस पर बूढा वातदोष पीडित। उसने तुरन्त जागकर कहा—‘कौन ! बहू ! क्या है ?’

बहू का नाम गुलिया था। गुलिया ने तनिक घूँघट खीचकर कहा—‘दरवाजे पर कोई है ?’

बूढे ने द्वार की ओर मुँह करके पुकारा—‘कौन है ?’

‘मं ह, रोनी न ?’

बूटे ने स्वर पहचानकर कहा—‘कौन बनवारी ?’

‘हा ।’

अप गुनिया का माहम हुआ, वह तपक कर द्वार खोल आई । एक गठरी पीठ पर गाढ़ बनवारी न पर म प्रयोग करते करते कहा—‘दरवाजा खोल कर दे ।’

स्त्री आगे पिता दोनो बनवारी के उम कुगमय आगमन से चकित थ । अब जब उसने साधानी से द्वार बंद करने और चुपचाप भीतर आने का कहा तो वे और भी चकराए । भीतर गानर बनवारी ने घबराई आवाज से कहा—

‘दिया तो जनाया । कितनी दर से चिल्ला रहा था, दरवाजा खोलन तो कोई न गया । कोई देख जाता तो ।’

बूटे ने क्या—‘क्या चोरी है जो देख जाता । अपना घर है कि पराया ?’

बनवारी ने हाठ पर उगली रखकर बूटे का चुप रहने को संकेत किया । बूढा अपाहज तो था ही, वह चुपचाप पुत्र के मुह की ओर देखता रह गया । तभी स्त्री दिया जनाकर न आई । अप दाना ने दगा कि बनवारी के चेहरे पर हवाई उन्न रही है, उमका हुनिया तग है वह बारम्बार चाकत्ता हो डार उतर दगता है, कभी कभी काप भी जाता है ।

बूटे ने कहा—‘मामला क्या है ?’

बनवारी ने फिर हाठ पर उँगली रखकर बूटे को चुप रहने का इशारा किया । साथ ही स्त्री से कहा—‘कुदाल है न ?’

बूढे ने विभी तरह पाम समक कर कहा—‘अप जात तो कह, हुआ क्या है ?’

बनवारी न घबराई आवाज म कहा—‘जरा चुप रहा उतनी फुसत नहीं है, कुदान लार् ?’

गुनिया न कुदाल गानर बनवारी के साथ म द दिया, बनवारी ने रसोई मे जाकर चूल्हा सादना शुरू किया । अप बूढे म न रहा गया । उगन बटे न क न पर हाथ रखकर कहा—‘अप कुठ म भी ता गुन् ? करता क्या है ।’

बनवारी न पाटनी पाल दी । बूटे न आचका कर दिया—‘सोने के गहने और रण भर रहे हैं । बूढा अपनी सुगी आगो हो पुत्र के मुग पर गढा कर घूरा तगा । बनवारी ने गल्पेप म ही मत्र कह दिया ।

‘खबरदार किभी हो सालूम न जाने पात्रे ?’ उतना कहकर उसने जल्दी मे गता खोदकर मत्र माल टान उसम उलट कर मट्टी भर दी । अब वह जरा घधाकर सास लेता हुआ अपनी स्त्री से बोला—‘गोबर लाकर चौका लगा दे, मामला रफेदफे हो जाय ।’

स्वमुर के सामन त्रेचारी गुतिया को कुट्ट रहने का साहस ही न हुआ था । अब

उसने धीमे स्वर से कहा—‘हाय ! यह क्या किया ? कहा से यह सब ले आए हो ?’

बनवारी ने उसे झिड़क कर कहा—‘तू जा भी, इन बातों से तुझे क्या मतलब है । जरा गाँवर लाकर लीप दे न ।’ स्त्री तुरंत गोबर लेने चल दी । अब बनवारी न बूढ़े के हाथ पर एक और पाटली रखकर कहा—‘ये ला, कल सब कजदारों को चुका दो ।’

बूढ़े न हाथ में सपए लेकर उन पर एक ललचायी दृष्टि डालते हुए कहा—‘आखिर कहा से क्या किया । कोई आफत तो सिर नहीं धर ली ।’

बनवारी के होंग हवास ठिकाने नहीं थे । उसने कहा—‘फिर कभी फुमत में बहूंगा । करता भी गया पावनदारा के डर से घर द्वार झूटा पडा है । कुर्की के बतन तक उठ गए, जूतों से चाद पिट गई । पगए टुकड़े खाते हे, तिस मे भी गुजारा नहीं होता । दुनिया मे गया सब बर्मात्मा ही हे ? पाप पुण्य देखा किमने हे, जब होगा देखा जायगा । पर इस तरह तो नहीं रहा जाता । लो अब जाता हूँ दस पाच दिन गुम रहूँगा । कभी रात को ही आऊँगा ।’ इतना कहकर और बूढ़े की बात की प्रतीक्षा बिना किए ही बनवारी चल खडा हुआ । उसकी स्त्री ने द्वार तक पीछा करके कहा—‘जरा सुनो तो ! अजी मुनो तो !’ पर ‘अब नहीं’ कहकर बनवारी उसी अबकार से घर से निकल कर विलीन हो गया । बूढ़ा और गुलिया त्रिशकु की तरह भय और उद्वेग के बीच में टगे रहे गए । पाँ फट चुकी थी ।

पाँचवा परिच्छेद

पुलिस के हथकण्डे

चोबरी बतदेवसिंह दस गाव के मुखिया थे । लाट साहबके दरवारी मेम्बर थे । प्रतिभाशाली और बेलग आदमी थे । यो तो जमीदारी और रियासत के मामले ही ऐसे होते हे कि अदालती कुत्तों और पुलिस के गिद्धों को बिना टुकडा दिये नहीं चलता । जाने कब किसका काम अटक जाय, कब किसकी पगडी पर आ बने, कब किमसे काम पड जाय । क्योकि यह ता तीसो दिन की रगडपट्टी है । पर बलदेवसिंह वसे आदमी नहीं थे । उ हे अपने सम्मानका बडा रयाल था । वे पुलिस और इन पुछलगो को कभी मुह नहीं लगात थे । इनाम इकराम की तो बात ही क्या थी, गावमे आने पर भी कभी मिजाजपुर्मी तक न करते थे । गाव मे ही नहीं वरन आस पास मे भी इनका रुबाब और दबदबा था । इनके फसला पर दोनों पक्षों को उच्च न होता था । कम बोलने वाले, सच्चे सीवे और बम भीरू पुरुष थे । पर तु क्षात्र तेज से चेहरा दमकता था । दारोगा जी ने भजनलाल साह के घर से उठकर इन्ही के घर का रास्ता पकडा । यह साफ था कि उनका मामलेमे कुछ लगाव न था और दारोगाजी ने जबदस्ती अपनी कसक निका लने का मोका पाया था । पर इसमे भी रहस्य था, पुलिसके आदमी अबसर को जितना समझते हे, उतना दूसरे नहीं ।

चौधरी बलदेवसिंह जी भोजन करने को उठने वाले ही थे। उन्होंने दया कि पुलिस का दल और खासी भीड़ उही की ओर चली आ रही है। चौधरी जी ने पास बैठे हुए सज्जन से धीरे से कहा —

‘साहजी की तहकीकात हो गई मालूम हाती है।’ अभी इसका उत्तर भी नहीं पाया था कि दारोगाजी न दलबल से चांपाल पर पदारापण किया। साथ ही व्यंग के स्वर में कुछ झुक कर कहा—‘चौधरी जी साहब को आदावज बरता हूँ।’ चौधरी जी शिष्टाचारके लिए उठ ही थे और हाथ बढ़ाने को आगे बढ़ने वाले ही थे कि दारोगा के डम व्यंग से उनके चित्त में झुंझलाहट उत्पन्न हो गई। उन्होंने गम्भीरता में सलाम करके नौकर को पुकार कर मूढा उठा लाने को कहा। मूढे पर दारोगा के बठते ही आप भी तर्त पर बैठ गये और गम्भीरता से पूछा—‘कहिण तहकीकात खतम हो गई?’

दारोगाजी ने व्यंग के शिष्टाचार से कहा—‘जी हा, कुत्रकर पाया ह, कुत्र बाकी हे मो भी आपक तुफलसे किए डालता ह।’

चौधरीजी ने सरल स्वभाव में कहा—‘बेशक बडी ही दुख की बात हे—पर गनीमत हे कोई खून प्यराबी नही हुई।’

दारोगाजी ने कुछ मुस्करा कर कहा—‘जी हा, आपकी दया स बसा नही हुआ।’
‘खर तो कुत्र सुराग लगा?’

‘कुत्र कुत्र।’

‘किमी पर चुनहा हे?’

‘जी! इस बात साफ तो कहा नही जा सकता, पर मुझे इसके मुतालिक आपको तफलीफ देने का अफनास है।’

चौधरी जी ने सरलता से कहा—‘बाई हज नही, आप मेरे लायक जो काम हो फर्माव। मुझे इस समय में कुछ सहायता करके बनी सुशी होगी।’

अब दारोगा जी ने मुस्कराकर, अपनी गव को टिपाते हुए कहा—‘यह आपनी एन इनायत है, मुझे भी आपस सभी ही उम्मीद है। साफ बात यह है कि मैं आपके भतोजे साहब से मित्रता चाहता हूँ।’

चौधरी जी ने कुछ चिंतित होकर कहा—‘उगी समा में?’

‘जी हाँ।’

‘मे नही समझता वह क्या रहेगा, यह परमा ही कानिज से छुट्टिपो मे आया हे।’

‘खैर, जो होगा वह सब अभी जाहिर होगा। चौरी ता बलही रात को हुई है, उन्हें मौके पर पहचाना गया है?’

अब चौधरीजी अस्मानसे गिरे। उन्होंने घबड़ाकर कहा—‘यह आप क्या कहते है?’

‘ज्यादा कुछ नही, सिफ उस मिलना चाहता हूँ।’

(‘अपराधी’ के बाद आचायत्री ने दूसरा उपयास ‘प्लेगविभ्राट’ सन् १९१७-१८ में लिखा। यह उपयास पुस्तक रूप में प्रकाशित भी हुआ था, परन्तु इसकी कोई प्रति अब उपलब्ध नहीं है। उपयास के केवल प्रारम्भिक कुछ अक्षर ही हस्त लिखित रूप में मिले हैं। कथानक पूरा नहीं है। ‘अपराधी’ और ‘प्लेगविभ्राट’ के बाद तीसरा उपन्यास ‘हृदय की परख’ लिखा गया था जो प्रथम बार ‘हिन्दी ग्रन्थ रत्नाकर कार्यालय बम्बई’ से प्रकाशित होकर पाठकों के सम्मुख आया।)

प्लेगविभ्राट

प्रथम परिच्छेद

वसन्त का भरपूर यौवन छलक रहा था। हरे भरे वक्ष मस्ती में झूम रहे थे। कुसुम कलिकाएँ मन के अदम्य उल्लाम को अपने सकोचशील कोमल गात्र में छिपाने रख कर गुपचुप हँस रही थी। पक्षीगण नाच गा रहे थे। वायु में भीनी महक खेल रही थी, जहाँ तक आँखें देख सकती थीं सुदूर और नवीन ही दीख पड़ता था। प्रकृति जी खोल कर वसन्तोत्सव मना रही थी।

कल कल निनादिनी गगा अपने उज्ज्वल परिधान की शोभा बखेरती हुई खरज के स्वरो में सोहनी गाती वही चली जा रही थी। चांदी के समान सफेद रेती दूरतक फैल रही थी।

प्रभात का समय था। सुनहरी धूप हँस रही थी। गगा के किनारे दो युवक चुपचाप बड़े लहरो को देख रहे थे। दोनों नववयस्क थे। तदुहस्ती की लाली और पवित्रता का माधुर्य दोनों के चेहरों पर था। नेत्रों के नीचे कं भाग में लाल डोरा और उभरे हुये होठ उनके सरल गौर दयापूरा हृदय का परिचय दे रहे थे। आँखें बहुत ही मधुर थीं। रेंपे अभी भीगी नहीं थी। दोनों युवक साधारण कमीज और बोती ही पहने बैठे थे। एक की अवस्था बीस वर्ष और दूसरे की पच्चीस वर्ष के अनुमान होगी।

दोनों कुछ चिन्तामग्न थे। ध्यान से देखने पर मालूम होता था एक विषाद की रेखा उनके चेहरे पर अलग चमक रही है। कुछ देर चुप रहकर एक ने कहा—‘राजे ! कैसा सुन्दर दिन है, जंगल में क्या बहार आ रही है कसे फूल खिल रहे हैं, कैसी चिडिया चहक रही है, नदी का जल कसा स्वच्छ है, सारी प्रकृति में एक नवीन रस का संचार हो रहा है ? ओहो, सब तरफ कितना अच्छा है। यह वसन्त का जादू है क्यों न ?’

साथी ने बीच में ही बात काट कर कहा—‘पर उधर बस्ती में क्या हो रहा है ? तुम्हारे हृदय में क्या हो रहा है ? इस मूर्ख वसन्त का जादू इन वृक्ष पत्तों, खेतों और

पवतो पर ही है। जउ जगत ही हम रहा है, पर हम मरुग ? गानुषु ज तु भी क्या उम नतीन रम से ऐसे ही हरे भरे हो रहे है, नतो ?

पहले युवक ने कुछ गम्भीर होकर कहा - 'बिगुल नही, अभी तो, मामा की लटकी को फूक कर आया हू ? उम दिन उसका याह हुआ था, दस दिन घर आये नही हुये-परसो बीमार पनी आज मर गई। यह भी सम्भव है क्षामतक और भी दो चार को फूकना पड़े, शायद दो चार दिन म लोग हम फूकन की चिंता करे ?' इतना कहकर युवक जरा मुस्कराया।

दूसरे युवक ने और भी गम्भीर होकर कहा—'यह असम्भव नही है ? प्लेग जमा भीपण प्राण शत्रु राग जो न करे सो थोडा, गात्र का गात्र भाग गया, सारा नगर सन्नाह में हा रहा है। जो मरता है जगता ही मरता है ? आज ८१० दिन हो गये क्या तुमने किसी बूढ़े को मरने सुना ? और अभी क्या है ? दो चार दिन म देखना-कसी प्रलय मचती है।'

पहला युवक कुछ भयभीत हुआ। उसने दबी जान से कहा—'चलो फिर कही दूसरी जगह चनदे। मेर पर के लोग तो बडे भाउ के पाम चले गये है, म सिफ परीथा के कारण अटक गया था। तुम भी तो यही हो—'चलो तुम्हारी मुसराल चल, वहा से मैं भाई के पाम चला जाऊँगा।

दूसरे युवक ने कहा—'उसमे क्या होगा ?

पहला—'हमारी पागल ता होगी।

दूसरा—'निश्चय ?'

यह प्रश्न ऐसी दृढता से किया गया कि पता युवक उत्तर दत्त देत भिभक गया। उसने कहा—'निश्चय ता भगवान् जान, पर गात्रानो ता अपना कतव्य है।'

दूसरा युवक कुछ तर चुप पठा गया ता विचारता रहा। पता युवक भी गम्भीर चिंता म लूनन गया।

एकएक दूसरे युवक ने कहा—'गोपि ! यह तो मच है कि मपनी रक्षा का भरसक प्रबन्ध करना प्रत्येक व्यक्ति का प्रम है। परन्तु मनुष्य अपनी रक्षा मनुष्यत्व खोकर नही कर सकता। मनुष्यत्व खोकर यदि उमन अपना प्राणा ही रक्षा भी की, तो उमना कुछ मान ही नही समझना चाहिये। बकि यह गत्य त नायरता की ज्ञात समझनी चाहिये।

'पर आत्मरक्षा म मनुष्य के मरे गायता जाता है ?'

'समझ कर देगा, अच्छा इस ज्ञात पर भी तुमन अभी विचार किया है कि इस सुन्दर प्रमत्त का हम अभाग मनुष्या पर ययो प्रभाव नही पया। क्या हम मनुष्य, जा सृष्टि म सर्वाधिक जीव है, कुछ प्राकृतिक रीति से एम बनाय गये है-जो रोग जोक दुख

मृत्यु और निरानंद का विनाश मे व्यस्त रहे और असमय मे मर जाय ? क्या हमारा हाड मांस शरीर म कुछ ऐसा प्रभुत ममाला लगा है कि जड जगत आर जीव जन्तु भी जहा आनंदमग्न हो रहे है, हम बिना मौत मर रहे है । इन पशु पक्षियों पर विस्मय का राज है ? इस मे बड़े-बड़े भयकर हिंसक जन्तु भी है और अत्यंत नाजुक जन्तु भी है, परंतु बलवानों से कमजोरों के स्वत्वों की रक्षा करने वाला कोई कानून कोई दण्ड तो नहीं है, पुलिस, अदालत, कचहरी वकील कुछ नहीं है ? फिर भी ये पशु क्या हममे अधिक स्वतंत्र निद्वन्द और सुखी एवं शांत नहीं है ? हम मे जो मूखता समाई है कि बिना पुलिस, राजा फौज हथियार और याय कानून के हम सुखी और शान्त रह ही नहीं सकते । इसी का यह फल है कि हम अतिआधिक हिंसक और विपत्तिमग्न हो रहे है । क्या यह झूठ है ।’

इतना कहकर युवा तीरी दृष्टि से अपने मित्र की ओर देखने लगा । जब पहले युवक ने एक शब्द भी न कहा तो उसने फिर कहना शुरू किया—

‘इसी तरह देखो ये बड़ी बड़ी कोमल चिड़िया जिनको तुम्हेंसे उनके प्राणनाश होने का भय रहता है, कच्चे चने, जुवार, अन्न गौर कड्डा पत्थर तक बड़े मजेमे खा और पचा जाती है । न इनके पेट मे दद होता है और न खासी बुखार, न इहे जुलाव की जरूरत होती है, न ताकतकी दवा खानेकी । क्या तुमने कही रमोईघर देखा है, जहा इनके लिए तरह तरह के मिरच मसालेदार, चटपटे पदार्थ भूनकर बनाये जाय, या कही हलवाई की दुकाने इनके लिए है, जहा रनीती मिठाईया इनके लिए विकती हो ? तुम्हारे घर मे स्त्रिया कौसी नजाकत से रहती है, घर का काम धवा भी नहीं करती, नौकरानी उनके पापाने के लोटे तक को माजती है । परंतु जब कभी उन्हे बच्चे होते है, क्या जान के लोटे नहीं पड जाते ? तुम्हारी भाभी क्या उसदिन लडकी हानेमे नहीं मर गई ? कितने डाक्टर, दाई वद्य, जो सामके साथ रुपये पचाते थे, कुछ न कर सके । परन्तु इन पशु पक्षियों के लिए भी कोई दाई है ? उस दिन हमारी गाय जंगल मे व्या गई, शाम को पचा उठनता दूदता आ गया । इस बात से तुम्हे आश्चर्य नहीं होता ? चिड़ियों को, मुर्गियों को देखते हो—बड़े आराम से अण्डा देदेती है और फुदक से उड जाती है ? इह तो दाई की जरूरत ही नहीं रहती ? इसका क्या कारण है—क्या तुम जवाब दे सकते हो ?’ इतना कहकर युवक फिर जरा देर को ठहर गया । पहला युवक आखे गाढकर मित्र के मुख की ओर देरा रहा था, उसे कुछ भी जवाब दते न बना ।

उसने फिर कहना शुरू किया—‘और सुनो, अखबार पढते हो न । जहा अखबार म देश के नाम पर मर मिटनेके गरम मे गरम लेख रहते है, जो मनुष्यकी चित्तवृत्तियों को बलिदान की ओर ले जाते है, वही मुस्ती और नामर्दी के गदे से गन्दे विज्ञापन रहते है । जिनकी भाषा बड़ी गदी, बड़ी नग्न और बड़ी फूहड होती है । हजारो मनुष्य अखबार

वालो को तो मिरफ दो रुपये साल ही देने हैं—पर इन लुच्चे जुआरियों को दस बीस रुपये फट देने हैं। क्या इनकी क्या पर तरम नहीं याना चाहिए ?

मनुष्य मनुष्य का यह दावा है कि वह समार के समस्त चराचर प्राणियों में श्रेष्ठ है। उसने अपने बुद्धिबलसे समस्त प्राणियोंपर विजयभी प्राप्त की है और वह समस्त अचर प्रकृति का स्वामी भी बन बैठा है। उसका खान पान रहन सहन भी ससार के प्राणियों से श्रेष्ठ है। फिर भी यह विषय है जिसमें वह अम से अधम प्राणी से भी निकृष्ट है। वह भौतिक और स्वाभाविक सुख जो प्रत्येक प्राणी को स्वतः प्राप्त है—उसे अपनी पूरी बुद्धिबल से भी प्राप्त नहीं होता।

कितने अफसोस और लज्जा की बात है कि जितनी फुर्ती तेजी और मस्ती एक साधारण अम सूअर, साड, बैन, घोड़े और पशियों में है—वसी शक्ति मनुष्य को हजार तरसने, लाख विज्ञान लडाने और करोड़ रुपया खर्चने पर भी नहीं मिलती।

इतना कहकर युवा चुप हो गया। एकाएक उसने सुन्दर खेतों की तरफ देखा और हाथ फैलाकर फटा—“जिस तरह हम इन अपदाय घासके तिनकोंकी सुंदरता पर और इस जड जगत की मस्ती पर डहक करते हैं, उसी प्रकार हम इन अधम पशु पशियों के स्वास्थ्य और भोग शक्ति पर हाथ करते हैं। इसका यह मतलब नहीं है कि परमात्मा ने यह शक्ति हमें नहीं दी थी। हम समार की मव श्रेष्ठ रचना में। तुम पूवजों के इतिहास देगो, वेद और उपनिषद् को टटोरो। हम जिग मनुष्य कुल में हैं, उन पत्रात्मा पूज्य पुरुषों की आयु हजारों बरस की होती थी। वे कभी रोगी होते ही नहीं थे। वे अपनी उच्छ्रा में शरीर बदल सकते थे, समस्त जगत की घटनाओं को देख सकते थे, लोक और परलोक के तमाम रहस्य उनपर प्रकट थे, उन्हें किसी वस्तु की अभिलाषा नहीं। समस्त प्रकृति उनकी दागी थी। ज्ञान और भूगल मानो उनके अनुपूर्ति था। नक्षत्रों की अगम गति, उनमें भूतविज्ञान उत सातुम था। उस समय वे सचमुच जगा में जगिष्ठ श्रेष्ठ प्राणी थे।

उसके बाद जग सामाजिकता की और नाविक योग्य नेताओं के उपयोग का कान आया—तब भी मनुष्य कुल अत्यंत तेजस्वी, निरोग, दीपायु एवम शक्ति-सम्पन्न और मवथा तृप्त था।

पहले युवक ने मानो उतावले होकर कहा—

‘फिर एकाएक मनुष्य समाज पर यह क्या श्राप पडा ? सारा जगत जग सुंदर और सर्जित हो रहा है, तब मनुष्य समाज ही क्या दुर्गी और रोगी है ? उसी पर य दवी विपत्तिया क्यो पडती हैं ? यह भीषण प्लेग जगत के अन्य पशु पशियों को क्यो नहीं भक्षण करता ?’

पहले युवक ने किंचित हास्य करके कहा—

‘मित्र ! जगत की समस्त वनस्पतियों और पशु पक्षियों के लिए तो मनुष्य ही बड़ा भयंकर प्लेग है। क्या तुमने नहीं देखा कि जहाँ तक साधारण मनुष्य बुद्धि चली है उसने तमाम वनस्पतियों को और तमाम पशु पक्षियों को अपना भक्ष्य बनाया है। वह जबरदरती अपने बुद्धिबल से सबभक्षी बना है। ईश्वर ने उसे पैसे दात और नापून नहीं दिये थे, इसलिये कि वह इस प्राणी को सौम्य और सभ्य बनाना चाहता था। पर उसने अपने ही उद्योग से बड़े बड़े नोकदार और धारदार हथियार बना लिये। यह अभागा प्राणी न तो ईश्वर के नियम की श्रवण परना करता है, न उसकी आज्ञा की, न प्रकृति की, न अपने स्वभाव की। इसी का यह फल है कि वह प्रकृति का कोप भाजन है और ईश्वर प्रतिक्षण जगत को जो स्वाभाविक दान देता है, जिससे जगत फूला फला और सुखी रहता है, मनुष्य उससे वंचित रखा गया है। इस सूख को अपनी बुद्धि और विज्ञान का जो घमण्ड है, जमी के बल पर यह पागल मनुष्य ईश्वर और प्रकृति दोनों से लड़ रहा है। क्या तुम यह नहीं समझते ?’

युवक ने भटपट मिर हिलाकर कहा—‘बिल्कुल नहीं। मेरी दृष्टि इन गम्भीर विषयों की ओर कभी गई ही नहीं। मैंने इन बातों पर कभी विचार किया भी नहीं।’
होठ की एक कोर में मुस्कराकर युवक ने फिर कहना शुरू किया—

‘अगर तुम ध्यान से मनुष्य के स्वभाव का अध्ययन करोगे तो देखोगे कि मनुष्य में सबसे बड़ी बुराई यह पदा होगई है कि वह अपनी बुराइयों को छिपाना चाहता है। सूख आदमी सूखता को, कमजोर आदमी कमजोरीको, दरिद्र दरिद्रताको, कुम्प कुरूपता को, रोगी रोग को सदा छिपाता है ? फल यह होता है कि बुराइयाँ दूर करने में उसे जो शक्ति लगानी चाहिये थी, और उसे जो सहायता तथा सहानुभूति चारों तरफ से मिल सकती थी—नहीं मिल पाती। हमारे बच्चे दुबने पतले कुरूप रोगी शार अल्पायु होते हैं। परन्तु न हम उनको उन दोषों के कारण पर विचार करते हैं और न उन्हें दूर ही करना चाहते हैं। उन्हें सुन्दर बढिया वस्त्रों से ढक देते हैं। हमारी स्त्रियाँ सूख, कुपठ और अल्पायु होती हैं। ३० वर्षों में स्त्रियाँ वृद्ध होजाती हैं। इनकी नसलका पतन किन कारणों से हो रहा है उस बात पर जरा भी विचार न करके हम उन्हें बन्धुत्व गहनो और वस्त्रों में ढककर सुन्दर बनाना चाहते हैं। तुम युवाको को देखते हो, किम तरह चुनी जाती, बढिया माँग, और भ्रूणभ्रूण अस्त्री की हुई कमीज पहना और पम्पसू पहन कर निकलते हैं। इन बाहिरों सफाई की बातों में तो उनका इतना ध्यान है, परन्तु उनके चेहरो पर कितनी भुर्रिया है, आगे कितनी मैली है, पेट कितना गाढा है, इसपर भी ध्यान देते हैं ? दर्जी भद्रे तराश का कपडा न सीवे, इसकी तो उन्हें बड़ी चिन्ता रहती है परन्तु उनका शरीर कितना, किधर में भदा और बेडौल हो रहा है इसकी परवाह नहीं। तुम क्या समझते हो कि बढिया माग निकालने, तेल चुपडने और सुनहरी फ्रेम का चश्मा लगाने

से क्या रूपे मुखे चेहरो पर रोनाक आ सकती है ? कदापि नहीं ।

प्रारम्भ के युग में—जब पवित्र आत्मा मनुष्य सीधे मादे ढग पर प्रकृति की गोद में रोने से तब उन्हें अपने बनाव की उतनी जरूरत नहीं पड़ती थी । वे निराश्रय हो—शरीरधर्म पालन करते थे । सब से प्रथम आलस्य उत्पन्न हुआ, आलस्य होने पर मनुष्य को सन्तत्य पुष्टि उत्पन्न हुई । मत्तय होने पर रोभ, लांसे क्रोध, क्रमसे झूठ, झूठसे पाप बना । मतोशुग्ग का लोप होकर रजोशुग्ग बढ गया । जहा ममार क समस्त प्राणियों के प्रति मनुष्य को त्याग और प्रेम का व्यग्रहार करना चाहिये था—वहाँ वह अपने अति निकटस्थ के प्रति भी स्वाथ और उन का व्यग्रहार करने लगा ।।।’

युवक अत्यंत कातर कण्ठ से उतना कह कर और एक लम्बी सास खींच कर चुप हो रहा ।

दूसरे युवक ने दुःखभरे शब्दा में कहा—‘मैं तो कभी इन बातों पर विचार भी नहीं किया, उतनी बात मेरे ध्यान में भी नहीं आई । हाय ! हम मनुष्यों का सौभाग्य ही सो गया ? क्या जगतसे सबसे पहले मनुष्य वश ही नष्ट होगा ? इस तरह ईश्वर और प्रकृति के नियमों को भंग करके, अनीति और अविचार के माग पर चलकर—क्या मनुष्य समाज का कल्याण हो सकता है ?’

‘नहीं नहीं’—युवक ने हठतासे कहा, ‘पर तु मनुष्यमें परमेश्वर ने एक विशेषता दी है । वह यह है कि जिस तरह वह अपनी जिम्मेदारी पर पतन की चरम सीमा तक पहुँच सकता है, उसी तरह उन्नति की भी चरम सीमा उसके लिये खुली है । ससार के अथवा जीवों में यह योग्यता नहीं है । कुत्ते को लाख भिखाओ, पर तु वह एक ही ढग से तरेगा । तरना उसे मालूम है, यद्यपि वह जानता ही नहीं । पर तु मनुष्य स्वयं तरना नहीं जानता, पर सीगनेगे भी प्रहार से तैर सकता है । इसलिये मनुष्य समाज यदि चाहे तो पतन के ढला रास्ते में तौटकर उत्तम माग पर चल सकता है । जिस दिन ऐसा होगा उस दिन यह सम्भव ही नहीं कि मनुष्य इन प्रकृति के दमिगक और निर्जीव सौंदर्य पर मोहित हो । यह सम्भव ही नहीं कि यह उद्विगों का उतना दाम हो । वह प्रकृति विश्व सम्राट की तरह सपशक्तिमान् ईश्वर का प्रतिनिधि स्वरूप जगत भर के सब पदार्थों से श्रेष्ठ, सब पदार्थों में सुंदर, सब पदार्थों से स्थायी और बहुमूल्य होगा ।’

युवक ने बाल मुलभ उतावली से कहा—‘यह कब होगा ?’

‘यह कौन कह सकता है ? मे समझता हूँ अभी वह दिन दूर है । इस समय मनुष्य प्रकृति का गम्भीर अध्ययन कर रहा है, परन्तु उसके मनमें स्वाथ का हलाहल विष है । क्या तुमने नहीं देखा, कि जगत भर के श्रेष्ठ विद्वानों का चरम विकास, यूरोप के महागुद्ध में मनुष्यों के ही विश्वास में काम आया ? समझे ? मनुष्यों के उत्कष का चरम विकास मनुष्या ही के विश्वास में ? क्या आश्चर्य नहीं होता ? और यह तो कुछ हुआ

ही नहीं, इसका तो सिर्फ यही परिणाम हुआ कि कुछ खरब रुपया नष्ट हुआ, कुछ करोड़ हत्याएँ हुई, और कुछ लाख स्त्रियाँ असती हुई, एव कुछ नर नारी अनाथ हुए और व चोरी, व्यभिचार, हत्या आदि पाप करने के लिए विवश हे। पर तु उस निकट भविष्य को देखने की भी तो आशा रखो, जब तमाम पृथ्वी पर रक्त की धार बहेगी। उस समय सिपाय मरते हुआ के आतनाद के कुछ सुनाई न देगा। मुर्दों के दूह लग जावेगे और जो जीते बचेगे, वे उस अशुद्ध वायु मे सास लेने से तडप तडप कर मर जावेगे। इस प्रकार महा नरविषम होगा !'

युवक ने भयभीत होकर कहा—'यह क्या कहते हो ? ऐसी भयकर बात ? ओफ सुना भी नहीं जाता ।'

दूसरे युवक ने धुन मे कहा—'सुना नहीं जाता तो मत सुनो, पर देखना तो अवश्य पडेगा। क्या तुम यही समझते रहोगे कि कुछ चुने हुए चालाक जगतकी सम्पदा का रस निचोड कर एक ही साम मे पी जावेगे और कराडो, अरबो नर नारी अपन भूखे, नगे कगाल बच्चा को लिए हुए, अपने पेट को उघाडे चुपचाप खडे रहेगे ? मनुष्य समाज तो अन्धा होकर विज्ञान कला और साहित्य पर दूट कर पडा हे। तुम्हारी क्या यही राय है कि ये निकम्मी चीजे मनुष्य जाति को तृप्त कर देगी ? क्या तुम इतना नहीं समझ सकते कि ये वस्तुएँ तप्त होने के बाद समृद्ध होने की नहीं, पर तु मनुष्य इ ही म तृप्ति ढढ रहा है। जिहे ये वस्तु मिल गइ है, व ओरो की श्रेणी से अपने को श्रेष्ठ समझते है। मै तुम्ही से पूछता हूँ कि क्या तुम्हे यह बात पसंद है, बोलो ?'

युवक ने अक्रचका कर कहा—'कौनसी बात ? मै तो तुम्हारा मतलब ही नहीं समझा ? क्या तुम यह कहते हो कि विज्ञान, कला और साहित्य मनुष्य समाज के लिए कल्याणकारी नहीं हे, बिकुल निकम्मे हे ?

'मेरा ऐसा विश्वास नहीं ।'

'तुम्हारा विश्वास मे अभी उत्पन्न किये देता हूँ। विज्ञान, कला और साहित्य इन तीनों मे एक मे प्रकास, एक मे आनन्द, और एक मे तृप्ति है। अब ये विकास आनन्द और तृप्ति, तुम दो ऐसे भिन्न भिन्न मनुष्यों को दो, जिन मे एक तो भूखा रोगी और आत्म विग्राम शून्य है, और दूसरे ऐसे मनुष्य को दो जो हड्डा कट्टा और सब तरह सतुष्ट है। तुम देखोगे—पहला व्यक्ति इन पदार्थों को भोगने की शक्ति नहीं रखता और दूसरा सयम। तुम स्वादिष्ट पकवानों की प्रशंसा कर ही नहीं सकते। वह अतुल रीति से सेवन किए जाने पर निस्सन्देह जहर का काम देगे। विचार करने पर तुम्हे सदुपयोग और विवेक को एक स्थान देना पडेगा। विज्ञान, कला और साहित्य एक पकवान है, वे चाहे जितने मोहक बहुमूल्य और अप्रुव क्यों न हों—यदि उनका सदुपयोग नहीं किया जाता तो वे कदापि मनुष्य के लिए लाभकारी नहीं ।'

युवक ने कहा—‘और तुम यह बात किस आधार पर कह रहे हो ?’

‘सब से बड़ी घटना के आधार पर, क्या तुमने इस युरोपियन महायुद्ध पर विचार नहीं किया ? जिसमें १ करोड़ तीस लाख मनुष्य मरे, दो करोड़ घायल हुए, ६० लाख बच्चे अनाथ हुए, ५० लाख विधवाये हो गई, १ करोड़ आदमी बेघरबार हो गये और खरबों रुपये स्वाहा हो गए ! यह सत्र जमनी के हाथों । उस जमनी के हाथों—जिसने सभ्य जगत के समुख १८वीं शताब्दी में वेदों को और उपनिषदों को पेश किया था, जो पृथ्वी पर अध्यापनों और पण्डितों की जाति प्रख्यात है, जहाँ कला, साहित्य और विज्ञान पानी भरता था । क्या तुम यह विश्वास नहीं कर सकते कि यदि जमनी और यूरोप के पास कला, विज्ञान और साहित्य इतनी प्रचुर परिणाम में न होते, अथवा उनके सदुपयोग की योग्यता उनमें न होती, तो क्या पृथ्वी पर इस तरह खून की होली खेली जाती ? तदापि नहीं ।

कहा है वे पञ्चमात्मा ऋषि जिन्होंने सन्यास उभर आया और समस्त ग्रहमंडल की दुर्बोध गति एवं आध्यात्मवाद के ज्ञान गम्य तत्त्व ऐसी सुदरता, स्थिरता और योग्यता से जाने थे कि आज बीसवीं शताब्दी भी इस विषय में उनका शिष्य है । आज यूरोप बाह्य साधनों से मनुष्योत्तर बनने की चेष्टा कर रहा है । परन्तु एक समय था कि जब बाह्य प्रदर्शन कुछ न था, परन्तु मनुष्य सर्वोत्तर मत्त्व था । तब जगत के कल्याण की कामना उसके मन में थी और आज जगत के विध्वंस की कामना उसके मन में है । मन्त्री सम्बन्ध व्यवहार, व्यापार, राजनीति, सबमें छुट्टी, सब में बदाबदी सबमें ईर्ष्या, फिर भला मित्र, धर्म, त्याग और शान्ति कहा रह सकती है ? यह असम्भव है ।’

पहले युवक ने उम्ता कर पूछा—‘तब सम्भव क्या है ?’

‘सवनाश’ । यह कहकर दूसरा युवक चुप हो गया । उसके होठ फड़कने लगे । मानो—बहुत सी बात बलपूर्वक उसके मुख में निकलना चाहती थी, परन्तु निकल नहीं सकती थी । वह समय की चेष्टा कर रहा था । अतः मैं उसने कहा—‘सवनाश । कसा भयकर शब्द है ? जो नहीं गम्यता तब न सम्भव, पर जा सम्भवता है, वह अवश्य भय गायगा । क्या तुम्हें मनुष्यों के सवनाश पर दया नहीं आती, क्या तुम आदश सहृदय मनुष्य होने के नाते मनुष्य के प्रति इतनी उदारता नहीं दिखा सकते कि उसे सवनाश से बचाने के लिए कुछ करो ?’

पहले युवक ने स्थिर होकर कहा—‘मनुष्य के कल्याण के लिए मैं अपना जीवन भी होम देने को तैयार हूँ ।’

दूसरा युवक हस दिया । उसने कहा—‘शायद इसीलिए गाँव छोड़ कर मेरी सुसराल को भाग रहे थे ?’

युवक ने लज्जित होकर कहा—‘अगर चोर, डाकू, शत्रु का भय हो तो हम लड़

कर मनुष्यो की रक्षा करे, परंतु प्लेग मे क्या कर सकते है ? यहा तो वद्य डाक्टरो का काम है ।’

दूसरे युवक ने मधुर स्वर से कहा—‘तब क्या चोर डाकू शत्रु तुम्हारे ख्याल मे मनुष्य नही है ? तुम उन्हे मारकर मनुष्य का कल्याण करोगे ? तब तो हो चुका ।’ पहला युवक विमूढ होकर साथी का मुह ताकने लगा ।

साथी ने कहा—‘योग्यता और आत्मत्याग मनुष्य की चरम श्रेष्ठताएँ है । मह षियो ने इन दोनो श्रेष्ठताओ को अग्रीभूत किया था और वे जगत के देवता कहाए गए है । वही गुण हममे अगर न हुए तो कुछ न कर सकेगे । हम योग्य बनने की भरपूर चेष्टा कर रहे है, पर आत्मत्याग की तरफ हमारा ध्यान नही है । जिस दिन आत्म त्याग हमारी योग्यता का पथ प्रदशक बनेगा, उसी दिन हम मनुष्य का कल्याण कर सकेगे ।’

पहले युवक ने मित्र का हाथ पकडकर कहा—‘मेरे मन मे उमग आती है कि मै अपने जीवन को आत्मत्याग मे लगाऊँ, क्या तुम उसका उपाय बता दोगे ?’

‘अवश्य, उपाय ही नही, अवसर भी । और वह अवसर आज सामने है । तुमने कहा था कि तुम अपने मामा की लडकी को फूक कर आ रहे हो, जिसका अभी कुछ दिन प्रथम विवाह हुआ था और तुम यह भी देखते हो कि दिन दिन यह उपद्रव भीषण हो रहा है ? लोग अपने-अपने घरों को बन्द करके भाग रहे है । यह निश्चय है कि शीघ्र ही कितने ही अनाथ, बच्चे, रित्रया और पुरुष असहाय अवस्था मे पडे रह जावेगे । जिहे एक ऐसे मनुष्य की सहायता की जरूरत होगी—जिसमे मनुष्य का हृदय हो, जिसमे मनुष्य की योग्यता हो, जिसमे मनुष्य का त्याग हो, क्या तुम और मै वसे मनुष्य नही बन सकते ? कल्पना करो, तुम और मै प्लेग के चक्कर मे आ जाय, छूत के भय से हमे छोडकर सब सगे सम्बन्धी भाग जाए, हमारे कण्ठ प्यास से सूखने लगे, शरीर ज्वर से तप रहा हो, रोग का विप बेहोश कर रहा हो । एक बूद पानी के लिए तुम कलेजा चीर कर चिल्लाते चिल्लाते मर जाओ, पर कोई मनुष्य बच्चा तुम्हारे पास न भाके, तब तुम्हारी क्या दशा होगी ! तब तुम क्या सोचोगे ? और फिर यदि एकाएक एक व्यक्ति चुपचाप आकर तुम्हारे सिरहाने बठ जाय, शीतल जल का भरा पात्र तुम्हारे मुख से लगादे, तुम्हे दवादारू द, तुम्हारे मलमूत्र उठावे, उसके साथ तुम क्या व्यवहार करोगे ?’

युवक ने तेजी से कहा—‘उसे मै जहातक मुझमे बनेगा अपना सवस्व दूगा ?’

‘सवस्व दे दोगे और उच्छ्रण हो जाओगे ? तब समझो, कि तुम उसे उसकी मजदूरी दोगे । क्या यह मजदूरी उसकी सेवा का मोल हो सकती है ? इस तरह कुछ देकर उसके भार से उच्छ्रण होना क्या उसका अपना अपमान नही है । जहाँ तुम्हारे

सगे सम्बन्धी प्राणों के भय से तुम्हें जोर-जोर से चिल्लाते हुए, वही एक अपरिचित व्यक्ति गया किसी जालच से, किसी लातसा से प्राणों का गतरे में टाककर तुम्हें पानी देने आवेगा ? यह तो सम्भव नहीं है ? अचछा फज्जतों, तुम्हीं कभी किसी ऐसे दुखिया का सेवा करने का अवसर पाओ—तब क्या तुम अपनी सेवा के बदले में कुछ लेने की इच्छा करोगे ?'

युवक ने झटपट कहा—'कदापि नहीं, मुझे तुम जितना नीच न समझना ।'

दूसरे युवक ने साथी के कंधे पर प्यार से हाथ रखकर कहा—'राजे तब तुम भी किसी उदारात्मा को नीच मत समझो । बदले के लिए जो लोग किसी की सेवा करते हैं, वे तो नोकर हैं, दास हैं । पर तु जो बिना किसी बदले में किसी की सेवा करते हैं, वे सेवक हैं । सेवक और दास में यही अंतर है । पर तुम यह न समझना कि सेवक को कुछ मितता ही नहीं है । उसे वह वस्तु प्राप्त होती है, जो योगी को समाधि की अन्तिम अवस्था में प्राप्त होती है ।'

युवक ने कहा—'और वह चीज क्या है ?'

'आत्मतुष्टि ।' इतना कहकर युवक चुपचाप मित्र के मुख की ओर देखने लगा ।

'मे अत्मतुष्टि का अभिनापी हूँ और मैं सेवा में को स्वीकार करता हूँ । आओ, आज, अभी इसी क्षण पवित्र गंगा के तीर पर हम दोनों प्रतिज्ञा करें कि हम अपने जीते जी सेवा में दीक्षित रहेंगे, सेवाधर्म में जीवेंगे और सेवाधर्म में मरेगें ।'

इन शब्दों के साथ ही युवक ने गुदर नेत्रों में आमुओं की धारा वह निकली और वह मित्र की छाती पर झुक पड़ा ।

दूसरा युवक जो इतनी देर से इतनी प्रामिता दिखला रहा था, अबरद्वकण्ड ह्रा गया । दोनों न एक दूसरे का आलिङ्गन किया । दोनों न एक मन, एक वचन, एक स्वर से प्रतिज्ञा की और दोनों गुदर प्रकृति का मोह छोड़कर गम्भीर चिन्ता हृदय में लिए घर को लौटे ।

दूसरा परिच्छेद

दिन टिप गया था, दिन जल गए थे, बावू पानीचरण दाने में दही लिए घर को लौट रहे थे । पीछे में आवाज आई—'बावू ! नीचरगजी !'

बावू ने लौटकर दया — उनके दफ्तर का चपरागी भराम है । उ हान रुककर पुत्रा—'क्या है ?'

'विश्रन्ताथ बावू की हानत बहुत खराब है, जरा चलकर दखिए ।' चपरासी ने धरारा कर कहा ।

'उ है क्या हुआ ? अभी तो दफ्तर से साथ साथ लौटे थे ।'

'वे बेहोश पड़े हैं, घर में चिराग भी नहीं, चिडिया भी नहीं, मैंने जाकर मुह

मे पानी डाला तो होश आया, आप जरा चलकर तो देखिए ?'

कालीचरण घबराए । इधर उधर करके बोले—'अभी ता जरा मुझे पर जना है, तुम उनके चचा राधाचरणजी को खबर दे दो न ।'

'वे तो आज देश चले गए ? घरमे ताला पडा है । अभी ती वहासे आरहा हू ।'

कालीबाबू ने चलने का उपक्रम करते हुए कहा—'तुम चलो, मैं घर से लोटता हूँ ।'

इतने मे सामने से गोपाल बाबू आते दीख गए, उहे देखत ही काली बाबू न उहे पुकार कर कहा—'आपने सुना, विश्वनाथ को प्लेग अटक हुआ ?'

'कब, कब ?'

'अभी तो भरोस ने समाचार दिया हे ।'

'तब कुशल इसी मे हे कल ही कही चल देना चाहिए, आपने कुछ बन्दोबस्त किया हे या नही ।'

'कुछ भी नही, पर यह विचार कल होगा, अभी तो विश्वनाथ के लिए क्या करना चाहिए यह सोचना उचित है ।'

'हम लोग क्या कर सकते हे, यह काम तो वैद्य डाक्टरो का हे ।'

'वह हमारा पत्रह वष का साथी हे, उसके घर का भी कोई आदमी नही हे । हम मित्र के, पडोसी के या साथी के नाते कुछ नही कर सकने ?'

'पर इस प्रागमे कूदना तो हमारा काम नही है न, अपना आपा बचाकर श्रीरा का काम किया जाता है, तुम तो जानते ही हो कि यह कैसा बेढब रोग हे । मे नी तो बाल बच्चेदार हू ।'

'और फज करो हम पर कभी ऐसी विपत्ति आए, और हमारे मित्र लोग इसी तरह हमे छोड दे, ता ? आखिर मनुष्य ही मनुष्य के काम आता हे ओर विपत्ति म तो शत्रु की भी सेवा करनी पडती है ।'

'भाई दो चार रुपण की काई कसर तो मे सह सकता हूँ, और कुछ तो मुभसे होगा सही, रतना कहकर बाबू राधाचरण चलने लग ।'

भरोस ने उह रोक कर कहा—'बाबूजी । ऐसा तो न होना चाहिए, हाय, इस वक्त उनका कोई नही हे । बेचारे कसे भले सीवे आदमी थे, दफतर म कोई नाराज न था, आज वे फँस गये हे, तो हम कुछ करना चाहिए । मौन होगी तो आवेगी, न होगी तो आग मे कूदने से भी न आवेगी । उहे इस तरह त्तो न छोडना चाहिए ।'

राधाचरण बाबू ने कहा—'देखो, तुम हो बसमभ आदमी, मेरी राय मानी तो मै कहूंगा कि तुम म्युनिसिपलिटी मे उनकी खबर कन्दो, सरकार ने कोरेटाइन मे सब बन्दोबस्त कर रखा है ।'

'बाबूजी मै रात भर बठा रहा हूँ ?'

‘कसा ग्रहमक है, अर भाई । ठा रहकर क्या होगा ? रोग तो दवा पानी से ही जाणगा ।’

‘तब आप दवा पानी का बंदोबस्त कर द, किसी डाक्टर को बुला द । क्या वे ऐसे ह कि किसी का पसा रख लगे ? आराम हाते हो पाई पाई चुका दग ।’

‘पर आराम न हुआ तो ?’

भरोस के मनमे चोट लगी । एक क्षण को यह अभिप्राय हुआ । फिर उसने सम्हल कर कहा—‘यदि ऐसा ही हो तो क्या है ? मनुष्य बनी जा त्रिपत्ति म मनुष्यके काम आते ।’

राधाचरणजी कुछ बह रह थे कि पीछे से दो युवक। न आगे आकर कहा—
‘आप लोग किमकी चचा कर रहे है ?’

राधाचरण उफन रहथ । उन्होंने घटना और अपना अभिप्राय बयानकर दिए ।

दोनों युवक प्रथम परिच्छेदमे आए हुए राज द्र और गोविन्द थ । उ हाने कहा—
‘क्या आप लोग कृपाकर हमे उनका घर बता देग ।’

भरोस ने कहा—‘बलिय, यही ता मामने घर है ।’ राधाचरण बाबू की इच्छा कुछ उपदेश करने की थी, पर दोनों युवक जल्दा से भ्राम ने साथ चल दिए ।

युवको का कलेजा बच रहा था । भाग्य युवका की स्वभावसिद्ध वस्तु है । पर वह भावना प्राय आकाशी पुष्पान् होती है । प्रत्यय म जब भावना मूर्तिमती होती है, तो प्रहत कम नागुण्य हृदय त्रिपत्ति म म उतर पतत है । त्रिपत्तियों के मुकाबिले म सने होना एक अनुभव जय अभ्यास है । जिन जितना अभिप्राय अनुभव है वह उतना ही अभिप्राय त्रिपत्तियों से स्थिर रह पाता है । भावना एक कामन हृदय ही लहर है और त्रिपत्तियों का मामना स्थिर हृदय का एक प्रबल रूप है ।

युवक दोनों ही हवाई भावनाओं म सने हुए उस मूर्तिमान खतर म जब एका एक जा खड़े हुए, तब उन्होंने देखा कि प्रार अ प्रकार म एक मनुष्य की भयङ्कर अस्वाभाविक शक्ति चला रहा है ।

भ्राम ने जब गिरी का गिया अनायास उठा । उमने तापते हुए धीमे प्रकाश म देगा कि एक मनुष्य त्रिपत्ति म सुध करती पर पा है । उसकी रूप अनरहित फटी हुई लान लान अज्ञान । समान गौरव माता किमा का विगतना चाहती है । दोनों हीठ ऊपर से मिट्टी गए है और प्राच म तीरग । वा । अत्यंत भयंकर मालूम पडते है । वह त्रिपत्तिहीन व्यक्ति प्रती म साम्प्रत म तनपत पचा था, पर भी अस्तव्यस्त था ।

दोनों युवक का मुग सूख गया । क्षण भर के लिए उनका शरीरम रक्त की गति रह गई । भय ने दोनों को तनतुष्टि पर दिया ।

गोविन्द ने भयंकर स्मित हाथमे साथीका हाथ पकडकर कहा—‘राजन्द्र’ यहाँ से चलो ।’

इसी एक शब्द से राजे द्र की मानो निद्रा टूटी, उसके मन में साहस का उदय हुआ। उसने कहा—‘भय क्या है?’

इसके बाद वह भीतर कमरे में घुस गया और भरोस से कहा—‘इन्हे चारपाई पर सुलाना चाहिए।’ भरोस ने चारपाई ठीक करने का आयोजन किया। राजे द्र ने गोवि दसे कहा—‘गोविन्द, तुम जरा बाजार से थोड़ा दूध तो लाओ। क्या पसे जेब में है?’
‘है।’ कहकर गोविन्द नीचे चला।

लौटकर गोविन्द ने देखा, सब कुछ व्यवस्थित हो गया है। उसके मन का भी भय कम हो गया था। उसने दूध पात्र में करके राजे द्र के हाथ में दिया। राजेन्द्र ने दूध चम्मच से रोगी के मुख में डालना शुरू किया। तीनों व्यक्तियों ने मनही मन ईश्वर का वयवाद किया।

राजेन्द्र घर गया और लौटकर एक मात्रा दवा रोगी के मुँह में डाली। तीनों आदमी बारी-बारीसे पहरा देने बठे। भरोस ने कहा—‘बाबूजी आप सोइए मैं बठा हूँ।’
राजेन्द्र ने कहा—‘नहीं, तुम थोड़ा सोलो, हम बठे हैं फिर हम तुम्हें जगा लेंगे।’
भरोस का यह बात माननी पडी। राजेन्द्र रोगी के पास डट कर बठे। गोवि द ने पूछा—‘मे क्या करूँ?’

राजेन्द्र ने कहा—‘तुम घर जाकर सोओ, प्रात काल तुम आना, कल दिन भर तुम्हारी ब्यूटी रहेगी।’

गोविन्द ने कुछ विवाद के बाद यह स्वीकार किया।

धीरे धीरे रात बीतने लगी, ऊषा का उदय हुआ। प्रभात आया, जगतमें आलोक और अमृत की वषा हुई। गोविन्द ने आकर देखा—भरोस निस्त द्र कुर्सी पर बैठा है।

उसने पूछा—‘रोगी कसा है?’

भरोस ने उत्साह से कहा—‘देवदूतो ने उसकी रक्षा की है, रोगी सो रहा है।’
इतने में रोगी ने करबट ली। उसके नेत्र और मुख में वैसी भयकरता न थी। उसने सकेत से जत्र मागा, भरोस ने जल चम्मच से लेकर रोगी के मुख में डाल दिया। रोगी न गोवि द की तरफ देखकर उसे बठ जाने का आदेश किया।

गोवि द खडा रहा। उसके मन में विचार उत्पन्न हो रहे थे। वह इस समय आकाश में उड रहा था। उसने भरोस को सोने को उठा दिया और आप बैठ गया।

वह सोचने लगा—मनुष्य के द्वारा इतना काम हो सकता है? यह तो कभी सोचा ही नहीं था। यही पुरुष कल कैसा था?

धीरे-धीरे एक परछाई पीछे देख पडी। लौटकर देखा—राजेन्द्र है। गोविन्द खडा हो गया। उसके नेत्रों में आसू भर आए। उसने कहा—‘ओफ! मनुष्य के हाथ में इतनी शक्ति और इतनी कुदरत है, यह तो मैं जानता ही न था।’

राजेंद्र ने कहा—परंतु स्वाय और कायरता के बश होकर मनुष्य कुछ नहीं करता है। उसके सामन ऐसे ऐसे सत्कार नित्य होते हैं। अगर मनुष्य के हृदय में साहस और त्याग का उदय हो जाय तो जगत के कितने पाप दूर हों, कितनी हत्याएँ, कितने दुःख कट जाय, मनुष्य को कितना सहारा मिले।

इसी बीच में रोगी ने पानी मागा। रोगी के शब्द अमृत की तरह युवको के कानों में गए। दानो ने दोनों को देखा। एक अनिबचनीय तृप्ति और आनंद की लहर उसके रोम रोम में रम गई।

गोविन्द ने कहा—‘राजे, कल तुमने ‘आत्मतुष्टि’ का महत्व समझाया था, तब समझ में नहीं आया था, आज समझ गया। ओह ! यही ‘आत्मतुष्टि’ है।’

तीसरा परिच्छेद

‘अरे बेटे, ओ रामस्वरूप, अरे अशर्मा, अरे निदयी, जरा सुन, ठहर, देख—तेरा भाई मसार से जा रहा है। हाय ! यह कहर की घड़ी है भाई को भाई कब नसीब होता है ? ओ पापी। जरा ठहर, अरे सुन तो , यह कहता हूँ एक वृद्ध रोता कलपता एक युवक के पीछे झपटा, पर अघेरे में एक पत्थर से टोकर खाकर गिर गया, और ‘हाय’ करके बहोश हो गया।

अन्धेरी रात थी। दो बज गए थे। सब तरफ सन्नाटा था। साय साय हवा चल रही थी, बस्ती के बाहर गीदड़ रो रहे थे, उनकी मनहूस आवाज में भय उत्पन्न करती थी। कभी कभी कोई कुत्ता भूसा पड़ता था। वृक्ष काँगे जाल भूत की तरह धीरे धीरे अपने अपने स्थान पर हिल रहे थे।

युवक ने बाप की तरफ फिर कर नहीं देगा, वृद्ध सड़क पर बेहोश पड़ा था। अचानक पहरेवाले सिपाही को ठोकर चगी। सिपाही ने उमन पूछा—‘कौन ?’

जवाब नहीं मिला।

सिपाही ने झुककर देखा, बठ कर जाच की। मरा न था। उसने उसे उठाकर सहारे से ढँटाया और उधर उधर आश्रय और सहायता की खोज में दृष्टि फलाई।

वृद्ध ने गहरी सास ली और चत यता लाभ करके एक हाय की। साय ही उमन पुत्र को गहरे दुःख से शाप दिया। इसके बाद वह फिर बेहोश हो गया। पहरेदार ने देखा, वृद्ध का सिर फट गया है और उसमें रक्त की धारा बह रही है। क्षणभर विमूढ़ रह कर उसने वृद्ध का पीठपर लाद लिया। उतन ही में वृद्ध ने फिर चत यता लाभ किया और ‘हाय’ की।

मनुष्य की कही गन्ध भी न थी। पहरेदार ने उसे लालटन के सम्भे के सहारे खड़ा करके पूछा—‘तुम्हारा घर कहाँ है बूढ़े ?’

बूढ़े ने कहा—‘मेरा घर अब कही भी नहीं है।’

पहरेदार भी बूढा था। उसने भी जीवन मे चोटे खाई थी। दुखी का दु ख उसने कुछ समझा। उसे ढारस दिया और उमका पता पूछ वह उसे घर की ओर धीरे धीरे लेच ला।

गली के भीतरी सिरे पर घर था। देखा कि खपरल की छत वाला मकान है, मनहूस दिया टिमटिमा रहा था और दूटी सी चारपाई पर एक बालक उब्व सास ले रहा था। आखे फँली हुई थी। बालक के स्वास का घराटा द्वार के पास से सुनाई दे रहा था। पहरेदार ने करुण स्वर से पूछा—‘क्या वह तुम्हारा लडका हे?’

वद्ध ने शूय कण्ठ से कहा—‘हे कहा? कभी था। यह मेरा छोटा अतिम बच्चा था। श्वा वप लगा हे।’

पहरेदार ने पूछा—‘व्याह हो गया हे?’

‘सिफ पाच महीने हुए हे। कार्तिकम गौना करनेका विचार था।’ बूढा रोने लगा।

पहरेदार का हृदय भर आया। वह रोगी की खाट के पास गया, उसे देखा, फिर वद्ध के पास आकर कहा—‘तुम्हारा और कोई नहीं हे?’

वद्ध ने आखे फाडकर पहरेदार की ओर देखा। उसने कहा—‘क्या तुमने उस कपूत को नहीं देखा? वह मेरा बडा बटा था। तीन दिन मे रात आया था, घण्टे भर बाद चल दिया। उसका कहना था कि प्लेग के बीमार के पास रहना ठीक नहीं। पापी नहीं जानता, यह प्लेग का बीमार नहीं, सगा भाई हे। हाय! इसने उसी का भूठा दूव पिया हे। इसने उसकी गोद मे किलोल की हे। जमादार साहिब! सगा बेटा जब अपना नहीं हे, तब और कौन होगा?’

पहरेदार की आखो मे आसू भर आए। उसने कहा—‘खुदा सब खर करेगे, तुम घबराओ मत। चच्चे के पास बैठो, मे एक गश्त लगाकर अभी आता हूँ।’ यह कह कर पहरेदार उठा। इतने मे ही रोगी को ऊव्व श्वास और हुचकी आने लगी। बूढा चिल्लाकर भीतर दौडा और बालक के ऊपर धडाम से गिर गया। जमादार न जा सका। वह धीरे धीरे जाकर बूढे के पास खडा हो गया और फिर वद्ध की पीठ पर हाथ रख कर बठ गया।

कुत्र ही मिनट बाद बच्चे का प्राण निकल गया। पहरेदार ने अत्यंत सहानु-भूति से वद्ध का ढारस दी आर कत्तव्य का ज्ञान कराया। कत्तव्य का ध्यान आते ही अभागे वद्ध पर वज्र गिरा। वह पागल की तरह जमादार का हाथ पकडकर बोला—‘अब मे क्या करूँ?’

पौ फट रही थी। धीरे धीरे ऊपा का आलोक जगत मे विस्फारित हुआ। जगत फिर सुदर हो गया। पहरेदार ने ढारस देते हुए कहा—‘अब तुम मुहल्ले वालो को और मित्रो को बुला लाओ, मै तब तक यहाँ बैठा हूँ।’ निरुपाय बूढा चला। नगे बदन और

नगे सिर । पड़ोस में गोविंद गरी की हट्टेती थी । उसने उन्हीं के द्वार पर जाकर आवाज दी । गधीजी अभी पीनर में पड़े थे, आवाज सुनकर ऊपर से भाक कर कहा— 'कौन है ?' वद्व को देखकर कहा— 'खैराफियत ता है ?' वद्व बोला— 'खैर कहाँ ? छोटका समा गया ।'

'ओफ बडा गजब हुआ' यह कहकर गरीजी ने क्षण भर को गम्भीर चेहरा बना लिया ।

उनकी सहवर्षिणी उनके पीछे ही आराटी हुई थी । वद्व का सन्देश कानों में पड़ते ही फिर उन्होंने पीछे से बहुत धीमे स्वर में कहा— 'भीतर आओ, गजब हुआ तो तुम क्या करोगे ?'

गन्धीजी खड़े रहे । कुछ ठहर कर बोले— 'अब क्या करना, यह तो बुरा हुआ ?' 'जो होना था हो गया, अब चलिए उसे ठिकाने पहुँचा आइए ?'

गन्धीजी बोलने भी न पाए थे कि गृहिणी ने पीछे से पतला खीच कर कहा— 'ना, हमारा कुछ काम नहीं ।' पर गन्धीजी कुछ न बोल सक । वे चुप खड़े रहे । वद्व ने कहा— 'क्या हुक्म हुआ ?'

गधीजी बोले— 'और सबको ता खबर करा ।'

'मै जाता हूँ, आप जरा जल्दी आना ।' कह वद्व चल दिया । नत्थू चौधरी के घर आकर पुकारा— 'चौधरी साहिब ! चौधरी साहिब !' चौधरी साहिब पाखाने में थे, उन्होंने वही से खास कर त्रिवाड टपटपा टिंग । वद्व समझ कर खडा रहा । चौधरी साहिब अफीम खाते थे, बडी देर तक वे पीनर में बैठे रहे । वद्व को क्षण क्षण कष्ट हो रहा था । अंत में चौधरी जी न निकल कर कहा— 'माजरा क्या है ?' वद्व ने रोकर कहा— 'चौधरी जी ! छोटका समा गया ।'

चौधरी का माथा टिनका । बोले— 'बुरा हुआ लउका रुमा सुन्दर, सुशील और होनहार था ।' वद्वने कहा— 'जो अब नहीं है उसका रुहता क्या ? अब आप जल्दी चलिए ।'

चौधरी न कष्ट की भावनाएँ मह पर लाकर कहा— 'देखत हो, पन्द्रह दिन से बीमार ह, क्या मुह नहीं देखते, अठवाडे घर से निकले हो गए, तुम औरों को गुताओ, रज्जू आ गया ता भेजता हूँ ।'

वद्व आगे चला । पण्डित रामनारायण के घर पर आवाज दी— 'पण्डित जी ?'

पण्डित जी पूजा में बैठे थे, नौकर से पुछवाकर पुकारने वाले का नाम और कारण मालूम करके गुनगुने होकर बोले— 'भाड में जाय । पूजा में विघ्न कर दिया । सवेरे आकर बुरा सन्देश दिया, कहदो कि पण्डित जी घर में नहीं है ।'

वद्व को रोने की शक्ति और फुसत नहीं थी । आठ बजे वद्व तमाम मुहल्ले में धूमकर अकेला लौट आया । पहरेदार मुर्दे के पास अकेला बैठा था । अकेला लौटते देख

उसने पूछा—‘यह क्या ? क्या कोई नहीं आया ?’

वृद्ध ने दूटे स्वर से कहा—‘कोई नहीं ।’

जमादार बोला—यही तुम्हारा हिन्दूधर्म है ? छी ॥

वृद्ध इस बात को समझा नहीं । उसने कहा—‘अब क्या करना ?’

जमादार बोला—‘मुसलमान कहो तो मैं पचास लाकर हाजिर करूँ ?’

‘क्या मेरे बच्चे को मुसलमान उठावेंगे ?’

जमादार ने कहा—‘क्या मुसलमान आदमी नहीं है ? रात भर मैं तुम्हारे पाम रहा, जब तुम्हारा सगा बेटा भाग गया । क्या मुसलमान आदमी नहीं । जिस वामे आदमी आदमी पर तरस नहीं खाता, वह भी धर्म है ? तुम हमें कहते हो कि हम निन्द्यी मुसलमान हैं, पशुओं पर दया नहीं करते । मैं कहता हूँ तुम हिन्दू हमसे अधिक निन्द्यी हो, तुम मनुष्यों पर, अपने भाइयों पर दया नहीं करते ?’

वृद्ध कुछ समझा । उसने शून्य दृष्टि से अपने चारों तरफ देखा और जमादार का परला पकड़ कर रो दिया । उसने कहा—‘क्या सचमुच मेरा कोई सहायक सगा नहीं ।’

‘है क्यों नहीं, सब मुसलमान तुम्हारे लिए हाजिर है । तुम्हारे इशारे की देर है ।’

वृद्ध बठा रहा । दिन चढ़ रहा था, धूप चमक रही थी, घर में निर्जीव बच्चा चुपचाप पडा था, वृद्ध के हृदय में तूफान उठ रहा था । उसने कहा—‘आज मेरा कोई नहीं । वाहरे स्वार्थी पापी हिन्दू धर्म ? जमादार ! मैं मुसलमान हूँ । लाओ अपना जूठा पानी, मैं अभी पीऊंगा फिर तुम्हें मेरे बच्चे की लाश का अस्तित्व है, चाहे जो करो ।’ वृद्ध उत्तेजना से खड़ा हो गया ।

जमादार ने फिर ठारस दिया । उसने कहा—‘क्या मैं अपने आदमी लाऊँ ?’

‘नहीं तो क्या यह इसी तरह पडा रहेगा ?’

जमादार चला गया । पास ही एक मस्जिद थी, वहाँ जाकर उसने उपस्थित मण्डली से घटना का जिक्र किया ।

प्रभातकी नमाज खतम होगई थी । ‘विस्मिल्लाह’ कहके सारे मुसलमान चल दिए ।

क्षणभर में ही वृद्ध पुरुष के द्वार पर मुसलमानों की बड़ी भीड़ लग गई । दस बज गए थे । वृद्ध मानो पागल हो गया था, उसका शोक कहीं विलीन हो गया था, वह कुछ बोलना चाहता था, पर उसकी जीभ तालु से सट गई थी । गाँवभर में इसकी चर्चा हवा में फैल गई थी । कुछ दशक यह देखने आए कि देखे—हिन्दू के मुर्दों को मुसलमान कैसे उठावेंगे । वे दूर खड़े देख और आलोचना कर रहे थे ।

मुसलमान अपनी तैयारी में थे । क्षण-क्षण में उनकी संख्या बढ़ रही थी । बहुत बार पूछने पर वृद्ध ने भर्राई आवाज से कहा—‘मैंने लडका तुम्हें दिया, चाहे गाडो चाहे जलाओ ।’

उतना कहकर वह ज्योंही चुप हुआ था कि तो गीर युवक भीड़ का चीरकर वृद्ध के निकट आकर बोले 'पिता ! त्रि ता की कोई बात नहीं हम आ पहुँचे हैं ।'

वृद्ध ने आग फाड़ फाड़ कर देखा उमने द्रोठ हिल गये । एक युवक ने ललकार कर कहा—'मुसलमान भार्दयोवी कृपा के हम इतज है पर अउ त क प्र करनेकी जरूरत नहीं । हम लोग आगये हैं, हमारे आर गायी आ रह है । अब आप लोग अपने अपने घर जाइये ।'

क्षण भरको हचल मच गई । कुँउ ममनमान उत्तजित भी टुये, पर तु जमादार ने सत्रको शा त कर लौटा दिया । वह अवेला बहा खडा रहा ।

उमने युवको से कहा—'तुम लोग कौन हो ?'

'हम कालेज के विद्यार्थी हैं ।'

'तुम्हारा नाम क्या है ?'

'मेरा नाम राज द्र और उमका गात्रिन्त है ।'

सिपाही की आखां म आसू आ गये । उमन कहा — 'तुम क्या हो, तुम्हारी जननी क्या है । गुदा तुम्हारा भला कर ।' उतना कहकर सिपाही गीर गीर चला गया ।

वृद्ध धरती पर लाटकर रोने लगा । उमने कहा—'ईश्वर ! तारी माया अपार है, तन देवदूत भेजकर डूबते ब्राह्मण के कम की रक्षा ही ।'

चौथा परिच्छेद

६ वज गये थे । रायबहादुर मुद्र दरनाथ अपने बेचैल शरीर को ढीले ढाले मगर कीमती कपडा से ढककर और आत्रनूसी चरग कमनां म चमचमाते जूट पहनकर पान कचरते खडे रामदीन सर्ईस का नाना प्रकार विशेषणा से आद्र कर रहे थे ।

रामदीन को रात ही हंस हो गया था कि सत्र ६ वज गाओं तैयार रखे—प्लेग कमेटी जाना है । रामदीन ने अधर ही उठकर गान्नी का सत्र मामान तयार किया था । अब वह कुछ खाा को बटा था । पर तु रामदीन का टिका गर्मागम तर मालका थोडे ही था । बागी उगार गी दा रोटिया और प्याज का ग ठा उमके ताथपर धरा था । वह गपने समस्त उग्र दमताआ ह आगी ताद क गतारे उ ट ग न स उतार रहा था ।

इतने मे ध तूर दया बहा जा धमका । उमन अपनी नम्त्री चमन हिलाते हुये कहा—'क्या रे ! तू यहा भाग लगा रहा है, यहा मरमार खडे सत्र गोती हो रहे हैं ।'

रामदीन ने जरा रुवाईं स कहा 'तब क्या दिन भर भूया मरे, सरकार न जाने कब तक लौटे । पं मे टुकटा पड त्रिना क्या शरीर उठता है — मालिक !'

'मालिक' शब्द सुनते ही दरबान तृप्त हो गये । उ ता नर्मिसे कहा—'रामदीन नौकरी तो नौकरी है तू जतदी आ, सरकार प्लेग कमेटी म जा रहे है ।'

रामदीन ने मुह फँटाकर कहा—'प्लेग कमेटी मे ? दयारे ! वहाँ जाने से क्या

प्राण बचेंगे ? दादा ! मैं प्लेग में नहीं जाने का !'

दरबान ने जरा गहराई से कहा— 'क्यों रे ? जब सरकार जाते हैं तो तुम्हें क्या आफत है रे !'

'वे लोग बड़े आदमी ठहरे, उनके आगे पीछे की क्या बात है। उनके बाल बच्चों को किस बात की कमी है, पर हमें कुछ हो जाय तो हमारी महारू का कहीं ठिकाना नहीं।' इतना कहकर रामदीन दीन भाव से अपनी स्त्री और बच्चों की ओर देखने लगा। इस सुअवसर पर रामदीन की स्त्री ने आचल से अपने आमू पोछ डाले।

'तब कह दू कि रामदीन नहीं जायगा।'

'पापी पेट के लिए सब कुछ करना है।' कहकर रामदीन उठा, कुल्ला किया और अत्यंत कष्टपूर्ण स्वर में कहा— 'अभी गाड़ी लाता हूँ।'

स्थानीय टाउनहॉलमें प्लेग कमेटी की बैठक थी। शहरके मा बाप, गुन्गुदे गद्दों पर बठने वाले रायबहादुर, रायसाहब और इन उपायियों के उम्मीदवार अपने असाधारण चमकदार वस्त्र पहन पहन कर आ रहे थे। प्रत्येक का ठाठ निराला था, प्रत्येक बड़े तपाकसे मित्रोंसे हाथ मिला रहा था—रंग ढग देखकर यह नहीं कहा जा सकता था कि यह कोई मातमी जलसा है। शहर पर विपत्ति आई है, नगर परेशान हो रहा है, परन्तु इन महा महिमामय पुरुषों के चेहरों पर मलाल नहीं।

दीवान बहादुर जटलूमल सभापति की कुर्सी पर थोड़ा लटका कर बैठे। प्रारम्भिक भाषण में आपने भेज के सहारे ओषे लेटकर होठे ही होठे में बडबडा कर कुछ कहा, और फिर हाफते हुए कुर्सी पर गिर गये और चश्मा साफ करने लगे।

अब रायसाहब भोदूमल खड़े हुए। आपने अपनी पूरी ऊँचाई में तनकर खड़े होकर कुछ देर तक मूँछे मरोड़ी, फिर आपने करारी आवाज में कहा— 'नाजरीन !'

पीछे से किसी ने आवाज लगाई— 'हाजरीन कहिए साहेब !'

सभापति ने पीछे फिर और घुडक कर कहा— 'चुप रहिए !'

रायसाहब फिर बोले— 'हाजरीन ! हमारे शहर पर कहर छाया हुआ है।' इतना कहकर आपने सभापति की तरफ घूरकर देखा।

सभापति ने सिर हिलाकर स्वीकृति दी।

आप आगे बोले— 'और हम शहर के माई बाप हैं।'

सभापति ने पूरा सम्मत्सूचक सिर हिला दिया।

अब आपने फिर कहा— 'हमारा फज है कि हम शहर के लिए कुछ करें।'

इसपर आप फिर सभापति को देखने लगे। सभापति ने फिर सिर हिला दिया।

अन्त में आप बोले— 'सुना है, शहरके नौजवानों ने कुछ काम शुरू किया है, मगर वे लोग बिना हम रऊसा की मदद के कुछ नहीं कर सकते।'

इस पर 'वेशक, प्रेशक' की आवाज आई और आप आगे कुछ कहने में अक्षम होकर बैठ गये।

अब रायबहादुर मुद्रदरनाथ जी उठे और बोले—'हमारे लायक दोस्त ने बहुत बड़ी बात कही है कि चंद नौजवान बिना हम जट्टापीदा बुजुग और रईमों की मददके कुछ नहीं कर सकते। इसलिए वहतर है कि वे हमारे जेबसाथे काम करें और उनके पास हमारा यह हुकम पहुँचा दिया जाय।'

इतना कहकर तालियों की गडगडाहट में बैठ गये। अत्र मुन्शी फजुल्लाखा उठे। आपने फमाया—

'जनाब प्रसीडेड साहेब और हाजरीने जलमा, यह बड़ी खुशकिस्मती का दिन है कि आज हम और आप अपने फज अदा करने को दफ्तरा हाफ है।'

यह बात जाहिर है कि शहर में प्लेग का बन्ना हो जोर चल रहा है और शहर वालों बड़ी तकलीफ में है। अगर हम उनकी मदद न करेंगे तो कौन करेगा। शयबहादुर रामदेव और प्रजीडेड साहबको जनाब कलक्टर साहब ने भी यही हुकम दिया है कि वे शहर के लिए कुछ करें और इसीलिए यह मीटिंग की गई है।

मगर जकाब! सच पूछिये तो शहर वाले गामरर हिंदू अजहद गंदे और बेवकूफ हैं। खामरर लाला लोगो को तो गंदे रहने की आदत पड़ गई है। ये लोग रातको बतनो में पिशाब करते और सुबह उसे गली में उल्टक दत्त है। मस्ती तरफारी और गला हुआ अनाज खाते हैं। कभी खुदा पाक का नाम नहीं लेते। जय दण्डिय कमती तोलना और ज्यादा लेना इनका काम है। बस उसीलिए खुदा पाक उनमें नाराज है।'

आप धुआवार बक रहें थे कि किसी ने पीछे से चिन्ताकर कहा—'जनाब! ज्यादातर मौत अभी मुसलमानों की ही हुई है उन पर क्या सतान सवार है?'

सभापति ने गदन टट्टी करदी। खामोश रहने को कहा और मुन्शीजी ने रौद्र स्वर में कहा—'हाँ इनपर भी खुदा नाराज है क्योंकि वे नापाक काफिरों के तजदीक रहते हैं।' मुन्शीजी कुछ और भी बतलें पर सभापति के गारुने में आप तावपच खाते टाढी पर हाथ फेरते बैठ गये।

उसके बाद पाग रगार रर गना साफ करने सभापतिजी ने उठकर कहा—मेरे रयान में काफी तकरीरे हो चुकी है। अब हमको यह मनामिद है कि हम अपनी तज बीजे काम में लावें।

इसपर 'वेशक, प्रेशक' की आवाज आने लगी। सभापतिजी ने कहा—'हम एक कमेटी बनानी चाहिए। जिसके मेम्बर शहर में घूम घूम कर मालूम करें कि मददकी किनको जरूरत है और उन्हें मदद दें। मेरे ख्याल में रायसाहब भौड़मलजी शहर में घूमने का काम बहुत अच्छा कर सकते हैं। कुछ लोग आपकी मदद करने को तयार भी

हो जायेगे, इसलिए बहतर हे कि आपकी सरपरस्ती मे यह कमेटी बनाई जाय ।’

रायसाहेब बोले—मुझे तो कोई उजर न था, मगर मे तो कल ही शहर से चार मील दूर बगले मे उठ जाने वाला हूँ । घर के लोग तो सब जा ही चुके है, मै सिफ ग्राज की मीटिंग के लिए रह गया था ।’

सभापति जी ने लाचारी दिखाकर कहा— ‘तब क्या म रायबहादुर मुद्धरनाथ साहिब से दरगजास्त कर सकता हूँ ?’

‘बडी खुशी मे, मगर रायसाहेबके माथ जो मुसीबत है वही मेरे साथ भी है । मे भी तो शहर से दूर जा रहा हूँ । मेरे रयाल में तो जनाब प्रेसाडेण्ट साहेब ही यह सर परस्ती मजूर फर्मावे तो बहतर ।’

सभापति महाशय कुछ दबी जबान से बोले—‘यह तो कोई बात न थी । मगर मे तो आप जानते ही है कि किसी काम का आदमी नही, बूढा और मरीज हूँ । चलफिर नही सकता ।

हा, आप अगर खजात्री जैसा कोई छोटा मोटा काम मेरे मुपुद करेगे तो देखा जायेगा । तब क्या मैं मुन्शी साहेब से दखास्त करू, मुन्शी जी इधर उधर देखकर बोले— ‘यह तो आपकी एक निवाजिश थी, मगर आप देखते ही है कि बिना आप बुजुगान और रऊसान की मदद के हम क्या कर सकने है । मेरी तो एक यही राय है कि फिल-हाल जो चन्द नौजवानो ने काम शुरू किया है, हम लोग उन्ही की सरपरस्ती अपने पर लेल और उन्हे आगाह करदे कि हमारी मीटिंगने यह तय किया है ।’

इस पर हर तरफ से ‘वेशक वेशक’ की आवाज आई । एक सज्जन उठकर बोले—‘मगर वे लोग नामजूर करे तय ?’

इस पर रायबहादुर ने धुडककर कहा—‘यह नामुमकिन है । हमारी सरपरस्ती से इ फार यदि किया जायेगा तो उमपर जाते की कायवाही होगी ।’

इसके अनंतर एक प्रस्ताव इसी आशय का पास होकर सभापति को ध यवाद देकर सभा बखास्त हुई ।

एक विशिष्ट कहानी रचनाकाल १९५०

(‘भारतीय संस्कृति का इतिहास रचनाकाल में नौ मास तक आचार्यश्री साधातिक रूप से रूपा रहे। उही दिनों एक राति दो बजे उठकर उन्होंने अपने सिरहाने बड़े चब्रसेन को यह कहानी बोलकर लिखवाई थी।)

ऋतु बड़ी सुहावनी थी, और मित्र मण्डली मोज में थी। चाय और सब लवा जमा गरमागरम टेबिल पर सजा रखा था। वसों हां गरमागरम बहम चला रही थी। बीच बीच में हँसी के ठहाके भी चल रहे थे। मित्र मण्डली प्रहुत खुश थी। इसी सप्ताह कोई दो लाख रुपया मुनाफे उनकी जेब में आया था, जो बैंक में जमा था। किन्तु जिसकी गरमी और स्फूर्ति सत्रके मस्तिष्क में थी। सत्रके व्यंग का क्षेत्र रघुनाथ बाबू थे। जितना मित्र लोग उन्हें उत्तेजित कर रहे थे वे प्रसन्न हो रहे थे।

इसी समय एक भिखारी गीरे में वहाँ आकर खड़ा हो गया, और अपनी त्रिनौनी आँखा में टेबिल पर सजी हुई प्रस्तुतियाँ को लनचाईं दृष्टि में दगने और अपने होठ चाटने लगा, पर तु कुछ कहने का उसे साहम नहीं हुआ।

रघुनाथ बाबू एकाएक उत्तेजित होकर कुर्मा में उठ खड़े हुए और हथेली पर मुक्का मारकर रोपपूर्ण आग्रह में बोले उठे—‘यह दगा यह दीन हीन गढ़ा धिनौना आदमी जो सामने खड़ा है, दुनिया की सत्रके त्रनी रखाई है। मैं कहता हूँ इसी की विजयानिष्ठा सबसे बड़ा काय है।’

मित्र मण्डली ठहाका मार कर हँस उठी, पर तु रघुनाथ बाबू ने इसकी कुछ परधान करके उसमें कहा—‘चल आओ, यहाँ त्रयो।’ उताने आगे बढ़कर उसका हाथ पकड़ लिया और कुर्सी पर बैठा लिया। त्राय का प्याना और नास्ता उसने आगे पेश करके कहा—‘स्वागो पित्रा दोस्त।’

उस घृणित और ग्रथ त्रित्यप्त भिक्षु ने यह समझा त्रग सत्रग का द्वार खुल गया, और जतदी जतदी स्वादिष्ट नास्ता और चाय गन में उतारने लगा।

एकदम वातावरण शुभ्र हो उठा। मित्र मण्डली त्ररत त्रुसिया छोडकर उठ खड़ी हुई और सब क्रोधभरी आगा में रघुनाथ बाबू को और रग भिखारी को देखने लगे। गोपाल त्रात्र ने कहा—‘रघुनाथ त्रात्र, यह तुम्हारा त्रला अत्याचार है। तुम्हें यह भी सोचना था कि यह तुम्हारा घर नहीं है।’ और फिर एक महाशय ने आगे बढ़कर टेबिल का सत्र सामान उस भिखारी की भोली में गाल दिया और टेबिल को उलट कर कहा—‘भाग। भाग। दूर हो यहाँ से।’

विचारा भिखारी खाता खाता भयभीत मुद्रा से मित्र मण्डली को देखता हुआ

चला गया। यह देखकर रघुनाथ बाबू ने क्राव मे आकर कहा—‘यही आप लोगो का शिष्टाचार हे, और यही सभ्यता हे ? कसी लज्जा की वात ह ।’

मित्र मण्डली का मूड खराब हो चुका था, और सभी मित्र क्रोध आर घृणा से रघुनाथ बाबू को घूरते हुए अपनी अपनी कारो से बठकर चले गए। लेकिन रघुनाथ बाबू गुम्से मे भरे हुए कुर्मी पर अचल बठे हुए थे। मेजवान गोपाल बाबू ने कहा—‘रघुनाथ बाबू यह तुम्हारा घोर अत्याचार और अशिष्ट व्यवहार ह। तुम्हे इसपर लज्जित होना चाहिए।’

रघुनाथ बाबू ने कहा—‘लज्जित तो हूँ कि तु अपने व्यवहार के कारण नहीं, तुम्हारे व्यवहार के कारण। तुमने दुनिया की सबसे बडी इकाई की पूजा निष्ठा की भावना हृदय से निकाल दी। कैसी लज्जा की वात हे !’

यह तुम्हारा कृत्रिम समाज जिममे एक मनुष्य घृणित, वहिष्कृत और दूसरा समाज का अविपति है। यह तुम्हारा समाज जीवित प्राणियो का समाज नहीं है। जस गोदाम मे एक के ऊपर दूसरी बोरी लदी रहती ह वसे ही तुम्हारा यह समाज हे। जिसमे मनुष्य ही मनुष्य पर लदा हुआ है। यह समाज का सबसे बडा कलकित जीवन है। इम समाज का नाश हो, और विश्वम मानवप्राणी, जो दुनिया की सबसे बडी इकाई है, सुखी स्वतत्र और आनन्द से परिपूरण हो।’

गोपाल बाबू ने कहा—‘कि तु तुम समाज का क्या रूप चाहते हो ?’

रघुनाथ बाबू ने उत्तजित होकर कहा—‘मैने तो कह दिया कि वह दीन हीन, घृणित व्यक्ति दुनिया की सबसे बडी इकाई है। उसी की पूजानिष्ठा मनुष्य का सबसे बडा कत्तव्य है।’ बातचीत मे कुछ रस नहीं आ रहा था, रघुनाथ बाबू अनमने से उठ खडे हुए और बिना ही कोई शिष्टाचार प्रकट किए चल दिए। गोपाल बाबू ने उ हे रोका नहीं।

(आचार्यश्री की लेखनी से लिखी गईं सबप्रथम कृतियाँ, जो उनकी स्कूल डायरी से उद्धृत की जा रही हैं। यह बालकाल और प्रारम्भिक स्कूली जीवन की रचनाएँ हैं। स्कूली जीवन के बाद १९२४ में उन्होंने कुछ और पद्य रचनाएँ कीं और जब भी भावना उठती वे अपने ढंग की नई पद्य रचना करते थे, पर तु कुछ को छोड़कर, उन्हें कभी प्रकाशित नहीं कराया, वे कापियो पर लिखी रखी रही। आचार्यश्री ने स्वयं को कभी कवि स्वीकार नहीं किया, केवल अपने मनोरंजन के लिए ही वे ऐसी रचनाएँ किया करते थे। वैसे उन्हें सांस्कृतिक संगीत का बहुत चाव था। ५० वर्ष की आयु तक वे अवकाश के समय हारमोनियम पर देर तक पक्के राग अलापा करते थे। अपनी तृतीय पत्नी को, उनकी विशेष भिरचिदेल्ले", वे स्वयं सांस्कृतिक गायन और अलाप की श्रेष्ठ शिक्षा देते थे।)

(सब प्रथम रचना रचनाकाल सन् १९०७)

१ उट

एक बस्बा हे सिफ दरावाद ताको नाम है ।
 वा शहर के बीच मित्रो बद्यगाउ नाम है ॥
 क्षणिय चन्द्रमूल, चतुर्मेन मेरा नाम है ।
 विद्यार्थी हूँ सिफ पढने का ही मेरा काम है ॥
 विद्या न मुद्रि पाम है, गुण ज्ञान कुछ मुझम नहीं ।
 अशरग शरग, परमात्मा की शरण मैं है गही ॥
 सग्रह वरु पर वस्तु यह उच्छा मेरे हृदय भई ।
 ईश्वर का तेहर नाम कर मैं भगती मैंने लई ॥

२ दोहा

पग शोध त्रियोदशी, जगत् रू मगावार ।
 युग रमे अट शक्ति विक्रमी, सग्रह रच्यो सभार ॥

३ प्राथना

गजर अमर जगदीश मान,
 निर्णिकार आनन्द मान,
 ब्रह्मरूप प्रकाश मान,
 परमानन्द अनादि मान,
 मुर मुनिहि वरत है ताको ध्यान,
 ताहि स्यो न भजत है रे अग्यान,

चतुरसेन मन ताहि मान,
जो ह प्रिद्या बल निवान,
लिखत सग्रह 'चतुर' आन,
जगदीश्वर को मान ध्यान,

४

हे परमानन्द श्री जगदीश्वर,
ब्रह्म रूप दयालु ईश्वर ।
शक्ति मान जगत के कर्ता,
कृपा सिन्धु सुजन दु ख हर्ता ।
आनन्द प्रिय मुद मगल दाता,
विद्या वारिनि बुद्धि विवाता ।
मॉगत चतुरसेन कर जोरे,
बमहूँ दयानिनि हृदय मोरे ।

५ विद्यार्थियों को उपदेश

(१)

सुनो सकल भारत के लडको ।
जिससे पावो तुम सब धन को ।
मानी धनी बडे हो जाओ ।
अरु जीवन का लाभ उठाओ ।
सत्पुरुषो के उज्ज्वल काम ।
निज साधो तुम काम तमाम ।
द्वेष ईर्ष्या देई भुलाय ।
सीखो सकल काम मन लाय ।
तुमसे इक विनती हे यार ।
कभी कभी देखो अखबार ।
दुनिया मे क्या होता आज ।
कैसा समय पलटता जाता ।
समय वायु बहता किस ओर ।
मरते कटते है किस छोर ।
भारी युद्ध कहाँ होता है ।
कौन हार विजय लहता है ।

(२)

पढ लिखकर मत बनो गुलाम
चालाकी से सावो काम ।
समाचार सब पढो पढाओ ।
जिससे सभ्य यहा कहलाओ ।
अपना काम करो चित लाय ।
जो होवेगा अति सुखदाय ।
पढ लिखकर जानो इतिहास ।
जिससे नही होवे उपहास ।
जो जो जाति सभ्य कहलाती ।
अखबारो को वह पढवाती ।
बल शिक्षा को वह है देती ।
अगर नही तो जेल भेजती ।
जो जो समय गप्प मे खोते ।
खा पी कर आलस से सोते ।
वही समय पढने मे लाओ ।
समय चूकि नहिं पुनि पछताओ

(३)

जब तुम घर मे पैसा पाओ ।
 अखबारो को उसमे लाओ ।
 देश बात सब जगह उठाओ ।
 शिल्पकला वाणिज्य फलाओ ।
 देश प्रदेश घूमने जाओ ।
 विद्या कला यहा पर लाओ ।
 जिससे मातृ भूमि कृत्याण ।
 हो जावे तो अपना मान ।
 अखबारो को अगर पढोगे ।
 इतिहासो को अगर पढोगे ।
 बडो बडो को तब जानोगे ।
 सत्पुरुषो को सम्मानोगे ।
 मातृभूमि की वृद्धि मनाओ ।
 अखबारो म चित्त लगाओ ।
 बनो बहादुर वीर साहसी ।
 हिम्मत करो न होऊ आलसी ।

(४)

उप याम नही पगो गवाणे ।
 दियामलार्ड मो सब जाले ।
 इतिहासा से प्रेम बढाओ ।
 जिससे वीर धीर रुहलाओ ।
 पृथ्वीराज हमोर हठी का ।
 प्रताप राना मानामह का ।
 बाबर अकबर शाहजहा का ।
 अोरगजेव अर सभाजी का ।
 हाल पढो सब चालाकी का ।
 वीर शिवाजी अोर कदी का ।
 इनके उज्ज्वल यशनामो को ।
 अर्नित करो अपने काना को ।
 उठो आयुपुत्रा नही साओ ।
 समय नही पशुओ सम खोओ ।
 भगर बीच म होकर नायक
 बनो रुहाओ नायक लायक ।

६ उन्मत्त भक्त और भक्त वत्सल

यह भक्ति हे वह भक्त हे ।
 यह देव हे वह दास हे ।
 यह शासक हे सब विश्व के ।
 वह निबत शासित वापुरा ।
 तै भेद हे यह गहरी ।
 हृदय राम मिले तोऊ आर व ।

सनत वह रही दोऊ अोर से ।
 प्रियतन धार प्रियुद्ध प्रेम की ।
 उन्मत्त दशा तेही भक्त की ।
 हरि को हरि स्वरूप लुभावनो ।
 खचित चित्र मनारम है कियो ।
 'चतुर' चित्रकार विचित्र ने ।

७

(अपने मित्र पण्डित छोटेलाल को लिखा गया पद्य पत्र लेखन काल २०७१६१०)

प्रगय पीयूष निवेश आनंद मोदप्रद पण्डित प्रवर ।
 श्री युक्त ओटेलान प्राचहु मे नम सविनय प्रवर ॥
 प्रिय पत्र तब कर सो परमि वर मोद उर मे है छयो ।
 ह त परिमित बुद्धि मम कहि भाति सो जात्रे कह्या ॥
 धन भाग हमारी टीपटाप ऐसी भाई तुम्हरे मना को ।

पढ दोइन को ह्वै गये दग अरु भूल गए अपने तन को ॥
 यह स्वाथसिद्धि कहा सीखी है कर दया मिखाय देहु हमको ।
 कवि होत हु प कह काय दियो द्व पक्ति न निज अनुचर को ॥
 अज्ञात तुम्हारी वाणि योग्य नही रही हमारि योग्यताई ।
 बडे बडे सुने तुम्हरी कविता हमसो की पूछ कहा भाई ॥
 हे ठीक यही म तव्य चाल दुनिया की यही चली आई ।
 किससे करे शिकायत किस पर चाले हमरी प्रभुताई ॥
 ऊधोराम स्वनाम योग्य है एक रसिक पंडित भारी ।
 हमरी भी कई किताब उहोने ही करवाई हू जारी ॥
 भेज देहु उनके जिय मे जो जच जावेगी अति कारी ।
 उ ही को छपवाय लेयगे अपर तुमहि मिली हे सारी ॥
 महाभाग सौम्य हरिचंद यद्यपि तव सम्मति सो समरत र हे ।
 हमको इहिसो अति गरु अमोह सोभाग्यशालिता किमि ह्वै है ॥
 ईश दया अनुकूल पठन पाठन प्रबव सब शुभ रै है ।
 कर काय पूरा पुनि वेगि लौटि प्रिय जनन मुखहि दशन करि है ॥
 खूब उडाहु हमारी हसी प्रियवर अब तुम्हारी आन बनी है ।
 कविराज कहो या महान् कवि निज जिह्वा के आपही बनी है ॥
 हमहू को कभी अवसर मिली है यह बात बढी बेढग ठनी हे ।
 हरिच द टीकाराम आदि सुभ जनन हमार नमोस्तु जनी हे ॥

८ किसी अन्य मित्र को लिखा गया एक और पद्य पत्र
 प्रियवर प्रणय अथाह, मोद मूर्ति आन द सदन ।
 श्री रघुबीर बहोरि, नमो नमस्ते बाबु मम ॥
 पाई पाती आज तव हस्ताकित एक मै ।
 ठाडि अखिल मम काज प्रमुदित ह्वै वाचन लग्यो ॥
 मोर हतो अपराव, ऐहि कारण मागी छमा ।
 लजित होत कत साव, तुम्हरो विमि अपराव प्रिय ॥
 पत्र सक्यो नहि बाच कहा लिरयो मे नेरु हो ॥

९ अघट घटना

स्वच्छ सरोवर चमक रहा था जोवन मे मस्ताया ।
 कमल कली वा खिली खडी थी साजे रूप सवाया ।
 एक दृष्टि मे ही मोहित हो तू उस पर भरमाया ।
 दिन भर पीता रहा मधुर मधु जब दिन छिपने आया ।

नली सिफुड कर मुडी, तुझे यह एक येन मा भाया ।
 कठिन साल मे सदा महज मे तने त्रेद बनाया ।
 मृदु बान मे कि तु प्यार-रस पजा रहा अलमाया ।
 वही रूप आखो म था, मन गटा था हुतासाया ।
 हृत्त-गी का तार वहा रक्वा था मिता मिलाया ।
 कि-तु हुआ क्या ? उसी रात का एक मत्त गज आया ।
 उभी नाल को तोड हाय दाता मे दबा चबाया ।
 अब तुम तो चल बसे, स्वप्न सा हुआ तुम्हारा साया ।
 कि-तु तुम्हारी इस घटना ने मुझे जनून चढाया ।
 जीवन के जजाल जाल मे मन था सदा फँसाया ।
 जीने मे खुश था, मरने का भय था बहुत समाया ।
 कि तु तुम्हारा मर मिटना कुत्र ऐसा मन को भाया ।
 उसी तरह बन्दी होकर मरने को जी ललचाया ।
 किसी समय तुम से मिलने का अब जो अवसर आया ।
 उसी समय पूछेगे तुमसे उस रहस्य की माया ।
 ओ रसिया रस मस्त ! भला उस विष मे क्या रस आया ।
 कसे तने सहा हाय ! घुट घुट कर प्राण गवाया ।

१० अमीरजादे

तोड तर माल लोट मार हम गद्दो पर,
 दोस्तो मे बैठ के शतरज ताश खेलेगे ।
 देह का दुश्मार भार ताद के चलेगे कहाँ ?
 गद्देदार मोटर मे बठ मजा ले लेगे ।
 हम है अमीरजादे नाजुक मिजाज भना,
 कचन सी काया सा कसे कष्ट भेलेगे ?
 नाकर नमीन काम करेगे हमार राम,
 उमगी के पत प त्रैठ डड पत्रगे ।

११ बी० ए०

अरुड के चताये तो कटेगे नाग, अरुड है,
 उमीलिन नमर नमान सी भुकाई है ।
 आयो पर रीभती ही रस मिरा, उस लिए
 सोने की कमानीदार 'ऐनक' चढाई है ।

कोट सूट बूट से सुहावना शरीर ढाप,
 सभ्यता की शान लेडियो मे दरसाई है ।
 जीवन की साध पुजी० बी० ए० पास हुए, पर
 किस्मत के खेल देखो, नौकरी न पाई है ।

१२

अजी रायसाहेब,
 तसलीम, अस्सलाम सौ बार ।
 शुक्रिया लाख बार ।
 तुम सलामत रहो हजार बरस, हर बरस के दिन हो पचास हजार ।
 किस तरह बडाई करू ?
 आपकी दौडधूप की,
 छानबीन की ।
 बडा किया उपकार, बचाए रुपए, कटाया टिकट एक पीला,
 थडक्लास मे ठूस हमे तरते पर ला लटकाया ।
 खूब किया मनभाया ।
 चल पडी रेल,
 बलखाती, इठलाती, इतराती, विल्लाती, चिल्लाती,
 भोके खाती आग उगलती, धुआ फकती, पानी पीती,
 जीती नागिन सी फुफकार मारती ।
 चोचर, भपताला, चौताला,
 इकता लतिताला बेताला,
 ठुमक चाल से ठोकर देती,
 गाती राग विराग, विहाग सुहाग, सोहनी ध्रुपद,
 रयाल, सुरताल, तान तानारीरी,
 धुक् पकर, पकर
 धुक् पकर, पकर, पट पड पड पड, खड खड खड खड ।
 सुना हुआ बेहाल ।
 आए स्टेशन नए नए ।
 खाने वाला, दाने वाला, नानी वाला, नाना वाला,
 अजनाला, क्या जानू क्या क्या वाला
 आला,
 कही नदी और नाला ।

ढरो पजारी लाला, खीन प्रताशे मे प्रियरे थ,
 दर उर सत्र बने हुए गुलाला ।
 सब दीड पडे,
 बिन पूत्रे घुम पडे,
 कुछ गार कुछ काने, कुत्र प्रीबी बच्चा वाले,
 कुछ पागल मतपाने, कुत्र उदियन, कुत्र मरियल,
 कुत्र अडियन, कुत्र लठियल साले,
 गदर सा मचा खुदा की कमम आख बन्द कर,
 सास रोक कर, चुपक रहा काने म मे ।
 चल पडी रेल,
 कुत्र रुकती, कुत्र मुकती, पानी पीती, चितलाती बितलाती ।
 जब चाहे प्रखीफ खडी हो जाती ।
 गाड अभागा,
 सीटी देता, हरी हरी भण्डी दिखनाता, हाथ हितानाता,
 किन्तु, रेल के मनमे होता चरती, अथवा गही खडी रह जाती ।
 एक बडे सरदार,
 डाक्टर ग दासा सलवार,
 सिर पर भारी पगडी, मुह पर घास फूम का जगल,
 पडे हुणे थे श्रीघे तरते पर, जरा उकसकर छोडा गोला,
 मे चौका ।

१३ अलभ्य दान

सुंदर इस जग म,
 स्वर्ग फिरण रवि की ।
 शशि की रजत मुधा,
 ऊषा का दिव्याताक ।
 निशा की सुखद गोद,
 यह अनन्द नभ मण्डल ।
 हास्यपूग तारागण,
 कलरव, जनरन, कलकल ।
 जल की जीवन धारा,
 पवन प्रवाहित सजीवन ।

१४

हृदय ओर मस्तिष्क,
निमाण कल्पना शक्तिमय ।
भाव भावना विस्तृत,
अनथक सृष्टि प्रवाह ।
नर को नारी नारी को नर,
दोनों को सयुक्त पुत्र ?
नैसर्गिक सयुक्त सूत्र,
प्रेम, त्याग पुरुषाथ ।
माधुयपूर्ण यौवन ।।।

१५ दाता

यह सुन्दर जग ।।।
विश्व विभूति युक्त ?
यह विश्व सम्पदा ?
हम अधम प्राणियों को ।
किस परम पुण्य के बदले,
सम्पूरा स्वत्व पुत दिया ।।।

१६ आँखमिचौनी

अब मेने पहिचाने हो ।
कब से पास खडे थे स्वामी ! नीरव निपट अजाने हो ।
पगली हुई फिरी जीवन भर, सदा पास ही खडे रहे तुम ।
तनक न आहट मिली प्यारे, ऐसे निठुर सयाने हो ॥ अब० ॥
हृदय धाम मे आग लगी है, आँखियाँ तरस रही है ।
अब खो जाओ तो मै जानू, तुम कसे मनमाने हो ॥ अब० ॥
विकल वेदना लिए फिरी मै रही विपत्ति मे सदा घिरी मै ।
सूख गया जीवन रस सारा, क्या इमसे अनजाने हो ॥ अब० ॥
ऐसी आखमिचौनी खेली, हुई पुरानी नई नवेली ।
मैने भला कहा सोचा था, तुम ऐसे दीवाने हो ॥ अब० ॥
अब जीवन के अन्तिम छिन मे, यौवन के अस्सगत दिन मे ।
पा पाये हो हे जीवन धन, अब कैसा हठ ठाने हो ॥ अब० ॥

१७ सजीवन

सजीवन की सुखद कामना हृदय धाम मे वास करे ।
 जीवन के सताप नष्ट हो अमृतमय प्रस्वास भरे ॥
 बने निरोगी काया, पात्रे अभित आयु निर्विघ्न सभी ।
 न हो विषय वासना प्रबल, दासत्व इन्द्रियो का न कभी ॥
 नव्योल्लसित हृदय मे तिल भर भीति मृत्यु की रहे नहीं ।
 वन मे, जन मे, जन पद मे भी शुभ्र भावना रहे सही ॥
 दिव्य जगत मे दिव्य देह ले, पा आशामय नवजीवन ।
 नव दिन मे आशीर्वाद प्रभु ! हो—पावे हम सजीवन ॥

१८ वह और यह रचना काल १९२०

वह क्या देखेगा दुनिया को जिसने प्रभु को पहचान लिया,
 क्यो ककड पल्ले बावेगा, जिसने हीरा पहचान लिया ।
 मन भर छक कर जो तृप्त हुआ, कण पर क्यो मन तरसावेगा,
 वह गने को क्या समझेगा, जिसने अमृत का घूट पिया ।
 चिन्ता चित्त म क्यो वारेगा, क्यो फाद गले मे डालेगा,
 एक दिन दुनिया से जाना है, जिसने मन मे यह ठान लिया ।
 जिसने सत गुरु का ज्ञान लिया, क्यो मोल मुसीबत लेगा वो,
 क्यो प्राण अकारथ रोवेगा, जिमने विष को मिष जान लिया ।

१९

प्रबोध

सपीरी ! जटदी खोल किवाड ।
 कब से द्वार खल प्रिय प्यारे,
 तुझको रहे पुकार ।
 सावधान हो चेत सवरा-
 समथ न बारम्बार ।
 चले गये, ले ! मन भर सोले-
 पूरे पर पसार ।
 आग लगे ऐसी निदिया मे-
 बार बार धिक्कार ।

अनुताप

सपीरी मेरी मति बौराई ।
 पिया आउन की बाट ताकती
 सिगरी रैन गवाई ।
 थकित हुण मन शिथिल हुण तन,
 पलकन निदिया छाई ।
 मै भोरी देमुष हो सोई,
 पिय ने बहुत जगाई ।
 लौट गये तब आहट पाई ॥
 घबराई, उठ धाई ।

२० ओ अमरकाल ॥

(इस कविता का रचनाकाल १९२५ के लगभग है)

१ नव्य वेश मे,
 २ रा जरा तज,
 ३ ज,
 ४ मदिवस के पुण्य योग मे—
 ५ प्रभात मे,
 ६ मा की रक्ताभ छटा पर,
 ७ षण्णुपादामृत मे प्रश्वासित हो—
 ८ र आये हो ?
 ९ ओ !
 १० सुम कली का हास्य चूम,
 ११ व पल्लव पर स्थिर बैठ,
 १२ सो प्यारे, भूमो प्यारे,
 १३ प चूटो,
 १४ तृप्ति पिओ,
 १५ े रसिया !
 १६ े अमरकाल !
 १७ म सदा पिओ यह अमृत ।
 १८ विहङ्ग,
 १९ रते जीते अज्ञान जीव ?
 २० लसित, उन्मत्त,
 २१ दक ताल पर,
 २२ धुर सोहनी के स्वर मे दे रहे,
 २३ त्त भरव की तान ।
 २४ ,
 २५ ोरा पन्थ का पथिक,
 २६ ॥जन्म तुम्हारा ऋणी ।
 २७ कित !
 २८ शथिल ॥
 २९ वच्छिन्न ॥
 ३० आशा विहीन,

निष्प्रभ, आकुल, सजल,
 कि-तु—
 चाहभरे नयनो से,
 यह देख तुम्हारा नव्य रूप,
 हा ! नव्य रूप !
 उस अतीत की मदिरा का मद,
 जिसके रग २ जगत रगीला देखा था,
 उस दिन का नष्ट स्वप्न,
 हा ! नष्ट स्वप्न,
 ओफ ॥
 आज अचानक दीख रहा !
 ओ अमर काल !
 प्रिय बन्धु ! सच कहो,
 कितने यौवन,
 कितने सुकुमाय,
 कितनी आशा रसपूरण जीती कुसुम कली
 तुमने—
 इस मुख गह्वर मे लीन करी !
 सब के रस का निष्कष पिया ??
 अब,
 इस रस मे ?
 इस रग मे ??
 इस ढङ्ग मे ???
 यह मनमोहक रूप ?
 अति नवीन !
 अति अपूर्व ॥
 अति सुन्दर ॥
 ओ ! अमरकाल !
 तुम आये हो ?
 आओ, आओ आओ ।

(आचार्यश्री गांधीजी को युग पुरुष मानते थे । गांधीजी के ऊपर उठने कुछ पद्य रच नाए की थी, जि हे हम यहा एकत्रित करके प्रकाशित कर रहे हे ।)

२१ नई नजर रचनाकाल १९५२

१

नई नजर,
 नई नजर यह तरी ।
 दुनिया न उमका देखा—
 वह हँस दी ।
 हस हँसकर उसने हाथ पटाया, हाथ मिनाया,
 हृदय जुडाया ।
 युग युग से त्रिच्छुना मिना मानना ना कुल,
 आकुल,
 व्याकुल,
 सत्रस्त,
 और सदिर,
 जन जन के मन का कतुप गया,
 आश्वस्त हुआ वह,
 आशा मे उलामित,
 प्यार से छन ड्रल,
 वह निकल पडा निभय
 हम हसकर उसने हाथ मिनाया,
 हृदय जुनाया ।

२

नई नजर यह तरी थी ।
 जिमने दुनिया के हृदिभाग को बदल दिया ।
 जीवन को नया महारा दे न चना प्यार ही दुनिया मे ।
 'जियो और जीने दो'
 यह सत्रको भाई बात नेगी,
 सत्रकी मनचाही बात पुई ।
 सब बोल उठे भाई भाई, तुम जियो और जीने दो हमको,
 जियो और जीने दो ।
 हम मिल-जुलकर घुल-मिलकर,

हम तुम सब,
शांति माग पर चले
नवयुग का निर्माण करे,
जहा—
जन जन निभय हो ।
जन मन स्वतन्त्र हो ।
विश्व सिमटकर एक अखण्ड कुटुम्ब बने ।
मानव दुनिया भी सबसे बडी इकाई हो ।
सबसे बडी इकाई ।

३

लोहे से लदा हुआ,
लोहू से भरा हुआ,
अग अग मे घायल—
चला जा रहा था मनुकुल ।
डग मग उठा पग ।
मृत्यु क्षितिज की ओर,
अणुमहास्त्र ने जहा मृत्यु कण विखराए थे,
जहा प्रलय के ताण्डव का सब साज जुटा था ।
जहा मनुष्य नरकुल घाती बनकर,
युग युग समृद्ध,
ज्ञान और विज्ञान विभूषित,
भाव भावना और कल्पना से आपूयमाण
कला कौशल सम्पन्न समूचे नृवश को—
निश्शेष करने के साधन जुटाए
मृत्यु का माध्यम बना था ।

४

बना लिया तूने उनको ।
नई नजर देकर अपनी,
अक्रोध किया क्रुद्धो को,
अभय किया भयभीतो को
अब वे हँस-हँसकर हाथ मिलते हैं,
हृदय जुडाते हैं,

युग युग से बिछुड़े,
 आकुल,
 व्याकुल,
 सत्रस्त,
 और सदिग्ध,
 विश्व के जन ।
 यह नई नजर का चमत्कार है ।
 यह तेरी नई नजर है ।

२२ मनुकुल के अतिरथ
 ओ भारत के चौकीदार !

जब
 मनुकुल के अति मानव जन—
 रणामत्त, विश्व के महाप्राण अतिरथ—
 अग्निरथो पर बैठ,
 महा महा नरमेघ ठानकर अनुष्ठान—
 चल खड़े हुए,
 तब धरणि विकम्पित हुई ।
 प्रलय अभ्र उठ चले,
 वज्रनाद कर अग्निबाण नभ में त्याए—
 भूलोक अग्निमय हुआ प्रकम्पित ।
 मृत्यु सुदरी लगी नाचने थिरक थिरक,
 शकर का खुला तृतीय नेत्र—
 महा ज्वाल में भस्म हुई मानव सम्पद् ।
 उद्भासित हो,
 अग्नि महास्त्र ने,
 अग्नि विकीर्ण कर दिए एक क्षण में
 आवाल वृद्ध नर नागर
 निर्जीव हुआ वह नगर
 यो आकुल मनुकुल—
 रक्त स्नान कर पूत हुआ,
 अतिमानव जन मरण शरण हो गए ।
 दम्भ वितृष्णा प्रतिहिंसा ने न्याय तुलापर,

तोला प्राणो को,
 लोह लेखनी लेकर भाग्य लेख लिख डाले ।
 महाराज्य नि शेष हुए ?
 दशनीय जनपद चिर खण्डहर हो मूक रुदन रो उठे ।
 कोटि कोटि जन,
 नारी नर बाल वृद्ध—
 शिशिर विकम्पित क्षुब्ध क्षुब्धित
 रोग शोक दारिद्र्य निपीडित
 जीवित मृत हो
 लगे भटकने भूतल पर
 तब तूने
 निश्चल, निद्र द,
 उस महाध्वंस से भारत की रक्षा की ।
 रक्त चिन्ह से दूर,
 सयम से पूरित स्वर से—
 परिजन समग्र के साथ
 रामधुन गागा कर
 तू रहा जागता
 और जगाता
 सावधान रह ।
 श्वेत दप हो खण्ड खण्ड भू पतित हुआ,
 विश्व सम्पदा के अभिलाषी सबस्व हार कर भग्न हुए ।
 तब तेरा रक्षित भरतखण्ड
 एक नया कदम आगे रख—
 मुक्त हुआ उन्मुख पथ पर
 दुबल तन
 निश्चल मन
 अडिग आत्मबल—विमल चक्षु,
 नव्य काल की कूटनीति और वमनीति का दृष्टा
 तू गाता ही रहा राम धुन—
 अपनी धुन मे
 वही रामधुन

२३ अग्निरथ अभियान

(गाँधीजी के महाप्रयाण पर लिखित)

१

अग्निरथ अभियान पर तुम चल पड़े ?
 अभिराम, एकाएक ??
 वचक घूत लुटेरो ने पा घात,
 पातकी जन बल ले,
 खुल खेले, क्रूर, अमानुष,
 निदनीय, अपवित्र
 न कहने योग्य खेल
 मनुकुल को क्लुपित किया
 तुम चल पड़े, अभिराम एकाएक ??
 रामधुन करते रहे,
 ठग लिया तुमने हमे,
 हम रह गये,
 तुम चल पड़े,
 भू को अरक्षित छोड़,
 नश्वर—
 देह को कर व्याप्त ?
 तुमने पुकारा राम,
 हमने पुकारा राम,
 रतब तुम बैठे रहे कूटस्थ,
 राम का पाया न कुत्र गदेश ।
 पाया न कुछ सदेश ??
 त्रिकल हो देखा हमे,
 हमने तुम्ह,
 हम क्या कर ?
 कैसे हमारे काज माये राम ?
 रामधुन करते रहे हम,
 रामधुन ।
 मृत होकर काल आया,

२

उत्प्रेरणी,
 लोह नलिका को ठिपाकर।
 हम सड़े थे आसरे,
 तुम आरहे थे कुछ अधीर,
 राम मे अरदाम करने,
 नित्य प्रति की भाति ।
 यह क्या हुआ ?
 लोह नलिका ने पुकारा—‘राम’,
 फिर पुकारा—राम,
 फिर पुकारा— राम,
 भुग गये भुगते गये भूपात कर,
 मृदुमद स्वर मे कहा—ह राम,
 राम को तुम पागय
 अपग्न किया निज गात ।
 मौनमुद्रा मे अतस्थित,
 फिर न सोता नैन,
 फिर न बोने पै ।
 राम का ही तेज,
 द्रवित जमाना बिदु जनकर,
 छू गया शुभ गात
 पा गय प्राप्तय, आगय निज धाम,
 सफन कर अभियान
 अब किया विश्राम ।
 पा चुके प्राप्तव्य तुम तो,
 कि तु हम ? राह के राही,
 कहा, अत रात वाट,
 दूर गजिल, अधेरा घोर है,
 भय है, थके है, और आहत हैं ।

(आचायश्री की अपने बालका १ की मधुर स्मृतियों से ओतप्रोत बाल सुलभ अप्रतिम पद्य रचना । मूल पाण्डुलिपि पर रचना काल नहीं है, परन्तु अनुमानत इसे उन्होंने १९०६ के आसपास मिराबाबाद स्कूली जीवनकाल में लिखा होगा । पाण्डुलिपि का कागज और स्याही अब से पचास वर्ष पुरानी प्रतीत होते हैं ।)

१

कैमा सु दर मूय चमकता था वहा,
हर भरे कैसे सु दर वे खेत थ ।
पीपल का वह वृक्ष बुजुर्गों से बडा,
खडा हुआ झूमा करता था किम तरह ।
आधी चलती थी जब आषाढ मे,
कच्ची करी खूब टपकती टपाटप ।
नमक जरा सा ले वगिया मे पहुँच कर,
चखचख कर मै खाता था किम मौज से ।
उस पीपल की लम्बी लम्बी डार पर,
सावन मे झूला पडती थी ठाठ से ।
गाव भरे के बाल बालिका का वहा,
ठठु लगा रहना था दिन भर बेतरह ।
पैग बढाया करता था मै जोर से,
ग्राम बालिकाए कहती थी व्यग्र हो—
'भया ! हमे झुला दो पहले तनिक सा ।'
खूब झुलाता था मै सौ सौ बार ही ।
गाती थी वे हिलमिल बडे उछाह से,
स्वच्छ गीत सावन के मीठी तान से ।
नैर्मागिक आनन्द तरगा से भरा,
रहता था वहा ओत प्रोत वातावरण ।
बडे भोर के तडके उठकर पिता जी,
एक चिलम पूरी पी कर आराम से ।
सानी कर देते थे पहले भस की,
फिर जगल मे जाते थे शौचादि को ।

२

लोट वहा से कुए पर मुह हाथधो,
निरालस्य घर आते थे उत्साह से ।
भस मजे म भर लेती थी पेट को,
वार काढते थे वे फिर तत्काल ही ।
इतना काम खतम हो चुकने पर कही,
पौ फटती थी कुछ-कुछ इतनी देर मे ।
फिर गाते थे मधुर प्रभाती बैठ कर,
'उठ भया, कहते जाते थे बीच मे ।
मिठरू पाजी को कुछ ऐसी टेव थी,
नकल पिता की करता था युन बाधकर ।
पिता पढाते थे बठाकर हाथ पर,
चोच होठ से लगा चूमते थे उसे ।
माता उठ कर उनसे भी कुछ पूव ही,
दही बिलो लेती थी एक मटका भरा ।
बच्चे बडिया गाय भस के पास जा,
थोडा सा चोफर देती थी प्यार से ।
मे मस्तानी निदिया मे भरपूर ही,
पडा सुना करता था सुख से वह ध्वनि ।
कभी धार की धरमर का नाद प्रिय,
कभी रई का घमर घमर गम्भीर रव ।
नीद बहुत आती थी मुझको उन दिनों,
छकडो मे चलती थी बस क्या ठीक था ।
सोने को दिन रात सदा तैयार था,
खाते खाते ही सो जाता था कभी ।

१

नीद उचट जाती थी मेरी जिम घडी,
धुम जाना चुपचाप पिता की गोद मे ।
'कोन चोर आ घुसा ग्ररे । यह दौडना',
कहते कहते चिपका लेते हृदय से ।

फिर हा वीकर स व्या व दन पूरा कर,
च दन का आलेप लगा कर केसरी ।
चलने की तयारी तब दूकान लो,
होती थी, आन दभरे उत्साह से ।

माता भरकर एक कटोरा झाड़ ता,
डाल पात्र पक्का एक लोनी ता टना ।
ला देती थी पूज्य पिता के हाथ मे,
यही कलेऊ था गोरस अमृत मना ।

एक बोहरे की कोठी थी पास मे,
पूज्य पिताजी को पूरा ये मानते ।
लेन देन का करते ये व्यापार व,
जमा हुआ साहजारा दर का ।

बडा प्यार करते ये मुझको पूव मे,
पति और पत्नी दोनों सद्भाव मे ।
सदा उठा ले जाने थे त्र गोद मे,
सुला ठान देते थे गर्दे पर मुझे ।

बडे मोज म गेला करता था वहा,
हेर स्पण रये रहने थे सामन ।
थरु कर पीठे जत्र घर ता था नोटता,
भर लाना था कुत म मे वहुत म ।

बिचरा करते थे एक एक त्रे रा, मे
ता देता था म अम्मा की गोद मे ।
हस कर कहती माता तत्र शामोद स,
'भया मेरा बडा कमाऊ पूत है ।'

२

हँसता था मे खूब रजा कर तालियाँ,
लग जाता फिर किमी दूसरे गेल मे ।
माँ कहती 'अब सोजा भैया जरा तो,'
मैं कब मुनता था उसके ये चोचले ।

चदा बनिया बडा फाइया था मरा,
एक गाँख फानी थी उस क जूस की ।
हत्या दे बैठा रहता था हर समय,
उसी आन पर निश्चल खटे सा गटा ।

कभी नहीं हयकर बोले था किसी से,
मत्न रोपनी सूरत रहती थी बनी ।
एक भिजई एक धोती पोशाक थी
चीकट हुई बनी रहती थी मँल से ।

फकत एकदम था फक्कट ससार मे,
चूहे या बच्चा भी गर मे था नहीं ।
पट काट कर भी बरता था जोड कर,
मूट चीरता था कौडी पर नीच वट ।

प० पत्थर था पूरा पूरा सूख गट,
माला अत्तर भग आगवर था उसे ।
त्रि तु उँगाँवयो पर गिन सभी हिमाव को,
गात बान की मत्न निमाले या गरी ।

छटे उमाणे द नाई ता शे टका,
कभी खुरचत्रा लेता था वट चाद को ।
सदा रात को उम मनहस दुकान मे,
दिया टिमटिमाया करता था मरा मा ।

हबके का गुता अग्रर जरा फच्चा रहा,
उसे दुबारा फिर पीता था चिलम मे ।
मुझे लोभ था गुड के जरा लभाव ता ।
'चन्दरसेन' कहा करता था इसलिए ।

१

गुड रखा रहता तो था थाली भरा,
किन्तु मुझे पाजी देता था चने सा ।
और मागता तो कहता फटकार कर,
'चल चल, नही ठुकेगा मेरे हाथ से ।'

दिन भर तो मैं रहता था इस्कूल मे,
फिर करता था काम पिता के साथ मे
शाम हुई, कि फिर वीरज था ही नही,
भट कहता था, 'लाओ पैसा शाम का ।'

पूज्य पिता जी नित्य नम से शामको,
पैसा एक दिया करते थे चाट का ।
मला पैसा क्या लेता ? क्या मूख या ?
खूब चमकता चुन लेता था चाव से ।

पसे का तोडा हो जाता था कभी,
पूज्य पिता कहते थे—'देगे कल को ।'
'कल को लूगा तीन,' तभी मैं बोलता,
'एक कहा जावेगा पसा सूद का ?'

इस पर हंसकर पिता बोलते लाड से,
'कजदार तू भारी सब ही से रहा ।'
गर्वित सा होकर कहता मैं शीघ्र ही,
'तुमने भला मुझे समझा है बाबला ।'

शिशु शावक सा उछल कूद करता हुआ,
सीधा आता था तब मैं बाजार को ।
तरह तरह के धरे रहते थे खौमचे,
दही बडे वाबू के बनते थे खरे ।

उन्ही बडो की चाट लगी थी जीभ से,
धूमधाम कर अन्त पहुँचता था वही ।
किन्तु कभी वाँ पर खाता था मैं नही,
घर लाकर खाने ही का आदेश था ।

२

काम अदूरा छोड मुशीला पास आ,
कहती, 'भया ! हमे न दोग तनिक सा ।'
जी आता तो देता, वरना टाल कर,
कह देता, 'खासी हो जावेगी तुम्हे ।'

पिता पूछते क्या लाया ?' मैं बोलता—
'खाकर देखो,' कह धर देता सामने ।
सच पूछो तो मन रखने ही के लिए,
कभी कभी वे चखते थे मेरी चाट को ।

हसी मचल जाती थी मेरी जिस घडी,
किसी तरह भी वह रक्ती थी ही नही ।
पिता कहा करते, बेटा ! यो हर समय,
नही हँसा करते बेमतलब मूख से ।'

इसी बात पर कभी-कभी इस्कूल मे,
पिट जाता था व्यथ बिना अपरात्र के ।
कभी किसी बालक का झूठा नाम ले,
कह देता—'जी ! यही हँसाता है हमे ।'

मेले का दिन बडे मौज का रोज था,
उत्सुकता से तका करे या नित्य ही ।
उँगली पर गिन कटते थे दिन बीच के,
दो दिन पहले से मच जाती धूम थी ।

एक दुअर्री बधी हुई थी चाट की,
खरी परखवा लेता था मैं मात से ।
घरती मे एक छोटा कुल्हड गाढ कर,
गुल्लक मा ने छोटी सी दी थी बना ।

वही तिजोरी वही खजाना था मेरा,
ढेर भरा रहता था पैसो का यहाँ ।
छुट्टी के दिन गिनता था उनको सदा,
बडी सावधानी रखता था माल की ।

१

नीद उचट जाती थी मेरी जिस घडी,
धुम जाता चुपचाप पिता की गोद मे ।
'कोन चोर आ धुमा ग्ररे । यह दौडना',
कहते कहते चिपका लेते हृदय से ।

फिर न्हा धाकर स ध्या व दन पूरा कर,
चन्दन का आलेप लगा कर केसरी ।
चलने की तयारी तब दूकान को,
होती थी, आन दभरे उत्साह से ।

माता भरकर एक कटोरा छात्र का,
डाल पाव पक्का एक लोनी का डना ।
ला देती थी पूज्य पिता के हाथ मे,
यही कलेऊ था गोरम अमृत सना ।

एक बोहरे की कोठी थी पास मे,
पूज्य पिताजी को पूरा थे मानते ।
तेन देन का करते थे व्यापार वे,
जमा हुआ सात्कारा दर का ।

बडा प्यार करते थे मुझको पूव मे,
पति और पत्नी दोनों मद्भाग से ।
मदा उठा ले जाते थे वे गोद मे,
खुला ग्रेड दते थे गद्दे पर मुझे ।

बने मोज ग गेला करता था प्रहा,
ढेर रुपए रये रटा थे सामन ।
थक कर पीछे जत्र घर से था नोटता,
भर लाता था कुत म मे बटुन ग ।

मिस्तरा करते थे एक एक ने राह मे
ता देता था म ग्रम्मा की गोद म ।
हस कर कहती माता तत्र ग्रामोद से,
'भया मेरा प्रडा कमाऊ पूत हे ।'

२

हँसता था मे खूब बजा कर तालियाँ,
तग जाता फिर किमी दूमरे खेल मे ।
माँ कहती 'अब सोजा भया जरा तो,'
मे कब सुनता था उसके ये चोचले ।

चन्दा बतिया बडा फाइया था मरा,
एक गाँव कानी थी उस कन्जूस की ।
हत्या दे प्रठा रहता था हर समय,
उसी धान पर निश्चल खटे सा गटा ।

वभी नही हमकर बोने था किसी से,
सटा रोजनी सूरत रहती थी बनी ।
एक मिजई एक रोती पोशाक थी,
चीकट हुई बनी रहती थी मँल से ।

फकत एकदम था फक्कट ससार मे,
चूह का बच्चा भी घर मे था नही ।
पेट फाट कर भी धरता था जाड कर,
मूत चीरता था शौजी पर नीच वह ।

पढे पन्धर था पूरा पूरा मूस रह,
काना अन्धर भग अरावर था उमे ।
त्रि तु उँगनिया पर गिन मभी हिमाव को,
गान बान नी मदा रिफान ग यरी ।

छोटे उमा से द नार्द ना तो टगा,
कभी गुरचत्रा नता था वह चाद नो ।
सदा रात ना उस मनहम दुकान मे,
निया निमनिमाया करता था मरा सा ।

हुक्के का गुन अग्रर जरा कच्चा रहा,
उमे दुबारा फिर पीता था चिलम मे ।
मुझे लोभ था गुड के जरा लभाव का ।
'चन्दरसन' कहा करता था दसलिए ।

१

गुड रखा रहता तो था थाली भरा,
किन्तु मुझे पाजी देता था चने सा ।
और मागता तो कहता फटकार कर,
'चल चल, नहीं ठुकेगा मेरे हाथ से ।'

दिन भर तो मैं रहता था इस्कूल में,
फिर करता था काम पिता के साथ में
शाम हुई, कि फिर वीरज था ही नहीं,
भट्ट कहता था, 'लाओ पैसा शाम का ।'

पूज्य पिता जी नित्य नैम से शामको,
पैसा एक दिया करते थे चाट का ।
मैला पैसा क्यों लेता ? क्या मूख था ?
खूब चमकता चुन लेता था चाव से ।

पैसे का तोडा हो जाता था कभी,
पूज्य पिता कहते थे—'देगे कल को ।'
'कल को लूगा तीन,' तभी मैं बोलता,
'एक कहा जावेगा पैसा सूद का ?'

इस पर हँसकर पिता बोलते लाड से,
'कजदार तू भारी सब ही से रहा ।'
गर्वित सा होकर कहता मैं शीघ्र ही,
'तुमने भला मुझे समझा है बावला ।'

शिशु शावक सा उछल कूद करता हुआ,
सीधा आता था तब मैं बाजार को ।
तरह तरह के धरे रहते थे खौमचे,
दही बड़े बाबू के बनते थे खरे ।

उन्ही बडो की चाट लगी थी जीभ से,
धूमधाम कर अन्न पहुँचता था वही ।
किन्तु कभी वाँ पर खाता था मैं नहीं,
घर लाकर खाने ही का आदेश था ।

२

काम अधूरा छोड़ सुशीला पास आ,
बहती, 'भया ! हमें न दाग तनिक सा ।'
जी आता तो देता, वरना टाल कर,
कह देता, 'खासी हो जावेगी तुम्हें ।'

पिता पूछते क्या लाया ?' में बोलता—
'खाकर देखो,' कह कर देता सामने ।
सच पूछो तो मन रखने ही के लिए,
कभी कभी वे चखते थे मेरी चाट को ।

हसी मचल जाती थी मेरी जिस बडी,
किसी तरह भी वह रुकती थी ही नहीं ।
पिता कहा करते, बेटा ! या हर समय,
नहीं हँसा करते बेमतलब मूख से ।'

इसी बात पर कभी कभी इस्कूल में,
पिट जाता था व्यथ बिना अपराध के ।
कभी किसी बालक का भूठा नाम ले,
कह देता—'जी ! यही हँसाता है हमें ।'

मेले का दिन बड़े मौज का रोज था,
उत्सुकता से तका करे था नित्य ही ।
उँगली पर गिन कटते थे दिन बीच के,
दो दिन पहले से मच जाती धूम थी ।

एक दुअन्नी बधी हुई थी चाट की,
खरी परखवा लेता था मैं मात से ।
घरती में एक छोटा कुल्हड गाढ कर,
गुल्लक मा ने छोटी सी दी थी बना ।

वही तिजोरी वही खजाना था मेरा,
ढेर भरा रहता था पैसों का यहाँ ।
छुट्टी के दिन गिनता था उनको सदा,
बडी सावधानी रखता था माल की ।

१

चोरी का सदेह सुगीला पर मुझे,
कभी कभी हो जाता या सच ही कहँ ।
कि तु चुराने का कुछ भी प्रमाण एव,
किसी तरह भी दे सकता था मे नहीं ।

तीव्र दृष्टि से गुल्लक को तकती हुई,
फिरा करे थी उस गुल्लक के पास ही ।
उसकी गुल्लक भी थी, पर बसी नहीं,
कभी कभी ही पसा भिन्नता था उसे ।

कि तु उसी को रखती थी वह जाडकर,
कभी नहीं खाती पीती थी वह उसे ।
पिता मिठाई लाते थे घर मे कभी,
बडी कठिनता से लती अनुरोध मे ।

उठे उमासे माता के अनुरोध से,
तो लती कुत्र पस धेले का कभी ।
भाग बना कहती थी माता स सदा,
'ग्रम्मा ! रख दे यह भया के वास्ते ।'

पढ कर आता था जत्र मे इस्कूल मे,
ठिनक ठिनक कर कहता मा मे लाड मे ।
दाग गाक तो कुत्र भी घर मे हे नही,
भूया हँ, गया प्याऊगा ! अब यह पता ।

तैसा गु दर नीत्र का आचार हे,
रखता पूरी नरम प्री नमस्कीन हे ।
म्राद बनेगा क्रमा सुन्दर चटपटा,
ले ले भीतर से ताकर निज हाथ ता ।

मेरा मन्सूबा होता कुत्र और ही,
कहता मै मुत्र पर ला कुत्र गम्भीरता ।
खामी जो हो जावे इस आचार मे,
दोष न देना तो फिर मुझ को तू जरा ।

२

बात ताउ हसकर रहती मा देख कर,
हा भया ! यत्र सच्ची तरी बात है ।
धी बूरा ले ले याडा सा और क्या !'
मिद्व मनोरथ होता था पूरा मेरा ।

घर मे थी दो भस और एक गाय थी,
दूध दही की मेहन रहती रेज थी ।
छत्र जात थे पाम पडारी छात्र से,
दूध दही भी वभी पहुँचता था उहे ।

खिडगी मे धी रखा था बाफूर सा,
एक हाथ भरपूर भरा उसमे, तथा
ऊपर स शम्बर योगी सी डाल ती,
उमक ऊपर काठी सा धी और रख ।

दिखा मात को कहता भोगे भाव से,
'मा ! उतना मा निया हुआ क्या बहुत है ?'
दखभात वह कुत्र भी करती थी नही,
रहती थी—'जा राता भीतर ब्रैठ कर ।'

गत पमभू जानी प्री सारी चान की,
मन मे हस लेती थी मरी चाल पर ।
पाम पडासिन मे कहती थी हास्य से—
'यत्र चटारा हे यह बात्रलिया मरा ।'

'सुग्रर पाजी' ताऊ रहत थ सदा,
यही लात्र का उताखा रखा नाम था ।
गान गान ता रहते थे छूटत—
'सुग्रर पाजो कहा गया उमका बुना ।'

तारी रहती थी तब नरलो क्रोध से,
'बयो गाली तत हो तुम गाल को ।'
हस दत थ और पकाड लेते मुझे,
मसल मसन कर करते चकनाचूर थे ।

१

पूज्य पिता बूढ़े मित्रों के बीच में,
बने मुकद्दम फुात में जब बैठते ।
हुक्का ताज्जा कर रख देता था वहा,
भर देता था चिलम तवे की डाटकर ।

फिर चलती थी तरह तरह की वारता,
सब अपवीती होती थी उनकी कथा ।
वे उत्तेजक रुचिवधक सच्ची कथा,
स्वावलम्ब के जीवन की थी सीढिया ।

कही दया की दिव्य दवाई थी वहा,
कही प्रेम का नैसर्गिक आलोक था ।
कही वम की गुथी हुई थी ग्रन्थिया,
कही वीरता की नगी तलवार थी ।

कही सत्य की निभय छाती थी अडी,
कही परिश्रम के उज्ज्वल प्रस्वेद थे ।
किन्तु कही भी दुख चिन्ता और रोग का,
नाम मात्र को लेश नहीं था छू गया ।

नीरव बैठा कौने में सिकुडा हुआ,
बड़े चाव से सुनता था तल्लीन हो ।
अमिट लीक हूटपट पर पड जाती अहो,
मन में भर जाते थे बैठब होसले ।

सदा सोचता रहता था मन में यही,
ऐसा दिन आवेगा कितनी देर में ।
शीघ्र बडा होकर मैं भी ससार में,
इससे बढकर काम करूंगा बेधडक ।

भूल नहीं सकता मैं दु ख इस्कूल का,
बड़े बुरे थे गोवरधन जी मास्टर ।
'सबक सुना,' बस ये ही उनकी धौस थी,
जान सूखती थी सबकी इस धौस से ।

२

कभी पढाते तो थे ही नहीं प्यार से,
गलल गलत जल्दी जल्दी थे बोलते ।
एक वात में जर्दे की बौझार सौ,
आ पडती थी सबके मुह पर थूक की ।

दात बीच के दोनो थे दूटे हुए,
हवा निकल जाती थी उनमें फुस्स हो ।
थोद थलथलाती थी उनकी ढोल सी,
कस लेते थे बटन कोट का भीच कर ।

लिखने का अभ्यास मुझे कम था जरा,
कान मले जाते थे इस पर खूब ही ।
सारे दिन में पूरी पट्टी एक भी,
नहीं लिखी जाती थी मुझ से शाम तक ।

गोवरधन चिल्ला कर कहते देखकर,
'अरे कोई लाओ तो कम्मच तोड कर ।'
कम्मच लाने के सर्वोत्तम काम को,
उत्सुक बैठे रहते थे लडके सदा ।

'मै लाया जी,' कह कर सरपट दौडते,
जान सूख जाती थी मेरी उस समय,

विजली का बल आ जाता या हाथ में,
टेढे सीधे लम्बे और छोटे बडे ।
धुन बाधे लिखता जाता था उस समय,
पट्टी पूरी होती ही थी दीखती ।

कम्मच आने से पहले पहुँच कर,
बडे धैर्य से जा दिखलाता मैं लिखा ।
किन्तु नई कम्मच का कडुआ स्वाद वह,
बिना चखे पर पिण्ड छूटता था नहीं ।

१

जरा जरा सी गलती पर न क्रुद्ध हो
मार शपाशप देते थे वेभाव की ।
हसी उडाते थे बच्चा के कष्ट की ।
पत्थर के थे असल कमाई मास्टर ।

बाल बिलबिला उठते थे तडपडा कर,
दूवर हो जाती थी हा । कोमल कमर ।
कभी बनाते थे मुर्गी दो चार को,
मुझे बहुत वेढब जचता थी यह मजा ।

सील भरे छोटे कमरो मे पाति स,
बडी चीठ की बचो पर बठे हुए ।
हिला हिला दुबल परो तो भय भरे,
खात थे हम मार शपाशप बेत की ।

पढ पत्थर थे असल बात तो थी यही,
खाफ पढाते, खुद भी वे क्या थ पढे ।
वीम स्पल्ली मिलती थी उनको फरत,
यही लियाकत की खुचन का मोन था ।

कभी अग्रेजी दा बनने की डीग म
भसा करते थे घण्टो बुटुंग हो
उसी तरह उच्चारण करने को हम
ठोरु पीट कर करते थे लाचार वे

पाठ पढा नही शिभा पाने के लिए
याद किया गही कभी सीराने ने लिए
पढने निखने का बस यह ब्रुव व्येय था
फल कभी हो जाय न हम इम्तिहान मे

कभी समभन की काशिश की भी जरा
तभी उपट कर रह देते थे—
'याद करो बस, समझ गही सकते अभी—'
समझाते क्या, करते थे गुमराह वे

२

पहली विद्या के टिककड को उम तरह
धकापेन कर जुढकाते थे गले से
गोररन की कुत्र फूडड गाली के मिवा
न था वहाँ स्वादिष्ट मसाला और कुछ

किसी तरह पूरे कर घण्टे पाच वे
भूखे प्यासे निकल सिट नी माँद से
अघा साम लेते थे आ मैदान म
बडी कठिनता से तब आती थी हमी

शुद्ध हृदय पट पर इस भोडे हाय से
चित्र बनाने के मिस होती थी खलिश
यही हमारी शिक्षा का आरम्भ था
महा कठिन थी जीवन की तैयारियाँ

महा गौरवावित गुरू के अधिकार को,
हथिया उठा था यह भाडे का गधा ।
हृदय न दनी विद्या क स्थान पर,
आ बैठी थी अग्रजी पाराङ्गना ।

मरी पडी थी प्रतिमा रुचि मन भावना
वातावरण नही कुछ भी अनुकूल था
ऐसे शिक्षालय म मै भकमार कर
मुख न रहता तो क्या होता सद्गुरू

उसूलो शिभा का इस बडवाग म
शहद भाग्य ने मिला दिया था जरा सा
उसी शहद की मधुराई न लोभ स
सदा चाप म पीता था वह क्वाथ कट्ट

काल बली की टोरर म प्रारब्धवश
शीशी चक्कनाचूर हुई यह मधुभरी
मिठठी म मिल गया बिरार कर कभी का
कि तु आज तक हृदय भरा है याद से

१

२

तत्ववेत्ताओं का यह सिद्धांत है,
भूल जीव का स्वाभाविक एक रोग है ।
किन्तु याद का कठिन रोग पल्ले पड़ा,
लाख भुलाने पर अब तक भूला नहीं ।

कि तु काल ने कली कली उम फूल की,
निठुराई से मसल नष्ट की अंत मे ।
अन्तरात्मा मे सौरभ उसका अभी,
दता है भ्रकभोर पुराने प्यार को ।

नाम होठ तक आकर भी आता नहीं,
होठ फडक कर रह जाते इस नाम पर ।
राजा है बस अन्तस्तल के राज्य का,
हृदय हरा रहता है उसके वास से ।

बाल काल की वह प्यारी घटनावली,
हीरे सी आदिप्त अधेरे हृदय मे ।
जल रेखा क्षणभर को वह सुखदायिनी,
बिजली सी लहरा जाती हे जब कभी ।

जाग उठा था बालपने की शय्या से,
यौवन की शुभ धूप चड़ी थी तनिक सी ।
बस बड़ी निश्चि ताई से सो गया,
सुनते सुनते ही निज जीवन की कथा ।

कोई दूल्हा भी यो रातो जागकर,
कभी नहीं सोता है ऐसा बेखबर ।
रग विरगे वस्त्रो को पहने हुए,
नई आस के फूला को रख गाद मे ।

रग विरगे वस्त्रो को पहने हुए,
सबके ऊपर श्वेत ओढनी ओढली ।
एक साथ ढके गये । उमी की ओट मे,
गया सदा को नित्य देखने योग्य मुख ।

प्यार किया मुस्काया रोये बहुत से,
याद दिलाई खेलकूद की कहा कहा ।
भूठे सच्चे तरह तरह के लोभ भी,
दिये, कि तु वह हिला डुला बिल्कुल नहीं ।

हृदय द्वार बस उसी दिवस से बन्द है,
इस्तीफा है हसी खुशी की बात को ।
विकल पडे यह चाह रहे है चाव से,
किसी तरह वह मस्त नीद आवे हमे ।

कातीरात

(तिलक निधन के बाद लिखी गई भावपूर्ण कविता । उन दिनों आचार्य श्री बम्बई में रहते थे और तिलक के चिकित्सको की परामश समिति में थे ।)

१

काल मी काली अघेरी रात थी,
 ओटनी ओटे हुए काली महा ।
 काम काला जो हुआ उस रात को,
 कालिमा गहरी हुई थी आर भी ।

शुभ्रता तो नाम को भी थी नहीं,
 आ रही थी कालिमा सबत्र ही ।
 भैरवी के वेश में बाग खनी,
 भीषणा चण्डी बनी निस्तब्धता ।

मेघ के दो चार टुकड़े खिन्न से,
 टटपड़ाय घूमते थे अभ्रम ।
 रोकते थे, किन्तु रुकती थी नहीं,
 आसुआ की बंद जाती थी टपक ।

चन्द्रमा भयभीत सा था सिंह से,
 क्षीण बैठा था मघा के द्वार पर ।
 तारका थी हम रही फीकी हसी ।
 भूमि पर आकाश का मिर था भुना ।

बत गी थी आपती ठण्णी हना,
 गीचती थी आह की गिगारिगा ।
 सूत्रिता धरती पडी थी धन में,
 वारिगि प्रचन था यह दस कर ।

भीम रुमा रात गपना नाम सब,
 पूग कर गिगा गता की आड म ।
 गह गई थी गनानि से पाताल में,
 चानिमा थी रह गई पीछ पनी ।

२

तेज की एक भिनमिनाती जोत को,
 झूब छाती में टिपाए यत्न से ।
 गा रही उषा प्रधुं थी जिस घडी,
 उस समय तन हो चुका था शेष सब ।

गाज उषा ने रिभाने के लिए,
 हाय ! सारो जी बरी तैयारिया ।
 दिव्य थी उसकी लज्जनी लालिमा,
 रग थी उसकी रगिली वो छग्रा ।

मोह का कमजार तागा तोडकर,
 वीतरागी चल दिए ठहर नहीं ।
 लोफ म आलोफ था जो उस घडी,
 ठाठ खुण्टी पर टगा ही रह गया ।

सण्डिता अपमानिता उषा वधु,
 देर तक हा ! आस के आसू भरे ।
 एतक तरती रही रिमियाग्नी,
 रग फीका हो गया सब गाल का ।

भार ने भेजी नयी पटली फिरग,
 भारती की भूमि पर आलोक की ।
 उम समय स पूत्र ही उम लाफ से,
 आत्मा आलोफ म थी जा चुकी ।

हाथ फेरा रश्मियो न प्यार से,
 पक्षियो न गीत गाये सकडों ।
 लारिया गाने लगी ठण्णी हवा,
 व्यथ था, वे वीर फिर जागे नहीं ।

१

२

नेत्र दोनो शात थे और बन्द थे ।
शात मुद्रा थी अनोखी सबथा ।
इन्द्रिया भुगतान थी सब कर चुकी,
थी पडी स्वच्छदता से मौन मे ।

जीणता को कायबावक जानकर ।
शात को अक्का दे विश्राम का,
ढूढने पुरुषाय के मव्यस्य को ।
कोन जाने रम गई किस लोक मे ।

बात की ही बात मे बस यह खबर,
छा गई हर और आधी की तरह ।
बम्बई के ठाठ सब फीके पडे,
हो गई हडताल क्षण मे सब जगह ।

जो दुकाने हँस रही थी मौज से,
जगमगाती थी सजी जिनकी छटा ।
देखते ही देखते जादू हुआ,
मूर्छा मे आ गइ या सो गइ ?

दनदनाता एक गोली की तरह,
घुस गया मस्तिष्क मे सवाद यह ।
चेतना जाती रही सौभाग्य की,
लीडरो की रीढ की हड्डी कटी ।

हाय ! करके रो उठे डोटे बडे,
पागलो की भाति चिल्लाते चले ।
स्त्रिया श्रुङ्गार करना डोड कर,
काठ की पुतली बनी सी रह गइ ।

बालको ने फेक दी निज टोपियाँ,
वज्जिया काली गले मे बाँधली ।
छातियो को कूटते रोते हुए,
कीत्तन गाते हुए फिरने लगे ।

भाग्य स मरदारगृह के था गृही,
तीथ होगा राष्ट्र का वह एक दिन ।
कयो भला भगवान् बस आवाम म
शात होते आज पूना डोड कर ?

देखने भाकी अलाविक आखिरी,
वारजे मे देह पवराई गई ।
दिव्य दशन देखने को सब कोई,
दूटते थे आदमी पर आदमी ।

सामने आसीन निश्चल मूर्ति ,
दे रही थी मूक यह उपदेश सा—
मृत्यु तक तो धय से हटना नही,
मृत्यु पर भी धय को तजना नही ।

उस बडे मदान की ताजी हवा,
भर गई थी सास की दुग्ध से ।
बम्बई के प्राण ही उस ठोर पर,
आ जुटे थे, आ रहे थे और भी ।

भर रहे थे लोग यो सिसकारिया,
वृद्ध गण भी रो रहे थे जोर से ।
बालिकाएँ द्वार पर चुप थी खडी,
खिडकियो मे रो रही थी नारिया ।

भव्य वकुण्ठी बनाई फूल की,
ला धरी पद्मासनस्थ देह वह ।
शा ती का पाठ पढ कर वेद से,
यात्रा आरम्भ की भूलोक स ।

बादलो के थे कलेजे फट गये,
खून पानी हो गया था सबथा ।
देखते ही हाय की और रो उठे,
आसुओ का मेह बरसाने लगे ।

१

सूय ने साहस किया जी याम कर,
भाँक कर देखा जरा उस हृदय को ।
देखने की ताव थी उसमें कहा ।
जा छिपा, उस रोज फिर दीखा नहीं ।

घोष जय जयकार का छाया हुआ,
था हवा में भूमि से आकाश तक ।
कीलन का नाद त्रिजली की तरह,
खून को लहरा रहा था गात में ।

भीड़ होगी अविहक ही दो लाख से,
मील भर लम्बा बड़ा हृज्जूम था ।
था सम दर सा भरा नर मुण्ड का,
आ रहा था वेग से उमड़ा हुआ ।

मिहनी के पूत पजाबी धुरी,
दोड़ आये पर लगा कर एक दम ।
केसरी के नाल को अन्तिम समय,
केसरी के नाल ने कन्वा दिया ।

या नमूना रक्त के आवेश का,
या नमूना एकता के सूत का ।
या नमूना जिन्दगी के जोम का,
या नमूना पुण्यमय आदश का ।

चौक चौपाटी चुना तीथत्व को,
स्वर्ग सिंहासन बनाया यत्न से ।
भाग्य में ओटे बड़े के आज तक,
मान यह हरगिज मिला ही था नहीं ।

दिव्य वेदी स्वच्छ चन्दन को बनी,
वेद त्रिधि से पूज कर के ठाठ से ।
देह चन्दन चिन्ता सद्भक्ति से,
स्वर्ग सीढी पर चढ़ाई चाव से ।

२

वारिधी ने हृष से चूमे चरण,
इंद्र ने अभिषेक का सिचन किया ।
अग्नि न प्रत्यक्ष अपने हाथ से,
दे दिया अभिषेक का सच्चा तिलक ।

तेज की तेजस्विनी वह मूर्ती,
बैठ कर कुछ दर उसकी गोद में,
तेज का आलोक दिखलाती हुई,
हो गई उस तेज ही में लीन तब ।

कम के अनुरोध से नि स्वाथ हो,
यातनाएँ भागकर इस लोक की ।
देश को कल्याण का रस्ता बता,
देवता ने आज नव जीवन लिया ।

तीसरे दिन दिव्य भाँकी देखन,
जी न माना, पुण्य-भूमि पर गया ।
शांत सागर मुह फुलाए था पड़ा,
राख बनकर थी पटी ठण्डी चिता ॥

घेर कर उस ठौर को दस बीस जन,
थे खड़े, कुछ रो रहे थे, एक दो ।
भग्न मन से और प्यासी दृष्टि से,
देखते थे भस्म के अवशेष को ।

स्त्रियो का तार तो बंदूट था,
आ रही थी, जा रही थी, सैकड़ा ।
दूर से ही हाथ दोना जाट कर,
भूमि छू कर दौड़ देती थी सभी ।

बालिकाएँ थी चढ़ाती भक्ति से,
फूल फल और नारियल पैसे टका ।
भाडती थी एक दो श्रद्धावती,
रम्य बालों से अहो, उस ठौर को ।

१

वालको के वास्ते रक्षा कवच,
स्वस्ति का तावीज भरने के लिए ।
एक दो ले जा रही थी भस्म को,
आँचलो मे बाँध करके यत्न से ।

भक्ति करणा का अलौकिक दृश्य यह,
आत्मा मे आग सुलगाने लगा ।
आँख मे आँसू उमड़ आए अहो ,
लाख रोका, रो उठा जी तोड़ कर ।

भावना का भाव जो ऊँचा हुआ,
आ गया प्रत्यक्ष मे बीता हुआ ।
खो गए आसू बडी गम्भीरता,
आँख आगे फिर गई घटनावली ।

देश से इंग्लैण्ड तक जिस वीर की
गजना की गूज है छाई हुई ।
भस्म का अवशेष जो यह है पडा,
सत्य ही क्या उस तिलक का अन्त है ?

देख कर जिस को हमारे बीच मे,
भूत के सी भावना मन मे भरे ।
शक्तिता रहती सदा सरकार थी,
चार मुटठी राख की आँकात थी ?

मृत्यु पीछे शत्रुता और मित्रता,
भूलकर, समवेदना सद्भाव से ।
दुख मरो के साथ दशाना सदा,
सम्यता की एक छोटी बात है ।

शोक मे डूबा हुआ था देश जब,
घाव ताजा था कलेजे का हरा ।
खेद का एक शब्द भी सरकार से,
माग कर दुर्भाग्य ने पाया नहीं ।

२

बीट खा अधिकारियो की जी रहे,
भारती गोरे भला क्यों चूकते ?
फोडने दिल के फफोले को यही,
आ लगा था पुण्यपूरित पव ही ।

गालियाँ दी ? कोसने कोसे गए ।
फबतियाँ डोडी । उडाई दिल्लीगी ।
सखिया सौजन्य को देकर अहो !
सम्यता की धूल यो झाडी गई ।

राज तप तापा, सुखाया गात को,
यश नदी मे केश घो वौले किए ।
देखना प्रत्यक्ष वह तप मूरती,
स्वप्न के सी बात अब तो हो गई ॥१॥

योगियो ने योग आसन साध कर,
योग बल से, गूढ द्वापर अत मे ।
कृष्ण के आचार आँखो देख कर,
धर्म के जो तत्व थे निश्चय किए ।

आपदाओ के कठिन तूफान मे,
लोप थे चिरकाल से जो हो गए ।
जेल मे इस कलियुगी अवतार ने,
गुत्थिया उस तत्व की खोली अहो !

शत्रुओ के सामने जिस वीर की,
वीरता का ओज रहता था खरा ।
हारने और जीतने की बात की,
स्वप्न मे भी चाहना तो थी नहीं ।

हिन्दुओ के अधमरे हिन्दुत्व पर,
लाल पगडी की ललाई देखकर ।
गव से अकडा हुआ लन्दन नगर,
देखता ही रह गया आश्चय से !

१

२

सूय ने साहस किया जी थाम कर,
भौंक कर देखा जरा उस दृश्य को ।
देखने की ताव थी उसमे कहा ।
जा त्रिपा, उस राज फिर दीखा नहीं ।

घोष जय जयकार का छाया हुआ,
या हवा में भूमि से आकाश तक ।
कीतन का नाद विजली की तरह,
खून को लहरा रहा था गात में ।

भीड़ हागी अधिक ही दो लाख से,
मील भर लम्बा बड़ा हृजूम था ।
या सम दर सा भरा नर मुण्ड का,
आ रहा या वेग से उमड़ा हुआ ।

सिहनी के पूत पजाबी धुरी,
दोड़ आये पर लगा कर एक दम ।
केसरी के बाल को अन्तिम समय,
कसरी के लाल ने कन्धा दिया ।

था नमूना रक्त के आवेश का,
था नमूना एकता के सूत का ।
था नमूना जिदगी के जोम का,
था नमूना पुण्यमय आदेश का ।

चौरु चौपायी चुना तीर्थत्व को,
स्त्रग सिंहासन बनाया यत्न से ।
भाग्य में छोटे उड़े के आज तक,
मान यह हरगिज मिला ही था नहीं ।

दिव्य वेदी स्वच्छ चन्दन को बनी,
वद त्रिधि से पूज कर के ठाठ से ।
देह चन्दन चिन्ता सद्भक्ति से,
स्वर्ग सीढ़ी पर चढ़ाई चाव से ।

वारिधी ने हप से चूमे चरण,
इंद्र न अभिपेक का सिचन किया ।
अग्नि न प्रत्यक्ष अपने हाथ से,
दे दिया अभिपेक का सच्चा तिलक ।

तेज की तेजस्विनी वह मूरती,
बैठ कर कुछ दर उसकी गोद में,
तेज का आलोक दिखलाती हुई,
हो गई उस तेज ही में लीन तब ।

कम के अनुरोध से नि स्वाथ हो,
यातनाएँ भागकर इस लोक की ।
देश को कत्याग का रस्ता बता,
देवता ने आज नव जीवन लिया ।

तीसरे दिन दिव्य भाकी देखन,
जी न माना, पुण्य भूमि पर गया ।
शांत सागर मुह फुलाए था पड़ा,
राक्ष बनकर थी पड़ी ठण्डी चिता ॥

घेर कर उस ठौर को दम बीम जन,
थे खड़े, कुछ रो रहे थे, एक दो ।
भग्न मन से और प्यासी दृष्टि से,
देखते थे भस्म के अवशेष को ।

स्त्रियो का तार ता बटूट था,
आ रही थी, जा रही थी, सैकड़ा ।
दूर में ही हाथ दाना जोर कर,
भूमि छू कर ढोक देती थी सभी ।

बालिकाएँ थी चढाती भक्ति से,
फूल फल और नारियल पैसे टका ।
भाडती थी एक दो श्राद्धावती,
रम्य बालो से ग्रहो, उस ठौर को ।

१

वालको के वास्ते रक्षा कवच,
स्वस्ति का ताबीज भरने के लिए ।
एक दो ले जा रही थी भस्म को,
आचलो मे बाँध करके यत्न से ।

भक्ति करणा का अलौकिक हृश्य यह,
आत्मा मे आग सुलगाने लगा ।
आँख मे आँसू उमड आए अहो ,
लाख रोका, रो उठा जी तोड कर ।

भावना का भाव जो ऊँचा हुआ,
आ गया प्रत्यक्ष मे बीता हुआ ।
खो गए आँसू बडी गम्भीरता,
आँख आगे फिर गई घटनावली ।

देश से इंग्लण्ड तक जिस वीर की
गजना की गूज है छाई हुई ।
भस्म का अवशेष जो यह है पडा,
सत्य ही क्या उस तिलक का अन्त है ?

देख कर जिस को हमारे बीच मे,
भूत के सी भावना मन मे भरे ।
शक्तिता रहनी सदा सरकार थी,
चार मुटठी राख की औकात थी ?

मृत्यु पीछे शत्रुता और मित्रता,
भूलकर, समवेदना सद्भाव से ।
दुख मरो के साथ दशाना सदा,
सभ्यता की एक छोटी बात है ।

शोक मे डूबा हुआ था देश जब,
घाव ताजा था कलेजे का हरा ।
खेद का एक शब्द भी सरकार से,
माग कर दुर्भाग्य ने पाया नहीं ।

२

बीट खा अविकारियो की जी रहे,
भारती गोरे भला क्यों चूकते ?
फोडने दिल के फफोलो को यही,
आ लगा था पुण्यपूरित पव ही ।

गालियाँ दी ? कोसने कोमे गए ।
फबतियाँ छोडी । उडाई दिल्ली ।
सखिया सौजय को देकर अहो !
सभ्यता की धूल यो झाडी गई ।

राज तप तापा, मुखाया गात को,
यश नदी मे केश घो बौले किए ।
देखना प्रत्यक्ष वह तप मूरती,
स्वप्न के सी बात अब तो हो गई ॥१॥

योगियो ने योग आसन साध कर,
योग बल से, गूढ द्वापर अत मे ।
कृष्ण के आचार आँखो देख कर,
धर्म के जो तत्व थे निश्चय किए ।

आपदाओ के कठिन तूफान मे,
लोप थे चिरकाल से जो हो गए ।
जेल मे इस कलियुगी अवतार ने,
गुत्थियाँ उम तत्व की खोली अहो !

शत्रुओ के सामने जिस वीर की,
वीरता का भोज रहता था खरा ।
हारने और जीतने की बात की,
स्वप्न मे भी चाहना नो थी नहीं ।

हिन्दुओ के अधमरे हिन्दुत्व पर,
लाल पगडी की ललाई देखकर ।
गव से अकडा हुआ लदन नगर,
देखता ही रह गया आश्चय से ।

१

लेटिया के हास्य ने टर मे डरे,
टाग टर कर सज की पतला मे ।
सूख सिर पर हैट की रम टोकरी,
साहबी के बश मे रह कर सग ।

देश हित की डीग है जो हाकते,
पूज्य गुरु से एक शिक्षा ल जरा ।
देश की पोशाक पर शब्दा नही
देश उनसे और क्या आशा करे ?

रोटियो के दाम टुच्चे खुद मन,
नोकरी पाकर जरा सरकार की ।
जान कर, तो बस हमी सरकार है,
पैर बरती पर नही ये प्यते ।

दिन दहाडे न्याय को फासी लगा,
ये नयागी कर रहे य बवउक ।
दीननाई दुखभरे उम देश की,
दित्तगी की चीज थी उनके लिए ।

तग होकर यातना स जा अभी,
की किमी न भी जरा आलाचना ।
राज त्रिदाही बना कर गर दम,
जेत जुमाने रंने भूम म ।

जेत पाउं और जुमान दिग,
मान और अपमान की पत्रा न की ।
अत तक टउते रहे पाउं त्रिजय,
दे उखाडी हाकिमा की हरी ।

आज ने सी बात अब भी याद है,
हाथ मे थी हथकड़ी वाली हु ।
पैर मे थी बडिया फौगाद की,
घोटती थी दम कटर की हवा ।

२

न्याय पर बटा हुगा या मुर्दे,
फगना कानून के आदीन था ।
नीतिमत्ता मुह टिपाण थी राडी,
नाचनी थी रूय स्नेच्छाचारिता ।

द्वेष मत्सर दम्भ टुगु ग नीचता,
ओटर गम्भीरता की ओहनी ।
ग्राय पर चश्मा चटाकर ग्राय का,
सभ्यता की टुम हिलानी थी खडी ।

ग्राय वानो से जरा टिपते हग,
पुन्निमाना के पत्रउने मे डरे ।
चोर मे चहुँ और चीकन्ने पने,
शब्द कानूनी ग्रहो । बनने नगे ।

ग्रथ को रज्ज बनिग की तरट,
तान कर अन्ताज से दने नगे ।
चीन सा उन पर भपटा मार कर,
सभ्य एनीटर चाच स गान नग ।

ग्याति है त्रिग्यात जो सरकार की,
न्याय म जिम जाति ही शब्दा नही ।
शक्तिगा ती उग अत्यानत वा अहो ।
सज्जता । बग गत्य ती यट रूप था ।

याय घर म याय क कत्याग का,
हा रहा था याय का बनिदान यो ।
याय पर या ब्रूक मरने क निग,
यह अकेना गीर नरता था खना ।

हाग्य-रम ने भण्ड उम पाखण्ड का,
मरहते पर गारा क्या होता अमर ।
तुच्छता की दृष्टि मे ग्लानी भरा,
ब दरो का बाट था यह देखता ।

यातना की यात्रा पर धय मे आरूड हो,
सत्य को सीचा सदा निर्भिकता के ओज से
न्यायको इस वीरतासे जा मिलाया नीतिमे
भाकना कानून बगले मिसमिसाता रहगया

पक्ष सत्ताधारियो का वार कर,
ओट मे कानून की छिपता हुआ ।
राजनैतिक छल, सदा से खेलता,
निबलो के स्वाथ का आखेट था ।

दीन बेचारे पनपते थे नहीं,
शक्तिया बतोल थी अधिकार की ।
कान कायर का पकड कर आपने,
सभ्यता के सामने हाजिर किया ।

धूमता है चक्र इस ससार का,
कान रहता है सदा इस ठौर पर ?
फूल का जो खीच लेते है अतर,
सूखने पर गन्ध देता है वही ।

बीज बोया आपने जो यत्न से,
लहलहाता आ रहा था वो उठा ।
एक दो कलिया अभी थी खिल चुकी,
ओर गदराने लगी थी बौरियाँ ।

फूलने मे और दो दिन थे अभी,
आस मे बडे हुए थे चाय से,
आप बाटेगे हमे निज हाथ से,
हम चुरा लेगे जरा सा और भी ।

खा रही ह आपकी म तान यह,
देख लेते आप जो एक दृष्टि स ।
तृप्त हो आसीस दे जाते हमे,
भाग्यशाली कौन था हममे बडा ?

आख मे वह घूमती तस्वीर है,
कान मे है गूजत उपदेश वे ।
जागती है जोन दिल मे आपकी,
आपकी ही है विभूति भारती ।

ग व गावी की रहगी कब तलक,
जब तिलक मन्तिष्क पर से पुछ गया ।
मिर मुकुट तो मिल चुका था धूल म,
एक तिलक था, आज वह भी पुछ गया ।

भाग्य मे जो कुछ हमारे था बदा,
हो चुका, अब शोक करना व्यथ है ।
युद्ध जय मे काम थोडा है बचा,
पूरा करना ही बडा कतव्य है ।

भाग्य पर आसू बहाना सज्जनों ।
कायरी का काम है समार मे ।
धीरता से पग बटाना ही सदा,
वीरता की शान हे इतिहाम मे ।

युद्ध के मैदान मे अब तक अहो,
था अकेला वीर वह लडता रहा ।
क्या हुआ ? जो आज वो था है नहीं,
मोरचा तो तोडने देगे नहीं ।

गोलियो की मार मे जो आज तक ,
थी अकेले वीर की छाती अडो ।
आज से होगी करोडो छातिया ,
देश के प्रत्येक सच्चे पुत्र की ।

रक्ताश्रुबिन्दु

(लाला लाजपतराय के निधन पर लिखी गई)

रक्ताश्रु बिन्दु यह कमे ?

तुम रोती हो ।

ओ वसुन्धरे मा ।

यह शम्य श्यामला पवन विकम्पित अचल—

रुधिरास्त्रात्रित सा क्यों है ?

ऐ ।

इम अचल मे क्या है ?

यह कौन यहा सोता है ?

यह सुखद नीद इम मृदुल अर म ।

अरे ।

यह पजावकेसरी है ?

जो रहा निरतर जागृत,

उन्निन्द्र कूट स्थित अद्भुताब्दि समाप्त करी ।

भूतल पर जिसके चरण चि ह धस गए ।

अमर मे हुये ।

पजावकेसरी वही,

यहा सोता हे शिशु सा ।

सुखद नीद मे,

अरी उठा दे, वसुन्धरे ।

यह बाध हमारा रक्षक हे ।

ओ केसरी ।

यह बनम्यनी अब शू य हुई सी दीग रही है ।

उह वज्र गजना करा ।

वन पवत कम्पायमान होकर प्रतिभ्रानित हुए से बोल ।

वह शिशिर त्रिकम्पित श्वेत दप ।

मूर्च्छित सा होकर फिर कब रुदन करेगा ?

ठहरो ।

नीलकण्ठ शिव सोये है क्या ?

क्या ताण्डव हो चुका ?

प्रलयोद्भव क्या सम्पन्न हुआ ?

तव कृष्णचि ह्ये कठदेश और वक्षस्यल पर कसे हुए,
सुशोभित ।

अरी वेदने ! ठहर,

चक्षु श्रोतवाही जलकण तुम असमय मे कहा निकल आये ?
नही, नही, पजाबकेमरी ही है यह,

यह चिरनिद्रा मे सोता है, जो कभी समाप्त न होगी ।

अब ? किसके बल से यह, वृद्ध, दरिद्र स्वदेश,

आशा के अवशिष्ट ततु ले—

दूर देश कूटस्थ ज्योतिपर अन्तिम प्राण तजेगा ?

बापू ! ओ बापू !

ओ राष्ट्र कूट,

ओ देव दूत,

तू अति महान्

तू महत ज्ञान

तू चमत्कार

तू भू अधार

तू क्रांतिदेव-

तू आत्मपूरा

तू शुद्ध बुद्ध

तू सत्व शुद्ध

ओ तप पूत

ओ आत्म हूत

हिमगिरी समान

तू भासमान

तू निर्विकार

तू शांति देव

तू ज्योति पुञ्ज

तू पूज्य पूज्य

तू भुक्त मुक्त,

तू आत्म मुक्त ।

वृद्ध व्याघ्र

(पंडित मोतीलाल नेहरू के स्वर्गारोहण पर लिखित)

<p>१</p> <p>ओ वृद्ध व्याघ्र ! किस वनस्थली के नाहर थे तुम । कहाँ लीन हो गए ॥ अभी तो थे , अरे तुम घायल थे, ममाहत थे, नि श्वास कष्ट से लते थे । उन नि श्वासा से आश्वासित थे हम । वे जीवन की रखवाली माने किस अदृष्ट बल से अदृष्ट हो गए हाय ॥ ओ वृद्ध व्याघ्र !</p> <p>२</p> <p>मत्त हाथियों के गडस्थल तुमने, अनायास ही विदीर्ण कर डाले । निज गजन से भू लोक प्रकम्पित किया, धमक चाल जब चली अरे । भूतल पर चरग चिल्ल वम गए ।</p> <p>३</p> <p>अध्र शतान्दि व्यतीत हुई इस युग मे, अरे केमरी ! किसे प्राण भारी थे ? किसे अरे साहस था, जो हड-कप हुए बिना सम्मुख तेरे आता ?</p> <p>४</p> <p>महासाम्राजों के सिंहासन तेरी धमक चाल से हिले । तेरे घोर गजन से पवन प्रकम्पित हुई ।</p>	<p>आज वम के भय से वे, आयभीत हुए बटे है ।</p> <p>५</p> <p>उम व्याघ्र ने मौशल पल से आबद्ध किया था तुमको । उम लोह पीजरे मे, भाग्य रेख से बद्ध जमेरा किया । अ प्रम दशको ही क्राडा के जीव बने ॥</p> <p>६</p> <p>पर, उद्ध जसेरे मे बटे तुम, दुस्माहस करते रह । अरे । इन दूटे नख रद के बन पर, इस पुरुषाथ पुराने के पल पर, तुम लक्ष्य वेध मा किए हुए, ध्रुव पेय योजत रहे सदा ।</p> <p>७</p> <p>अरे नादरो व वशज, तुमन जय उमी पीजरे मे, फिर उज्र गजना गी, पद प्रहार से वमी धरा । वह उरपाती दुग टिला जड से, उन पवत कपाथमान होकर प्रतिभ्रनित हुए मा बोने ॥ वह शिशिर त्रिकम्पित श्वेत दप, मूर्च्छित हो तेरे पाद पद्म मे लोटा ॥</p> <p>८</p> <p>वह मिहो का काल रूप,</p>
---	---

कलुपित लोह पीजरा,
छिन्न भिन्न हो ध्वसित हो गया ।

६

कितने विकराल व्याघ्र,
कितने नाहर के जाए,
कितने वीर केहरी
वनस्थली के मुखद और स्वच्छद
निबू विचरण से वञ्चित होकर,
इमी घृणित पापिष्ट पीजरे मे घुट घुटकर
वीर प्राण दे गए ।

१०

अपनी सफल कुशलता पर
वह व्याधा हँसता था,
यह हास्यास्पद स्पधा ।
'व्याघ्र बद्ध कर लिया',
कुटिल का यह ही हास्य विषय था ।

११

यह छल-बल का अभ्यासी था,
जो लोकोत्तर तप तेज पुज को
क्रय विक्रय करता था ।
वह अब तक तो हँसता था,
अब उस पर जगत् हँसेगा ॥

१२

तुम कहा लीन हो गए ।
अरे, यह कैसी आखमिचौनी ॥
यह वनस्थली अब शू य हुई रोती हे ।
शश, मृग, शृङ्गाल,
यहा निभय विचरण करते है ॥

१३

उस सुदूर नभ मे,
रवि मण्डल के पार खडे ।

क्या मोच रहे हो ?

क्या ताक रह हो ?

यह वज्र दृष्टि तो अग्नि बाण सी
हृदय वेधकर आरपार जानो हे ।
किस अहार पर दृष्टि दिए बठे हो ।
वह अदृष्ट आखेट कहा है ?

१४

मृत्यु सिंह शिशुओं का क्रीडाकडुक हे ।
अरे सिंह,
तुम्हे मृत्यु का भय क्या या ।
वह अब आई या क्षण भर पीछे आती ॥
वह क्षण भी क्षण मे आया,
अथवा युग व्यतीत होने पर आता ।
इस कालभेद पर
तुम्हे सोचने का अवकाश कहा या ॥

१५

यह शरीर तो नश्वर या ।
फिर ।
सिंह पतरा बदल नही सीखे वचना,
वे गोली खा वक्षस्थल पर
तडिद्गामिनी की द्रुतगति से
भीषण गजन करके,
दूट शत्रु पर, नख रद से,
हृत् विदीर्णकर उष्णारक्त पीते पीते मरते हे ।

१६

तुम जहा कही भी रहो,
असल केसरी कहलाओगे ।
तुम कभी मरोगे नही,
भले ही यह शरीर व्वसित हो,
ओ नाहर के वशज,
ओ वृद्ध व्याघ्र ।

(भद्रसेन की पुत्री शरदकुमारी का केवल दो वर्ष की शिशुवस्था में ही विधन हो गया।
 आचार्यश्री उस शिशु पुत्री के वियोग में अत्यन्त शोकपूरण और दग्ध-हृदय रहे। उसीकी
 स्मृति में उन्होंने एकदिन अधरात्रि के एकात्त नीरव क्षणों में बठकर अश्रुपूरण नेत्रों से
 इन पक्तियों को लिखा था)

शरदकुमारी

१

अरी शारदे !

शुभ्र शरद् घन शुभ्र ,

शरच्च द्र प्रतिविम्बे !

टुक बोल,

दधर तो देख तनिक—

कुछ हकारे तो भर,

अरी मेरी नन्ही तू किस सोच-सरित में मग्न हुई ।

२

ले हँस दे,

ले हस दे,

उस मृदुल हास्य में—

घनपूरित गगन पटन पर—

तडिहामिनी की वह अस्थिर छटा दिखा दे ।

३

अरे ?

ऐसी निश्चल निरपदिता ?

तनक रेख सी अथवा —

पुष्प छडी सी पड़ी हुई—

चैतन्य सत्य में जडवत्

प्रकृति नटी सी—

क्या गहन नाट्य सा करती है ?

४

ओ न ही बिटिया !

ये मृगाल भुज ऊँचे कर,

पाद पद्म को उठा,

गोद मे आने को—

वह सबल और अभ्यस्त यत्न तू आज नहीं करनी री ?

५

तू रोती भी तो नहीं ।

अरी पगली,

ले कूद मेरे वक्षस्थल पर,

एक लात मार,

दो चार मार, मार,

मार सुखद ये लाते

हुकारे भर, हय,

६

लोल नयन की पूत दृष्टि से पुनरुज्जीवित कर,

इस धराधाम के पाप ताप से,

तप्त,

भग्न,

अतस्तल को ।

७

बस तुझे देखकर,

दुख खाकर,

शोकाश्रु पानकर,

अमित वेदना, चिन्ताओं की शिला हृदय पर रहने,

मैं जीऊंगा,

मैं जीऊंगा,

एक कल्प तक,

अथवा अधिक काल तक ।

८

पर तू हँसती जा,

कुछ कहती रह,

हुकारे ही भर ?

९

अरी बहू !

ले नए वस्त्र तो दे दे,

उम बिटियाँको,
 जान ही सी नादान गुसुम तनिका को,
 इस अमल धरा अस्फुटित कुंद कर्तिका का ।

१०

यह अभो खिलगी,
 तब सोरभ फूट पड़ेगा ।
 फिर सुरभित होगा यह लोक ।

११

ओर,
 हमारा चिर प्रिय,
 चिर भग्न हृदय,
 शक्ति सुधा सजीवन पाकर,
 जीवन संचार करेगा ।

२०

हम,
 उम जीवन के धुद्र डार पर
 पवनो मुख बटे हे फिर भी —
 हम सच्चा हास्य टमगे,
 हम मुख स्पश वर पात्रगे
 अज्ञेय मुग्धा का ।

२३

वे जरा सजादे,
 ना अलकार ला,
 गत्र ला,
 अरी मूढ सी मग्न ही रह गइ ??

१८

त ?

तू राता है ?

अपना लोरी गा गा कर मुख नींद सुलाती है बिटिया को ।

१५

क्या नित्य यहाँ करती थी ?

यह मैं भी लोरी ?

यह कसी सुख नीद ?
मेरा हृत्पिण्ड प्रकम्पित हुआ,
एक अशुभ भावना—
आशका,
लहर मारती है ।

१६

ना, इसे जगादे,
खूब सजादे,
अलकार से वस्त्रो से फूलो से,

१७

मैं खेलूंगा,
मैं वक्षस्थल पर इसे उछालूंगा,
यह उछलेगी,
कूदेगी ।
यह हँस हँस कर किलकारी भरकर पादाघात करेगी ?

१८

मैं बाजार ले जाऊँगा,
वह उसी तरह,
ऊँ ऊँ करके,
चम्पक सी नही ऊँगली से जो जो सकेत करेगी,
वही मोल ले दूँगा ।

१९

आज मैं भोली भर लाऊँगा,
सभी चीत्र जो मागेगी ।

२०

ले उठ, इसे हिलादे,
खूब सजादे,
यह रनुक भुनुक घुटनो के बल दौड़ेगी ।

२१

अरे !
तू रोती ही बठी है ?
यह क्या ?

मब रोते हो !
 यह क्र दन !
 यह असह्य चीतार !
 अरी जरा तो वीरे से,
 ओ वीरे से,
 यह बिटिया जाग उठेगी ?

२२

यह रदन प्रनाह तो मुझे दुबा ने चना
 वह देखो वह वंय गया,
 वह समय का पुल टूटा,
 वह शोकोद्वग ले चला बहाकर -
 सब पीरुप,
 स्थैय,
 धय, जीवन,
 विवेक ।

२३

अरे रोको रोको,
 मे मरा
 यह महस्र शत सपदश,
 नस नस से प्राण निकलते हैं,
 हाय वेदना !!!
 अमित शू य मे इव चला मैं ।

२४

कया बिटिया चता दो ?
 त्या यह चिर निन्द्रा है ?
 अब कभी न उठ कर बालगा ?

२५

ओह ! अर मैं समझा ।
 अब समझा ।

२६

अरी योग माया !
 खूब योग सावा तूने,

उड गई हवा मे ऐसे—
जसे हविष्य की गन्ध ।

२७

प्रवञ्चिके !
खूब छटा तने हम को—
उस सत्य प्रेम के बदले
हम यही देखते रहे,
हम यही समझते रहे, तैने यह आखमिचानी खेली ।

२८

तब तू चल ही दी ?
उम सुदूर तारागण की उम वज्रपक्ति मे जा बैठी ?

२९

वह सूक्ष्म तत्व, जो कभी न देखा समझा था ।
अज्ञान रीति से,
किस कोशल से ले भागी ?
सब कुछ तो उसी तत्व के सग गया ।

३०

पर यह स्वरागात तो बिटिया तेरा यही रहा,
यह मधुर खिलोना,
अब इसका क्या होगा ?

३१

ले इसको भी लेती जा,
हम इसे अग्नि के कण पर,
रवि रश्मि पथ पर रवि मण्डल मे—
भेज रहे हैं,
स्वाहा से सयुक्त,
वही से लेना ।

३२

जाओ बिटिया,
उस दिव्यलोक मे,
हमसे भी पहिले,
जाओ ।

३३

जहा—

मृत्यु नहीं,
भव ताप नहीं,
वाधक्य नहीं,
इच्छा द्वेष प्रयत्न दुःख सुख का किञ्चित् अशेष नहीं,

३४

वहा,
पारजात की तरह खिना,
ग्रन्थ अस्मान रहा,
उस सहूर तारे के दीप्त भरोके से,
उस कनक रेख सी मृदु मुस्मान की एक क्षणिक भलक
जब तक हम भोगवाद में ग्रसित,
यहा जीवित रहने को वाच्य रहे दिखनानी रहना ।
आ न हो विटिया ॥
सदा याद रखना हमको ।

३५

वहा तुम्हारी ज्येष्ठा मा है,
उनकी भी मा है,
शोर सगे है,
वे सदा तरसते गये गाद में तुम्हें खिलाने को ।
उन महा प्रतिष्ठित प्राणों के दिव्याञ्चल में
महाप्रलय तक—
तुम सदा फनां फूनां गला ।

स्वप्न !

सत्य जगत् में स्वप्न जाना ।
प्रत्यक्ष को अनुमान जाना ।
जानकर भी कुछ न जाना ।
कुछ न खोना कुछ न पाना ।
मृत्यु के उम पार जाकर लौट आना ।
दुःख को सुख, मरण को अवमान माना ।

गाण्डीवदाह

(सद्य के पातक से मत्त यादव जब प्रभास मे आपस मे कट मरे, दाऊ समुद्र गभ मे अतर्धान हुए, और महाप्राण, कृष्ण विधि विडम्बना से एक अधम व्यावा के वाण से विद्ध हो परमधाम सिवारे, तब दवकोप से कुपित समुद्र मे द्वारिका डूब गई। देव दत्य मानव व छ श्रीकृष्णचंद्र की अत पुरवासिनी राजकुलवधू निराश्रय रह गई। तब उद्धव के आमंत्रण पर अजु न उहे हस्तिनापुर ले चले। माग मे आभीरो ओर जाटोने उहे लूट लिया। भग्न हृदय, शोक सतप्त महावीर अजु न ऐसे निस्तेज हुए कि धनुष की डोरी भी न चढा सके, वे हाय करके सिर धुन कर रह गए। इसी कहरण घटना का हृदयग्राही वरण आचायश्री की समथ वाग्धारा में यहाँ वर्णित हे।

१

रोक दो रथ, सब कटक
अश्व गज रथ शकट शिविका,
साथपति जो हो, अभी वह—
दात मे तृण दाब शरणागत हमारा हो, तुरत निज प्राण भिक्षा माग ले,
वद्धाञ्जलि हो हम आभीरो, जातपुत्रो के कुलपति से,
ओर, ये सब अश्व रथ गज, स्वण मणि,
माणिक्य हीरक सी प्रभामय,
रूप गुण गरिमामयी,
चम्पकाभा, गौरवर्णी,
ललित लीलामय नयन मे मदनमद आपुण भर मृदु मधुर चितवन फेकती सी,
आभरण के भार से भुक भूमती सी,
कुसुम गुम्फित डालियो की शुभ्र शोभा धारती सी,
नयन वनु से मथन शर से मारती सी,
म द मृदु मुस्कान से ब्रीडाभरी, हीरक जडी,
ये दिव्य बालाएँ हमे दो,
प्राण ले भागो यहा से,
यह हमारा, जातपुत्रो का आभीरो का तुम्हे आदेश हे।

२

रे अधम तस्कर,
तुम्हे क्या मृत्यु का भय ही नहीं ?

जो षष्ठता अश्रम्य ऐसी कर रहा है, अभय हो ?
 पाथ हूँ मैं, विश्वजित,
 दिव्य अस्त्रों का प्रयोक्ता,
 क्या नहीं तुमने कभी गाण्डीव की महिमा सुनी ?
 जिसके विकट शर,
 मृत्यु के स देश वाहक तोह मे, परलोक मे, त्रिलोक्य मे विख्यात हे ।
 जो महत् रथियो, महारथियो,
 द्रव्यवारी भूमिपतिया के प्रतापी मस्तका का भूमिलठित कर,
 रक्त के आजानुनद मे स्नान कर,
 नरहीन कर इस वसुन्धरा को ।
 भोग करता है ससागर भरतखण्ड अखण्ड को ।
 नरपति, शत सहस्र,जिसके चरण मे मुकुट मण्डित मिर भुका,
 आदेश पाकर धय होते,
 प्रसाद पा वृताथ होते ।
 द्रोण से वनुधर, जयद्रथ कुटिल,
 कर्ण अभिमानी,
 शक्ति वर सम्पन्न,
 मृत्युञ्जय पितामह भीष्म,
 भू लुण्ठित हुए जिनके शरो से,
 वही पाथ हूँ,
 रे तस्कर ! रे अधम !

३

य महामहिम महिला,
 त्रस्यर्षपदया,
 द्वारिवेश श्रीऋष्याचन्द्र की धमसखा,
 पुत्र पौत्र परिजन बधूटिया हे,
 जिनके शीयपूग उद्दाम चरित,
 धम कम सिद्धा तवाद,
 लोकोत्तर दैवी सम्पद्,
 ज्ञान ज्योति,
 आजीवन जन जन को अर्पित है,
 युग युग वो,

वह पुण्यनाम क्या तूने नहीं सुना ?
रे तस्कर, रे भ्रम ।

४

कुरु समराङ्ग मे,
निश्शस्त्र जिन्होने,
युग सचित रूढि विभाजन भग किया ।
चतुरङ्ग चमू की अष्टादश अक्षोह्रिण,
भू लुण्ठित कर,
दलित तिरस्कृत पाण्डुसुतो को—
भूतल का साम्राज्य दिया ।

५

जो विश्ववद्य,
आध्यात्म तत्त्व के मध्यवि दु,
कमयोग आविष्कारक, गोरक्षक,
प्रतिपालक चरण शरण के थे,
ये उन्ही कृष्ण की पूजित पत्नी, धर्मसखी,
पुत्र पौत्र परिजन वधूटिया—
भाग्यदोष से हीन गृहा,
असहाया हो,
प्रभास के पातक का—
कज्जल मिश्रित नयन तीर से तपण कर,
जहाँ मदो मत्त मद्यप यादव कट मरे,
परस्पर कलह ठान, मद पी पी कर, हा हन्त,
श्रीकृष्णचन्द्र आनन्दकद,
नरपति, नरपति पति,
देवासुर वद्य, मुनिगन जन पूजित,
महाप्राण,
एक क्षुद्र वधिक आखेटक का—
साधारण सा शराघात खा,
अकस्मात् निष्प्राण हुए ॥

६

यो महामहिम अस्तित्त्व—

अतन्त्रित अन्तमान हुआ ॥

सूनी मथुरा
श्रीतीन द्वारिका,
प्रियहीन पाग,
खोण मे परिजन -
हुण ।

दाउ पीत समुद्रगम म कहा गण ?
उम पार रहे, उम पार गण या नही रहे ?
यह कान कहे ?

७

फिर, उमी रात को प्रलय हुआ ।
ऋद्ध सागर की उत्तुङ्ग तरङ्ग,
पत्रत की चट्टाना मी,
वन जन पशु पत्नी मानव सत्रको समेट,
हम्य, सौ म, हाट वनगीथी,
सत्रको णपट,
हुङ्क त,
प्रचण्ड
दुःख,
जब नोट गउ,
तब सत्र कूट उनक साश्र गया ॥

८

यह अभाग्य महाभागो ता ?
यह नियति नियत पार प्रभोग,
यह प्रियि प्रि-म्रना निष्टुर
या मायामय का माया जान ॥
कि तु जा होना था हुआ,
भना अब उगम गया ।
अभी म जीवित ह,
म पाग, गाण्जीय प्रतहस्त ।
मरी आजातु बाहु,
मेरा लोकोत्तर शीय-

अभी हे,
 क्या हुआ सखा माधव अब नहीं रह
 क्या हुआ हृदय के खण्ड खण्ड हो गए
 क्या हुआ, जीव जीवन सब नीरस हुआ ?
 विश्व त्रिषमय, भोग दुखप्रद,
 प्रियजन आखो के शूल हुए,
 इन प्राणों का बोझ लिए, मैं पाथ,
 अभी जीवित हूँ,
 वही मेरा गाण्डीव,

८

वही हस्तलाघव मेरा,
 वही अडिग रणरङ्ग,
 अभी मेरी नम नस मे है ।
 सो हे तस्कर, हे अवम,
 दूर रहो,
 दूर रहो पथ से,
 तुम नगण्य से वन्य तस्करो पर हाथ उठाना वीर पाथ के योग्य नहीं ।
 यह शशुभ अशोभायुक्त काय है,
 दूर रहो,
 दूर रहो पथ से,
 तुम्हे, पाथ—मै, कुरुकुल अविपति, प्राणदान देता हूँ ।

९

तुम पाथ हो या साथ, हमे इससे क्या ?
 और प्राणदान की खूब रही ?
 यह अपने ही मुह खरा मियामिठरू बनना क्या ?
 अजी,
 पाथ या साथ,
 तुम्हारा जो कुछ उच्चारण हो,
 यह आभीरो का,
 जातसुतो का जनपद है,
 यह नहीं तुम्हारा हस्तिग्राम,
 यह नहीं तुम्हारा कुरुक्षेत्र,

उ द्रप्रस्थ,
 ऋषि मर या जिण, हम इससे क्या ?
 पुरी द्वाग्नि इत्र गउ ता कहो ह+ क्या ?
 होगा कुत्र गाण्डीन मिलीना,
 अरे भाई,
 तुम पार्थ साथ जो कुत्र भी हो,
 भटपट मुख मे तृण दाव,
 उतरो रथ से,
 नगे परो,
 चलो हमारे कुनपति के सम्मुख,
 प्राणदान माँगे ।
 और,
 य शकट, शस्त्र, मणि माणिक,
 स्वर्ण रत्न, रथ वाहन,
 हाथी, घोडे,
 कौशेय, वस्त्र, ऋशिक,
 ये चपला तरुणी वाला,
 सब कुत्र हमको दो ।
 यह तुम्हे भले की सीख हमारी,
 यदि भल बुग की ममभ तुम्ह हो -
 मानो,
 मत मानो ।
 अग भर म कुनपति,
 जातो, आभीरो के तरुणा का जत्था वाकर,
 ते ले मोटे लट्ट,
 दूट पड़ेगे, हनी पसली चर चूर नर दग ।
 भेजा निकाल रख दगे,
 सब अग भग कर दगे,
 फिर करते करते कुत्र न उन पडेगा तुमगे,
 तव रोता मड पकर कर,
 ओ पाथ,
 अथवा साथ जो कुछ भी तुम हो,

तुम मुनो हमारी सीख भली,
सत्र कुछ चुपके से दे लेकर,
हस्तिग्राम का,
" द्रप्रस्थ को,
अथवा जहा रुचे,
भग जाओ ।

१०

यह कैसा उत्पात ?
प्रलयनाद कसा यह ?
कमी हूँकृति,
वज्र गजना,
असमय के ये मेघ—
जि होने भास्वान् का तेज तिमिर में ढाप लिया ।
अब समझा
समझा ।
यह आभीरो के जातसुतो के दल बादल
आ रहे,
अरे ठहरो ठहरो,
लाओ तो गाण्डीव,
तस्करो का विवम करूँ,
मे पाय वनञ्जय त्रिभुवन त्रिश्रुत
आभीरो को, जातसुतो को
इसी समय निवश करूँगा ।

११

किन्तु अरे,
यह कमी मिहरन ?
भय की वाली छाया—
नेत्रों में आ घूमो ।
हस्त प्रकम्पित होता है,
ज्या चढ़ी नहीं ।
क्या हुआ कुतूहल अद्भुत अति,
गाण्डीव का यह गुरुत्व इतना कैसे बढ़ गया ?

सस्तहसन गाण्डीय खमरुने लगा ??

अरे, ठहरो, ठहरो,

ओ तस्कर,

ओ पामर,

१२

वह अन्त पुर है,

वहाँ हे महामहिम महिला,

राजकुलो की मयात्ति,

उवर कहा जाते हो,

उनका रक्षक—

अभी मैं पाण्डुपुत्र अजुन

एक एक को मारगिद्ध कर—

भूलुण्ठित कर दगा ।

१३

कि तु वह हृदय वेदना कैसी ?

विज्जर शरीर,

पर—

ज्वराक्रान्त सा अनाहत अत्रसाद,

प्राण को, जीवन को,

प्रत्येक श्वास को,

शीतल मा करन लगा ?

जैसे,

रक्त नहीं बह रहा मर्मनियों म, पीतल जल है,

प्रथमा,

यह नहीं पाय मा यश पून, विक्रमस्नात,

बह अक्षदेह,

यह मिट्टी का डेर,

अथवा निर्जीव लोथ नायर पशु गी ।

१४

गिच्च रहे प्राण,

नस नस से ।

यह दुर्भाग्य पाय का देखे रात्र —

लोकपाल, दिकपाल,
व्योमविहारी देव वाट,
सहस्राक्ष,
रविमण्डलवामी पितृ पिता,
नाग, दत्य दानव, मानव,
मे पाय आज से मत्य मत्य—
सत्याथ भाव मे क्लीव हुआ ।

१५

ये श्रम सीकर भर भर भा भर—
वह चने भाल से,
अश्रु नयन से,
आज बिदा पुरुषाथ हुआ ।
मर गया पाथ गाण्डीवराज
उसी का शव यह जीवित सा—
प्रतिभास रहा है,
देखो यह चमत्कार अद्भुत
अरे—अरे—अरे,
ले चले उठाकर,
कुलवधुओ को ?
महामहिम महिलाओ को ।
राजकुलो की मयादा का कुछ तो ध्यान करो,
उन्हे छोड दो,
मुझे बाध ले चलो,
दास की भाति, पाथ मे—
सब सेवाए तन मन से सम्पन्न करू गा ।

१६

दुर्योधन का दास्य रोषवश,
ग्रन्वीकार किया था—
किन्तु, तुम्हारा एकनिष्ठ मै सेवक हूँगा,
सब सेवाए तन मन से,
मे पार्थ बजा लाऊँगा ।
तुम यही करो केवल—

मोरत्र तु त ही पयाग को
 नाति त तत तगे,
 तरे, मो प्रा ागे ने त तपतिया,
 गा तत तरा पति ा मरा,
 तव पया इग्ग नी उन प्रसहाया—
 निरपाया, हतभाय्या
 तुनतुप्रा का—
 जो नेता ने मो हा ।

१७

नही मुनत तुड,
 करनी मतमानी,
 त तने उतातर,
 तनातर से राजकु मो ही
 तुनतुप्रा का ।
 हाय, हाय, हतभाय्य तुण
 पाणत,
 तपित तुरतत तया ।
 त तु ताततत त गुरुजा का
 घान फता,
 पातत पूता,
 सत तम तस तय तण
 नष्ट हा गा पाज तग
 पाण तुन ।

१८

तता, तया तत तसि तातपुर आकर,
 पृत्रग तमरात,
 ग तपर, गरात तण ता तता गया ?
 नीम त यग
 तया तमता तग ?
 तस गुरुवर तिता तत मो ?
 उपहास कः ग ततुल
 तुपद क या मुय द्याप तग मे -

रुदन करेगी,
 प्रोर सुभद्रा मातृपदो का कुल क्षेम—
 सुन ऐसा अद्भुत,
 अव्य पाद्य से सत्कारेगी
 वीर पाथ को,

१६

पुरजन परिजन, कुरु,
 पौरवधु,
 मुनकर मरी गरिमा गुनमय,
 लाज पुष्प बषाकर—
 अभिर्ना दत्त कर हर्षित होगी ।
 हा । हा । हा । हा ।
 नही, नही,
 म जाऊँगा नही
 क्या काम मेरा कुरुराज नगर मे,
 यह कतुषित मुख,
 कहो किसे—
 दिखलाकर जीवित हूगा ?
 नही, नही,
 मर गया पाथ,
 हत भाग्य,
 मृत्यु किंतु, अब भी दुलभ है,

२०

कोरव,
 कोरव कुलपति,
 भीष्म द्रोण अधिरथ सुत,
 अभिमान मेरु दुर्योवन—
 सोभाग्य मृत्यु का वरद हस्त,
 ले समराङ्गण मे खेत रहे ।
 यश पताका फहराते,
 दिव्य विमानो मे,
 सुरपुर पहुँचे ।

रह गया अमम
 तीव्र पाप,
 दग्धते कुदिन आज का गगुभ,
 हान्ति करने ता कुव,
 हरे वृष्ण,

२१

नामा तरो,
 धमा करो, उम स्फिर ता,
 उम अम तरा म अजत ता,
 जिने तुमने पृथ्वी जयतर तो,
 ग्रोर जिसा—
 लाज नुटाऽ कृष्ण वश की,
 कुरकुल की,
 क्षत्रियत्व की,
 अम तगरा, आभीरा के म जाप म ।

२२

यह वज्र गजना कमी ?
 स्य तिरोहित हुआ ।
 प्रलय के भय,
 अथवा य उदनापात ।
 शा सहस्र पादिक अतिरथ
 उदनापिन उठी स्या यहा ?
 अथवा मृत कौरव,
 कुशात्र ममि की चिता गुणगी त्याग,
 मिगी दत्य म अभिशाप म,
 पुनस्ज्जीवित टा,
 प्रण सखा क गत होने पर,
 मृत्युदूत, अथवा मृत कौरव,
 त्रिभुज भिन्न पुष्पाथ पाप म युद्ध करण ।
 पुनस्ज्जीवित तो,
 तुल्येन म विक्रम प्रिताप उन । तु त तुगो को कुवव,
 एक बार काजल से अशुनीर से काजल दगी ।

(भारतीय सरकार के विज्ञान मंत्रालय में भार ग्रहण करने के पश्चात् आचार्यश्री के बालसखा डा० एस० एस० भटनागर ने आयुर्वेद विज्ञान को नियमित और प्रामाणिक करने का भार उनपर डाला और विधान सभा में पारित करने के लिए तत्सम्बन्धी एक अधिनियम बनाने का अनुरोध किया । आचार्यश्री ने बड़े परिश्रम से अधिनियम तयार करके डा० भटनागर के पास भेज दिया था और वे इसका मनन कर ही रहे थे कि अकस्मात् उनका देहावसान हो गया । आयुर्वेद-कल्याण के हितार्थ आचार्यश्री के इस परिश्रम को प्रकाशित किया जा रहा है ।)

प्रस्तावित

भारतीय औषध निर्माण नियन्त्रण बोर्ड अधिनियम (बिल)

प्रस्तोता

आचार्य चतुरसेन

केन्द्रीय धारा विधानसभा की स्वीकृति के लिए

द्वारा

श्री डा० एस० एस० भटनागर

भारतीय औषध निर्माण नियन्त्रण बोर्ड प्रस्तावना

आयुर्वेदिक औषधि शास्त्र अब से तीन हजार वर्ष पुराना है। उसमें पिछले पांच हजार वर्षों के उन सब गवेषणाओं और वैज्ञानिक आविष्कारों का परिष्कृत रूप प्रकट है, जो रोम, मिस्र, चीन, यूनान, अरब, तिब्बत और भारतवर्ष में समय-समय पर विकसित होते गए। यह एक प्रभावशाली व्यवहारिक शास्त्र है और उन प्राकृतिक ताकतों के अति निकट है जो जीवशास्त्र और भौतिकशास्त्र से सम्बन्धित हैं। आयुर्वेदिक औषधि हजारों वर्षों से भारत के करोड़ों नगरवासीयों के जीवन की रक्षा करती आ रही है। वह सरल, नम्रगन्ध और सुलभ सस्ती और मर्यादा हानिरहित है।

मुसलमानों एवं अंग्रेजों के एक हजार वर्ष के राज्य काल में उनके प्रति पूरी उपेक्षा रही और उसे तनिक भी राजाश्रय नहीं प्राप्त हुआ। फिर भी वह आज तक करोड़ों भारतीयों के जीवन की रक्षा करता चला आ रहा है। यदि आज आयुर्वेद चिकित्सा और औषध को बन्द कर दिया जाय तो सरकार अपनी पूरी शक्ति लगाकर भी केवल एतौषधिक चिकित्सा और औषधों के द्वारा भारत के सार्वजनिक स्वास्थ्य की रक्षा नहीं कर सकती।

दुर्भाग्य से आज भारत में एक भी ऐसा औषध निर्माण करने वाली निमाता फर्म नहीं है जहाँ शुद्ध और वैज्ञानिक शोध के द्वारा आयुर्वेदिक औषधि का निर्माण होता हो तथा वह सही और शुद्ध वैज्ञानिक रूप में यथासम्भव साधारण को उपलब्ध हो। केवल यही नहीं, कि अनाड़ी और अनभिज्ञ वृद्ध लोग मनमानी रीति पर उन औषधियोंको पुराने और अपूरण तरीकों पर तैयार करते और आमतौर पर सवसाधारण को ठगते हैं। अपितु इस समय देश में जो बड़ी बड़ी आयुर्वेदिक औषधि निर्माण करने वाली फर्में हैं, वे भी इन औषधियों को मर्यादा अज्ञानिक और पुराने तरीकों पर बनाती और बेचती हैं। उनका वैज्ञानिक प्रामाणिकता तथा शुद्ध वास्तविकता के परीक्षण का कोई उपाय नहीं है और इन कारणों से न केवल देश का करोड़ों रूपया भूँठी और नकली दवाइयों की खरीद में बर्बाद होता है, अपितु उनके सेवन से सवसाधारण को कोई लाभ नहीं होता, वरन् उन्हें अनेक हानिकारक परिणामों को भोगना पड़ता है, जो साधारणतया खतरनाक हैं और कभी कभी प्राणघातक भी हो जाते हैं।

ऐसी ही दशा यूनानी और तिब्बती दवाइयों की भी है। मुसलमानी राज्यकाल में उसे प्रश्रय मिला, परन्तु अब उसकी दशा आयुर्वेदिक औषधि से भी बदतर हो गई

है। इसमें आयुर्वेदिक औषधि की भाँति भारत की प्राचीन ही दानि हो रही है। अब भारत की मूर्ति के बाद ही भारतीय औषधि-शास्त्र और और औषधि निर्माण को पूरा बजाना और आयुर्विज्ञान के विकास के सम्पूर्ण आर्थिक, राजनीतिक तथा सामाजिक व्यवस्था को समुचित ढंग की अपेक्षा गर्ना है। यद्यपि देश के अनेक नर नारियों के स्वास्थ्य और जीवित की रक्षा तथा सामूहिक स्वास्थ्य की उत्थिति उनपर निर्भर है। यदि ये अल्पमात्र औषधि शास्त्र बर्जानिक शोषण अनुसार आयुर्विज्ञान नही किए गए तो निश्चय ही आगामी काल में यह प्राचीन और उपयोगी विद्या समूल नष्ट हो जायगी और देश के स्वास्थ्य, नर नारियाँ तथा स्वस्थ और प्राकृतिक रूप में उन औषधियों के लाभ में अहित रहकर विदेशी औषधि पर निर्भर रहना पड़ेगा, जो न केवल महंगी और स्वभाव विरुद्ध है अपितु सम्पूर्ण देश की आरोग्यरक्षा के लिए गवस्था अप्रुण है।

एक अधिनियम

क्याकि यह उचित और आवश्यक है कि भारतीय औषधि शास्त्र और औषधि निर्माण को सत्रथा आयुर्विज्ञान के तानिक आधारा पर अत्यधिक बरके सम्पूर्ण भारत में औषधि निर्माण और विज्ञानों का उगी व आधारा पर औषधि निर्माण करने तथा उक्त विधि पर निर्मित औषधि का ही विज्ञान करवा व विण नियंत्रण में रखा जाए, इसलिए निम्नलिखित अधिनियम बनाया जाय।

भाग १

अध्याय १

प्रारम्भ

- १—(क) यह अधिनियम 'भारतीय औषधि निर्माण नियंत्रण अधिनियम' कहलाएगा।
 (ख) यह सार भारतवर्ष पर लागू होगा।
 (ग) इस अधिनियम का भाग १ उस तारीख से लागू होगा जिसे केन्द्रीय सरकार सशक्त कर सरकारी गजट में प्रकाशित करने नियत कर। भाग १ का लागू होना के तारीख से दो वर्ष व्यतीत हो जाय के बाद भाग २ उस तारीख से लागू होगा जिस के त्रिय सरकार धारा ५६ के अनुसार विज्ञान द्वारा सूचित कर।

२— इस अधिनियम में जब तक कि कांश् प्रात उसके विषय या सदस्य के विपरीत न हो --

- (क) बोल का तात्पर्य 'भारतीय औषधि निर्माण नियंत्रण बोर्ड' से है, जो उस अधिनियम के आदेश के आधीन बनाया गया हो।
 (ख) 'अधिर्षा' का तात्पर्य बोर्ड के चेअरमैन से है।
 (ग) 'भारतीय औषधि' का तात्पर्य आयुर्वेदिक और यूनानों औषधि शास्त्र से

हे, जिसमे प्राणी विज्ञान, वनस्पति विज्ञान, रमायन शास्त्र और रम-शास्त्र भी सम्मिलित है।

- (घ) 'सदस्य' का तात्पर्य बोर्ड के किसी सदस्य से है।
- (ङ) 'निर्धारित' का तात्पर्य इस अधिनियम के आधीन बनाए हुए नियमों द्वारा निर्धारित से है।
- (च) 'सरकार' से तात्पर्य केन्द्रीय सरकार से है।
- (छ) 'रजिस्टर' का तात्पर्य भारतीय औषध निमाताओं के उस रजिस्टर से है, जो तत्सम्बन्धी धारा के अधीन रखा जाय।
- (ज) 'रजिस्टर्ड औषध निमाता' का तात्पर्य भारतीय औषध निमाता ऐसी सस्था से है, जिसका नाम इस अधिनियम के आदेशों के अधीन रजिस्टर में दर्ज हो।
- (झ) 'रजिस्ट्रार' का तात्पर्य इस अधिनियम के अधीन नियुक्त किए गए रजिस्ट्रार से है।

अध्याय २

बोर्ड की स्थापना और संगठन

३—केन्द्रीय सरकार सरकारी गजट में विज्ञप्ति द्वारा उस विधि के अनुसार, जिसकी आगे चलकर व्यवस्था की गई है, एक बोर्ड जिसका नाम 'भारतीय औषध नियंत्रण बोर्ड' होगा, इस अधिनियम के उद्देश्यों को कार्यान्वित करने के लिए सस्थापित करेगी। बोर्ड एक सभ्यकारी (कारपोरेट) सस्था होगी, जिसका अनुक्रम निरंतर चलता रहेगा और जिसके पास सभ्यकारी सस्था की एक मुहर होगी। बोर्ड उपरोक्त नाम से नालिश दायर कर सकेगा और इसी नाम से उस पर नालिश दायर हो सकेगी।

४—बोर्ड में १५ सदस्य होंगे, जो निम्नलिखित रीति पर नियुक्त किए जावेंगे।

- (क) ऐसे वृद्ध और हकीम जिन्हें केन्द्रीय सरकार नामजद करेगी।
- (ख) तीन ऐसे सदस्य जिन्हें केन्द्रीय सरकार द्वारा स्वीकृत भारतीय औषध निर्माता सस्थाएँ निर्वाचित करें।
- (ग) एक हाईकोर्ट के जज।
- (घ) एक वैज्ञानिक।
- (ङ) एक डाक्टर (एलोपथिक)।
- (च) एक केन्द्रीय धारासभा का सदस्य।
- (छ) डाइरेक्टर जनरल।
- (ज) डाइरेक्टर (एक्स ओफिशियो)।

- (ज) निम्नांकित नाम्य खण्ड(ग) के आश्रीत निम्नलिखित विधानों के अनुसार विधि जाणने।
५. गुरु के उपनिषत् 'आश्रित जनरत' तथा उपनिषत् विधानों के अपने सदस्य म से जुनेगा।
- ६—गुरु के सदस्य के पद की अवधि (जिसके अंतर्गत उपनिषत्पति भी होगा) सदस्य के रूप में उसके निम्नलिखित या नामजद विधान के अन्तर्गत म तीन साल की होगी। पद पर न रहने वाले उपनिषत्पति या सदस्य यदि अथ पक्षर योग्य हाने तो उपनिषत्पति या सदस्य के रूप में फिर निम्नलिखित विधि जान या नामजद विधि जान के अधिकाारी हाने।
- ७—उस अध्याय में किसी बात के होने हुए भी भाग १ के तालुके में नामजद पद सधठित प्रथम नाम जिसके अंतर्गत उपनिषत्पति भी होगा, के अश्रीत सरकार द्वारा नामजद किया जात्रगा, और उनके पद की अवधि बात के अन्तर्गत म या एमें समय से जिसके अश्रीत सरकार द्वारा प्रादिष्ट कर, तो गान की होगी।
८. (क) उपनिषत्पति या नाम भो सदस्य उसी समय ता म उपनिषत्पति को पद भेज कर गपना पद त्याग कर सत है। उक्त त्यागपत्र का प्रभाव उस दिनाक से होगा जब बात उस अश्रीकार करत।
- (ख) यदि उपनिषत्पति त्यागपत्र दगा जाता वह अपने निम्नलिखित त्यागपत्र को केद्रीय सरकार के पास भेजगा।
- (ग) त्यागपत्र का प्रभाव ऐसा अश्रीत म होगा जब उक्त अश्रीकार के अश्रीत सरकार द्वारा सरकारो गजट में प्रकाशित की जाय।
- (घ) उपनिषत्पति को अन्तर्पस्थिति में उपनिषत्पति नामजद त होगा।
९. (क) यदि नामजद या नाम सदस्य, उपनिषत्पति मर जाय या त्यागपत्र दे दे या उनी कारण म मस्थित सदस्य या उपनिषत्पति न रह तो उस प्रकार उत्पन्न रिक्तता का पूर्ति नामजद विधि के अन्तर्गत नामजदगी द्वारा ऐसी अश्रीत के अश्रीत जा विधि अश्रीत की जाय, उपनिषत्पति के लिए की जायगी।
- (ख) उपनिषत्पति (क) में विधि अश्रीतता को पूर्ति के लिए निर्वाचित या नामजद सदस्य या उपनिषत्पति के रूप में अश्रीत उस सदस्य या उपनिषत्पति का नाम पर अश्रीत होगा जिसका अश्रीत पर उक्त प्रकार निर्वाचित या नामजद किया गया है। विधि अश्रीतता के अश्रीत यदि निर्वाचित या नामजद सदस्य को अश्रीत म रिक्तता ६ मास या उससे कम के लिए हो तो गुरु या सरकार क्रमण यह अश्रीत ६ मरती है कि उक्त रिक्तता की पूर्ति शेष अश्रीत के लिए न की जाय।
- १०—(१) यदि कोई सदस्य, ऐसी अश्रीत के भीतर जिसके लिए वह नामजद था

निर्वाचन किया गया है—

- (क) बोर्ड की तीन लगातार साधारण मीटिंग्स में बिना किमी उपयुक्त कारण अनुपस्थित होता हो, अथवा
- (ख) धारा १७ में कही गई किमी अयोग्यता के आधीन आ जाता हो, अथवा
- (ग) बोर्ड के विरुद्ध किसी दीवानी या फौजदारी मुकदमे या कारवाई में कार्य करता हो, अथवा
- (घ) बोर्ड के आधीन कोई नियुक्ति (एम्प्लायमेंट) प्राप्त करना या केन्द्रीय सरकार की पूर्य स्वीकृतिके बिना साक्षात् या अन्यथा स्वयं या किमी हिस्सेदार के द्वारा बोर्डके साथ उसके द्वारा या उनकी ओरमें किमी मविदा (काट्रेक्ट) में कोई अशय या हित (शेयर या जटरेस्ट) प्राप्त करता हो, तो बोर्ड उसे सदस्यता में हटा सकता है।

- (२) किन्तु प्रतिव य यह है कि इस धारा के पूर्वोक्त उपबन्धों के आधीन यदि बोर्ड कोई काय करना चाहता है तो तत्सम्बन्धी सदस्य को स्पष्टीकरण का अवसर दिया जायगा और यदि उक्त प्रकार का काय किया जाय तो उसके करने का कारण अभिलिखित किया जायगा।

- ११—(१) केन्द्रीय सरकार ऐसे अविपति तथा सदस्य को हटा सकती है जिसने उसकी राय में किमी ढग से अपने पद का ऐसी उद्दण्डता से दुरुपयोग किया हो जिससे उसका पद पर बना रहना सावजनिक हित के लिए हानिकारक हो जाय या जो अपने कतव्य के निम्पादन में स्वभावतः अमफल रहा हो।
- (२) किन्तु प्रतिव य यह है कि केन्द्रीय सरकार इस धाराके आधीन काय करना चाहे तो उस आचरण के स्पष्टीकरण के लिए अविपति या उपअविपति या सदस्य को अवसर देगी, जिसके कारण वह उसे हटाना चाहती हो। और यदि केन्द्रीय सरकार कोई काय इस सम्बन्ध में करे तो ऐसा करने के कारण को अभिलिखित करेगी। इस सम्बन्ध में केन्द्रीय सरकार के निराय के विरुद्ध किसी अदालत में कोई आक्षेप नहीं किया जा सकेगा।
- (३) केन्द्रीय सरकार किसी ऐसे सदस्य या अविपति या उपअविपति को मुअत्तिल (मस्पट) कर सकती है, जिसके विरुद्ध सदस्य या अविपति के रूप में अपने पद का दुरुपयोग करने के सम्बन्ध में किसी अदालत में अथवा केन्द्रीय सरकार या बोर्ड की प्राज्ञाके आधीन जाच होरही हो। यह मुअत्तिली तब तक रहेगी जब तक यथास्थिति कानूनी कायवाही या जाच के बाद कार्ट अन्तिम प्राज्ञा पागित न हो जाय। उक्त सदस्य या अविपति या उपअविपति मुअत्तिली की अवधि में बोर्ड की किसी कायवाही में भाग

नही व सनेगा —

१२—अग्निपति का कव्य भाग कि

- (क) जब तब तब अग्निनियमम गहन विपराय आता है या समुचित कारणों के आधार पर ऐसा करने में (उम) राफा न जाय -
- (ख) वह जो न ही मीटिंग बनाए तथा उतना सम्पूर्ण न करे ।
- (ग) वह जो तब तब न ही समस्त मीटिंग में न जाननाला फायदाहियो का किसी ऐसे विनियम (संयुक्त) के अनुसार नियम करने जा इस सम्बन्ध में प्रमाण जाय ।
- (घ) जो के अग्नि तथा शासकीय पत्र न ही खरख तथा नियम करे और उमम जो कुछ पोष हो उमता न यान म नाण ।
- (ङ) इस समय कतयो का पातन कर, विचार विण जान का उस अग्निनियम अथवा उसके अन्तगत प्रमाण गण निम्ना के आशय आदेश हो या जो इस अग्निनियम या उक्त नियमों द्वारा उगे गापा गया हो ।

१३—(१) बोट अग्निपति को यह आदेश के सक्ता है कि वह उगे—

- (क) बोट के शासन प्रवृत्त से सम्बन्धित किसी मामले के कारण कोई नक्शा, अनुमान, आरुडे या अन्य सूचना दे ।
- (ख) उपरोक्त किसी मामले के कारण म या रिपोर्ट दे या स्थिति विशेष का स्पष्टीकरण करे, और
- (ग) किसी ऐसे रिपोर्ट (राज) पत्र विनियम या नक्शा या अन्य किसी कथन की सतिपि दे जो अग्निपति जो के कारण उमके अग्निपति या नियम म हो या जो जो के किसी कम गारा के विभाग में देखवद्ध हो या दार्शनिक नो मर्ता ।
- (घ) अग्निपति अनुचित फिलम्प कथन गिता एगी पत्निक भाग की पूर्ति करेगा जो उपगारा (२) क गया गिन हो जाण ।
- (ङ) उस गारा की किसी बात या उस अग्निपति के किसी आदेश से यह न सम्झा जायगा कि वह जो के ऐसे विनियम (संयुक्त) बनान से रोयता है, जिसके द्वारा सत्स्या का उमका मीटिंग में प्रश्न करने का अग्निपति पर प्रतिषेध तथा ब्रह्मा के गायीन किया गया हो, जो उक्त नियम या विनियमों (संयुक्त) में विचार विण जाण ।

१४ - (१) अग्निपति का कारण या विशेष आज्ञा द्वारा गारा १२ के वाक्य खण्ड (क) और (ख) में वर्णित अग्निपति कथन या कार्या की, जो उमके आधीन है प्रयोग में लान के लिए उपअग्निपति (नाइस चेयरमेन) को अविकृत

कर सकता है।

- (२) उपवारा (१) के आधीन अधिपति द्वारा दी गई कोई आज्ञा किमी अधिकार को प्रयोग में लाने किसी कर्तव्य को पालन करने या किसी कार्य के सम्पादन करने के सम्बन्ध में कोई बन्धन नियत कर सकती है, तथा कोई प्रतिबन्ध लगा सकती है।
- (३) विशेष रूप से ऐसी आज्ञा किसी ऐसे प्रतिबन्ध को निर्धारित कर सकती है कि उपवारा (१) द्वारा उसे प्राप्त किसी अधिकार को उपयोग में लाते हुए उपअधिपति द्वारा दी गई कोई आज्ञा अधिपति द्वारा खण्डित या संशोधित की जा सकती है, जब नियत समय के भीतर उसके विरुद्ध अपील की जाय।

१५—उपअधिपति (वाइस चैयरमैन)

- (क) बोर्ड की किसी मीटिंग में अधिपति की अनुपस्थिति में, यदि वह किसी उचित कारणवश ऐसा करने में असमर्थ न हो, उस मीटिंग का सभापतित्व करेगा, उसकी कार्यवाहियों को नियमपूर्वक कराएगा और उसमें व्यवस्था बनाए रखेगा।
- (ख) अधिपति का पद खाली रहने के समय में या तो अधिपति की असमर्थता या अस्थायी अनुपस्थिति के समय में वह अधिपति के किसी अथवा अधिकार या व्यवहार या कर्तव्य का पालन करेगा।
- (ग) किसी भी समय अधिपति के किसी ऐसे कर्तव्य का पालन करेगा और जब कभी अवसर पड़े उसके किसी ऐसे अधिकारका व्यवहार करेगा, जिसे अधिपति ने वारा (१४) के अधीन उसे सौंपा हो।

१६—यदि कोई चुनाव करने वाली संस्था, जिसका उल्लेख धारा ४ में किया गया है, ऐसी तारीख तक जो निर्धारित की जाय, किसी रिक्त स्थान की पूर्ति के लिए सदस्य या सदस्यों की आवश्यक संख्या न चुने तो केन्द्रीय सरकार को अधिकार होगा कि ऐसे रिक्त स्थान या स्थानों की पूर्ति किसी ऐसे व्यक्ति या व्यक्तियों की नामजदगी करके करे, जो उस चुनाव की विशेष संस्था चुने जाने योग्य हो।

१७—कोई व्यक्ति बोर्ड का सदस्य होने या रहने या उसके लिए नामजद किए जाने के अयोग्य होगा यदि—

- (क) उसे किसी फौजदारी की अदालत ने किसी ऐसे अपराध के लिए, जिसमें नैतिक पतन पाया जाय और जो बोर्ड की राय में उसके चरित्र में ऐसे दोष का सूचक हो, जिसके कारण उसका बोर्डमें कायम रहना अवाञ्छनीय

द्वारा बनाए गए विनियमो (ऐयुलेशन्स) मे आदेश हे ।

(२) बोड की किसी मीटिंग मे तब तक कोई कायवाही न की जायगी, जब तक कि उसमे पाच सदस्य उपस्थित न हो ।

परन्तु प्रतिबन्ध यह है कि जब कोरम को पूरा न होने के कारण किमी मीटिंग की किसी कार्यवाही को स्थगित करना आवश्यक हो तो— अध्यक्ष अथ तारीख के लिए मीटिंग को स्थगित कर देगा और वह कायवाही जो कोरम के पूरा न होने से स्थगित कर दी जाय, बिना इस बात का विचार किए—कि उपस्थित सदस्योंकी सरया कम है, ऐसी अथ तारीख को या मीटिंग को पुन किसी बाद की तारीख को स्थगित कर देने की दशा मे, ऐसी बाद की तारीख को की जायगी ।

२१—यदि किसी मीटिंग मे अध्यक्ष अथवा उपाध्यक्ष उपस्थित न हो तो उपस्थित सदस्य अपने मे से एक सदस्य को अध्यक्ष चुन लेंगे और ऐसा अध्यक्ष मीटिंग का सभापतित्व करते समय बोड के समस्त कर्तव्यो का पालन करेगा और समस्त अधिकारो को काम मे ला सकता है ।

२२—जब बोड की किसी मीटिंग मे कोई सदस्य अध्यक्ष की ऐसी किसी आज्ञा की अवहेलना करे, जिसके द्वारा वह किसी कार्यवाही अथवा वाद विवाद या विषय को नियम विरुद्ध घोषित करे अथवा किसी अथ रूप से सदस्यो के व्यवहार या कायवाही के चालन को अनियमित करे अथवा जबकि कोई सदस्य जानबूझकर मीटिंग मे विघ्न डाले, तो अध्यक्ष को अधिकार होगा कि वह ऐसे सदस्य को मीटिंग से चले जाने का हुक्म दे और उसके ऐसा न करने पर वह मीटिंग से हटाने या निकालने के लिए उसके विरुद्ध ऐसी शक्ति का प्रयोग करे, जो आवश्यक हो वा जिसे वह नेकनीयती के साथ आवश्यक समझे ।

२३—(१) ऐसे समस्त प्रश्न, जो बोड की किसी मीटिंग के सामने आएँ, वोट देने वाले उपस्थित सदस्यो के बहुमत से निर्णय किए जायेंगे ।

(२) ऐसी दशा मे जबकि वोट बराबर हो, अध्यक्ष को एक दूसरा अथवा निर्णयात्मक वोट देने का अधिकार होगा ।

२४—(१) बोर्ड का किसी मीटिंग मे उपस्थित सदस्य के नाम, उनमे की गई कायवाही तथा स्वीकृत प्रस्ताव एक पुस्तक मे चढाए जायेंगे, जिसे मिनट बुक कहा जायगा ।

(२) पिछली कायवाही का लेखा उस मीटिंग मे अथवा दूसरी होने वाली मीटिंग मे पढा जायगा और उन सदस्यो (या उनमे से अधिकांश) द्वारा, जो उसके पढते समय उपस्थित हो, उसके सही मान लिए जाने पर उस

मीटिंग का, जिसमें वह कायवादी स्वीकृत हो गई हो, उसके प्रमाण स्वरूप कि वह स्वीकृत कर ली गई है अपना प्रस्ताव रख देगा।

- (२) प्राण की प्रत्येक मीटिंग की कायवादियाँ की एक प्रतिलिपि मीटिंग होने से तारीख से १५ दिन के अन्दर केन्द्रीय सरकार अथवा उन सम्प्रदाय में सरकार द्वारा नियुक्त किए गए किसी अथ अग्रिमारी (अग्रिमारी) के पास भेजी जायगी।

२५ — (१) उन नियमों के अन्तर्गत, जिन्हें केन्द्रीय सरकार उन उम पयोजन के लिए बनाया हो, जो किसी भी उद्देश्य के लिए, जिसके लिए उस प्रतिनियम में आदेश है, उन सम्प्रदाय में एक प्रस्ताव द्वारा एक ऐसा परामशदात्री या कायवादिगी समिति नियुक्त कर सकता है, जिसमें उतने ही सदस्य या एक बाहरी व्यक्ति, जिन्हें उम उद्देश्य के लिए सम्मिलित किया गया हो या ता हो, जिनके सम्प्रदाय में प्राण निगमण कर और एक सजाजक नियुक्त कर सकता है, ता एकी समिती की मार्गदर्शक सभापतित्व करेगा। सभापतन की अनुपस्थिति में समिती अपने सदस्यों में से किसी का इस उद्देश्य के लिए चुन सकती है।

- (२) समिती की किसी मार्गदर्शक समिति आन वान समस्त प्रश्न पोट देने वाले उपस्थित सदस्यों के बहुमत से निर्णय लिए जायेंगे। ऐसी दशा में जबकि पोट परापर हो, सभापतित्व करने वाले व्यक्ति को एक निर्णयात्मक वोट देने का अधिकार होगा।

(३) समिती की किसी पोट में पाठ कायवादी न हो जायगा, जब उममें दो या दो से अधिक सदस्य या जिसके सदस्यों की समिती हो, उममें एक चौथाई में कम सदस्य जो भी सदस्य में अधिकांश हो, उपस्थित हो।

(४) पत्यन समिती को मार्गदर्शक समिति में सम्मिलित करनी जायगी और बोर्ड का अधिकार होगा कि वह उनपर कोई भी कायवादी करे, जिसे वह आवश्यक समझे और समझे का मायका होगा कि वह प्रो के आदेशों का पालन करे।

२६ (३) यदि अथवा समिती में कोई रिक्त स्थान हो तो कारण बोले अथवा ऐसी समिती की कोई कायवादी या नाम अर्पित न होगा।

(२) प्राण के सदस्य की हैसियत से अथवा किसी वैठक के अध्यक्ष या अध्यक्षता करने का अधिकारी को हैसियत से नाम करने वाले किसी भी व्यक्ति की कोई श्रेष्ठता या उसके निर्वाचन या नामजदगी में किसी दोष के कारण वां की कोई कायवादी या काम के सम्बन्ध में, जिसमें ऐसे व्यक्ति

ने भाग लिया है वह न समझा जायगा कि वह कायवाही या काम अर्थात् है, यदि जिन सदस्यों ने उस कायवाही या काम में भाग लिया या उनमें से अधिकतर ऐसे थे, जो नियमानुसार योग्यता रखते थे।

अध्याय ५

बोर्ड के उद्देश्य और काय

२७—बोर्ड के नीचे लिखे उद्देश्य होंगे —

- (१) भारतीय औषध शास्त्र और औषध निर्माण विधि को आधुनिकतम पूरा वैज्ञानिक रूप देना।
- (२) भारतीय औषध शास्त्र और औषध विज्ञान को जनता के लिए शुद्ध वैज्ञानिक रूप में प्रस्तुत करना।

२८—बोर्ड के काय निम्नलिखित होंगे —

- (१) अन रजिस्टर्ड अप्रामाणिक और जाली औषध निमाता और विक्रेता फर्मों तथा व्यक्तियों पर कानूनी रोक, नियंत्रण और दण्ड।
- (२) प्रामाणिक भारतीय औषध निर्माण करने वाली फर्मों और व्यक्तियों को प्रमाण पत्र देना तथा रजिस्ट्री करना।
- (३) प्रामाणिक रजिस्टर्ड फर्मों तथा व्यक्तियों को माडन रीति पर औषध निर्माण के वैज्ञानिक तरीके सिखाना, औषध निर्माण करने की नवीन विधियों का आविष्कार करना तथा इन नवाविष्कृत रीति पर तैयारशुदा औषधियों को लखनऊ ड्रग रिसर्च इन्स्टीट्यूट में परीक्षित कराकर प्रामाणिक होने पर उसी विधि तथा प्रक्रियाओं द्वारा सब रजिस्टर्ड स्वीकृत भारतीय औषध निमाता फर्म और व्यक्ति औषध तैयार करे तथा उन्हें लखनऊ ड्रग रिसर्च इन्स्टीट्यूट में परीक्षित कराने तथा प्रमाण पत्र लेकर बेचने को विवश करना।
- (४) यदि ये फर्म और व्यक्ति ऐसा न करे तो उन्हें दण्ड देना।
- (५) भारतीय औषध-शास्त्र तथा बनस्पतियों की खोज के लिए एक रिसर्च विभाग स्थापित करना।
- (६) भारतीय औषधियों को आधुनिक वैज्ञानिक रीतिपर तैयार करने की विधि निर्णीत करने तथा औषध निर्माण के परीक्षण करने और फार्मूले स्थिर करने के लिए एक आधुनिकतम वैज्ञानिक साधनों से सुसज्जित लेबोरेटरी स्थापित करना।
- (७) आधुनिकतम वैज्ञानिक शोधके अनुसार भारतीय औषध निर्माणकी विधियाँ सिखानेके लिए एक ट्रेनिंग स्कूल की दिल्लीया लखनऊमें स्थापना करना।

- (८) ट्रेनिंग में शिक्षा प्राप्त स्नातको को प्रमाणपत्र देना ।
- (९) प्रामाणिक भारतीय औषध निर्माता फर्म अथवा व्यक्तियों को केवल इन स्नातको तथा इन जैसे अथवा प्रामाणिक वैज्ञानिकों की निगरानी में औषध निर्माण करने की शर्त अनिवार्य करना ।
- (१०) हिमालय या विन्ध्य प्रदेश में भारतीय वनस्पतियों के उद्यान स्थापित करना और प्रसिद्ध और दुष्प्राप्य जड़ी बूटियों की खोज और उनके गुण दोषों की खोज कर उनके 'बोटानिकल' नामकरण करना ।
- (११) आधुनिकतम वैज्ञानिक खोज के आधारों पर आयुर्वेदिक निषण्डु-शास्त्र और भारतीय औषधि शास्त्र का संशोधित संस्करण प्रकाशित करना ।
- (१२) भारतीय औषधि शास्त्र तथा औषधिनिर्माण विषयक एक मासिक या त्रय मासिक गवेषणा पत्रिका भारतीय भाषाओं में प्रकाशित करना ।
- (१३) अथवा वे सब उपाय और साधन काममें लाना जिनसे भारतीय औषध निर्माण को वैज्ञानिक और सवजन उपयोगी बनाने में सहायता मिल सके ।

अध्याय ६

कार्यों का विवरण और व्यवस्था

२६—बोर्ड एक रिसर्च विभाग स्थापित करेगा । जो—

- (१) आयुर्वेदिक निषण्डु में वर्णित वनस्पति और खनिज औषधियों के वैज्ञानिक आधार स्थापित करेगा जिसका प्रधान कार्यालय लखनऊ दिल्ली रहे ।
- (२) प्रसिद्ध और दुष्प्राप्य औषधियों की खोज करेगा, तथा प्राप्त वनस्पतियों के बोटानिकल नामकरण करेगा ।
- (३) खनिजों और रासायनिक द्रव्यों तथा रस शास्त्र की वैज्ञानिक आधारों पर जांच पड़ताल करेगा तथा अपने गिद्वानों को स्थिर करेगा ।
- (४) विन्ध्य और उत्तरप्रदेश में स्थापित वनस्पति उद्यानों पर नियंत्रण रखेगा ।
- (५) नवीन प्राप्त औषधों के गुण दोषों का विवरण प्रकाशित करेगा ।
- (६) गवेषणा सम्बन्धी मासिक तथा त्रय मासिक पत्रिका भारतीय भाषाओं में प्रकाशित करेगा ।

३०—बोर्ड एक लेबोरेटरी दिल्ली या लखनऊ में प्रकाशित करेगा -

- (१) आयुर्वेदिक अतिरिक्त गन्धों आम्र, अरिष्ट, बर्ग, गुन्दी, रस रासायन की आधुनिकतम वैज्ञानिक निमाग विधि में परीक्षण किए जाएँगे तथा उपयुक्त औषधों के मिश्रित फामूले तथा विनियोग विनियोग की जावेगी ।
- (२) यूनानी औषध शबत, रामीरा, अक आदि के सम्बन्ध में भी उपधारा (१) के अनुसार व्यवहार होगा ।

- (३) लेबोरेटरी दो भागोमे विभक्त रहेगी, जिसमे एक मे रसायन और दूसरी मे बानस्पतिक औषधो के फार्मूले निर्णान किए जावेगे ।
- ३१—(१) बोड दिल्ली या लखनऊ मे एक ट्रेनिंग स्कूल की स्थापना करेगा । जिसमे बोड के द्वारा निर्णान योग्यताओ के छात्रो को एक निर्धारित अवधि तक भारतीय भेषज निर्माण की शिक्षा लेनी पडेगी, तथा उत्तीर्ण होने पर बोड इन छात्रो को स्नातक होने का प्रमाणपत्र देगा ।
- (२) इन प्रमाणपत्र प्राप्त स्नातको को बोड 'भेषकशास्त्री'की उपाधि देगा ।
- ३२—इन सब विभागो और कार्यों का सचालन और व्यवस्था एक डाइरेक्टर की आधीनता मे रहेगी । यह डाइरेक्टर बोड का (एकमआफीशिओ) सदस्य रहेगा तथा बोड के प्रति उत्तरदायी रहेगा ।

अध्याय ७

कमचारी (स्टाक) और फर्मों की रजिस्ट्री

- ३३—(१) बोड को अधिकार होगा कि वह सरकार की पूव स्वीकृति से एक रजिस्ट्रार नियुक्त करे, जो बोड का सेक्रेटरी होगा । रजिस्ट्रार को ऐसा वेतन और भत्ते मिलेगे जो निर्धारित किए जाएँ । अव्यक्त को अधिकार होगा कि वह उसे (रजिस्ट्रार को) समय समय पर छुट्टी दे और उसकी जगह काम करने के लिए अस्थायी रूप से किसी अन्य व्यक्ति को नियुक्त करे । कोई भी व्यक्ति, जो रजिस्ट्रार की हैसियत से काम करने के लिए नियुक्त किया जाय, इस अधिनियम के समस्त प्रयोजनो के लिए रजिस्ट्रार समझा जायगा ।
- (२) रजिस्ट्रार के नियुक्त करने, दण्ड देने या उसे अपने पद से हटाने के सम्बन्ध मे बोड की कोई भी आज्ञा केन्द्रीय सरकार की स्वीकृति के आधीन होगी ।
- (३) बोड को अधिकार होगा कि वह ऐसे अफसर और नौकर नियुक्त करे, जो इस अधिनियम के प्रयोजनो को कार्यान्वित करने के लिए आवश्यक हो । परंतु प्रतिबन्ध यह भी है कि बोड के किसी भी अफसर या नौकर को दण्ड देने, पदच्युत करने, निकालने और हटाने के सम्बन्ध मे बोड के अधिकार, नियमो विनियमो (रूल्स, रेग्युलेशन्स) के अनुसार होंगे ।
- (४) कमचारियो के बारे मे भर्ती, तरकियो, छुट्टी, प्राविडेन्ट फंड और नौकरियो की अन्य शर्तों के सब मामले नियमो के अनुसार तय किए जाएगे ।
- (५) इस धारा के आधीन नियुक्त किया हुआ रजिस्ट्रार या कोई अन्य अफसर या नौकर भारतीय दण्ड विधान (इन्डियन पैनल कोड की धारा २१) के

अतगत सरकारी नोकर (पब्लिक गव ट) समझा जाएगा ।

३४—(१) बोर्ड इस अधिनियम के लागू होने के बाद ज्यों ही मुविधाजनक मालूम हो और समय समय पर आवश्यकता के अनुसार भारतीय औपव निर्माताओं का एक रजिस्टर नियमित रूप से रखने के लिए आदेश देगा ।

(२) उक्त रजिस्टर उस रूप में रखा जाएगा, जैसा निर्धारित किया जाए ।

३५—(१) इस अधिनियम के आदेशों की पाबंदी के साथ और बोर्ड की सावधानी या विशेष आज्ञाओं की पाबंदी के साथ, रजिस्ट्रार का यह कतव्य होगा कि वह रजिस्टर रखे और ऐसे कामों का सम्पादन करे, जो इस अधिनियम के प्राचीन या राज्य सरकार द्वारा बनाए गए नियमों के अनुसार उसे सम्पादन करते हों ।

(२) रजिस्ट्रार को उचित होगा कि वह, जहां तक व्यवहारसम्भव हो, रजिस्टर को ठीक और पूरारूप से भरा हुआ रखे और समय समय पर उसमें निमाताओं के पत्तों और योग्यताओं में आवश्यक परिवर्तन करे । उसे यह भी अधिकार होगा कि वह ऐसी रजिस्टर्ड फर्मों और व्यक्तियों का नाम रजिस्टर से निकाल दे जो रजिस्टर्ड फर्म के अनुरूप कार्य करने योग्य न रहें, दिवालिए हो जाएँ, या नाम बदल कर दें ।

(३) राज्य सरकार यह आदेश दे सकती है कि अतिरिक्त योग्यताओं के सम्बन्ध में इंदराजों में कोई परिवर्तन न किया जाएगा जब तक कि ऐसी फीस, जो निर्धारित की जाय, अदा न की जाए ।

(४) उस प्रकार के प्रयोजन के लिए रजिस्ट्रार को अधिकार होगा कि वह किसी रजिस्टर्ड निमाता को उस पत्र पर, जो रजिस्टर्ड में दर्ज हो, यह जानने के लिए चिट्ठी लिखे कि उसका प्रतिष्ठान करना बंद तो नहीं कर दिया है या उसमें अपना स्थान बदलता नहीं दिया है और यदि तीन मास के भीतर उक्त चिट्ठी का कोई उत्तर न मिले तो रजिस्ट्रार एक उद्बोधक पत्र (रिमांडर) लिखेगा और यदि उस उद्बोधक पत्र के भेजने का तारख्त कागज महीने के भीतर कोई उत्तर न आए तो उसे अधिकार होगा कि वह उक्त निमाता का नाम रजिस्टर्ड में निकाल दे ।

परन्तु प्रतिशत यह है कि बोर्ड, यदि उचित समझे तो यह आदेश दे सकती है कि निमाता का नाम रजिस्टर्ड में फिर से लिख लिया जाय ।

३६—(१) हर एक व्यक्ति और फर्म, जिसका परिशिष्ट में दी गई योग्यता प्राप्त है, इस अधिनियम में दिए हुए आदेशों के प्राचीन और ऐसी फीस देने पर, जो इस सम्बन्ध में निर्धारित की गई हों, रजिस्टर्ड में ऐसी पाबंदियों के साथ,

जिनको बोर्ड उचित समझे, अपना नाम लिखाने के अधिकारी हाने ।

परन्तु प्रतिबन्ध यह है कि रजिस्टर में नाम लिखने का किसी ऐसे व्यक्ति का प्रार्थना पत्र, जिसका मामला इस अधिनियम या इस अधिनियम के आधीन बन हुए नियमों तथा विनियमों के अन्तर्गत नहीं आता, बोर्ड के पास ऐसी कायवाही के लिए भेजा जाएगा, जिसे वह उचित समझे ।

- (२) कोई व्यक्ति या फर्म, जिसे किसी व्यक्ति या फर्म का रजिस्ट्री के सम्बन्ध में या रजिस्ट्री में कोई लेख लिखने या मिटाने के सम्बन्ध में दिए गए रजिस्ट्रार के निराय से क्षति पहुँची हो, ऐसी रजिस्ट्री या लेख के ६० दिन के भीतर बोर्ड को अपील कर सकता है ।
- (३) बोर्ड निवारित विधि के अनुसार ऐसी अपील को सुनवाई करेगा और उसपर निराय देगा ।
- (४) बोर्ड को अधिकार होगा कि वह अपनी ओर से या किसी व्यक्ति के प्रार्थना पत्र पर और सम्बन्धित व्यक्ति से जवाब तलब करने और उस पर विचार करने के उपरान्त किसी लेख को काट दे या बदल दे, यदि बोर्ड के मत में ऐसा लेख धोखा देकर या अशुद्ध लिखवाया गया हो ।

३२—बोर्ड को अधिकार होगा कि वह किसी भारतीय औषध बनाने वाली सस्था फर्म या व्यक्ति का जो रजिस्टर्ड हो या होना चाहे, प्रबन्धकारिणी समिति या अधिकारियों को यह आज्ञा दे कि वे—

- (क) ऐसी रिपोर्ट, नक्शे, या दूसरी सूचना दे, जिसकी बोर्ड को इसलिए आवश्यकता हो कि वह इसकी जाँच कर सके कि इन सस्थाओं में ठीक ठीक औषध निर्माण की वैसी ही व्यवस्था है, जैसी परिशिष्ट में दी गई व्यवस्था है, तथा उसकी आर्थिक और प्रबन्ध सम्बन्धी दशा भी वैसी ही है ।
- (ख) ऐसी फर्म, सस्था या व्यक्ति उपधारा (क) में लिखित बातों की जाच-पडतालके लिए जिस कर्मचारी को बोर्ड भेजे उसे उसके कायमें सुविधाएँ दे ।

३३—हर एक ऐसे व्यक्ति या फर्म को जो भारतीय औषध निमाताओं के रजिस्ट्री में अपना नाम रजिस्ट्री कराने के लिए दर्खास्त दे, बोर्ड को यह विश्वास दिलाना चाहिए कि उसकी प्रबन्ध व्यवस्था और आर्थिक स्थिति वैसी ही है, जिसका उल्लेख परिशिष्ट में किया गया है, और उसके लिए यह आवश्यक है कि वह रजिस्ट्रार को उन सब बातों को सही विवरण बतावे जिसके आधार पर वह इस अधिनियम के आधीन रजिस्ट्री किए जाने का अधिकारी है, और रजिस्ट्रार को ऐसी कोई सूचना भी दे जो रजि-

द्वार उसमे माग और जिससे वह अधिनियम के आधीन अपना कत्त व्य पालन कर गये ।

३४—(१) हर एक ऐसे व्यक्ति या फर्म के लिए जो इस अधिनियम के अंतर्गत रजि स्टर्ड हो, यह अनिवार्य होगा कि वह प्रत्येक श्रौपध बोर्ड की लेबारेटरी में निर्धारित पद्धति पर बनाए और उसका एक प्रमाणपत्र लखनऊ ड्रग रिमच उ स्टोर्ट्यूट में प्राप्त करले ।

(२) बिना इस प्रमाणपत्र का प्राप्त किए कार्ड श्रौपध वे श्रौपधा निर्माता, जो इस अधिनियम में अंतर्गत रजिस्ट्री होग, प्रच नहीं पावगे ।

(३) बाड समय समय पर उपारा (क) और (ख) में वर्णित बाता की जाच पडतान करने जो कामचारी भेजे उसे उसके काय में सहयोग देगे ।

३७—बोर्ड को अधिकार है कि वह किसी एसी फर्म या व्यक्ति का नाम रजिस्टर में दर्ज करने की मनाही करदे, या रजिस्टर से उसका नाम निकाल दिए जाने की आज्ञा दे दे—

(क) जिसको बोर्ड इसी काय के लिए नियुक्त कामचारियों की जाच पडताल के बाद अस तोपजनक, अपर्याप्त या अयोग्य समझे ।

(ख) या जिमकी आर्थिक स्थिति ठीक न हो ।

(ग) या जिमे बोर्ड ने बारा ३६ के अनुसार अपराधी पाकर कद या जुर्माने की सजा दी हो या जिमका मान जवन कर लिया हो ।

३६ (१) बोर्ड को अधिकार है कि वह ऐसे व्यक्ति या फर्म के मालिक और सचालक को जो चाहे इस अधिनियम के आधीन रजिस्टर्ड हो या रजिस्टर्ड न हो अनधिकृत रूप से श्रौपध निमाग करता रहे, उसे बोर्ड तीन मास का नोटिस दे कि वह अनधिकृत श्रौपध प्रनाना बन्द करदे और यदि इस अधिनियमके आधीन उसने अपना नाम रजिस्ट्री नहीं कराया है तो करले ।

(२) यदि वह फर्म या व्यक्ति नियत अधिनियम एसा न कर तो बोर्ड उसे जुर्माना या कैद अथवा दोनों का एक या अधिक सजा दे सकता है । तथा अनधिकृत तैयार माल की जाच भी कर सकता है और फर्म पर काम बंद करने की आज्ञा लागू कर उसपर अपनी सील लगा सकता है ।

(३) बोर्ड अपने को समुष्ठ कर लेने के बाद— जबकि व्यक्ति या फर्म ने जो उपबारा (२) में अनुसार दण्डित होने पर व्यक्तिगत रूप से या किसी कौन्सिल बरीन ग्रंट रि, प्लीउर के माफत उपस्थित होकर अपनी सफाई पेश करने के लिए अपील की हो और उन सदस्यों की सख्या दो तिहाई बहुमत से, जो उस मीटिंग में उपस्थित हो और जि होने अपना नोट दिया

हो, निर्दोष प्रमाणित हो तो उस व्यक्ति या फर्म का नाम रजिस्टर में दुबारा दर्ज करने का आदेश दे सकता है।

३७—(१) यदि कोई व्यक्ति या फर्म जो इस अधिनियम के अधीन रजिस्टर्ड हो, यह प्रमाणित होने पर कि उसने अनधिकृत औषध निर्माण की या बेची है, अथवा निर्माण कर और बेच रहा है तो उसे ५ हजार रुपया तक जुर्माना अथवा तीन वर्ष तक की कद या दोनों दण्ड और अनधिकृत माल की जब्ती का दण्ड दिया जा सकेगा।

(२) यदि कोई व्यक्ति या फर्म अपना नाम इस अधिनियम के अधीन बिना रजिस्टर्ड कराये औषध निर्माण या विक्री करेगा उसपर भी उपधारा (१) का दण्ड लागू होगा।

(३) यदि कोई व्यक्ति या फर्म इस अधिनियम के अधीन उक्त रजिस्टर में दर्ज न होने पर भी झूठे तरीके से यह प्रकट करे और अपने नाम तथा कारबार में ऐसे शब्दों या अक्षरों का प्रयोग करे जिससे यह प्रकट हो कि उसका नाम रजिस्टर में दर्ज है तो चाहे ऐसा करने से कोई व्यक्ति धोखा खाये या न खाये, उसको भी उपधारा (१) का दण्ड दिया जा सकेगा।

३८— धारा ३४ की उपधारा (१) के अधीन की जाने वाली जांच के प्रयोजन के लिये बोर्ड या कमेटी को, जैसी अवस्था हो, वही अधिकार प्राप्त होंगे जो पब्लिक सर्वेन्ट्स इन्वारी ऐक्ट १९५० के अधीन नियुक्त कमिश्नर को प्राप्त होते हैं, और उक्त अधिनियम की धारा ५, ८ से १० तक और १४ से १६ तक और १९ और २० तक की शर्तें, जितनी हों, ऐसी प्रत्येक जांच और अपील पर लागू होंगी।

३९—(१) रजिस्ट्रार को मान्य होगा कि वह प्रति वर्ष और समय समय पर जब आवश्यकता हो किसी ऐसी तारीख को या उससे पूर्व जो बोर्ड इसके सम्बन्ध में नियत करे, सरकारी गजट में या किसी ऐसे ढग से जिसे बोर्ड निधारित करे, रजिस्टर में उस समय के लिए लिखित व्यक्ति तथा फर्म की पूर्ण या पूरक सूची प्रकाशित करे और उसमें नीचे लिखी हुई बातें दी जायगी—

(क) रजिस्टर में दर्ज सब लोगों के नाम वर्गावलि के क्रम से लिखे जायेंगे।

(ख) हर उस व्यक्ति का या फर्म का, जिसका नाम रजिस्टर में दर्ज हो, रजिस्टर में दर्ज किया हुआ पता और व्यक्ति या फर्म की हैसियत का विवरण।

द्वार उसमे माग और जिसगे वह अधिनियम के आधीन अपना कत्त व्य
पातन कर सवे ।

३४—(१) हर एक ऐस व्यक्ति या फम के लिए जो उस अधिनियम के अ तगत रजि
स्टर हो, यह अनिवाय होगा कि वह प्रत्येक औपध बोड की लेबोरेटरी
म निर्धारित पद्धति पर बनाव और उसका एक प्रमाणपत्र लखनऊ ड्रग
रिसर्च इन्स्टीट्यूट से प्राप्त करले ।

(२) बिना इस प्रमाणपत्र का प्राप्त किए कार्ड औपध वे औपधा निर्माता, जो
इस अधिनियम के अतगत रजिस्ट्री होंगे, बच नहीं पावगे ।

(३) बोड समय समय पर उपारा (क) और (ख) में वर्णित बातों की जाच
पडताल करने जो तमचारी भेजे उमे उसके काय म सहयोग देगे ।

३५—बोड को अधिकार है कि वह किसी ऐसी फम या व्यक्ति का नाम रजिस्टर
में दर्ज करने की मनाही करदे, या रजिस्टर स उसका नाम निकाल दिए
जाने की आज्ञा दे दे—

(क) जिसको बोड उमी काय के लिए नियुक्त कमचारियों की जाच पडताल के
बाद असंतोषजनक, अपयाप्त या अयोग्य समझे ।

(ख) या जिसकी आर्थिक स्थिति ठीक न हो ।

(ग) या जिसे बोड ने वारा ३६ के अनुसार अपराधी पाकर कैद या जुर्माने
की सजा दी हो या जिसका माल जब्त कर लिया हो ।

३६—(१) बोड को अधिकार है कि वह ऐसे व्यक्ति या फम के मालिक और सचालक
को जो चाहे उन अधिनियम के आधीन रजिस्टर्ड हो या रजिस्टर्ड न हो
अनधिकृत रूप से औपध निमाण करता रह, उमे बोड तीन मास का
नोटिस दे कि वह अनधिकृत औपध बनाना बन्द करदे और यदि इस
अधिनियमके आधीन उसने अपना नाम रजिस्ट्री नहीं कराया है तो करले ।

(२) यदि वह फम या व्यक्ति नियत आर्थिक मण्डल में न हरे ता बोड उसे
जुर्माना या कैद अथवा दाना दण्ड म सकता है । तथा अनधिकृत तैयार
मात भी जाती भी कर सकता है और फम पर काम बंद करने की
आज्ञा लागू कर उसपर अपनी सील लगा सकता है ।

(३) बोड अपने को सतुष्ट कर लेने के बाद—जबकि व्यक्ति या फम ने जो
उपधारा (२) के अनुसार दण्डित होने पर व्यक्तितगत रूप से या किसी
कौन्सिल वकील-अटर्नी, प्लीडर के माफत उपस्थित होकर अपनी सफाई
पेश करने के लिए अपील की हो और उन सदस्यों की सख्या दो तिहाई
बहुमत से, जो उस मीटिंग में उपस्थित हो और जिन्होंने अपना नोट दिया

हो, निर्दोष प्रमाणित हो तो उस व्यक्ति या फम का नाम रजिस्टर में दुबारा दर्ज करने का आदेश दे सकता है।

३७—(१) यदि कोई व्यक्ति या फम जो इस अधिनियम के आधीन रजिस्टर्ड हो, यह प्रमाणित होने पर कि उसने अनधिकृत औषध निर्माण की या बेची है, अथवा निर्माण कर और बेच रहा है तो उसे ५ हजार रुपया तक जुर्माना अथवा तीन वर्ष तक की कैद या दोनों दण्ड और अनधिकृत माल की जब्ती का दण्ड दिया जा सकेगा।

(२) यदि कोई व्यक्ति या फम अपना नाम इस अधिनियम के आधीन बिना रजिस्टर्ड कराये औषध निर्माण या विक्री करेगा उसपर भी उपधारा (१) का दण्ड लागू होगा।

(३) यदि कोई व्यक्ति या फम इस अधिनियम के आधीन उक्त रजिस्टर में दर्ज न होने पर भी झूठे तरीके से यह प्रकट करे और अपने नाम तथा कारबार में ऐसे शब्दों या अक्षरों का प्रयोग करे जिससे यह प्रकट हो कि उसका नाम रजिस्टर में दर्ज है तो चाहे ऐसा करने से कोई व्यक्ति धोखा खाये या न खाये, उसको भी उपधारा (१) का दण्ड दिया जा सकेगा।

३८— धारा ३४ की उपधारा (१) के आधीन की जाने वाली जाच के प्रयोजन के लिये बोर्ड या कमेटी को, जैसी अवस्था हो, वही अधिकार प्राप्त होंगे जो पब्लिक सर्वेन्ट्स इन्क्वारी ऐक्ट १९५० के आधीन नियुक्त कमिश्नर को प्राप्त होते हैं, और उक्त अधिनियम की धारा ५, ८ से १० तक और १४ से १६ तक और १९ और २० तक की शर्तें, जितनी हों, ऐसी प्रत्येक जाच और अपील पर लागू होंगी।

३९—(१) रजिस्ट्रार को माय होगा कि वह प्रति वर्ष और समय समय पर जब आवश्यकता हो किसी ऐसी तारीख को या उससे पूर्व जो बोर्ड इसके सम्बन्ध में नियत करे, सरकारी गजट में या किसी ऐसे ढग से जिसे बोर्ड निर्धारित करे, रजिस्टर में उस समय के लिए लिखित व्यक्ति तथा फर्म की पूर्ण या पूरक सूची प्रकाशित करे और उसमें नीचे लिखी हुई बातें दी जायगी—

(क) रजिस्टर में दर्ज सब लोगों के नाम वर्गावलि के क्रम से लिखे जायेंगे।

(ख) हर उस व्यक्ति का या फम का, जिसका नाम रजिस्टर में दर्ज हो, रजिस्टर में दर्ज किया हुआ पता और व्यक्ति या फम की हैसियत का विवरण।

परन्तु प्रतिबन्ध यह है कि रजिस्ट्रार समग्र समय पर सरकारी गजट में उसे व्यक्ति या फर्म के नाम जिनका नाम इस अग्रिनियम की किसी बात से नियमानुसार हटा दिया गया हो, प्रमाणित करेगा।

- (२) किसी क़ायवाही में यह समझा जायगा कि प्रत्येक व्यक्ति या फर्म जिसका नाम ऐसी सूची में दर्ज है वह रजिस्टर्ड फर्म या निर्माता है और कोई व्यक्ति या फर्म जिसका नाम इस प्रकार दर्ज नहीं है वह रजिस्टर्ड निर्माता फर्म या व्यक्ति नहीं है।

परन्तु प्रतिबन्ध यह है कि ऐसे निर्माता व्यक्ति या फर्म की अवस्था जिसका नाम अंतिम सूची के प्रमाणित होने के बाद रजिस्टर्ड में दर्ज हुआ है, नाम के इन्दराज की एक प्रमाणित पत्रिका, जिसपर रजिस्ट्रार के हस्ताक्षर हों, इस बात का प्रमाण होगी कि, उस व्यक्ति का नाम इस अग्रिनियम के अन्तर्गत रजिस्टर्ड है। ऐसा प्रमाणपत्र निःशुल्क दिया जायगा।

अध्याय ५

डाइरेक्टर, उसका स्टाफ और उसके द्वारा संचालित संस्थाएँ

- ४०—(१) बोर्ड को अधिकार होगा कि वह केन्द्रीय सरकार की पूरा स्वीकृति से एक डाइरेक्टर की नियुक्ति करे, जो बोर्ड की इस अग्रिनियम में वर्णित संस्थाओं का संचालन और व्यवस्था करे और संचालित संस्थाओं का सर्वोपरि अधिकारी हो, तथा बोर्ड का (एम्स आफिसियो) सदस्य भी हो। डाइरेक्टर को ऐसा वेतन और भत्ते मिलेंगे जो निर्धारित किए जाएं। अध्यक्ष को अधिकार होगा कि वह उसे (डाइरेक्टर को) समय समय पर छुट्टी दे और उसकी जगह बरतने के लिए अस्थायी रूपसे किसी अन्य व्यक्ति को नियत करे। कोई भी व्यक्ति, जो डाइरेक्टर की हैसियत से काम करने के लिए नियुक्त किया जाय, इस अधिनियम की समस्त संस्थाओं और उनके प्रयोजनों के लिए संचालन समझा जाएगा।

- (२) डाइरेक्टर को नियुक्त करने, उपाय देने या अपन पद से हटाने के सम्बन्ध में बोर्ड की कोई भी आज्ञा केन्द्रीय सरकार की स्वीकृति का अधीन होगी।

- (३) डाइरेक्टर को अधिकार होगा कि वह ऐसे अफसर, और हमचारी नियुक्त करे, जो इस अधिनियम के प्रयोजनों को कार्यान्वित करने के लिए आवश्यक हों।

परन्तु प्रतिबन्ध यह है कि ऐसे अफसरों और नौकरों की संख्या, पद, वेतन और भत्ता बोर्ड की पूरा स्वीकृति से नियत किए जाएंगे।

पर तु प्रतिबध यह भी है कि ऐसे किमी भी अफसर या नौकर को दण्ड देने, पदच्युत करने, निरालाने और हटाने के सम्बध मे बोर्ड के अधि कार नियमो तथा विनियमो (रूल्स एण्ड ऐग्यूलेश स) के अनुसार होंगे ।

(४) अफसरो और कमचारियो के बारे मे भर्ती, तरक्किया, छुट्टी, प्राविडेड फण्ड और नोकरियो की अ य शर्तों के सब मामले नियमो के अनुसार तय किए जाएंगे ।

(५) इस बारा के आधीन नियुक्त किया हुआ डाइरेक्टर या अ य कोई अफसर या कमचारी या नौकर भारतीय दण्ड विधान की धारा २१ के अतगन सरकारी नौकर (पब्लिक सर्वेंट) समझे जायेंगे ।

४१—(१) इस अधिनियम के लागू होने के बाद बोर्ड के आदेशो पर जसे जसे सुविधा होगी और समय-समय पर आवश्यकताके अनुसार डाइरेक्टर उन सस्थाओ की स्थापना और व्यवस्था करता चला जायगा जो सम्भव हो ।

(२) उक्त सस्थाएं उसी रूप मे चालित होगी, जैसा निर्धारित किया जाए ।

४१—(१) अधिनियमके आदेशो की पाब दीके साथ और बोर्ड की साधारण या विशेष आज्ञाओ की पाब दी के साथ, डाइरेक्टर का यह कतव्य होगा कि वह व्य वस्थित रूप से ऐसे सब कामो का सम्पादन करे, जो उन सस्थाओ को ठीक-ठीक चलाए रहने मे सहायक हो, जिन्हे इस अधिनियम मे स्वीकृत किया गया है तथा इस अधिनियम के आधीन केन्द्रीय सरकार द्वारा बनाए गए अधिनियमो के अनुसार उसे सम्पादन करने हो ।

(२) डाइरेक्टर को यह उचित होगा कि वह इन सस्थाओ के कायकलाप यथा सम्भव ठीक-ठीक पूरारूपसे लिखित रखे तथा समय समय पर कायकलापो की प्रगति की नई नई योजनाओ को बोर्ड के समक्ष रखता रहे तथा सस्था ओ की सफलता के लिए आवश्यक परिवर्तन करे ।

४२—डाइरेक्टर की आधीनता मे एक लेबोरेटरी स्थापित की जाएगी, जहा भारतीय औषध निर्माण सम्ब धी परीक्षण आधुनिक वज्ञानिक आधारो पर किए जाएंगे । लेबोरेटरी पाच विभागो मे विभक्त होगी—

(१) आयुर्वेदिक बनस्पतियो तथा अतिकृत गरणो और नुसखो के परिष्कार और सशोवन एव आधुनिकीकरण के लिए ।

(२) आयुर्वेदिक रस-रसायनो के परीक्षण तथा आधुनिक विधि से निर्माण करने की विधि निश्चित करने के लिए ।

(३) यूनानी औषध निर्माण और खोज की आधुनिकीकरण के लिए ।

(४) उपर्युक्त तीनो विभागो द्वारा परीक्षित तथा निर्मित औषध की रासायनिक

परन्तु प्रतिबन्ध यह है कि रजिस्ट्रार समय समय पर सरकारी गजट में एम्बे व्यक्ति या फर्म का नाम जिनका नाम इस अग्रिनियम की किसी शर्त में नियमानुसार हटा दिया गया है, प्रकाशित करेगा।

- (२) किसी कायदाही में यह समझा जायगा कि प्रत्येक व्यक्ति या फर्म जिसका नाम ऐसी सूची में दर्ज है वह रजिस्टर्ड फर्म या निमाता है और कोई व्यक्ति या फर्म जिसका नाम इस प्रकार दर्ज नहीं है, वह रजिस्टर्ड निमाता फर्म या व्यक्ति नहीं है।

परन्तु प्रतिबन्ध यह है कि ऐसे निमाता व्यक्ति या फर्म की अवस्था जिसका नाम शर्तित सूची में प्रकाशित होने के बाद रजिस्ट्रार में दर्ज हुआ है, नाम के बदलाव की एक प्रमाणित प्रतिलिपि, जिसपर रजिस्ट्रार के हस्ताक्षर हों, उस बात का प्रमाण होगी कि, उस व्यक्ति का नाम इस अग्रिनियम के अधीन रजिस्टर्ड है। ऐसा प्रमाणपत्र नि शुल्क दिया जायगा।

अध्याय ५

डाइरेक्टर, उसका स्टाफ और उसके द्वारा संचालित संस्थाएं

- ४०—(१) बोर्ड का अधिकार होगा कि वह केन्द्रीय सरकार की पूर्व स्वीकृति से एक डाइरेक्टर की नियुक्ति करे, जो बोर्ड की इस अग्रिनियम में वर्णित संस्थाओं का संचालन और व्यवस्था करे और संचालित संस्थाओं का सर्वोपरि अधिकारी हो, तथा बोर्ड या (एम्स आफिसियो) सदस्य भी हो। डाइरेक्टर को ऐसा वेतन और भत्ते मिलेंगे जो निर्धारित किए जाएं। अध्यक्ष को अधिकार होगा कि वह उसे (डाइरेक्टर को) समय समय पर छुट्टी दे और उसकी जगह काम करने के लिए अस्थायी रूपसे किसी अन्य व्यक्ति को नियत करे। कोई भी व्यक्ति, जो डाइरेक्टर की निर्णय से नाम करने के लिए नियुक्त किया जाय इस अग्रिनियम की समस्त शर्तों और उपाय प्रयोजनों के लिए संचालन समझा जाएगा।

- (२) डाइरेक्टर को नियुक्त करने, हटाने या अपने पद में हटाने के सम्बन्ध में बोर्ड की कोई भी आज्ञा के द्रव्य सरकार की स्वीकृति से अधीन होगी।
- (३) डाइरेक्टर को अधिकार होगा कि वह ऐसा अधिकार, और संचालन नियुक्त करे, जो इस अग्रिनियम के प्रयोजनों को कार्यान्वित करने के लिए आवश्यक हो।

परन्तु प्रतिबन्ध यह है कि ऐसे अफसरों और नौकरों की संख्या, पद, वेतन और भत्ता बोर्ड की पूर्व स्वीकृति से नियत किए जाएंगे।

पर तु प्रतिबन्ध यह भी है कि ऐसे किसी भी अफसर या नौकर को दण्ड देने, पदच्युत करने, निष्कालने और हटाने के सम्बन्ध में बोर्ड के अग्रिकार नियमों तथा विनियमों (रूल्स एण्ड ऐग्यूलेशन्स) के अनुसार होंगे।

(४) अफसरों और कमचारियों के बारे में भर्ती, तरक्किया, छुट्टी, प्राविडेन्ड फण्ड और नौकरियों की अग्रय शर्तों के सब मामले नियमों के अनुसार तय किए जाएंगे।

(५) इस बारा के आधीन नियुक्त किया हुआ डाइरेक्टर या अग्र कोई अफसर या कमचारी या नौकर भारतीय दण्ड विधान की धारा २१ के अतन्त सरकारी नौकर (पब्लिक सर्वेंट) समझे जायेंगे।

४१—(१) इस अग्रविनियम के लागू होने के बाद बोर्ड के आदेशों पर जैसे जैसे सुविधा होगी और समय समय पर आवश्यकताके अनुसार डाइरेक्टर उन सस्थाओं की स्थापना और व्यवस्था करता चला जायगा जो सम्भव हों।

(२) उक्त सस्थाएं उसी रूप में चालित होंगी, जैसा निर्धारित किया जाए।

४१—(१) अग्रविनियमके आदेशों की पाबन्दीके साथ और बोर्ड की साधारण या विशेष आज्ञाओं की पाबन्दी के साथ, डाइरेक्टर का यह कतव्य होगा कि वह व्यवस्थित रूप से ऐसे सब कामों का सम्पादन करे, जो उन सस्थाओं को ठीक ठीक चलाए रहने में सहायक हों, जिन्हें इस अग्रविनियम में स्वीकृत किया गया है तथा इस अग्रविनियम के आधीन केन्द्रीय सरकार द्वारा बनाए गए अग्रविनियमों के अनुसार उसे सम्पादन करने हों।

(२) डाइरेक्टर को यह उचित होगा कि वह इन सस्थाओं के कायकलाप यथा सम्भव ठीक ठीक पूरारूपसे लिखित रखे तथा समय समय पर कायकलापों की प्रगति की नई नई योजनाओं को बोर्ड के समक्ष रखता रहे तथा सस्थाओं की सफलता के लिए आवश्यक परिवर्तन करे।

४२—डाइरेक्टर की आधीनता में एक लेबोरेटरी स्थापित की जाएगी, जहा भारतीय औषध निर्माण सम्बन्धी परीक्षण आधुनिक वैज्ञानिक आधारों पर किए जाएंगे। लेबोरेटरी पांच विभागों में विभक्त होगी—

(१) आयुर्वेदिक बनस्पतियों तथा अग्रविकृत गरणों और नुसखों के परिष्कार और सशोधन एवं आधुनिकीकरण के लिए।

(२) आयुर्वेदिक रस-रसायनों के परीक्षण तथा आधुनिक विधि से निर्माण करने की विधि निश्चित करने के लिए।

(३) यूनानी औषध निर्माण और खोज की आधुनिकीकरण के लिए।

(४) उपर्युक्त तीनों विभागों द्वारा परीक्षित तथा निर्मित औषधों की रासायनिक

परीक्षण के लिए ।

(५) उपयुक्त रासायनिक परीक्षणों पर समाहित औपचारिकों को पाणियों पर प्रयोग कर उपयोगी सिद्ध करने के लिए ।

४३—(१) उपयुक्त लेबोरेटरी के पांचा विभाग एक आफिसर की आधीनता में होंगे जो प्रत्येक प्रत्येक विभागों के रासायनिकों, कमचारियों और नौकरों की सब प्रबंध सम्बन्धी व्यवस्था रखेगा । यह आफिसर हेड आफ डिपार्टमेंट कहलाएगा, उसकी आधीनता में निम्न कमचारी होंगे —

१—प्रबन्धक

२—रासायनिक

३—रस वैद्य

४—प्राचीन विज्ञान का विशेषज्ञ

५—स्टोरकीपर

कमचारी, सेवक और गवेषणा करनेवाले ।

(२) इन सब कमचारियों के वेतन, भत्ता, छुट्टी नियुक्ति और मुक्ति उपयुक्त हेड आफ डिपार्टमेंट डाइरेक्टर की पूर्व स्वीकृति से करेगा, तथा लेबोरेटरी के संचालन, हिसाब-किताब, व्यवस्था आदि सब अपने सहायकों की सहायता से रखेगा ।

(३) उसी के आधीन प्रिन्सिपल और हिमाचलप्रदेश में वनस्पति उद्यान भी रहेंगे, जिनकी देखभाल, व्यवस्था और सुदृष्टता का वह खयाल रखेगा ।

४४—बॉटनी के अतिनियमों के अनुसार डाइरेक्टर एक खोज विभाग की स्थापना करेगा, जिसकी देखभाल वह स्वयं करेगा । उस विभाग का कार्य इस प्रकार होगा—

(१) आयुर्वेदिक निघण्टु शास्त्र का नूतनीकरण आधुनिक वनस्पति शास्त्र के आधारों पर ।

(२) रसशास्त्र और रसायनशास्त्र को आधुनिक, वैज्ञानिक परिधान देना ।

(३) प्राचीन प्रयोगों और ग्रंथों को, जिनका सम्बन्ध भारतीय औषधशास्त्र से है, ज्ञानवीन कर उनका आधुनिकीकरण करना ।

(४) एक त्रयमासिक गोजगर्माधी पत्रिका भारतीय भाषाओं में प्रकाशित करना ।

४६—बॉटनी दिल्ली या लखनऊ में एक ऐसे ट्रेनिंग स्कूल की स्थापना करेगा, जिसमें आधुनिक रीतियों पर भारतीय औषध-निर्माण विधि तथा चिकित्सा रसायन की शिक्षा दी जायगी ।

(१) इस स्कूल की देखरेख और व्यवस्था डाइरेक्टर के आधीन होगी ।

(२) डाइरेक्टर इस स्कूल के अध्यापकों, कमचारियों और छात्रोंको उन नियमों

और उपनियमोंके आधीन रख और निकाल सकेगा जो बोर्ड द्वारा नियत हो।

- (३) प्रत्येक छात्र जो इस ट्रेनिंग स्कूल में प्रविष्ट होना चाहेगा, उनकी भर्ती रजिस्ट्रार करेगा, तथा उत्तीर्ण छात्रों को डिग्री डिप्लोमा अपने हस्ताक्षर से देगा। तथा उनका एक रजिस्टर रखेगा। छात्रोंकी भर्ती की तिथि परीक्षा तिथि तथा उत्तीर्ण छात्रों की सूची यथानियम यथासमय सरकारी गजट तथा सामयिक पत्रों में प्रकाशित करेगा। रजिस्ट्रार यह भी देखेगा कि छात्रों ने उन नियमों का यथावत पालन किया है या नहीं जो उनके भर्ती होने तथा डिप्लोमा प्राप्त करनेके लिए बोर्ड द्वारा निर्धारित किए गए हैं। उसे यह भी अधिकार होगा कि वह उपयुक्त कारण होने पर किसी भी छात्र को भर्ती करने या परीक्षा में सम्मिलित होने से रोक दे।
- (४) ट्रेनिंग स्कूल में निम्नलिखित छात्र प्रवेशिका परीक्षा देने के बाद उत्तीर्ण होने पर बैठ सकते हैं—
- (क) वे जिन्होंने विज्ञानसहित कम से कम इन्टरमीडिएट पास किया हो तथा जिन्हें हिंदी और संस्कृत का उपयुक्त ज्ञान भी हो।
- (ख) वे जिन्होंने किसी भी प्रमाणित सस्था से आयुर्वेदिक या तिब्बती सर्वोच्च शिक्षा पाई हो और डिग्री ली हो, तथा अग्रेजीम मट्रिक तक की योग्यता रखते हो।
- (ग) वे जिन्होंने किसी भी औषध निर्माण करनेवाली सस्था में या किसी वैज्ञानिक लेबोरेटरीमें कम से कम छ वर्ष काय करके व्यवहारिक ज्ञान प्राप्त किया हो तथा जिन्हें अग्रेजी हिन्दी, संस्कृत तथा उर्दूका उपयुक्त ज्ञान हो।
- (घ) किसी भी छात्र की अवस्था २८ वर्ष से अधिक नहीं होनी चाहिए।
- ७४—(१) प्रत्येक छात्र वह फीस और खर्चा भ्रदा करेगा जो बोर्डके बनाए या बनाए जाने वाले नियमों तथा उपनियमों में वर्णित हो।
- (१) उसे स्कूल के नियमों और विधानों को मानना तथा उनका पालन करना पड़ेगा।
- ४८—(१) ट्रेनिंग की अवधि एक वर्ष होगी।
- (१) छात्रों की त्रयमासिक परीक्षाएं होगी। अन्तिम परीक्षा फरवरी में होगी तथा परिणाम माच में प्रकट हो जाया करेगा।
- (३) अप्रैल से नया साल चालू होगा।
- (४) परीक्षा में वे नियम पालन किए जाएंगे जो बोर्ड इस सम्बन्ध में स्वीकृत करेगा।
- (५) अनुत्तीर्ण छात्र अनुत्तीर्ण विषयों में तीन मास बाद विशेष फीस दाखिल

करके फिर परीक्षा में बैठ सकेंगे ।

- (६) उत्तीर्ण स्नातको को डिप्लोमा तथा प्रमाणपत्र मिलेगा, तथा जोड़ प्रामाणिक शोध निश्चिता फर्मा में इन स्नातको को निमाण की देगभाल करने की शिफारिश करेगा, जहाँ उन्हें ३००) ₹० तक वेतन भत्ता के अतिरिक्त मिलेगा ।

- ४६—(१) डाइरेक्टर को यह अधिकार होगा कि वह स्कूल के नियमों उपनियमों में फेरफार करे, जिसकी वह आवश्यकता समझे और उसकी परिस्थिति और वायफारिता को बाउ के सम्मुख समय समय पर रखता रहे ।
- (२) वह (डाइरेक्टर) स्कूल के अध्यापकों, तथा कमचारियों को छुट्टी देने, भर्ती करने, तरफ्फी देने प्राविडे डफण्ड आदि बात नियमों के अनुसार प्रमल में लायेगा ।

अध्याय ५

बोड के अधिकार और ग्राय व्यय

५०—बोड के अधिकार निम्नलिखित होंगे—

- (१) भारतीय शोध निर्माता फर्मों और व्यक्तियों को रजिस्टर्ड करना ।
- (२) उन्हें आधुनिकतम वैज्ञानिक शोध प्र निर्माण की विधि बताना ।
- (३) उन्हें केवल उसी विधि पर बनाएँ और परीक्षित शोध प्रेचने और बनाने देना ।
- (४) अनधिकृत और गारजिस्टर्ड फर्मों और व्यक्तियों का भारतीय शोध प्र बनाने और बचन पर प्रतिबन्ध रखना ।
- (५) जा अधिनियमों अनुसार एसी फर्मा तथा र्माियाता रण दना जा इसके अधिकारों हों ।
- (६) अधिनियम में निर्गत उद्देश्यों की पूर्णता निण एक ग्वा विभाग बनस्पति डिपार्टमेण्ट, प्रेपारटरी और एक र्मािया स्तूत स्थापित करना तथा संचालन करना ।
- (७) र्मािया स्तूत र्माियाता का प्रमाणपत्र और डिप्लोमा देना, तथा इस कार्य के लिए पाठ्यक्रम बनाना ।
- (८) विद्यार्थियों तथा रजिस्टर्ड र्माियाता व्यक्तियों तथा फर्मों से ऐसा शुल्क मागना और पाणा करना जा बाउ को परीक्षण, र्मािया स्कूल एवं रजिस्टर्ड र्माियाता के लिए निर्धारित हो ।
- (९) र्मािया स्कूल र्माियाता के रहन सहन और अनुशासन के प्रबन्ध की देखरेख करना और उनके स्वास्थ्य और माधारण भलाई की उन्नति के

लिए प्रबन्ध करना ।

- (१०) परीक्षकों को नियुक्त करना और उन परीक्षाओं के परीक्षा फल प्रकाशित करना, जो बौड ले ।
- (११) किसी ऐसी फम का व्यक्ति की रजिस्ट्री की स्वीकृति का स्थगित करना या वापस लेना, जिसका प्रबन्ध इस अधिनियम में या उसके अधीन बनाए गए नियमों में निर्धारित शर्तों के अनुसार न हो रहा हो ।

परन्तु प्रतिबन्ध यह है कि किसी ऐसी फम या व्यक्ति की प्रबन्ध कारिणी या प्रतिनिधि को कोई ऐसा प्राथनापत्र प्रस्तुत करने का, जिसे वह उचित समझे, अवसर दिए बिना कोई ऐसी कायवाही न की जायगी ।

- (१२) भारतीय औषध निर्माता संस्थाओं और व्यक्तियों के निरीक्षण के लिए इंस्पेक्टरों की नियुक्त करना ।
- (१३) इस अधिनियम के उद्देश्यों के प्रसार के लिए ऐसे कार्यों का करना जो इस अधिनियम के उपबन्धों के प्रतिकूल न हो ।

५१—(१) बौड प्रत्येक वर्ष ऐसी तारीख के पूर्व, जो इस सम्बन्ध में नियमों के अनुसार निर्धारित की जाय और उक्त तारीख के बाद अगले ३१ मार्च को समाप्त होने वाले वर्ष के सम्बन्ध में, वास्तविक आय और सक्षित प्राप्तियों तथा व्ययों का पूरा पूरा विवरण और उसके साथ ही आगामी १ अप्रैल से प्रारम्भ होने वाले वर्ष के सम्बन्ध में एक वजट, जिसमें बौड की आय और व्यय का आनुमानिक विवरण दिया गया हो, तैयार करायगा और बैठक के सामने प्रस्तुत कराएगा ।

(२) ऐसी मीटिंग में बौड विशेष काय के लिए निर्दिष्ट धन और आनुमानिक बजट में दिए हुए साधनों को तय करेगा और बजट को स्वीकार करेगा, जो केन्द्रीय सरकार के पास या ऐसे अधिकारी के पास जिसको केन्द्रीय सरकार आदेश दे, उस मीटिंग के पन्द्रह दिन के अन्दर, जिसमें वजट पास हुआ हो, भेजा जायगा ।

(३) बौड समान शर्तों के अधीन समय समय पर अवस्थानुसार, जैसा करना उपयुक्त समझे, उपधारा (२) के अधीन स्वीकृत वजट को परिवर्तित कर सकता है ।

५२—अक्टूबर के बाद जितना शीघ्र हो सके, वर्ष के लिए सशोधित वजट तैयार किया जायगा और ऐसे सशोधित वजट पर जहां तक हो सकेगा, वारा ५१ के अधीन बने हुए वजट पर लागू होने वाली शर्तें लागू होंगी ।

५३—एक भारतीय औषध निर्माता नियन्त्रण फण्ड स्थापित किया जायगा और उसमें

रखी जायगी —

(र) केन्द्रीय सरकार से प्राप्त ग्रांट और ऋण ।

(ख) रजिस्ट्री और ट्रेनिंग स्कूल एवं परीक्षाओं में सम्मिलित होने के लिए बोर्ड द्वारा प्राप्त सभी फीस ।

(ग) अन्य अर्थात्त आस्तिमान् आय ।

५४—यह आवश्यक होगा कि भारतीय औपचारिक नियंत्रण फण्ड इम्पीरियल बैंक आफ इण्डिया में जमा की जाय या केन्द्रीय सरकार से अनुमति लेकर अन्य किसी बैंक में ।

अध्याय ६

रजिस्टर्ड फर्मा, निर्माताओं एवं ट्रेनिंग के स्नातकों के विशेषाधिकार

५५—किसी अन्य कानून में, जो कि उस समय के लिए लागू हो, कोई अन्य उपबंध होने पर भी—

(१) शब्दावली 'वैज्ञानिक रूप से योग्य (नीगली क्वालीफाइड) निर्माता' या "उचित रूप में योग्य निर्माता" या कोई शब्द, जिसमें यह अर्थ निकलता हो कि अमुक व्यक्ति या फर्म कानून द्वारा भारतीय औपचारिक निर्माण का अधिकारी स्वीकार कर लिया गया है, सम्पूर्ण भारत में लागू होने वाले सब अत्रिनियमों में जहां तक एमें अत्रिनियमों का सम्बन्ध भारतके सविधान की सातवीं सूची की निम्न २ या ३ में विशेष रूपसे कहे हुए किसी मामले में हो, यह समझता आवश्यक होगा कि वह रजिस्टर्ड औषध निर्माता न अंतर्गत है ।

५६—यह आवश्यक होगा कि किसी स्नातक व्यक्ति को, किसी भारतीय औषध निर्माता फर्म या संस्था में या किसी सरकारी या सरकारी गहायता प्राप्त ऐसी ही संस्था में औषध निर्माण के गुणपरिच्छेदक के तौर पर नियुक्त किए जाने योग्य समझा जाय ।

५७—रजिस्टर्ड फर्मा या व्यक्तियों का वही विशेषाधिकार प्राप्त होगा, जो आवश्यकारी एक्ट या किसी अन्य अत्रिनियम के अधीन, जो उस समय लागू था, प्राप्त होते हैं ।

अध्याय ७

विविध

५८—(१) किसी ऐमें निगम का चोन्कर, जो चोन्क में अपील मुनन वाले अधिकारी के पद में किया हो, उस अत्रिनियम के अधीन किए हुए बोर्ड की प्रत्येक आज्ञा के विरुद्ध अपील केन्द्रीय सरकार के सामने की जा सकेगी ।

(२) उपधारा (१) के अधीन प्रत्येक अपील ऐसी आज्ञा की सूचना की तारीख

से तीन मास के भीतर प्रस्तुत की जायगी।

- ५६—(१) के द्रीय सरकार के विरुद्ध उसके किमी ऐसे काम के लिए, जो उसने उन अधिकारो को प्रयोग मे लाने के लिए किया हो, जो इस अधिनियम के आधीन प्राप्त है, कोई मुकदमा या कानूनी कायवाही न की जा सकेगी।
- (२) बोर्ड या बोर्ड के किसी सदस्य या किसी अफसर या नौकर या किसी ऐसे व्यक्ति के विरुद्ध, जो बोर्ड या उसके अध्यक्ष या किसी अफसर या बोर्ड के नौकर के आदेशानुसार काम करता हो उसके लिए किसी ऐसे काम के सम्बन्ध मे, जो उसने इस अधिनियम के आधीन कानूनी तौर पर आर नेकनीयती से तथा उचित सावधानी आर व्यान से किया हो, कोई मुकदमा या कानूनी कायवाही न की जायगी।
- ६०— किसी कायवाही रसीट, प्राथनापत्र, खाका, नोटिस, आज्ञा, रजिस्टर इ दराज या अय लेखपत्र की कोई प्रतिलिपि, जो बोर्ड के अधिकार मे हो, यदि बाड के रजिस्ट्रार ने या बोर्ड से अधिकार प्राप्त किमी दूसरे व्यक्ति ने उसका उचित रूप से प्रमाणित किया हो, उस इ दराज (लेखा) या लेखपत्र के मौजूद होने के प्रत्यक्ष प्रमाण के रूप मे मानी जायगी और ऐसे इ दराज या लेखपत्र और उन सब मामलो के सम्बन्ध मे, जो उसमे लिखे हो, प्रत्येक मामले मे उसी प्रकार और उसी हद तक प्रमाण म स्वीकार की जायेगी जितना और जिस हद तक असली इ दराज या लेखपत्र यदि ऐसे मामलो के प्रमाण मे प्रस्तुत की जाती, स्वीकार की जाती।
- ६१— किसी ऐमी कानूनी कायवाही मे, जिसमे बोर्ड किसी पथ मे न हो, उस समय तक किसी बोर्ड के या किमी सदस्य या अफसर या नौकर को किसी सदस्य या किसी रजिस्टर या लेखपत्र को प्रस्तुत करने के लिए या उसमे लिखी हुई बातों को ठीक सिद्ध करने के लिए प्रमाण के रूप म अदालत मे बुनाया न जायेगा, जब तक अदालत ने किसी विशेष कारण के आधार पर ऐसा करने की आज्ञा न दी हो।
- ६२— यदि किसी समय के द्रीय सरकार को प्रतीत हो कि इस अधिनियम के आधीन या इसके अनुसार बोर्ड को जो अधिकार दिया गया है उसने उसका व्यवहार नहीं किया या अपनी अधिकार सीमा का उल्लघन किया है या अपने अधिकार का दुरुपयोग किया है या इस अधिनियम के आधीन उसके लिए जो कर्तव्य नियत किया गया है उसका पालन नहीं कर सका है, तो के द्रीय सरकार को अधिकार होगा कि यदि वह यह समझे कि इस प्रकार अधिकार का उपयोग न करना, अधिकार सीमा का उल्लघन करना या उसका दुरुपयोग करना अत्यन्त

महत्त्व रक्षता है तादात्म्य प्राप्त की सूचना प्राप्त हो दे और यदि बोर्ड ऐसे समय के भीतर, जो वे प्रथम सरकार उपाय लिए नियत कर, एम दोष, सीमा उत्लघन या अप्रकार के सम्पयोग का परिहार न कर ता मन्त्रीय सरकार को अप्रकार होगा कि प्रोत्साहित न हो और प्रोत्साहित न कर या कुछ अप्रकारों और कस्त व्यो को व्यग्रहार म लाता या पानन कर का विण कोई ऐसी मस्या उस समय तक के लिए जिस वह उचित समझ नियत करे ।

पर तु प्रतिबन्ध यह है कि वह उस अप्रिनियम के आदेशों के अनुसार ६ मास के भीतर एक नया प्रोट बतान के लिए मायमाती करगी ।

६३—(१) प्रथम श्रेणी के मजिस्ट्रेट भी अशालत का जांचकर कोई अन्य अदालत इस अप्रिनियम के आदेशों क्रिये हुए अपराधों की न सुनवाई कर सकती है और न उनकी सुनवाई का अप्रकार रखती है ।

(२) कोई अदालत इस अप्रिनियम के आदेशों क्रिये हुए किसी अपराध की सुनवाई का अप्रकार न रखगी, उस दशा का जांच कर जब उस समय के म बनाये हुए नियमों के अनुसार किसी अफसर से लिखित अभियोग पत्र प्रस्तुत किया जाय ।

६४—इस अप्रिनियम के आदेशों और उसके आधीन मन्त्रीय सरकार द्वारा बनाये हुए नियमों के आधीन जांच निम्नलिखित बातों का नियमत्रद्ध करों के लिए विनियम बना सकता है, अर्थात्—

- (१)(क) ट्रेनिंग स्कूल की शिक्षा या विप्रार्थियों के उगम प्रवेश के लिए,
- (ख) वह प्रतिबन्ध नियत करने के लिए जिनके आधीन विद्यार्थी डिग्री या डिप्लोमा या प्रमाणपत्र या नाम और तादात्म्य की परीक्षाओं में दाखिल हो सकते और जिनके आधीन विप्रार्थी डिग्री, डिप्लोमा, और प्रमाणपत्र पाने के योग्य होंगे ।
- (ग) बोर्ड से सम्बद्ध शिक्षा अथवा ट्रेनिंग स्कूल के विप्रार्थियों के निवासस्थान के प्रतिबन्धों को नियत कराने और एम निवासस्थानों का शुल्क प्रसूत करने के लिए,
- (घ) बोर्ड से सम्बद्ध ट्रेनिंग स्कूल अत्यापका को मर्यादा, योग्यता और वेतन को नियत करने के लिए,
- (ङ) ट्रेनिंग स्कूल में विप्रार्थियों की पढाई के लिए और बाड की परीक्षाओं में बैठने, डिग्री, डिप्लोमा और प्रमाणपत्र प्राप्त करने के लिए शुल्क नियत करने के लिए,
- (च) उन प्रतिबन्धों और उपायों को नियत करने के लिए, जिनके अनुसार

परीक्षक नियत किये जायेंगे और परीक्षाये ली जायेगी और परीक्षको को कत्त व्य का नियत करने के लिए। पर तु प्रतिब ध यह है कि विनिमय (रेगुलेशन्स) बनाने में बोर्ड साधारण रूप से किसी की आर्थिक और अन्य वत्तमान दशाओं का ध्यान रखेगा।

- (२)(क) समय और स्थान, जहा जहा बैठक की जायेगी,
 (ख) ऐसी बैठको को आमन्त्रित करने की सूचनाएँ निकालना,
 (ग) वहा कायवाही करना,
 (घ) और डाइरेक्टर के अतिरिक्त बोर्ड के अफसरो और कमचारियो के वेतन, भत्ते और नौकरी के अय प्रतिब ध,
 (ङ) दूसरे समस्त अय मामले, जो इस अविनियम के उद्देश्यो की पूर्ति के लिए आवश्यक हो।
 (३) ऐसे समस्त विनियम सरकारी गजट में प्रकाशित किए जायेगे।
 (४) केन्द्रीय सरकार को अधिकार है कि वह सरकारी गजट में विज्ञप्ति प्रकाशित करके कोई विनियम रद्द या सशोधित करे।

६५—(१) के द्वीय सरकार समय समय पर इस अविनियम के अनुकूल नियम बना सकती है।

- (२) विशेष रूप से और उपरोक्त अधिकार के आशय के साधारणत विपरीत गए बिना, केन्द्रीय सरकार निम्नलिखित किसी विषय पर नियम बना सकती है—
 (क) धारा ४ के आधीन किस समय, किस स्थान पर और किस प्रकार चुनाव होगा,
 (ख) इस अधिनियम के आधीन चुनाव के नियंत्रण के लिए,
 (ग) बोर्ड की बैठक की कायवाहियो के चलाने और विवरण को भली भाँति रखने के लिए,
 (घ) धारा ६ के आधीन रिक्त स्थानो की पूर्ति किस भाँति की जायेगी,
 (ङ) डाइरेक्टर तथा अय कर्मचारियो के अधिकार, वेतन, भत्त और सेवा सम्बन्धी शर्ते,
 (च) बोर्डों द्वारा हिसाब रखना और किस प्रकार इन हिसाबो का आडिट किया जाएगा और इ हे प्रकाशित किया जाएगा और ऑडिट, डिसएलाउन्स तथा सरचाज के सम्बन्ध में आडीटरो के अधिकार,
 (छ) वह तिथि, जिसके पूर्व ही बजट स्वीकृति के लिए मीटिंग की जाएगी,
 (ज) बजट तैयार करनेमें किन फार्मों ओर रीतियो का उपयोग किया जाएगा,

- (झ) वे नक्शे, परिशिष्ट और रिपोर्ट, जिन्हें सभी प्रोड भेजेगे,
 (ञ) इस अधिनियम के आदेशों और नियमावली के रजिस्टर का फाम और
 याग्यताओं के आधार पर उक्त दो या अधिक वर्गों में वर्गीकरण,
 (ट) इस अधिनियम के आदेशों दिए शुद्ध और उनका उपयोग,
 (ठ) धारा ३१ के प्राचीन रजिस्ट्रार के निगम का प्रांत द्वारा अपीलें सुनने की
 विधि,
 (ड) बोट से सदस्यों और सभापति को मिनने जाने भक्त
 (ण) अध्यक्ष का मिनने वाला पारिश्रमिक,
 (ग) शिक्षण सभा अथवा परीक्षण सभा का रूप में प्रोडके लक्ष्यों का उत्थान,
 (त) निर्धारित फाम में निमाताओं द्वारा निमाताओं के रजिस्टर का रखा
 जाना,
 (थ) बोट अथवा के द्वीय सरकार द्वारा अपने अधिकारों का सोपा जाना,
 (द) इस अधिनियम के और किमी नक्ष्य का उत्थान ।
 (३) सभी ऐसे नियम सरकारी गजट में प्रकाशित किए जायेंगे ।

६६—केन्द्रीय सरकार का नियम बनाने का अधिकार और प्रोड का विनियम बनाने का अधिकार उस पत्रिपत्र के आदेशों है कि नियम तथा विनियम पहले आलोचनाय प्रकाशित किए जाय और तामू प्रोड में पूर सरकारों गजट में छापे जाएँ तथा विनियम तब तक तामू नहीं लागू जय तब राज्य सरकार उन्हें ठीक न मानें ।

६७—जय तब कि उग अधिनियम में उमने रिपरीट स्पष्ट याग्य न हो, उस अधिनियम के किमा आदेशों का उग अधिनियम में आदेशों किमी रजिस्टड भारतीय गीर्षा निमाता में अधिकृत निर्माता पर लागूगा ।

६८—केन्द्रीय सरकार उग विधि में दो रूप ही अथवा एक पश्चात् जय में प्रथम भाग तामू हो, सरकारी गजट में प्रकाशित कर, उस भाग के यादेशों को या उसके किमी अक्ष को सार भारत पर उग विधि में तामू पर गतनी है जो उसमें प्रकाशित हो । पर तु प्रतिपक्ष यह है कि केन्द्रीय सरकार उस विज्ञप्ति को अय साधना द्वारा, जो कि उग उक्ति प्रतीत है, विस्तीर्ण रूप में प्रकाशित करेगी ।

६९—(१) धारा ६५ में प्रकाशित विज्ञप्ति के प्रकाशित के पश्चात् रजिस्ट्रार जो उग विधि को जो उग विज्ञप्ति में दी हुई हो, एक सूची तैयार करेगा और रखेगा, जो 'भारतीय औषध विभाग' करने वाले व्यक्तियों और फर्मों की सूची' कहलायेगी ।

(२) प्रत्येक व्यक्ति या फर्म, जो इस अधिनियम के अनुसार रजिस्टड होने के

योग्य नहीं है, इस भाग से लागू होने की तिथि तक यदि एक वष के अन्दर रजिस्ट्रार को इस बात से सतोष दिला देता है कि उपवारा (१) में लिखित तिथि तक उसने नियमित रूप से दस वष तक ओषधि निमाण की है, पाच रुपया देने पर उक्त सूची में अपना नाम लिखवा सकेगा ।

(३) धारा ३० की उपवारा (२) और (४) और धारा ३१ की उपवारा (२), (३) और (४) और धारा ३६ की उपवारा (१) के आदेश, जहाँ तक सम्भव होगा कथित सूची पर लागू होंगे ।

७०—उस व्यक्ति या फर्म के अनिर्दिष्ट कोई भी व्यक्ति, जिसका नाम इस अधिनियम के भाग १ में रजिस्टर्ड है या धारा ६६ के अधीन जिसका नाम सूची में लिखा है, न तो निमाण कर सकेगा और न प्रत्यक्ष अथवा गौण रूप से इस बात को लक्षित कर सकेगा कि वह निमाण कर सकेगा ।

७१—कोई भी व्यक्ति या फर्म जो धारा ७० का उल्लंघन करता है, प्रत्येक अपराध के सम्बन्ध में अभियुक्त विद्ध होने पर ५००० रुपया तक जुर्माने अथवा ३ वष तक की कद अथवा दानो सजाओं से दण्डनीय होगा ।

७२—इस अधिनियम की किसी भी धारा में किसी भी बात के होते हुए कोई भी व्यक्ति या फर्म जो इस अधिनियम भाग २ के लागू हो जाने की तिथि से एक वष के पूरे होने पर, तब तक रजिस्ट्रार में रजिस्टर्ड निर्माता के रूप में न लिखा जायेगा, जब तक वह बोर्ड द्वारा स्वीकृत पद्धति पर ओषधि निमाण का प्रमाण पत्र इन्डियन रिसर्च इस्टीमेट लखनऊ से प्राप्त न करले ।

७३—धारा ७० और ७१ में उल्लिखित कोई भी बात ऐसे व्यक्ति या फर्म पर लागू न होगी—

(क) जो पेटेंट औषधि बनाने की कला तक ही अपने को सीमित रखता हो ।

(ख) जो इस अधिनियम की धारा ७२ के अतगत रजिस्टर्ड होने के योग्य हो ।

(७४) (१) इस अधिनियम के अधीन बोर्ड द्वारा स्वीकृत फर्म या निर्माता व्यक्ति के अनिर्दिष्ट कोई भी व्यक्ति या फर्म किसी भी ऐसे प्रमाण पत्र या लाइसेंस या अथवा कागज पत्र, जिन से ये प्रकट होता हो या जिसमें ये लिखा हो कि उक्त फर्म या व्यक्ति अथवा उसका प्राप्तकर्ता ओषधि निर्माण करने का अधिकारी है, न दे सकेगा ।

(२) जो भी इस धारा के आदेश का उल्लंघन करेगा वह जुमाने की अथवा कद की सजा से दण्डनीय होगा जो क्रमशः ५००० रुपए तक अथवा

३ तब तक अथवा दोना ही ली होगी । यदि ऐसा उलघा किसी फम के द्वारा हुआ तो उग फम क प्रत्येक मस व्यक्त हो, जा जान भूभर और गमभकर एसे उत्तपन क प्रति आजा तता है या ताय को अमल म लाता है, जुमाना या तद का दण्ड िया जायगा, जा क्रमश १००० रुपया या ६ मास की सजा अथवा दोना ही सजाया का अधिकारी होगा ।

७५—जो कोई व्यक्ति या फम जान भूभर भूटा प्रमाणपत्र, जिसस यह प्रकट हो कि उसे ऐसा प्रमाणपत्र उस फम या व्यक्ति स प्राप्त हुआ है, जिस बोड ने इस अग्निनियम के आधीन स्वीकृत किया है या वह इस अग्निनियम के आधीन निश्चित प्रणाली के अनुसार औपत्र निमाग करन योग्य है तो वह जुमनि की सजा द्वारा दण्डनीय होगा और यह इस अग्निनियम के आधीन अपराध के लिए १०० २० तक दण्ड का अधिकारी होगा और बाद को किये जाने वाले प्रत्येक अपराध क लिए ५०० रुपया होगा ।

विचार

(सन् १९५६ के आरम्भकाल में लखनऊ से डा० शुभकार कपूर एम० ए० पी० एच० डी० आचार्यश्री के पास 'आचार्य चतुरसेन का कथा साहित्य' विषय पर थीसिस लिखने के सम्बन्ध में उनके राजनीतिक एवं साहित्यिक विचार प्राप्त करने के लिए शाहदरा 'ज्ञानधाम' में आकर दो सप्ताह ठहरे थे। उन्होंने प्रश्न किए और आचार्यश्री ने उनके उत्तर दिए। आचार्यश्री की यह उच्चतम और पनी विचारशक्ति थी कि चार वर्ष बाद घटित राजनीतिक संघर्ष की सही कल्पना उन्होंने तब की थी। पाठको के ज्ञान वृद्धि के लिए उन विचारों का कुछ अंश यहाँ दिया जा रहा है।)

श्री नेहरू और गांधीवाद को आप क्या समझते हैं ?

सन् १९२६ में लाहौर कांग्रेस में नेहरू पहिली बार अध्यक्ष पद पर बठे। उन्होंने तब कांग्रेस का चार्ज अपने पिताश्री से लिया, जो एक वर्ष पूर्व कलकत्ता कांग्रेस की अध्यक्षता कर चुके थे। यही वह अधिवेशन था जिसमें मोतीलाल नेहरू ने भारत के संविधान के बारे में 'नेहरू आयोग' की रिपोर्ट पेश की थी, परन्तु यह रिपोर्ट एक उपनिवेशिक दर्जे के आधार पर तयार की गई थी। इसलिए उनकी सब शिफारिसें भी उसी ढंग की थीं। उस समय सुभाषचन्द्र बोस ने उसका विरोध किया था और कहा था कि यह एक प्रकार से विदेशी बन्धन में बंधे रहने की स्वीकृतिमात्र ही थी—बस, जरा से बन्धन ढीले करने भर की मांग थी। सुभाषचन्द्र चाहते थे कि भारत को पूर्ण स्वराज्य की प्राप्ति हो। उस समय तक गांधीजी भी ब्रिटिश राष्ट्रमण्डल में बंधे रहना श्रेयस्कर समझते थे, परन्तु सुभाष ने उनसे भी टक्कर ली। उस समय कांग्रेस में फूट पड़ते पड़ते रह गईं और यह तय किया गया कि यदि भारत सरकार एक वर्षकी अवधि में भारतको औपनिवेशिक दर्जा न दे तो पूर्ण स्वराज्य का झण्डा खड़ा कर दिया जाय।

उस समय नेहरू भी सुभाष के साथ थे, पर वह अपने पूज्य पिता और गांधीजी का विरोध न कर सके। गांधीजी ने भी उन्हें इसका मूल्य चुका दिया, उन्हें ही आगामी अधिवेशन का अध्यक्ष बना दिया। कांग्रेस के उस अधिवेशनमें उन्होंने पूर्णस्वराज्य की मांग की और समाजवादी परिपाटी भी अपनाई, पर गांधीजी के विरोध से वह लाचार थे। उन्हें सबसे मिलकर काम करना पड़ा। पर उनमें गांधीजी की हँस बुद्धि का अभाव रहा। गांधीजी ने हँस की भाँति मोती चुगे थे, सभी प्रांतों से चोटी के उत्तम पुरुषों को चुनकर अपना अनुयायी और साथी बनाया था। मद्रास से राजाजी, बम्बई से सरदार पटेल, बंगाल से चित्तरजनदास, उत्तरप्रदेश से मोतीलाल नेहरू और पंजाब

स ताला लाजपतराय । और ये सब गप्पा जोया के गन तन उनके साथ रहे, उनके प्रति एकनिष्ठ रहे । परन्तु नेहरू के साथ आज तक भी गांधीजी नहीं हैं, न उहाने अपने भक्तों का कोई निष्ठावान दान ही बताया है ।

सन् १९८७ के अत तक नेहरू और पटेल एक दूसरे से प्रार्थ हो चुके थे । यहा तक कि सरदार ने गांधीजी के समान जगम स त्यागपत्र तन दान का इरादा प्रकट किया था और गांधीजी भी यह मत प्रकट कर चुके थे कि जना एक साथ नहीं रह सकते, दानो मे से एक को हट जाना होगा । सरदार ही हट जान को तयार हो गए थे तब । शायद ये राष्ट्रीय स्वयसेवक सभ से मिल जात और उग दान का नेतृत्व करते । ऐसे ही कुछ विचार उन्होंने लखनऊ में प्रकट किए थे । परन्तु गांधीजी की अकस्मात् हत्या हो जाने से यह बात न हा सकी और नेहरू-पटेल दानो ही ने एक समझौता कर लिया तथा देश के कत्याग को दृष्टि में रखकर मतभेद हान पर भी सरदार जीवन के अत तक उनसे मिलकर काम करते रहे ।

भारतीय राज्य की जागजोर सम्हाला के बाद पटेल के तन तीन हो वष जीवित रहे और इन तीन वर्षों में उहोंने वह काम किया जा इतिहास में अद्वितीय है । उहोंने अपनी सामर्थ्यसे इतना बड़ा भारत राज्य सजाकर दिया जितना न रामना था, न कृष्ण ना न अशोक का था, न अशोक का और न लहरा पर दुर्गत करन वाने अग्रजो का । इतने पर भी नेहरू से उनका मतभेद रहा । पर व परस्पर एक दूसरे के काम में हस्त धेप करने से बचते रहे । पर तु इतनी न दय त्रिया कि उनकी गृह नीति जितनी सफल एवं शानदार रही, उतनी नेहरू की विदेश नीति न रही ।

आज भी नेहरू की जागी पर गांधीजी हैं, पर सभी गांधीभक्तों से यह कट चुके हैं । इतना ही नहीं—गांधी भक्तजन अब उनपर गांधीजी के दृष्टिकोण का समाप्त करने का आरोप लगा रहे हैं और देशमें एक नेहरू निराधी शक्ति गांधीजातीजना की खड़ी हो रही है, जिसका जलत उदाहरण स्वतंत्र पार्टी है, जिसका संगठन आज अस्सी वष की आयु में राजाजी ने दिया है । उधर आजाय जनता की गणतन्त्र पार्टी में चने गण, १९८१ में तत्स्थिता गण, गणतंत्र राजन्द्रप्रसाद राष्ट्रपति इतिव तात मुँह पर ताला जडे बँडे हैं । यह गणों गामा का युग है जो महाभारत की समाप्ति के बाद आया था और जिसमें विजय का पाणों का राजपाट त्याग कर हिमानय गनता पना था । नेहरू अपने गे गौ गोता में कहते हैं, पर गांधीदशन के मूापध के अनुसार उनका शासन नहीं है ।

यह आप किस आधार पर कह रहे हैं ?

गांधी दजन का मूावार यह है कि नाम का ढग गार उद्देश्य दोनो ही पवित्र होने चाहिए । यह सम्बुनिम्नो के पक्ष में ता है पर उनके हिंसात्मक ढग के विरुद्ध हैं ।

गाधीजी यह कभी पसन्द न करते ।

परतु कम्युनिज्म तो जीविन ही वर्गीय सघष पर हे, इसलिए हिंसा के विना उसका अस्तित्व ही समाप्त हो जाता हे । यदि कम्युनिज्म मे से वगसघष निकाल दिया जाय तो उसमे पूजीवाद से कोई अतर नही रह जाता ?

यही बात है । इमीसे तो विनोवा कहने है कि गाधीवाद का अत हो गया है । आपने सुना नही—गाधीजी की परम शिष्या मीरा भारत छोडकर चली गई । वह एक अग्रेज एडमिरल की पुत्री थी । ब्रिटेन के ऊँचे वग मे उनकी गणना थी । किसी लाड के साथ उनका विवाह हो सकता था, परतु आज से पच्चीस वष पूव वह गाधीजी की आवाज पर सब कुछ त्यागकर एक साधारण भारतीय ग्रामीण महिला की भाति पडी रहने लगी । अपने बाल उन्होंने कटवा दिए और एक भिक्षु का जीवन उहोने धारण किया । गाधीजी की मृत्यु के बाद उ होने अपना आश्रम ऋषिकेश मे स्थापित किया, और गाधीजी के नाम पर जो धोखा हो रहा है, उनसे खिन्न होकर चुपचाप वहा से चली गई ।

इस समय नेहरू का पचशील का सिद्धान्त खतरे मे हे । नेहरू ने उसे खतरे से बचाने के लिए चीन का अनिक्रमण चुपचाप सह लिया । परतु अब तो वह, उस भाग को जो चीन ने हडप लिया है, वापम लेने का इरादा कर रहे ह । सम्भव है चीन और पाव फैलाए । सम्भव है, वह भूटान पर चढ दौडे, तब नेहरू क्या करेगे ? यह प्रग्ग उनके राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय जीवन मे कठिनाई ला रहा है, जिसका कोई हल अभी नही सूभ पड रहा हे । नेहरू कहते ह कि अन्तर्राष्ट्रीय तनातनी मे कमी चीन को पसन्द नही हे । चीन का भुकाव उन राजनीतिक लहरो से है, जो विश्व मे तनाव जारी रखते है । चीन की जनसरया मे वृद्धि हो रही है । उद्योग बढ रहे है और एशिया मे चीन के प्रति आशका के वातावरण उत्पन्न हो रहे है ।

काग्रेस एक ऐसी राजनैतिक राष्ट्रीय सस्था थी जिसका उद्देश्य भारत को विदेशी दासता के चु गल से छुडाना था । अब जब अग्रेजो ने भारत छोड दिया, तो काग्रेस ही के हाथ उन्होंने राजसत्ता सौप दी । ऐसी हालत मे काग्रेस भारत सरकार से मोबा लेने वाली सस्था न रह गई, भारत सरकार ही बन गई । इस पर गाधीजी ने तभी कहा था कि अब काग्रेस को तोड देना चाहिए क्योंकि काग्रेस का सगठन इस कारण सुहढ हे कि इसके विभिन्न तत्त्व विदेशी शासन के विरोध मे एकन हुए हे । अन्यथा यह किसी एक स्थान पर एकत्र नही हा सकते थे । इसलिए जब देश स्वाधीन हो गया तो उसके उद्देश्य की पूर्ति हो गई, अब इसे भग कर देना चाहिए । परन्तु उनकी दूसरी सलाहो के अनुसार ही उनकी यह सलाह भी नही मानी गई और काग्रेस ज्यो की त्यो कायम रही । परतु यदि काग्रेस को कायम रहना ही था तो अब काग्रेस

का अर्थ प्रदान मंत्री के ऊपर होना चाहिए था। क्योंकि वह उस पार्टी का प्रधान है जो सत्कारण है। पर ऐसा नहीं हुआ। कुछ दिन तो नेहरू का प्रधान मंत्री और कांग्रेस का प्रधान मंत्री साथ रहे। यह एक गलत और अज्ञानपूर्ण था। परन्तु बाद में आगे पीछे जो भी कांग्रेस ने अर्थ प्रदान किये — प्रदान मंत्री के आज्ञानुवर्ती ही रहे। यह और भी गलत चीज थी। सरदार पटेल के देहावसान के बाद नेहरू कांग्रेस के अध्यक्ष बन आए और उस दिन से कांग्रेस का शासन मुगल शासन में परिवर्तित हो गया।

नेहरू का व्यक्तिगत और उमरा प्रभाव सब ही सर्वापरि रहता रहा है। एक सरदार पटेल से वह कुछ दूरने थे, पर उनके बाद तो उनपर किसी का दबाव रहा ही नहीं। प्रधानमंत्री की सत्ता अपने हाथ में रखकर नेहरू जा चाहते हैं वही कर डालते हैं, किसी में उनके सम्मुख खड़े होने का साहस तो घर दूर ही पाते हैं— अपना स्वतंत्र मत भी नहीं रख सकते। उन कारणों से कांग्रेस का अध्यक्ष और उसकी आग्निता में कांग्रेस की आजाद सभा प्रोत्साहित और पोषण ही रहती है। यह स्पष्ट है कि कांग्रेस का प्रधान बिना नेहरू की स्वीकृति और पसंद के नहीं हो सकता।

क्या आप समझते हैं कि कांग्रेस नेहरू ही से दम में जीवित है ?

यह तो मैं नहीं कहना चाहता। परन्तु मैं यह कह सकता हूँ कि इस समय देश की कोई पार्टी देश का शासन सम्हाल करने के योग्य होती तो कांग्रेस का तरता अब तक उलट जाता, और यदि कांग्रेस ही में नेहरू के पाण्डे का कोई तेजस्वी व्यक्ति होता तो कांग्रेस सरकार भले ही जीवित रह जाती—नेहरू देश के प्रधान मंत्री न रह पाते। परन्तु उस समय तो नेहरू एक द्विदिशा में फस रहे। उनकी दशा अजुन के समान हो रही है। जैसे अजुन ने मोक्षा या फिर मैं कसे राज्य के लिए प्रयत्न या वधा से युक्त कर ? नेहरू ने आगे उभरता पक्षों का भाग है, वे किसी देश की गुटबंदी में शरीक नहीं हो सकते, न किसी देश में सहायता प्रदान करते हैं। दूसरी ओर चीन की आक्रामकतायवादी है जो पश्चीम को विमुक्त बनाने पर तुल्य बैठी है। अब यदि नेहरू चीन में अपना पक्ष प्रामाण्य नहीं कर सकते हैं तो दुनिया देग लगी कि उनका पक्षीय का गिद्धांत गत्म हो गया और उनकी विदेश नीति विफल हो गई।

ई० पू० चौथी शताब्दी में चीन अपने को न केवल राज्य अपितु एक साम्राज्य मानता था। उस समय चीनी लोग और चीन का शाह अपने को 'चक्रवर्ती' कहते थे, उसका अर्थ था 'मध्यवर्ती साम्राज्य'। उन दिनों चीन वागे अपने राज्य को दुनिया का केन्द्र समझते थे, और चीन का शाह ईश्वर पुत्र समझा जाता था। उसकी मान्यता थी कि वही उस समय समस्त सम्य सत्कार का सम्राट है। जैसा कि नियम है चीन का यह साम्राज्य भी दूसरे देशों को जीतकर कायम हुआ था। चीन का पहला शाह

जो अपने आपको 'हुआंग ची' कहता था, अत्यंत कठोर और निंद्य प्रकृति का व्यक्ति था। उसने घोर क्रूरता करके अपने साम्राज्य की स्थापना की। उसने बहुत-से किले बनवाए और गढ़बंदिया की। चीन की दावार का एक हिस्सा उमीका बनवाया हुआ है। उसने चीन को एक किया और उसकी सीमाओं का विस्तार किया। ई० पू० २१० में एक जबर्दस्त गृहयुद्ध में यह सम्राट मारा गया। बाद में उसके साम्राज्य को हानवंश के राजा चलाते रहे। हानवंश के पतन के बाद बहुत समय तक चीन में कोई शक्तिशाली सत्ता कायम न हो सकी। परंतु जब तांगवंश का अभ्युदय हुआ तो सत्ता फिर चमकी और उस काल में चीन साम्राज्य का और भी विस्तार हुआ। तांग साम्राज्य के अंतगत समूचा चीन तो था ही, वह दक्षिण में हिंद चीन की सीमा को छू रहा था। इसके बाद मंगोल वंशकी सत्ता स्थापित हुई। इस काल में और भी चीन साम्राज्य का विस्तार हुआ। चीन का मंगोल साम्राज्य तो मसार भर का सबसे बड़ा साम्राज्य था। इस वंश का कुवलाई एक ऐसा विराट साम्राज्य का स्वामी था, जो इस समय सोवियत मध्य एशिया कहे जाने वाले क्षेत्र से लेकर पश्चिम में ईरान और मसोपोटामिया और पूव में चीन सागर तक फैला हुआ था।

मचू वंश ने तिब्बत पर अधिकार करके उस साम्राज्य को और बढ़ाया। उसने बर्मा को भी कर देने को विवश किया। अनाम को चीनी सत्ता स्वीकार करनी पड़ी और फारमोसा चीनीसाम्राज्य का अंग बन गया। चीन सम्राट अपने अधिकृत देशों को हीन और तुच्छ समझते थे। उन दिनों चीनी सम्राट से अधिकृत देशोंमें राजा जो पत्र-व्यवहार करते थे, उनमें चीनी सम्राट का नाम सर्वोपरि ही रहता था। यों चीनी सम्राट अपने साम्राज्य को एक परिवार कहते थे, परंतु हकीकत यह थी कि इन अधिकृत राजाओं की कोई औकात न थी।

बीसवीं शताब्दी के आरम्भ ही में एक क्रांति होकर मचू साम्राज्य भिन्न भिन्न हो गया, तथा चीनियों ने गणराज्य की स्थापना करली। उस समय गणराज्य के आरम्भ काल ही में तिब्बत और बाहरी मंगोलिया प्रथक हो गए थे, पर नये गणराज्य ने फिर तिब्बत पर अपना अधिकार जमाया। मचूरिया के अलग होने पर चीनी राष्ट्रवादियों ने इतिहास की आड़ लेकर ऐसे क्षेत्रों पर अधिकार की चर्चा शुरू की, जो कभी चीनी साम्राज्य के अंग थे।

अब चीन के आजके शासकों को कहना तो यह है कि उन्होंने पुरानी साम्राज्यशाही नीति को छोड़ दिया है, पर उनकी चेष्टाओं से यह प्रकट है कि वे पुराने साम्राज्यशाही दावों से चिमटे हुए हैं। तिब्बत में अपनी स्थिति मजबूत करने के बाद उन्होंने अब उत्तर और उत्तर पूव में भारत की परम्परागत सीमाओं का उलघन किया है। बर्मा चीनी सीमा क्षेत्र पर भी चीनी विस्तारवादी आकांक्षाओं का प्रभाव साफ दिख रहा है।

द्विचिन क्षेत्र मे चीनी भारत बर्मा सीमा पर स्थित राजाणाग दर तरु अपना हक समभत है । दक्षिण मे व शाम और राज्या ने उन हिस्सा को अपना बताते हे, जो सालबीन व पून म है । ताम्राम, ताम्रानिया, और श्याग को भी चीन मे शिकायत होने लगी है । वास्तव मे चीन की उन विस्तारवादी हरकत का न तो अंतर्राष्ट्रीय साम्यवाद ही म कुछ सम्बन्ध है, न चीन के साम्यवाद म । यह तो उसकी वह परम्परागत विस्तारवादी मनावृत्ति हे जा गत दा हजार वर्षों से चली आ रही है ।

कुमाय के तीन जिना अत्माना, टिहरी गढवाल और पोढी गढवाल की सीमाय तिब्बत सीमा म मिलती हे । दाना दानो ही सीमा को हमेशा मे कानी, अलक नन्दा और भागीरथी नदिया अन्न करतो हे । उर चीन ने पोढी गढवाल के चमोली तहमील के डम्मीन क्षेत्र बढाहोती पर अपना दावा पेश किया है । वह अत्मोडा जिले का भी कुछ हिस्सा दरोचना चाहता हे । चीन न गगना, मत्ता, और बत्ता धुरा के दरें के निकट लक्ष पत्ता न टिहरी गढवाल के नीरुग जाधना गावा पर अपना क्षेत्र होने का दावा किया है ।

सन १९५४ न चीन भारत समभौत म उत्तरप्रदेश म तिब्बत जान के लिए माला, बीती, कु गरो, त्रिगरी, दारमा और त्रिपुलेग दरों का उल्लेख हुआ हे । दोनो देशो के बीच उनके अतिरिक्त और भी दरें हे । त्रिपुलेख दरा सबसे कम ऊँचाई पर हे, जो १६७८० फुट पर स्थित है । दक्षिण पश्चिम तिब्बत म आसानी से इस दरें द्वारा भारत म प्रवेश किया जा सकताहै । त्रिपुलेख पाम भाग तिब्बत और नेपाली सीमाए मिलती हे । इस दर से मत्रमे निकट का स्टेशन तकपर है, जो दर से २२२ मील दूर हे । ज स्टेशन म यात्री और सामान अक्कोट तक लायिया, तुनिया और राच्चरा द्वारा पहुँचाया जाता हे । इस सडक म एकतरफा यातायात होता हे । सडक अत्यंत गतराक है । अक्कोट म त्रिपुलेग ९५ मील है । उस ९५ मीलक ऊपर राबउ माग को पदम ही पार किया जाता है । म प्रकार त्रिपुलेग से अत्माना मद्र मुभाम तक पहुँचने म १३ म १५ दिन लग जात है । तार की ताहा पिथौरागढ म गत्म हो जाती है, जा टनकरपर म ९४ है । सिफ हरवार ही जा सम्बन्ध बनाए रखते है । पिथौरा गढ म आग जरूरी मत्रा, सरकारी सन्देश, परिग को बनार का तार यस्था से पहुँचाय जात है ।

त्रिस्मन्दत तारपर त्रिपुलेग माग का भारतर मत्त बहुत शक्ति है । शता विद्या म भारत, तिब्बत, चीन और सिन्ध्याग के बीच व्यापार और तीर्थयात्रा इसी माग से हातो रही है ।

१९४६ म सरकार न टनकरपर से पिथौरागढ तक मोटर सडक बनाने का काम शुरू किया था । तब इस सडक का सरकारी दृष्टि से विशेष सामरिक महत्व नहीं

था। इस सड़क को बनाने का उद्देश्य मैदानी हिस्सों से घर लौटने वाले कुमाऊँनी सिपाहियों की मलेरिया से रक्षा करना था। महायुद्ध से पूर्व ही इस सड़क के निर्माण की योजना बन चुकी थी।

चीन ने अपनी सीमा में तकलाकोट मड़ी तक, जो तिब्बत में समुद्र की सतह से १६ हजार फुट की ऊँचाई पर है, मोटर सड़क बना ली है और इस माग से मोटर यायायात जारी है। यह मड़ी लिपुलेख दर्रे के अति निकट है। तकलाकोट तक सड़क बनाने के लिए चीनियों को ऊँची पहाड़ियों को नहीं काटना पड़ा। इस भूमि में अधिकतर वलुही भूमि है।

चीन ने लद्दाख के आठ हजार वर्ग मील लम्बे चौड़े भारतीय क्षेत्र को चीनी नक्शों में अपना वतलाया है तथा दो सौ से अधिक मील पर कब्जा कर लिया है और अब लद्दाख स्थित भारत चीन सीमा पर चीन सरकार भारतीय क्षेत्र में अपने सशस्त्र सैनिकों को जमाकर रहा है। उन्होंने पूर्वी तथा उत्तरी लद्दाख के क्षेत्र में सड़कें बना ली हैं। पश्चिमी तिब्बत में चीनियों में सिक्किम और ल्हासा की सड़कें, गार्टोक तथा तकलाकोट से जोड़ने वाली सड़कें बना ली हैं।

भारत के शताब्दियों पुराने मित्र चीन ने, अकारण ही जबकि भारत ने किसी प्रकार की उत्तेजना प्रकट नहीं की—भारत की उत्तर-पूर्वी सीमा का अतिक्रमण किया और उसने ऐसे प्रश्न पर भारत के साथ विवाद खड़ा कर दिया, जिसे शान्तिपूर्वक हल किया जा सकता था। हम न तो कोई सामरिक तैयारी कर रहे थे, न हमने अनधिकृत रूप से किसी ऐसी अचल पर अधिकार करने की चेष्टा की थी जो हमारा न था। न हमारी चीन के प्रति कोई ऐसी दुर्भावना ही थी जिसने चीन को ऐसी अनुचित कायवाही करने को विवश किया। सबसे बड़ी बात यह कि उसने उस विवाद को सुलभाने की भी कोई चेष्टा नहीं की जो स्वयं उसने खड़ा किया था। उसने कूटनीति का सहारा लेकर कानून को अपने हाथ में ले लिया और ऐसे ढंग से काम किया कि जो उसकी महान सभ्यता और संस्कृति के सवथा विरुद्ध था। वास्तव में चीन की यह कायवाही शत्रुतापूर्ण थी, जो न केवल भारत के प्रति, अपितु उन सभी देशों के प्रति भी, जो सयुक्तराष्ट्र संघ में उसे प्रविष्ट कराने में प्रयत्नशील रहे हैं। निम्नसदेह चीन की यह आक्रामक कायवाही एशिया और अफ्रीका के उन देशों को अपने निर्यातों पर फिर से विचार करने के लिए बाध्य करेगी, जो उन्होंने बाहुग सम्मेलन में तय किये थे। क्योंकि चीन की इस कायवाही ने एशिया के अथवा सभी पड़ोसी राष्ट्रों को उनकी सुरक्षा के सम्बन्ध में आशंकित कर दिया है। खासकर इसलिए भी चीन की यह कायवाही अनुचित है जबकि रूस और अमेरिका पश्चिम के शीतयुद्ध को समाप्त करने का जीजान से प्रयत्न कर रहे हैं।

कूचिन क्षेत्र म चीनी भारत बर्मा सीमा पर स्थित पाचोनाग दर तरु अपना हक समझते हैं। दक्षिण म वे शाम और राज्या के उन हिस्सा का अपना बताते हैं, जो सालवीन के पूर्व म है। ताओग, मन्त्राश्या, गौर श्याग का भी चीन से शिकायत होने लगी है। भारत म चीन की उन विस्तार की हरकत का न ता अंतर्राष्ट्रीय साम्यवाद ही से कुछ सम्बन्ध है, न चीन के साम्यवाद से। यह तो उसकी वह परम्परागत विस्तारवादी मनावृत्ति है जा गत दो हजार वर्षों से चीनी आ रही है।

कुमाय के तीन जिलों अत्मागा, टिहरी गढवाल और पौड़ी गढवाल की सीमाय निम्नवत् सीमा से मिलती है। दोनों देशों की सीमा को हमेशा से कानी, अलक नन्दा और भागीरथी नदिया अलग करती हैं। इस चीन ने पौड़ी गढवाल के चमोली तहसील के डेल्मीनके क्षेत्र बढाहाती पर अपना दावा पक्ष किया है। वह अत्मोडा जिले का भी कुछ हिस्सा प्राचन चाहता है। चीन न शगना, मत्ता, और बत्चा धुरा के दर्रे के निकट तथ पत्ता न टिहरी गढवाल के तीलिंग जाधेता गाँव पर अपना क्षेत्र होने का दावा किया है।

सन् १९५४ न चीन भारत समझौते म उत्तरप्रदेश म तिब्बत जान के लिए माला, बीती, कुगरी, बिगरी, दारमा और निपुलेख दर्रा का उत्तरण हुआ है। दोनों देशों के बीच इनके अतिरिक्त और भी दर्रे हैं। लिपुलेख दर्रा सबसे कम ऊँचाई पर है, जो १६७८० फुट पर स्थित है। दक्षिण पश्चिम तिब्बत म आसानी से इस दर्रे द्वारा भारत म प्रवेश किया जा सकता है। लिपुलेखके पास भारत तिब्बत और नेपाली सीमाएँ मिलती हैं। इस दर्रे म सबसे निकट का स्टेशन टनरपुर है, जो दर्रे से २२२ मील दूर है। ग स्टेशन म यात्री और सामान अस्काय तक जाशिया, गुणियो और सच्चरो द्वारा पहुँचाया जाता है। इस सड़क म पत्तरफा यातायात होता है। सड़क अत्यन्त सतरनाक है। अस्काय म निपुलेख ९५ मील है। इस ९५ मीलके ऊपर यात्रा माग का पैदल ही पार किया जाता है। इस प्रकार तिपुलेख म अत्मोडा मर मुनाम तक पहुँचन म १३ म १५ दिन लग जाते हैं। तार ही लाहा पिथौरागढ म आत्म हो जाती है, जा टनरपुर से ९८ है। गिफ हरजार ही न सम्बन्ध बनाए रखते हैं। पिथौरा गढ म आग जरूरी करत, सरकार मन्दश, पुनिग ही प्रताय का तार व्यवस्था से पहुँचाय जाते हैं।

निरमन्दश तारपर तिपुलेख माग का सामरिक महत्त्व बढू शक्ति है। शताब्दियाँ म भारत तिपुलेख और शिखांग के बीच व्यापार और तीर्थयात्रा इसी माग से होता रही है।

१९६६ म सरकार ने टनरपुर से पिथौरागढ तक मोटर सड़क बनाने का काम शुरू किया था। तब इस सड़क का सरकारी दृष्टि से विशेष सामरिक महत्त्व नहीं

था। इस सड़क को बनाने का उद्देश्य मैदानी हिस्सों से घर लोटने वाले कुमाऊँनी सिपाहियों की मलेरिया से रक्षा करना था। महायुद्ध से पूर्व ही इस सड़क के निर्माण की योजना बन चुकी थी।

चीन ने अपनी सीमा में तकलाकोट मड़ी तक, जो तिब्बत में समुद्र की सतह से १६ हजार फुट की ऊँचाई पर है, मोटर सड़क बना ली है और इस मार्ग से मोटर यायायात जारी है। यह मड़ी लिपुलेख दर्रे के अति निकट है। तकलाकोट तक सड़क बनाने के लिए चीनियों को ऊँची पहाड़ियों को नहीं काटना पड़ा। इस भूमि में अधिकतर बलुही भूमि है।

चीन ने लद्दाख के आठ हजार वर्ग मील लम्बे चौड़े भारतीय क्षेत्र को चीनी नकशों में अपना बतलाया है तथा दो सौ से अधिक मील पर कब्जा कर लिया है और अब लद्दाख स्थित भारत चीन सीमा पर चीन सरकार भारतीय क्षेत्र में अपने मण्डल सैनिकों को जमाकर रटा है। उन्होंने पूर्वी तथा उत्तरी लद्दाख के क्षेत्र में सड़क बना ली है। पश्चिमी तिब्बत में चीनियों में सिक्किम और ल्हासा की सड़क, गाटोंक तथा तकलाकोट से जोड़ने वाली सड़क बना ली है।

भारत के शताब्दियों पुराने मित्र चीन ने, अकारण ही जबकि भारत ने किसी प्रकार की उत्तेजना प्रकट नहीं की—भारत की उत्तर-पूर्वी सीमा का अतिक्रमण किया और उसने ऐसे प्रश्न पर भारत के साथ विवाद खड़ा कर दिया, जिसे शान्तिपूर्वक हल किया जा सकता था। हम न तो कोई सामरिक तैयारी कर रहे थे, न हमने अनधिकृत रूप से किसी ऐसे अंचल पर अधिकार करने की चेष्टा की थी जो हमारा न था। न हमारी चीन के प्रति कोई ऐसी दुर्भावना ही थी जिसने चीन को ऐसी अनुचित कायवाही करने को विवश किया। सबसे बड़ी बात यह कि उसने उस विवाद को सुलभाने की भी कोई चेष्टा नहीं की जो स्वयं उसने खड़ा किया था। उसने कूटनीति का सहारा लेकर कानून को अपने हाथ में ले लिया और ऐसे ढंग से काम किया कि जो उसकी महान सभ्यता और संस्कृति के सवथा विरुद्ध था। वास्तव में चीन की यह कायवाही शत्रुतापूर्ण थी, जो न केवल भारत के प्रति, अपितु उन सभी देशों के प्रति भी, जो सयुक्तराष्ट्र संघ में उसे प्रविष्ट कराने में प्रयत्नशील रहे हैं। निम्नलिखित चीन की यह आक्रामक कायवाही एशिया और अफ्रीका के उन देशों को अपने निष्णयो पर फिर से विचार करने के लिए बाध्य करेगी, जो उन्होंने वाहुग सम्मेलन में तय किये थे। क्योंकि चीन की इस कायवाही ने एशिया के अन्य सभी पड़ोसी राष्ट्रों को उनकी सुरक्षा के सम्बन्ध में आशंकित कर दिया है। खासकर इसलिए भी चीन की यह कायवाही अनुचित है जबकि रूस और अमेरिका पश्चिम के शीतयुद्ध को समाप्त करने का जीजान से प्रयत्न कर रहे हैं।

हम निस्संदेह यह सच मान सकते हैं कि गौर निश्चय ही हम यह करना नहीं चाहते, परंतु अपनी सीमाओं की रक्षा के लिए हम अविनाश रूप में सैनिक कार्रवाई करनी चाहिए जिसमें कि हमारे सीमान्त में हम नागों, मणि, आदि में आत्मविश्वास का जागरण हो जाय। उमर अनिश्चित भारतीय राष्ट्र का एक मुख्य चतान की भाँति सगठित हो जाना भी चाहिए जिसमें यह संक्रमण हमारे विनाश का कारण बन जाय और हमारी निष्क्रियता चीन के आक्रामक इरादों का अग्रिम गति न दे सके। इस समय यह भी आवश्यकता है कि भारत और पाकिस्तान परस्पर मित्र हो जाय, और काश्मीर समस्या तत्काल सुलझा ली जाय, जिसमें काश्मीर अक्षय में पड़ी हुई दोनों देशों की सहाय्य से समाप्त होनी चाहिए। भारत भूतान, सिक्किम और नेपाल का भी रक्षक है। भारत पाकिस्तान सीमा सुरक्षा का प्रश्न दोनों देशों का संयुक्त प्रश्न है। सीमा की सुरक्षा करना ही 'शो' के लिए प्रासंगिक महत्त्व की बात है। उमरिण भारत पाकिस्तान दोनों ही की सीमा रक्षा के लिए सम्मिलित स्थापना तैयार करनी करनी चाहिए। हम यह न भूलना चाहिए कि यह भारत एवं पाकिस्तान के दोनों नागरिकों की मुख्य समृद्धि एवं सुरक्षा का संयुक्त प्रश्न है।

चीन या किंगी भी हमसे उन्नत का एकमात्र यही उपाय है कि हम देश को आर्थिक दृष्टि से मजबूत कर और हमारे पास एक उद्योग हो, जहाँ आधुनिक प्रकार के हथियार तैयार हो सकें। तब ही हम विदेशों पर निर्भर नहीं रह सकते। चीन ने अपने यहाँ भारी उद्योगों का विकास का प्राथमिकता दी। आधुनिक शस्त्रास्त्रों के सामग्री भी भारत का उत्पादन करनी ही आवश्यकता है। सैनिक दृष्टि से भारत कमजोर देश नहीं है। तब ही हमें भी हमारे सामग्री तैयार करनी है। परंतु सत्कार की बन्नी से तैयार करना भी तब तक इच्छा नहीं करनी है जब तक उम देश में भारी उद्योगों की मजबूत प्रवृत्ति न हो।

यथा हम विदेशों से सहायता लेनी चाहते हैं

तो हमें यह भी जानना है कि विदेशों से सहायता हमें तब तक सहायता देना को तैयार हो जायगी। परंतु उम यदि अस्मिता या योग्यता आधुनिक शस्त्रास्त्रों की सहायता लेते हैं, तो उमसे पहले तैयार पैसा होना ही चाहिए। ज्ञान होना चाहिए कि शस्त्रास्त्रों के विभागात् बड़े पैमाने पर, अपनी विजयी एवं स्वरोपार्ण देश पर शोधने लगते हैं। वे अपना मान के सामान्य मूल्य मँगाने हैं। किन्तु देश के सत्कार से हो जाने का सम्मानता लाभ उठाते हैं। यथा हमारे विश्वभर में अपनी अर्थों को शोधने के लिए कुर्यात है। उमसे बचन का एकमात्र उपाय, एक दिशा में स्वायत्त बचन है। किन्तु चीन का विकास अक्षय्य है। हमने उम समय उमके सामने मैत्री का हाथ बढ़ाया— जब अविनाश दश उमके विनाश की थे। किन्तु हमारी मैत्री का उत्तर चीन ने

हम पर आक्रमण करके दिया ।

कि तु हम सनिक दृष्टि से हर आक्रमण का मुकाबिला करने मे समथ है ?

वेशक अब तो आवश्यकता इस बात की हे कि हम देग को हर दृष्टि से आक्रमण का मुकाबिला करने मे समथ बनाये ।

लेकिन क्या इस स्थितिमे भी हम तटस्थता की नीति को अपनाए रह सकते है ?

यदि हम ऐसा न करेगे तो भारत के महत्व को ही खो देगे । तटस्थता को छोडकर और कोई नीति हमारी प्रतिष्ठा के अनुकूल नही हो सकती । न हम सनिक सहायता के लिए दूसरो पर निर्भर रह सकते है । पहिले हम इसी प्रकार की महायता के चक्कर मे पडकर अपनी आजादो खो चुके हे ।

आपका क्या खयाल है कि स्वतंत्र पार्टी का सगठन देश क लिए हितकर होगा ?

नही हो सकता । उसमे कुत्र पुराने लोग सम्मिलित हुए है, जो जपर से देखने मे तो बुद्धिमान प्रतीत होते हे पर वे आधुनिक ससार की वास्तविकता से सबधा अनभिज्ञ हे । हम सहअस्तित्व की नीति पर चल रहे है । इसी से ससार मे शांति स्थापित हो सकती हे । चीन ने इस नीति को क्षति पहुँचाई है, तो भी हम इसी नीति पर चलते रहेगे ।

नए युग के युद्ध ने राष्ट्रों की रक्षा का दृष्टिकोण बदल दिया हे । आप चीन ही की बात लीलिए—वह चीन जिसे च्यांग काई शेक का चीन कहते हे, अपने ही हाथो से नष्ट हो गया । उसका ऐसा पतन हुआ कि अमेरिका ने कम्युनिस्ट चीन के मुकाबिले के लिए जो सभ्य सामग्री भेजी, वह कम्युनिस्ट चीन के हाथो बेच दी गई । उसकी मुद्रा का मूल्य शून्य रह गया । उन नोटो से कोई चीज नही खरीदी जा सकती थी और वे नोट आग जलाने के काम मे लाए गए । कम्युनिस्टो का चीन पर कब्जा हो गया और च्यांग काई शेक को वहा से भागना पडा और अब वह फारमोसा मे अमरीका की शरण मे छिपा बैठा हे ।

हमारे देश मे स्वतंत्रता आई और अपने आचल मे दुनिया भर की बुराइया लेती आई । हमने आज तक यह जाना ही नही कि हम स्वतंत्र हो गए हे । न हम आज तक यही जान सके कि हमारा देश के प्रति कत्तव्य क्या है ? हम तो अब केवल अपनी स्वाथसिद्धि ही मे लग गए ।

आप समझते है कि अनतिकता हममे अपने ही भीतर से उभरी ?

आपने क्या देखा नही कि हमारी योजनाये लाखो, करोडो, अरबो तक जा पहुँची हे, पर तु पूरी एक भी नही हुई । आप बता सकते हे इसका कारण क्या है ?

आप ही कहिए ?

स्पष्ट है कि उपरस नीचे तक ओटोमो वैसे तब हिंदी भी सहायरी कमचारी का मन गया भाव, वक्त य आर विरूप भ्राता ग पूर्ण है। प्र यक वर्तमान कमचारी वी तईमानी का पत्र गम्पूण भारत हो भोगता पारता है। भा ती वह वेईमानी छोटी हो या बडी। जीवन का प्रत्येक विभाग भ्रष्टाचार ग परिपूण है। प्रत्येक नागरिक दसर को रूतन ही ताक म है। फाल्गु उम समय तक विर्जोत्र पी रहती है, जब तक कि आप रिश्वत नही देते। हर काम का मुआमला लीजिए जिमका रेट भी निर्धा रित है। सरकारी दफारा म इशुमार स्टाफ भरा है पर य कमचारी जानते हे कि वह वेकारी का काम मिटाने हो भरा है, काम करने को रही।

कम्युनिस्ट समार यह भलीभाति जानता था कि कामरेड एम० एन० राय पहिले विदेशी थ, जि ह तेनित ने अपने विस्वास म निया आर यह भी एक समय था जब वह रूस के बडे बडे कम्युनिस्ट नेताओ के आगम । ता समभ जाते थ। तब तेनित ने ही उ ह चीन के लोगो के विचारा का अययन करा कि विण चीन भजा था। लेकिन शीघ्र ही उ ह कम्युनिस्टा के चरित्र और उराओ का पता लग गया और उहाने अपना शुद्ध समाजवादी दृष्टि लोग उनके सम्मुख रगा। उगता एण उ ह यह मिता कि उहे कम्युनिस्ट पार्टी से निकाला जाहर कर दिया गया। तभी उ टोन एक भ्रिययागी वी थी। यथात जून सन् १९५१ की है और यत मरिपयागी उनके पत्र, 'रडिकल कम्युनिस्ट' मे उपी थी।

मई सन् १९५१ के अत म पत्रिग मे घोषणा की गई कि तिव्रत को चीनी सेनाओ ने शांतिपूर्वक स्वतंत्र कर दिया है। यह भारत और चीन के मत्री सम्ब धा म एक कटो के अथ का प्रप था। यह नेहरू की एशिया विनामसी के विपरीत बात थी। नेहरू कम्युनिज्म के प्रति नियमात्र रखते थ तर्थात् यह सामाज्य वि देशों मगठन था। पर तब जब तब भारत को न छुण, तमो नह मरू का प्रिय हो सकता था। यह स्पष्ट था कि कम्युनिस्ट का नेहरू का खुश करन का राता था। पर तु कम्यु निस्ट भी य विनामसी अपनाए हए थ कि जब तक उापी अभीष्ट सिद्धि नहीं हो जाती तब तक उापी करन रहेंगे। विपत्र की शांतिपूर्ण मुक्ति के समभति के अन्त गार चीनी सेनाओं ति बत म प्रतिष्ठ तंगी और साम्राज्यता के पभाव को नष्ट करेगी। तीनी यह भी भांति जानते थ कि अग्रजा के भारत में चल जान के बाद तिब्बत मे कोई विदेशी प्रभाव न था। न ता तक अमरीका की पक्ष थी। उम प्रकार यह भारत पर पोल्ले म प्रहार था तर्थात् नेहरू ता यह रखत दंग रहें थ कि वह जात्रत एशिया के नेत्रत्र म आआत्म तुग के भागीदार हागे और ससार म अतिकता का प्राता वरण स्थापित करने मे स्टापित का हाथ बटावेगे। ति बत मे कम्युनिज्म का प्रति तिधित्व चीन की बढ़ती हुई म यशसित तरगी। कम्युनिज्म का यह नया सनिक रूप

कोरिया मे चीनी पराजय का बदला लेने के लिए एशिया मे और कई अनेक विजय प्राप्त करने का सूचक हे । सभव है कि भारत की बारी शीघ्र न आए पर तु भारत को होशियार रहने की तो आवश्यकता है ही । चीन विश्व का सबसे खतरनाक आक्रामक और विस्तारवादी देश हे । इसलिए चीन की विस्तारवादी प्रवृत्ति को रोकना न केवल भारत की समस्या हे, अपितु अमरीका और सोवियत रूस जसे महान देशो को भी उसका निकट भविष्य मे सामना करना पडेगा ।

आपके रयाल मे क्या रूस को यह बात मालूम है ?

अवश्य मालूम हे और वह इम प्रश्न को नजरअंदाज नही कर सकता । देखा जाय तो चीन और रूस की सीमाएं भारतीय सीमा त से भी अधिक अनिश्चित और अनिधारित हे । इसलिए भारत चीन सीमा विवाद से रूस का चिंतित होना स्वाभाविक है और वह पूरी तरह सजग है ।

पर तु सोवियत रूस और चीन तो परस्पर मित्र है ?

जम्बर हे । पर तु आप शायद यह बात नही जानते कि दोस्ती केवल सिद्धांतो पर निर्भर नही रहती, खासकर राजनतिक मैत्री ।

तो आप समझते हे कि भारत की तटस्थता नीति ठीक है ?

निस्संदेह । हमे यह न भूलना चाहिए कि भारत एशिया का अग्रणी राष्ट्र ह । इसे सोवियत रूस और अमेरिका दोनो ही जानते मानते हे और चीन भी जानता हे । तभी तो चीन भारत मे उलझ रहा हे । वह स्वयं एशिया के नेतृत्व के सुपने देख रहा हे और भारत पर उसके गुम्मे का कारण यही है ।

तब तो भारत यदि अपनी तटस्थता की नीति त्याग देता है तो वह एशिया का नेतृत्व नही कर सकता ?

कमे कर सकता हे ? उदग्र एशिया अब न सोवियत रूस की दासता पसन्द करता हे, न टालर वं प्रती अमेरिका की । वह ता स्वतन्त्र भारत का अनुगामी होकर अपने ही मे सत्रशक्ति सम्मत होना चाहता है ।

त्रिन्तु चीन बौद्ध देश हे । स्वाभाविकतया सब एशियाई बौद्ध देश उसके साथ हो जायेगे ?

माओत्सेनग तो जो जीवित बाढ़ घोषित किया गया है, इसी से आप ऐसा कह रहे हे । यह चीन वास्तव मे न बौद्ध देश ह न बौद्ध हितैषी देश हे । वह तो बौद्ध धर्म के मूल को ही त्रिनाश करने पर आमादा हे । इसीसे उसने वतमान बौद्धो के देश तिब्बत पर अपना प्रहार किया है और दलाईलामा जो सम्पूर्ण बौद्ध जगत मे जीवित बुद्ध माने जाते हे उनके स्थान पर माओत्सेतुग स्वयं जीवित बन गए है ।

पर तु आखिर इसकी जड मे गहरी बात क्या है ?

क्या आप अभी तक नहीं समझे यह बात ?

नहीं, मैं तो नहीं समझा ?

खर तो मुनिग । मैं विस्तार में यह गम्भीर रहस्य आप पर प्रकट करता हू । मन् १६२६ में जब जिजा ने पहिले पहिल भारत की प्रोर से मह मोडकर तुनियाँ के मुसलमाना का एक सगठन पानिस्लाम के नाम से करता ठाना, तभी महामना माल वीय जी ने उस आ दोलन की गहराई पर विचार किया और उन्होने सोचा कि यदि जिजा उस आ दोलन में सफल हुए और उ होने दुनियों के मुसलमानों का सगठन कर लिया तो हिन्दुआ का कही ठौर ठिकाना न रह जायगा । उन्होने एक नई सूझ बूझ का परिचय दिया, कि एशिया के सब उन देशों को, जिनके निवासी बौद्ध है, भारत के प्रति अभिमुख किया जाय—यह बटकर कि भारत बुद्ध का ज मस्थान होने के कारण बौद्ध देजा के लिए पवित्र तीर्थ है । उन्होने बौद्ध गया का उद्धार किया, ताशी में मारनाथ में बौद्ध के द्र की स्थापना की, दिल्ली में लक्ष्मोनारायण का मन्दिर के साथ बुद्ध का मन्दिर भी बनवाया, तथा कि द्मन्गलभा के प्रान्त पत् के निग बौद्धस्थापित को लका से बुला भेजा । उन सब प्रयत्नों का यह शुभ परिणाम हुआ कि समस्त बौद्ध एशिया सांस्कृतिक दृष्टि से भारत के प्रति उ मुग हुआ । जिजा का पानिस्लाम तो महायुद्धों के चक्कर में फसलर हरा टा गया, पर भारत एशियाई बौद्ध देशों का तीर्थ बन गया । इसके बाद जब भारत स्वतन्त्र हुआ तो एशियाई बौद्ध देशों में प्रतिरिक्त और बौद्ध देशों का भी वह राजनीतिक तीर्थ बन गया ।

उस बात का भना चीन का हमें मन्त्र कर सनता था, जब वह स्वयं एशिया का नृपति करने का स्वप्न रग रहा था । सागर पर सागरों में कि उसे सांख्यिक रूप का मानि य विश्वास और राजनीतिक महत्वाग प्राप्त था । उमन विचारों कि पहिल बौद्ध धर्म ही मूलच्छेद किया जाय और उगा निन्त्र पर अपन सूनी पक्षा प्रहार किया । उगा उद्देश्य तर्कानामा के सब प्रभावों को छूट कर देना था, पर तर्कालाभा भाग कर सफा पाप्य भारत में आ गण । भारत ने उ उरगण दी, जो अन्तर्राष्ट्रीय शिक्षा चार था । उग पर चीन भारत में गार गाने गगा और उगा भारतीय सीमाओं का प्रतिरमण करके अपनी रीक्ष उतारी ।

पर तु नहरू का तो यह कहना है कि हम न किगो न शत्रु है न मित्र । केवल पाकिस्तान ही हम शत्रु समझता है और हाई देश नहीं ?

लकिन यदि यही बात है तो हमारा मित्र चीन है ? अत्र तक तो हम चीन और सोवियत सब को अपना मित्र समझते रहे हैं और अमेरिका तथा ब्रिटेन से चीक ने से होते रहे हैं । अब चीन तो सुल्लमखुलता हमपर आक्रमण कर रहा है और हमारा मित्र सोवियत सब उसकी इन आक्रामक वायवाहियों को चुपचाप देख रहा है । वह चीन

की निन्दा करने को तैयार नहीं है। हम अभी तक राष्ट्रमण्डल में हैं, इसलिए सम्भवतः नेहरू उन्हीं देशों को अपना मित्र समझते हैं, जो राष्ट्रमण्डल में सम्मिलित हैं।

लेकिन नेहरू तो निरपेक्ष दृष्टि रखते हैं ?

पर रख कैसे सकते हैं ? जब हमने कुछ देशों को मित्र मान लिया तो अपने आप ही कुछ देश हमारे शत्रु बन गए।

पर हम तो अपने मित्रों के गुट में भी सम्मिलित नहीं हैं ?

तो इस मित्रता से क्या लाभ है, जब वे समय पर हमारे काम न आएँ ? मित्र तो वह जो कठिन समय पर हमारा हाथ दृढ़ता से पकड़े। यदि वह ऐसा नहीं करता तो वह मित्र नहीं। अब आप बताइये, भारत का वह कौन मित्र है, जो यदि आज भारत पर मकट आए तो उसके आड़े आए ?

दूसरे महायुद्ध की समाप्ति पर सोवियत संघ ने कई देशों पर अधिकार कर लिया था। पोलैण्ड, बाल्टिक राज्य, रूमानिया, बल्गेरिया, अल्बानिया, हंगेरी और कोरिया ये सब प्रदेश आज उसके हाथ में हैं। उसने अरब देशों में से सीरिया पर अधिकार करना चाहा और अब इराक पर उसकी नजर है। जहाँ जहाँ उसका अधिकार है, उसने सैनिक शक्ति से अपना प्रभुत्व कायम रखा है, लेकिन अमरीका ने जिससे नेहरू दूर ही दूर रहते रहे हैं किम देश पर अपना अधिकार किया है ?

आप क्या नहीं जानते कि दूसरा विश्वयुद्ध न ब्रिटेन ने, न फ्रान्स ने, न सोवियत संघ ने जीता है। इन सबको तो हिटलर समूचा ही निगल गया होता। उसने तो अमेरिका के आगे ही हथियार डाले। जब हिटलर अफ्रीका तक जा पहुँचा तो उसे वहाँ से निकालने के लिए अमरीका सानमौ समुद्री जहाजों का बेड़ा लेकर वहाँ जा बमका। जनरल रोमेल की सेना दोनों ओर से घिर गई और उसके लिए अपनी सेनाओं को जहाजों में बठाकर डटली भाग जाने के सिवा कोई चारा न रहा। जापान से अमेरिका अकेला ही निबटा। सोवियत संघ ने तो कह दिया कि वह केवल जर्मनी से ही मुकाबला कर सकता है। युद्ध के दौरान में अमेरिका ने और भी कई देशों की सहायता की और कई स्थानों पर अपने सैनिक अड्डे स्थापित किए, लेकिन किसी देश पर अधिकार नहीं किया। यदि हम चीन के विरुद्ध अमेरिका से सहायता लेते हैं, तो उससे हमें यह डर नहीं है कि वह हमारे देश में पाव पसार बैठेगा। वह यदि हमारे लिए युद्ध में कूदता है तो हमारी रक्षा के लिए नहीं—कम्युनिज्म की जड़ उखाड़ फकन के लिए।

नया विश्वशांति के लिए युद्ध अनिवार्य है ?

अब युद्ध निरस देह एक बीते हुए युग की कहानी रह गई है। आज सप्ताह एक नए मोड़ पर आ खड़ा हुआ है। इसीसे रूस और अमेरिका जिनकी पाकेट में अनगिनत विश्व संहारक शस्त्रास्त्र पड़े हैं, अब शांति का मतलब समझते जा रहे हैं और

विज्ञान-संशोधन पर विचार कर रहें हैं। इसका यह मतलब नहीं है कि रूस या अमेरिका प्रेम या अहिंसा की भाषा सीख गए हैं, बल्कि वह यह अनुभव करने लगे हैं कि विज्ञान का उन्होंने जिन ढंग पर उपयोग किया है, उसमें विश्वचय ही उनका सवनाश हो जायगा।

आप समझते हैं कि प्रिना ही युद्ध के दुनियाँ की सब समस्या सुलभ जायेगी और दुनियाँ में शान्ति का साम्राज्य स्थापित हो जायगा ?

समस्याएँ तो युद्ध से भी न ऋभी सुलभी, न सुनभेगी। युद्ध के सदब यही परिणाम होते रहे कि दा परस्पर विरोधी शक्तियाँ टकराती रहें और फिर से सशक्त होने तक चुप पड़ी रहें। शक्ति सचय करके फिर लड़ पड़ें। लड़ने के कारण सदब ही बन रहे। परन्तु अब राजाओं का स्पेच्छाचारी शासन दुनियाँ में नहीं है। जनता का अपने पर शासन है। इसलिए अब तो मानव-समाज को यहाँ विचार करना है कि सब लोगो को जीवन की सुविधाएँ प्राप्त होती रहें। जब तक समाज के जीवन में विषमता है, एक पनी है एक भिखारी, एक सम्पन्न है एक भूखा, तब तक मानव समाज में शान्ति की स्थापना नहीं हो सकती और उसका एकमात्र उपाय है सर्वोदय। सबको एक साथ उन्नति, सबका एक साथ विकास।

क्या भारत सरकार सर्वोदय का कार्य कर रही है ?

भारत सरकारके पास ५५ लाख कमचारा हैं और अबको सरकार खपया है। रूपए की आमद का प्रवाह अटूट है। परन्तु यह गगत का सरकार है, जनत श्री नहीं। इसीसे उसके विकास में बाधा पड़ रही है और उसकी बहुत सी शक्ति भीतरी सघप में समाप्त होती रहती है।

याजनाश्रा को अगनी जामा अभी तक क्या ही पटयाया जा सता ?

उन की कमी स। कही बिना धन के भां कुछ हाता है ? जत्र बिना धन के उन्नति ही आर एक कदम भी नहीं उठाया जा सता हा, ता पजीपति क्यो बुचे है ? हाँ एक बात है। उन का सदुपयोग हो। गांधीजी कल्पना था दूसरा को बरोहर है, सी हाथो समाश्रो और हजार हाथो स बाँटा। अमेरिका का उदाहरण तो, भारत की अपेक्षा बहुत बरो हा भार कम रही। उस पर भी बहुत जने को बडे कारगाने बन गए हैं जि हाणे ससार भर का व्यापार अपन हाथा में ला लिया है।

आपकी समझ में उसका कारण क्या है ?

यही कि उता की सरकार लोगो को अपनी सामर्थ्य के अनुसार अधिक से अधिक कमाओ का अग्रसर देती है। उसके विपरीत अभी हमारा देश अपने पाँव पर खडा भी नहीं हुआ और उस पर उन नीतियाँ के परीक्षण हो रहे हैं जो उन्नत देशों में, जिनकी शय व्यवस्था किसी माग पर ढरह गई है, अमल में लाई जा सकती है।

तो आप समाजवादी सिद्धांतों के विरोधी हैं ?

यदि समाजवाद का यही अभिप्राय हो कि जनता की जेबों में जो कुछ हो निकल कर सरकार की जेबों में चला जाय और सरकार योजनाओं के नाम पर बेरहमी से उस रकम को पेट्ट और बर्झमान ठेकेदारों की जेबों में ठूसदे तो बेशक वह समाजवाद जनता के हित में नहीं है न ऐसी सरकार जनता की भलाई कर सकती है।

आज के भारतीय नवयुवकों के सामने जीवन का कोई उद्देश्य नहीं है न उनमें वह उत्साह और सरगर्मी है जो स्वतंत्रता से पहिले जीवन के प्रत्येक अंग में दिखाई देती थी। दूसरे शब्दों में नवयुवक जीवन की गाड़ी में सवार हैं तो, परन्तु नहीं जानते कि उनका गंतव्य स्थान क्या है ?

आप यह कहते हैं—पर मैं तो ऐसा नहीं देखता। मुझे तो ऐसा प्रतीत होता है कि विद्यार्थी अपने जीवन का लक्ष्य बता रहे हैं। वे रेलगाड़ियों का चलना रोक देते हैं। सिनेमावाले उन्हें रियायती टिकटें न दें तो उन पर दूट पडते हैं, उन्हें क्षति पहुँचाते हैं। पुलिस में टक्करें लते हैं। दश की सम्पत्ति को हानि पहुँचाने में नहीं हिचकते। स्कूलों में कारों में आए दिन हड़तालें होती हैं। वाइसचांसलर और प्रिंसिपल को कमरों में बन्द कर दिया जाता है। कभी कभी तो अत्याचारों का कत्ल कर दिया गया है। यह लोकतंत्र का चमत्कार है। भविष्य की भविष्यवाणियाँ हैं। प्राज्वे विद्यार्थी जो स्कूलों कालिजों में हंगामा करते हैं, हड़तालें करते हैं, कल के कारखानों में, उद्योग केन्द्रों में हंगामे करेंगे और देश को अराजकता में आ पटकेंगे।

अग्रज चले गये पर अग्रजियत हमें दबोचती चली आ रही है। हमारा खान पान, रहन सहन सब कुछ बदल रहा है। हमारा अभिजात्य वर्ग और भी तेजी से उबर जा रहा है। धरेलू जीवन का ढांचा बदल रहा है। पहिले हमारे आनंद और मनोरंजन का केन्द्र हमारा परिवार था। सब हँसी खुशी मिल जुल कर रात को बैठते, खातेपीते, गिनोद करते थे। अब हमारे सामाजिक जीवन का केन्द्र होटल और रेस्टोरेन्ट हो गए हैं। अब हम अपने अतिथि का सत्कार घर में नहीं—होटल में करते हैं। हमारी वेप भूषा तेजी से बदल रही है। पुरुषों के वेश में पतलून ने प्रमुख स्थान ग्रहण किया है। चपरासी और मेहतर भी पतलून पहिनते हैं। स्त्रियाँ भी अधनग्न हो चुकी हैं। आगे क्या होगा—यह अब देखना है। ज्यो ज्यो नैतिकता का स्तर गिरता जाता है, कामुक भावनाएँ बढ़ती जाती हैं। स्त्रियों के अंग नग्न होते जाते हैं। वे अब खुल्लम-खुल्ला सिगरेट पीती हैं। हाल ही में जो नानावती मुकदमा चला है, उसमें हमारे वर्तमान सामाजिक जीवन पर पूरा प्रकाश डाला है। बथ कंट्रोल के क्लीनिकों ने नैतिकता के पतन की ओर एक धक्का दिया है। इस प्रकार हमारा सामाजिक जीवन बर्बाद हो रहा है।

साहित्य में शूद्रों का सम्बन्ध में आपका क्या कहना है ?

शूद्रों के प्रति हमारा दृष्टिकोण है कि वे भी मानव हैं। उसपर मुगल दरबार में विलाम का पूरा प्रभाव है। यहाँ पर सम्पूर्ण रीति-रिवाज ही मुगल दरबार से प्रभावित राजाओं के आश्रित कर्मियों द्वारा निर्मित हुआ। अब आप जब स्त्री-तत्त्व को जीवन-संगीनी बना रहे हैं, उस शूद्रों का अन्तर्गत पत्नी पद रहने ? यदि आप ऐसा करने का सम्भवतः अपना ही पत्नियोग आप पाठ पाठ जाणेंगे।

अध्यापक और रहस्यवाद में सम्बन्ध में आपका क्या कहना है ?

तीन को फासी और जप सपना वातापानी। सब-से प्रगाढ़, महादवी वमा और पत को फासी और प्राचीन अथावा के अथिया का प्राचीन पानी का पत्नी कलम हमें दे, यदि अर्थिकार पाठ। यह काय काय काय है, प्राचीन की वृत्त है, जिसमें हृदय, पीडा, प्रिय और प्राचीन के एक भाव-प्रतिभास का वाक्पित, अमृत्य, अस्थिर और वेगमभी में भरे हुए है। उस अथिया का पठकर पाठक का प्राचीन का आता है, न उसे जीवन को कोई राह मिलती है। वह का अथिया पत्नी है और भाचक का कवि को दयता रह जाता है।

आपने अपने 'स्त्री-गीता और साहित्य का इतिहास' में तो इनकी बड़ी प्रशंसा की है ?

वह प्रशंसा नहीं अतिशय है। रागी-शून्य मन, मन और रक्त का जब विश्लेषण होता है, तो उगम-प्रद-वृत्त का प्रकट करता होता है, पर अभी से राग का अति-प्रमाणित किया जाता है। आप जगत्-मन-सूत्रण-विज्ञान-दाशनिकतत्त्वा का अनुभव है। अज्ञेय-तत्त्वा की गति-मोमाया-वृत्त है, पर तु-उनका-प्रत्यक्ष-प्रयोग-विज्ञान-है। विज्ञान-शास्त्र-ज्या-ज्या-मनुष्य-के-विश्लेष-गता-जाणगा, दाशनिक-शास्त्रों-का-अज्ञेयता-उत्तो-जाणगा। जो-यही-विश्व-मन्य-विज्ञान-में-है-दशन-में-नहीं। इस-विज्ञान-हमारा-अथिया-और-साहित्य-में-विज्ञान-पर-आधारित-होने-चाहिएँ-जिसमें-जीवन-का-विश्व-मन्य-ता, विश्व-ता, प्रगति-ता-मन्य-ता, सगा-ता, रक्त-हो, अनुराग-हो, जयानि-ता, प्रकाश-ता।

प्रगतिवाद के सम्बन्ध में आपका क्या कहना है ?

वाद-में-ही-प्रगति-में-हो-आता-हो-आशा-है। पर-यह-तथाकथित-प्रगतिवाद-का-राज-मार्ग-गुनामी-में-जहाँ-आ-है। सत्-ता-यह-है-प्रगति-के-बिना-क्रांति-हो-नहीं-सकती। सकारण-और-विश्व-दशन-का-प्रगतिवाद-के-जन्मदाता-है। फ्रांस-और-रूस-की-सक्रान्तियों-ने-ही-उन-दाना-दान-के-साहित्य-को-प्रगतिशील-बनाया। आज-के-हिन्दो-के-साहित्य-पर-वास्तव-में-अविज्ञान-अग्रजों-के-पण्डित-है। वे-अग्रजों-में-सोचते-हैं-और-अनुवाद-करके-हिन्दो-में-नियत-है। उसी-उपरो-नेयनी-का-चमत्कार-फीका-

रहना है ।

क्या हिंदी में कोई ऐसा साहित्यकार नहीं, जिसे हम दूसरी भाषा के साहित्यकारों के समक्ष रख सकें ?

नहीं, ऐसा नहीं है । सवश्री मथिलीशरण गुप्त, हजारीप्रसाद द्विवेदी और राहुल जी हिंदी के प्रतिनिधि साहित्य अतिरिथी है । 'मिश्रब धु हिंदी के भीष्म पितामह है, जिनके साथ रामचन्द्र शुक्ल और महावीरप्रसाद द्विवेदी एण्ड कम्पनी ने आयाय करके उ हे पीठे वकेला है । उनकी निस्वाथ हिन्दी सेवा अमूल्य है ।

आप साहित्यकार कसे बने ?

मे जमजात साहित्यकार हूँ । कभी मेने ध्यान से साहित्य का अध्ययन नहीं किया, न मेने उसके नियमों की परवाह की । साहित्य जैसे मेरे जीवन में पहले ही प्रविष्ट था । मे अपन बाल मित्रों को गद्य पद्य में लम्बे लम्बे पत्र अतिरिजित भाषा में लिखा करता था । अपने रचे छ द हारमोनियम पर गला फाड फाडकर गाया करता था । मेरी पहली पद्य रचना सम्भवत सन् १९०६ में लाजपतराय के माण्डले निर्वासित होने पर 'श्रीवक्त्रेश्वर' पत्र में छपी थी ।

आपको गद्य काव्य की प्रेरणा कहा से मिली और आपने पद्य न लिखकर गद्य काव्य हो क्यों लिखा ?

मुझे कभी किसी से कोई प्रेरणा नहीं मिली । मेरे मन में लहर आई और मैंने लिख डाला । मेरी अत वासना ही मेरी प्रेरणा है । बचपन में मैं कविता ही लिखता था । अब भी कभी कभी लिखता हूँ, पर छपाता नहीं । मुझे कविता के लिए तुतलाकर बोलना तथा भाषा के प्रवाह को तोड मरोडकर गठरी बाधना अच्छा नहीं लगता । मेरा विचार है कि साहित्य का नैसर्गिक सौंदर्य गद्य में है, पद्य में नहीं । मैं अप्रतिहत गति से लिखता हूँ, मेरा वेग बहुत है । स्वामी दशानानन्द को मैंने एक रात में एक पुस्तक लिखते देखा था । बचपन का मेरा वह प्रभाव कायम है । और मेने भी एक रात में एक पुस्तक लिखी है । १००-१०० पृष्ठ फुलस्केप के डेर मैंने एक-एक रात में लिखकर किए है । वह वेग अत्र धीमा हो गया है । तब आवेग में लिखता था, अब सोचकर । शायद यही कारण है कि पद्य लिखने में मेरी प्रवृत्ति नहीं हुई । क्योंकि वहां तो भाषा की बाध बूज करनी पडती है, पद पद पर अटकना पडता है । अटक अटककर चलना मेरा स्वभाव नहीं । इसी से मेरे गद्य में ही पद्य का भाव सौंदर्य आगया । यही गद्य काव्य के जम का कारण हुआ ।

आपको लोह लेखनी का धनी क्यों माना जाता है ?

मेरी भाषा के तीक्ष्ण और विचारों की उग्रता के कारण मुझे लोहलेखनी का धनी कहा गया । मेरी स्पष्ट और सीधी तीर सी चुभनेवाली वाणी भी इसका कारण

भावुकता के नाजुक प्रसंगों पर कभी कभी तो मेरी हालत ऐसी खराब हो जाती है कि मैं कई दिनों तक किसी भी बातचीत करने के योग्य भी नहीं रहता। लिखने से पहले मैं कोई तयारी नहीं करता—खासकर कथा साहित्य की रचना में। सिर्फ विराही तत्त्वों का मन में उद्दीपन करता हूँ। सुनगने लगता हूँ, तो कलम उठाता हूँ। फिर वह कलम नहीं, दुःख खाना हो जाता है। मैं आगा पीछा नहीं साधता। चौमुखी मार करता हूँ। ऐतिहासिक उपयासों में मैं ऐतिहासिक तथ्यों को पीछे बक ग्राउंड में फेंक देता हूँ और स्थिर सत्य के आधार पर कल्पना मूर्तियों का आगे न आता हूँ। मेरी वह कल्पना मूर्ति बनती है दृढ़, और ऐतिहासिक तथ्य बन जाते हैं बराती। बस यही मेरे कथा साहित्य का टेकनीक है। कहानी में मैं मानव चरित्र को नहीं—चरित्र के प्रेरक भावों को अधिक विकसित करता हूँ। परन्तु विशद व्याख्यात विषयों पर मैं खूब अध्ययन और प्रमाणों की धूम धाम से आगे बढ़ता हूँ, आलोचक के लिए इतनी सी भी सवि नहीं छोड़ता।

कथा साहित्य से जीविकोपाजन हो सकता है ?

देख तो रहे हो मेरा घर। कोई कल्पना कर सकता है कि यहाँ कोई भला आदमी रहता होगा। परन्तु समाज में जिस आदमी की कोई जरूरत नहीं है, जो न रिश्तों दे सकता है, न सिफारिश करा सकता है, न खुशामद कर सकता है, न तिकडम, यह उस साहित्यकार का जीवन है। असहाय और एकाकी। सन '३६ में मैंने प्रकटिस छोड़ी। तब मेरी ३००० मसिक की प्रकटिस थी। मुलाकात का फीस लेता था। एक बार श्री पुरुषोत्तमदास टण्डन को भी मुझमें मिलने के लिए तीन दिन प्रतीक्षा करनी पड़ी थी। परन्तु मुझे साहित्य और प्रकटिस दोनों में एक वस्तु चुननी थी। मैंने साहित्य चुना। चुना नहीं, उसे त्यागने से इकार कर दिया। इससे और सब स्वयं ही छूट गया। अब मैंने सोलह आने प्रकाशकों की दया पर निर्भर हूँ। परन्तु मुझे दुःख नहीं। मैंने इच्छा दरिद्र पुरुष हूँ और अपनी साहित्य सम्पदा से सम्पन्न हूँ।

आपके मनोरंजन का विषय क्या है ?

उत्तम व्यंजन अपने हाथ से बनाकर मित्रों को खिलाना या बच्चों के साथ गप्पे उठाना।

क्या आप साहित्य से ऊबे नहीं ?

मैंने जीवन से ऊटना नहीं सीखा, उससे खेलना सीखा है। साहित्य मेरा जीवन है, जीवन का शृङ्गार है, उससे ऊबना कसा ?

आपकी सबसे श्रेष्ठ रचना कौन सी है ?

'वैशाली की नगरवधु' जिसपर मैंने अपनी ६० वर्ष की सचित्र चालीस साहित्य-सम्पदा लुटा दी है।'

मेरा मन ही नहीं लगता। दो चार पृष्ठ पढ़ने के बाद ही जी घबराने लगता है। ऐसा प्रतीत होता है जैसे व्यय समय नष्ट हो रहा है। एक बात और कह दू—ताग-शतरज या दूसरे ऐसे ही हल्के भारी खेल भी मैं पूरा मनोयोग से नहीं खेल सकता। दस पाच मिनटमें ही मेरा जी ऊब जाता है। इसी से सदैव इन खेलोंमें बाजी हार जाता हूँ। ठीक वसी ही मनोवृत्ति मेरी उप यासो के पढ़ने के समय हो जाती है। भीड़ भाड़ में भी बहुत घबराना हूँ। मेले ठेके में बहुधा नहीं जाता, कभी कभार मुझे कायबग शहर जाना पड़ता है तो मैं बहद परेशान हो उठता हूँ। शांत, एकांत, निस्तब्ध वातावरण में मैं प्रसन्न रहता हूँ। बहुधा उप यासो के पढ़ने में मुझे भीड़ भाड़ में फँस जाने जसी ही परेशानी अनुभव हाती है। ऐसा प्रतीत होता है कि जस मैं रेलगाडी के ठाठास भरे डब्बे में बठा हूँ—तीसरे दर्जे के डब्बे में—जहाँ कुछ देहाती किसान, कुछ बेटुके से उट पटाग स्त्री पुरुष अपनी अपनी टाक रहे हैं। कोई मुकदमे की चर्चा करता है, कोई घर गिस्ती का रोना रो रहा है, कोई छत्र नइनवेली का लिए प्रेमापलाप कर रहा है, कोई शुक रहा है, कोई खास खखार रहा है, कोई ताश खेलता—बीडी पीता है, कोई हँसता है, कोई लडता भगडता है। स्टेशन आ रहे हैं, एक उतरता है, दूसरा चढता है। मेरी क्या दिलचस्पी हा सकती है भला इन सबसे ? हा, बहुत लोग सहयात्रियों से तुरत दोस्ती गाठ लेते हैं, पर मैं उन सबसे जुदा आदमी हूँ। सदैव ऊब जाता हूँ और जान बचाने को छटपटाने लगता हूँ।

अपने उप यासो की बात बिल्कुल जुदा है। उनका जब कोई भी पृष्ठ खुला किसी भी पक्ति पर मेरी दृष्टि पडी, मेरा चित्त प्रसन्न हो जाता है। मुझे ऐसा प्रतीत होता है जैसे मैं आत्मीयो में आ गया। अपने घर में आ पहुँचा। ये मेरे परिजन हैं, बच्चे हैं, सम्बन्धी, रिश्तेदार, भाईबन्द हैं। अकस्मात् आ मिले हैं। मुझसे मिलकर ये खुश हैं, उनसे मिलकर मैं खुश हूँ। बहुधा मैं दो चार पंने पढता चला जाता हूँ, किसी खास मतलब में नहीं, यो ही जैसे किसी आत्मीय दोस्त से बात करते करते कुछ दूर तक टहलने चला जा रहा होऊँ। यह कुछ विचित्र सी ही बात आपको लगेगी। पर हकीकत यही है। बचपन में 'चद्रकाता' और 'चद्रकाता सतति' मैंने चाव से पढा था। उन दिनों में पाचवी या छठी कक्षा में पढता था। उसके बाद बकिम के दो चार उप यासो में मेरा मन लगा। 'आनन्दमठ' मुझे बहुत भाया। पर वह भी बचपन की ही बात कहनी चाहिए। याडा समझदार होने पर शरत और रवीन्द्र के कुछ उप यास पढे। शरत में मेरा मन लगा, रवीन्द्र के दो ही उप यास मुझे अच्छे लगे 'आख की किरकिरी' और 'कुमुदिनी'। प्रेमचन्द के उप यासो में मेरा मन नहीं लगा। वृन्दावन-लाल वर्मा का 'गढ कुडार' अवश्य मैंने रचि से पढा। 'लण्डन रहस्य' जब रामलाल वमन छाप रहे थे, तब चाव से पढा था। मुझे याद है जब वे एक लाख रुपये के मृत्यु

तीं तोरे की गगती पटन पर तासोगिग परा फिरत न, तब मुभे मो सोरोज का ग्राहक बनत गए न। जो न ही परग भा भन वता पा उमता आरिगत आवाचना तो तभो तभो मरो याया स गुार जातो , पर 'परग' क पाता स मरा परिचय हे और जब जत द्र उतम साथ गत रह त र्ति न भा मुभे या ट। 'पट्टा' का ता मे अचठी तरह जातता ह। उतिस श्रीर तात म विा प र्ति व र त क फारग हतो और उठली चोज मुभे जनती ही नहीं। तागत म तागत न ता ह। जन शासन पर अथा भी नहीं रखता ह, पर भन यता स टि , जन पठ और गमभं ट। उमीग मरी तागतिक हृष्टि ता समीया त्रिप न गई ह। जीगत क प्रत्यत मा ता म दागतित गभोला पर जाचने का आरी ता गया ह। ता म गभा उप याग पात मुभं भान नती, उनती बातो म रस आता नती, पाता नती। गायक उमा फारग मरा हृष्टिगत जीगत की व्याख्या क गभय म उतना पत्र और निगूढ हा गया ट। म उप याग क टर्किा क कुट्टभी नहीं जानता। उस गम्ब त म भनं हाई साहित्य, र्ति ह ता पढा नता। म नती जानता कि विश्व क नामाकिा उप याग तयत उप याग तस तिगता ह। भन यह विद्या कही किसी म सीयो नती है, म उग विषय म कु जाता भी नती ह। वृहा स लाग खाम वर अच, जा अ ययत की हृष्टि उप यासा पर रखत ट, वृथा उमा पकार क प्रश्न पूछत ट तब मुभे जगन सांकीी पत्नी है। अतशत कुट्ट पत्र ता ह। तब या तो वे ताग मर गद्भाज म आ जातं ताग या पाठ मर फरार मरो म्साता और गज्ञान पर टगते होग। फिर भा म अपा उप यासा क तिगत क विषय म ता जानता ही ह। यद्यपि त्रितुता गीत ता गती वता सतता, पर उल्लता ताता सता ह। मप्रसे बडा प्रभाव ता मर उप यासा पर मर हो जीगत ता है। एत र्ति गार मजदूर साता पिता क घर ज म तात क फारग तयत हा म मुभे अभाय क दुआ। मर तनपन के अभाव क स्पश ता गग ता अतक मर तिा पर ट। मरा माता चिररागिगी रही। वह तगभग ट ट उप लागत रहो। यह त् समय था जब मरी गभभ जरा पठ रही थो, म तीगरी चोथी हक्षा म पठ रता था। तब तात माता स मरा परिचय हुआ—अभाव, गता और श्रम।

मंन बहन वार रता वि मर पिता जी रागिगी माता क लिंग समय पर ठीक ठीक पथ्य और आपथ मा न गुटा सतत थ। अ स त आशय हा पर वे हम लोगो को पडांगिया से उधार मांग नां ता मजन और त म नोग गहा से नकार लेकर प्राय लीतते। उन तिनां त्रह अभाव मुभे कुछ विशेष नती रता, पर बाद म तो उसने एक स्थायी दद की उत्पत्ति मरे मन म कर दी। म बालक था, पर एक हृश्य नहीं भूल सकता - जब सब और से नकार अलग कर पिताजी अद्धमूर्छित माता का सिर गोद म लिए जरा जरा पानो चम्मच से उनके मुटु म डान रह थे, तब जैसे वह नकार

मूर्च्छित माता के अतस्तल को भी छू गया था। उन्होंने बहुत यत्न से बहुत देर तक इंगित किया, पर वह इतना अस्पष्ट था कि पिताजी बहुत ही कठिनाई से समझ पाए और तब उ होन सकेतस्थल से दीवार की एक दरार से मँले कपडे मे लिपटी एक पोटली निकाली, जिसमे कुछ रुपये थे। शायद दो चार। उनमे से एक तुडाकर माता के लिए दूध मँगाया गया। दूध तब चार पैसे का सेर मिलता था। पर आज भी मे उस एक पाव दूध की कीमत का अनुमान नहीं लगा सकता। एक पसे के उम दूध के लिए पिता जी को दो घण्टे सघष करना पडा था, बीस जगह हाथ फलाकर नकार प्राप्त किया था। यह था मेरे जीवन पर अभाव का स्पश।

सेवा मेने पिताजी की देखी। चौदह वष निरन्तर अनवरत, वे माता को अना याम ही फूल की डालीकी भाति गोदमे उठा लेते। सेवा, सुश्रुपा, सफाई और जाने क्या क्या उहे करना पडता था, जिसे तत्र नहीं समझा था, बाद मे जीवनभर समझा। यह हुआ मेरे जीवन पर सेवा का स्पश। श्रम हम सभी को करना पडता था। हमारी ५ ७ वष की बहिन प्रौढा गृहिणी की भाति उन दिनों हमारी सारी गृहस्थी चला रही थी। उन्ही दिना मुझे भी अपने हाथ से काम करने और रसोई बनाने का अभ्यास हो गया, जो आज भी हे। इस प्रकार अभाव, सेवा और श्रम इन तीनों ने मेरे बालभाव का शृङ्गार किया।

ग्रब चौथी वस्तु आई विद्रोह। पिताजी आयसमाजी थे। पर अधिक पठित नहीं थे। उनकी युक्तिया लठ के बराबर मोटी होती, वसी ही चोट करती थी। समाज की प्रत्येक रूढि का विद्रोह मेने उ हे करते देखा था और वह विद्रोह मेरे रक्त मे घर कर गया। आगे चलकर उममे साहस ने योग दिया जब काशी और जयपुर मे ब्राह्मण न होने क कारण संस्कृत अध्ययन के द्रोमे मुझे उषे ना और तिरस्कार का सामना करना पडा। इस प्रकार मेे ग्रपनं जीवन की दहरी पर खडे होने योग्य हुआ। मेें एक असा वारण तरुण था, जिसके शरीर मे अभाव, श्रम और सेवा के स्पश चिह्न थे और आत्मा मे विद्रोह का साहम। परिस्थितिवश मेने चिकित्सा सीखली और जीवन एक चिकि त्गरु के रूप मे आरम्भ किया। इस समय मेे चारो तत्व—सेवा, श्रम, अभाव और साहम मेरे त्रेडे काम आए। कहना चाहिए वही मेरे सब कारोबार की पूजी थे।

प्रथम महायुद्ध की समाप्ति पर, मुझे भयानक महामारी इ प्लुएन्जा और उनके बाद प्लेग के दिनों मे प्रतिदिन दो सौ, तीन सौ नर नारियो को भीषण यत्रणाओ मे त्रटपटाते हुए मृत्यु का ग्राम हाते और उनके प्रियजनो के क्रन्दन आतनाद को अति निकट से देखने का अवसर मिला। मेरे जैसे तरुण के लिए, जिसके हृदय मे साहित्य की भावना सोई पडी थी, तीन तीन सौ नर नारियो का नित्य मेरी आँखो के सामने छटपटा कर प्राण त्यागना, प्राण बचाने के भागीरथ प्रयत्नो के बावजूद भी निराश

ताता को सागरग ता।। गी। सा मरी मरुग ताता ता आत कर दिया। मे
 उन ता ता भूती ता गता, असाय २००० श्री र उतर म रात तिन एक के
 सा र्गुम सासाति रागिया ता रासा, उप तार रसाप ता सा। हाई हाई मृत्यु तो
 अतिशय भयानक, हृदयविदारक समा ता पाता ता ताता हाती थी। उन दिनों तक
 भी मेरा साहित्यकारभाव गारहा सा मरता पात्रम था। यद्यपि कुछ न कुछ में निश्चिन्ता
 रहता था, पर उप याग या तानो नती। तिति याया सासाजित तुरीति सम्ब वी लख
 लिखता ता। चिन्तित्य ता ता ता या सायसमाजी तान के तात उन त्पेना विपयो
 पर मरी तत्रम चरती रहती गी। तातापर ह 'पताप म हभी कभार मर लेख छप
 जाते थ। उन दिना म अजमर म प्रतिग्न कर र ता। मरग पथम कथा का रूप मेरे
 उम एक तख ता राग्य दिया जा मेन एक मारता ता अड सट क साय एक तालिकास
 त्रिभाह क त्रिभाह म दिया था। पर ता परिाह ताना ता गी-गन्धी पटना थी। 'प्रताप'
 मे वह श्पी श्रीर उमपर ता सागा मना। उमी ह ता पता ता श्रीर प्लेग न
 मरी चेतना तो आत दिया और भी उती ता अप ता साग पटना उप याग लिता।
 उममे मेन ग्रथ ता मर्मा तन रोग और उपाण जा ह रोग तिम हसा क त्रिवरण दिण,
 जो मेर आया था थ। म मर तिन तिता ता सा थ। उ पटना भी पृथक त्रिवरणो
 म निगा, फिर प यत क चीत नीत या चार चार टकरे कर ता। उन दुःखने के बीच
 म दूसर प्रसंगो क दुःख तातकर मेन उम पर त्रिवरण मअर ता उप याग ता सा रूप
 ट उता। यह रूप इन म मरा यात तातकान म पति 'पता ता मर्तान' की पद्धति
 पर के द्रार रहा। उमी ह अाकरण पर भी ता त्रिवरण सण्य ता परस्पर बीच मे
 तातकर मर दिया। आरम्भ म एक त्रिवरण ता एक ह य, फिर उम अातर दूसरे,
 तीसरे, चाश्च त्रिवरण क मधुर अज। फिर ती पृथका पाग ता ताता। भी प्रकार पूरा
 उप याग तयार ता गया। उमी ता ताम भी रसा ता पाय "पाय त्रिभाह"। उन
 दिना 'पताप ह मा यम म मेरा परि ह्य याग र था तग्य ता पातोमान म हो गया
 था। उती ता यह तासाथित उप याग म। छपता ह ताण मज रिया। उम उहाने
 सायद तापरवाही म ततो ता रिया, पो श्मूवाता तीति ता ताण रिति नती रोग गडी।
 उम प्रकार मर उम तयाथित प्रथम उप याग रूपा जिज्ञासा मम म ती प्रपात होगया।
 उनके रोग जात का इरा रहल दुःखा। पातासा ता मित्रमित्र भी बरत हई। पर जो
 रोग गया, वह रोग गया। फिर भी उमरु रीगल पाया ह मर मासाप न पर गहरा
 प्रभाव छोटा ता। र का का-परिाह पाता थ। मे अति तितर म उता देया था
 उर्गातण त्रहुत दिन तक उन ह रगाथित्र मर ताता म चमता रह और मरी मतावृत्ति और
 चेतना म उप याग। ताती भूमि ता प्रनाने तम। बहता साचन तगाता, यदि यह न होकर
 बह होता, ऐसा न करने ऐसा त्रिया जाता तो कर्ताचित ऐसा न हाता। यद्यपि ये सब

विकल्प चिकित्सा से सम्बन्धित थे, पर उनमें से कल्पनाएं मृत हो उठीं। इस प्रकार आखी देखे सच्चे रेखाचित्रों के साथ ही साथ काल्पनिक रेखाचित्र भी उभरने लगे। वे अधिक सशक्त थे, प्रिय थे। इससे सच्चे घटित रेखाचित्रों के ऊपर काल्पनिक चित्रों की प्रतिष्ठा मेरे मानस में होती चली गई। इस प्रकार अभाव, सेवा, श्रम और विद्रोह में दो वस्तुतत्व और आ मिले—वेदना और कल्पना। वेदना सत्य पर आधारित थी और कल्पना वेदना की प्रतिक्रिया स्वरूप। पर तु इसमें कहीं उपयास तत्व पनप रहा है, यह तब भी मैं समझ नहीं रहा था।

इस समय मेरे एक मित्र अतिथि रूप में मेरे घर आए। वे कोई साहित्यिक न थे, साहित्य रसिक थे। उ होने मेरी कारोली का कोई उपन्यास तभी पढ़ा था। एक दिन रात को बातों ही बातों में उ होने मुझे उस उपन्यास का पूरा मसौदा जवानी कह सुनाया। उसमें मैं इतना प्रभावित हुआ कि तत्काल ही उसे मेने अपने टग पर लिख डाला और वह मेरा प्रथम उपन्यास बन गया, जो बम्बई में श्री नाथूराम प्रेमी ने 'हृदय की परख' के नाम से छपा। बाद में उसके दस बारह संस्करण हुए। अपनी इस प्रथम रचना को देखकर मैं बहुत प्रसन्न हुआ था।

चिकित्सक के नाते धीरे धीरे राजस्थान के राजवर्गजनों से मेरा सम्पर्क बढ़ा और शीघ्र ही नामांकित राजा ठाकुर जागीरदार महाराजों के रनवास में मेरी पैठ हो गई। चिकित्सा का काय कितना नाजुक और रहस्यमय होता है, यह कदाचित्त सब लोग नहीं जानते। बड़े बड़े अनहोने चित्र और मानव चरित्र मेरे सामने आए। बड़े बड़े पेचीदे मामले मुझे सुलभाने पड़े। बहुत से राजा, महाराजाओं के, रानियों के, तथा अति सम्भ्रान्त प्रभावशाली जनो के भीतरी आतनाद, दुबलताएँ, मूखताएँ, कुत्साएँ मुझ पर प्रकट होने लगीं। लोगो के सम्मुख वे महामा य, शान और ऐश्वर्ययुक्त प्रभावशाली पुरुष थे, पर तु मेरे निकट वे अति दीनहीन निःकृष्टतम व्यक्ति थे। उन दिनों दजनों बड़े बड़े सम्भ्रान्त पुरुषों स्त्रियों की इज्जत आबरु मेरी जेबों में पड़ी रहती थी। कुछ राजा महाराजा, रानी महारानियों की ही नहीं, बड़े बड़े अनेक पुरुषों, प्रसिद्ध नेताओं, राजपुरुषों, त्रिद्वानों, अध्यापकों, हाईकोर्ट के महामा य जजों, करोडपति सेठों की अपनी वामनाएँ, कुत्साएँ, दुर्बस्थाएँ, मूखताएँ, दुर्भिलाषाएँ हिसक प्रवृत्तियाँ मेरे सामने नग्न होने लगीं। वे एक दीन, हीन भिखारी के समान मेरी कृपा के याचक बन मेरे सम्मुख आते थे। इनमें से बहुत सी बातें बड़ी चमत्कारिक असाधारण, प्रभावशाली और कभी अति भयानक, जद्य अपराधों की सीमाएँ लाघ जाती थीं। मुझे इन सबको अतान्त गोपनीय रखना पड़ता था, भारी भारी व्यवस्थाएँ करनी पड़ती थीं, असाधारण उद्योग करने पड़ते थे, जिन सबका मेरे मन पर कभी कभी इतना दबाव पड़ता था कि बहुधा मैं असमय हो उठता था। इन सब बातों ने और दो नए तत्वों को मेरे

मानस पर रीतिरिवाज प्रियतम प्रारण्यम । यत्र भवति तत्र नानुत्तर आठ तत्र
 कर र प्र गभात, तात, अम, ति, त, ता त पता प्रियत गौर गयम । यद्यपि इत
 समय तत्र भी म री उत्तम उपयाग तिरिगता था पर य तत्र मरे नित्य के
 जीवत म श्रोत प्राप्त रते थ तिरिग मुभे ताही गाय यकता पाली रहती थी, अपने
 गम्भीर गौर जस्ति व्यग्रमाय म । मरे पत्यत तस्त हा रसन ता मरा अपना एक
 रतत त ही दृष्टिकोण त गया ता ।

त्रचपा म त्राद्वयग त हान त तारग जयपुर और तनारम म मुभे जाति अभि
 मान का विहार होता था । त अपसात मुभ गता हा ताण आगत तर गया, कभी मै
 उमे भूना नही । तगात गात गात य भावना त रि ज हत म त्रनिय हैं, मेरा ममत्व
 क्षत्रियत्व पर उमर गया । त्रचपा ही म एत आती ती परतक मवात का इतिहास
 ही मे मरे हात गा तगी थी । आगर म त्र ही थी । उम मने दृजार, पाच सौ बार
 पडा होगा । उन ति ता रात ते म हाता पिताजी का उमे प कर गुनाया करता था ।
 उसमे त्रिगित वीर त्रित क्रुड एम मरे मता पर यतिता । गण और मरे मन के क्षत्रि
 यत्व का ममत्व उांमे मित्रहर त्र एम मरे उमम उ पा त हर गया कि इस समय
 भात व्यस्तिकरण म समय होकर म राजपूत शीय और उत्सग के रेगचित्र कहानियो
 मे तिहित करत लगा । मरी राजपूत त्रातारग तौ हटानिया सूत्र उभरी । राजपूती
 ता त्रगान त्रत त्रत रमाभाति ती राति पर मरे त म मुगत त्रैभत पर स्पट गई
 और उम पहात मगत जीवत पर त्रिगा त्र त्रतानी । मरी हटानिया भी सूत्र प्रौढ हा
 गत । परन्तु त का इस्तखो पर उपयाग त्रिगाता मरे त्र का हाम न था । लेकिन
 मेरे मास अणपर म त्रतक आठ त्रता म गया त त त्रिग गौर आ मिला और
 उमक साथ ती त्र त्रगुण भी आ तीय और त्र त्रार । राजाया त्र वैभव भी मै
 त्र त्रिगा देग रता था । मरी त्र ती । तात त्र तात राजम ता म त्र चुकी थी,
 जहा मुभ अहा ती भाजत त्रता तातग तातग सतत यरा रते थ । याली मे
 सादसात हटाण्या म त्यजत परम जान थ । राजा त्रम अति ता मरुकी भाति
 ता ता त्रता त्रता । प्रभात म पा हाण मुभ जम रि ता त्रिग य सत्र वात कम
 प्रभातानी ती थी । गाग त्रम त्रिगा त्र ता हा एम मरुता रम मरे मानस पटल
 पर त्र गया त्रि उम मरे अपता त्रतिया म ताता हाया र त्र ता । एक रोगिणी
 गा ता मारी ता त्रते जत्र मै शा तपुर म प त्र ता ती मे रगा मती कृजाते के समान
 परिधान म एक प्रहार ते त्र त्रगो त्र त्रम त्र त्रो यो और त्रता अग पर लाखो
 रपया के जातरान थ । जता त्र त्र मातो मै त्र कमा त्र दय थ, अग्रूरे त्रराबर ।
 'दुःखता में मासो रहें' कृताती म मने उमी राजतुमारो त्रो, उमो मारे ही श्रद्धार
 वितास सत्ति, अपने पाठको ते सम्मुख ला रण किया है ।

आर्थिक अस्थिति मेरी सुधर रही थी, नोटों के गठुर मेरी जेबा में आ आकर ठम रह थे। पर मैं नहीं जानता था कि उन्हें कैसे खर्च किया जाए। रहने महन मेरा अभी भी साधारण व्यक्तियों जैसा था और उस वातावरण में, जब बड़े बड़े लोग मेरे सम्मुख दयायीय हो रहे थे, मेरी सहायता के भिखारी थे। यहाँ तक कि जब युवक राजा का विवाह होना है एक बहुत बड़ उन्नतवारी की कुमारी से, लाखों का दान दहज नगर में महीनो जशन, धूमधाम, मगर तरुण राजा एकांत में मेरे सम्मुख खड़ा होकर आखों में आंसू भरकर त्रोर हाथ जाडकर कहता है— आज मेरी सुहागरात है मेरी लाज रख लाजिए। नई दुलहिन का सामने जिसमें मेरी लाज रह जाए, दया कीजिए, मैं जिसी योग्य नहीं रह गया हूँ।' भला कहिए, यह कितनी प्रभावशाली बात थी। ऐसी ऐसी अनेक घटनाओं ने मेरे मन का 'अह' जगा दिया और तब मेरी कलम उपयास के रूप में 'अह' का चित्रण करने लगी। मेरा दूसरा उपन्यास 'हृदय की प्यास' और तीसरा 'आत्मदाह' मोनह गाना 'अह' है। उसका केवल परिधान ही उपयास का है। परंतु जसा कि मैं कह चुका हूँ कि रजवानों का पिनाम और ऐश्वर्य का अभी मैं साक्षी ही था, अपना जीवन मैं साधारण ही व्यक्ति था, त्रिलाम ने मेरे जीवन को स्पश नहीं किया था। इसीसे इन दोनों उपयासों में मेरे 'अह' में विलास ही नहीं, वही अभाव, श्रम, सेवा और विद्रोह, कहीं कहीं साहस का पुट। मेरा यह 'अह' दलितों का सरक्षक भी हो उठा। इसी भाव से प्रेरित होकर मैंने 'अमर अभिलाषा उपयास लिखा, जो अब 'बहने गामू' के नाम से छप रहा है। इसमें केवल हिंदू विधवा की हिमायत है। मेरे यह तीनों उपयास उपन्यास तत्व में अपूर्ण हैं, क्योंकि तब तक मेरे मस्तिष्क में उपन्यास तत्व परिपक्व नहीं हुआ था। मेरा गुरु तो कोई या ही नहीं, केवल ज्यो ज्यो मेरा जीवन नए मोड़ लेता जाता था, मेरी प्रतिभा भी अपना काम करती जाती थी। इसीसे ये उपन्यास अति साधारण कोटि के थे।

बम्बई प्रवास काल में एक सेठानी का मैंने देखा, जिसकी आठनी में सच्चे मोती टंके थे, पर वह आठनी सिर के तेल की चिकनाई से जगह जगह गंदे दागों से भरी थी। एक सेठानी को देखा, जिसका वजन साठे तीन मन से भी ऊपर था, जो अस्ती गज कपड़े का घाघरा पहनती थी और जब कभी बाहर निकलती थी तो दो ब्राह्मणियाँ उसके शरीर को चोने और में थामे रहती थीं। एक रायबहादुर मठ थे, जिनका नीचे का मोटा होठ नीचे लटकता रहता था और एक नीकर उनके साथ केवल इसीलिए तनात रहता था कि तत्पान करते—मापने (होठ भीतर)। एक सप्ताह बहारों की जूठी चिलम पिया करते थे। एक सेठ ने अपनी पत्नी की अस्वस्थता का समाचार पढ़कर उनके पीहर मारवाड में मुझे देखने भेजा। मैंने देखा तो रुड़ा—नपेदिक है। उसके पिता को मेरा यह कहना अच्छा नहीं लगा। लडकी को हठपूर्वक पीहर में रखा गया था और यह उनके खयाल

मरता। उदासी ही पाया था। और जो गाथा समाजिता पाएगा वो मुझसे ला भिगाया, जिसे आपसे भी रहा। और जो मुझसे सब त जगत ही, गंगा ता रग रग और पींग पाकर। उस काम में मरता था। और फिर फिर उसी दिन गंगा और उहोन मुझे विदित्वा नहीं करती। गंगा के दूधो उता राग में मर गई। उन सब बातों ने मरे मन में प्रतीक कृत्वा और सामाजिक कठिनाई का विद्रोह उत्पन्न कर दिया। उसी से प्रेरित हो मैं 'चाँद' का 'पाएगा' विचारण सम्पादित किया।

हिन्दी साहित्य में मरी मरत और सप्रतिम यापन उपयाम 'सोना और खून' की प्रष्टभूमि क्या है ?

मोन का रग पीला होता है और खून का रग गुला। पर तासीर दोनों की एक है। खून मनुष्य की रगा में प्रहता है और सोना उमक उपर तरा हुआ है। खून मनुष्य का जीवन रत्न है और मोटा उमके जीवन पर खारा जाता है। पर आज क मनुष्य का खून पर माह पती है, मोटे पर है। वह एक एक करती मोन के लिए अपने शरीर की एक एक रत खून प्रदान पर आमादा है। मोनता सजावन लिए वह सोना चाहता है और उमके लिए खून प्रदानकर वह जीवन को खार में पाता है। आज के सम्य समार का समक रग गरीबार है, सबस बाग रत है-खून देना और सोना लेना।

सोना और खून हमने देते देते मनुष्य को मनुष्य का सबसे बड़ा खतरा बना दिया है। उमका समके बाग दुर्भाग्य यह है कि वह बुद्धिमान है। सोना और खून के उम काराबार ने हमके गार बुद्धिजन को उमके अपने ही विनाश में लगा दिया है और अब विनाश ने उसे चार और संधेर दिया है। जिसका रहनेकी उमकी सारी चेष्टाएं ही अब हास्यास्पद हो गई हैं।

समय युग का आत्मी मन का भीरा समजोर, और आत्मी था। वह जो दरता था उमकी समभता था। और गाथा को फिर विदित्वा, भावनाओं और अलौकिक पूजा का म विधानि गाथा पर पश्चिम पर विगाया रग रग की उपायना करता रहा। वह गाथा पर प्रदे प्रष्ट र उमका विचार का विनिमित्त हुई। मन शरीर का महायुक्त रता, विचार और परिश्रम एक ही क्षण, मनुष्य को उपायि का संपादन हुआ कि उम मोठा मित गया और उमके नतात की खूब गाथा का रत आरम्भ कर दिया और शतों की खुने का प्रसार युगा में आ गया।

सी समय उमके देव के रूप में उप युग का गया दरता मिला। उस देवता ने उम सम्य युग में जम पार, नियों के रत दरताओं को पीछे धकेल दिया। आज वह समार का मर मनुष्या का समके प्रडा देवता है। असम्य युग में असम्य जातियों ने कभी भी किसी देवता का उपायि भारी तरहवि न दी थी, जितनी उस समय युग में इस खूनी और दरवार देवता को मनुष्य ने दी है और देता जा रहा है। उस भयानक देवता की

खून की प्यास का मानो अन्त ही नहीं है। बलिदान की पुरानी तलवार के स्थान पर मनुष्य ने अपना सारा बुद्धिबल खच करके एक से वढकर एक खूनी हथियार इस देवता को नरबलि से सन्तुष्ट करनेको बनाया है, जिनका प्रदशन गत दो महायुद्धोमे हो चुकाहै।

मेरे इस उप यास के पथम भाग मे खास तौर पर १८वीं शताब्दी के अतिम चरण पर प्रकाश डाला गया है। १८वीं शताब्दी के अतिम चरण मे सम्भ्यता ने कर वट बदली और उसके प्रभाव से जो हवा पश्चिम मे बही, उसने भारत को भी झू लिया। स्वतन्त्रता, समता और मनुष्य मात्र के ब धत्व की एक धीमी हलकी आवाज सभ्य ससार मे उठी और दुनिया ने देखा कि अमेरिका ने बिना राजा का नया राज्य कायम कर लिया है। फ्रांस ने अपने राजा का मिर काटकर प्रजातन्त्र की स्थापना कर ती। इमो आधे यूरोप के कान खडे कर दिए और लोग नए दृष्टिकोण से मनुष्य के अधिकारो को देखने परखने लगे। राजनीतिक क्षेत्र म इस क्रांति ने मानव उन्नतिके एक युग को पूरा कर हमरे युग की सीमा मे धकेल दिया।

अन्तीसवीं शताब्दी के आरम्भ ही मे दुनिया के जीवन का नया दौर शुरू हो गया। भारत और योरोप—सबत्र उन दिनो खूनखराबी का बाजार गम था। इनदिनो ब्रिटेन विश्व का राजनीतिक नेता बन रहा था। नई दुनिया प्रकट हो रही थी और ब्रिटेन यूरोप की अय उद्गीव जातियो को पीछे धकेल कर उनपर अपना राजनीतिक प्रभुत्व स्थापित करने की प्राणप्रण से चेष्टा कर रहा था।

इस नाग दौर मे अंग्रेजो ने दो महत्वपूर्ण काय किए। एक यह कि उन्होने वेनेडा और आस्ट्रेलिया के सीमारहित विस्तार पर आधिपत्य स्थापित कर लिया। दूसरे उनकी केवल एक व्यापारिक कम्पनी ने बीस करोड भारतीयो पर विजय प्राप्त कर ली थी। ससार इग्लड के दोनो कामो को आश्चयचकित होकर देख रहा था। उस समय अंग्रेजो ने यह नही सोचा था कि क्लाइव और हस्टिंग्स ने यह सृष्टि क्रम से विरुद्ध घोर कम किया है, जो एक शताब्दी की प्रत्यक्ष सफलता के बाद अत मे निष्फल हो जायेगा। उम समय वे समभते थे कि हम भारत म पूव और पश्चिम के मेल का सूत्रपात कर रहे है। परन्तु आश्चयजनक बात यह थी कि उस काल मे एक और जहा ब्रिटिश राष्ट्र का एक हाथ भूमण्डलके भविष्य की ओर फल रहा था, और जो यूरोप और नई दुनिया के बीच मध्यस्थ का पद ग्रहण कर रहा था, उनका दूसरा हाथ अत्यंत प्राचीनकाल की ओर फलता हुआ एशिया का विजेता और महान मुगल साम्राज्य का उत्तराधिकारी बन रहा था। एक तरफ यह एकही कालमे एशियामे स्वेच्छाचारी और दूसरी तरफ आस्ट्रेलिया म प्रजासत्ता परायण। एक तरफ पूर्वम समारकी सबसे बडी दो शक्तियो इस्लाम और हिन्दुओ के मस्जिदो और मदिरो का सरक्षक और दूसरी तरफ पश्चिम मे स्वतंत्र विचारो और आध्यात्मिक मत का सबसे बडा समर्थक, एक तरफ मध्य एशिया मे रूस

रकमे देकर उससे सैनिक मदद लेते रहे। कभी एशिया से, कभी अन्य देशों से। इतनी कमजोरी होगेपर भी अंग्रजों ने भारत के बड़े भाग को जीतने का बंदोबस्त किया, जहाँ का क्षेत्रफल दस लाख वर्गमील और जनसंख्या बीस करोड़ थी। इस समय योरोप ही की लड़ाई के कारण ब्रिटेन इस कदर कजदार हो गया था कि वह कभी अपना कजा ही नहीं चुका सका। परंतु भारतीय युद्धों ने न तो ब्रिटेन का राष्ट्रीय ऋण बढ़ाया, न हानि का कोई क्षतिपूर्ति पीछे छोड़ा।

सन् १७७३ ई० में जब पहले पहल ब्रिटिश भारत बना, तो कम्पनी की सेना में उस समय ६,००० अंग्रज और ४२,००० देशी सैनिक थे। इनमें भी अधिक व नाविक थे, जो तटवर्ती जहाजों के काम से बुलाए जाते थे तथा जिन्हें एजेन्ट लोग बहका कर इंग्लैण्ड से कम्पनी के जहाजों पर तिया लाते थे। हकीकत तो यह थी कि अरकाट, पलासी और बक्सर के युद्धों में योरोपियन की अपेक्षा भारतीय सिपाही ही अधिक थे, जो अंग्रेजों के समान ही उत्कृष्ट सैनिक थे। यद्यपि यह सच है कि अंग्रेजी सेना ने अपने से दस गुनी भारतीय सेना को हराया, पर उसका कारण वीरता नहीं थी, व्यवस्था और सैनिक विज्ञान और साथ ही रणनीति भी उसका एक प्रमुख कारण थी। ऐसी अवस्था में यह नहीं कहा जा सकता कि अंग्रेजों ने भारत को हराया। कहना यह चाहिए कि भारत ने स्वयं अपने को हराया।

भारत के पराजित होने का एक अन्य महत्वपूर्ण कारण भी था। वह यह कि उस समय भारत राजनीतिक ज्ञानपूर्ण कोई राष्ट्र न था। उन दिनों भारत नाम केवल एक भौगोलिक सत्ता का था। इसी से भारतपर अंग्रेजों ने आसानीसे अधिकार कर लिया।

जिस तरह नेपोलियन ने देखा कि मध्य योरोप में विजय प्राप्त करने के साधन तयार हैं, उसी तरह भारत में अंग्रेजों से पहले ही फ्रेंचों ने यह देख लिया था, कि भारत में साम्राज्य स्थापना करने के लिए किसी भी योरोपियन राष्ट्र के लिए माग खुला पड़ा है। उनकी पत्नी बुद्धि ने यह भाप लिया कि भारत की अवस्था ही ऐसी है कि वहाँ पर भारतीय राज्य दूसरे में लड़ता रहता है। इसलिए उसने यह नीति अपनाई कि उनमें भ्रष्टाचार के बीच में पड़कर तुल्य भारता कायम करे। सबसे पहले निजामुलमुल्क की मृत्यु के पश्चात्, हैदराबाद राज्य के उत्तराधिकारी बनने के लिए जब युद्ध छिड़ा तो फ्रेंचों ने उमभ्रष्टाचार किया। यह घटना १८वीं शताब्दी के मध्य भाग में हुई थी, जिन दिनों भारत में नितान्त राजनीतिक मृतक अवस्था थी, जो पूरे १०० वर्षों तक कायम रही—जब तक कि १८५७ के विद्रोह को कुचल कर ब्रिटेन ने भारत को अंग्रेजों साम्राज्य के शिकजे में बसकर न बाँध लिया। इसी से यह चमत्कारिक बात हुई कि अंग्रेजों ने भारत को उन सेनाओं से जीत लिया, जिसमें औसतन एक अंग्रेज सैनिक के पीछे पाँच भारतीय सैनिक थे।

गरीब घर का छोटा सा लडका बोनापाट एकतंत्र स्वतंत्र हो अविभाजित योरोप पर बिना मित्रों और मित्रों जेब में एक पाई रखे अविभाजित कर ले और मन्त्राट बन जाए। भारत में भी हेनरग्लो मित्रिया और होलकर का उत्थान वसा ही आकस्मिक और आश्चर्यजनक था। उनके पास तो ईस्ट इण्डिया कम्पनी के बराबर भी साधन न थे। इन सब बातों पर विचार करके हम कह सकते हैं कि भारत पर अंग्रेजों की विजय एक राज्य पर दूसरे राज्य की विजय नहीं थी। न इस घटना से भारतीय राज्य का ब्रिटिश राज्य से प्रत्यक्ष सम्बन्ध था। यह आकस्मिक भारतीयक्रांति थी, जिससे अंग्रेजों को लाभ उठना था।

ईस्ट इण्डिया कम्पनी का योरोप के साथ बनिष्ठ सम्बन्ध था। इसी में वह भारतीय युद्ध में योरोप की सैनिक व्यवस्था और विज्ञान काम में ला सकी, जो स्पष्टतः भारत के सैनिक विज्ञान और व्यवस्था से उत्कृष्ट था। फ्रैंच डुप्ले ने इस महत्व की बात को ठीक-ठीक समझ लिया था। उसने यह भी जान लिया कि देशी सेनाएं योरोपीय सेनाओं के सामने तब भी नहीं ठहर सकती। परन्तु उसने यह भी देखा कि भारतीय जन योरोपीय व्यवस्था ग्रहण करने और योरोपीय देवता से युद्ध करना सीखने के सद्योग्य है। यही कवच था जिससे कम्पनी को विजयों पर विजय दिलाई। जैसा कि पहिले कहा गया है अंग्रेजों की भारत विजय नतिक तथा शक्ति की महत्ता से नहीं हुई, व्यवस्था और सैनिकशक्ति तथा कूटनीतिक चालों से हुई।

पलासी के निर्णायक युद्ध में अंग्रेजों का राज्य की नींव भारत में सुदृढता से स्थापित हो गई। आज इस राज्य का और कल उस राज्य का पथ लेकर उठने अतन्त सारा भारत अपने कब्जे में कर लिया। इसके बाद उन्होंने रजवाड़ों को हड़पने की चेष्टा की, जिसके फलस्वरूप सत्तावन का विद्रोह उठ खड़ा हुआ, जिसमें फासी और तोप के मुह पर बाणकर जीवित मनुष्यों को उड़ा कर नरवध का महाताण्डव करके अंग्रेजों का भारत के एकनिष्ठ अधिराज बन बठे।

अठारहवीं शताब्दी के प्रथम चरण तक योरोपीय राष्ट्र परस्पर लड़ते भगड़ते और स्पर्द्धा करने रहे। इसी बीच पूर्व में अंग्रेजों का साम्राज्य की स्थापना हो गई और अब योरोप के परस्पर युद्ध बन्द हो गए। तथा योरोप और अमेरिका के विद्वानों की सम्मिलित वैज्ञानिक खोजों ने एक के बाद एक नए नए आविष्कार किए, जिससे पृथ्वी का विकास हुआ और अब इन देशों के अधिक स्वाथ परस्पर में टकराने लगे, जिसने एक नये सघष को जन्म दिया।

समय बीतता गया और इस वर्तमान सदी में रूजवेल्ट ने अमेरिका के सिंहासन को सुशोभित किया। यह पहला अमेरिकन राष्ट्रपति था, जिसने दुनिया के मामलों में खुलकर हिस्सा लिया। पर अब दुनिया बदल रही थी, एशिया जाग रहा था, सोवियत रूस इस समय समूचे उत्तरी एशिया में एक सत्ता निर्माण कर रहा था। वह एक प्रकार

पत्रव्यवहार

आचार्यश्री के पत्रव्यवहार का कुछ विशेष अंश यहाँ प्रकाशित किया जा रहा है। इस अंश में राजपुरुषों और साहित्यिक पुरुषों के केवल उन्हीं पत्रों का समावेश है, जिनका 'मेरी आत्मकहानी' से सम्बन्ध है। यों उनका पत्रव्यवहार बहुत विस्तृत है और वह समस्त पत्रव्यवहार पृथक से प्रकाशित किया जायगा।

लिए भन्ने ही विरत हो गए हो, पर मेरा भाव आपसे उठाना ही पड़ेगा और मेरा शारीरिक तथा मानसिक कल्याण करना ही होगा।

मर मनम आपको प्रति प्रेम भक्ति तथा श्रद्धाके भाव है। आपको मिलकर शरीर, मन तथा आत्मा को लाभ पहुँचेगा, ऐसा मेरा विश्वास है। मेरे योग्य कोई सेवा हो तो अवश्य लिखिए और मुझे पूर्णरूप से अपना दास जानिये। बहुत आदर के साथ।

—आपका भाई, सत्यपाल

मायवर श्रीआचार्यजी जयहिंद,

आपकी पुस्तक 'जि दगीकी कराह' व भाषण की पहुँच में भेज चुका हूँ। पुस्तक में ध्यान से पढ़ी है। मैं आपको बधाई देता हूँ कि आपने बहुत साहस से अपने विचारों को प्रकट किया है। यह आपकी ही सलाह है कि कई अप्रिय बातें आपने बड़ी दिलेरी से लिखी हैं। आपकी लिखने की शली बहुत सराहनीय है। बड़े जोरदार शब्दों का आपने प्रयोग किया है। आपके कई विचारों से सहमत न होते हुए भी आपकी स्तुति व श्लाघा किये बिना नहीं रह सकता, जो कोई भी इस पुस्तक को ध्यान से पढ़ेगा।

—आपका भाई, सत्यपाल

मायवर भाई चतुरसेनजी जयहिंद,

डाक्टर साहिब ने और मैंने आपसे देहली में ही सम्मेलन पर पधारने की प्रार्थना की थी। आशा है आप अवश्य पधारकर सम्मेलन की शोभा को बढ़ाएंगे। सम्मेलन १०, ११ अप्रैल को हो रहा है। कृपया अपने आने की तिथि से सूचित करें ताकि आपके स्वागत तथा आतिथ्य का प्रबन्ध कर सकें। योग्य सेवा।

—आपकी बहन, शन्नोदेवी

बहिन,

मैं १० अप्रैल को सुबह फ्रिटियर मेल से अमृतसर पहुँच रहा हूँ। मेरे जैसे अनुगत दास के स्वागत तथा आतिथ्य का कोई प्रश्न ही नहीं है। हाँ, सेवा से अवश्य कृतार्थ करें।

—भवदीय, चतुरसेन

चंडीगढ़

१४४५४

श्रीयुक्त आचार्यजी,

जय हिंद। मैं आपका अत्यंत कृतज्ञ हूँ कि आपने मेरे निवेदन को स्वीकार कर हिन्दी साहित्य सम्मेलन के समारोह पर पधारने की कृपा की। आपने जो निबन्ध वहाँ पर पढ़ा वह बहुत मनोरंजक था कि तु आश्चर्यजनक भी। यद्यपि वह आपकी विद्वत्ता का एक प्रमाण था, तो भी एक बात मुझे विशेषकर बड़ी खटकती जो आपने

जब आपने मुझे निमन्त्रण भेजा था, तो आपने भी और इसके बाद बहिन शबो-
देवी ने मुझे सूचित किया था कि स्टेशन पर आप लोग मेरा स्वागत अभ्यथना करेंगे
और तभी मने ऐसा न करने के लिए आपको और बहिन शबोदेवी का भी पत्र लिख
दिए थे, क्योंकि मेरे इस प्रसार के पाखण्ड प्रदर्शन का सरत विरोधी हूँ। पर तु जब
हमारी ट्रेन ने अमृतसर का प्लेटफाम छोड़ा तो मैंने उडती नजर से स्टेशन पर बहुत
भारी भीड़भाड़ और धूमधाम देखी, घबराया भी, पर तु जब तक मे ट्रेन से बाहर
जाऊँ और कुली के द्वारा अपने सामान की व्यवस्था करूँ, तब तक आप सब लोग जा
चुके थे। उस भागदौड़ में अगभरके लिए आपकी एक झलक जरूर मने देखी और तब
मने समझा कि वह सारी धूमधाम, फूलमालाएँ, स्वयंसेविकाएँ और आप महानुभावों का
आगमन हम साहित्यकारों के लिए नहीं, श्रीमावलकर और उनकी धर्मपत्नी के
लिए था। मेरे यह देखकर दग रट गया कि स्वागतकारिणी की मंत्रिणी ही नहीं, सम्मे
दान के मनानीत शयन भी उस स्वागत में भाग ले रहे थे। जबकि समारोह के मवने
पूज्य परंपर सम्मेता के मनानीत अव्यक्ष थे, जिनकी अभ्यथना के लिए सब लागा को
स्टेशन पर जाना चाहिए था।

स्टेशन पर और भी बहिन और साहित्यकार जो उसी ट्रेन से आए थे, खड़े हुए
थे और मैं भी उही के साथ जा खड़ा हुआ, जब तक कि एक नवयुवक ने मुझे रिकमे में
बठाकर मेरे मेजमान के घर पर न पहुँचा दिया—जहाँ मुझे अपने घरके समान आराम
और व्यवस्था मिली कि जिसके लिए मे उरका ऋणी हूँ। इसके बाद जब सभा का
सुगा अधिवेशन हो रहा था और श्रीमावलकर के आने का समय था तो आपने आदेश
दिया कि सब लोग खड़े हो जाएँ। आपका स्मरण होगा कि मैं इसपर आपत्ति की
थी। मर लिए यह एक प्रसक्त था। मे किसी ऐसे व्यक्ति का मत्कार नहीं करता, जो
समानता में उतना ही मेरा सत्कार न करे। मेरे लिए श्रीमावलकर के लिए खड
होकर अभ्यथना करना— जबकि मेरा उनसे व्यक्तिगत परिचय नहीं, एक बहूदासी बात
थी। सारी सभा या सदा होना और उसके साथ मुझे भी, तो मवथा एक लज्जाजनक
चीज थी। मेरे लिए यह भी कठिन था कि मे स्टेज से उठकर चल दूँ। ऐसा करना
मने आपके प्रति अभद्र समझा और जब श्रीमावलकर का आगमन हुआ, तब सारी
सभा के साथ मुझे भी खडा होना और केवल इतना ही नहीं, उनके बैठने तक माननीय
सभापति को भी अपना भाग्य बीच ही मे रोक देना पडा। इतना ही नहीं, सारी सभा
पर श्रियारत्र टर्निस आ गई। यह हृद दर्जे का लज्जाजनक दृश्य था। यदि आप
मुझसे मेरे मन की बात पूछें और मुझे स्पष्ट कहने की आज्ञा दे तो मैं कहना चाहूँगा
कि उस समय मुझे सबके साथ खड़े होने में उतना ही कष्ट और अपमान का अनुभव
हुआ, जितना कि उसी अमृतसर की गलियों में कभी डायरशाही में भद्रजनों को गली में

कर बैठना इसी प्रकार चलता रहेगा। दूसरों को अपमानित करके छोटा बनाकर अपने को सम्मानित करना, बचा बनाना इस स्वतंत्रता और समानता के युग में कब तक बढ़ा दत्त किया जा सकता है।

आपने तो मेरी पुस्तक पढ़ी है, आप भलीभांति जानते हैं कि मैं मनुष्य का पुजारी हूँ। मनुष्य की पूजा ही मेरा धर्म है। सो क्या बातों ही में, कम, नही? मैं कोई भी ऐसा काम बर्दाश्त नहीं कर सकता, जिसमें मनुष्य को छोटा बनना पड़े कि उसे सिर झुकाना पड़े। इसीसे मैं ईश्वर से मुनफिर हूँ, क्योंकि जब तक ईश्वर है मनुष्य का सिर झुका ही रहेगा, जिसे मैं अपनी आँखों से देख नहीं सकता।

अभ्युत्थानपूर्वक आगतजनो को आसन देना परम शिष्ट व्यवहार है। आप मेरे घर आए और देखिए, कि मैं प्रत्येक छोटे बड़े को खड़े होकर बैठाता हूँ। उनके बैठने पर बैठता हूँ। यह मेरी आदत होगई है, पर तु यह श्रद्धा और आदर का शिष्टदान है।

जिसे यह दिया जाए, वह उसे उतनी ही श्रद्धा और आदर एवं नम्रता से स्वीकार करे, तभी इस सिद्धांत का, शिष्टाचार का, शिष्टरूप व्यक्त होता है। इस अवस्था में यह आदर देने वाले दाता की प्रतिष्ठा भूमि पर अवस्थित है। अब यदि आदर ग्रहण करने वाला नम्रता और श्रद्धापूर्वक आदर को दान की भांति ग्रहण न करे, टक्क की भांति, कर्ज की भांति दम्भ और अहंकार से उस पर अपना अधिकार समझे। यह समझे कि उन्हें ऐसा करना ही चाहिए, तो यहाँ मेरा विद्रोह है और अपने जीवन में मैंने इस विद्रोह की दंतनी कीमत चुकाई और कष्ट भोगे हैं कि उनकी चर्चा एक ददनाक कहानी है।

पर तु मे यह अवश्य कहूँगा कि मेरे इस निर्वचन के साथ इस अलंकार का कोई भी सम्बन्ध नहीं। फिर भी वह निर्वचन पढ़ने में मुझमें उत्साह वित्कुल नहीं रहा, क्योंकि मैंने यह देखा कि हिन्दी साहित्य सम्मेलन का यह मंच प्रचारको का मंच था, विचारको का नहीं। पर तु में प्रचारक नहीं विचारक हूँ।

अतः मैं आपके सरल साधु व्यक्तित्व और शत्रु बहिन की क्रियाशीलता से मैं दंतना प्रभावित हुआ हूँ कि जिसे मैं भूलूँगा नहीं और जिसका मूल्य बहुत है। निस्संदेह हिंदी और हिंदी साहित्य के लिए पंजाब में आप मुझसे तुच्छ व्यक्ति से जो सहयोग लेना चाहेंगे, उससे मुझे प्रमत्तता होगी। परन्तु यह बात जरूर है कि मैं कभी भी किसी राजनीतिक पुरुष का मदली बनना गवारा नहीं कर सकूँगा। मैं एक अशक्त और एकाकी साहित्यकार अवश्य हूँ, पर मेरी अपनी एक निष्ठा है और उसके सामने मैं सारी दुनिया को हेच समझता हूँ।

—भगदीय, चतुरसेन

प्रिय श्रोमादलकर साहब,

आपको कदाचित् स्मरण होगा, कि गत पंजाब प्रांतीय हिंदी साहित्य सम्मेलन के अवसर पर जब आप वहाँ गए, तब मैं भी उसमें उपस्थित था। उस समय वहाँ खुले

हे और किसी के प्रति यथोचित आदर बताना यह अलग चीज है। अपने समाज के अलग अलग क्षेत्र में काम करने वाले जो व्यक्ति होते हैं, वह सब मेरी दृष्टि में उनके कार्य के कारण आदरणीय हैं। जैसे कि आयुवद के बारे में आप आदरणीय माने जाएंगे। आदरणीय व्यक्ति जब आता है तब सभागग खड़े होते हैं, इसमें कोई खुशामद या गुलामी में नहीं समझता हूँ। लेकिन आपका जो कुछ अभिप्राय हो, उसके अनुसार आपको चलने का पूरा अधिकार है, तथा इस विषय में अलग अलग राय हो सकती है।

इतना माया होने पर भी आपने जो कहा,—‘यह सम्मेलन तो श्रीमावलकर और उनकी वधुपत्नी के विवाह की बात लगती है’ यह कहने में मुझे सुरुचि का भंग लगता है। मावलकर आए और गए, यह तो एक बहुत छोटी बात सम्मेलन में है। मेरी तबियत ठीक नहीं थी, इसलिए मैं देरी से आया और जल्दी चला गया। सम्मेलन बुलाने वाला ने मेरे प्रति उदारता और सद्भाव बतलाया, उतनी ही श्रेय इससे निकल सकता है। मेरा सम्मान करना यह सम्मेलन का उद्देश्य नहीं था, अगर ऐसा उद्देश्य होता तो जो कुछ आपने कहा वह योग्य नहीं, पर तु प्रस्तुत गिना जाता। आपके भाषण में मेरा नाम लाना और सम्मेलन विवाह की बात लगती है ऐसा कहना यह न था, प्रस्तुत और न था सामान्य रचि के अनुसार।

इस बात में कुछ ज्यादा लिखने की आवश्यकता नहीं है। इतना ही आश्वासन मैं आपको दे सकता हूँ कि आपके मतव्य से मुझे कुछ रोप नहीं है। आपने दिल सफाई से लिखा इसलिए मुझे जो लगा, मैं भी लिख दिया है।

अब सम्मेलन की बात। जहां तक मैं समझता हूँ वहां तक सम्मेलन का उद्देश्य हिंदी प्रचार का था, अर्थात् भाषा पाण्डित्य की बात बहुत थोड़ी थी। पंजाब की जो ग्राम सभिति है वहाँ पंजाबी और हिन्दी का जो झगडा बतने का सम्भव है, इस बात पर गांधीजी श्रीमती शत्रोद्धरी ने मुझे आग्रह में कहा कि जो मैं सम्मेलन का उद्घाटन करूंगा तो पंजाबी सिद्धि का झगडा न बढे और हिन्दी का काम आगे बढे ऐसा सम्भव है। इसलिए मैंने सम्मेलन के उद्घाटन का या सम्मेलन में हाजिर रहने का स्वीकार किया था। उसके परिचरित्त प्रगतगर जाकर जलियावाला बाग तथा मिर्च मंदिर का दशन करने में इच्छा भी थी। आगे देख सकेंगे कि सम्मेलन केवल साहित्यिक न था। केवल साहित्यिक सम्मेलन ही उसका उद्देश्य न था, इसमें कुछ राजनीतिक मिलावट भी थी। अतएव यह बात कहता हूँ कि आपको उपेक्षा का जो भास हुआ, इसमें आप सम्मेलन के आयोजनकारों पर कुछ अन्याय करते हैं। स्टेशन पर जो बात हुई है इसमें गहराई से देखने की जरूरत नहीं है। मैं मुझे तो बहुत डोटा तथा अज्ञ समझता हूँ। लेकिन सौभाग्य से और अज्ञान्य मे लोकसभा का अध्यक्ष होने के नाते ग्राम लोगों की दृष्टि में देखने योग्य हूँ, ऐसा था। इसलिए स्टेशन पर बहुत से लोग इकट्ठे हो गए और आपने

(८ मई १९५४ को मेठ गोवि ददास द्वारा आयोजित रहीम समारोह का निमंत्रण आचार्यश्री को मिना, जिम्का सभापतित्व, राष्ट्रपति डा० राजेन्द्रप्रसाद करने वाले थे। उमीसे सम्बन्धित सेठजी को लिखा गया पत्र)

प्रिय मेठजी,

आपका रहीम समारोह का निमंत्रण मिला। ऐसे इन समारोहों में निश्चित रूप से दल्हा राष्ट्रपति और हम साहित्यकार बाराती रहते हैं। इस प्रकार आप राष्ट्रपति को घेने का तीन बना रहे हैं, क्या आप यह नहीं सोचते। मैं आपके नियोजित ऐसे समारोहों में आऊँ और ५-७ रुपया बस टैक्सी में खर्च करूँ, सिफ दशक वननेके लिए। ऐसा बेवकूफ नहीं हूँ।

—चतुरसेन

(मन्त्री, हिन्दी साहित्यकार परिषद् आगरा को लिखा गया एक पत्र)

प्रियत्ररेणु,

मैंने पत्रों में पढा कि परिषद् आगरे में एक साहित्य आयोजन कर रहा है। इस अत्रसर पर परिषद् एक नया आंदोलन खडा करे, यह मेरी अभिलाषा है। 'साहित्यकार जन जीवन को राजनीतिज्ञों के हाथ से छीन ले'—यही उस आंदोलन का नारा और उसकी रूपरेखा हो। यदि परिषद् इस सम्बन्ध में मेरे विचार और योजना विस्तार से सुनने में अनिच्छि रक्के, तो मैं स्वयं परिषद् की सेवा में उपस्थित होकर अभिप्राय निवेदन करूँ। सत्र साहित्य व धुग्रो को नमस्कार।

(उत्तरप्रदेशीय हिन्दी सम्मेलन देहरादून को लिखा गया पत्र)

प्रिय महोदय,

आप देहरादून में उत्तर प्रांतीय हिन्दी साहित्य सम्मेलन कर रहे हैं। इसके त्रिण आपका अभिनन्दन करता हूँ। आपने मुझ नगण्य को आमंत्रित नहीं किया, इससे इस समारोह में सम्मिलित होने के आनन्द से मैं वंचित रहूँगा, परन्तु एक प्रस्ताव आपके द्वारा उपस्थित करता हूँ कि सम्मेलन एक नया आंदोलन खडा करे कि— 'साहित्यकार जन जीवन को राजनीतिज्ञों के हाथ से छीन ले'। यही उस आंदोलन का नारा और उसकी रूपरेखा हो। देश भीतर से बिखर रहा है और बाहर से उस पर भारी दबाव पड रहा है। साहित्यकार ही देश की भीतरी एकता को कायम रखने में सहायक हो सकते हैं। ऐसी मेरी मायता है। यदि सम्मेलन इस सम्बन्ध में सक्रिय हो तो मैं विस्तार से अपने विचार रख सकता हूँ। साहित्य व धुग्रो को अभिवादन।

(आचार्यश्री ने 'हिन्दी भाषा और साहित्य का इतिहास' लिखकर उसकी पाण्डुलिपि कुछ विशिष्ट साहित्य महारथियों को जाच पडताल के लिए भेजी थी। उसीसे सम्बन्धित शुक्देवविहारी मिश्र और प० देवीदत्त शुक्ल के दो पत्र)

आपने उसका उल्लेख नहीं किया है।

सन् १८२० के बाद हिन्दी में एक बवण्डर सा आया था। उसी समय 'माधुरी' जबलपुर में 'श्रीगारदा' और 'चाद' जसी पत्रिकाएँ आरंभ पत्र निकलने लीं। 'श्रीगारदा' और हिन्दी राष्ट्रमंदिर तथा 'कमवीर' सेठ गोविन्ददास ने स्थापित किए थे। पण्डित द्वारिकाप्रसाद मिश्र सठजी के साहित्यिक मंत्री थे। उन्होंने श्रीगारदा का सम्पादन भी किया था। वह हिन्दी के एक अच्छे लेखक तथा कवि हैं। हालमें उनका अन्वयी भाषा में 'कृष्णायन' नाम का एक महाकाव्य निकला है जो रामचरितमानस की जली पर है। इसमें कृष्ण का जीवनचरित लिखा गया है और यह सिद्ध किया गया है कि वे एक पूर्ण पुरुष थे। उसी बवण्डर के समय में कांग्रेस की नीति जनता में प्रचारित करने के लिए श्री राजेन्द्रप्रसाद ने एक साप्ताहिक पत्र प्रकाशित किया था और उसके सम्पादन में थे। उनका हाल में हिन्दी में आत्मचरित प्रकाशित हुआ है जो देश का एक महान् ग्रन्थ है। सन् २३ या २४ में अयवामी लाला सीताराम के आग्रह में सर आनुतोप मुर्जी ने कलकत्ता यूनिवर्सिटी में हिन्दी में एम० ए० की परीक्षा देने की व्यवस्था की थी। उसी वर्ष नया गातिपुर के ननिनीमोहन सायल ने स्वप्रथम हिन्दी में एम० ए० की परीक्षा पास की। सन् २५-२६ में सायल महोदय ने भाषा विज्ञान नाम की पुस्तक लिखी, जो अपने विषय की एक अनूठी पुस्तक है। पिछले दिनों रायपुर (सी० पी०) के पण्डित रामदयाल त्रिपाठी ने 'गांधी दर्शन' नाम का एक बड़ा ग्रन्थ लिखा है जिसमें उन्होंने गांधी जी के चिन्तारो की निष्पन्न आलोचना की है। इस युग के यूनीवर्सिटियों में हिन्दी के ही ज्ञान से प्रव्यापकों और डाक्टर बनने वाले छात्रों में साहित्य के इतिहास सम्बन्धी विविध ग्रन्थें गये लिखे हैं। उनमें से मुख्य मुख्य का उल्लेख होना आवश्यक है। इस सम्बन्ध में आपको श्री प्रेमनारायण टण्डन, रानीकटरा, लखनऊ द्वारा लिखित वर्तमान समय के लेखकों की डायरेक्टरी से बड़ी सहायता मिल सकती है। मैं आपकी बड़े उत्साह के साथ सेवा करता हूँ, क्योंकि इस विषय में मुझको प्रारम्भ से ही प्रेम रहा है, परन्तु दुभाग्यवश मैं अब तो गया हूँ—किसी काम का नहीं रहा। मानसिक स्थिति भी ठीक नहीं है। जो बात याद थी वह भी शीघ्रता के साथ भूलती जा रही है। इस समय जा कुछ याद आ सकती, उनका यहाँ उल्लेख कर दिया है। आपकी पुस्तक अपने विषय की अनूठी पुस्तक होगी। एक कमी मुझे यह जान पड़ी है कि लेखकों का उल्लेख करते समय आपने उनके रचनाकाल का ध्यान नहीं रखा है। —देवीदत्त

(संयुक्त प्रां. तकी लेजिस्लेटिव कोडि सत्र के प्रेसीडेंट सर सीताराम द्वारा लिखा गया पत्र)
श्रीमन्—जयरामजी जी,

मुझे दुःख और रज्जा है कि आपके पत्र का उत्तर अब तक न दे सका। कुछ बहुत ही व्यस्त रहा हूँ और हूँ, जिसमें मेरे छोटे भाई तथा माताजी के रोग प्रसित

दा जाना तो भी निरापराध है। मरा। आपका मरा ही है। जरा 'तन योगो को
 विहासित' लग जाया किजिए। उगो तो इसका नाम है कि 'गणपति का अक्षर
 मिलाया। असा तादाता साहित्य मिला। सा साहित्य है। 'गणपति' ही तब
 सा जाया। 'गण' मरा भविष्य का तब प्रभा का विचार, मरा अथवा 'विस्तृत्य' की
 दशा मरा है। आप गणना साम सा विचार मरा पात्र साहित्य गीर कागज पर निख
 लीजिए। समय पात्र पर परामा राग। २० मान्द सा भाउ परमान्द न एक सभा
 सा है, उगो समय कागम हो भा सा सम सा प्रक है। विगण फिर। कृपा बनाए
 रविण्णा। यह म वि राग सा सा, सा म मगमना म धुन टान जाता नही।

गणक, सीताराम

(श्री प्रारम्भदास मनुजी विनामभारत काव्यनाम २६ ८-१९२२ का निखा गया पत्र)

प्रातः काल २॥ बजे

कलकत्ता, २६ ६ ३५

प्रिय शास्त्री जी,

प्रणाम ! आपका उत्पापन ज्या तात्या 'गण' ही विण्ड रिया है। बिल्कुल
 टोच वक्त पर आया। यद्यपि जगत् सा ता रती थी त्थापि मुझे सिफ सम्पादकीय
 निराशा बाता रा गया सा गौर उस विण्डा फाम रिजत्र थ, पर आपकी चिट्ठी को
 जरूरा समझ कर लग्द रिया। सिम्भ २० आपका पत्र म सत्य सा बहुत कुछ अश है।
 एतापि जगत् गन्तव्यमी सा प्रतीत ताते है, पर उसपर सा विण्ड करना ठीक न
 हागा। अत्रासमि मरा पर प्राथम्य ता पर गापना मरा म विण्डन कर दूगा कि
 अमुफ स्वयं का मरा पत्र भा है। यथा तमीन यौवन सा गारम्भ म आपका भगडा
 ता रगा। पत्र म त्या जतादासा वि, जगम ० ए० न मजात म बडे पते की बाते
 ता। उता म मगम मरा म ता म ता 'म मा मरा, गया है कि चौबीसो न शास्त्री
 जा म त्या समभा ता र रिया है। ताजा फिर म तादा रगा चाहते है और
 ता मजा म ओर्पा वि सा सा र रिया है।

ता म विण्ड सा उत्पापन अत्र य करला र, पर फुड रपा तात। अभी नही।
 यभा ता मुझे स्वयं सा है। २६८२ म अपा विण्ड सातो वना। रना चाहता हू
 गौर तब ता र हाई र ता र अ 'ता साथा मिन ता जाण्णा। इम समय ता अपन को नये
 छेन पर शिनिन ररा बाहता ह। तगन्तोत्तर इस मनाया जाय ? उस तेर म आप
 उगो भा प्राथम्य पात्रण। उकर कायक्रम म रग रग मरा मी विण्डो पर अथवा
 साहित्य क किमो गन्त पर आप भा आपण साहित्य।

म एक बार आपका फिर विराम दिना दूँ कि जिस प्रकारसा म न आपके
 साथ अयाय रिया था वह रभो का मर चुका और उसका नयोन जन्म होगया है।

आज की पवित्र तिथि मे मे ऩाई शमत्य कह भी नही सकता । पाच वष पहल २९ सितम्बर १९३० को टी ६ घण्टे वी बीमारी (प्रसति) मे मेरी पत्नी की मृत्यु होगी थी । म उनम तो रात भी न कर पाया । २८ की रात को घर पहुचा या, २८ को व बीमार हृद ८ बजे प्रात काल के समय और २ बजे मेरे जीवन को रेगिस्तान बनाकर चल वसी । मुझे उम रात का धार दु ख हे कि मै उ हे भूल गया । पर अभी मु के २० २५ तप जीवित रहना हे और उसमे म प्राय नवयुवको का सत्सग करना चाहना हू । आलांचक काम को तो तिलाञ्जलि दे चुका । हा नवयुवको को प्रोत्साहन देन के लिये कभी कभी मुझे लिखना ही पडेगा । पर खुदाई फौजदारी से तो इस्तीफा दे चुका ।

आपने मेरे पुराने अपरावो के लिए क्षमा कर दिया इसलिए कृतज्ञ हूँ । मचमुच मुझे उडा दु ख होता, यदि आप मुझे क्षमा न करते । अब मुझे विश्वास हे कि श्री तुलारेलाल जी से और उग्रजी से भी मेरा सम्बन्ध ठीक हो जाएगा । अपने जीवन मे मे इतना सुखी कभी नही था, मरा अभिप्राय आत्मिक सुख से हे । वसे तो दु खके लिए काफी ममाता हे, पर उसका जिक्र नही कर्हूंगा । मेरा काम हँसना और दूमरो को हँमाना हे । चौवे लाग दमके लिये प्रसिद्ध भी है । पटने की साहित्य परिषद म 'मोगो को हँसाते हँसाते लाटपोट कर दिया । वहा मेने अपना परिचय दिया—'साहित्यिक भाट' के रूप म । फर इतना ही हे कि भाडो की हँसी कृत्रिम होती है और मेरी स्वाभाविक हे । कभी दिल्ली आना हुआ तो आपको भी हँसाऊंगा ।

२९ सितम्बर मेरे लिए पवित्र तिथि हे । सवेरे २॥ बजे उठकर सबसे प्रथम पत्र आपनो लिखा हे । म-या को ५ बजे एक उत्सव मना रहा हू 'नूरजहा के प्रकाशन का । यह गुरु भक्तसिंह भक्त का महाकाव्य अभी प्रकाशित हुआ हे । शामको मित्र मडली जुटेगी । वडा ग्रान द रहेगा । अपने जीवन के ग्रानदो को खूब मिल बाट कर भोगना चाहता हूँ । आगामी वस त ऋतु मेरे जीवन की सर्वोत्तम वसत ऋतु होगी । मेरा भागी जीवन ही पिछली भूलो का परिभाजन कर देगा । आशा है कि आप सफुशल हे । अपने घर वाला को मेरा नमस्ते कहिये । आफिस २ ता० को बन्द होकर १८ नो खुलेगा । मे यात्रा पर रहगा । प्रोग्राम अनिश्चित हे । लाहोर गया तो कुछ घटा के लिए दितली सिफ आपकी सेवा मे उपस्थित होने के लिए ठहर्हूंगा ।

—विनीत, बनारसीदास चतुर्वेदी

(वाटस वासलर डाक्टर जाकिरहुसेन, मुस्लिम यूनीवर्सिटी अलीगढ, का पत्र)

यह हमारे लिए गौरव की बात होगी यदि आचार्य चतुरसेन 'ब्रज भाषा पर मुगल प्रभाव' विषय पर हमारी यूनीवर्सिटी के हि दी और संस्कृत परिषद के तत्वावधान मे २४ फरवरी, ५१ को सध्या समय साढे चार बजे निव व पढने की कृपा करे ।

—जाकिरहुसेन

(नागरेक्टर जारल, ग्राण्डिया रंडियो, नई दिल्ली को लिखा गया एक पत्र)

महोदय,

गायना ग्राम गणपत्र मिला, वृषा के लिए आभारी हूँ। परन्तु अत्यंत नम्रता पूर्वक इसे सादर वापस कर रहा हूँ, क्योंकि मे आकाशवाणी द्वारा आयोजित इस तथा-तंत्रित साहित्य-समारोह में केवल दर्शन की हेसियत से सम्मिलित होना अपन लिए अप मानजनक समझता हूँ। कारण नीचे निवेदन करता हूँ—

- १— मेरी आयु ६७ वर्ष की है और मेने आधी शताब्दी तक साहित्य के देवता की मतन आराधना की है तथा मेने डेढसौ वर्षों का प्रणयन किया है। अथच मेरे सम्पूर्ण साहित्य के सट का मूल्य चारसौ रूपयों से भी ऊपर है।
- २— कथा, कहानी, नाटक, राजनीति, धर्मनीति, चिकित्सा, स्वास्थ्य समाज शास्त्र, विज्ञान, कला सभी विषयों पर मेने अपनी कलम चलाई है। मेरे १६ उपन्यास, साठे चारसौ से ऊपर कहानियां और लगभग बारह नाटक छप चुके हैं, जो सारे भारत और भारत से बाहर आदर से पढे जाते हैं।
- ३— पर तु इस तथाकथित समारोह में आपने जहा उन कहानीकारों और कथाकारों को समावेशित किया है, जो मेरा शिष्य होने में गव अनुभव करते हैं, वहा आपने मुझे याद नहीं किया। आकाशवाणी की दृष्टि में मैं न कथाकार हूँ, न कहानीकार हूँ।
- ४— निश्चय ही आपको इस बात का पता भी न होगा कि कौन साहित्यकार किम दर्जे का है और किमे आकाशवाणी द्वारा चुना गया है। यह काम गुटबन्धियोंके दलालों और आत्म विज्ञापक के हाथों आपने सांप दिया है और उन्होंने अपने-अपने पार दोस्तों के नामों की खानपूरी करके आपके हस्ताक्षर ले लिए हैं।
- ५— यह बात के प्रति यही तक सीमित नहीं कि इस अवसर पर ही यह हुआ हो। कम से कम मैं अपना ही अनुभव बता सकता हूँ कि कठिनाई से साल में एकाध बार मुझे रणियों भाषण के लिए चुनाया जाता है, जबकि आपके द्वारा नियोजित तथा वृथित साहित्य के पदाधिकारी अपने-अपने पार दोस्तों को निरंतर सुधवसर देते रहते हैं, जिसमें उहुं ग्राण्डिया पर साहित्य भाषण हास्यास्पद होते हैं।

इसलिए जिस सूचना के सत्य से आप जानकार नहीं हैं, उसे आपके हस्ताक्षरों में प्रकाशित किया जाना मैं सरासर आपके उच्च गौरवयुक्त पद के अनुकूल नहीं समझता और विशेष पदशन स्वरूप निम्न गणपत्र नम्रतापूर्वक आपकी सेवा में वापस कर रहा हूँ, तथा समारोह में दर्शक रूप में उपस्थित होने से इन्कार कर रहा हूँ।

(राष्ट्रपति को निम्ना गया एक पत्र)

ज्ञानधाम, ९ अप्रैल १९५१

श्रीमान्,

आपकी सेवा में यह पत्र भी कल की मुलाकात के सिलसिले में लिख रहा हूँ।

चि ताप्रा मे मुक्त करे जो अपने कात ओर उम कालके वाद के मनुष्यो का नेतृत्व करे । जो मनुष्य तत्र का प्रतिनिर्मात्र हो, जो मनुष्यो के आदश का विचार करके 'अतिमनुष्य' की सृष्टि करे ओर अपनी नादस्वनि के सकत पर कोटि कोटि जनममूह का उसी लक्ष्य त्रि दु पर केन्द्रित कर और उसे विश्व मे अभय विचरण दे । आज सारा एशिया और योरोप तथा अमेरिका इसी आशा मे बुद्ध और गांधी की ज मस्थली की ओर उत्सुकता स देय रहा है ।

प्रब यदि भारत गणन साहित्यकार को राजाश्रय नहीं दगा तो आनेवाली आंधी शतान्दो तक नर तोन पर छा जाने वाली अराजकता को विश्व का कोई समय राज नीतिज्ञ रोकन मे समय नहीं होगा ।

हमरी बात यह कि गांधी सम्प्रदाय से गांधी दशन प्रथक वस्तु है । गांधी सम्प्र दाय गांधीवादी वासना मूलक है, साहित्यकार का उससे कोई सरोकार नहीं । गांधी दशन तो साहित्यकार के हाथ मे है । अच्छा साहित्यकार वही है जो विज्ञान को सौंदर्य का मूतरूप बना है दशन को कला मे परिणत करता है, तभी उसमे मनुष्य के उनके विचारो को छीन लेने और उनसे अपने विचारो को अंतर्प्रोत करा देने की सामर्थ्य प्राप्त होती है ।

साहित्यकार विचार सौंदर्य का सृष्टा है, वह मनुष्यो को जो विचार देता है, उसीमे रूप मे उसे लुभाकर सदय के लिए उसे अपना लेता है । पर भूखा साहित्यकार विचार सौंदर्य की सृष्टि नहीं कर सकता । उसकी दशा उस तरुणी भिखारनी जसी हो जायेगी जो सड़को पर फटे चिथडे पहने, एक हाथ अपने भूखे पेट पर रखे और दूसरा भीख के लिए फाफर कोमिल कण्ठ स्वर का विद्रुप बीच राह बखेरती फिरती है ।

जटा भूख ही भूख है, वहा कला कहा ? सौंदर्य कहा ? और विचार कहा ?

—आपका, चतुरसेन

(शिन्धामंत्री मीनाना अब्दुलफ़लाम आजाद को लिखे गए तीन पत्र)

माननीय महोदय,

आपन ता० १५ मात्र के दिन भारतीय साहित्य के सम्बन्ध मे आयोजित प्रथम अंग्ल भारतीय सम्मेलन का उद्घाटन करते हुए, निम्नलिखित भाव प्रकट किए थे—

‘ आधुनिक भारतीय भाषाओ मे केवल उर्दू और बंगला ने ही अन्तराष्ट्रीय दर्जा हासिल किया है । पिछली कुछ शताब्दियो मे उन्होने असाधारण उन्नति की है । आधु निक हिन्दी, जो अब भी ओर ब्रजभाषा मे सवथा भिन है, केवल इसी शनक मे विक सित होने लगी है । यद्यपि हिन्दी का साहित्य मात्रा और परिमाण की दृष्टि से बहुत बडा है, किन्तु किस्म की दृष्टि से वह विश्व मे स्थान पाने योग्य नहीं है ।’

यह पत्र मैं आपके इन उद्गारो के विरोध मे लिख रहा हूँ और इसके समथन

म पपती एर उरररररर प्रताता ही उमररर रापती नता म भजरररर और य य व आय प्रता म रापम रिउर उररता ही राप रिगो एया उर ती पस्तक रि राय प्रता ही उपा उर रर रा रा सी थ म गती रमता उर रर । गति राप गाता ही रमता र रा रा यररा र रा रिता । रा आ ताता एड साति यथास्त्र पर उर ही उरा उररता ता ता म ही रूता म रापता राया म एया म म क म पान रग पस्तक । म राप रापता राय मज गा, जि ता रिगो म । उ पिउर उरीम उय म उयरा उ प्रार जिनेम एड मा पस्तक ही रमता उ साति य ता हा प्रुत्तर नही उर उरनी ।

म राप पर उर रात भी पता उर उ रि सरकारी या र सरकारी जा साहि त्यि र आर सांस्कृतिक सांप्रिया टानी उ, उतम उ ताति यता रा हा यात भी नही रिया जाना रिता प्रयय मरुत्थन रूप म तापत य र अथम सरगार म सम्य उ र रहा हो या जिनेम राग उर उर यात्व रिताप ही या उ र हा । म र प्रमाण म पती उसाह रय राप । रि उता दिता सांस्कृतिक म जो सांस्कृतिक सम्मत्तन ता ररर र, उमम मरी या र याय उडाउर भी उता रग गया । म पर र राय उम सम्य उ र हो जान ताया रापत रिण । उर उता तागा । उम रि तर म म रापता राया म उम त्रिंशत् पत्र री उता भी भजरररर, जो मा उर ती सम्मत्तन म ती मरुत्थन ता रिगो हे । उम ही उर राय मरु मणिप पी त्रि राप यथपि मारर र मातनाय रिगामत्री हे, उरापि मरा रिगो मरु हे रि राप न मरा राम । जाना र, उ मरु साति य ही म रापता र उ परि उष हे । तया म मारर र , माय म भाषा ही भिन्नत क तारण राप रि ती साति य ता ता रि पकार म राय रा प्रजाता । मार सम्भवा केवल माराता ता राता र या ता उर रापता उर उर य रि ता , एया म म सममता हे । उरापि जिनेम मातनाय रि प म ता म लप, मा म र म य, प म रिगो ररा हे ।
म । उ, ततुरसन

रा र र रा रा रा रा रा रा,
र म म र र रिण रापता जा उरता ता ता , म रि राय र । र म्म र र म कु उर र र रिण । र रा यो र र ता रा, उ पया रि ता ता रा रिता रीजिण । सादर ।
भ म थ, ततुरसन
(मो ताता याजा र पा र उर मरु रगो हा उर)
पिय मताय,

मरर हे रि यता रि उ मर मार र तारण मातना साति र रिण रापमे भट क र ता मना । । ता राप जा कु उ उरता रता चाहा हे, उर रिगवर भज दीजिण ।
(अग्रजी से अनुदित)

प्रिय महाशय,

आपका ता० १९ नवम्बर का पत्र मिला। मैं खुश हूँ कि इस गगनराज्य में एक ऐसा भी मंत्री है, जो अपने कतव्य पालन में इतना व्यस्त है कि वह एक साहित्यिक से तार्किकताप का भी अवकाश नहीं निकाल सकता, यद्यपि मुझे इसमें सन्देह है। जिनका एक यह प्रति तुच्छ प्रमाण है कि शिक्षा मंत्रालय में इतना भी इतना नहीं है कि हिंदी पत्रों का उत्तर हिंदी ही में दिया जाय। जबकि सचिवान में हिंदी तो राज्य भाषा स्वीकार कर लिया गया है। आपने मुझ पर दया करके लिखा है कि मैं जो कुछ कहना चाहता हूँ, वह लिखकर भेज दूँ। परंतु मैं तो शिक्षामंत्री का कोई अनुग्रह चाहता हूँ, न गजमंद आदमी हूँ। मेरी बातालाप का विषय साहित्य सम्प्रदायी ही हो सकता है। परंतु अब, आपके उस पत्रके पानेके बाद कुछ कहना या लिखना मैं अपनी प्रतिष्ठाके विपरीत समझता हूँ। मेरेलिए सामयिक पत्रोंके कालम खुले हैं। फिर भी आप मोलाना से मेरी आर में यह कह सकते हैं कि वह हिंदी के साहित्यकारों से भी थोड़ी बहुत जान पहिचान रख, तो यह न केवल शिक्षा मंत्री के कतव्य पालन में सहायक होगा अपितु उनके लिए साहित्यिक शिष्टाचार भी होगा। कृपया मौलाना से मेरा सलाम कह दीजिएगा।

—भवदीय, चतुरसेन

(श्रीमती सुशीला तायर, स्वास्थ्य मंत्री दिल्ली राज्य को ३७५२ को लिखा गया पत्र)
श्रीमती,

यह पत्र मैं कल की मुनाक़ात और बातचीत के सिलमिले में लिख रहा हूँ। मैं आशा करता हूँ कि आपने 'पग-पनि' देखली होगी। यह अपने ढंग का पहिला साहित्यिक ग्रंथ है। उसमें प्रथम अंक में गांधी दशन, दूसरे में गांधीवाद, तीसरे में गांधी प्रभाव, चौथे में गांधी जीवन, पाचवें में गांधी आदर्श और छठे में गांधी रूपक है। प्रस्तावना में 'बा' का स्मरण है, जो उनकी निष्ठा का प्रतीक है। राष्ट्रपति जी ने जिस प्रकार की साहित्य रचना का मुझे संकेत दिया है—उस पर वह छोटी सी किंतु उत्कृष्ट पुस्तक है। उसे पापेगो-ग पुस्तक नहीं कहा जा सकता।

परंतु, आपका जहा जहा नाम आया है, उसमें आपको आपत्ति नहीं है, इसकी सूचना तुरंत भेज दाना कष्ट करे, जिससे पुस्तक प्रेस में दे दी जाए। जुलाई ही में मैं अपने भी पुस्तक पाठ्यक्रम में स्वीकार की जा रही है, मैं इसे वहां भी भेज रहा हूँ उम्मी से जल्दी है। आपने जब दस मिनट का अवकाश हो, तभी मैं अपने सहकारी श्री चन्द्रसेन का आपके पास भेज द, ताकि आप इसमें और जो जो नए संशोधन कराना चाहें, वह उन्हें समझा दें। सादर।

आचार्य चतुर्भन जी,

आपने अपने नाटक में मेरा नाम बा के मृत्यु दृश्य में इस्तेमाल किया, उसमें

मझे तारी आपत्ति थी। तब ही जोर देकर हरे नीतिगण।

विभागा, गुणांचा नयन

(१० एन० सी० कार्यालय सरकार आक एड्युकेशन विभागों में विभागा गया पत्र)

पिय महाशय,

आपका ता ६ अप्रैल १९३७ का विभागा पत्र मर्म मिला। जिस पान और लहजे में यह पत्र लिखा गया है उसमें तो मुझे ऐसा पता चलता है कि अभी ब्रिटिश साम्राज्यवाद का मुकाबला करना नहीं गया। इस प्रकार तत्कालीन भारतीय सरकार की स्थिति को मैं पण हवा दे और आपका पत्र मैं उसी रूप में।

निम्न में आप लिखते राज्य का सरकार आक एड्युकेशन पर तु मुझे भय है कि आप यह भी जानते हैं कि जिस साम्यवादी आपका पत्र लिखा है, उसने चाहीरा सात प्रपन खूब ही स्याही तथा हर प्राज्ञ ही नीत पीरिया का विहित किया है और वह पत्र ही पुरतका का पण है तथा यह ही चाहीरा मण्डला के चरित और जीवनी की व्यक्तता का उदाहरण पण है।

मेरा आप से यह भी पता है कि आप का मेरे विभागा का अभिप्राय भी गलत समझा है। मैं का पत्र लिखते ही है, त महाका कमाते ही किसी कम का प्रति विहित करता है। मैं पण ऐसा सारि त्यहार है जिसका अपा नीत का सारा ही सुख सारि य साधना में प्रति पात कर दिया है। और यह, जब भी आराम और प्रकृति में दया को सत्यादि य पण परता पाता है। मैं भिरासियों में भी बदतर तरिद्र पन गया है, तथाकि गा पण तथा में भी आजीविका का का नाम न करने जीवन का पण पण का सारि साधना में पण करता है।

इत और जानने की म, मैं पहाजक का समारा तम रिमाई की कमाइ में गन डर का रण है जारि मर्म का का म उभ में जारि पात मित ही चाष्टिण, भूरा मरता पण करता है।

नीतिगण में जानता है सरकार का सारि का सरकार में सिफ आपने साहित्य को पता चल करत क रित उक्त का साया ता। मेरा पत्र ता है कि सारि यकारों का सारि पणों सत्याकता है का पारिषाया पणो तस आपका रिमाग में पही है, ता सत्र जारि कर का सारि पण, और मर्म पर ताहित पात कर उभ शुभ काय का सागण। तथा सारि पण साया कर उभ साधना में जारि में प्रापनी ही जमात दन का भी तयार है।

म उस सा सार पर, कि हम सारि त्यहार का सारण सरकार के रिस्सी भी भिरास्य ही सारि सा मूय पान है, पार सारि पण सत्र सभ्य सा का सरकार अपन सा का सारि सारि को का सागमात दो है, मैं आपों सरकार से मान उज्जत की

माग नहीं करता, मुनागित्र जमानत और शर्तों पर लोन लेना चाहता हू।

मैं यह भी चाहुंगा कि श्री डाइरेक्टर आफ एज्युकेशन, मेरे इस पत्र को किमी नौकर के प्राथनापत्र श्री श्रुंगी में न समझे।

— भवदीय, चतुरमेन

(साहित्य अकादमी दिल्ली को अपनी पुस्तके स्वयं प्रकाशित करने के लिए आर्थिक सहायता देने के लिए लिखा गया पत्र तथा उसकी प्रतिक्रिया)

मन्त्री, साहित्य अकादमी, नई दिल्ली।

श्री मन्त्री महाशय मन्त्रीपेपु,

ज्ञात हो कि मेरी ८० वर्ष की अवस्था पूरा हो गई है, और मेरे शरीर में आधा दर्जन ऐसे रोगों का निग्राम हो चुका है, जो इस आयु में आक्रमण करते हैं तथा अच्छे नहीं होते। मेरे चलने फिरने, तथा नेत्रों की शक्ति तथा पाचन शक्ति आठ आना नष्ट हो चुकी है। फिर भी मैं नियमित रूप से १२ से १५ घंटे केवल साहित्य श्रम कर रहा हूँ। मैं एक ही कलम से पचास वर्षों से लिखता चला आ रहा हूँ, तथा २०० से ऊपर अब तक मेरा रचनाएँ प्रकाशित हो चुकी हैं। फिर भी साहित्य अकादमी की दृष्टि मेरे ऊपर नहीं है। प्रकाशकों के अनाचार ने मुझे अर्थ चिन्तित कर दिया है। यदि प्रकाशक लागू मुझे मेरे चौथाई प्रकाशन की गारंटी भी ईमानदारी से देते रहते तो मुझे आज भी अकादमी के सम्मुख हाथ न पसारना पड़ता जो मेरे साहित्यिक अस्तित्व से ही बेखबर है। गद्य में यह चाहता हूँ कि मैं अपनी तीन बहुचर्चित कृतियाँ 'वशाली की नगरवधू' 'वय रक्षाम' तथा 'आरोग्य शास्त्र' जो अब प्रायः अप्राप्य हैं, स्वयं प्रकाशित करूँ और स्वयं लाभान्वित होऊँ, जिससे तनिक आराम से अपने दो चार साल व्यतीत कर सकूँ। मेरी उच्छा है कि अकादमी उस काय के लिए मुझे उपयुक्त रकम अनुदान देने की उदारता करे।

किम्बहुना — 'याचामोघात्ररमप्रिगुणेनाचमेलवधकामा।'

— चतुरसेन

(अकादमी द्वारा उत्तर)

आदरणीय,

साहित्य अकादमी के मन्त्री महोदय के नाम भेजा गया आपका २१ अप्रैल का पत्र यथा समय मिला। इस सम्बन्ध में हम अपने विशेषज्ञों को सूचित कर रहे हैं। उनकी सम्मति प्राप्त होते ही आपको यथा समय तत्सम्बन्धी सूचना भेज दी जाएगी।

— सादर आपका, क्षेमचन्द्र 'सुमन', प्रकाशक सहायक

(प्रकाशन समाचार, राजकमल दिल्ली द्वारा चतुरसेन साहित्य प्रकाशकों को गश्तीपत्र)

मा यवर,

इस पत्र के साथ आपको आचार्य चतुरसेन शास्त्री द्वारा, मन्त्री साहित्य अकादमी

(श्री मेने द्रुपार, सदन्य साहित्य अकादमी, को लिखा गया पत्र)
प्रियवर,

आपके द्वारा अकादमी के विद्वान मंत्री महोदय को मे यह पत्र लिख रहा हूँ ।
पत्र का अभिप्राय इस प्रकार है —

मने एक पत्र ता २१ / ५९ को साहित्य अकादमी को लिखा था । उस पत्र
के सम्बन्ध में दिल्ली के प्रसिद्ध प्रकाशक राजपाल एण्ड सस जो मेरे भी प्रकाशक हं,
ने मुझमें जवाब तलब किया है । साथ ही उस पत्र की अक्षरशः प्रतिलिपि भी भेजी
है । ये दोनों पत्र हम पत्र के साथ आपके पास भेज रहा हूँ ।

साहित्य अकादमी ने इस पत्र के सम्बन्ध में क्या कायवाही की, यह अद्यावधि
मुझे ज्ञात नहीं हुआ । पर तु मेरा यह पत्र नितान्त व्यक्तिगत और गोपनीय था । मे
नहीं समझ सका कि यह बाहरी लोगो के हाथ कैसे लगा । क्या अकादमी ने इस पत्र
के सत्यासत्य की जाच करने का भार उक्त प्रकाशक को दिया है । पता लगा है कि
कुछ विरोधी तत्वो ने द्वेषवश मेरी प्रतिष्ठा भंग करने के इरादे से अकादमी के एक
कर्मचारी से यह पत्र चुरवाया है । मे आपके द्वारा अकादमी के मंत्री महोदय से अनुरोध
करता हूँ कि वह इस बात की सचाई का पता लगाने का कष्ट करे, और अपराधी को
विभागीय दण्ड दे ।

७ १२ ५९

—भवदीय, चतुरसेन

(फिटिंग अथ—साहित्य अकादमी, शिक्षामन्त्रालय, नई दिल्ली को लिखा पत्र)
प्रादरणीय,

उस पत्र के द्वारा मैं आपका ध्यान निम्नलिखित तथ्यो की ओर आकर्षित
करता हूँ —

- १— मने एक पत्र तारीख २१ / ५९ को साहित्य अकादमी के मंत्री महाशय को लिखा
था । जिगम मने अपन साहित्य के प्रकाशन के लिए सहायता मागी थी । पत्र की
नकल माग भ सलग्न है । पत्र पर अकादमी ने क्या निराय किया, इसकी कोई
सूचना अद्यावधि मुझे नहीं मिली ।
- २— चार सितम्बर का एक पत्र मुझे दिल्ली के प्रसिद्ध प्रकाशक, राजपाल एण्ड सस का
मित्रा । जिगम साथ मेरे उक्त पत्र की नकल सलग्न थी । उस पत्र में उहोने मुझ
से प्रकाशको पर लगाए उन शारोपो का जवाब तलब तीखी और अपमानजनक
भाषा में किया, जो मेरे पत्र में थी ही नहीं । उस पत्र की नकल भी आपकी सेवा
में भेज रहा हूँ ।
- ३— उमके बाद मुझे ज्ञात हुआ कि यह पत्र (जो मेने अकादमी को लिखा था) बहुत से
प्रकाशको को भेजा गया है, और खासकर उन प्रकाशको को, जिनसे मेरा सम्पर्क

(श्री जनेद्रकुमार, मध्य साहित्य अकादमी, को लिखा गया पत्र)

प्रियवर,

आपके द्वारा अकादमी के विद्वान मंत्री महोदय को मैं यह पत्र लिख रहा हूँ। पत्र का अभिप्राय इस प्रकार है —

मैंने एक पत्र ता २१ / ५६ का साहित्य अकादमी को लिखा था। उस पत्र के सम्बन्ध में दिल्ली के प्रसिद्ध प्रकाशक राजपाल एण्ड सस जो मेरे भी प्रकाशक हैं, ने मुझसे जवाब तलब किया है। साथ ही उस पत्र की अक्षरशः प्रतिलिपि भी भेजी है। ये दोनों पत्र उस पत्र के साथ आपके पास भेज रहा हूँ।

साहित्य अकादमी ने उस पत्र के सम्बन्ध में क्या कायवाही की, यह अद्यावधि मुझे ज्ञात नहीं हुआ। पर तु मेरा यह पत्र नितांत व्यक्तिगत और गोपनीय था। मैं नहीं समझ सकता कि यह बाहरी लोगों के हाथ कैसे लगा। क्या अकादमी ने इस पत्र के सत्यासत्य की जांच करने का भार उक्त प्रकाशक को दिया है। पता लगा है कि कुछ विरोधी तत्वा ने द्वेषपत्र मेरी प्रतिष्ठा भंग करने के इरादे से अकादमी के एक कर्मचारी से यह पत्र चुराया है। मैं आपके द्वारा अकादमी के मंत्री महोदय से अनुरोध करता हूँ कि वह इस बात की सचाई का पता लगाने का कष्ट करे, और अपराधी को त्रिभागीय दण्ड दे।

७ १२ ५८

—भवदीय, चतुरसेन

(श्रीहृमायू कृष्णरत्न गल्ल—गाहिय अकादमी, शिक्षामन्त्रालय, नई दिल्ली को लिखा पत्र)
आदरणीय,

इस पत्र के द्वारा मैं आपका ध्यान निम्नलिखित तथ्यों की ओर आकर्षित करता हूँ —

- १ - मैंने एक पत्र तारीख २१ / ५६ का साहित्य अकादमी के मंत्री महोदय को लिखा था। जिनसे मैंने अपने साहित्य के प्रकाशन के लिए सहायता मांगी थी। पत्र की तकल गार म सतग्न है। पत्र पर अकादमी ने क्या निराय किया, इसकी कोई सूचना अद्यावधि मुझे नहीं मिली।
- २ - चार दिग्गजों का एक पत्र मुझे दिल्ली के प्रसिद्ध प्रकाशक, राजपाल एण्ड सस का मित्रा। जिनसे मैंने उक्त पत्र की नकल सलग्न थी। उस पत्र में उन्होंने मुझसे पत्राशक्त पर लगाए उन आरोपों का जवाब तलब तीखी और अपमानजनक भाषा में किया, जो मेरे पत्र में थी ही नहीं। उस पत्र की नकल भी आपकी सेवा में भज रहा हूँ।
- ३—उम्मेरा नद मुझे ज्ञात हुआ कि यह पत्र (जो मैंने अकादमी को लिखा था) बहुत से प्रकाशकों को भेजा गया है, और खासकर उन प्रकाशकों को, जिनसे मेरा सम्पर्क

ने, मरणा की कृपा का प्रस्ताव किया है।

४ राजसमन द्वारा प्रेषित 'प्रशासन समाचार' में यह पत्र खास तौर पर बलबूढ़ा से मजाकर उपाया गया है। तथा भी अमर प्रशासन मागी था और वह अस्वीकार कर ले गई, यह मरणा कृपा से उपाया गया है। इस मुझसे सम्बन्धित प्रशासन को उत्तमजित कराने का उपाय है। स्पष्ट है कि यह नाम व्यक्तिगत रूप के कारण मुझे अपमानित करने तथा मुझे प्रतिपक्षित करने का कारण है।

५-- मुझे उस बात का अत्यंत आश्चर्य है कि यह पत्र उन लोगों के हाथ से लगा। तथा वह उस पर अनादमी के विषय का भी पता कैसे लग गया, जबकि उसका नाम मुझे भी नहीं है। निम्न है यह मरणा व्यक्तिगत पत्र था और उससे सम्बन्धित अथवा सांख्यिक रूप में प्रकाशित कराने का उचित अधिकार नहीं था।

११/१०/१६

भारतीय, चतुरसेन

(धुन हृदय श्रीमिर्मा राजा का पत्र)

पूज्यवर आचार्यजी,

आपका २१/१० का मंत्री साहित्य अकादमी के नाम लिखा गया आपका पत्र 'प्रशासन समाचार' दिसम्बर १९१६ में प्रकाशित हुआ है। उस पढ़कर वास्तव में बहुत दुःख और आश्चर्य हुआ, क्योंकि आप मरीया तयातुद्ध और पथदशक साहित्यकार के प्रति प्रकाशका का ऐसा व्यवहार स्वयं कर चुके हैं।

- आपका ही, मिलिद

(अकादमी द्वारा आचार्य महाशय का उत्तरी पत्र)

आदरणीय,

आपका पत्रिका २१/१० के आचार्य अज्ञान सम्प्रदाय प्रायः आपका जो हिंदी परामर्शनी समिति का २१ दिसम्बर १९१६ का पत्र में प्रकाशित किया गया था। सूचना दी गई है कि समिति ने आपकी धारणा को स्वीकार करने में आपकी असमर्थता पाई है। सरयवा

आपका, २०/१०/१६, मरणा मन्त्री (प्रशासन)

(त्रि-दिनांक में स्थित मरणा सूचना का सांख्यिक साहित्य का लिखा गया पत्र और उम्मा उत्तर)

प्रिय श्रीमिर्मा राजा

मेरे यह अत्यंत आश्चर्य का पत्र आपकी लिखा रहा है। मैं जानता हूँ कि इस पत्र का विषय आपसे सम्बन्धित है या नहीं, परन्तु सोचियत सूचनाओं में मैं पत्र आपकी से परिचित हूँ, अतः आपका यह पत्र लिख रहा हूँ।

आपका ज्ञात है कि अमरिका में साहित्यिक मंच पर खासकर मंच के प्रधान मंत्री

श्रीखुश्चेत पर हत्याओं और तानाशाही के गम्भीर आरोप लगाए हैं, जिनसे विचारकों का चित्त चल विचल हो रहा है। वे विचारक—जो किसी भी राजनीतिक प्रभाव से मुक्त युद्ध साहित्यिक हैं और स्वभावतः ही मानव मित्र हैं साथ ही सोवियत मध्य के प्रशंसक भी हैं, जिनमें मैं भी एक हूँ—चाहते हैं कि इन आरोपों का निराकरण यदि हो सकता है तो किया जाय। खासकर मैं इस समय विश्वकी चालू राजनीति पर एक उपयाम 'खग्रास' लिख रहा हूँ और उसमें यह आरोप समावेशित करने को वाध्य हूँ। कि तु चाहता हूँ कि इनका यथाथ निराकरण भी मेरे उपयास में अवश्य रहे। आप या मेरे पत्रक विषय से सम्बन्धित सोवियत दूतावास के कोई भी सज्जन इस दिशा में कुछ सहायता कर सकेंगे तो मैं अतिशय आभारी होऊँगा। नमस्कार सहित।

२७ १२ ५८

भवदीय, चतुरसेन

मायवर आचार्यजी,

आपका २७ १२-५८ का पत्र मिला। यह जानकर प्रसन्नता हुई कि आप आज कल विश्व राजनीति पर उपयास लिख रहे हैं। मेरी बधाई स्वीकार करे।

जहाँ तक दुनिया के किसी विशेष देश अथवा देशों द्वारा हमारे प्रधान मंत्री पर 'हत्याओं' और 'तानाशाही' के कथित अभियोग का सम्बन्ध है, मैं निवेदन करना चाहूँगा कि उस प्रकार के आरोप पिछले चालीस वर्षों से, जब से हमारे देश में समाजवादी ढाँचे में जन्म लिया है, निरंतर हो रहे हैं। उन आरोपों की भयानकता को यदि देखा जाय तो सोवियत सत्ता को १९१७ में ही समाप्त हो जाना चाहिए था, जसा कि उस समय पश्चिम के बड़े बड़े श्रीमानों ने भविष्यवाणी की थी। पर तु सोवियत मध्य का वतुर्मुखी विकास और असाधारण सृष्टि तथा वज्ञानिक प्रगति को देखते हुए यदि कोई हमारे देश एवं हमारे नेताओं पर लगाए गए झूठे आरोपों को सही मानना चाहता है, तो हम उस पर क्या कर सकते हैं।

मैं स्वयं उस सम्बन्ध में आपसे बातचीत करता हूँ और अपनी योग्यतानुसार स्थिति का सफाई करण करता, पर तु मुझे यद है कि यह सम्भव न हो सकेगा, क्योंकि मैं उसी गणतंत्र देश लोट रहा हूँ।

फिर भी प्राण्य साहित्य आपकी सेवा में भेज रहा हूँ। शायद उससे आपको कुछ सहायता मिल सके। आशा है आप स्वस्थ एवं मानद होंगे। शुभ कामनाओं सहित।

८ १ ५९

—त्रिनीत, वाराणसिकोव, अटैची, सोवियत दूतावास

(पण्डित नेहरू को लिखा गया एक पत्र)

प्रिय नेहरू जी,

देश भीतर में बिगड़ रहा है और बाहर से उस पर भारी दबाव पड़ रहा है। आप ससद में भी और उससे बाहर भी दिन दिन अकेले पड़त जा रहे हैं। कसे आप

जब वह मुझे जानकारी प्राप्त करने आपके पास गया। इन सब कारणों से मैं इस निष्कर्ष पर पहुँचा कि आप लोगों के हृदय में मेरे प्रति कानी कोड़ी के समान भावप्रतिष्ठा तथा श्रद्धा नहीं है। राष्ट्रपति के तथा नहरू जी के भाषणों से मुझे न कुछ ज्ञान की प्राप्ति होगी न मनोरंजन। आप यदि मुझे इस धूमधाम में केवल अपना दरबारी बनाया चाहते हैं तो उसके लिए दिल्ली में बहुत भूख मारूँ हूँ, जिनके पास ऐसे कामों में नष्ट करने के लिए बहुत फालतू समय है, तथा हराम की कमाई से खरीदी हुई मोटर गाड़ियाँ हैं। मैं तो एक गरीब और मजदूर साहित्यकार हूँ, आप लोगों की भाँति दरबारी पन्थान पाकर गुनठर उड़ाने वाला खद्दरपाश नहीं। इसलिये मैं अपना मूल्यवान समय आपका दरबारी बनकर नष्ट करने से इन्कार करता हूँ और आप लोगों न जो मेरे प्रति अज्ञान प्रकट की है, उसकी प्रतिक्रिया स्वरूप आपके भेजे हुए इस निमंत्रण को तिरस्कारपूर्वक वापस भेजता हूँ।

मैं अपना यह विचार भी आप पर प्रकट कर देना चाहता हूँ कि एकेडेमी के आयोजनों में जो नाम दिये गये हैं, उनमें एक भी ऐसा व्यक्ति मुझे नहीं दीखता है, जो 'संस्कृति' तथा 'यत्' भी जानता हो। फिर कांग्रेस तो एक ऐसी मुद्दार और गुमराह मर्यादा है, जो संस्कृति का निर्माण कर ही नहीं सकती। फिर उससे अधिक गुमराह वे हैं जो योग्यता न होने पर भी केवल पूँव सुकत (?) का फल भोगने इस सरकार के शीपस्थानों पर बैठ देश का बहन बेटियों का नगी और बच्चों को भूखा कलपता देख हस हस कर भ्रष्टाचारियों के नोटों के मुट्टों से भरे हाथों से हाथ मिला रहते हैं। ऐसे लोग आपके सामासकतिक गायजनों को शोभा बढ़ाने में भी पीछे न रहेंगे।

आ मेरे मित्र, यदि मुझे आपके इस आयोजित तथा कथित सांस्कृतिक आयोजन का मौजूदगी मजा लेना होगा तो मेरे जैसे साधारण जनता के लिये दशक टिकटों की विक्री की व्यवस्था है। खरीद कर अपनी आँखें बंद कर आऊँगा। आप लोगों को अनुग्रह करने की कोई आवश्यकता नहीं है।

—आपका चतुरसेन

१५ ३-१९

पुनश्च चकि आपके इस सांस्कृतिक आयोजन के कर्त्तव्यताओं में आप ही एक मेरे परिचित हैं, इसी से यह पत्र मैंने आपको लिखा है। परंतु वास्तव में मैं सब आयोजनों का ही नाम। यह पत्र मैंने अपने आत्मचरित में भी नत्थी कर लिया है जिससे आगे आने वाली पीढ़ियाँ यह जान ले कि जिस पुरुष ने चालीस वर्ष अपनी कलम से घास त्रीती और ८५ ग्रंथों से हिंदी का भण्डार भरा, उसके साथ उसी की नाक पर बैठकर इन संस्कृति के ठेकेदारों ने कसी उपेक्षा और अवज्ञा का व्यवहार किया था। इसलिये मैं आपकी ईमानदारी के नाम पर आप से अपील करता हूँ कि इसे सभी लोगों पर विदित कर दें।

कानोकान खबर नहीं, उसे तुम या कोई जान कैसे सकता है। सूरज को मने पुकारा या कि वह आकर एना महीने मेरे पास रहकर दुख सागर में डूबते हुए मेरे अभिगन्त एनामी जीवन का जरा सा सहारा दे जाय। पर वह न आया, न आया और अब और बहुत सी बातों की तरह, मैंने उसके लिए भी सत्र कर लिया।

और बहुतों की भांति तुम्हारे पास में आता नहीं हूँ परंतु तुम्हारे आज के सुखी और चिरभिलपित जीवन को देखकर आनंदित रहता हूँ। तुम कदाचि उस पुरुष के आनंद का महत्त्व समझ सना, जो स्वयं दर्विपाक से मम व्यथा का गिकार हा चुका है और प्रियत्रु के मुख से प्रसन्न है। मैं तुम्हारे स्वास्थ्य के लिए भयभीत प्रवश्य हूँ और जब जब तुम्हारे कायभार का ध्यान करता हूँ, सब कुछ भूलकर तुम्हारी ही चिंता करने लगता हूँ। तुम्हें मेरा यह खत एक त्रेहुदा सा लगगा, एक फालतू सनक जसा। फिर, साहित्यिक भावुत्र और सनकी तो होते ही हैं। उस दिन तुम्हारे न आने पर मैंने आम् प्रश्य बहाण, पर ये कम्पत तो या ही बहते बहते रहते हैं। आख में नासूर जो हो गया है। कुछ इमना यह मतलब नहीं कि मुझ कुछ दुख हुआ। न इम पत्र के द्वारा मैं शिनायत ही करता हूँ। यह पत्र लिखकर तो मैंने अपना मन हलका किया है। पढता और फाउ फरता। मिमी तजीर के लिए ऐसे प्रम पत्र लिखना निहायत बेहूदा है। हा, इस खत में मने तुम्हें 'तुम करके सम्बोधन किया है, उसके लिए क्षमा करना। हमेशा ऐसा नहीं करूंगा, पर इस बार मन को न रोक सका।

८ ६ ५५

—तुम्हारा, चतुरसेन

(श्री जैनन्द्रकुमार का पत्र व्यवहार)

प्रिय जनद्र जी,

'त्रिपत्र' कही से च द्रसेन उठा लाए, कल तमाम दिन लगा कर उसे पढ डाला। पढकर दुख और गुस्सा स मेरा मन कसा तो होगया। उप यास नहीं लिखा गया, कलम-पिसारि नी गई है। भाषा जसी बतुकी दूटी फूटी और तुतलाती लगडाती है वसा ही उप याग का विषय प्रसार। कही कोई तुक ही नजर नहीं आती। कब कौन पात्र गुस्सा होता है, हसता है, रोता है, आता है, जाता है, इसका पता ही नहीं लगता। जसे सबन भाग खालां है और जब जो जी में आता है, आचरण कर डालता है। सिनेमाग्रा में कल्पित अभातनीय जीवन दियाए ही जाते हैं, अब आप उप यासों में भी ऐसे कमअवल पति और सनकी औरत के रेखा चित्रों पर परिश्रम करने लगे। मैं इस बात पर विश्वास ही नहीं कर सकता कि आप इससे अच्छा नहीं लिख सकते, पर लिखन का मूड भी हो। आगे आने वाली पीढियाँ आपके नाम पर ऐसा साहित्य पढकर क्या कहेगी? शायद आप इन तारीफ करने वाले भाडों से प्रभावित हो, जो आपके चारों तरफ फले हैं तथा समा लोचना को जिहोने अपनी कुत्सा का विलास बनाया हुआ है। पर न ये जीवित रहेंगे,

पर ये और श्रीजने द्रमुमार भी एक सदस्य के अधिकार से उसमें उपस्थित थे। पुरस्कार निर्णय में तीसरे दिन श्रीजने द्रमुमार आचार्यश्री के पास भारी मन लिए आए और कहने लगे कि परमा एक बहुत भारी अफवाज मुझमें हाँ गया है, जिसका वाक्य अभी मेरे मन पर है। हमने रात्रि उद्घाटन मीटिंग की वायवाही सुनाई कि किस प्रकार कवल पात्र मिनिट में उक्त परमा का निर्णय श्रीनेहरू जी की जट्टबाजी से हाँ गया, और मेरे मध्य में 'वशाली' का नगरप्रश्न का नाम आते आते रह गया। आचार्यश्री ने इसीसे सम्बन्धित यह पत्र जन द्रमुमार को लिखा)

प्रिय जनजी,

उक्त दिन आपने एकेडमी के पुरस्कार निर्णय के सम्बन्ध में आत्मपीडा का जामकेत किया उसकी भर मन पर गहरी प्रतिक्रिया हुई, और न जाने कब कब कब दब हाँ दब उभर गया। उन तीन दिनों तक मेरे मन में पीड़ित रहा और आज इस अर्थ निशाम य पत्नियाँ मने तिरपी हैं। 'अथर्वाम' के साथ मेरा जो चित्र जा रहा है, उसके नीचे ही य पत्नियाँ - या मरी उस क्षण की आत्माभिलाष या जा कुछ कहिए, छप रही है। यथा समय उन पत्नियाँ का भी भाष्य होगा और मेरे तब आपकी उस आत्मपीडा का उन्मुख भी होगा। मेरा मन था कि यह पुरस्कार मुझे मिलना चाहिए था। वास्तव में 'वशाली' का नगरप्रश्न उसकी पकड़ अधिकारिणी थी। मेरा अपने मुहसे ये शब्द कहना मेरे लिए शान्तीय नहीं है, पर तु उन शब्दों में मेरे मन का सत्य है, जिसे आपके सम्मुख कहने मुझे तनिक भी मनाच नहीं है। यों में दावा नहीं करता कि मैंने उस काल के साहित्य की सही आनवीन की है, जो इस पुरस्कार के लिए नियत था, परन्तु यह भी सत्य है कि मेरी 'मानसिक' के आनवीन निर्णायकाने भी नहीं की। निश्चय ही निर्णायको का यह पत्रपात नहीं है, तो घोर अज्ञान है। और मेरे तो 'नगरवधू' को इस युग की प्रतिनिधि रचना मानता हूँ। दम्भ या आत्मश्लाघा से नहीं, सत्य भाव से। कदाचित् आपको ज्ञान नहीं कि रेणियाँ न उक्त पुस्तक की गद्दी से गन्दी समालोचना की थी। मुझे याद नहीं कि किसी पत्रिका ने भी याच किया हो। मेरे साथ जैसा आज तक होता रहा है, वगैरह मरी उस रचना के साथ भी हुआ है, पर मुझे अपने पाठको पर मतोप है। हाल में 'सामनाथ' पर भी रडियो ने नि दात्मक आलोचना की थी। तमाशा यह कि जाना तार रेडियो अधिकारी आग्रहपूर्वक पुस्तक समालोचनाथ ले गए, मेरे तो भजा ही नहीं। मैं तो पत्रों को भी समालोचनाथ नहीं भेजता, क्योंकि मेरी दृष्टि में प्रचार्यास्पद और सूर्यतापुगा हाँती है। पर तु यह बात तो अवश्य है कि एकेडमी के ये सदस्य मेरी कुछ भूठी सच्ची बाहरी धूम मार सुनते तो शायद उनका ध्यान इस ओर जाता। क्योंकि उनका अपना ज्ञान तो जो है, वह उनके निर्णय ही से प्रकट है। मैं यह भी कहूँ कि गत वर्ष केन्द्र ने जो २००० का पुरस्कार दिया था, मेरी पुस्तक 'नगर-

पर ये गौर श्रीजनेन्द्रगुमार भी एक सदस्य ने अधिकार से उसमें उपस्थित थे। पुरस्कार निगमना निगमन दिन श्रीजन द्रवुमार आचार्यश्री के पास भारी मन लिए आए और कहने लगे कि परमाणा वहन भारी अणुगण मुभस हा गया है, जिनका बोझ अभी मेरे मन पर है। इस प्रकार उद्दान मीटिंग की कायग्राही मुनाई कि किस प्रकार केवल पात्र मित्रम उक्त पुरस्कार का निगमय श्रीनहरू जी की जल्दबाजी से हा गया और मेरे मग्न मन 'वनाती नो नगरव' का नाम आते आते रह गया। आचार्यश्री न इसीसे सम्बन्धित यह पत्र जन द्रवुमार को लिखा)

प्रिय जन द्र जी,

उम दिन गापन एकेडमी के पुरस्कार निगमय के सम्बन्ध में आत्मपीडा का जो मकेत किया उमगी मग्न मन पर गहरी प्रतिक्रिया हुई, और न जाने कब कब के दिन हुए दद उभर आए। उन तान दिनों तक मे उस दद में पीडित रहा और आज तम अद्ध निशाम य पत्नियां मने निगयी है। प्रयस्थाम' क साथ मेरा जो चित्र जा रहा है, उसके नीचे ही ये पत्नियां या मेरी इस क्षण की आत्माभिलाष या जा कुछ कहिए छप रही है। यथा समय उन पत्नियों का भी भाग्य होगा और मे तब आपकी उस आत्मपीडा का उत्तरेय भी उभगा। मेरा मन था कि यह पुरस्कार मुझे मिलना चाहिए था। 'यायत 'नशाली नी नगरव' उमकी प्रकृत अधिकारिगी थी। मेरा अपने मुहमे ये शब्द कहना मेरे लिए गामनीय नहीं है, पर तु उन शब्दों में मेरे मन का सत्य है, जिसे आपके सम्मुख कहते मुझे तरिफ भां सहाज नहीं है। यो मं दारा नहीं करता कि मैं उस काल के ग्राहित्य की सन्धी ठाननीन की है, जो उम पुरस्कार के लिए नियत था, परन्तु यह भी सत्य है कि ऐसी 'मानदारी ग ठानबीन निगमयवाने भी नहीं की। निश्चय ही निगमयिको का यह पत्रपात नहीं है, तो घोर अज्ञान है। और मे तो 'नगरवधू' को इस युग की प्रतिनिधि रचना मानता ह। दम्भ या आत्मश्लाघा से नहीं, सत्य भाव से। कदाचित् आपको ज्ञात नहीं कि रेन्या न उम पुस्तक की ग दी से गन्दी समालोचना की थी। मुझ याद नहीं कि तिमो पत्रिका ने भा याय किया हो। मेरे साथ जैसा आज तक होता रहा है, प्रसा ही मेरी इस रचना के साथ भी हुआ है, पर मुझे अपने पाठको पर गतोप है। हान तो म 'सोमनाथ' पर भी रदियों ने नि वात्मक आलोचना की थी। तमाशा यह कि प्राणा गार रेदियों अत्रिजारी आग्रहपूर्वक पुस्तक समालोचनाथ ले गए, मग्न तो भजी तो नहीं। मैं तो पत्रा का भी समालोचनाथ नहीं भेजता, क्योंकि मेरी दृष्टि म न गार्यास्पद आर मूयतापूग होती है। पर तु यह बात तो अवश्य है कि एकेडमी के ये सदस्य ऐसी कुत्र भूठी सचनी बाहरी धूमधाम सुनते तो शायद उनका ध्यान इस ओर जाता। म्याकि उनका अपना ज्ञान तो जो है, वह उनके निगमय ही से प्रकट है। मैं यह भी नहीं कि गत वष केन्द्र ने जो २००० का पुरस्कार दिया था, मेरी पुस्तक 'नगर-

ता म रगसे पीउ न रहता ।

आपकी प्रतिभा का म भक्त और स्नेह का ऋणी हूँ। आपको देखकर कभी लगता है कि समय सन्तान है। क्यों अनिर्णय होता है कि समय प्रतिभा को न समझ सके। प्रतिभा म ननिष्ठ अतिरिक्त जो सामर्थ्य होती है, समय उसी से असमर्थ रह जाता है। 'ययस्याम' के साथ जाने वाली पत्नियों ने मन को छू लिया पर समय अपना गिर चुने, आप ता अपने म भरपूर रहने के लिए है।

माथ का आता है, आशा है वहाँ आपके अग्रश्य दशन होंगे।

३० ३ ७७

—विनीत, जनेन्द्रकुमार

प्रिय जनद्र जी,

सागरनामा मंग लेख और उसके प्रत्युत्तर म लिखा गया उस छात्र का लेख मेरे परिचित और अपरिचित साहित्यजो न पढा और मुह फेर लिया। जसे इम मामने म उताता काँ सरोकार ही नहीं। यह तो जानता हूँ कि साहित्यिका की वस तुनिया म न ता याय और अ याय का विचार है, न छोटे बडे की मर्यादा है। अब म प्रटना म म निश्चित रूप से म बात पर पहुँचा कि यह साहित्यकारा की जमात वारी विज्ञान की जमात है, जिसम न किसी अपने साथी के मानापमान को अपनाते की क्षमता है, न उसके संरक्षण की ममता। जब मेने स्वयं आपका ध्यान इधर आक पित किया ता आपन चाहा कि मे आपके हुजर मे एक अपील दायर करूँ, जिसपर आप एक मिफाश्चिनामा सागर विश्वविद्यालय म भेजे। आपका मेरा आज का परि चय वती है और याप मेरी मगहरी को भती प्रकार जानते है, फिर आपने मुझसे एगी आगा की। गायद इमनिष्ठ कि आजकल आप वडे होने के आदी हो गए है और हर चीज का उपपन के चरमे म होकर देखते है।

उन सब बातों की मरे मन पर जो प्रतिक्रिया हुई है, उसके परिणाम स्वरूप म यह पत्र आपका गिर रहा है। जिसका उद्देश्य आपको यह सूचित करने का है कि याप जिस 'भारती' का आयाजन कर रहे है, उसमे सम्मिलित होना निरर्थक समझकर म आपका उमम पत्र करता हूँ। म निश्चित रूप से यह कह सकता हूँ कि इससे मेरे और आपके बीच जो आत्मोयता है, उसम अणुमात्र भी अंतर नहीं आ सकता।

—चतुरसेन

मान्य शास्त्री जी,

तीली जाने फाउन्डेन म स्याही न थी, इससे ही रंग लाल है, और न समझे। काँ आपका मिता। मरे म दिल्ली से बाहर जा रहा हूँ, नहीं तो मिलता और शायद आपका ताराजा भी जरूरत फिर न रह जाती।

आपकी 'मगहरी' जैसा आपने कहा मैं जानता हूँ, पर यह भी जानता हूँ, उसे

राष्ट्रपति महादय,

आपने तारीख २ डिगम्बर ५५, मर्या ८६५० एच ५५ के उत्तर में निवेदन है कि आपका हम केवल इतना ही कष्ट देना चाहते हैं कि समारोह में कुछ क्षण के लिए हमारे बीच उपस्थित रहकर तथा समर्पित ग्रंथ ग्रहण कर आप हमें सत्कृत करें।

८ १२ ५५

—भवदीय, चतुरसेन

प्रिय आचार्य चतुरसेन जी,

आपका शिनांक ८ १२ १९५५ का पत्र राष्ट्रपति जी के नाम प्राप्त हुआ। उत्तर में आपको आदशानुसार सूचित करना है कि आप अपनी जो पुस्तक राष्ट्रपतिजी को समर्पित करना चाहते हैं, उसको ग्रहण करने के लिए उनका बड़ा जाना ठीक नहीं होगा। अतः मैं आपसे निवेदन करूंगा कि आप अपनी पुस्तक राष्ट्रपतिजी को अपने प्रकाशक के माध्यम से राष्ट्रपति भवन में शान्तर भद्र करने का कष्ट करें। जिस तारीख को आप यह कार्यक्रम रचना करते उसकी सूचना दें। उसी के अनुसार व्यवस्था कर दी जाएगी।

१७ १२ ५५

—आपका, वात्मीकि चौधरी, राष्ट्रपति का निजी सचिव
प्रिय श्री चौधरी वात्मीकिजी,

आपका १७ दिसम्बर ५५ का पत्र आचार्यश्री को मिला। राष्ट्रपतिजी को समर्पित ग्रंथ अर्पण करने मात्र के लिए वे नहीं बुलाना चाहते, न वे और उनके प्रकाशक श्री गेलिया उरा बहाने से राष्ट्रपतिजी अथवा उनकी सरकार से किसी अनुग्रह की प्रकट या प्रच्छिन्न कामना करते हैं। उनका उद्देश्य इस समर्पण क्षण को एक शुद्ध साहित्यिक समारोह का रूप देना है, जिसमें नए साहित्य के प्रति जनसाधारण में उत्कृष्ट अभिरुचि और सम्मान की भावना का उदय हो, जिसके अभाव में साहित्य का विकास नहीं हो सकता है। यदि राष्ट्रपतिजी इसे ठीक नहीं समझते तो मात्र पुस्तक अर्पण को रसम अर्पण करने के लिए आचार्यश्री का तथा प्रकाशक का इतनी दूर से जाना पार कष्ट बरता होगा। ऐसी स्थिति में आचार्यश्री और उनके प्रकाशक की विशेष सम्मति और औपचारिक तौर पर श्रम की जो प्रति डाक द्वारा राष्ट्रपतिजी को साक्षात् मजबूत है, उसी का वे स्वीकार करने की कृपा करें।

—भवदीय, चतुरसेन, सहायक आचार्य चतुरसेन

(ग० ओ० तारमाल, जफोस्नेविया के दो पत्र)

प्रियवर भारतीय भाई।

गमना बन्द। मैंने आपसे यहाँ चिट्ठी भेज दी थी, पर तुम आपका उत्तर नहीं भेजा था। मेरा विचार है यह बात कुछ कारणों से स्वाभाविक ही हुई थी। एक तो उम्र समय मेरा ही अध्ययन ही दोषपूर्ण था और आप उसका उद्देश्य अच्छी तरह समझ नहीं ले सके, दूसरे तो प्रत्येक मनुष्य अपने दैनिक कायकलापों

म फल रखा है कारण पर मैं चिन्तित नहीं था।

उस दिन मैंने एक पत्र लिखा था जो आपसे भेजा गया। अनुभव कर रहा हूँ कि मैं आपसे अत्यन्त प्रेमपूर्वक और मर्यादापूर्ण मानना चाहता हूँ, जिसे मैं अपने भावों की भाँति प्रकट कर रहा हूँ। उसी अर्थ में मैंने बहुत कुछ प्रयत्न किया, लेकिन मैंने आपसे कभी नहीं कहा कि मैंने आपसे बहुत कुछ कहा था। मैंने आपसे प्रेमपूर्वक प्रार्थना की है कि आपसे मिल सकूँ। मैं अपने देशवासियों को भारतीय संस्कृति और विज्ञान पर साहित्य में हिंदी द्वारा परिचित करना चाहता हूँ।

उपरोक्त पत्र में मैंने आपसे प्रार्थना की है कि आप भारतीय भाषाओं और संस्कृति में विशेष रूप से प्रयत्न कर सकें। मैंने आपसे प्रार्थना की है कि आपसे मिल सकूँ। मैंने अपने भावों को प्रकट करने में प्रयत्न किया है। मैंने आपसे प्रार्थना की है कि आपसे मिल सकूँ। मैंने अपने भावों को प्रकट करने में प्रयत्न किया है।

उसी दिन मैंने आपको भेजा था कि मैंने आपसे प्रार्थना की है कि आपसे मिल सकूँ। मैंने अपने भावों को प्रकट करने में प्रयत्न किया है। मैंने आपसे प्रार्थना की है कि आपसे मिल सकूँ। मैंने अपने भावों को प्रकट करने में प्रयत्न किया है। मैंने आपसे प्रार्थना की है कि आपसे मिल सकूँ। मैंने अपने भावों को प्रकट करने में प्रयत्न किया है।

आपका पत्र मैंने पढ़ा था और मैंने आपसे प्रार्थना की है कि आपसे मिल सकूँ। मैंने अपने भावों को प्रकट करने में प्रयत्न किया है। मैंने आपसे प्रार्थना की है कि आपसे मिल सकूँ। मैंने अपने भावों को प्रकट करने में प्रयत्न किया है।

आपका पत्र मैंने पढ़ा था और मैंने आपसे प्रार्थना की है कि आपसे मिल सकूँ। मैंने अपने भावों को प्रकट करने में प्रयत्न किया है। मैंने आपसे प्रार्थना की है कि आपसे मिल सकूँ। मैंने अपने भावों को प्रकट करने में प्रयत्न किया है। मैंने आपसे प्रार्थना की है कि आपसे मिल सकूँ। मैंने अपने भावों को प्रकट करने में प्रयत्न किया है।

ऊँची कर रहे ह, कि हमारा अपना कोई देश राष्ट्र वम समाज नहीं है, न हमारा इनके प्रति कोई कत्तव्य है, मनुष्य दुनियाँ की सबसे बड़ी इकाई है और हम उसके पुतारी ह । हम सब ससार के मनुष्य एक है । आपका यह पत्र हमारी इस भावना मे आशा और प्रसन्नता की ज्योति जगमग करने वाला है । इसीसे म आपका अभिनन्दन करता हूँ और अपने यह आतरीय भाव प्रकट करता हूँ कि आप मेरे अति निकट आत्मीय ही ह ।

आपका हिंदी साहित्य और सस्कृति से परिचित होने का सत्प्रयत्न अत्यन्त शुभ है । कामना करता हूँ कि आपकी मनोकामना पूरी हो । आपने जो पुस्तक तयार की है, जब वह छप जाय तब मेरे पास अवश्य भेजिए । तथा आपके देश मे हिंदी के प्रसार के लिए मेरी और मेरे साहित्यिक मित्रों की जो सेवा आवश्यक होगी, वह हम खुशी से आपको दगे । आप मेरी किसी भी कृति का अपने देश की भाषा मे अनुवाद करना चाह तो म आपको इसके लिए अनुमति देता हूँ, तथा अभी आपकी सेवा मे पयक पैन्ट म निम्नलिखित दस पुस्तक भेज रहा हूँ । इहे आप मेरी ओर से प्रेमोपहार समझिए और सदा आत्मीय की भाँति याद रखिए । हाँदिक शुभकामनाओं सहित,
१० १ ५७

—आपका प्रिय ब धु, चतुरमेन

प्रियवर भारतीय भाई ।

दीपावली या क्रिस्मस पव दोनों ही का एक मात्र सदेश यह है कि हम वास्तविक स्नेह से प्रम कर । क्योंकि स्नेह जीवन की चालक शक्ति है और वास्तविक स्नेह दूरस्थ मित्रों को भी आत्मीय बना देता है । मधुर स्मरणों के साथ ।

—आपका विस्मृत चेक भाई, ओडोलेन स्मेक्ल,

(फादर कामिलबुल्के, राची का पत्र)

प्रिय महोदय,

आप मर प्रिय म क्या सोचते होंगे ? मुझको क्या समझगे ? अपराधी के रूप म नतमस्तक होकर, मे आपके सामने खड़ा हूँ और क्षमा मागता हूँ । मुझे इसमे तो रस्ताभर भो गटेर नती कि मुझे क्षमा मिलगी ही । अगर आप उदार नहीं होत तो मुझे पत्र क्यों लिखते । फिर भी मे वास्तव मे लज्जित हूँ । गर्मियों मे कलकत्ता गया था, तान का राज घराने के लिए । राची पहुँचकर अत्यधिक व्यस्त रहा और आपके स्नेहमय पत्र की जनो दर तक उपेक्षा की, मेने । अत क्षमा प्रार्थी हूँ । आशा है आप गान द और स्वस्थ होंगे ।

२७ ७ ५१

—आपका, कामिलबुल्के

(मुश्री इतिहास पत्र द्वारा अमेरिका म लिखे गए पत्र)

पूज्य शास्त्री जी,

यहाँ पहुँचे पाँच महिने गुजर गये । पर समय निकालकर आपको पत्र लिख ही

त्रियाँ भी अमरीकन ही हैं उमे हिंदी सिखाना शुरू किया है। यह विद्यार्थी नायद एकाद
सात में Full bright या Scholarship लेकर हिंद अभ्यास करने आयगा। वह
खूब उत्साही युवक है और हिंद विषयक बहुतसी बातोंकी जानकारी उसने हासिल की है।

विशेष तथा ? पत्र लिखना और जय त परमार को भी पत्र लिखना। उनका
पता फिर न लिखनी है।

३३५८

—हृषिदा के बदन

सोभाग्यवती सु ही हृषिदा पण्डित,

निस्म-देह आपने पत्र के लिए मे उत्सुक था और जब आपका यह पत्र मिला
तो उमे पत्र पर मुझे आनंदिक आनंद प्राप्त हुआ। पत्र में आपकी जिम हटता, अथ
वगाय और ज्ञान पिपासा एवं व्यय सिद्धि की लगेन का आभास मिलता है उसकी
त्रितनी प्रशंसा ही जाय, कम है। मे कामना करता हू कि आप सफल मनोरथ होकर
अपने पति के साथ वृथा से लोटे। शरीर और मन दोनों से स्वस्थ और आनंदित एवं
स्वदेश ग्राह्य वह प्रतिष्ठा और सम्मान प्राप्त करे, जिसकी आप प्रकृत अविकारिणी हैं।

आपके पत्र में एक ही पंक्ति में अमेरिकन नागरिकों के चरित्र का जो संकेत
मिलता है वह उतना प्रिय है कि यदि उसका व्यवहारिक परिचय दुनिया के मनुष्यों को
मिल जाय तो विश्व जिस भयानक आपत्ति की आशंका से भयभीत है उससे मुक्त होकर
सुख ही गम ल। अभी तो समूचा ही विश्व विशेषकर हम लोग भारतीय जि होने
अमेरीका के द्वारा जापान के नगरो पर अणुबम का नशम प्रहार देखा है और उसके
नाशकारियों में जो कुछ हुआ है और अब पाकिस्तान के साथ अमेरीका की जो सैनिक
सहायता हो रही है जिस भारत में गत्यत चिंता और शंका की दृष्टि से देखा जा रहा
है, उसमें हमारी अतः आत्मा और मानस दृष्टि में अमेरीका का जो चित्र अंकित होता
है वह एक दुःखित और रक्तपिपासु राष्ट्र का है। आपके पत्र में तो यही ध्वनित होता
है कि ये गान्धी गान्धिक अग्निचार अमरीकन जनता की रुचि और सहमति के विपरीत
है, वृथा वा लाभ, गण्यत, जिसे विश्व में अथ सांभ्राज्य की स्थापना की बची भारी
जिम्मा है उतर गया है। क्या आप अमेरिकन जनता से इस भावांतर पर प्रकाश डालने
में त्रिणो गार सामर्थ्य भाग्य नहीं कर सकती ? या इसी दृष्टिकोण को लेकर
वृथा वा सामर्थ्य पत्रा में त्रिणो निख सकती ? मैं समझता हूँ कि यदि आप ऐसा
करना चाहेगी वृथा वागत वृथा और आपकी वूम सच जायगी। मेरा जोरदार अनु
राय है कि आप जरूर ऐगा कर। अपना भाषण और लेखों में, गोष्ठियों में, जहां भी
आपका अंतरिम। आप अमेरिकन नागरिकों से कहे कि आप उनके प्रेम, मिलनमारी
और आशीषता तथा अंतर्मात्मा से किम कदर प्रभावित और आप्यायित हुई है।
पर तु मरे दश के नाग अमेरिकनो को हत्यारा और रक्तपिपासु समझकर भयभीत है

गौरवगा समझता है कि यह समझी जा सिया कि वह नारिथी की आराम से रहने देना नहीं चाहता।

परम पापा ब्रह्म है यदि वह जीवता का अन्तर्गम किया है। हम भारतीय जो हमेशा जाते तब ही से और अन्तर्गम मान से जोयायापा करा के अन्वयस्त है, उनके लिए जरूर ही अनुभविकता का मतलब है कि वह कोई दाहि नहीं। हमेशीना से आप हमेशी सांस्कृतिक और अद्विष्ट विद्याता का साथ जब यदि वह जाया का भी अन्वयस्त आसमात करके नोटगो का मेरा खयाल है, आपका मारी जीवन में उमस चुस्ती और सुखप्रकाश ही कायम होगी।

अनुवाद के प्रकाशित क मन्त्र प्रमम श्रीजयंत परभार का शीत्र ही पर त्रिव्यूग और पुस्तक का शीत्र आपकी अन्वयस्था रहेगा। 'अन्वयस्त' को एक बार अन्वयस्त विचारकर आप फिर पता और अन्वयस्त हृदययोग से उम पर विचार कर कि यह रूप याम पात्रका व समाप्त म अतीत भारतीय जायत पर कुछ सांस्कृतिक पभाव गानने में सफल होगा कि नहीं और अन्वयस्त आशा से म सुखता में मती प्रत्युत अन्वयजी म कर और अन्वयजी वचा वता जटां वता मती अन्वयता म और कुछ पभावत सन्वाश्रो में भी कर। अन्वयजी रहने रूप यदि सम्पूर्ण रूप याम का आशा का भी हो पाया तो जितने भी अन्वय का अनुवाद का जाय उमी पर म किया प्रामाणिक पभावत म मामला ठीक कर नीजिग कि यह याराप और अन्वयजी का विचार 'अन्वयस्त' का अन्वयजी सन्वयगत प्रकाशित करे। अन्वयपर मूत अन्वय योर अनुवाद का हो तो का नाम रहेगा और रायल्टी प्राप्त होगी। पूर्वनिश्चित यन्त्रा म का भागा म अन्वयता ही जायगा। मे आशा करता है कि यह एक लाभदायक साथ होगा।

यह आशा है कि विचार का अनुवाद, आप करे। आप उम हक म अनुवाद कर कि अन्वय पर मती मता तार हो कर आप एक तथा सवा म गीर्वाण रूप याम विचार की है अन्वयता विचार योर ताता ता का सवा एक मीर्वाण अन्वयजी रूप याम ता का अन्वय भाषा वता योर अन्वयव्यवस्था में अन्वयजी साहित्य को ही पर अन्वय मती मती अन्वयव्यवस्था विचार म मती अन्वयव्यवस्था का जरूर विचार रखा जाय। ऐसा करना म मती रखा है कि रूप याम अन्वयव्यवस्था पृष्ठा म समाप्त हो जायगा। अन्वयता का पृष्ठ का मती रखा है और भी मती रखा। म सुनिश्चित क साथ याम ही कुछ अन्वयव्यवस्था का पता मती जाय, अन्वयव्यवस्था यका ताता पर भिन्न भिन्न का तार प्रकाशित क पाव मती म अन्वयव्यवस्था का। यकी कुछ ऐसा का अन्वय वन गया है कि अन्वयव्यवस्था और फा अन्वयव्यवस्था सांस्कृतिक अन्वयव्यवस्था उम यमती भाषाश्रो म उप-निश्चित करता ताता है। अन्वयव्यवस्था सिर्फ अन्वयव्यवस्था करती ही है। म आशा करता है कि अन्वयव्यवस्था मती आप उम साथ ही अन्वयव्यवस्था लभी और वटां म वापिस दाने

के समय दो एक अच्छे प्रकाशकों से सम्पर्क स्थापित करके आयेगी। ताकि यदि वहा रहते कार्य पूरा न भी हो तो यहा आने के बाद उसे पूरा करके प्रकाशित होने के लिए वहा भेज दिया जाय। टाइप आदि करने के लिए यदि कुछ आर्थिक दिक्कत हो तो लिख दीजिएगा, यहा से व्यवस्था करदी जायगी।

बच्चो के त्रिण बुद्धि विकास सम्बन्धी कुछ भौगोलिक, वैज्ञानिक और ऐतिहासिक एवं नागरिक शास्त्र सम्बन्धी पुस्तके मै लिखने की सोच रहा हूँ। ऐसा माहित्य आपको वहा हाथ लगे तो जरूर कुछ पुस्तके मेरे पास भिजवा दीजिए। पुस्तके सचित्र ही होनी चाहिए। मेरा नया उपयास 'सोमनाथ' सम्भवत अप्रैल के अंत तक प्रकाशित हो जायगा, जिसे मै आपके पास भेजूगा।

आपने जो वहा एक विद्यार्थी को हिंदी सिखाना शुरू किया है, आपके इस प्रयत्न में मेरा साराहना करता हूँ। आप जरूर युवको के हृदय में हिंदी सीखने की रुचि उत्पन्न कीजिए और भारत में आकर हिंदी का सम्पूर्ण अध्ययन करने की ओर उन्हें प्रवृत्त कराइए। मैं चाहता था कि इधर हिंदी के जो कुछ नए प्रकाशन हुए हैं, उनमें से कुछ पुस्तके आपके पास भेजूं पर ऐसा मै इस भय से नहीं कर रहा कि वहा आप जिस काम में लगे हुई हैं उसमें उन पुरतको के पढने का समय नहीं मिलेगा। यहा साहित्य की प्रगति में कोई नवीनता नहीं दृष्टिगोचर हो रही है। राजनतिक वातावरण कुछ ऐसा शुष्क होता जा रहा है, जिसे सारी ही सांस्कृतिक भावनाएँ दब सी रही हैं। इस समय भारत में दो ही विषया पर जनता का ध्यान केन्द्रित है एक प्रयाग के कुम्भ में दुषटना के कारण, जहा लगभग दो ढाई हजार नरनारी दो ही चार मिनट में भीड़ में कुचन कर मर गयीं। य दुषटना ३ फरवरी की प्रात काल ६ बजे कुम्भ के सगम क्षेत्र पर घटित हुई, जबकि वहा चालीस लाख मनुष्योंकी अनियंत्रित भीड़ बकाबू हो गई। दूसरी घटना अमरीका द्वारा पाकिस्तान को सैनिक सहायता दी जाने की है, जिसका सारे ही भारतवर्ष में तीव्र विरोध हो रहा है और एक प्रकार के भय और आशंका का वातावरण देश भर में व्याप्त है। आश्चर्य नहीं कि निकट भविष्य में कुछ राजनतिक उलभन घटित हो जाय।

अतः मैं आपको उन सब सुविधाओं और सुयोगों के लिए बधाई देता हूँ जो आपको वहा प्राप्त हुई हैं। आपके अथवा प्रयास और लगन के लिए अभिनंदन करता हूँ। अपना सारी वहा बहुत हार्दिक शुभकामनाएँ आप ग्रहण कीजिए और अपने पति से मेरा प्रमाभिवादा कह दीजिए।

११ ३ ५८

—शुभाकाशी, चतुरसेन

पूज्य शास्त्री जी,

आपका १६वीं मार्च का लिखा हुआ पत्र मुझे मिले आज कई दिन हो गये

दिता दि।। मे प्रत्युत्तर । वार म गाल रही थी, ब्राज विचार का गमन कर रही ह । आपन आपन पत्र म ५२ निय जा गुभारात्वाप्र त्यक्त ही है, उगन निय म सत्रमुच आप ही कृतज्ञ हैं । आपका पत्र पत्कर म उननो भायुक्त वन मठी वि जम मने सच मुव प्रपन स्योय ह्य पिता का पा गया हो । म जरा मो र्ति यथिन नही करती वार सत्रमुच अपा हृदय की सन्धी भावनाया का फगज पर उतारन का प्रयत्न करती ह । मुझे ऐसा लगता है कि हमारा समा व व्ययगायिक कारणा म हुआ, तबिन दश से उतनी दर उमी हुआ म आपने साव जिम आत्मीयता का अनुभव करती हैं उसका उगान कैसे कर ।

यना पर भाषण करने के अगसर प्राय सूत्र मित्त करत ह । हिंद मे अंग्रेजी ताता म भिभकती थी, तैकिन यहा आफर ६ मठी म तम से तम १०-१५ भाषण कर गये थे । यहा के नाग हिंद व विषय म उनन जितामु ह और म हमगा हिंदी साठी म ही रहती हैं, जिमने मुझे तता मान मितता ह कि जिगरी मुम अपत्ता ही नही थी । यना चन अपा म, Social Soronitics म वार Women Clubs मे जहा जहाँ जानी हैं ति र्ता हृषिकोग समभात का प्रयत्न करनी हैं । राज,रा त्रि तह (उ हे म सत्ता चि तत्र नही मानती) जिम तिगा म विचार करत ह और उाके भाषण लेख तगरह म हिंद विरो ही पचार यहा भी सूत्र रहता है, हिंद को परावर समभने का ये नाग प्रयत्न नही करत, तबिन आम जनता की समभार है । उमस हिंद की शाति विषयक नीति का प्रचार करना व । गरन हो गया है । उम नाग हिंद म रई कनात म वस्तुय नाथ है । उ ममरिक्तता हो थीता वार ति म आजत व निय आमत्रित करत है और हिंद विषयत अरगमभ का दर वरा का फाजिश करा ह । मे मानती कि जिता विचारी यहा पता याव है, प्रहमारी सरसारी ता वार म unofficals Ambassadors ह, उाका तातर आ सरां जरा मो ती ता तातिय, हिंद को represent करत उाका परिपफा ता तातिय । तिता मभ मर कता म प्रउा दुम ह तिनि क वार म त्सार विचारी यहा तम जात है और यता वताम हिंद की परिपफा व तागत ही ताता ।

हमारा एत परिचिता मति ता सोमता परिपफात जा ति म जायद उता यता ताम तागण करती व यहा व American Acronentic Women's Association ता गरस तािया ता शफर ता जा रही है । इतसु एक अ-अ पायनेत गाव ति म उम ता रता है । यरा फ, तोर ता है ति मतिर ता रगीत तिता तिसो म Guide जरा त मित । यता एत मिजारा व हिंद ही शफर म तातरस ता समात मतिर तिता मज है उता मित ता ता । तिया सूत्र Guide ने समभाया तागा ति ति उ नाग व दरा ता पूजा करत है । नाग एमा मुनकर हम नही

तो क्या कर ? मुझे यह हरीकृत जानकर बड़ा दुःख हुआ था । इसलिए आपके समय में से बाँटा समय मेरे लिये हमारे हिंद के लिये खर्च करने को नम्र विनती में आपन करती हूँ । हिंद को बड़ा चंगा करके तो नहीं तकिन जमा हे वसा मच्चा चित्र उसकी आम्बो के सामने रखन म आप अगर महायना करेगे तो म आपकी खूब आभारी रहूँगी । एता ग्रहन को हमने I and Book of India दी है और अनक वाते वतनाइ हे । हिंदी भोजन भी मिलाया हे । व करीब सात आठ दिन दिल्ली म रहगी । Imperial Hotel म और तह । म आगरा, जयपुर, फतहपुर सिक्री, अजमेर दखनर कश्मीर जायेगी । उनके कार्यक्रम के मुताबिक मई के पहले सप्ताह म दिल्ली म पात्र रखगी । मन आपम पूछे विना ही आपका पता उ ह देने की यष्टता ता की ट । आशा हे आप मुझे माफ करेगे । वे आपका पत्र लिखनर आपको उसके आने की सूचना दगी, आप बन सके तो किमी Authentic Guide कोयह काम सौप दना, जिमसे हे म शाति रहेगी । वे आपको मिनगी तो मही पर मे जानती हूँ आप बडे व्यवसायी रहते हे, इमलिय समय के मुताबिक काम करना । आपको इममे थोडीसी तरलीफ उठानी पडेगी जिसका मुझे ख्याल ह, पर मेरे पास कोई चारा नही हे । त्रियागज म हमारी पहचान वाली एक मस्कानी कुटुम्ब रहता था पर वह अब लयान रहने लगा हे और, और किमी को मै नही जानती जिसमे आपको हेरान करती हूँ ।

‘गान्धी जी नगरबधु के बारे म मैने यहा की एक लेखिका के साथ बात चीन ती हे । थोडासा अनुवाद करके प्रकाशक को बताना पडेगा और फिर अय वाते गय टोगी । गने आप म नतना पर गभीर विचार किया हे और अमली बनाने के बार मे मोच रहती हूँ । मोका मिनते ही काय करूगी और क्या होना हे वह लिखूँगी ।

आपन बच्चो के बारे मे जो गहित्य मगाया है वह थोडे दिनी मे रवाना करूंगा । आपका ‘शोमनाथ प्रकट होते ही यहा भेजने का आपका विचार बडा पसन्द आया ।

यहा के हाउट्टोजन बम्ब के बारे मे आपने सुना होगा । विज्ञान का उपयोग सतार क ब ने सजन काय मे ही हो यह अत्यंत जरूरी हे, पर आज तो रशिया और अमरिका दोहा दुमरो शिशा म काय कर रहे हे । और कोई नवीन नही । पत्र लिखते रटना । मेर पति आपको प्रणाम कहतावाते हे ।

८ / ५८

—हर्षिदा के प्रणाम

मुथ्री हर्षिदा पंडित,

आपका पत्र मुझे यथा समय मिल गया । मुझे अत्यंत दुःख हे कि मे इतनी देर मे जनाब दे रहा हूँ । कारण क्या बताऊ, आलस्य ही कहना चाहिये । जवाब के लिये कागज उमी दिन मगवा लिया था, परंतु लिख रहा हूँ आज । अस्तु ! मे बहुधा यह सोचा करता हूँ कि आपसे जो यह अकस्मात् ही परिचय हुआ है, इसका परिणाम मे

हितो दिना म पत्न्युत्तर क तार म सात्र रती भी, यात्र विचार का अमन कर रही ह । आपन आपन पत्र म भर निय जा गुभावात्पाय यत्न भी है, - मत्र निय म सचमुच आप की उतत ह । आपका पत्र पठनर म तना भावन त म ग्ी कि जग मन सच मुच अपन गीय ह्य पिता का पा निया हा । म जरा भी प्रतिायोनित नही करती और सचमुच अपन हृदय की स ची भावनाओं का कागज पर उतारन का प्रयत्न करती ह । मुझे ऐसा लगता है कि हमारा सम्म प्र ययगायिह कारणा म दुःखा, तकिन दश से उतनी दूर जमी दुः प आपके साथ जिग साती गता का अनुभव करती ह उसका उखन कैसे करू ।

यहा पर भाषण करने के अग्रसर प्राय ग्ूय मितन करने ह । हिंद मे अंग्रेजी तोचन म भिन्नकती भी, लेकिन यहा आकर ६ मती म तम से कम २२-१५ भाषण कर गये है । यहा के लाग हिंद क विषय म तना जिज्ञासु ह गौर म हमशा हिंदी साडी म ही रहती हैं, जिसम मुझे तना मान मितना है कि जिगता मुझे अपत्ता ही नही थी । यहा तत्र अपा म, Social Soronities मे गौर Women Clubs म जहा जहाँ जानी ह हिंद का हृष्टिकेग समभान का प्रयत्न करनी है । राजद्वारा चितक (उन्हे म सत्ता चितक नही मानती) जिम दिशा म विचार करा है और उाह भाषण लेख तगरह म हिंद विरोधी पचार यहा भी सूत्र रहता है, हिंद को उरावर समभने का ये नाग प्रयत्न नही करणे, लेकिन आम जनता की समभार है । उसम हिंद की शांति विषयक नीति का प्रचार करना त्रग सरन हा गया है । तम नाग हिंद म कई कनात् मत वस्तुय नाय है । क अमरिकाता को गीता पर हिंदी गोजन क निय आमंत्रित करत है और हिंद विषयक गरगमभ का दर करती ताणित करा है । म माननी क हिंजिता विद्याया यहा पत्ता आय है, हमारा सरगरी हा गौर म unofficals Ambassadors है, उतना त तात या सरग जरा भी तातात ताणिय, हिंद को म percent तर ताताता परिप फर ताता ताणित । तिता मुभ यहा तत्र उा उख है तिति के शर म गौर विद्याया क तम जान है और उतना तातात हिंद की परिष्ठा तताताता ती ताता ।

मारी एक परिचित मति म तिमती परिभाषा जाती तम जाय, ता तम तामग करती, त म त क American Acronetic Women's Association हा गौर मे तिया ता शपर ता जा रहा है । त म एक म जो पायवट गौर हिं म गौर तारम है । मरा पत्र तत्र त्र है कि उमि क का रगीन तित तिया म Guide तारा तमिता सर्प क एक मितारी त तित सो गफर म तातरग त त्रतात मरि त तित मज है ताह मित ताता । तिसी गुरा Guide ने समभाया ताया तिति कु नाग त ररा ती पूजा करत है । लाग एसा सुनवर हम नही

तो क्या कर ? मुझे यह हकीकत जानकर बड़ा दुःख हुआ था। उपलक्ष्ये आपके समय में मैं थोड़ा समय मरे लिये हमारे हिंद के लिये खर्च करने को तन्त्र बितनी मैं आपन करती हूँ। हिंद को बचा चड़ा करके तो नहीं लेकिन जमा हुआ मच्चा चित्र उनकी आस्था के सामने रखने मैं आप अगल महायता करती तो मैं आपकी खूब आभारी रहूँगी। पता पढ़ने को हमने *Land Book of India* दी है और अनेक वाने बतलाते हैं। हिंदी भोजन भी गिलाया है। वे करीब मात आठ दिन दिल्ली में रहगी। *Imperial Hotel* में और दहा में आगरा, जयपुर, फतहपुर सिक्री, अजमेर देखकर कश्मीर जायगी। उनका कार्यक्रम के मुताबिक मई के पहले सप्ताह में दिल्ली में पाव रखगी। मैं आपसे पूछे जिना ही आपका पता उह देन की वृत्ता ताकी है। आशा है आप मुझे माफ करेग। मैं आपको पत्र लिखकर आपको उसके आन की सूचना दगी, आप बन सके तो किसी *Authentic Guide* को यह काम सौंप दना, जिसे हम शांति रहगी। वे आपको मिनगी तो मही पर में जानती हूँ आप बडे व्यवसायी रहते हैं इसलिय समय के मुताबिक काम करना। आपको इसमें थोड़ीसी तरलुफ उठानी पडेगी जिसका मुझे ख्याल है पर मेरे पास कोउ चारा नहीं है। दरियागज में हमारी पहचान वाली एक मस्कारी कुटुम्ब रहता था पर वह अब नपनऊ रहने लगा है और, और किसी का में नहीं जानती जिसे आपको टेरान करती हूँ।

‘शांली की नगरवधु के बारे में मैंने यहां की एक लेखिका के साथ बात चीती है। थोडासा अनुवाद करके प्रकाशक को बताना पडेगा और फिर अय वाने लय हागी। मैंने आपको सूचना पर गभीर विचार किया है और अमली बनाने के बारे में सोच रही हूँ। मोका मिनते ही काय करूंगी और क्या होता है वह लिखूँगी।

आपने बच्चों के बारे में जो गालित्य मगाया है वह थोडे दिनों में खाना करूंगा। आपका ‘शामनाथ प्रस्ट होते ही यहां भेजने का आपका विचार बडा पसन्द आया।

यहां के हाउसरोजन बम्ब के बारे में आपने सुना होगा। विज्ञान का उपयोग महार के बदने सजन काय में ही हो यह अत्यंत जरूरी है, पर आज तो रशिया और अमेरिका शो दोमरो दिशा में काय कर रहे हैं। और कोई नवीन नहीं। पत्र लिखत रहना। मेरे पति आपको प्रगाम कहववाते हैं।

८ / ५४

—हर्षिदा के प्रणाम

मुथ्री र्णपदा पठित,

आपका पत्र मुझे यथा समय मिल गया। मुझे अत्यंत दुःख है कि मैं इतनी देर में जवाब दे रहा हूँ। कारण क्या बताऊँ, आलस्य ही कहना चाहिये। जवाब के लिये कागज उमी दिन मगवा लिया था, परंतु लिख रहा हूँ आज। अस्तु। मैं बहुधा यह सोचा करता हूँ कि आपसे जो यह अकस्मात् ही परिचय हुआ है, इसका परिणाम मेरे

साहित्य के विकास पर क्या पंथा। व समाज एवं म्य सभित क अभिमत ही बात गोचरता रहता जो मेरी समझार गानाज का विगत म विगत पर। तथा आश्चर्य है कि आप ही वह व्यक्ति की प्रसंगा समर समरगा त गाराो दुई हा। आपकी साहित्य भावना, विचारा की प्राञ्जन श्रमता, एवं समाज और मान्यता क प्रति मन्धी आत्मीयता क भाव एम नती क जि ह स्पतर ता उाकी उपन्ना करे। व नजर आ ताज हो जाय। वहा प्रयोग म आपक प्रति श्रत्यत आर्हा वन ह और आशा करना ह कि मेरे साहित्य का आप पक्ष दया। वता उम विचार की म म जितता आर्हा दित ह, उसका प्रगत म शब्दा म गही कर सकता।

यह पढ़कर कि आप वहा क्या भाषणा, तथा प्रीति सम्मनता राजा क द्वारा अमरिजन जनता, और अपन भारताय जनजातन म मन्त्री तथा व धुन्त्र भाव का उत्प न करने म सतत ह। पर तु म चाटना ह कि आप का उ व। नाम जा भारताय जीवनम एतिहासिक हा, करक भारत तात। म यहा अपा विचार आपका गियता ह। यह तो म आपकी प्रथम ही निरा तुका ह कि अमरिका का राजनसिक एषणाए भारत म भी तीया भावना म दया जा रही ह। पाकिस्तान का जा सभित सहायता की जा रही है, वह एशिया भर का जगता का विद माना जा रहा ह। अजगता कि ज्याही यह हाय सक्षिय हा, सम्पूण एशिया एवं अन्त एप क साथ असक विरोध म उठ खडा हो। पर तु उमता परिणाम निश्चय ही भाषण हागा। हा नदरु यहा गणतम और श्र य प्रमा क प्रयोगा क विरुद् गानाज रग रग ह। प्रथम आ स त क वि एशिया विदशिया का गियकरण या एपन गती तह क र सकगा। मर मर का नदरु की यह धरनि जनयता टानी जा रही ह। पर तु यमा तन ती म मो पजाव की साहित्य सम्मलन क श्रमतर पर श्रमतर म एफ भाषण दिया। व भाषण म आपक पाग जोत्र भजगा। उगम मन श्री टर हा एफ सता दिया था। सहा म उ पूण ह। व म साहित्यकार ह, त्या राजगीरी स रर र र रवा साहित्यिक हृष्टाणग। म साहित्यिक प्रमाण हा ज हा गणकारा हाय ररा का जाए। व म हाग ता क भारत का प्रीतिवित्र र ररा ह क अमरिका का गर समसा ह। मारी ता म व र समहृष्ट ह। हा ज विरोधी सार्थ पर, मारा शप ह। म समय अमरिका की यथा पजाव को रक्षा क विण विरु म जर्वात विरोधी सार्थ पर सामा क ह। सा स वि र नि भारा म अमरिका क विरोध म म उन्पा ताता जा रग ह। यपसाम थ ह कि अमरिका भारत क र्हा ताया हा अमा की यपता रक्षा क यहा हाय रुसा आरम्भ किया है। आप एसी ररा कर कि अमरिका मार हाय सार्थ यतारा हा एफ विष्टम का अमरिका म अनेने यत म आर्हा का कर। आपकी सफलता की आता टो ना म एस पुरपा क नाम भज गुगा, जि क उम मन्त्र म सविमनिह टाना चाटिय। सका परिणाम भारत क जन-

मत पर बहुत व्यापक पड़ेगा। आप अवश्य ही अपने लेखों तथा भाषणों के द्वारा यह आन्दोलन खड़ा कीजिये। इस शिष्टमंडल में वे ही पुरुष हों जो भारत के प्रतिनिधि साहित्यमनीषी हैं तथा किसी राजनीति तथा सरकार से कोई सम्पर्क नहीं रखते।

दूसरा काय यह शुरू करें कि रेडियो द्वारा अमेरिकन बच्चों का ससार के बच्चों से मन्त्री सगठन खड़ा करें। आप वहाँ रेडियो अधिकारियों से इस सम्बन्ध में अवश्य बात करें। मैं यहाँ कर रहा हूँ। यदि ससार के बच्चे रेडियो द्वारा एक मन्त्री सघ स्थापित करें तो यह आगामी दशाब्दी के बाद एक महान सांस्कृतिक काय हो जायेगा। आपकी रुचि होगी तो मैं विस्तृत योजना लिख भेजूंगा। आप भारतीय विद्यार्थियों से भी कभी कभी एकत्रित वार्तालाप कीजिये। आपकी मित्र तो मुझे अभी मिली नहीं। मैं उनसे उनके साथ के लिए एक दशक ठीक किया था। 'नगरवर्तु' के अंग्रेजी अनुवाद और प्रकाशन पर पूरा बल दीजिये। यदि अभी समूचा अनुवाद सम्भव न हो तो थोड़े आगे का अनुवाद तथा पुस्तक का सम्बन्धित विवरण किसी प्रकाशक को दिखाकर प्रकाशन की व्यवस्था कर आइये। यह आर्थिक दृष्टि से भी बहुत लाभदायक होगा। मेरा 'सोमनाथ' आगामी सप्ताह में तैयार हो रहा है। शीघ्र आपको मिलेगा। सब ठीक है। आपके तथा मापके पति के स्वास्थ्यवृद्धि तथा सर्वोन्नति की शुभकामना कर रहा हूँ।

२५ ४ ४४

शुभाकाक्षी, चतुरसेन

(श्री टिप्पणीसेक्रेटरी, आफिशियल लैंग्वेज कमिशन, मिनिस्ट्री आफ होम अफेयर्स नई दिल्ली को लिखा गया पत्र)

प्रिय महाशय,

आपका त्रिना तारीख का औपचारिक पत्र मुझे दो दिन पूर्व मिला था। उसमें निम्ने अनुसार मुझे १० फरवरी १९५२ तक सब प्रश्नोंके उत्तर लिखित देना सम्भव नहीं है। केवल अपने निम्न भाव संक्षेपमें लिखकर भेज रहा हूँ। मुझे २१ फरवरी १९५६ को ४३० पर कमिशन के समस्त निर्धारित स्थान पर आने पर आपत्ति नहीं है परन्तु मैं आनजाने की कृपा व्यग्रस्था होगी, कृपया इसकी सूचना दीजिए। मुझे खेद है कि मैं तब तक हिन्दी ही में उत्तर दे सकता हूँ। धन्यवाद।

१४ २ ५६

—भवदीय, चतुरसेन

भाषा साहित्य का वाहन है। साहित्य के सोष्ठव से भाषा को अमरत्व प्राप्त होता है। यदि राजनीति किसी भाषा को प्रभावित करती है तो अथ विभाषाओं का सपत्य भाव उसके विरुद्ध उठ खड़ा होता है और स्नेह और आदर के स्थान पर उसके प्रति धृणा शोर स्पृहा का भाव उठ खड़ा होता है। हिन्दी के सम्बन्ध में यही हुआ है। मेरा मत है कि राष्ट्र-भाषा घोषित होने के कारण हिन्दी की अपार हानि हुई है। हिन्दी का साहित्य का विकास रुक गया है। इसकी साहित्यिक निष्ठा पिछड़ गई है। हिन्दी

न किया जाय, जा अनुपात से हि दी का सीमित ज्ञान न रखता हो। ऐसे सरकारी
 तन्त्रागिणी श्रीर अफमरा के लिए प्रथक शिक्षालय खोले जाय, जहा २६ ६ माम
 तन्त्रागिणी का आवश्यक शिक्षा उनके पद के अनुरूप दी जाय।

एसा करने से हि दी निर्विरोध दस वर्ष की अवधि मे राष्ट्रभाषा का भार वहन
 कर सक्ती, एसा मे समझता हू।

(मृत्युनाम विद्यालय, सम्पादक 'वमयुग', बम्बई को लिखे गए पत्र)

प्रिय मृत्युनाम जी,

आपका मृत्युनाम सहित छपा हुआ हुक्मनामा मिला। आप हमारी साहित्यिक
 रचनाओं का अपनी निमम और अज्ञानी कची से अग्रभंग कर उन्हें विकृत करते हैं,
 उमने अतिरिक्त अपन लेखना का आदर ता दरकिनार—आप उनसे मन्त्री भावना भी
 रखना अपनी जान व खिलाफ समझते हैं, शिष्टाचार इतना कि उनके पत्रों तक का
 उत्तर देना अपनी शान व खिलाफ समझते हैं यह आपकी सम्पादकीय निष्ठा है। आप
 सम्पादना नहीं, दूकानदार हैं। अपनी दूकानदारी चलाने में चाकचौबंद। तीनों पसठ
 परेगरे अपना मान आपके पास भेजते हैं। बिना शत आत्मसमर्पण सहित। और आप
 पसठ की चीज आदर बाकी माल कडे में फक देते हैं। पसठ सोलह आना आपकी।
 मया जिसे प्यार कर वही गुहागिन। पसठ मालके दाम आप अपने ही निराय पर देते
 हैं, माल के मानिद स पछते तक नहीं। पूरी सामंतशाही का अमल। खाटे खरेके आप
 व मे पारगो हैं यह हम आपकी चलती दूकान में जो कूडा ककट भरा रहता है, उससे
 अनमाना गंगा सतत हैं। एसी हालत में हमारा आत्मसम्मान हमें यह हुक्म देता है
 कि आपका नामात्मा आपको वापस कर दिया जाय और जब तक आप उस कुर्सी
 पर हैं, या जब तक आप अपनी कची और गव पर दुख नहीं प्रगट करते, हम आपके
 पत्र वमयुग का प्रतिपादन कर। उसमें एक अक्षर भी न लिखें।

मम यथा जानते हैं कि हमारे इस रूठने से आपकी कुछ भी हानि नहीं होगी,
 आपको एसा ही तो क्या कमी। आपके बुद्धू पाठक यह कहकर आपके कान थोड़े ही
 रीतगिणी का अग्रभंग था, उगरी रचनाओं अब क्यों नहीं छपती, क्या वह मर गया??

आप केवल कागज पर लाल पीला रंग बखेरते रहें, और रंगीन लिबास पहिना
 कर मग गाता राजारू माल ग्राहकों को पटीलते रहें। पसठ आपकी हैं, ग्राहकों की
 नहीं। या परिगिया का शोक लगाते रहें। चलती हुई आपकी दूकान है, अभी वह चलती
 ही रहेंगी। उसी पीछे पजी को गठरी तो है ही।

साहित्यकार फरकट है। वह साहित्य रचता है, सौ दय की सृष्टि करता है,
 आत्मा में सत्य का आरोप करता है। सो आपके उन चादी के टुकड़ों के लिए नहीं, जो
 आप अपने समझ में अनुग्रह करके जब तब भेज देते हैं जितना जी में आया उतना।

शृङ्गार किया जाता है, सो क्या डमीलिए कि उमका डम भोडे तरीके से अँग भग कर दिया जाय । पर आपने मेरे साथ केवल यही अनाचार नहीं किया, उपेक्षा भा कम नहीं की । कभी आपने अनुभव नहीं किया कि महीना वर्षों 'धूमयुग मेरी कलम से नूना जा जा रहा है । मेरे वषट कहाने को तैयार हूँ पर यह नहीं स्वीकार कर सकता हूँ कि मैं इतना नगण्य साहित्यकार हूँ । एक ऐसे प्रसिद्ध पत्र का विज्ञ सम्पादक मेरी आराम एक बारगी ही मुझे फेर कर बठ जाय और अपने लाखों पाठकों को मेरी कलम से हटात वचित करदे, जबकि मे स्वयं ही अनंत मौन होने के निकट पहुँच रहा हूँ । आप नाराज हो सकते हैं, पर मैं इसे आपका साहित्यिक अपराध समझता हूँ और सम्पादक की जिम्मेदारी की उपेक्षा भी ।

अब अपने दिल का बुखार तो मैं काफी उतार चुका हूँ । इसलिए अब आपकी आज्ञा का पालन करना भी आवश्यक है । इस पत्र के साथ एक कहानी भेज रहा हूँ और यथावकाश, उपयाम तो मैं अभी कल ही साप्ताहिक हि दुस्तान को दे चुका हूँ, आप को मई के अंत तक या जून में दे दूंगा । आपकी पसंद आ जाय तो आप ले सकते हैं ।

२० ८ ५६

—भवदीय, चतुरसेन

(श्रीरागेयराघव न पत्र में 'प्रियभाई' सम्बोधन लिखा, उसे अपनी आयुसमादा में अशिक्षिता रामभरार आचायत्री ने उनसे कारण पूछा, उसीके उत्तरमें रागेयराघव का यह पत्र) मायनर,

आपका कृपापत्र प्राप्त हुआ । धन्यवाद ।

मैंने लगभग २३ वर्ष पूर्व से 'कागज काला करना' शुरू किया है, जबकि आपके तटके प्रच्छेद भो जवान हा चुकें होंगे । अंत अपने पत्र में जो मैंने आपके लिए 'प्रियभाई' जस - अग्रजों को D H Brothel का अनुवाद रूप अपमानजनक शब्द प्रयुक्त कर दिया उनसे निवृत्त मुझे यह है और मैं उन नाते को यहाँ वापिस ले लेता हूँ । कहानी सग्रह के सम्प्रदाय में जा मुझे २१ २० पत्र एक साथ लिखने पडे तो मैं ऊब गया और उसीमें प्रभाग्य मैं मैं भूत गया कि आप इतने अधिक वृद्ध हो चुके हैं और आपका अलग से सम्मान करने में प्रियम मैं चूक हो गई । आशा है क्षमा करेंगे ।

किस कहानी का प्रसंग मैं जानने पर ही रूप भेजेगे, पर तु आपका नियम है कि आप पत्राचार में अंत में हैं, दूसरे हममें अथ सब लेखकाने मो सौ रूप मागे हैं, यहाँ तक कि प्रियम पत्र दजी तक की कहानी के हमें केवल १००) देने पड रहे हैं । अंत आपकी (१२५) की माग को हम पूरा करने में असमर्थ है । आपको आर्थिक हानि न हो और हमारा असमर्थता का निवाह हो जाए, इसलिए हमने अपने सग्रह को आपकी कहानी में वचित कर लिया है ।

२८-६ ५६

—भवदीय, रागेयराघव

गौर परम्परा की दुहाई दी। अतमे मामला राज्यपाल मुंशी के पास पहुँचा और उठाने साहित्यवार मुंशी बनकर आचार्यश्री को पालकी में ही अदर आने की अनुमति दी। उसी भेट में सम्पत्ति लिखे गए पत्र।)

प्रिय श्री मुंशी जी,

मैं एक सप्ताह के लिए सपत्नीक यहाँ आया हूँ। चाहता हूँ कि आपने मुलाकात करूँ। पत्नी भी मुंशी को देखना तथा सुश्री लीलाजी का अभिनन्दन किया चाहती है। परन्तु हम लोग इस मुलाकात में महामहिम राज्यपाल की उपस्थिति अवाञ्छनीय समझते हैं। साहित्य मनीषी मुंशी और उनकी बमसखी का दगन लाभ चाहते हैं। सुविधा हो तो समय की सूचना दीजिए। सादर। १५ ६ ५४ —भवदीय, चतुरसेन (बस भेट में श्री मुंशी ने अपनी एक कृति आचार्यश्री को पढ़ने को दी थी, उसको पढ़ने के बाद श्री मुंशी को लिखा गया पत्र)

प्रिय मंगी जी,

आपकी पुस्तक मने पढ़ी। मन दुःख और क्षोभ से भर गया। दुःख इस बात का कि अनुवादक न आपकी भाषा और भावा की बुरी तरह हत्या कर डाली है।

और क्षोभ इस बात का कि कैसे ये सब बातें लिख देने के लिए लीला बहन सहमत होगी। आपकी सारी साहित्य सम्पदा एक ओर, और यह अशोभन कुत्सा एक ओर। न जाने कब तक इन पत्तियाँ को पटककर आने वाली पीढ़ी के पाठक आपके जीवन पर अलग गौर उपहास की वर्षा करते रहेगे।

जीवन पर गयत आदरग सभ्यता वाचि है। असभ्य जन ही नगे रह सकते हैं। जीवन को मात्रात्मक रूप से नग्न करना सत्य नहीं है। जीवन का सम्पूर्ण विकसित रूप ही जीवन का सत्य प्रकाश है। वह फूलके समान सुदशन शोभनीय और सौरभ पूर्य ताता प्राणिक। फूल के उस प्रकाश में जो कुत्साएँ हैं—गनी खाद है, माली की टाट गी है, तीडे मारना है—नह मव प्रदशन की वस्तु नहीं होनी चाहिए, खासकर साहित्य की गीमा में। साहित्यिक साहित्य जीवन की व्याख्या है, विवरण नहीं। इसीसे साहित्य का सत्य जीवन का सत्य से भिन्न है।

मुझ प्राप्यार्थी तदन द तां म कहूँगा कि मेने प्रथम मुलाकात के समय आपसे जिम गह का प्रयास वा वह तो अभी भी उस दिन की मुलाकात में आपके साथ था।

गी ग म गतागत म कुत्र भी स्मोदय नहीं हुआ, वह औपचारिक ही रही। दुबारा फिर भेट करने की अभिभाषा ने भी ज म नहीं लिया। फिर भी मैं आपको प्यार का मरता हूँ। इसी से मेने यह पत्र लिखा है। चाहता हूँ कि लीला बहन को भी दिखाने। मंगी और मंगी पत्नी का आप और लीला बहन को सादर प्रणाम।

पूत्र दबाकर। हिंदी साहित्य के वह भाग्योदय देखने की ताव मुझ में कटती थी। सो मैं भाग आया। सजा भी पूरी पाई। पूरे दो घंटे में बम पर चढ़ पाया और दो बजे घर से निकला तो आठ बजे घर पहुँच पाया।

२५ द ५१

—भवदीय, चतुरमेन

(मुशी कन्हैयालाल एडवोकेट इलाहाबाद का पत्र)

भाई शास्त्री जी, जयरामजी की।

कृपा पत्र के लिए अनेक बार धन्यवाद। दया से और भक्ति से क्या विरोध है जो भक्तीवाद के खिलाफ ऐसी बड़ी आलोचना कर डाली? क्या आदमी के जीवन में शान्ति ही सब कुछ है? दुःख, दद का भी कुछ स्थान है कि नहीं? जिमका साथ, महयोग, हमदर्दी, प्रेम २७ वर्ष तक प्राप्त था उसकी याद बनाए रहने का यही मांग है कि दूसरी शादी करे? फिर मैं तो कुछ ज्यादा दुनियावी प्रकृति का भी नहीं हूँ। कम मैं दूसरी शादी के बारे में सोच भी सकूँ यह मुझमें नहीं है—कम मैं कम। जो वाप उठता है। यह कोई भक्ती की बात नहीं है। भक्ती करना माधुर्य बात नहीं है। मैं न भक्त हूँ, न इतना भाग्य ही है, बहुत दुःखी हूँ। शरीर की घटती हुई शक्ति मैं और भी परेशान हूँ। मरीज ऐसा हूँ कि कोई दवा काम ही नहीं देती। ऐसी तात्काली मैं घबराकर आपकी सहायता मांगी थी, यदि कुछ हो सके तो करे।

मुझे वही शिकायत है कि प्रयाग आए और बिना दर्शन दिये चले गये। यह माँहें ही नाराजगी का इजहार था? कृपा बनाए रहिये।

१४/१८

—आपका, कन्हैयालाल

(न्याय भारत ए० चंद्रहासन, प्रधान भाषाविभाग महाराजा कालिदास का पत्र)

प्रिय महाशय,

मैं शिरी मैं आपसे मिलना चाहता था। पर वेद की बात है कि आपको वह ज्ञान नहीं गया और परिपद की बठक के बाद ही मुझे ज्ञात हुआ कि आप उसमें उपस्थित हैं। मैं नई परिस्थिति में दक्षिण के विद्यार्थियों के लिए हिंदी गद्य पद्य संग्रह तैयार करना चाहता हूँ। उसमें आपका एक लेख देना जरूरी भी समझता हूँ। मद्रिक तैयार करना सरल हिंदी में एक लेख भेजें तो बड़ी कृपा होगी।

१०/१८

—भवदीय, ए० चंद्रहासन

(श्री राम मारामिट दिनकर को लिखा गया पत्र)

प्रिय मित्र जी,

मैं प्रमत्त जय गी के अवसर पर आपसे जो भाषण दिया, उसमें आपने भारत के चार गव्यष्ट उपवासकार गिनाए हैं। उन चारों में एक श्रीमुशी भी आपने गिनाया है। परन्तु मेरा मत है कि श्री मुशी भारतीय उपवासों की तो बात ही

(पत्र का उत्तर)

श्रद्धय आचार्यजी,

नमस्कार ! आपका कृपापत्र मिला। आपके बहुमूल्य सुभाव का मैं हृदय म
स्वागत करता हूँ। आपकी आज्ञा के अनुसार मैं बड़े परिश्रम से अपने क्या काग म
राय उपस्थित करूँगा। कोश में तीन हजार कहानियों को लेने का विचार है। दु ख
यह है कि यहाँ पर कोई अच्छी लाइब्रेरी नहीं, अनेक पुस्तकें प्राप्त नहीं।

आप अपने कहानी संग्रहों का एक सेट भेज दोगे तो अत्यंत अनुगृहीत रहूँगा।

नेत्र कर्तन विद्यार्थियों के लिए एक स्केच सा था, क्षमा चाहता हूँ।

१३ ५३

—भवदीय, हरदेव वाहरा

(गुरुकुल कांगड़ी के आचार्य द्वारा प्रेषित पत्र)

श्री आचार्यजी,

श्रीस्वामी श्रद्धानन्दजी की जन्मशताब्दी के अवसर पर 'गुरुकुल पत्रिका का
एक बहूद्विभागीय निराकरण' तो हम तैयारी कर रहे हैं। स्वामीजी के जीवन चरित्र
पर पत्रिका का लगभग ८० पृष्ठ देने का विचार है। यह भाग लिखने के लिए हमें सबसे
गौरवपूर्ण व्यक्त आपही नजर आते हैं, इसलिए आपसे प्रार्थना है कि आप इस
कार्य को स्वीकार करके अपनी सहमति में शीघ्र सूचित करने की कृपा करें। अभी उस
विषय पर आपका एक बाना सुना रहा था, आपके अपने ही शब्दों में आपकी रच
नाशा का तथा 'नेत्र' की सुन्दर परिचय मिला। आशा है आप सवथा प्रसन्न
होंगे। मर्यादा का समाप्त हो तो लिखें, उत्तर की प्रतीक्षा रहूँगा।

२८ ६ ०१२

— आपका,

(आचार्यजी द्वारा उत्तर)

प्रिय श्रीजी महाराज !

आपका उत्तर पत्र मिला है। काम बहुत करना पड़ता है, अतः मेरी
अवस्था पर्याप्त समझना पड़ेगी। आप जो कार्य मुझे सौंपना चाहते हैं, मैं उसे करने
में प्रसन्न हूँ। मैं स्वामी श्रद्धानन्द को एक निराले ही रूप में समझता हूँ। मैं
उत्तर गुरुकुल का साहित्यिक साहित्यिक विचारों की विचारधारा को ही पढा देने
का श्रेय जाता हूँ। यह निबन्ध मैं अग्रिम लिख दूँगा। यह केवल जीवनचरित्र न होगा,
आचार्यजी को ध्यान में रखकर। आप मुझे सूचित करें कि लेख कब तक आपको चाहिए।
मैं आपका काम जो साहित्य आपको उपलब्ध हो, वह भी भेजना होगा। कृपया मेरा
'इतिहास भाषा और साहित्य का इतिहास' भी पढ़िए जहाँ मैंने आयसमाज और स्वामीजी
का उल्लेख किया है। इतिहास के इतिहास में सवप्रथम मैं ही ऐसा किया हूँ।

—भवदीय, चतुरसेन

(श्री रामकुमार उमा का पत्र)

प्रिय शास्त्री जी,

पिटनी से लाट गान पर उमका गुमार काफी दिनों तक रहा। अब कही जाकर समझ पा रहा हूँ, कि यह आवाहावाद है और यही के वायुमण्डल में मैं साम ल रहा हूँ। आपके समाचार बहुत दिनों से नहीं मिले। यद्यपि आपने समय समय पर अपने विचारों से परिचित कराने का वादा मुझसे किया था। आशा है, उस बीच में आपके विचारों से और भी अधिक वास्तव हुआ होगा, जिनसे मैं ही नहीं परन्तु परकार जगत भी लाभ उठा सकता है।

हा एक बात के सम्बन्ध में मैं आपके विचारों से परिचित होना चाहूँगा। आपसे तो ज्ञात ही होगा कि पिटनी परिस्थितियों से चान्द की जिनियों को पीछे सा कर दिया था और अब तो मैं उसे पिनीत भा कर लिया था। किन्तु 'चान्द' ने साहित्य और समाज की जा गवाण की उड़ गवाणों से उड़ी भूनाया जा सकता। साहित्य क्षेत्र में 'चान्द' का अस्त एक सामाजिक और साहित्यिक चरित्र होगी। अतः उमका उद्धार का उपाय सभी भी किया जा रहा है और यह सम्पूर्ण रूप से विश्वास है कि पीछे हा चान्द की जिनियों के समर्थन होकर साहित्य और समाज की अनिश्चानी से राहगा। चान्द का सच्चाता अब हमें जाना में होगा जो पूर्ण परिज्ञानी है और इसलिए 'चान्द' का नवीन युग में चान्द की क्रांतिकारी और नवीन आर्जी को लेकर होगा। उस सम्बन्ध में मैंने अपना मित्रता से जाना जो और आपको चान्द की शक्ति की सार यान्द आर्पित किया। मुझे विश्वास है कि आपके संपादन में 'चान्द' एक क्रांतिकारी या आपका होगा और मैं तो मैं समझता हूँ कि उमका उद्धार समाजकृष्ट होगा। मैं साहित्य समाज से समाज में तो मैं जानता हूँ कि समाज रहता है और मैं आपके संपादन से समाज रहता है कि मैं पढ़ता हूँ। मैं जानता हूँ कि मैं पीछे उमका संपादन से समाज में जानता हूँ, उमका संपादन की। आपके लिए मैंने एक चरित्र चरित्र बना जिसे मैंने आपका क्रांतिकारी पत्र के प्रभाव से कर लिया है कि मैं समाज के प्रभाव से कर सकता हूँ। मैं जानता हूँ कि आपके सम्पूर्ण रूप से विश्वास और स्थापित 'चान्द' का सम्पादन कर। उस लिए मैं विश्वास से मैं आपके समाज से कर रहा हूँ। मैं जानता हूँ कि आपके संपादन से समाज में मैं जानता हूँ।

(२) आपके पत्रों में 'चान्द' का नाम और समाचार कर और यही मैं सम्पादन कर 'चान्द' की क्रांतिकारी रूप में कर। मैं सम्बन्ध में मैंने भी आपके यही अनुभव जाना, कम से कम एक ही रूप में लिए।

- (२) आप अपने उद्देश्यों और स्कीमों के अनुसार 'चाद' की योजना में सहायता कर ।
 (३) मेरे कामकाज में विश्वास दिलाता हूँ कि भविष्य में 'चाद' की ओर से किसी प्रकार भी आपको आर्थिक हानि नहीं होगी ।

यदि आपका आना इस ओर निकट भविष्य में हो तो आप इस विषय में बातचीत कर ले । मेरे प्रिय मित्र श्री निरजनलालजी भागव आपके इस काम को प्रशंसा की दृष्टि में देखेंगे और हम लोग एक सूत्र में आबद्ध होंगे । 'चाद' को एक सर्वोत्कृष्ट पत्र बना सकेंगे । आशा है सान द होंगे । आप इस पत्र का उत्तर शीघ्र ही देने की कृपा करें । शेष मिलने पर ।

२७ ११ ३८

—आपका, रामकुमार वर्मा

(३ दावनलाल वर्मा के चार पत्र)

प्रिय शास्त्रीजी,

आपका २८ १० ५४ का स्नेहपत्र आज यहाँ एक वाहक भासीसे लेआया । जगल गाँव १९८० में यह गाँव बसाया था । कुडारगढ़ से २ मील है, भासी से २६ मील । रंग तार, नाकघर, सबक किसी से भी इस गाँव का कोई वास्ता नहीं । शायद २४ वर्ष में गाँव बन जाये । अब यहाँ का प्रवास कम कर दिया है । आने जाने में बड़ी कठिनाई होनी थी । शुभकामना के लिए मेरी हार्दिक कृतज्ञता स्वीकार कीजिये । ६५ और ६७ में अब तो कितना है ? मे और आप दोनों जवान हैं । मैं आपकी लेखनी में २८१५ में परिचित हूँ, जब आप और मैं दोनों कानपुर के 'प्रताप' में लिखा करते थे । आप जय समथर जा रहे थे तब एक बार आपके दशन किये थे । अबकी बार जब टिन्नी आऊगा, शाहदरा पहुँचूंगा । आशा है आप प्रसन्न हैं ।

१ १५

—स्नेही, व दावनलाल वर्मा

प्रिय शास्त्रीजी,

२० १ ५५ का स्नेहपत्र स्नेहदीप को सबल करके शाहदरे का माग सुझा रहा है । आऊगा, अत्रय आऊँगा । दो दीवाने मिलेंगे, सुब घुटेगी ॥ आप कहाँ सचमुच उग आर न भटक पटना । मेरा कुछ ठीक नहीं, कभी इधर कभी उधर । गाँव भासी में २७ मील दूर है । बीच में वेतवा और बहुत सा बीहड़ । कडार के पास जगल काट कर एक आना गाँव बसाया था, १४ वर्ष होते आते हैं, नाम श्याममी है । इसलिए शाहदरा सबसे अच्छा मिलाप स्थान । माच या अप्रैल में पहुँचूंगा, पहले से लिख दूंगा जिसमें आपको 'ज्ञान ग्राम' में त्रिराजमान पाऊँ । आपके यहाँ ठहरने में दिक्कत । भाई माह ॥ उनचरा को भी दिक्कत कही हो सकती है ?

३१ १ ५५

—आपका, व दावनलाल वर्मा

प्रिय शास्त्रीजी,

आपका १२३५७ का कृपापत्र कल स या समय मिला । दिल्लीसे लाटन पर । अपराधी का इकबाल सुगिने, पीछे उमकी क्षमा याचना पर विचार करने की कृपा कीजिये । १४३१५ की रात दिल्ली गया । रातभर नींद नहीं आई । पंद्रहवाँ रडिया स्टेशन पर एक भाषण रिकार्ड कराना था, दरियागज से तालाबानू के यहाँ जहा टहरा करता हूँ, उसके तिरगाण महाकष्ट हुआ । ३ घंटे लग गये । फिर रफ़ थोस्ट न गया । दरियागज से काले गोमो । ४ घंटे जहा टहरना पया । अभी यह नहीं, अभी यह नहीं । मैथिलीशरण जी की भी लो रफ़ियाय रिकार्ड होना थी । वह मित गये और कुछ अरय लोग भी । उमसे वही रात होगई । बहुत था गया था । तीन आया और ६, १० तक बीच में गये । फिर आप फ़ पाम न पहुँच पाया । आजा हँ कि आप क्षमा कर दगे । पहना हसुर तो यो भी माफ़ हो जाता है । आप की तार न हागा । जय रानी दिवनी आजाग शाहदरा पहुँचगा । आशा है आप 'माफी मामा' जीघ्न भेजने की कृपा करेंगे ।

१०३५५

— आपका, न रात्रतनाल जमा

प्रिय भाँ शास्त्रीजी,

बड़ी रात, अपना ही क्षमा कर लिया गया । अब नष्ट पतनगा किमी दिन मिला नार्न सूचना दिये । अब तन । फिर अब दो दीगात मित लडग तन ।

१६ / ५५

स्वटी, न रात्रतनाल जमा

(१० रामचरणग महेंद्र एग० ए० पा० एच० ी० न चार पत्र)

पूज्य आचार्यजी वर ।

आपका पत्र पाकर मृत्यु न रूप तो रहा है । एसा अमंगल कर रहा है, जसा आपका समीप ही है । आपका ही साँगा हा हुआ, पर प्रथम स में न विवचना सका । यानि दूसरा विच भो उमम था ।

आपका ग । आपका गवतार गवतार प्रतीता ताता है, एसा रफ़ियो पुराने कल्पिनी आत्मा । आपका पत्रा पाया किया है । स्त्रिया ता यात्र' पुस्तक ऐतिहासिक दर्ष्टि सत्रे मत्तर ही रता है । आपका भिो विता स पुस्तक त गार स हिम मालूम हा सकता था । आपका भसती स ब्रा वरा है । आपका आपकी आपकी पुराने रामचरणग मुन । की बनी तीव्र उरता है । स आपको हि दो क । भाग व र्त्तिश्रोम उच्चतम श्यात रता आया हैं । जय आपका हाय प्रारम्भ किया था, हि दो आँप मलकर उठरही थी । आपका सभी पुस्तक पला ही अतीव उरता है ।

३२५१

— आपका, रामचरणग महेंद्र

पूज्य शास्त्री जी वंदे ।

पत्र के निम्न प्रयाद । 'स्त्रियो का ओज' पुस्तक मेरे लिए बड़ी उपयोगी साबित हो रही है । ऐतिहासिक दृष्टि से आपने एकाकी लिखना बहुत पहले प्रारम्भ कर दिया था । आपके द्वारा हिंदी में जो विशाल काय हुआ है, उसे देखकर स्तम्भित रह जाना पड़ता है । अँग्रेजों में स्काट और डिकसन ने लिखा है शायद हिंदी में आपने उससे भी अधिक लिखा है और बहु विषयों पर लिखा है । उन दिन हिंदी के एक प्राफेसर आपकी 'स्त्रियो का ओज' पढ़कर कहने लगे—'शास्त्रीजी ने सब विषयों पर लिखकर अपनी प्रतिभा का दुरुपयोग किया है । उन्हें केवल एक चीज हाथ में लेनी थी—उपयास ।'

वास्तव में उपयास ही आपका अस्सी क्षेत्र है भी । मैंने आपकी अत्यंत विषयक कृतियाँ नहीं पढ़ी हैं, पर उपयास ही सबसे अच्छे रूप में लिख सकते हैं । 'हृदय की प्यास' से प्रारम्भ कर 'राज्याजी की नगरवधू' गायद अंतिम चीज है, जो आपका नाम अमर करेगी । मैंने यह पुस्तक पढ़ नहीं सका हूँ । कालेज में मगानी है । इस साल का बजट समाप्त हो चुका है । अगले वर्ष आपकी साहित्यिक कृतियों का पूरा सेट मगवाया जाएगा ।

आपमें साहित्यिक इतिहास सम्बन्धी कुछ आवश्यक परामर्श करना है । श्रीसिम दिखाना है । ठीक भी कराना है । सोचता हूँ समय मिले तो दशन करूँ । दशनों की उच्च आधिक है । मेरे पिताजी प्रोफेसर मोहनलाल जो इसी कालेज में दशनशास्त्र के प्रोफेसर थे, आपके 'बनाम म्वदेश' के बड़े भक्त हैं । वे इसे हिंदी गद्य काव्य का सर्वश्रेष्ठ ग्रन्थ कहा करते हैं । अथ से २०-२२ वर्ष पूरा यह पुस्तक उन्होंने खरीदी और मुझे जोर जोर से पढ़कर सुनाया करते थे । फिर आपको कुछ अन्य कृतियाँ पढ़ीं, जिनमें मिलने की उम्मीद मिलती हुई ।

२३-२-५१

—आपका, रामचरण महेंद्र

आर्यगीय आचार्यजी वंदे ।

आपका तीन कहानी पुस्तक मिली । सभी को उनमें दिलचस्पी है । पत्नी पढ़ रही है । उन्हें 'ना नाम्ख' की कहानियाँ बहुत पसंद आ रही हैं । 'पतिता' पढ़कर तो रो उठी । उन पुस्तकों में प्रारम्भिक भूमिकाएँ बड़े काम की हैं । उनकी सहायता से और आपकी सहायता से प्रकाशित लेख की सहायता से आपकी कहानियाँ पर ११ पृष्ठ छपाने भेज रहा हूँ । आपका कहानी साहित्य बेजोड़ है । राजपूत और मुगलों की जीवन पर तो आपने गजब किया है । प्रेमचंद के बाद कथा साहित्य आपका अग्रणी रहगा । इतनी विस्तृत पृष्ठभूमि दूसरे किसी भी कथाकार की नहीं है ।

मेरा यान आपकी एक अजीब आकषक शीपक वाली पुस्तक 'मौत के पजे में जिंदगी की कराह' पर गया है । न जाने इसमें क्या होगा ? बार-बार मन में इस

साहित्यकारी रचना को पढ़ने को तवियत करती है। कोई प्रिया यदि पता तो भिजवाने की कोषा करे।

६ = ५६

- आपदा, रामचरण मठ

प्रिय आचार्य जी व दे,

आप कहेंगे कि यह अचानक पत्र क्या ? कारण आपकी एक कहानी है, जो 'चित्रा' में डूबी है—'सफ़्त कोशा'। उस कहानी का पत्ररस दग रह गया। आचार्यजी, एसी कहानी गत ८६ पत्रा में नहीं भी मैन गहा पता है। यहा मर पाठ पात्रज क अनक प्रोफ़ेसरों ने भी उम पढा है। समाज है। भा। कल्पना और प्रीतिवात्मकता की गहराई पर हम सभी आश्चर्य कर रहे हैं। क्या यह भारतीय जन जाति का पराज चित्रण नहीं है। आपके साहित्य पर म एक आशाचनानामक 'नया समाज' में निरखने की बहुत दिन से सोच रहा हूँ। 'नया समाज' में मर उस प्रकार क नय प्रतिमास उप रहे है। कृपया अपने साहित्य पर जीवन के उम पत्रा में शामिल करने योग्य सरत Hints दीजिए। आपका समस्त जीवन साहित्य मात्रता में व्यतीत हुआ है। द्वितीय युग को मात्रसे मितानेका आप ती है।

म आपकी जीवनी भी निरखने का उच्छ्रित है। एक बार आपका द्वार पर पहच कर तोत चुका है। क्या आप मुझे दो चार दिन, उस काय क लिए अपना यहा ठहरा सकेंगे ? यदि संभव आता प्राग्राम बताऊँ ?

८/२/५२

मर आय, रामचरण मठ

(राष्ट्रकवि मथिलानगरण गुणाला पत्र)

आरम्योय मात्राज

आप जिसे विविधा य पत्रारकर हम अपना आतिथ्य से सम्मानित करने को कोषा करता है। क्या दूसरा लोग ही तमभ मूत्रा मितानी। उम कारण से उम सुयोग का नाम कोषा मता। आपका पता न जानने से भी उभी समय आपसे क्षमा प्रायश कोषा कर मता। आ। भा। जी। कुमार से उम जातकर विवरण करना है। भविष्य में मर माया का पत्रा प्रिया पुरा कर विजिण्या। और क्या विरा, आप स्वस्थ और सा। काय।

८८/८८

आपदा, मा। त। रण

(एक पापन का आसय का सा निरासि मर एम मित्र मप को पस करी एम कया से विराट करता जात है, परतु माता पिता रुति मर का। एकर विराट ही आता की कर रहे है। क्या आप माता पिता द्वारा उपाय मण रुतिवाद श्रीर मा। मर म। को शशाओ का निवारण करने का मर कोषा करगे, स्थिति कया यक विराट का टा। पर आत्म काय करण क विराट प्रविज है। कर और कया अपना माता पिता का समभाकर उवनी

अनुमति में ही प्रिय पत्र में बचना चाहते हैं। उसी मित्र का यह दूसरा पत्र हे) आदरणीय शास्त्राजी, सादर वंद।

आपके पत्र का पान के बाद मेने उसके माता पिता को मनाने का प्रयत्न किया और आपको यह सुनकर प्रसन्नता होगी कि आपके अकांक्ष्य प्रमाणों को सुनकर उसके माता पिता उसी लडकी के साथ विवाह करने को तयार हो गए। लडकीके माता पिता पहले से तयार थे। अभी पिछले दिनों दोनों की सगाई हो गई है। शहर में इस बात की काफी चर्चा रही। कईयों ने तो राम और सीता के सगेत्र होने की बात सुनकर कहा कि—वह तो मायावन् भगवान् थे, वह सब कुछ कर सकते थे, उन्होंने कइ प्रकार की लीलाए की, हम उनकी बराबरी थोड़े ही कर सकते हैं। अस्तु।

अब उनका विवाह २२ जनवरी १९५७ को हो रहा है। बारात फाजिलका से मोगा जाएगी। निम्नलिखित हूण किम्कर होती है आप हमारी प्रार्थना स्वीकार करण या नहीं, हमारी यह उच्छ्वा है कि आप हमारी इस छोटी सी बारात में सम्मिलित होकर अनुमृष्टी। पर। मरी ता यह हार्दिक उच्छ्वा है कि सप्तपदि के समय आपका वरद हस्त पर उतु क शीघ्र पर हा और आपका शुभ आशीवाद उ ह प्राप्त हो। मे भगवान् शकर म प्रार्थना करता हूँ कि वह हम इस अंतर पर आपकी सेवा करने का अवश्य अवसर न, जिमम कि वर उतु आपका आशीवाद प्राप्त कर सके।

२२ २२ ५६

—भवदीय, रामस्वरूप आत्रय

(गास्त्रामी तिवरायत श्री १०८ श्रीगोविन्दलातजी महाराज नाथद्वारा का पत्र)

परम आदरणीय श्री शास्त्री जी,

आपका पत्र दिनांक २३-७-५७ का यथा समय प्राप्त हुआ। खेद केवल इतना ही है कि आपमें कुछ थोड़े समय के लिए भी विचार विमल न हो सका, ताकि मुझे भी योग्य रहत आप जसे विद्वान् और विचारक और सफल लेखक से किंचित् मात्र ज्ञान प्राप्ति का सुअनसर प्राप्त हो सकता। खर, यह तो में सौभाग्य समझगा कि जब भी अभी आप उग्रई आने का कष्ट करे तो अनश्य ही मेर ही अतिथि बल्कि, अतिथि तो भयो, हमारे परिवार के एक सदस्य होकर रहे और इसमें मुझे वास्तव में हार्दिक प्रम प्राप्त हो गयी।

अगले वष जब मैं मसूरी से वापस लौटा और कुछ दिनों के लिए देहली में ठहरा था, उस समय मुझे माननीय राष्ट्रपति महोदय से मिलने का भी लाभ मिल गया था। तसे राष्ट्रपति महोदय एक बहुत ही सज्जन और धार्मिक व्यक्ति है। वे सन १९५१ में नाथद्वारा श्रीजी के दशनाथ भी पवारे थे। उस समय भी मुझे उनसे मिलने का सौभाग्य प्राप्त हुआ था। अब भी जब भी कभी मुझे अवसर मिलेगा, मुझे उनसे मिल कर हार्दिक प्रसन्नता होगी। आप जैसे विद्वान् के लिए साहित्य को मेरे जसा अल्प-

दुद्धिजीवी क्या देख सकता है? हाँ मैं आपका उसी समझना ही प्रयत्न आवश्यक करूँगा। यदि उगमे आपका किसी भी रूपम गहागर्भ ही गहा ता मैं अपने ही गारवा निवत समझूँगा।

मेरे विवाह पर आपका निमित्त न करनी ही शिवायत आपकी त्रिनुल सही है, कि तु उसमे मेरा उतना दोष नहीं है। क्योंकि उस समय नाथद्वारा ठिफाने पर उग्रपुर रियासत का दवदमा था और उही ही मु गरमात यानत्र पाट आफ पाड का प्रबन्ध था। वरना आज की अवस्था मे ऐसी भद्दी गार असभ्यता या गृहटा के व्यवहार की आशा आप मुझ जमे व्यक्ति से कभी स्वप्न मे भी न कर। मैं कम से कम उन व्यक्तियों की प्रेमी ना नहीं हूँ जो कि मुद्देखी चापलूसी किया करते ह, त्रिकि म यह कह सकता हूँ कि मेरे मे जितनी भी मातामे स्थाभि। और स्पष्टवादिता या नि स कोच किसी स्पष्ट बात को कह देने की क्षमता या योग्यता प्राप्त हुई है, तो वह आपके निखे हुए ग्रथो के अध्ययन से ही यह वरदान प्राप्त कर सका ह। मैं एक तरह से आपको अपना गुरु मानता हूँ। आपको स्मरण होगा कि जिस समय शायद सन १९४३ या १९४४ मे आप टाकरोली आए हए थे, गहागर्भ की वा उगाज करने के लिए, उस समय कुछ दिनों के लिए नाथद्वारा मे भी रह था और मेरा और मेरी बनी बहिन का, जा कि आजकल उओदा रहती ह, उलाज किया था। मैं अत्र तक उस 'आवल का मुरबा' और 'चटनी' का स्वाद भूता नहीं ह। उगो समय मे हिन्दी साहित्य सम्मेलन की विशारद की परीक्षा की तयारी कर रहा था गार आपा मझे गारा गोर पसाद द्विवेदी जी और श्रीजयशंकरप्रसाद की रचना 'ग्राम्' का समझान और पठान का श्रम लिया था, यह मुझे आज भी अच्छी तरह से स्मरण है। इसलिए मेरा और आपका आज से ही नहीं त्रिकि, एक बहुत काम समय मे अपना गुरु शिष्य ना सम्बन्ध चला आ रहा है। मे ता अब भी त्रिद्यार्थी अवस्था मे तो हूँ और ताता कि अपने अगते त्रि हए आभ जीवन मे आप जग गुरुजग मे गुरु जा प्राप्ति कर सक, ताहि मूल और ततमान न गुरु गहा तो कम से कम अपना भविष्य ता गुरार ही ना। यही ना अग्रसर है, यदि अब भी त्रि नेता ना त्रिना ना ह तो। पत्र अत्रि स सम्भाना ना जा रहा ह। आपको अत्रि हए दता मे उचित नता समझता। मेरी सम्पत्तों और त्रिजनजी का भी आपकी श्रीमतीजी से। मिल सकता हा गहा ही बता दगा है। दर्शन, फिर जब कभी प्रभु त्रि हगो, तब यह सुग्रसर भिन्ना ही।

२५ ७ ५७

आपका ही, नि० शान्तिना गारगामी

(अध्यक्ष हिन्दी भाषा परिषद का अध्यक्ष)

पिय गहा उभा,

आप शान्तिना आ रहे है, यह हिन्दी भाषा के लिए बड़ ही रूप की बान

हैं। तृपया तिथि और गानी को हम सूचना दे ताकि हम स्टेशन पर आपको मिल सके, जिसमें आपका नाम गण्डिगुन हो। आप गोलपुर स्टेशन उतरेगे। यदि हमें सूचना न दे सकें तो आप बागपुर से रिक्शा लेकर शांतिनिकेतन चले आवे और हिन्दी भवन आजाइया। क्या हममें से कोई न बोर्ड २७, २८ तारीख को अवश्य मिल जावेगा। मान्य पत्र और आपा इत्यादि हमें सुअवसर प्रदान करें। पत्र दिल्ली भी भेजा है। तृपया यह सूचना पत्र दे सकें तो कृपा हागी कि आप कितने दिन हमें दे सकेंगे, हम एक गोटीभी गभा करना चाहते हैं जिससे हमारे विद्यार्थीभी आपका दर्शन कर सकें।

१८ १७ —भवदीय, रामसिंह तोमर अ यक्ष, हिन्दीभवन
(राजर्षि जनक स्मृति समारोह पर भेजा गया अभिनंदन)

महाराज,

राजर्षि जनक स्मृति समारोह का आयोजन निस्संदेह एक सांस्कृतिक आयोजन है। मिथिला का विद्वत् अथ सूयकुल की वह शाखा है कि जिसने केवल राज्यों को ही जय नहीं दिया, अपितु भारत को दार्शनिक और तत्व सम्बन्धी उपनिषदों का गुरु ज्ञान प्रदान किया है। ऋषियों के गुरुपद का स्थान प्राप्त करने का श्रेय तो इतिहास में मिथिला ही को विदित राजर्षिपत्या को है। इस सुंदर आयोजन के लिए मेरा हार्दिक अभिनंदन अर्पण कीजिए।

१० २ ५८

—भवदीय, चतुरसेन

(भक्तगंगा गुरु, जयपुर का पत्र)

पूज्यवर प्रणाम,

साप्ताहिक साहित्यकार और सरकार के सम्बन्ध में आपने जो विचार प्रकट किये हैं, वे अत्यंत समीचीन और विचारणीय हैं। एक दिन हम कई साहित्यिक मित्रों को यही विचारकर रहे थे कि साहित्यिकों को प्रदानकी जानेवाली सरकारी उपाधियाँ में नहीं बल्कि 'साहित्य' शब्द का समावेश अग्र्य होना चाहिए और उपाधि प्रितरण का माप इसी आधार पर होना चाहिए। हिन्दी में अनेक ऐसे साहित्यिक हैं, जिनका भारी जीवन साहित्य साधना का जीवन रहा है। वे एक एकांत तपस्वी हैं जो साहित्य को रचना कर रहे हैं। परंतु आज उन्हीं साहित्यिकों को राजकीय सम्मान, महाराजा या पुरस्कार प्राप्त होते हैं, जो किसी न किसी रूप में राजनीति में सम्मिलित रहते हैं या जो अपने साहित्यिक नेतृत्व की धाक दिल्ली तक पहुँचा पाते हैं। मगर तब तो लोत्रिण, जनारसीदाम चतुर्वेदी की तुलना में यहाँ साहित्यकार चतुर्वेदी अथवा पद्मनाल पुत्रालाल बरशी की साहित्यिक सेवाएँ क्या किसी तरह कम हैं। मत्र पूजा जाय तो चतुर्वेदी जी तो एक पत्रकार हैं, उनमें मौलिक कविता को श्रमगा रहा है। परन्तु इतने समय से वही एक राज्य सभा से चुपके हुए हैं

और हमारे हिंदी साहित्य सम्मेलन के भूतपूर्व सभापति और हिन्दी के गण्यमान नाट्यकार सेठ गान्धि तदाम जो भी यह सत्र देख रहे हैं।

३० ४ ५४

- आपका, तमदाप्रसाद खरे

(पाठका के पत्र)

मा यत्र ग्राचाय जी गान्धि नमस्त,

१२ अगस्त सन् १९५६ ई० के 'साप्ताहिक हिन्दुस्तान' के विचार विमल स्तम्भ में आपके द्वारा की गई एक गान्धिवन्दना पत्र थी। उसका जीपत्र था 'त्या गोरत्र पाण्डुरो की कथा कपात कल्पित है ?

उसके पश्चात् २२ अक्टूबर ५६ के इसी पत्र में प० गिरिधर शर्मा द्वारा दिया गया उसका उत्तर भी पढ़ा, जिसमें कई बातें गमगम जान पड़ी और कई बातें दफि यान्सी उग को था, जिनका निराकरण जाना उचित प्रतीत होता है। पर अभी तक उसका समुचित उत्तर देखने में नहीं आया।

आपकी अपनी विचारधारा भी प्रौढ़ है, जिसकी पुष्टि 'प्रशान्ती की नगर वधु' और 'बयस्काम' जैसे उपवासों में हुआ है। पता नहीं इतने दीर्घ काल तक आपकी तस्वीरों में क्या बातें रह सकीं।

३० ४ ५५

-आपका एक प्रिय पाठक

आन्तरगोप्य शास्त्री जी जयहिन्द,

आपका साप्ताहिक उपवास तथा समयानुसृत अन्तर्गत पत्र पढ़ा। आज भारत के द्वारा श्री महाद्रष्टावत्पत्र देखा। कर्म में वही आपमें उस महान् व्यक्तिके वास्तविक आराज उठाई में फिर आये में आपके प्रति आदर व्यक्त करूँ, यह सम्भव नहीं। कृपया आप जानते हैं आप यह सन्तान् उत्तरगोप्य विचार प्राप्त है। अपने वास्तविक १८ वर्ष अखिल भारत चरणा में मैं नाम करत हुए ४८ में मृत हो गया। गांधी विमलन के वास्तविकताओं के उत्तरगोप्य सत्र की में मस्त्री को तरह गोलि मतभेद का कारण बना गया, बचपन में अशर्मित तो गया तबु अरु बार अन्तर्गत उपवास में व्यक्त करता रहा। समाज दुस्मिता को गोलि सन्तुष्टता देना देना और समाजों में आप सत्रों में व्यक्त करता है। गुरु के विषय में फुली खाना का नाम करके सिर्फ दो रक्त के विषय खाना भी कभी नहीं जुटा पाता। दिवनों अन्तर्गत गारा गया, सुभाग्य में न मिल सका। अन्तर्गत भी आया था। प्रणाम।

५ १ ५५

विमल, दीपक दान

मा तस्य श्रीगान्धिवन्दना,

गान्धिवन्दना को चण्डाली है यह तो मेरो, जो आपमें पत्र व्यवहार करूँ। क्षमा करके यह आशा है।

श्रीर हमारे हिन्दी साहित्य सम्मेलन के भूतपूत्र सभापति श्रीर हि गी के गण्यमान नाट्यकार सेठ गान्धि पदास जी भी यह मंत्र दंग रहे हैं।

३० ४५६

—आपका तमनाप्रसाद खरे

(पाठकों के पत्र)

मा यत्र आचार्य जी सादर नमस्त,

१२ अगस्त सन् १९७६ ई० के 'साप्ताहिक हि टुस्तान के विचार त्रिमश स्तम्भ मे आपके द्वारा की गई एक आनाचना पत्र थी। उसका जीपन था 'यथा कोरत्र पाण्डवा की कथा कपोत विपिन है ?

उसके पश्चात् २२ सितम्बर ७६ क इसी पत्र मे प० गिरिधर शर्मा द्वारा लिखा गया उसका उत्तर भी पढा, जिसमे कई बात तकसगत जान पटी और कई बात दखि याचूसी गग को थी, जिनका निराकरण होना उचित प्रतीत होता है। पर अभी तक उसका समुचित उत्तर दखन मे नही आया।

आपकी अपनी विचारधारा भी प्राढ है जिसकी पुष्टि 'वशाती तों नगर वधू' और 'वयरशाम जग उप यामा मे हुई है। पता नही इतन दीष काव तत आपकी तखनी कस शात रह सगी।

३० ४५७

--आपका एक प्रिय पाठक

आदरणीय शास्त्री जी जयहिन्द,

आपका साप्ताहिक उप याम तथा समयानुद्धन अनन्य तग पढ। आज भारत के द्वारा श्री मटेन्द्रप्रताप नेय ग्या। कलमे क धनी आपन उस महान व्यक्ति के वाचत आवाज उठाई मे फिन गन्थे मे आपक प्रति आदर ज्यन करू, वह सम्भव नती। कपया अप जीपन मे आप यह महान् उत्तरदायित्व विचार प्राथना है। आपन प्राचत १८ वर्ष अखिन भारत चरग्या सध मे काम करन हण ४८ मे मृत हो गया। गा ती त्रिमजत क ता। नाति एगी उतागई सत्र तों मे मसरी तों, तरट नाति मतभान कारण फता गया, त तपा ग 'जभति ती नगत हत आर बार अनक अप तारागुट मे यगीन करना रता। ततमान ६० ईसवी तों तीति मे श्रुतय ता हत गया और रामाना मे आप सतवा स्र यथन कर रण है। गुजर क तिय हूती फगी राती ता काम तरफ सिफ दो तक्त के तिय खाना मो कभी २ ती जुटा पाता। तित्तो अरत तार आया, दुभाग्य मे न मिन सता। शता.र भी आया था। प्रणाम।

५२७७

- विनय, दोपल द जन

मेरी य तीपा तों तों,

सर्वाकार ती चप्रा ती है यह ती मरो, जो आपसे पत्र व्याहार करूँ। क्षमा करण यह आगा है।

(श्रीमद्वाल्मीकि रामायण का पत्र)

प्रिय गार्गीजी प्रणाम ।

आपका पत्र मिला । अनेक प्रशंसा । उमका उत्तर यथामय शीघ्र न दे सका । आपकी प्रशंसा का जवाब । प्रिय गार्गीजी, यह हुआ कि आपका टीकमगढ़ में फिरता हुआ मुझे मिला । यहाँ पर मैं मटारानी साहिबा और मेरी बच्ची को लेकर उनको मिलने का प्रयत्न किया हुआ हूँ । व आज ढाई महीनेसे टाइफाइड ज्वरमें पीड़ित है । अत्र परमात्मा का उपाय जानना का तत्रियत अच्छी है । यहाँ पर एक सप्ताह और चरुगा, पानी, आदि जाऊगा । यहाँ पहुँचने पर मैं आपको सूचित करूँगा । तब यदि आपकी मूर्ति का पत्र आने की कृपा करिगया । आपसे भेट करके मुझे बड़ी ही खुशी होगी । आपका आग्रह मैं तब ही दूँगा ।

२२/८

— आपका, वीरमिहद्व

(श्रीमद्वाल्मीकि रामायण का तीसरा पत्र)

प्रिय गार्गीजी,

आपका गार्गीजी पत्र प्राप्त हुआ । पढ़कर परम प्रसन्नता हुई । भला, आप अगले पत्र में आपका पुस्तक सुपरिचय से किसे प्रगणना न होगी ?

मैं आपका नाम से चित्रित करने परिचित हूँ और उसका सवप्रथम सुपरिचय देने का ही आपका ही उपाय होगा । मुझे आपकी निमित्त पुस्तको, सम्पादित पत्रों और लिखित पत्रों का पढ़ना या गोपनीय पान हो ही जाता है । मुझे आप जैसे समयदर्शी अनुभवों का ज्ञान का ज्ञान आलापन, यही नहीं उनकी अपरिचयावस्था में भी अनुभव का ज्ञान, गणना का पत्र तथा श्रमण से परमात्माद होता है । मैं अपने आपका गोपनीय पत्र भेजना, यदि आप तैयार न हों तो साक्षात्कार से अनुग्रहीत करेंगे ।

आपका अपरिचय मिला मटारानी चंद्रशेखर जगबहादुर महोदय की पौत्रियों का मुयाय्य कर के लिए किया, तदर्थन में भी सचिंतित हूँ और इस विषय में प्रयत्न जो करूँ, यथाशक्ति यथाशक्ति उन से समूचित करूँगा ।

१९९३

— भद्रदीय, स्नेहभाजन, गोविंदसिंह, रायपुर

प्रिय गार्गीजी का उत्तर प्रणाम,

विचार करने पर आपका ही कुशल दान नहीं, आशा है आप सर्वथा आनंदमय पत्र लिखेंगे ।

आपका ही पत्र, 'पुत्र, यथादपण और अमीरो के रोग' इस समय मेरे सामने है । उन्हीं को दखकर आपका यह पत्र सम्प्रपित करने की स्मृति हो आई है । आपके प्रायः सम्पूर्ण अथवा के आराम में विचरण करते करते विराम करने की सुतराम तदपि इच्छा नहीं होती । वास्तव में अन्ध वाटिका के सरस, सुंदर, चित्ताकषक, सदभ

(महाराज शिवगढ़ के लो पत्र)

प्रिय शास्त्री जी,

एक तार मेने आपको २३ मई को दिया था कि शहादरे मे स्टेशन पर मुझसे मिलीं जिए, मगर वहा आप नही मिले । दिल्ली पहुँच कर मै सीधे मद्राम मेल से मद्राम के लिए रवाना हो गया । वहा से त्रिवन्नामल्लई मे रमण महर्षि के दशन करते रामेश्वर और जगदीश होते हुए ६ तारीख को शिवगढ़ पहुँचा । यहा आकर दो दिन मुतवातिर आम खा लिया । इसलिए हाजमा बेहद खराब हो गया । अब तक परेशान रहा आज कुछ बेहतर हूँ, इसी से मेरी अनुपस्थिति मे आपके आये हुए पत्र का उत्तर न द सका ।

२० ६ ३५

— भवदीय, बरख डी

प्रिय श्री शास्त्री जी,

आपका पत्र मिला था जिसका उत्तर मेने तार द्वारा दिया । कि तु मुझे आपका उत्तर दर म मिला, जिसका उत्तर देना न देना बराबर था, क्योंकि आप नियत समय पर किसी प्रकार पहुँच नहीं सकते थे । आपकी 'वशाली की नगरवधू' मिली । मेरी श्री नटरू की स्नेह भेट पर दृष्टि रक गई । इससे बेहतर भेट आप श्रीनेहरू को दे ही क्या सकते थे ।

सत्य तो यह है कि ऐसी किताबी भेट न मेने देखी है न सुनी है ।

६ ३ ४६

— भवदीय, बरख डी

(एक राजकुमार पाठक का पत्र)

श्रीयुत शास्त्री जी सादर करबद्ध प्रणाम,

मुझे आज यह मौखिक ही समाचार मिला कि 'वशाली की नगरवधू' पुस्तक पर आपको १०००) ६० का पुरस्कार उत्तरप्रदेश सरकार की ओर से प्राप्त हुआ है । सुनते ही मे उतना आनन्द त्रिभोर हो उठा, कि यदि आप विश्वास करे तो मे कहूंगा कि कुछ समय को मे यह निराय न कर पाया कि अपने को बधाई दूँ अथवा आपको यही से भेजू ।

गाप आश्चर्यचकित होगे मेरा पत्र पाकर । यह मेरा प्रथम प्रयास है आपको कुछ निगन को । यह पत्र नही वरन प्रेम से ओतप्रोत आन दाशु के कुछ छीटे है । इ हे रगा दीजिए । पहले मे प्रया लिखूँ और क्या पीछे कुछ कह नहीं सकता । प्रसन्नता मे पागल हूँ न । हपातिरक से नाच रहा हूँ । मेरे विचार स्वय इस समय श्रु खलाबद्ध नहीं है, मर जीवन की भी एक भी कडी श्रु खलामय नहीं है, तो मेरे भाव कहा मे होगे ।

मक तिए शमा चाहता हूँ ।

मेने आपकी प्रथम कहानी पढी थी 'दुखवा मै कासे कहूँ मोरी सजनी ।' तभी उत्सुकता हुई थी आपके प्रतिभा के प्रति । 'वशाली की नगरवधू' जब से पढा, मेरी

उत्तरी गी मानसिक गुणियो हा गमा गान हो गया, परन्तु तपित न ह । यदि आप इसे Exaggeration न समझ लें तो सच सा है कि आप चिरवैतन्य और म प्रयत्न वाप्य ज, अरु, वि य हा हा वि विचार भा गभार के सम्मुख शा के पूव ही जान ल । अत्यथ य मरा पार समजायिया म गु हा भा समाभावित है ।

२६ x ५२

विभा, विरूपा

(२०० गयका १ एम० ए० २०० दिट० गापिनर १० ए० सा पजार वि विविचार हा पत्र)

पूज्य आचार्य जी,

आपका प्रमथरा पत्र मित्त प्रयत्न म गापन ग हा अरु विचार हा पत्रा ही शा कर हा ह जिहा को अग्रज हा वि सा सार हा । वि भा गुराग जी जत्र जत्र गया नही मित्त, अरु वि भा म र हा ही र । जहा हा हा म ग र । मटात्मा हा भली प्रचार जावता वि उधर उन्ना स्वेतन हा समाप्टे गोर फिर भा प्र राम आ जात है । प्र प्राणि उन्ना नही हा हा । य हा निराभम है । समय आपका पत्रा ग्रा हि म तन हा विण नही पत्र । जब आप सत्र्य जा हा है फिर मुभग हा गी ज्ञान द्विपी है । उग र्करी सूरती राती म जो आप र है पत्र हा म हा र साजता म भो नही है, फिर आप ही उपस्थिति हा र तीज हा पार तां ट जगा ही है । म जत्र सत्ताह भर के लिए दिल्ली आउगा, हा अत्यथम उपस्थित हा ।

१९२-१६

आपका विभा, सूर्यका ल

(समन्वयेन विभा हा के हा पत्र)

प्रिय शास्त्री जी

गापन गय गार गप हो मधर स्मृति हा गण हा हा हा म प म रार म मि हा और गत म मि हा । मभो प्र हो पम हा हा है । गापन हा गभगा हा भाग हा । विराकर भज र हा हा ग हा गापन म म हा हा । हा आरुगा हो गापन ग हा म हा ग ।

गापन भाव्य हा है, ज हा हा, गय हा हा हा गोर हा हा पत्रा ग हा गय हा आपका मिना है ।

१९२-१७

विभा, रामानुज विभा हा

प्रिय शास्त्री जी,

नभरार हा गापन हा रू र गय हा पत्रा हा हा हा हा जी म मभे मित्त गया हा । उन्ना हा विण साव ररा विया हा । गापन हा गोर म मि हा हा, उगक रूसर ही वि ग मभे जत्र प्रा हा गय । म सा हा रर हा गय । हा प र हा हा हा बलाया गया । पत्रा मुभे वाय पर और हा म ल हा हा मार गया । म उठो हा म पार हा हा पजार जा । म भी परा ही न हा गया । अत्यथ म मर मि हा विट्टिया जी को

खरबगी तो चला। अपना गान्धर भेजकर उसके साथ मुझे बम्बई बुलाकर अस्पताल में भरती करा दिया। उपचार ठीक हुआ और हाथ तो करीब करीब बिलकुल ठीक ही हो गया। पैर में भी प्रायः जाने लगा हूँ, पर खरब नहीं गया। रोज ६६, १००, १०१ तक चलता जाता है। साथ ही मिर और पीठ में बहुत से जोड़े भी निकल आये हैं। गान्धर बहुत है, गान्धरा भी गरभी से ऐसा हुआ है। विटामिन बी, बी१ के इजेक्शन तीसरे दिन लगाए। दिन भर पड़े रहने के सिवा कोई काम नहीं। अस्पताल से मुझे नर्सानिया जी अपनी छोटी भ, जो समुद्र तट पर है, उठा लाये हैं। मेरा यह हाल है। अब जोरित बचकर आया तो आपकी बताई दवा का उचित रीति से सेवन करूँगा। श्रीमती जी को नमस्ते। प्राण सपरिवार स्वस्थ और प्रसन्न होंगे।

बम्बई, ३५५७

—आपका, रामनरेश त्रिपाठी

(दिल्ली के प्रसिद्ध उपशामकार सन्धैयालाल ओझा, कलकत्ता के दो पत्र)

पूज्यचरण श्री शास्त्री जी,

वयरशाम के ग्रंथ मुक्ति समारोह पर उपस्थित हो सकने का अवसर तो अब नहीं रहा, किंतु यदि होता तो यह मेरी एक तीर्थ यात्रा हो जाती। वयरशाम, श्री प्रतीक्षा यदि कोई अर्थ व्यक्ति मुझ जसी तीव्रता से कर रहा हो तो मैं उसे अभिनन्दन देना चाहूँगा। आपको शायद स्मरण होगा कि जब आपने उसे लिखना प्रारम्भ किया था, तभी मुझे उससे परिचित होने का सौभाग्य मिल गया था। फिर जब उसके पहल फर्म का प्रक आया तब भी मयोग ने मुझे दिल्ली उपस्थित कर दिया था। ग्रंथ मुक्ति अवसर पर मैं स्वयम् चेष्टा करके उपस्थित हो जाता, यदि समय पर सूचना मिल जाती। दुर्भाग्य मेरा। कितनी उत्कट इच्छा है कि कब दो चार दिन आपके साथ ही रहकर बिताने का अवसर मिले।

अपनी प्रतिभा तथा अध्यवसाय से आपने हिंदी साहित्य को एक नई दिशा दी है, और उस ग्रंथ की ग्रंथ मुक्ति के साथ, मे समझता हूँ, हिन्दी के उपवास साहित्य का एक नया ही पृष्ठ उन्मोचित हुआ है। आपकी इस छियासठवीं वर्ष ग्रंथ-उन्मोचन के अवसर पर मैं ईश्वर से प्रार्थना करूँगा, और मेरी इस प्रार्थना के साथ मेरी पत्नी, बच्चे सभी सम्मिलित हैं कि यह दिन भी आपके जीवन ग्रन्थ का एक अभिनव पृष्ठ है, और ऐसे किन्त ही पृष्ठ आपके ग्रंथों की पृष्ठ मर्यादा के समान ही हिन्दी साहित्य का और हमें पढ़ने को मिलते रहे। मेरे शत-शत अभिनन्दन।

३०८५५

—विनयावनत, स हैयालाल ओझा

प्रादरगगीय शास्त्री जी,

उम 'हिन्दुस्तान' से और भी सूचनाएँ मिली हैं। एक तो यह कि आप जोड़ों की उजह से अस्वस्थ हैं। गई बार जब हमने आपके दशन किए थे तब तो यह शिका

यत नती ती । उष्या पूरा टात रिण । गोपा ' समन्वि विपत्त्या तत रती ताकी
 गार यत्र आप पुण स्वयं । अरा पया ता । तरा ता त सूचता यत कि
 आपा साप्रतिव विहाग हा पगाति पर प्रप । स्ता त र रिण । उम प्रहा-
 ता की क्या प्रवस्था हो रती है ? अत तत यत्र बाजार भ गाता मगा ? आप जात
 ही त मर विण यत्र पुतत रिता मर व ती । यभी अति यहा निवर ती ग
 आपक 'प्रयस्याम' की चचा चनी । चचा ता विपथ सा तवी 'सम्कृति क' चार
 अ ताय । अतान रीका' किया कि 'प्रयस्याम' उ ता नती प ता । कुड त या की
 आर भी उनता यात प्रारुपित किया । च हात तटा रि म पस्तक वा पय । उम-
 विण उम श्वर ट रि 'साम्कृति' विहाग वा रिता हा वरी आरुपय ता है । पर त तया
 य तथा रिता ठा गर अपनी हो एकती तजाण जाता चा । या हूगरी ती यात भा
 कभी गुण ?

'स्नाता श्रीर गृ' । परनामित १०००० पण ती यात परापर तयियत हो उग
 तत मिताते । रि दी ता योभाय्य है कि उम आप जम पचण महारथी पापा ' पराया
 हिन्दी व हिमायती अ रायोतार करत है ' गात्री उत यात हो पाप रि- वि-स्नात'
 म व नी त* म हायोग से पड रती * श्रीर तार तार पु नी है रि त म समाप्त योगी ?

८५६ विशो मरक, म यैयाताय साभा

(पाठका क कुड पत्र)

ता रि याताय जी,

याप अरु हा श्यायती पत रितातर । अर । । । याज यातायम
 परपरा । ता तया तय प र ता ता । यापता अत हो ता व रिता पर यमा
 ता ता पा ता रि त तागताय । यया । यत । यति । ता जा र ता है । याप जम
 उदपर जताता । जतात म । यत । यर, प, ता रि ताया । ता ताप तर पर रिता
 म यता यापता शो र ता यता ।

७ तम, ता उमा

शापार्ति रि इताता ८ पादुार ११ पण २ तापता ता तया उरुम । यरदार,
 यापता जो 'तापता पण १० ११ १२ गौर ता २ २५ पर रि या है पत
 म य हो रि रिता य ता ' गौर उमम याप म ताय हा जो य । अर प है, रिता
 म यापता हु । अर । र ता । याप मया तर । यापम मरा रिता य है रि रिता उम
 अर ता य ताया व । अरुताय ता । अरुताय मय गौर रिता चहा ता ता यता । ता,
 ता भी ताय याप जाता । य । अर ता याप म तापता ता यता पर ती आर
 ता तया ता ता यता यता ।

शुद्धय शास्त्रीजी,

‘इस्लाम के त्रिपवृक्ष’ की आलोचना से आरम्भ कर आपकी कहानिया वरावर पढना आ रहा हूँ। ‘दे खुदा की राह पर’ जो आपकी कहानी है, वह ममार के सर्व श्रेष्ठ कहानियों के समकक्ष स्थान पानेयोग्य है। आज भी रजिया की (शायद यही नाम उस लडकी का था) वह मूर्ति मेरे सामने नाच रही है, वह दृश्य हाथ मे इलायची लेकर आगे बढ़ना। पता नहीं अब आपने अपने नाम से ‘शास्त्री’ गव्द क्यों हटाया। हाल के साप्ताहिक हि तुस्तान मे—जब हम एक लाख लेकर उनके कूचेमे गए—कितनी सुंदर कहानी है। आप चिरायु हां प्रौर हि दी को अपने गुलदस्ता से सजाए चले जाएँ।

२७ ६ ५५

—आपका, एक अपरिचित श्रद्धालु महजनारायण डाक्टर

(रशीद अहमद का पत्र)

आदरणीय श्रीमान् आचार्य जी, मादर नमस्ते।

आपकी रचना ने मुझे आकर्षित कर लिया है। यदा कदा पत्रिकाओं में जो मिल जाता है उसे पढ लेता हूँ। आपको मैं साहित्य निदेशक मानता हू। मैं आपसे सच कहता हूँ मेरे गुहदेव ! कभी कभी मैं बहुत परेशान हो उठता हूँ। जब से उदू की आर से मैं याम ले लिया और हिंदी का दरगाजा खटखटाया, मेरे मिलने वाले मुझे नाराज हो गए और हर समय ताना कसा जाता है।

आपकी साहित्य साधना अगाध है। एक तपे तपाये साहित्य मंदिर के पुजारी है। आप मेरा रहबर बनकर मुझे भटकने से बचाए। अन्लाहने मुझे आपकी पनाह में भेजा है। मैं हिंदी कम जानता हूँ। गलतिया माफ करेगे। उत्तर की चाह है।

३ ३ ५६

—आपका ही, रशीदअहमद

(एक वयोवृद्ध मनीषी द्वारा लिखा गया पत्र)

प्रिय चतुरमेन नमस्ते,

११ अगस्त के ‘नवभारत टाइम्स’ में निकला कि १० अगस्त को जो दिल्ली के साहित्यिकों ने रवी द्रनाथ टैगोर का दिन मनाया, उस सभा का सभापति तुम्हें बनाया। बहुत पढी बात। मैं तुम्हें बहुत बहुत बधाए भेजता हूँ। दिल्ली के ये लोग निहायत ही रुजरेटिय पाए। निहायत नगदिल, खासकर तुम्हारे बारे में, अबके उनकी मेहरबानिया और ऐजाज तुम्हारे सिर पर कसे दूट पडा है, यह कोई रहस्य की बात अवश्य होगी।

लठखडाते है कदम जोहद के ओ पीर मुगा,

तोबा अब दूट ने गिरने को हे मय रगारो पर।

जम्हर ही वे तुमसे कोई भारी काम निकालना चाहते है या कोई जिम्मेदारी ना उप्पर। तुमने भी अपनी इस्पीच खूब भाडी। रवी द्र को तुलसी से जा भिडाया। भला उत्तरप्रदेश के या कही के भी ये हिंदीकवि कोरे सत्यग्राम के वासी भला ये रवी द्र

१० या ११ को मैं भी मैनपुरी जा रहा हूँ। टण्डनजी से तो इसी बीच में मिल लेना है। जिससे पहली ही बैठक में कुछ कदम बढ़ सके। इस मीटिंग को आप सफल बनाने में जान लडा दे। उपस्थिति बीस से अधिक न हो, कम चाहे कितनी हो, पर आदमी ऐसे हो जो काम में जुट जाय। विश्वास रखिए—इस सरथा को आप यदि जम दे सके तो यह एक असाधारण काय होगा।

आप यदि पहले हिन्दी वालो ही को बुलाना चाहते हो तो ऐसा ही करे, परन्तु मेरा विचार है कि चाहे एक एक ही व्यक्ति हो, अथवा भाषा वालो को भी बुलाइए, वरना उद्देश्य की पूर्ति न होगी। हा, अमन साहब को बुलाना न भूलना, तथा मीटिंग २४ दिसम्बर से प्रथम ही बुलानी होगी। काम के मित्रो से आप मिलते रहें, तथा टण्डनजी से समय ठीक करके मुझे सूचित कर दे। हम लोग बहुत दिन से परिचित हैं, पर न केवल दूर-दूर ही रहे हैं, लडे भी हैं। अब उसी भाति दोष का माजन हो तो उत्तम है।

जनजीवन को सयत, संस्कृत और समथ करना साहित्यकार का काम है। साहित्यकार ही जनजीवन का नेता और नियंता है। साहित्यकार का अपना कोई देश नहीं, वम नहीं, जाति नहीं राष्ट्र नहीं और इनके प्रति उसका कोई कतव्य नहीं है। 'सर्वजन हिताय और सर्वजन सुखाय' उसकी वृत्ति है। सत्य का स्वयं दर्शन कर, शिव भाव में श्रोतप्रोत हो, सौंदर्य की रचना कर जन जीवन को उससे सम्पन्न करना उसका ध्रुव ध्येय है। दम ध्येय की पूर्ति के लिए उसे सतत जन जीवन के प्रति उन्मुख रहना तथा सात्त्विक भाति कूटस्थ रहना चाहिए।

जन जीवन के प्रति उन्मुख साहित्यकार के द्वारा प्रसादित 'साहित्य' ही समाज की रीढ की हड्डी है। उसी के बल पर समाज खडा होता है, चलता है, बढ़ता है, प्रगति करता है।

आज का भारतीय साहित्यकार जन जीवन के प्रति उन्मुख नहीं है, विमुख है। अब तक चली आती हुई परम्पराओं ने परिस्थितियों ने, तथा आदर्शों ने उसे जनजीवन से त्रिमुख कर दिया है। ये साहित्य परम्पराएँ आधुनिकता का प्रतिनिधित्व नहीं करती, इससे आज के जन जीवन पर साहित्य का शासन नहीं है। आज का साहित्य जन जीवन पर आवेशित नहीं है। इसीसे आज का साहित्यकार एकाकी रह गया है।

परन्तु आज का भारतीय जन जीवन सद्यः प्रसूत शिशु है, अबोध है, परापेक्षी है, असहाय है। वह राजनीति के निमम और कुटिल चरणों में जा पडा है, जहा उसे प्रश्रय मिल सकता है—पोषण नहीं, शिक्षण भी नहीं। उसका विकास और सयम दोनों ही खतरे में हैं। वह आवारा हो रहा है, इसीसे सारे देश में इस सप्तवर्षीय शिशु में आपाद अराजकता के लक्षण उदय हो रहे हैं। आज वह अपने ही में उलभ रहा है, अपने ही में असतुलित और असयत है। एक तरफ दायित्व का गुरुतर भार उस पर

तत्पश्चात् तीन दिन तक अनेक सदस्य यही रहेंगे । इस बीच में हम लोग टण्डनजी से मिल सकते हैं । शिक्षा विभाग की काफी आलोचना मैंने पालामेट में कर दी है ।

१४ १२ १९५३

—विनीत, बनारसीदाम

प्रिय बनारसीदामजी,

मे यह समझा हूँ कि आपको सरकारी सस्था का एक पुरजा बनने की आशा है । उसका प्रबन्धन आप नहीं त्याग सकते, इसीसे किसी नये आन्दोलन में हाथ डालने में डरते हैं । निःसन्देह जैसा आप मद में निष्क्रिय रह रहे हैं, वहाँ भी रहेंगे । यह दुभाग्य ही समझना चाहिए कि साहित्यकार को अपनी रचना के नये में भूमि रहने और आप जैसे साहित्यिक बुद्धि अपना दृष्टिकोण बहुत ही क्षुद्र बनाए बैठे हैं । देश भीतर में अराजक और बाहर से अशिक्षित हो रहा है । हम साहित्यकार यदि महज गरादी और चण्डूराजी की भाँति नशे में वशुव न रहें तो कम से कम देश की भीतरी अराजकता को कम करके बहुत अशोक्त अपनी सरकार के हाथ मजबूत कर सकते हैं, जो दिन दिन कमजोर और विपदग्रस्त होती जा रही है ।

फिलहाल आप मेरा वह नोट तो टण्डनजी के पास भेज दें । यदि एक माटिंग आप हिंदी भवन में बुला सकें तो सूचित कर दें, वरना मैं कुछ और सोचूँ । मेरा यह नोट टण्डनजी को भेजकर तथा मिलकर जो निराय हो, उसकी मुझे सूचना दें ।

१० १२ ५३

—चतुरमेन

प्रिय शास्त्रीजी, सादर प्रणाम ।

आपके कांड से प्रतीत हुआ कि आपके और मेरे दृष्टिकोण में कुछ अंतर अवश्य है । उस छोटे से पत्र में आपने एक साथ कई दलजाम मुझ पर लगा दिए हैं—

१—आपको सरकारी सस्था का एक पुर्जा बनने की आशा है और उसका प्रलोभन आप नहीं त्याग सकते ।

२—इसीसे किसी नये आन्दोलन में हाथ डालने से डरते हैं ।

३—आप अपना दृष्टिकोण बहुत ही क्षुद्र बनाए बैठे हैं ।

मेरी समझ में आपके ये आरोप गलत हैं पर मैं आपसे बहस नहीं करूँगा । उससे व्यर्थ ही कटुता उत्पन्न होगी । आप अपने रास्ते पर चलते रहें, मैं अपने पर । ग्राहिक हम लोग कभी न कभी तो मिलेंगे ही, क्योंकि हम लोगों का लक्ष्य एक ही है, यानी राष्ट्रभाषा को उसके अनुरूप गौरव प्रदान कराना । कृपया श्रद्धेय टण्डनजी को अपना नोट 'एक विस्तृत पत्र के साथ' आप स्वयं ही भेजें । मैं कल उनकी सेवा में उपस्थित हुआ था, पर वहाँ के मातमपुर्सी के घोर दुःखमय वातावरण में इस विषय की चर्चा करना संभवता अमंगल होता । स्व० हरिहरनाथ शास्त्री उसी मकान में रहते थे ।

१५ १२ ५३

—विनीत, बनारसीदाम चतुर्वेदी

- १९१८ प्रोफेसरी ट्योटकर अजमेर चले गए और स्वसुरमह के साथ औषधालय में प्रेन्टिस करने लगे । यही तलवार चलाना भी सीखा ।
- १९१९ गहन कला की मृत्यु हुई । साघातिक रूप से मस्तिष्क ज्वर में ग्रहित हुए ।
- १९२० दिसम्बर में अजमेर से बम्बई चले गए ।
- १९२१ बम्बई में भद्र का संग्रहणी में ग्रसित होना ।
- १९२३ १४ जून, ज्यष्ठ अमावस को पत्नी तारावती की मृत्यु । २३ जून को भद्र का त्रिग्राह । नवम्बर में प्रियम्बदा से द्वितीय विवाह ।
- १९२४ बम्बई से दिल्ली में आकर चिकित्सालय खोला और पुन दिल्ली में रहने लगे ।
- १९२६ इनाहागाद यूनीवर्सिटी में हिंदी विभाग द्वारा आयोजित कहानी सम्मेलन की अध्यक्षता । दिल्ली में 'नागरी प्रचारिणी सभा' की स्थापना ।
- १९२७ राम तन्त्री (अप्रेल) को माता की दिल्ली में मृत्यु ।
- १९२९ नवम्बर में 'चाद' का फासी अंक सम्पादित ।
- १९३० जून में 'चाद' का मारवाड़ी अंक सम्पादित । १२ नवम्बर, भद्रसेन की मृत्यु राजे द्र कालेज छपरा विद्यार्थियों के समक्ष 'वैज्ञानिक दृष्टि से ब्रह्मचर्य' पर भाषण ।
- १९३१ गिरीडीह में विश्वकर्मा ब्राह्मण महासभा छोटे अधिवेशन की अध्यक्षता । नयनऊ में 'आरोग्यशास्त्र' छपाया । लगभग एक वर्ष वहा रहे, चिकित्सालय भी रोला ।
- १९३२ दिल्ली लौटकर चादनी चौक, फव्वारा में चिकित्सालय खोला ।
- १९३३ शाहदरा में अपने निवास के लिए भूमि खरीदी । १८ अक्टूबर विजयादशमी को द्वितीय पत्नी प्रियम्बदा देवी की मृत्यु ।
- १९३४ दिल्ली में हिंदी साहित्य सम्मेलन का अधिवेशन हुआ । प्रेमचंदजी भी आए थे । सम्मेलन में 'समस्त संस्कृत साहित्य के हिंदी प्रकाशन की योजना' का प्रस्ताव उपस्थित किया और वह पास हुआ । 'पराजित गांधी' का प्रकाशन और बम्बई कांग्रेस अधिवेशन में उसकी बिक्री से भारी हलचल । ३ मई, ज्ञान से तृतीय विवाह । ८ जून, पिताजी का निधन ।
- १९३५ अग्रस्त में 'सुवा' के विशेषांक प्रवेशांक का सम्पादन । अलवर में संस्कृत-साहित्य सम्मेलन का सभापतित्व ।
- १९३६ मगनाप्रसाद पारितापक के निर्णायक बने ।
- १९३७ काकरोली महाराज का आतिथ्य ।
- १९३८ हरिद्वारा कुम्भ पर आलडडिया रेडियो की ओर से कुम्भ दशन पर पण्डित रामनाथ कालिया के साथ रिलेब्राडकास्ट ।

ताजमहल होटल बम्बई के प्रिसेस चेम्बर मे जरिस्टस नटवरलाल, हरीलाल भगवती की अध्यक्षता म काकरोली महाराज गास्वामी श्री वृजभूपरालाल जी महाराज और उनकी बमसखी पुण्यदशना सुश्रीचंद्रलता जी को मामनाय समर्पण समारोह ।

- १८५५ १६ फरवरी, कमलागंग एम० ए० के साथ आलइण्डिया रेडियो पर 'बंगाली की नगरप्रद्व' पर चर्चा ब्राडकास्ट । २६ अगस्त को अपराह्न मे भारतीय छात्र मगम द्वारा ६५वे ज मनश्चत्र पर अभिनदन तथा वयरक्षाम ग्रथ मुक्ति समारोह की अध्यक्षता लोकसभा के स्पीकर श्री अनन्तशयनम त्रायगर ने की । २९ मितम्बर सव्या समय पुत्री ज्योत्स्ना का ज म ।
- १९५६ २६ जनवरी, श्री नीलकण्ठेश्वर कालेज खडवा की साहित्य सभा का उद्घाटन । फरवरी, गज म ट कालेज कोटा की साहित्य सभाके वादविवाद प्रतियोगिता का सभापतित्व, । ६ जून, भारत सरकार के शिक्षामंत्री श्रीमाली से ११॥ बजे भेट ।
- १९५७ जनवरी, 'शातिनिकेतन हि दी भवन' मे विद्यार्थियों के समक्ष भाषण, और प्रश्नों के उत्तर । १० नवम्बर, ईश्वरशरण आश्रम कालेज इलहावाद मे भाषण । नवम्बर, दो बैलगाड़ियों के बीच मे आगए, उगली टढी हो गई, बाह मे फ्रेक्चर हो गया । अस्पताल मे फ्रेक्चर ठीक करके एक महीने तक प्लस्टर चढा रहा ।
- १९५८ १७ दिसम्बर, सत तरणतारण ५१वीं जयन्ती महोत्सव पर अध्यक्षीयभाषण ।
- १९५९ दिसम्बर म आलइण्डिया राइटस का फोस मद्रास मे सम्मिलित होने गए और वही स दक्षिण भारत यात्रा सेतुबन्ध रामेश्वरम् तक की ।
- १९६० १० जनवरी, दक्षिण यात्रा से घर लौट । १२ जनवरी को रोगक्रान्त हो अरविन अस्पताल मे भरती हुए । २ फरवरी मध्याह्न १३५ पर महाप्रयाण ।

चतुरसेन साहित्य पर पुरस्कार

वैशाखी की नगरप्रद्व	१०००)	उत्तरप्रदेश सरकार	१९५२
सामनाथ	६००)	उत्तरप्रदेश सरकार	१९५५
वयरक्षाम	६००)	उत्तरप्रदेश सरकार	१९५७
गोली	५००)	उत्तरप्रदेश सरकार	१९५७
हमारा शरीर	५००)	शिक्षा मन्त्रालय भारत सरकार	१९५८
हमारा शरीर (अग्नेजी अनुवाद)	५००)	शिक्षा मन्त्रालय भारत सरकार	१९५८
राधाकृष्ण	५००)	शिक्षा मन्त्रालय भारत सरकार	१९५८
हमारा शरीर	१००)	उत्तरप्रदेश सरकार	१९५८

चतुरसेन साहित्य की प्रकाशन-अनुक्रम सूची

१ रिश्ना की त्रितीपर जतरानी कुरी	(निबन्ध)	१९११
२ राग विभाज	(उपयाम)	१९१४
३ शारीर चित्रिता	(शारीर विज्ञान)	१९१५
४ अपत्याग्रहण	(चित्रिता)	”
५ दृश्य की परग	(उपयाम)	१९१६
६ व्यभिचार	(समाज, चित्रिता)	१९१६
७ अस्तन	(हिन्दी का मूलप्रथम गद्य नाय)	१९११
८ सत्याग्रह और मसह्याग	(राजनीति)	”
९ सत्याग्रह और असहयोग	(गुजराती अनुवाद)	१९११
१० दृश्य की परग (गुजराती अनुवाद)	(उपयाम)	१९२४
११ प्रथम स्वयं	(गद्य नाय)	१९२५
१२ व्यभिचार	(गुजराती अनुवाद)	१९२६
१३ अस्तन	(मराठी अनुवाद)	”
१४ उलग	(नाय)	१९२६
१५ 'सा' का तृपानी विशपाक 'कासी अक'		”
१६ पर्यापय	(चित्रिता)	”
१७ 'सा' का सामाजिक विशपाक 'भारवाड़ी अक'		१९२६
१८ हिन्दू राष्ट्र का नवनिर्माण	(समाज)	१९२७
१९ २१ प्रथम २०	(राजनीति)	”
२० सप्त	(कहानी संग्रह)	१९२८
२१ सात सभा	(राजनीति)	”
२२ दृश्य की परग	(उपयाम)	”
२३ सात सभा	(अनुवाद)	१९३०
२४ सात सभा	(उपयाम)	”
२५ आराध्य नाय	(सायब की रीति गा)	”
२६ सात सभा	(सायब)	”
२७ सात सभा	(सामाजिक)	१९३३
२८ सात सभा	(चित्रिता)	”

२९ पुत्र	(सामाजिक)	"
३० कन्यादपण (हमारी पुत्रिया कमी हो)	(सामाजिक)	"
३१ अजीतसिंह	(")	"
३२ रजकरण (बाबर्चिन)	(कहानी संग्रह)	१९३३
३३ अमर अभिलाषा (गृहते आसू)	(उपन्यास)	"
३४ आदश बालक	(कहानी संग्रह)	"
३५ वीर बालक	(")	"
३६ भारत मे ब्रिटिश राज्य	(इतिहास)	"
३७ इस्लाम का विपवृक्ष (भारत मे इस्लाम)	(")	"
३८ बुद्ध और बौद्धधम	(इतिहास)	"
३ धम के नाम पर	(समाज)	"
४० गा ग्री की आ ग्री (पराजित गाधी)	(राजनीति)	११३४
४१ अमरसिंह	(नाटक)	"
४२ आत्मदाह	(उप यास)	"
४३ रावाकृष्ण	(एकांकी)	"
४४ वेद और उनका साहित्य	(धम)	१९३६
४५ प्राणदण्ड	(सम्पादित लेख)	"
४६ स्त्रियो का ओज (हिन्दी का सवप्रथम ध्वन्यात्मक एकांकी)		"
४७ जगहूर	(गद्य काव्य)	"
४८ राजपूत बच्चे	(कहानी संग्रह)	"
४९ मेघनाद	(")	"
५० मुगल बादशाहो की अनोखी बातें	(कहानी संग्रह)	१९ ८
५१ सीताराम	"	"
५२ सिंहगढ गिजय	(कहानी संग्रह)	१९३९
५३ राजगिह	(नाटक)	"
५४, सुगम चिकित्सा	(चिकित्सा)	१९४०
५५ आरोग्य प्रवेशिका	"	"
५६ नीलमणि	(उपन्यास)	"
५७ श्रीराम	(नाटक)	"
५८ वीरगाथा	(कहानी संग्रह)	"
५९ कामकला के भेद	(स्त्रास्थ्य)	१९४२
६० हिंदी भाषा और साहित्य का इतिहास	(साहित्य)	१९४६

११	ताम्र भाग	(मद्रास संग्रह)	१८८८
१२	ताम्र भाग (१ भाग)	(मद्रास संग्रह)	"
१३	पुष्पाक्षरि (समाप्त भाग भाग परिशिष्ट, १ रूप)	(पंजाब)	"
१४	विश्वविद्यालय भाग	(मद्रास)	"
१५	संगीत भाग	(मद्रास संग्रह)	१८८९
	जावन भाग	(समाप्त भाग)	"
१६	संगीत	(समाप्त भाग संग्रह)	"
१७	हमारा भाग	(राजधानि)	"
१८	पान भाग	(मद्रास संग्रह)	"
१९	संग्रह	(मद्रास संग्रह)	१९१
२०	संग्रह	(,)	१९११
२१	संग्रह (भाग)	(,)	"
२२	संग्रह	()	"
२३	संग्रह (भाग)	(संग्रह)	१९१२
२४	संग्रह	(मद्रास संग्रह)	"
२५	संग्रह	()	"
२६	संग्रह	(,)	"
२७	संग्रह	(संग्रह)	"
२८	संग्रह के संग्रह संग्रह संग्रह	(संग्रह)	"
२९	संग्रह	(संग्रह संग्रह)	"
३०	संग्रह संग्रह संग्रह संग्रह	(,)	"
३१	संग्रह संग्रह संग्रह संग्रह	(संग्रह)	"
३२	संग्रह संग्रह संग्रह संग्रह	(संग्रह)	"
३३	संग्रह संग्रह संग्रह संग्रह	(संग्रह)	"
३४	संग्रह संग्रह संग्रह संग्रह	(संग्रह)	"
३५	संग्रह संग्रह संग्रह संग्रह	(संग्रह)	"
३६	संग्रह संग्रह संग्रह संग्रह	(संग्रह)	"
३७	संग्रह संग्रह संग्रह संग्रह	(संग्रह)	"
३८	संग्रह संग्रह संग्रह संग्रह	(संग्रह)	"
३९	संग्रह संग्रह संग्रह संग्रह	(संग्रह)	"
४०	संग्रह संग्रह संग्रह संग्रह	(संग्रह)	१९१३

६३ अदल बदल	(,,)	,
६४ भारत के मुक्तिदाता	(चरित्र)	,,
६५ गाण्डीवदाह	(काव्य)	,,
६५ स्त्रियो के रोग और उनकी चिकित्सा	(स्वास्थ्य)	,
६७ कुमारिकाओं के गुप्त पत्र	(,,)	,,
६८ अविवाहितो के पेचीदा गुप्त पत्र	(,,)	,,
६९ छत्रसाल	(नाटक)	१८५४
१००, मफेद गोवा	(कहानी)	,
१०१ राजा साहेब की पतलून	(कहानी संग्रह)	,,
१०२ कालि दी के कूल पर	(गद्य काव्य)	,,
१०३ ग्रधेडाग्रम्या का दाम्पत्य	(स्वास्थ्य विज्ञान)	,,
१०४ वद्ववस्या के रोग	(,,)	,,
१०५ आप कसे भरपूर नीद मो सकने है	(स्वास्थ्य)	,,
१०६ बच्चे कसे पाले जाय	(,,)	,,
१०७ जीजी का रमोईघर	(,,)	,,
१०८ विवाहित जीवन का आनन्द	(स्वास्थ्य)	,,
१०९ पत्नी प्रदर्शिका	(,,)	,,
११० आलमगीर	(उपन्यास)	,,
१११ आप आंगिक सु दर कसे बन सकती है	(स्वास्थ्य)	१९५५
११२ क्षमा	(नाटक)	,,
११३ सोमनाथ	(उपन्यास)	,,
११४ वमपुत्र	(,,)	,,
११५ मेहनत, आराम और त तुरुस्ती	(प्रोढ शिक्षा)	,,
११६ मन्त्रिय्या	(,,)	,,
११७ तन्दुरुस्त रहो और बहुत दिन जिओ	(,,)	,,
११८ अचछा खाओ अचछा पीओ	(,,)	,,
११९ शरीर कपडे घर की सफाई	(,,)	,,
१२० मौममी बुखार मलेरिया	(,,)	,,
१२१ साफ हवा	(,,)	,
१२२ प्रकाश, हवा का आवागमन	(,,)	,,
१२३ दूत की बीमारिया और उनकी रोकथाम	(,,)	,,
१२४ तमाखू का गुलाम	(,,)	,,

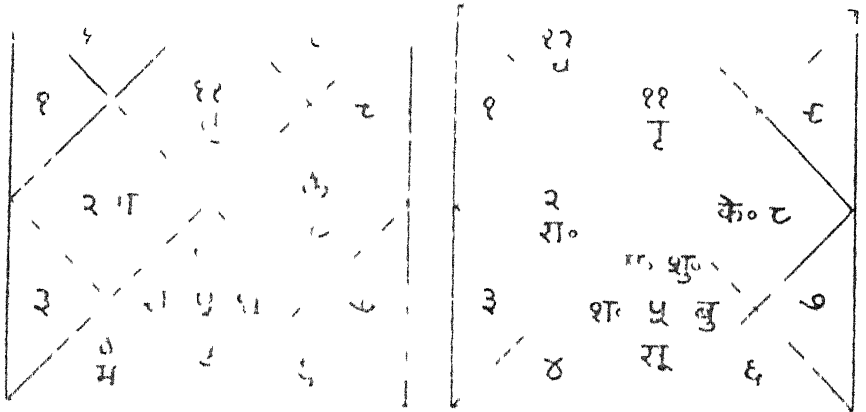
१२५	सामाजिक चिकित्सा	(")	"
१२६	परमार्थ परा माती लो सुभीत वजा गोर शराय	(")	"
१२७	त्रीशारी फताा गान कीडे महानि	(")	"
१२८	नागरिक जीवन	(")	"
१२९	स्वाभत्त तामन	(")	"
१३०	जिजाता	(")	"
१३१	त्रोसा	(")	"
१३२	साततवा	(")	"
१३३	जुआ	(")	"
१३४	पयद	(पतात रूपत)	"
१३५	ग यत्र त रररत त	(")	"
१३६	वयर ताम त म	(रप याम)	"
१३७	त्रजभाषा पर मुगत प्रभाय	(गारररर)	"
१३८	गभता ने वरररर री तहाती	(वररर)	"
१३९	स्त्री सुत्रो त	(गारररर वता)	"
१४०	गाणडीतदाद	(ता य)	"
१४१	गादश भाजन	(प्रो गमात्र जि ता)	१६
१४२	स्वाभत्त रवा	(")	"
१४३	गोगम जोवन	(")	"
१४४	गो रपया गापा त माया, त्र त ररर गवा	(")	"
१४५	त मारा जरीर	(")	"
१४६	त आदमियो का वररपत	(")	"
१४७	ग श्रे ग्रादा	(")	"
१४८	धमराज	(ता र)	"
१४९	रसागाय	(भाष्य, रररररर)	"
१५०	भारतीय मरुदररर हा ररररर	(मरुदररर)	"
१५१	गाती	(उपयाग)	"
१५२	मरी प्रिय कहररररर	(रहा री गय)	१६
१५३	भाता और खूत भाग १	(ररर रररर सामारररर उप याग)	"
१५४	" " भाग २	(")	"
१५५	" " भाग ३	(")	१६
१५६	सामनाथ वररर री मरुदररग	(")	"

१५७	आभा	(सामाजिक उपन्यास)	"
१५८	उदयास्त	(उपन्यास)	"
१५९	लालपानी	(उपन्यास)	"
१६०	बगुला के पख	(उपन्यास)	१८५९
१६१	खग्रास	(वैज्ञानिक उपन्यास)	"
१६२	सह्याद्रि की चट्टाने	(ऐतिहासिक उपन्यास)	"
१६३	पत्थर युग के दा बुत	(सामाजिक उपन्यास)	१९६०
१६४	बिना चिराग का शहर	(ऐतिहासिक उपन्यास)	"
१६५	सोना और खून	(ऐतिहासिक सामाजिक उपन्यास)	"
१६६	मोती (मृत्यु उपरांत अनुज च द्रसेन ने पूरा किया)	(उपन्यास)	"
१६७	हरण निमंत्रण (रक्त की प्यास का परिवर्द्धित रूप)	(उपन्यास)	"
१६८	पतिता	(कहानी संग्रह)	"
१६९	बाहर भीतर	(कहानी संग्रह)	"
१७०	दुखवा मै कामे कहूँ	(")	"
१७१	वरती और ग्रासमान	(")	१९६१
१७२	मोया हुआ शहर	(")	"
१७३	कहानी खत्म हो गई	(")	"
१७४	भारतीय जीवन पर एक चिडिया की नजर	(")	"
१	भारतीय इतिहास की भाँकी	(")	"
१७६	अनमोल बोल	(")	"
१७७	अष्ट मंगल	(संस्कृत के ८ नाटकों के एकाकीकरण)	१९६२
१७८	गा शरी	(नाटक)	१९६३
१७९	शुभश ('मोना और खून' का एक अंश)	(सामाजिक उपन्यास)	"
१८०	ईदो (मृत्यु उपरांत अनुज च द्रसेन ने पूरा किया)	(उपन्यास)	"
१८१	श्रीगम (श्रीगम, उत्सव जुआ)	(नाटक)	"
१८२	आय संस्कृति के पद चिह्न	(सांस्कृतिक उपन्यास)	"
१८३	हीमिया	(रसायन)	"
१८४	तुह पूव भारत की संस्कृति	(सांस्कृतिक)	"
१८५	आहार और जीवन	(स्वास्थ्य)	"
१८६	मेरी आत्मकहानी (मृत्यु उपरांत अनुज च द्रसेन ने पूरा की)		"

क) पापत पी तम कर्तव्यः

पश्चात्तर तं तं पी तमपमं मयत १८१ ना पात्र जया
 १ पी तमर मयत्त रमम रानज भाग ।

१८१- तत मा ३१ मीत २१२ तत ११३ अत
 ३३३३३३, पुता म र म ३३३ ।



पण्डितपुर सा, ज म		गजराती मनुवाव
१ पाभा	१८१	१ पा पी पर्या
२ पी तम रिया ना १२	१००	२ पा पी भाग
३, पी तम	१००	३ पा पी भा (मरा १ म भा)
४, मोती	१००	४ म भाय पीर मय भाग
५ ना	१८१	५ पी तम
मपम	१८१	मम भाव
७, तस्य ना पाग	१	७ पा पी
८ तस्य पी पर्या	१८६	८ पी तम ना मरा म

चतुरसेन साहित्य समिति की सेवाएँ

- १—समस्त चतुरसेन साहित्य का संग्रह ।
- २—पाठको को समस्त चतुरसेन साहित्य की एक ही स्थान से उपलब्धि ।
- ३—चतुरसेन साहित्य के सम्बन्ध में सब प्रकार की जानकारी और सूचना ।
- ४—चतुरसेन साहित्य के प्रकाशित और उपलब्ध साहित्य का प्रसार और बिक्री ।
- ५—चतुरसेनसाहित्य के अप्रकाशित साहित्य की खोज, अनुसन्धान और प्रकाशन ।
- ६—प्रकाशको द्वारा चतुरसेन साहित्य के त्याज्य और विमुख साहित्य का पुनर्प्रकाशन, और पाठको के उससे वचित रहने की समाप्ति ।
- ७—एम० ए० के हिन्दी छात्रों को चतुरसेन-छात्रवृत्ति का प्रदान ।
- ८—ज्ञानधाम में 'चतुरसेन हॉल' का निर्माण तथा देश-विदेश के साहित्यकारों का उसमें आतिथ्य और उन्हें भारतीय साहित्य सस्कृति की उपलब्धि ।

चतुरसेन मन्त्री

चतुरसेन साहित्य समिति
ज्ञानधाम, शाहदरा दिल्ली-३२

चतुरमेन साहित्य समिति के

आगामी महान ग्रन्थ

तत्त्व विचारणायाः द्वारा साहित्य

संशोधन

अन्वय चतुरसन का कथा साहित्य

संस्कृत

डाक्टर शुभकार कपूर एम०ए०पी०एच०डी०

सोना और खून, भाग ५, ६, ७, ८

संस्कृत द्वय

चन्द्रमेन, डा० शुभकार कपूर एम० ए०

मेरी आत्मकहानी

क आगामी संस्करण में सम्मिलित करने
के लिए आचार्यश्री के सम्मरण, पत्र, भद्र,
विवरण घटना क्रम आदि अपनी अमृत्य
सम्मति भेजिए।